Scanned 28.01.22

'शक्ति-उपासना-अङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

बहुरङ्गे चित्र

इकरङ्गे (सादे) चित्र

रेखा-चित्र

अशुद्धि-सुधार

यथाशक्य सावधानी रखते हुए भी कुछ अपरिहार्य कारणोंसे विशेषाङ्कके कतिपय बहुरङ्गे चित्रोंमें प्रूफसम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ रह, गयी हैं, उनका परिष्कृत रूप पाठकोंके सुविधार्थ यहाँ दिया जा रहा है। 'कल्याण'के कृपालु पाठकोंसे नम्र निवेदन है कि वे तत्सम्बन्धी असुविधाके लिये क्षमा करते हुए उन अशुद्धियोंको कृपया इस प्रकार सुधार कर पढ़ें—

(१) चित्र—त्रिशक्तितत्त्व—(पृष्ठ-सं० १)-'त्रिशक्तिर्नाम' 'त्रिदेवीभ्यो नमो' (नीचे श्लोकमें, द्वितीय पंक्तिमें)

(२) ,, कुंडलिनीशक्ति भगवती भुवनेश्वरी (पृष्ठ सं०-२४) 'सिन्दूरारुण' (नीचे श्लोकमें, प्रथम पंक्ति)

(३) ,, महागौरी शैलपुत्री ... (पृष्ठ-सं० १२४) 'वाञ्छित' (नीचे श्लोक प्रथम पंक्ति, प्रथम चरण) 'शैलपुत्रीं यशस्विनीम्' (नीचे श्लोकमें, द्वितीय-पंक्ति, अन्तिम चरण)

(४) ,, अम्बिकाके नेत्रोंसे कालीका प्रादुर्भाव (पृष्ठ-सं० १५२) 'नेत्रों' (ऊपर शीर्षकमें) 'ललाटफलकाद् द्रुतम्' (नीचे श्लोकमें, प्रथम-पंक्ति, अन्तिम चरण) 'विनिष्क्रान्ताऽसिपाशिनी' (नीचे-श्लोक द्वितीय पंक्ति, अन्तिम चरण)

(५) ,, भगवती दुर्गादेवी (पृष्ठ-सं० १९१) 'शशिधरां'(नीचे श्लोकमें द्वितीय पंक्ति, अन्तिम चरण)

(६) ,, भगवती मातङ्गी ... (पृष्ठ-सं० २२१) 'मातङ्गी' (ऊपर शीर्षक) 'श्यामलाङ्गी'न्यस्तैकाङ्घ्रि(नीचे श्लोकमें प्रथम पंक्ति) 'रक्तवस्त्रां' 'मातङ्गीं'-'शङ्खपात्रां' (नीचे श्लोकमें, द्वितीय पंक्ति)

(७) चित्र—दशमहाविद्या (१) (पृष्ठ-सं० २६०) 'दश महाविद्या' (ऊपर शीर्षक) 'पञ्चमी' (नीचे श्लोकमें, द्वितीय पंक्ति)

(८) ,, दश महाविद्या (२) (पृष्ठ-सं० २६४) 'दश महाविद्या' (ऊपर शीर्षकमें) 'प्रकीर्तिताः' (नीचे श्लोकमें, द्वितीय पंक्ति)

(९) ,, देवशक्तियोंका असुरोंपर-सामूहिक आक्रमण (पृष्ठ-सं० ३५५) 'देवशक्तियाँ' (नीचे नाम-शीर्षक)

(१०) ,, नवदुर्गा ... (पृष्ठ-सं० ४८९) 'तृतीयं' (प्रथम चित्रके नीचे श्लोकमें द्वितीय पंक्ति) 'पञ्चमं' (प्रथम चित्रके नीचे श्लोकमें, तृतीय पंक्ति) 'दुर्गादेव्यो' (,, ,, ,, ,,) 'सिद्धिदात्री च दुर्गादेव्यो' (द्वितीय चित्रके नीचे श्लोकमें द्वितीय पंक्ति)

परिशिष्टाङ्क (फरवरी १९८७ अङ्क २) की विषय-सूची

चित्र-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरका अध्यात्मपरक, आत्मकल्याणकारी साहित्य मँगाकर पढ़ें

पुस्तक	मू०	डाकखर्च
श्रीमद्भगवद्गीता साधकसंजीवनी टीका छप रही है।	३५.००	.११.४०
गीता-दर्पण–सचित्र ...	१५.००	७.४०
श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी	१२.००	८.६०
गीता-चिन्तन–सजिल्द	९.००	६.४०
श्रीमद्भगवद्गीता बंगला भाषामें	७.००	६.४०
श्रीमद्भगवद्गीता पदच्छेद गुजराती	६.००	६.७०
श्रीमद्भगवद्गीता मूल	६.००	६.७०
श्रीमद्भगवद्गीता	५.००	६.१०
श्रीमद्भगवद्गीता मोटा टाइप	३.५०	५.७५
श्रीमद्भगवद्गीता मोटे अक्षरोंमें लाहोरी	४.५०	६.१०
श्रीमद्भगवद्गीता भाषा	१.२५	५.४५
श्रीमद्भगवद्गीता मूल मोटे अक्षरवाली	१.७५	५.४५
श्रीमद्भगवद्गीता साधारण भाषाटीका	१.२५	५.४५
श्रीपञ्चरत्नगीता विष्णु-सहस्रनाम	१.५०	५.४५
श्रीमद्भगवद्गीता विष्णुसहस्रनामसहित	०.६५	.३५
गीताकी राजविद्या	४.५०	६.१०
गीताका ज्ञानयोग	४.००	५.७५
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा	३.००	५.४५
गीता-माधुर्य	४.५०	५.४५
गीताका ध्यानयोग	२.००	५.४५
गीताका भक्तियोग	४.००	६.१०
गीताका आरम्भ	३.५०	५.७५
गीताका कर्मयोग खण्ड २	४.००	५.७५
गीताकी विभूति और विश्वरूपदर्शन	३.००	५.४५
गीताका सारभूत श्लोक	०.८०	०.३५
श्रीविष्णुपुराण सजिल्द	१५.००	८.६०
पद-रत्नाकर	१४.००	८.२५
श्रीमद्भागवत महापुराण मूल मोटा टाइप	२०.००	८.६०
श्रीमद्भागवत महापुराण (दो खण्डोंमें)	५०.००	१६.००
श्रीभागवत-सुधासागर सजिल्द	३०.००	१०.५०
श्रीप्रेमसुधा-सागर	१०.००	७.१०
संक्षिप्त महाभारत (दो खण्डोंमें) सजिल्द	४४.००	१४.७५
संक्षिप्त पद्मपुराण सजिल्द	२५.००	१०.२०
पातञ्जलयोगप्रदीप सजिल्द	२५.००	८.७०
वेदान्तदर्शन हिन्दी व्याख्यासहित, सजिल्द		
ईशादि नौ उपनिषद् अन्वय, हिंदी व्याख्या-सहित सजिल्द	६.००	६.४०
विष्णुसहस्रनाम शाङ्करभाष्य	४.००	५.७५
ईशावास्योपनिषद् सानुवाद, शांकर-भाष्यसहित	०.६०	०.३५
केनोपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य-सहित	२.००	५.४५
कठोपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्यसहित	२.५०	५.४५
माण्डूक्योपनिषद् ,, ,,	५.५०	५.७५
तैत्तिरीयोपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य-सहित	३.००	५.७५
अध्यात्मरामायण-सटीक, सचित्र सजिल्द	१४.००	७.४०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक (प्रथम खण्ड) सजिल्द	३०.००	९.५०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक (द्वितीय खण्ड) सजिल्द	३०.००	९.२५
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल भाषा) सचित्र, सजिल्द	३५.००	१०.७५
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दर-काण्ड मूल गुटका	३.००	५.४५
श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप, बृहदाकार भाषाटीकासहित, सजिल्द	६०.००	१६.००
श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप, भाषा-टीकासहित, सजिल्द	३०.००	१०.७५
श्रीरामचरितमानस-सटीक मझला	१७.५०	८.००
श्रीरामचरितमानस बड़े अक्षरोंमें केवल मूल सजिल्द	१८.००	८.२५
श्रीरामचरितमानस मूल, मझला	७.५०	६.४०
श्रीरामचरितमानस मूल गुटका	५.००	६.१०
श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड सटीक	३.५०	५.७५
श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड सटीक	३.००	५.७५
श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्ड सटीक	०.९०	०.३५
श्रीरामचरितमानस किष्किन्धाकाण्ड सटीक	०.६०	०.३५
श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड, मूल	०.५०	०.३५
,, (सटीक) श्रीहनुमानचालीसा हनुमानाष्टक तथा बजरंगबाणसहित	१.००	०.३५
श्रीरामचरितमानस लंकाकाण्ड सटीक	१.५०	५.१५
श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड ,,	१.५०	५.१५
भजन-संग्रह (पाँचों भाग एक साथ)	५.००	५.८०
मानस-रहस्य सचित्र	५.००	६.१०
मानस-शंका-समाधान	२.५०	५.४५
विनयपत्रिका भावार्थसहित	६.००	६.१०
गीतावली सरल भावार्थसहित	५.००	५.८०
कवितावली	३.००	५.४५
दोहावली सानुवाद	२.००	५.१५
रामाज्ञा-प्रश्न सरल भावार्थसहित	१.२५	५.१५
श्रीकृष्ण-गीतावली सरल भावार्थसहित,	०.६०	०.३५

जानकी-मङ्गल	०.६०	०.३५
वैराग्य-संदीपनी	०.२५	०.३५
पार्वती-मङ्गल	०.३०	०.३५
बरवैरामायण	०.१५	०.३५
हनुमानबाहुक	०.४०	०.३५
प्रेमयोग	४.००	५.८०
महकते जीवन-फूल (सुखी जीवन-यापनकी विद्या)	४.५०	५.८०
आशाकी नयी किरणें	३.५०	५.४५
सुखी बननेके उपाय	३.५०	५.४५
श्रीदुर्गासप्तशती मूल, मोटा टाइप	३.००	५.४५
श्रीदुर्गासप्तशती सानुवाद	३.००	५.४५
स्तोत्ररत्नावली सानुवाद	३.००	५.४५
मधुर [दिव्य श्रीराधा-माधव-प्रेमकी झाँकी]	३.००	५.४५
अमृतके घूँट	३.००	५.४५
सत्संगके बिखरे मोती	२.५०	५.४५
आनन्दमय जीवन	२.५०	५.४५
भगवच्चर्चा भाग १	३.५०	५.४५
भगवच्चर्चा भाग २	२.५०	५.४५
भगवच्चर्चा भाग ३	४.००	५.७५
भगवच्चर्चा भाग ४	४.००	५.७५
भगवच्चर्चा भाग ५	५.००	३.७५
पूर्ण समर्पण (भगवच्चर्चा भाग ६)	५.००	५.४५
लोक-परलोकका सुधार प्रथम भाग	२.००	५.४५
,, ,, द्वितीय भाग	२.५	५.४५
,, ,, तृतीय भाग	३.००	५.४५
,, ,, चतुर्थ भाग	३.००	५.४५
,, ,, पञ्चम भाग	३.००	५.४५
जीवनोपयोगी प्रवचन स्वामी श्रीरामसुखदासजी	३.७५	५.१५
तात्त्विक प्रवचन ,, ,,	३.००	५.१५
संतवाणी (ढाई हजार अनमोल बोल)	३.५०	५.४५
एक महात्माका प्रसाद	२.००	५.४५
व्यवहार और परमार्थ	२.००	५.४५
सत्संग-सुधा	२.००	५.१५
विवेक-चूडामणि	२.००	५.१५
पातञ्जलयोगदर्शन	१.८०	५.१५
भक्तियोगका तत्त्व	२.५०	५.७५
एक लोटा पानी	२.५०	५.१५
आत्मोद्धारके सरल उपाय	१.५०	५.४५
विदुरनीति (सानुवाद)	१.५०	५.१५
कल्याणकारी प्रवचन गुजराती	२.५०	५.१५
स्वर्ण-पथ	२.००	५.१५
प्रेम-सत्संग-सुधा-माला	१.५०	५.१५
जीवनका कर्तव्य	१.५०	५.१५
कल्याणकारी प्रवचन (प्रथम)	२.००	५.१५
,, (द्वितीय)	२.५०	५.१५
कर्मयोगका तत्त्व	३.००	५.७५
परमशान्तिका मार्ग	२.५०	५.४५
परम साधन	२.००	५.७५
महत्त्वपूर्णशिक्षा	२.५०	५.७५
आत्मोद्धारके साधन	२.५०	५.७५
मनुष्य-जीवनकी सफलता	२.५०	५.७५
मनुष्यका परमकर्तव्य	३.५०	५.७५
ज्ञानयोगका तत्त्व	२.५०	५.४५
प्रेमयोगका तत्त्व	२.००	५.७५
सती द्रौपदी	२.००	५.१५
नारीशिक्षा	१.५०	५.१५
स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१.५०	५.१५
तत्त्व-चिन्तामणि बड़ा (भाग १)	२.००	५.४५
,, (भाग २)	३.००	६.०५
,, (भाग ३)	३.५०	५.७५
,, (भाग ४)	४.००	६.०५
,, (भाग ५)	२.५०	५.७५
,, (भाग ६)	३.००	५.७५
,, (भाग ७)	४.००	५.७५
रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१.५०	५.१५
उपनिषदोंके चौदह रत्न	१.००	०.३५
श्रीभीष्मपितामह	२.००	५.१५
श्रीश्रीचैतन्यचरितावली (खण्ड १)	४.००	५.४५
,, (खण्ड २)	६.००	५.७५
,, (खण्ड ३)	६.००	५.७५
सुखी जीवन	२.००	५.१५
नित्यकर्मप्रयोग	१.५०	५.१५
पढ़ो, समझो और करो	१.५०	५.१५
कलेजेके अक्षर (पढ़ो, समझो और करो—भाग २)	१.५०	५.१५
आदर्श मानव-हृदय (पढ़ो, समझो और करो—भाग ३)	१.५०	५.१५
आदर्श धर्म (पढ़ो, समझो और करो—भाग ४)	१.२५	५.१५
भलेका भला और बुरेका बुरा (पढ़ो, समझो और करो—भाग ५)	१.५०	५.१५
उपकारका बदला (पढ़ो, समझो और करो—भाग ६)	१.५०	५.१५

असीम नीचता और असीम साधुता (भाग ७) १.५० ५.१५
नकली और असली प्रेम (पढ़ो, समझो और करो–भाग ८) १.५० ५.१५
भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो–भाग ९) १.५० ५.१५
मानवताका पुजारी (पढ़ो, समझो और करो–भाग १०) १.५० ५.१५
आनन्दके आँसू (पढ़ो, समझो और करो–भाग ११) १.५० ५.१५
दानवोंमें भी मानवता (पढ़ो, समझो और करो–भाग १२) १.५० ५.१५
बालकोंकी बातें १.५० ५.१५
पिताकी सीख स्वास्थ्य और खान-पान १.२० ५.१५
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा १.०० ०.३५
प्रेम-दर्शन—नारदरचित भक्ति-सूत्रोंकी विस्तृत टीका २.०० ५.१५
सत्संगमाला १.२५ ५.१५
भवरोगकी रामबाण दवा १.०० ५.१५
वीर बालक २० वीर बालकोंके जीवन-चरित्र, आकार ५×७॥, १.०० ०.३५
गुरु और माता-पिताके भक्त बालक, ११ बालकोंके आदर्श चरित्र १.०० ०.३५
दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ—२३ छोटी-छोटी कहानियाँ ०.७५ ०.३५
वीर बालिकाएँ—१७ वीर बालिकाओंके आदर्श चरित्र ०.७५ ०.३५
उपयोगी कहानियाँ—३५ बालकोपयोगी कहानियाँ १.०० ०.३५
चोखी कहानियाँ—बालकोंके लिये ३२ कहानियाँ, १.२५ ५.१५
महाभारतके कुछ आदर्श पात्र १.५० ५.१५
भक्त नरसिंह मेहता २.०० ५.१५
भक्त बालक (गोविन्द,मोहन आदि बालक भक्तोंकी ५ कथाएँ हैं) ०.८० ०.३५
भक्त नारी (स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी मीरा, शबरी आदिकी कथाएँ हैं) ०.५० ०.३५
भक्त-पञ्चरत्न (रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच भक्तोंकी कथाएँ) १.२५ ०.६५
भक्त-चन्द्रिका (सखू, विट्ठल आदि ६ भक्तोंकी कथाएँ) ०.७५ ०.३५
भक्त महिलारत्न (रानी रत्नावती, हरदेवी आदिकी ९ कथाएँ) १.२५ ०.६५
प्राचीन भक्त (मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि-की १५ कथाएँ) १.५० ५.१५
प्रेमी भक्त (बिल्वमंगल, जयदेव आदिकी ५ कथाएँ) १.०० ५.१५
भक्त दिवाकर (भक्त सुव्रत, भक्त वैश्वानर आदिकी ८ कथाएँ) १.५० ५.१५
भक्त-सौरभ (व्यासदास, प्रयागदास आदिकी कथाएँ) १.५० ५.१५
भक्त-सप्तरत्न (दामा, रघु आदिकी कथाएँ १.०० ५.१५
भक्त-सुधाकर (भक्त रामचन्द्र, लाखाजी आदिकी कथाएँ) १.०० ५.१५
भक्त सरोज (गङ्गाधरदास, श्रीधर आदिकी १० कथाएँ) १.२५ ५.१५
भक्त सुमन (नामदेव, राँका-बाँका आदिकी कथाएँ) १.५० ५.१५
भक्त रत्नाकर (भक्त माधवदास, भक्त विमलतीर्थ आदिकी १४ कथाएँ) १.२५ ५.१५
आदर्श भक्त (शिवि, रन्तिदेव आदिकी ७ कथाएँ) १.२५ ५.१५
भक्त कुसुम (जगन्नाथ, हिम्मतदास आदिकी ६ कथाएँ) ०.८० ०.३५
भक्तराज हनुमान् १.०० ०.३५
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र ०.७५ ०.३५
प्रेमी भक्त उद्धव ०.५० ०.३५
महात्मा विदुर ०.७५ ०.३५
भक्तराज ध्रुव ०.५० ०.३५
कल्याण-कुञ्ज (भाग १), सचित्र १.२० ५.१५
,, (भाग २) १.५० ५.१५
,, (भाग ३) सचित्र २.०० ५.१५
दिव्य सुखकी सरिता (कल्याण-कुञ्ज भाग ५) १.०० ५.१५
सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (कल्याण-कुञ्ज भाग ६) १.२५ ५.१५
बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला [दोनों भाग] आकार १०×७ ॥ सचित्र २.०० ५.२०
भगवान् श्रीकृष्ण [दोनों भाग] सचित्र, १.२५ ०.६५

	मूल्य	डाकखर्च
भगवान् राम [दोनों भाग] सचित्र	१.००	०.६५
बाल-चित्र-रामायण [दोनों भाग] आकार १०×७॥	१.००	०.७०
बाल-चित्रमय बुद्धलीला चित्रोंमें	१.००	०.७०
बालचित्रमय चैतन्यलीला चित्रोंमें	०.८५	०.७०
गीताप्रेस-लीला-चित्रमन्दिर-दोहावली	०.६०	०.३५
गीताभवन-दोहा-संग्रह	०.५०	०.३५
भगवान्‌पर विश्वास	०.८०	०.३५
मानव-धर्म	१.००	०.३५
स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी	०.६०	०.३५
आरती-संग्रह १०२ आरतियोंका अनूठा संग्रह	१.००	०.३५
सच्चे ईमानदार बालक	१.००	०.३५
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	०.५०	०.३५
संस्कृतिमाला (भाग १)	०.६०	०.३५
,, (भाग २)	०.८०	०.३५
,, (भाग ३)	१.००	०.३५
,, (भाग ४)	१.२५	५.१५
,, (भाग ५)	१.२५	५.१५
बालकके गुण	०.६०	०.३५

हमारे परमोपयोगी प्रकाशन

१–साधक-संजीवनी–परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज सभी अध्यायोंकी एक जिल्दमें सरल एवं सुबोध व्याख्या, गीताके माध्यमसे साधनोंकी सुगमताका महत्त्वपूर्ण रहस्य, 'कोई भी परमात्म-प्राप्तिसे वञ्चित न रहे'–गीताके इस लक्ष्यको पूरा करानेवाला अद्भुत विलक्षण ग्रन्थ, रंगीन अठारह चित्रोंसहित पृ०सं० ११७२, सस्ता एवं सुन्दर ग्रन्थ छप रहा है। मूल्य ३५.००

२–गीता-दर्पण–(स्वामी रामसुखदास) गीताका सर्वाङ्गीण अध्ययन करनेवालोंके लिये अनुपम सामग्री। गीता-श्लोक-संगति, गीता-शब्दकोशसहित विविध विषयोंका गीता-ग्रन्थमें दिग्दर्शन। विभिन्न साधनोंका एक ग्रन्थमें समावेश। संक्षेपमें विषयका सरलतासे विशद वर्णन।

३–श्रीशुक-सुधा-सागर–सचित्र, बृहदाकार श्रीमद्भागवत महापुराणका स्कन्ध, अध्याय एवं श्लोकाङ्कसहित सरल सरस हिन्दी अनुवाद छप रहा है। मूल्य–१००.००

४–पातञ्जलयोगप्रदीप–सूर्यभेदी व्यायाम (सूर्य-नमस्कारका सविस्तर विवरण और उसकी प्रक्रियाको प्रदर्शित करनेवाले ९ इकरंगे चित्र तथा अन्य आसनोंके छः चित्रोंके अतिरिक्त स्थान-स्थानपर अन्यान्य उपयोगी विषयोंका समावेश भी किया गया है। मूल्य २५.००

५–पद्मपुराण–सचित्र, परमोपयोगी संग्रहणीय पुराण, जो बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध था, अब प्राप्य है। मूल्य–२५.००

Our English Publications

	Price	Postage
Srimad Bhagavata Mahapuran (With Sanskrit text and English traslation) Part I	20.00	9.90
,, ,, Part II	20.00	9.00
Sri Ramacharitamanasa (With Hindi text and English translation)	25.00	9.60
Srimad Bagavadgita (With Sanskrit text and English translation) Pages 804,	15.00	9.50
Bhagavadgita (With Sanskrit text and English translation) Packet size	1.25	5.15
Turn to God, Pages 190,	3.50	5.45
Gems of Truth [First Series] (*By Jayadayal Goyandka*) Pages 204,	2.50	5.45
,, [Second Series] Pages 216,	2.00	5.45
Sure Steps to God-Realization (*By Jayadayal Goyandka*) Pages 344,	2.25	5.45
Benedictory Discourses (*By Swami Ramsukhdas*) Pages 186,	3.50	5.45
Let us Know the Truth (*By Swami Ramsukhdas*) Pages 92,	2.00	5.15
How to Attain Eternal Happiness, (*By Hanumanprasad Poddar*) Pages 204,	1.50	5.15
The Immanence of God (*By Madanmohan Malaviya*)	0.30	0.35

व्यवस्थापक, गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥

वर्ष ६१ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, जनवरी १९८७ ई० { संख्या १
पूर्ण संख्या ७२२

परिपालय देवि विश्वम्

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

'जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्धान्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयोंमें बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवतीको हमलोग नमस्कार करते हैं । देवि ! विश्वका सर्वथा पालन कीजिये ।'

वैदिक शुभाशंसा

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥
(ऋ० सं० ५ । ५१ । १५)

हम अविनाशी एवं कल्याणप्रद मार्गपर चलें । जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा चिरकालसे निःसंदेह होकर बिना किसीका आश्रय लिये राक्षसादि दुष्टोंसे रहित पंथका अनुसरण कर अभिमत मार्गपर चल रहे हैं, उसी प्रकार हम भी परस्पर स्नेहके साथ शास्त्रोपदिष्ट अभिमत मार्गपर चलें ।

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ (ऋ० सं० १ । १६४ । ४१)

उच्चरित की जानेवाली शब्दब्रह्मात्मिका वाणी शब्दका रूप धारण कर रही है । अव्याकृत आत्मभावसे सुप्रतिष्ठित यह वाणी समस्त प्राणियोंके लिये उनके वाचक शब्दोंको सार्थक बनाती हुई सुबन्त और तिङन्त-भेदोंसे पादद्वयवती, नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात-भेदोंसे चतुष्पदी, आमन्त्रण आदि आठ भेदोंसे अष्टापदी और अव्यय पदसहित नवपदी अथवा नाभिसहित उरः, कण्ठ, तालु आदि भेदोंसे नवपदी बनकर उत्कृष्ट हृदयाकाशमें सहस्राक्षरा रूपसे व्याप्त होकर अनेक ध्वनि-प्रकारोंको धारण करती हुई अन्तरिक्षमें व्याप्त यह दैवी वाणी गौरीस्वरूपा है ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । परा दुष्वप्न्यं सुव ॥ (शु० यजु० ३० । ३)

सविता देव हमारे समस्त पाप-तापोंको दूर करें । कल्याणकारी संतति, गौ आदि पशु तथा अतिथि-सत्कार-परायण गृहादि ऐहिक सम्पत्तिको हमारी ओर उन्मुख करें ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (शु० यजु० २३ । ६५)

हे प्रजापते ! सर्वप्रथम जन्म लेनेके कारण समस्त सृष्टिका सर्जन करनेकी शक्ति आज भी तुम्हें छोड़ किसीमें भी नहीं है । अतएव हम ऐहिक एवं पारलौकिक फलोंकी इच्छासे तुम्हें आहुति प्रदान कर रहे हैं । तुम्हारे अनुग्रहसे वे समस्त फल हमें प्राप्त हों और हम ऐहिक धनके स्वामी बनें ।

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ (सामवेद सं० १ । १ । ३२)

हे स्तोताओ ! यज्ञमें सत्यधर्मा, क्रान्तदर्शी, मेधावी, तेजस्वी और रोगोंका शमन करनेवाले शत्रुघातक अग्निकी स्तुति करो ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणम् ।
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ (अथर्व कां० १९, सू० ७१, मं० १)

पापोंका शोधन करनेवाली वेदमाता हम द्विजोंको प्रेरणा दें । मनोरथोंको परिपूर्ण करनेवाली वेदमाताकी आज हमने स्तुति की है । मनोऽभिलषित वरप्रदात्री यह माता हमें दीर्घायु, प्राणवान्, प्रजावान्, पशुमान्, धनवान्, तेजस्वी तथा कीर्तिशाली होनेका आशीर्वाद देकर ही ब्रह्मलोकको पधारें ।

———•———

महाशक्तिके उद्गार

[देवीसूक्त-आत्मसूक्त ऋ०मं० १०, सूक्त १२५, अ०१]

ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें एक आत्मसूक्त है। अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाक् ब्रह्मसाक्षात्कारसे सम्पन्न होकर अपनी सर्वात्मदृष्टिको अभिव्यक्त कर रही है। ब्रह्मविद्‌की वाणी ब्रह्मसे तादात्म्यापन्न होकर अपने-आपको ही सर्वात्माके रूपमें वर्णन कर रही है। यह ब्रह्मस्वरूपा वाग्देवी ब्रह्मानुभवी जीवन्मुक्त महापुरुषकी ब्रह्ममयी प्रज्ञा ही है। इस सूक्तमें प्रतिपाद्य-प्रतिपादकका ऐकात्म्य-सम्बन्ध विवक्षित है। ऋषिका कहती है—

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

'ब्रह्मस्वरूपा मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वदेवताके रूपमें विचरण करती हूँ, अर्थात् मैं ही उन-उन रूपोंमें भास रही हूँ। मैं ही ब्रह्मरूपसे मित्र और वरुण दोनोंको धारण करती हूँ। मैं ही इन्द्र और अग्निका आधार हूँ। मैं ही दोनों अश्विनीकुमारोंका भी धारण-पोषण करती हूँ।'

सायणाचार्यने इस मन्त्रकी व्याख्यामें लिखा है कि वाग्देवीका अभिप्राय यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् सीपमें चाँदीके समान अध्यस्त होकर आत्मामें विभासित हो रहा है। माया जगत्‌के रूपमें अधिष्ठानको ही दिखा रही है। यह सब मायाका ही विवर्त है। उसी मायाका आधार होनेके कारण ब्रह्मसे ही सबकी उत्पत्ति संगत होती है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥ २॥

'मैं ही शत्रुनाशक, कामादि दोष-निवर्तक, परमाह्लाददायी, यज्ञगत सोम, चन्द्रमा, मन अथवा शिवका भरण-पोषण करती हूँ। मैं ही त्वष्टा, पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो यजमान यज्ञमें सोमाभिषेकके द्वारा देवताओंको तृप्त करनेके लिये हाथमें हविष्य लेकर हवन करता है, उसे लोक-परलोकमें सुखकारी फल देनेवाली मैं ही हूँ।'

मूल मन्त्रमें 'द्रविण' शब्द है। इसका अर्थ है—कर्मफल। कर्मफलदाता मायाधिपति ईश्वर हैं। वेदान्त-दर्शनके तीसरे अध्यायके दूसरे पादमें यह निरूपण है कि ब्रह्म ही फलदाता है। भगवान् शंकराचार्यने अपने भाष्यमें इस अभिप्रायका युक्तियुक्त समर्थन किया है। यह ईश्वर-ब्रह्म अपना आत्मा ही है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥ ३॥

'मैं ही राष्ट्री अर्थात् सम्पूर्ण जगत्‌की ईश्वरी हूँ। मैं उपासकोंको उनके अभीष्ट वसु—धन प्राप्त करानेवाली हूँ। जिज्ञासुओंके साक्षात् कर्तव्य परब्रह्मको अपने आत्माके रूपमें मैंने अनुभव कर लिया है। जिनके लिये यज्ञ किये जाते हैं, उनमें मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। सम्पूर्ण प्रपञ्चके रूपमें मैं ही अनेक-सी होकर विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें जीवरूपमें मैं अपने-आपको ही प्रविष्ट कर रही हूँ। भिन्न-भिन्न देश, काल, वस्तु और व्यक्तियोंमें जो कुछ हो रहा है, किया जा रहा है, वह सब मुझमें मेरे लिये ही किया जा रहा है। सम्पूर्ण विश्वके रूपमें अवस्थित होनेके कारण जो कोई जो कुछ भी करता है, वह सब मैं ही हूँ।'

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥

'जो कोई भोग भोगता है, वह मुझ भोक्त्रीकी शक्तिसे ही भोगता है । जो देखता है, जो श्वासोच्छ्वासरूप व्यापार करता है और जो कही हुई बात सुनता है, वह भी मुझसे ही । जो इस प्रकार अन्तर्यामिरूपसे स्थित मुझे नहीं जानते, वे अज्ञानी दीन, हीन, क्षीण हो जाते हैं । मेरे प्यारे सखा ! मेरी बात सुनो-'मैं तुम्हारे लिये उस ब्रह्मात्मक वस्तुका उपदेश करती हूँ, जो श्रद्धा-साधनसे उपलब्ध होती है ।'

'श्रद्धि' शब्दका अर्थ श्रद्धा है । 'श्रत्' शब्दको उपसर्गवत् वृत्ति होनेके कारण 'कि' प्रत्यय हो जाता है । 'व' प्रत्यय मत्वर्थीय है । इसका अर्थ हुआ परब्रह्म अर्थात् परमात्माका साक्षात्कार श्रद्धा—प्रयत्नसे होता है। श्रद्धा आत्मबल है और यह वैराग्यसे स्थिर होती है । अपनी बुद्धिसे ढूँढ़नेपर जो वस्तु सौ वर्षोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकती, वह श्रद्धासे क्षणभरमें मिल जाती है । यह प्रज्ञाकी अन्धता नहीं है, जिज्ञासुओंका शोध और अनुभवियोंके अनुभवसे लाभ उठानेकी वैज्ञानिक प्रक्रिया है ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

'मैं स्वयं ही इस ब्रह्मात्मक वस्तुका उपदेश करती हूँ । देवताओं और मनुष्योंने भी इसीका सेवन किया है । मैं स्वयं ब्रह्मा हूँ । मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ, उसे सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ । मैं चाहूँ तो उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बना दूँ, अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषि बना दूँ और उसे बृहस्पतिके समान सुमेधा बना दूँ । मैं स्वयं अपने स्वरूप ब्रह्माभिन्न आत्माका गान कर रही हूँ ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥

'मैं ही ब्रह्मज्ञानियोंके द्वेषी हिंसारत त्रिपुरवासी त्रिगुणाभिमानी अहंकार-असुरका वध करनेके लिये संहारकारी रुद्रके धनुषपर ज्या (प्रत्यञ्चा) चढ़ाती हूँ । मैं ही अपने जिज्ञासु स्तोताओंके विरोधी शत्रुओंके साथ संग्राम करके उन्हें पराजित करती हूँ । मैं ही द्युलोक और पृथिवीमें अन्तर्यामिरूपसे प्रविष्ट हूँ ।'

इस मन्त्रमें भगवान् श्रीरुद्रद्वारा त्रिपुरासुरकी विजयकी कथा बीजरूपसे विद्यमान है ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

'इस विश्वके शिरोभागपर विराजमान द्युलोक अथवा आदित्यरूप पिताका प्रसव मैं ही करती रहती हूँ । उस कारणमें ही तन्तुओंमें पटके समान आकाशादि सम्पूर्ण कार्य दीख रहा है । दिव्य कारण-वारिरूप समुद्र, जिसमें सम्पूर्ण प्राणियों एवं पदार्थोंका उदय-विलय होता रहता है, वह ब्रह्मचैतन्य ही मेरा निवासस्थान है । यही कारण है कि मैं सम्पूर्ण भूतोंमें अनुप्रविष्ट होकर रहती हूँ और अपने कारणभूत मायात्मक स्वशरीरसे सम्पूर्ण दृश्य कार्यका स्पर्श करती हूँ ।'

सायणने 'पिता' शब्दके दो अर्थ किये हैं—द्युलोक और आकाश । तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी कहा है—'द्यौः पिता' । तैत्तिरीय आरण्यकमें भी आत्मासे आकाशकी उत्पत्तिका वर्णन है । वेङ्कटनाथने पिताका अर्थ 'आदित्य' किया है ।

'समुद्र'शब्दकी व्युत्पत्ति है—समुद् द्रवन्ति भूतजातानि अस्मादिति—अर्थात् जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥

'जैसे वायु किसी दूसरेसे प्रेरित न होनेपर भी स्वयं प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मैं ही किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित और अधिष्ठित न होनेपर भी स्वयं ही कारणरूपसे सम्पूर्ण भूतरूप कार्योंका आरम्भ करती हूँ। मैं आकाशसे भी परे हूँ और इस पृथिवीसे भी। अभिप्राय यह है कि मैं सम्पूर्ण विकारोंसे परे, असङ्ग, उदासीन, कूटस्थ ब्रह्मचैतन्य हूँ। अपनी महिमासे सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें मैं ही बरत रही हूँ, रह रही हूँ।'

वेङ्कटनाथने 'आरभमाणा'का अर्थ 'संस्तम्भयन्ति' किया है। इसका अर्थ है 'सम्पूर्ण भूत-भुवनको मैं ही संस्तम्भ करती हूँ, अर्थात् अपने-अपने भावमें स्थिर करती हूँ।'

(अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

ऋग्वेदोक्त रात्रिसूक्त

[मं १०, सू० १२७]

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः, रात्रिर्देवता, गायत्री छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥

महत्तत्त्वादिरूप व्यापक इन्द्रियोंसे समस्त देशोंमें समस्त वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाली ये रात्रिरूपा देवी अपने द्वारा उत्पादित जगत्‌के जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको विशेषरूपसे देखती हैं और उनके अनुरूप फलकी व्यवस्था करनेके लिये समस्त विभूतियोंको धारण करती हैं।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

ये देवी अमर हैं और सम्पूर्ण विश्वको, नीचे फैलनेवाली लता आदिको तथा ऊपर बढ़नेवाले वृक्षोंको भी व्याप्त करके स्थित हैं। इतना ही नहीं, ये ज्ञानमयी ज्योतिसे जीवोंके अज्ञानान्धकारका नाश कर देती हैं।

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती।
अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

परा चिच्छक्तिरूपा रात्रिदेवी आकर अपनी बहन ब्रह्मविद्यामयी उषा देवीको प्रकट करती हैं, जिससे अविद्यामय अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

वे रात्रिदेवी इस समय मुझपर प्रसन्न हों, जिनके आनेपर हमलोग अपने घरोंमें ठीक वैसे ही सुखसे सोते हैं जैसे रात्रिके समय पक्षी वृक्षोंपर बनाये हुए अपने घोंसलोंमें सुखपूर्वक शयन करते हैं।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

उस करुणामयी रात्रिदेवीके अङ्कमें सम्पूर्ण ग्रामवासी मनुष्य, पैरोंसे चलनेवाले गाय, घोड़े आदि पशु, पंखोंसे उड़नेवाले पक्षी एवं पतंग आदि, किसी प्रयोजनसे यात्रा करनेवाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक सोते हैं।

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये।
अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

हे रात्रिमयी चिच्छक्ति! तुम कृपा करके वासनामयी वृकी तथा पापमय वृकको हमसे पृथक् करो। काम आदि तस्करसमुदायको भी दूर हटाओ। तदनन्तर

हमारे लिये सुखपूर्वक तरनेयोग्य हो जाओ—मोक्ष-दायिनी एवं कल्याणकारिणी बन जाओ।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित।
उप ऋणेव यातय ॥ ७ ॥

हे उषा ! हे रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी ! सब ओर फैला हुआ यह अज्ञानमय काला अन्धकार मेरे निकट आ पहुँचा है। तुम इसे ऋणकी भाँति दूर करो। जैसे धन देकर अपने भक्तोंके ऋण दूर करती हो, उसी प्रकार ज्ञान देकर इस अज्ञानको भी हटा दो।

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥

हे रात्रिदेवि ! तुम दूध देनेवाली गौके समान हो। मैं तुम्हारे समीप आकर स्तुति आदिसे तुम्हें अपने अनुकूल करता हूँ। परम व्योमस्वरूप परमात्माकी पुत्री! तुम्हारी कृपासे मैं काम आदि शत्रुओंको जीत चुका हूँ, तुम स्तोत्रकी भाँति मेरे इस हविष्को भी ग्रहण करो।

श्रीसूक्त

[पद्यानुवाद-सहित]

हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चस्य सूक्तस्य आनन्दकर्दमचीक्लीतेन्दिरासुता ऋषयः, श्रीरग्निर्देवते, आद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः, चतुर्थी बृहती, पञ्चमीषष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ, ततोऽष्टौ अनुष्टुभः, अन्त्या आस्तारपङ्क्तिः जपे विनियोगः।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १ ॥

जो सुवर्ण-सी कान्तिमती हैं, दरिद्रता जनकी हरतीं,
स्वर्ण-रजतकी मालाओंको हैं सदैव धारण करतीं।
आह्लादिनी हिरण्मयी जो दिव्य छटाएँ छिटकायें,
वे लक्ष्मी हे अग्निरूप हरि मेरे घर-आँगन आयें ॥१॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥

हे सर्वज्ञ हरे मेरे हित आप वही लक्ष्मी लायें,
जो सुस्थिर हो रहें, न तजकर और कहीं मुझको जायें।
जिनके होनेपर मैं वाञ्छित कनक, रत्न, धन सब पाऊँ,
गौओं, अश्वों, भृत्य-बन्धुओंसे भी पूजित हो जाऊँ ॥२॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥

अश्व जुरे जहँ अग्रिम भागमें
वा रथके बसि बीच सु राजैं,
जागृति-सी जगमें जगि जाय
मतंग-घटा जिनकी जब गाजैं।
देवि दयामयी इन्दिराको
तेहि पास बुलावत हौं निज आजैं,
माँ सुत-ज्यौं अपनाइ सनेह सौं
मोहिं सदा मम गेह विराजैं ॥३॥

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारा-
मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां
तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥

अकथ कहानी मन-बानी सों अतीत जाको
मुख अरबिंद मंद-मंद मुसकावै है,
चहर-दिवारी जाके दुर्गकी सुबर्नमयी
दीपति दयार्द्र तृप्त तृप्ति बरसावै है।
आसन लखात कमलाको कमलासन पै
कमल-बरन रूप-रासि सरसावै है,
आवै रमा सोइ ताहि सादर पुकारौं धरि-
आस-बिसवास दास निकट बुलावै है ॥४॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये-
ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥

चन्दसे अधिक अमन्द द्युति देती मोद
राशिसे सुयशकी प्रकाशित उदारा हैं,
लोकमें ललामा अभिरामा इन्दिराकी सदा
सेवामें निरत देवता हैं, देवदारा हैं।
लेता हूँ शरण उन पद्माकी जिन्होंने निज
कर-अरविन्दमें पयोज मंजु धारा है,

सदन हमारेसे अलक्ष्मीकी अमा हो दूर
वरणीय मेरा रमा-चरण तुम्हारा है ॥ ५ ॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥

रविके समान छवि-पुञ्जसे भरी हे रमे
तपसे तुम्हारे वन्य पादप प्रकट हैं,
कमके तुम्हारे कर-कञ्जसे प्रसूत हुआ
सुन्दर सुरभि बिल्ववृक्ष अविकट है ।
उसके सुफल उस मायाका विनाश करें
अन्तरमें वास करती जो सकपट है,
दूर करें त्यों ही उस दारुण दरिद्रताको
बाहर जो रहती मचाये खट-पट है ॥ ६ ॥

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥

वे धनके अधिदेव रमे
महादेव सदा मम पास पधारे,
काञ्चन आदि महामनि रत्न-
के साथ सुकीर्ति भी पाँव पसारे ।
जन्म मिला मुझे मंजु महीतल-
में इस भारत राष्ट्रके प्यारे,
कीर्ति समृद्धि प्रदान करें
धृति नेह धनाधिप गेह हमारे ॥ ७ ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

होता सदा उपवास जहाँ लगि
भूख-पिआसकी मैल जहाँ है,
नाश करूँ उस दीनताका
भगिनी बड़ी जो कमला की यहाँ है ।
वैभव-हीनता ऋद्धि-विहीनताका
जो बड़ा हुआ दुःख महा है,
दूर करो सबको मम सद्मसे
पद्म-निवासिनि देर कहाँ है ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥

गन्ध-पुष्पहार उपहार द्वार इन्दिराका
भूत पराभूत कोई कर नहीं पाता है,
पूर्ण अन्न-धनसे सदैव तुष्ट-पुष्ट रमा
पशु-वृन्द-कूट-सा करीषका सुहाता है ।
ईश्वरी चराचर समस्त भूत-प्राणियोंकी
वैभव अपार पारावार-सा लखाता है,
श्री हैं वे ही राधिका हैं, सकल गुणाधिका हैं
सेवक उन्हींको यह निकट बुलाता है ॥ ९ ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥

इन्दिरा आपके दिव्य प्रभावसे
मैं मनकी शुभ-कामना पाऊँ,
कल्पना चित्तकी पूर्ण हो वाक्में
सत्यताकी अनुभूति कराऊँ ।
दूध दही नवनीत सुरूपका
लाभ सदा पशुओंके उठाऊँ,
अन्नके नाना प्रकार मिलें सदा
सम्पदा भूरि सुकीर्ति कमाऊँ ॥१०॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥

कर्दम हो कमलाके सुपुत्र
प्रजा तुमसे, तुम सन्निधि आओ,
वास करो नित मेरे निवासमें
और यहाँ रमाको भी बुलाओ ।
पङ्कज-मालिकासे परिमण्डित
सिन्धुजाका शुभ दर्श कराओ,
देव सदा मम विस्तृत वंशमें
आप बसो जननीको बसाओ ॥११॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥

ए. हो सुनो जलके शुभ-देवता
स्निग्ध पदारथ यहाँ उपजाओ,
हे चिक्लीत रमा-सुत सुन्दर
मेरे निकेतनमें बस जाओ ।
देवी दयामयी माता रमा यहाँ
दर्शन दें, जिस भाँति बुलाओ,
और सदा उनका मम वंश-
परम्परा में शुभ-वास कराओ ॥१२॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१३॥

ए हो अग्निदेव आप ज्ञाता तीन कालके हैं
प्रार्थना विनम्र, पद्मनाभ-संगवाली जो,
गज-शुण्ड-दण्डमें अवस्थित कलश-जल
द्वारा हैं, नहाती आर्द्र-अङ्गवाली जो ।
पुष्टि-दायिनी हैं पद्ममालासे अलंकृत हैं,
स्वर्णमयी और रक्त-पीत रंगवाली जो,
लक्ष्मीको बुलाओ उन्हीं वास मम वास-हेतु
चारु चन्द्रिका-सी दिव्य रंग-ढंगवाली जो ॥१३॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१४॥

सज्जनोंकी रक्षामें निरत जो दयार्द्र सदा
दुष्ट दल दानवोंको दण्ड दिया करतीं,
यष्टिके समान सृष्टिकी जो अवलम्बनीय
धारण सुवर्ण हेम-माला किया करतीं ।
रविके समान छविशालिनी हिरण्मयी
विश्वको प्रसू-सी पाल-पोष किया करतीं'
माता लक्ष्मीको जातवेदा हे बुलाओ उन्हीं
सेवकोंको जो हैं सदा तोष दिया करतीं ॥१४॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्
विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥

हे जातवेदा अग्नि मेरी
प्रार्थना सुन लीजिये,
सुस्थिर रहे मम गेह जी
लक्ष्मी मुझे वह दीजिये ।
जिसके शुभागमपर कनक,
बहु गाय, घोड़े आ सकें,
हम दास-दासी, बन्धु-बान्धव
आदि सब कुछ पा सकें ॥१५॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

श्रीकाम नर नित शुद्ध,
संयत घृत-हवन करता रहे ।
श्रीसूक्तकी पंद्रह ऋचाएँ
भी सतत जपता रहे ॥१६॥

(अनुवादक—स्व० वैद्यराज श्रीकन्हैयालालजी भेड़ा)

महादेवीसे विश्वकी उत्पत्ति

ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत् । सैव जगदण्डमसृजत् । कामकलेति विज्ञायते । शृङ्गारकलेति विज्ञायते । तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् । विष्णुरजीजनत् । रुद्रोऽजीजनत् । सर्वे मरुद्गणा अजीजनन् । गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन् । भोग्यमजीजनत् । सर्वमजीजनत् । सर्वं शाक्तमजीजनत् । अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणि-स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् । सैषापरा शक्तिः । सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा । रहस्यमों वाचि प्रतिष्ठा । सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरसङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः । (बह्वृचोपनिषद्)

ॐ एकमात्र देवी ही सृष्टिसे पूर्व थीं, उन्होंने ही ब्रह्माण्डकी सृष्टि की, वे कामकलाके नामसे विख्यात हैं। वे ही शृङ्गारकी कला कहलाती हैं । उन्हींसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, विष्णु प्रकट हुए, रुद्र प्रादुर्भूत हुए, समस्त मरुद्गण उत्पन्न हुए, गानेवाले गन्धर्व, नाचनेवाली अप्सराएँ और वाद्य बजानेवाले किन्नर सब ओर उत्पन्न हुए, भोगसामग्री उत्पन्न हुई, सब कुछ उत्पन्न हुआ, समस्त शक्तिसम्बन्धी पदार्थ उत्पन्न हुए, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी-मनुष्य उत्पन्न हुए । वे ही अपरा शक्ति हैं । वे ही शाम्भवी विद्या, कादि विद्या अथवा हादि विद्या या सादि विद्या अथवा रहस्यरूपा हैं । वे ॐ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूपसे वाणीमात्रमें प्रतिष्ठित हैं । वे ही (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन) तीनों पुरों तथा (स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन) तीनों प्रकारके शरीरोंको व्याप्तकर बाहर और भीतर प्रकाश फैलाती हुई देश, काल और वस्तुके भीतर असङ्ग रहकर महात्रिपुरसुन्दरी प्रत्यक् चेतना हैं ।

अरुणोपनिषद्

अरुणोपनिषद्को पृश्नि नामक ऋषियोंने परस्पर मन्त्रणा करके प्रकट किया है, जो सर्वथा निगमानुमोदित है। 'रुद्रयामल'में भी प्रमाणरूपमें उल्लिखित होनेसे यह आगमानुगृहीत भी है। इसमें भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरीकी साधनाके अनेक गूढ रहस्योंपर प्रकाश डालते हुए उनसे विविध अभीष्टोंके पूर्त्यर्थ प्रार्थना की गयी है—

इमा नुकं भुवना सीषधेम।
इन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां च।
आदित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु॥

ऋषि कहते हैं कि हम इस श्रीचक्र-विद्याकी उपासना करके समस्त लोकोंके रहस्यका ज्ञान प्राप्त करें। देवराज इन्द्र और विश्वेदेव भी भगवतीकी उपासनासे ही महत्त्वपूर्ण पदोंपर प्रतिष्ठित हो सके हैं। आदित्य और मरुद्गणोंके साथ चक्र-विद्याकी उपासनासे परम ऐश्वर्यको प्राप्त इन्द्रदेव हमारे यज्ञ, शरीर, संतान-की रक्षा करें तथा हमें श्रीचक्रोपासनाका उपदेश करें॥ १—२॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिः।
अस्माकं भूत्ववविता तनूनाम्॥
आप्लावस्व प्रप्लवस्व। आण्डीभव ज मा मुहुः।
सुखादीन्दुःखनिधनाम्। प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्॥

ऋषिगण भगवतीका स्तवन करते हुए कहते हैं कि माँ श्रीविद्या! आप 'सहस्रार' (सहस्रदल कमल)-से निरन्तर स्यन्दित हो रही अमृतकी धाराओंसे मस्तकसे लेकर चरणपर्यन्त हमें आप्लावित कर दें, हमारे शरीरमें स्थित बहत्तर हजार नाडियोंको भी उस अमृतसे अभिषिञ्चित करें, हमारे शरीरको बाह्य दृश्यमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके साथ संयुक्त करें तथा हमपर बार-बार अनुग्रह करें। आप समस्त सुखोंको देनेवाली और सभी प्रकारके दुःखोंको नष्ट करनेवाली हैं। आप अपनी ऐश्वर्ययुक्त देहमें अधिष्ठित हों॥ ३—४॥

मरीचयः स्वायम्भुवाः। ये शरीराण्यकल्पयन्।
ते ते देहं कल्पयन्तु। मा च ते ख्या स्म तीरिषत्॥

आपके चरणारविन्दोंकी किरणोंसे सभी भुवन विद्योतित हैं। वे ही किरणें तीन सौ साठ दिनोंके संवत्सरात्मक कालके रूपमें परिणत होती हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि भी उन्हीं चरण-किरणोंसे प्रकाशित हो रहे हैं। वे किरणें आपके चरणोंसे उत्पन्न हुई हैं। अतः हमारा भवद्विषयक ज्ञान सदा सिद्ध होता रहे॥ ५॥

उत्तिष्ठत मा स्वप्त। अग्निमिच्छध्वं भारताः।
राज्ञः सोमस्य तृप्तासः। सूर्येण सयुजोषसः॥
युवा सुवासाः।

[अब पृश्निगण चक्रविद्याके अनुष्ठानमें शीघ्रातिशीघ्र प्रवृत्त होनेके लिये परस्पर कह रहे हैं—हे भारत! [ज्योतिरूप श्रीविद्यामें अनुरागी जनो!] उठो, उपासनाका उपक्रम करो, प्रमाद न करो और अग्नि, सूर्य तथा सोमसे सम्पर्क स्थापित करो। उषःकालमें ही ध्यानमग्न होनेपर इस विद्याकी सिद्धि होगी। [साधको!] शुभ्र वस्त्र, आभरण, माल्यादिसे अलंकृत और स्वस्थ-चित्त होकर श्रीचक्रका पूजन करो॥ ६-७॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा। देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः। स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽऽवृतः॥

इस अष्ट चक्र और नौ द्वारोंवाले श्रीयन्त्रमें अग्नि, सोम और सूर्यका निवास है। यह देवताओंकी पुरी अयोध्या मन्दभाग्योंके लिये सर्वथा अगम्य है। इस श्रीचक्रमें हिरण्मय कोश है, जिसकी ज्योतिसे स्वर्गलोक भी ज्योतिष्मान् होता है॥ ८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरीम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः॥

जो व्यक्ति ब्रह्मस्वरूपा भगवतीकी अमृतसे आवृत उस पुरीको जानता है और ज्ञानपूर्वक विधिवत् इसका

अर्चन करता है, उसे भगवान् महाकामेश्वर और भगवती महाकामेश्वरी आयु, कीर्ति और संतान आदि प्रदान करती हैं ॥ ९ ॥

विभ्राजमानां हरिणीं ब्रह्मा यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्मयीं विवेशापराजिता ॥

अनन्तकोटि किरणोंसे दीप्तिमती, स्वर्णसमान वर्णवाली भगवतीका जिस-जिसने अर्चन किया, वे सभी यशस्वी और कीर्तिमान् हुए । अपराजिता कुण्डलिनी शक्ति पुनः-पुनः मूलाधार चक्रसे षट्चक्रोंका भेदन करती हुई सहस्रदल-कमलमें प्रवेश करती है, आनन्दमयी एवं नाश-रहिता शक्ति शिव-शक्तिके मध्यमें अधोमुखी होकर वर्तमान रहती है ॥ १० ॥

पराङेत्यज्यामयी । पराङेत्यनाशकी ।
इह चामुत्र चान्वेति । विद्वान् देवासुरानुभयान् ॥

जो विद्वान् दस इन्द्रियगण, पञ्च प्राण, पञ्च तन्मात्राएँ और महदादि चार (मन, बुद्धि, अहं और चित्त) —इन चौबीस तत्त्वोंसे विलक्षण (शिवसे पृथिवीपर्यन्त) छत्तीस तत्त्वमयी शक्तिके श्रीयन्त्रस्थ अधोमुख पञ्चकोण और शिवके ऊर्ध्वमुख चार कोणोंवाले श्रीचक्रमें विराजमान नित्यानन्दमयी भगवतीको जानता है, उसे इहलोकमें सर्वविध कल्याण प्राप्त होता है और अन्तमें वह पञ्च-विधा मुक्तिका भी अधिकारी हो जाता है ॥ ११ ॥

यत् कुमारी मन्द्रयते यद्योषिद्यत् पतिव्रता ।
अरिष्टं यत् किं च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति ॥

[कुण्डलिनी-शक्तिके स्वरूपका वर्णन करती हुई ऋचा कहती है—] मूलाधार चक्रमें यह कुण्डलिनी सुप्तावस्थासे जाग्रत् होती है तो वह उसकी कौमारावस्था मानी जाती है । वह जब जाग्रत् होती है, तब मन्द स्वर करती है । जैसे सर्प जागते ही फूत्कार करता है, वैसे ही सर्पाकृति वह जाग्रत् कुण्डलिनी नाभिमें स्थित विष्णुग्रन्थि (मणिपूरक चक्र)का भेदन करती हुई सहस्रदल कमलमें पहुँचकर वहाँ स्थित शिवके साथ संगम करती है [और पुनः अपने स्थान मूलाधारमें आ बैठती है] । इस प्रकार कुण्डलिनीके अभ्यासवश वायुसे अग्निको प्रज्वलित करके अग्निशिखासे अनुविद्ध चन्द्रमण्डलसे गिरती हुई अमृतधाराका अनुभव होनेपर साधक पञ्चविंशति तत्त्वातीत परमेश्वरीका सुगमतासे साक्षात्कार कर लेता है ॥ १२ ॥

अश्रुतासः श्रुतासश्च यज्वानो येऽप्ययज्वनः ।
स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते ।

इस श्रीचक्रविद्याके सभी अधिकारी हैं । चारों वर्ण, चारों आश्रम, ज्ञानी-अज्ञानी, शुद्धचित्त और अशुद्ध चित्त, यजनशील और अयजनशील (शूद्रादि) भी इस साधनाके अधिकारी हैं । इस श्रीविद्याकी उपासना करनेवाला स्वर्गकी अपेक्षा ही नहीं रखता; क्योंकि इस उपासनासे इसी शरीरमें उसे [स्वर्गसे भी बढ़कर] ब्रह्मानन्द-रसका आस्वाद होने लगता है ॥ १३ ॥

इन्द्रमग्निं च ये विदुः सिकता इव संयन्ति ।
रश्मिभिः ससुदीरिताः अस्माल्लोकादमुष्माच्च ॥
ऋषिभिरदात् पृश्निभिः ॥

जो श्रीविद्याको छोड़कर सकाम भावसे इन्द्रादि देवोंकी अर्चना करते हैं, वे प्रतप्त बालुकाकणकी तरह संतप्त होकर यमपाशोंमें बँध जाते हैं तथा इह लोक और पर-लोक—दोनोंसे च्युत हो जाते हैं । इस प्रकार मन्त्रद्रष्टा पृश्निनामक ऋषियोंके संघने अरुणोपनिषद्का व्याख्यान किया है ॥ १३-१४ ॥

भावनोपनिषद्

भगवती श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाके तीन प्रकार बताये गये हैं—१. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. पर, जो क्रमशः कायिक, वाचिक और मानसिक होते हैं। इन्हींको बहिर्याग, अन्तर्याग और महायाग नामोंसे व्यवहृत किया जाता है। इनमें स्थूलरूप है श्रीयन्त्रका पूजोपचारोंसे विधिवत् अर्चन करना, सूक्ष्मरूप है श्रीविद्या-महामन्त्रका अर्थानुसन्धानपूर्वक षट्‌चक्रोंका ध्यान करते हुए जप करना और उपासनाका अन्तिम या 'पर' रूप है अन्तःकरण (मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि) एवं शरीरके समस्त अवयवोंको श्रीचक्ररूपमें भावित करना।

प्रस्तुत भावनोपनिषद् श्रीविद्योपासनाके इसी तृतीय प्रकार परा-उपासनारूप महायागका प्रतिपादन करती है, जो अथर्ववेदका एक भाग होकर **'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः'** से प्रारम्भ होकर **'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स एव शिवयोगीति निगद्यते'** के साथ ३५ सूत्रोंमें और अन्तिम दो उपसंहार-सूत्रोंसहित ३७ सूत्रोंमें परिसमाप्त होती है।

श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः॥ १॥
तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ॥ २॥

इस उपासनामें समस्त क्रियाओंकी कारणभूता शक्ति श्रीगुरुको माना गया है और उनके साथ नवरन्ध्ररूप देह अभिन्न है। यहाँ 'तेन' शब्दमें अभेदार्थमें तृतीया विभक्ति हुई है।

श्रीगुरुः—तन्त्रशास्त्रमें गुरुके तीन विभाग हैं—१. दिव्य, २. सिद्ध और ३. मानव। तन्त्रोंमें ये ही प्रकाशानन्दनाथ आदि नौ नामोंसे प्रसिद्ध हैं। श्रीयन्त्रमें सर्वप्रथम इन्हींका पूजन करके श्रीचक्रस्थ विभिन्न शक्तियोंका अर्चन किया जाता है। ये ही नवनाथ दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ-रूपमें पूजित होते हैं। श्रीविद्यार्णवमें इनका विस्तार द्रष्टव्य है। ये ही श्रीगुरु इष्टदेवताके अनुग्रहसे उत्पन्न विवेकद्वारा शिष्यके समस्त संशयोंका छेदन, मन्त्रवीर्यको प्रकाशित और तात्त्विक ज्ञान-प्रदानद्वारा शिष्यको अपने समान विवेकी (सदसद्‌बोधसम्पन्न) तथा बुद्धि-शक्तिसे समन्वित कर देते हैं।

नवरन्ध्ररूपः—मानव-शरीरमें नेत्र-कर्णादि नौ रन्ध्र या छिद्र प्रसिद्ध हैं, इनमें नौ गुरुओंकी भावना करनी चाहिये। इनमें एक मुख और दो श्रोत्र—ये तीन दिव्यौघ गुरु हैं; दो चक्षु और एक उपस्थ—ये तीन सिद्धौघ गुरु हैं और दो नासिकाएँ और एक पायु—ये तीन मानवौघ गुरु हैं। इस तरह मानव-शरीरमें नौ रन्ध्र नौ गुरुओंके रूपमें स्थित हैं।

विषयके स्पष्टीकरणके लिये ज्ञातव्य है कि मानव-शरीरमें बहत्तर हजार नाडियाँ हैं और उनमें ज्ञान एवं समस्त शक्तियाँ भरी हुई हैं। इन बहत्तर हजार नाडियोंमें १४ नाडियाँ ऐसी हैं, जो उपर्युक्त चक्षु आदि नौ रन्ध्रोंसे सम्बद्ध हैं, जो इनका नियमन करती हैं। इन १४ नाडियोंके नाम हैं—१. सुषुम्ना, २. अलम्बुसा ३. कुहू, ४. विश्वोदरा, ५. वारणा, ६. हस्तिजिह्वा, ७. यशोवती, ८. इडा, ९. पिङ्गला, १०. गान्धारी, ११. पूषा, १२. शङ्खिनी, १३. पयस्विनी और १४. सरस्वती। ये नाडियाँ मूलाधार चक्रसे निकलकर पृष्ठवंश (मेरुदण्ड)से होती हुई शिरःस्थित ब्रह्मरन्ध्रतक जाती हैं और चक्षु आदि नौ रन्ध्रोंसे सम्बद्ध हैं। इनमें सुषुम्ना नाडी प्रधान है और वह मूलाधारमें स्थित त्रिकोणमें पराशक्ति कुण्डलिनीसे सम्बद्ध है, जब कि नौ अन्य नाडियाँ नौ छिद्रोंसे सम्बद्ध हैं। विश्वोदरा और वारणा—ये दो नाडियाँ दक्षिण और वाम पार्श्व (पसली)में अवस्थित

हैं जब कि हस्तिजिह्वा और यशोवती पादाङ्गुष्ठपर्यन्त विस्तृत हैं। इस प्रसङ्गके अवबोधार्थ नाडियोंका इतना ही संक्षिप्त विवेचन पर्याप्त है।

इन सभी नाडियोंमें समस्त शक्तियाँ भरी होनेपर भी प्रायः वे सुप्तावस्थामें ही रहती हैं। तन्त्रोक्त तत्तत् मन्त्रोंद्वारा तत्तत् नाडियोंका जागरण करनेपर उनमें निहित शक्तियाँ प्रादुर्भूत हो उठती हैं। पूर्वोक्त नवरन्ध्रकी नौ नाडियोंका जब गुरुपादुका-मन्त्रद्वारा पराशक्ति कुण्डलिनी-से सम्बन्ध हो जाता है, तब उनमें विलक्षण शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। इस प्रकार गुरु-प्रदत्त मन्त्रशक्तिके प्रभावसे साधक अपने शरीरमें सरलताके साथ शक्तियोंका प्राकट्य कर लेता है। अतएव साधना-पथमें श्रीगुरु ही सर्वकारणभूता शक्ति हैं।

मन्त्ररहस्यके ज्ञाता, समस्त शक्तिके प्रदाता इन श्रीगुरु-देव एवं अपने इष्टदेवमें अभेद-भावना होनी चाहिये। इष्टदेवताके समान गुरुदेवमें भी श्रद्धा होनेपर गुरुकृपाद्वारा रहस्योंका ज्ञान होता है। और शिष्यमें स्थित चैतन्य समन्वित होकर सामरस्यभावापन्न हो जाता है। फलतः श्रीगुरुमें स्थित ज्ञानराशिका शिष्यमें संक्रमण होता है। उसकी नाडियोंके स्रोत खुल जाते हैं तथा उनसे अजस्र शक्तिधारा प्रवाहित होने लगती है, तब शिष्य गुरुवत् भासने लगता है। यह सब एकमात्र गुरुके प्रति श्रद्धा और उनकी शुश्रूषासे ही लभ्य है। श्रीगुरु प्रसन्न होकर स्वकीय मन्त्रबलसे शिष्यका मलापनोदन एवं षडध्वशोधन कर उसमें शक्तिपात कर देते हैं। तदनन्तर मन्त्रसंचारसे पूर्वोक्त सभी क्रियाएँ सम्पन्न हो जाती हैं।

नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्॥ ३॥

त्रैलोक्यमोहनादि नौ आवरणोंवाले श्रीयन्त्रकी नवरन्ध्रात्मक अपनी देहमें भावना करे।

वाराही पितृरूपा। कुरुकुल्ला बलिदेवता माता॥४॥
पुरुषार्थाः सागराः॥ ५॥

देहमें स्थित ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि आदि तथा माता-पिताके अस्थि-मांसादि जो अंश हैं, उनमें श्रीचक्रस्थ पितृरूप वाराही और मातृरूप कुरुकुल्लाकी भावना करे।

इसी प्रकार धर्मादि चार पुरुषार्थोंमें इक्षु (ईख) आसव, घृत और क्षीर-सागरोंकी भावना करे।

देहो नवरत्नद्वीपः॥ ६॥

त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः॥ ७॥

सङ्कल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम्॥ ८॥

देहस्थित रस-रक्तादि सप्त धातुओं तथा त्वचा और रोममें श्रीयन्त्रस्थ नवरत्नद्वीपोंकी भावना करे। उस द्वीपमें जो कल्पवृक्ष हैं, वे अपने मनःसंकल्प ही हैं, ऐसा भावित करे। मनकी कल्पवृक्षोंके उद्यानरूपमें भावना करे।

रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषाय-लवणरसाः षड् ऋतवः॥ ९॥

जिह्वासे आस्वाद्य मधुरादि षड्रसोंमें (उद्यानपर छाये हुए) वसन्तादि षड्ऋतुओंकी भावना करे।

ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविर्ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञान-ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्॥ १०॥

रूप-रसादि बाह्य विषयोंका ज्ञान ही अर्घ्य (पूजा-सामग्री) है, ज्ञानके बाह्य विषय ही हवि (हवनद्रव्य) हैं और ज्ञाता (पूजक जीवात्मा) ही होता (हवनकर्ता) है—ऐसी भावना करे। इन ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयमें अभेद-भावना करना ही श्रीचक्रका पूजन है।

नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः॥ ११॥

कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्म्याद्यष्ट शक्तयः॥ १२॥

देहमें स्थित शृङ्गार, वीर आदि नौ रस और नियति (प्रारब्ध) ही श्रीचक्रगत त्रैलोक्यमोहन चक्रस्थित (तीन रेखाओंमें) पूजनीय अणिमादि (अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति और सर्वकाम) दस सिद्धियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

काम, क्रोधादि षड्रिपु और पुण्य एवं पाप—ये ही उसी त्रैलोक्य-मोहन चक्रमें पूजनीय ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे ।

आधारनवकं मुद्राशक्तयः ॥ १३ ॥

शरीरस्थ अधर सहस्रार आदि नवचक्र ही श्रीचक्रमें पूजनीय नव मुद्राएँ हैं, ऐसी भावना करे ।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थानि मनोविकारः कामाकर्षिण्यादि षोडश शक्तयः ॥ १४ ॥

शरीरमें स्थित पृथिव्यादि पञ्चभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और विकृत (अशुद्ध) मन—ये सोलह श्रीचक्रके सर्वाशापरिपूरक चक्रमें पूजनीया कामाकर्षिणी आदि सोलह शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे ।

वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षाख्य-बुद्धयोऽनङ्गकुसुमाद्यष्टौ ॥ १५ ॥

शरीरस्थ कर्मेन्द्रियोंके वचन (बोलना) आदि पाँच विषय और हान (त्यागना), उपादान (ग्रहण करना) तथा उपेक्षा (औदासिन्य)—ये तीन बुद्धियाँ मिलकर आठ वस्तुएँ ही श्रीचक्रस्थ सर्वसंक्षोभण चक्रमें पूजनीया अनङ्ग-कुसुमादि आठ शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे ।

अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरा वारणा हस्तिजिह्वा यशोवती पयस्विनी गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वतीडा पिङ्गला सुषुम्ना चेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षो-भिण्यादिचतुर्दश शक्तयः ॥ १६ ॥

शरीरमें स्थित पूर्वोक्त अलम्बुसा आदि चौदह नाडियाँ ही श्रीचक्रके सर्वसौभाग्यदायक चक्रमें पूजनीया सर्वसंक्षोभिण्यादि चौदह शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकर-देवदत्तधनञ्जया दश वायवः सर्वसिद्धिप्रदादि-बहिर्दशारदेवताः ॥ १७ ॥

शरीरस्थ प्राणादि पञ्च और नागादि पञ्च—कुल दस वायु ही श्रीचक्रके सर्वार्थसाधक चक्रके बहिर्दशारमें पूजनीय देवता हैं, ऐसी भावना करे ।

एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रेचकः पाचकः शोषको दाहकः प्लावक इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति ॥ १८ ॥

क्षारक उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगा भक्ष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकपञ्चविधमन्नं पाचयन्ति ॥ १९ ॥

एता दश वह्निकलाः सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः ॥ २० ॥

शरीरस्थित प्राणप्राधान्येन पाँच और नागप्राधान्येन पाँच—कुल दस प्रकारकी जठराग्नि ही (जिन्हें आयुर्वेदमें 'पित्त' कहा जाता है), जो भक्ष्यादि पञ्चविध अन्नको पचाते हैं, श्रीचक्रस्थित सर्वरक्षाकर चक्रके अन्तर्दशारमें पूजनीया सर्वज्ञादि दस शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे ।

शीतोष्णसुखदुःखेच्छाः सत्त्वं रजस्तमो वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ ॥ २१ ॥

शरीरस्थ शीत, उष्ण, सुख, दुःख, इच्छा तथा सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कुल आठ पदार्थ श्रीचक्रस्थित सर्वरोगहर (अष्टार) चक्रमें पूजनीया वशिनी आदि आठ शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे ।

शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः ॥ २२ ॥
मन इक्षुधनुः ॥ २३ ॥
रागः पाशः ॥ २४ ॥
द्वेषोऽङ्कुशः ॥ २५ ॥

शरीरस्थ शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ (सूक्ष्मभूत) श्रीचक्रके सर्वसिद्धिप्रद चक्रके त्रिकोणमें पूजनीया भगवतीके पञ्च पुष्पबाण हैं । अविकृत मन ही भगवतीके हाथमें स्थित इक्षु (ईखकी धनुष) है । राग (सांसारिक प्रेम) ही भगवतीके हाथका पाश है । शरीरस्थ द्वेष ही भगवतीके हस्तमें स्थित अंकुश है, ऐसी भावना करे ।

अव्यक्तमहदहंकाराः कामेश्वरीवज्रेश्वरी-भगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणगा देवताः ॥ २६ ॥

अव्यक्त (प्रकृति), महत्तत्व और अहङ्कार ही सर्वसिद्धिप्रद चक्रके त्रिकोणके भीतर पूजनीया कामेश्वरी,

वज्रेश्वरी और भगमालिनी नामक देवता हैं, ऐसी भावना करे।

निरुपाधिकसंविदेव कामेश्वरः ॥ २७ ॥

निरुपाधिक संवित् (शुद्ध चैतन्य) ही सर्वानन्दमय चक्रमें पूजनीय बिन्दुरूप कामेश्वर हैं, ऐसी भावना करे।

सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता ॥ २८ ॥

किञ्चित् उपाधिविशिष्ट होनेसे स्वात्मस्वरूप ही कामेश्वरके अङ्कमें विराजमान सदानन्दपूर्ण ललिता त्रिपुरसुन्दरी है और यही उपास्या है, ऐसी भावना करे।

लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः ॥ २९ ॥

कामेश्वर, ललिता और स्वयं (साधक)—इन तीनोंका विमर्श ही देवी ललितागत लौहित्य (रक्तवर्णता) है। भाव यह कि रक्त-शुक्ल-प्रभासे मिश्र अतर्क्य कामेश्वर-कामेश्वरीके श्वेत-रक्तचरण उपास्य हैं।

अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः ॥ ३० ॥

नौ आवरणोंके प्रत्येक आवरणमें एक-एक सिद्धि और एक-एक मुद्राका विशेष अर्चन होता है। वे मुद्राएँ और सिद्धियाँ मुझसे अभिन्न हैं, इस प्रकारकी अनन्य-चित्तता ही सिद्धि है।

भावनायाः क्रिया उपचारः ॥ ३१ ॥

बार-बार अपनी आत्माके साथ अभेदरूपसे ललिताम्बाकी भावना ही पूजाका उपचार (पाद्य, अर्घ्यादि सामग्री) है।

अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विभावनं होमः ॥ ३२ ॥

मैं, तुम, अस्ति, नास्ति, कर्तव्य, अकर्तव्य, उपास्य—इन संकल्प-विकल्पोंका आत्मामें विभावन करना ही होम है।

भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणम् ॥ ३३ ॥

भावनाके विषयोंमें अभेद-भावना ही तर्पण है। भाव यह कि गुरु आदिसे होमपर्यन्त जितने पदार्थ भावित किये गये हैं या किये जायँगे, उन सबमें अभेद-भावना करके केवल स्वात्ममात्र अवशेषकी स्थिति ही तर्पण है।

पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनस्थितिः पञ्चदश नित्याः ॥ ३४ ॥

श्रीचक्रके अन्तस्त्रिकोणमें कामेश्वर्यादि पञ्चदश नित्याएँ पूजित हैं। प्रतिपद् आदि पञ्चदश तिथियोंमें उन्हींकी भावना कर कालके परिणामका अवलोकन करना उन पञ्चदश नित्याओंका पूजन है।

एवं मुहूर्तत्रितयं मुहूर्तद्वितयं मुहूर्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते ॥ ३५ ॥

इस प्रकार तीन मुहूर्त, दो मुहूर्त या एक मुहूर्त भी स्वात्मविषयिणी श्वासस्तम्भसहित निर्विकल्पवृत्ति रखनेवाला तथा इतर भावनाओंसे रहित धारावाहिक रूपमें उसी भावनामें आसक्त रहनेवाला जीव शीघ्र ही जीवन्मुक्तिरूप फलका अधिकारी हो जाता है। वही शिवयोगी कहलाता है।

कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः ॥३६॥
य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते ॥ ३७ ॥

यहाँ कादिमतसे अन्तश्चक्रभावनाका प्रतिपादन किया गया है। तीनों वेद तो बहिरङ्ग कर्मोंका प्रतिपादन करते हैं, किंतु अथर्ववेद अन्तरङ्ग कर्मोंका प्रचुर मात्रामें प्रतिपादन करता है। इसकी अर्थानुसन्धानपूर्वक जो भावना करता है, वह अथर्वशिरका (वास्तविक) अध्येता होता है।*

श्रीभास्करराय अन्तमें इसकी फलश्रुतिमें लिखते हैं—'तस्य चिन्तितकार्याणि अयत्नेन सिद्ध्यन्ति' अर्थात् इस प्रकार भावना करनेवाले साधकके सभी चिन्तित कार्य बिना बाह्य प्रयत्नके सिद्ध हो जाते हैं। वह शिवयोगी हो जाता है।

---

* शक्ति-उपासनामें मूर्धन्यस्थानीय इस भावनोपनिषद्का यहाँ शब्दार्थमात्र दिया गया है। इसके विशेष रहस्यात्मक ज्ञानके लिये श्रीभास्करराय भारतीद्वारा लिखित इसका भाष्य, सेतुबन्ध, 'महायागक्रम' एवं 'वरिवस्यारहस्य' द्रष्टव्य हैं। इनमें उन्होंने इसकी प्रयोगविधि बतलायी है। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजीके 'श्रीविद्यारत्नाकर'में भी यह प्रयोगविधि संगृहीत है।

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष

'अथर्वशीर्ष' का अर्थ है अथर्व-वेदका शिरोभाग। वेदके संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक—ये तीन भाग होते हैं। उपनिषदें प्रायः तीसरे शिरोभागमें ही आती हैं। अथर्वशीर्ष उपनिषद् ही है और अथर्व-वेदके अन्तमें आती है। यह सर्वविद्याशिरोभूत ब्रह्म-विद्याकी प्रतिपादिका होनेके कारण यथार्थमें अथर्वशीर्ष कहलाती है। वैसे अथर्वशीर्ष उपनिषदें पाँच हैं।* इनमें सबसे श्रेष्ठ 'देव्यथर्वशीर्ष' ही है। कारण, इस एकके पाठसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके पठनका फल प्राप्त होता है—यह श्रुतिने ही बताया है। सर्वपापापनाश, महासंकट-मोक्ष, वाक्सिद्धि, देवतासांनिध्य आदि इसके अन्य फल भी बड़े महत्त्वके हैं। इसमें मृत्युतक टालनेकी सामर्थ्य है, यह बात फलश्रुतिसे ज्ञात हो जायगी।

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः—कासि त्वं महादेवीति ॥ १ ॥

ॐ सभी देव देवीके समीप उपस्थित हुए और नम्रतापूर्वक पूछे—'महादेवि! तुम कौन हो?'

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ॥ २ ॥

उन देवीने कहा—'मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है।

अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्च-भूतानि। अहमखिलं जगत् ॥ ३ ॥

'मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य जगत् मैं ही हूँ।

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥४॥

'वेद और अवेद भी मैं हूँ। विद्या और अविद्या भी मैं, अजा और अनजा भी मैं और नीचे-ऊपर, अगल-बगल भी मैं ही हूँ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥ ५ ॥

'मैं रुद्रों और वसुओंके साथ उनकी रक्षा एवं शक्तिवर्धनार्थ संचार करती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वदेवोंके सम्पोषणार्थ उनके साथ भी घूमा करती हूँ। मैं मित्र और वरुणका, इन्द्र और अग्निका तथा दोनों अश्विनीकुमारोंका भी पोषण करती हूँ।

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥ ६ ॥

'मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगका धारण-पोषण करती हूँ। त्रैलोक्यको आक्रान्त करनेके लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापतिका भी मैं ही धारण-पोषण करती हूँ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनि-रप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पद-माप्नोति ॥ ७ ॥

'मैं देवोंको उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमानके लिये हविर्द्रव्योंसे युक्त धनका धारण-पोषण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी, उपासकोंको धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्होंमें

* १—गणपति-अथर्व०, २—विष्णु-अथर्वशीर्ष, ३—शिव-अथर्वशीर्ष, ४—सूर्याथर्वशीर्ष एवं ५—देव्यथर्वशीर्ष।

(यजन करने योग्य देवोंमें) मुख्य हूँ । मैं आत्मस्वरूप आकाशादिका निर्माण करती हूँ । मेरा स्थान आत्मस्वरूप-को धारण करनेवाली बुद्धिवृत्तिमें है । जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्तिका लाभ करता है ।'

ते देवा अब्रुवन्—
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥८॥

तब उन देवोंने कहा—'देवीको नमस्कार है । बड़े-बड़ोंको अपने-अपने कर्तव्यमें प्रवृत्त करानेवाली कल्याणकर्त्रीको सदा नमस्कार है । गुणसाम्यावस्था-रूपिणी मङ्गलमयी देवीको नमस्कार है । नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं ।

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥ ९ ॥

'उन अग्निके-से वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली दीप्तिमती, कर्मफल-प्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गा-देवीकी हम शरणमें हैं । असुरोंका नाश करनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।'

देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥१०॥

'प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं । वह कामधेनु-तुल्य आनन्दप्रदा और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्-रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप आये ।'

कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ११ ॥

'कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत विष्णु-शक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति और दक्ष-कन्या (सती), पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं ।'

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १२ ॥

'हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्ति-रूपिणीका ही ध्यान करते हैं । वे देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यानमें) प्रवृत्त करें ।'

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥ १३ ॥

'हे दक्ष ! आपकी जो कन्या अदिति है, वह प्रसूता हुई और उसके द्वारा कल्याणमय और मृत्युरहित देव उत्पन्न हुए ।'

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥ १४ ॥

'काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्र-पाणि=इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं) । ह, स—वर्ण, मातरिश्वा=वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं) । स, क, ल—वर्ण और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है ।'

[शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत, शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका, महात्रिपुरसुन्दरी —यही इस मन्त्रका भावार्थ है । यह मन्त्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्रमें 'पञ्चदशी कादि

'श्रीविद्या'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकारके अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थमें बताये गये हैं। इसी प्रकार 'वरिवस्या-रहस्य' आदि ग्रन्थोंमें इसके और भी अनेक अर्थ किये गये हैं। श्रुतिमें भी ये मन्त्र इस प्रकारसे अर्थात् क्वचित् स्वरूपोच्चारसे, क्वचित् लक्षणा और लक्षित-लक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्-पृथक् अवयव दरसाकर जान-बूझकर विशृङ्खल रूपसे कहे गये हैं। इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।]

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति॥ १५॥

'ये ही परमात्माकी शक्ति हैं। ये ही विश्वमोहिनी हैं। ये पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। ये 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोकको पार कर जाता है।'

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः॥१६॥

'भगवती! तुम्हें नमस्कार है। माता! सब प्रकारसे हमलोगोंकी रक्षा करो।'

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्।

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥१७॥

(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वे ही ये अष्ट वसु हैं। वे ही ये एकादश रुद्र हैं। वे ही ये द्वादश आदित्य हैं। वे ही ये सोमपान करनेवाले और न करनेवाले विश्वेदेव हैं। वे ही ये यातुधान (एक प्रकारके राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं। वे ही ये सत्त्व-रज-तम हैं। वे ही ये ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं। वे ही ये प्रजापति, इन्द्र, मनु हैं। वे ही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं। वे ही कला-काष्ठादि कालरूपिणी हैं। पाप-नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्तरहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याणदात्री और मङ्गलरूपिणी उन देवीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥ १८॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥ १९॥

वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई'कारसे युक्त वीतिहोत्र—अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवीका बीज है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं)का ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण और ज्ञानके सागर हैं। (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकारके समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थसे भरा हुआ है। संक्षेपमें इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द, समरसीभूत शिव-शक्तिस्फुरण है।)

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात् तृतीयकः॥
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः॥ २०॥

वाक्—वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू—काम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यञ्जन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकारसे युक्त (चा), सूर्य (म), अवाम श्रोत्र—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वारसे युक्त (मुं), टकारसे तीसरा

वर्ण अर्थात् ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से मिश्र (डा), वायु ('य'), अर्थात् वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकोंको आनन्द और ब्रह्मसायुज्य देनेवाला है।

[इस मन्त्रका अर्थ —हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वती! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी। हे आनन्दरूपिणी महाकाली! ब्रह्मविद्या पानेके लिये हम तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीस्वरूपिणी चण्डिके! तुम्हें नमस्कार है। अविद्यारूप रज्जुकी दृढ़ ग्रन्थिको खोलकर हमें मुक्त करो।]

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥२१॥

हृत्कमलके मध्य रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अङ्कुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपधारिणी, वर और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुके समान भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ।

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २२ ॥

महाभयका नाश करनेवाली, महासंकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते— अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥ २३ ॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मादि देव नहीं जानते, इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता, इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य दीख नहीं पड़ता, इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म उपलब्ध नहीं होता, इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है, इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही विश्वरूपमें सजी हुई है, इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहलाती है।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता[1] शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२४॥

सब मन्त्रोंमें 'मातृका' अर्थात् मूलाक्षररूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें ज्ञान (अर्थ)-रूपसे रहनेवाली, ज्ञानोंमें 'चिन्मयातीता', शून्योंमें 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हैं।

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ २५॥

उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशक और संसारसागरसे तारनेवाली दुर्गादेवीको संसारसे डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ।

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—
शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥ २६॥

इस अथर्वशीर्षका जो अध्ययन करता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके जपका फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्षको न जानकर जो प्रतिमा-स्थापन करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता। अष्टोत्तरशत (१०८ नाम-) जप (आदि) इसकी

1. 'चिन्मयानन्दा' भी एक पाठ है और वह ठीक ही मालूम होता है।

पुरश्चरणविधि है। जो इसका दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महादेवीके प्रसादसे बड़े दुस्तर संकटोंको पार कर जाता है।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसंध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति [1]। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति। य एवं वेद। इत्युपनिषत्।

इसका सायंकालमें अध्ययन करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें अध्ययन करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है, दोनों समय अध्ययन करनेवाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रिमें तुरीय संध्याके समय जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। नवीन प्रतिमाके समक्ष जप करनेसे देवता-सांनिध्य प्राप्त होता है। प्राणप्रतिष्ठाके समय जप करनेसे प्राणोंकी प्रतिष्ठा होती है। भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योगमें महादेवीकी संनिधिमें जप करनेसे महामृत्युसे तर जाता है। जो इस प्रकार जानता है, वह महा-मृत्युसे तर जाता है। इस प्रकार यह अविद्यानाशिनी ब्रह्मविद्या है।

भगवतीका प्रातःस्मरण

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम्।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्॥

जिनकी अङ्गकान्ति शारदीय चन्द्रमाकी किरणके समान उज्ज्वल है, जो उत्तम रत्नद्वारा निर्मित मकराकृति कुण्डल और हारसे विभूषित हैं, जिनके गहरे नीले हजारों हाथ दिव्यायुधोंसे सम्पन्न हैं तथा जिनके चरण लाल कमलकी कान्ति-सदृश अरुण हैं, ऐसी आप परमेश्वरीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम्॥

जो महिषासुर, चण्ड, मुण्ड, शुम्भासुर आदि दैत्योंका विनाश करनेमें निपुण हैं, लीलापूर्वक ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र और मुनियोंको मोहित करनेवाली हैं, समस्त देवताओंकी मूर्तिस्वरूपा हैं तथा अनेक रूपोंवाली हैं, उन चण्डीको मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ।

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम्।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः॥

जो भजन करनेवाले भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाली, समस्त जगत्का धारण-पोषण करनेवाली, पापोंको नष्ट करनेवाली, संसार-बन्धनके विमोचनकी हेतुभूता तथा परमात्मा विष्णुकी परा माया हैं, उनका ध्यान करके मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ।

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

मनुष्यको अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती तथा मन्दोदरी—इस पञ्चकका नित्य स्मरण करना चाहिये; क्योंकि यह महान् पातकोंका विनाशक है।

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा॥

---

१. श्रीविद्याके उपासकोंके लिये चार संध्याएँ आवश्यक बतायी गयी हैं। इनमें तुरीय (चतुर्थ) संध्या मध्यरात्रिमें होती है।

उमा, उषा, वैदेही (सीता), रमा और गङ्गा—इस पञ्चकका नित्य ही प्रातःकाल स्मरण करना चाहिये, इससे सदा सौभाग्यकी वृद्धि होती हैं।

कृत्वा समाधिस्थितया धिया ते
चिन्तां नवाधारनिवासभूताम्।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥

मैं प्रातःकाल उठकर समाधिस्थित बुद्धिसे आपकी नवीन आधारकी निवासभूत चिन्तना करके आपका प्रिय कार्य करनेके लिये संसारयात्राका अनुवर्तन करूँगा।

संसारयात्रामनुवर्तमानं
तवाज्ञया श्रीत्रिपुरेश्वरेशि।
स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमाद-
भयानि मे नात्र भवन्तु मातः ॥

माता श्रीत्रिपुरेश्वरेशि! आपकी आज्ञासे संसारयात्राका अनुवर्तन करते समय मेरे लिये इस जगत्‌में स्पर्धा, तिरस्कार, कलिप्रमाद और भय न प्राप्त हों।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेशि हृदिस्थयाहं
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

हृषीकेशि! मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है तथा अधर्मको भी जानता हूँ किंतु उससे मेरी निवृत्ति नहीं है। मैं हृदयस्थित आपके द्वारा जैसा नियुक्त किया जाता हूँ, वैसा ही करता हूँ।

मञ्जुसिञ्जितमञ्जीरं वाममर्धं महेशितुः।
आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं सचराचरम् ॥

जिनके चरणोंमें नूपुर मधुर झंकार करते हैं, जो महेश्वरका बायाँ अर्धाङ्ग और जगत्‌की मूल हैं तथा चराचर प्राणी जिनके आधारपर स्थित हैं, उन (त्रिपुरसुन्दरी)का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥
(देवीभागवत १। १। १)

हम उस सर्वचैतन्यरूपा आद्या विद्याका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको (सत्कर्मोंमें) प्रेरित करें।

ब्रह्मरूपा भगवतीकी सर्वव्यापकता

सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्या द्वितीयब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रम्। यद्विभाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दं तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत्सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म। (बह्वृचोपनिषत्—२)

वे ही आत्मा हैं, उनके अतिरिक्त सभी असत्य और अनात्मा है। अतः वे ब्रह्मविद्यास्वरूपा, भावाभावकलासे विनिर्मुक्त, चिन्मयी विद्याशक्ति, अद्वितीय ब्रह्मका बोध करनेवाली तथा सत्, चित्, आनन्दरूप लहरोंवाली श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बाहर और भीतर प्रविष्ट होकर स्वयं अकेली ही सुशोभित हो रही हैं। (उनके अस्ति, भाति और प्रिय—इन तीन रूपोंमें) जो अस्ति है, वह सन्मात्रका बोधक है। जो भाति है, वह चिन्मात्र है। जो प्रिय है, वह आनन्द है। इस प्रकार श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी सभी रूपोंमें विराजमान हैं। तुम और मैं, सारा विश्व और सारे देवता तथा अन्य सब कुछ महात्रिपुरसुन्दरी ही हैं। ललिता नामक वस्तु एकमात्र सत्य है, वही अद्वितीय, अखण्ड परब्रह्मतत्त्व है।

कल्याण-वृष्टिस्तोत्र*

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-
लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः ।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम् ॥ १ ॥

अम्ब ! अमृतसे परिपूर्ण कल्याणकी वर्षा करनेवाली एवं लक्ष्मीको स्वयं वरण करनेवाली मङ्गलमयी दीपमालाकी भाँति आपकी सेवाओंने आपके चरणकमलोंमें भक्तिभाव रखनेवाले मनुष्योंके मनमें क्या नहीं कर दिया ? अर्थात् उनके समस्त मनोरथोंको पूर्ण कर दिया ।

एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे ।
सांनिध्यमुद्यदरुणायतसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाऽऽप्लुतस्य ॥ २ ॥

जननि ! मेरी तो बस यही स्पृहा है कि परमोत्कृष्ट सुधासे परिप्लुत तथा उदीयमान अरुण-वर्ण सूर्यकी समता करनेवाले आपके अरुण श्रीविग्रहके संनिकट पहुँचकर आपकी वन्दनाओंके समय मेरे नेत्र अश्रुजलसे परिपूर्ण हो जायँ ।

ईशित्वभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः ।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति ॥ ३ ॥

माँ ! प्रभुत्वभावसे कलुषित ब्रह्मा आदि कितने देवता हो चुके हैं, जो प्रत्येक युगमें प्रलयसे अभिभूत (विनष्ट) हो गये हैं, किंतु एक वही व्यक्ति स्थिरसिद्धियुक्त विद्यमान रहता है, जो एक बार आपके चरणोंमें प्रणाम कर लेता है ।

लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम् ।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु ॥ ४ ॥

त्रिपुरसुन्दरि ! आपमें भक्तिभाव रखनेवाले भक्तजन एक बार भी आपके करुणासे अङ्कुरित सुशोभन कटाक्षको पाकर कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली हो जाते हैं और त्रिभुवनमें युवतियोंको सम्मोहित कर लेते हैं ।

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे ।
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः ॥ ५ ॥

त्रिकोणमें निवास करनेवाली एवं तीन नेत्रोंसे सुशोभित माता त्रिपुरसुन्दरि ! वेद 'ह्रीं'कारको ही आपका नाम बतलाते हैं । वह नाम जिनके संस्मरणमें आ गया, वे भक्तजन यमदूतोंके भयको त्यागकर लोकपालोंके साथ नन्दनवनमें क्रीडा करते हैं ।

हन्तुः पुरामधिगलं परिपूर्यमाणः
क्रूरः कथं नु भविता गरलस्य वेगः ।
आश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य ॥ ६ ॥

माता ! निरन्तर अमृतसे परिप्लुत होनेके कारण शीतल बने हुए आपके शरीरका यह अर्धभाग जिनके साथ संलग्न था, उन त्रिपुरहन्ता शंकरजीके गलेमें भरा हुआ हलाहल विषका वेग उनके लिये अनिष्टकारक कैसे होता ?

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः ।
किं च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति ॥ ७ ॥

* कल्याणवृष्टि-स्तोत्र या षोडशी-कल्याण-स्तोत्र भगवान् शंकराचार्यद्वारा विरचित है। षोडशी श्रीविद्याके मूल-मन्त्रके अक्षरोंपर आधृत एक-एक अक्षरपर इसमें सोलह श्लोक हैं । मन्त्रज्ञ इसका प्रतिदिन पाठ करें तो उनका परम कल्याण अवश्यम्भावी है । साधकोंके लिये इसका अर्थ भी दिया जा रहा है । यह करुणापूर्ण भाव और भाषामें विरचित है ।

देवि ! आपके चरणकमलोंमें किया हुआ प्रणाम सर्वज्ञता और सभामें वाक्चातुर्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही उद्धारित मुकुट, श्वेत छत्र, दो चामर और विशाल पृथ्वीका साम्राज्य भी प्रदान करता है ।

कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः ।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम् ॥ ८ ॥

माँ त्रिपुरसुन्दरि ! मैं आपकी ही भक्तिसे परिपूर्ण हूँ और आपकी ओर ही दृष्टि लगाये हुए हूँ, अतः आप मुझ अनाथकी ओर मनोरथोंको पूर्ण करनेमें कल्पवृक्ष-सदृश एवं करुणासागरस्वरूप अपने कटाक्षोंसे देख तो लें ।

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु ।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जगति त्वमेव ॥ ९ ॥

देवि ! खेद है कि अन्यान्य जन आपके अतिरिक्त अन्य नीच देवताओंमें भी मन लगाकर उनकी भक्ति करते हैं, किंतु मैं मन और वचनसे आपका ही स्मरण करता हूँ, आपको ही प्रणाम करता हूँ; क्योंकि जगत्में आप ही शरणदात्री हैं ।

लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनाना-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथंचित् ।
नूनं मयापि सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते च ॥१०॥

त्रिपुरसुन्दरि ! यद्यपि आपके नेत्रोंके लिये देखनेके बहुत-से लक्ष्य वर्तमान हैं, तथापि किसी प्रकार आप मेरी ओर दृष्टि डाल दें; क्योंकि निश्चय ही मेरे समान करुणाका पात्र न कोई पैदा हुआ है और न हो रहा है और न पैदा होगा ।

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां जनानां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे ।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयां-
स्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः ॥ ११ ॥

त्रिपुरमें निवास करनेवाली माँ ! 'ह्रीं, ह्रीं'—इस प्रकार (आपके बीजमन्त्रका) प्रदिदिन जप करनेवाले मनुष्योंके लिये इस जगत्में क्या दुर्लभ है ? माला, किरीट और उन्मत्त गजराजसे युक्त उन माननीयोंकी तो स्वयं मधुमती लक्ष्मी ही सेवा करती हैं ।

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद्वन्दनानि दुरितौघहरोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम् ॥ १२ ॥

कमलनयनि ! आपकी वन्दनाएँ सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, समस्त इन्द्रियोंको आनन्दित करनेवाली, साम्राज्य प्रदान करनेमें कुशल और पापसमूहको नष्ट करनेमें उद्यत रहनेवाली हैं, माता ! वे निरन्तर मुझे ही प्राप्त हों, दूसरेको नहीं ।

कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य ।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका ॥ १३ ॥

कल्पके उपसंहारके समय ताण्डव नृत्य करनेवाले खण्डपरशु देवाधिदेव परमेश्वर शंकरके लिये पाश, अंकुश, ईखका धनुष और पुष्पबाणको धारण करनेवाली आपकी वह एकमात्र मूर्ति साक्षीरूपसे सुशोभित होती है ।

लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्ध-
तेजः परं बहुलकुंकुमपङ्कशोणम् ।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं
मध्ये त्रिकोणमुदितं परमामृतार्द्रम् ॥ १४ ॥

माता ! आपका यह अर्धाङ्ग, जो परम तेजोमय, अत्यधिक कुंकुमपङ्कसे युक्त होनेके कारण अरुण, चमकदार किरीटसे सुशोभित, चन्द्रकलासे विभूषित, अमृतसे परमार्द्र और त्रिकोणके मध्यमें प्रकट है, सदा शिवजीसे संलग्न रहे ।

ह्रींकारमेव तव धाम तदेव रूपं
त्वन्नाम सुन्दरि सरोजनिवासमूले ।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं
सौख्यं तनोति सरसीरुहसम्भवादेः ॥ १५ ॥

कमलपर निवास करनेवाली सुन्दरि ! 'ह्रीं'कार ही आपका धाम है, वही आपका रूप है, वही आपका नाम है और वही आपके तेजसे उत्पन्न हुए आकाशादिसे क्रमशः परिणत—जगत्का आदिकारण है, जो ब्रह्मा, विष्णु आदिकी रचित-पालित वस्तु बनकर परम सुख देता है ।

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् ।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वयः ॥१६॥

इति श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितं कल्याणवृष्टिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

माँ ! जो मन्त्रज्ञ तीन 'ह्रीं'कारसे सम्पुटित महान् मन्त्रसे संदीपित इस स्तोत्रका प्रतिदिन आपके समक्ष जप करता है, उसके राजालोग वशीभूत हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी हो जाती है, उसकी वाणी निर्मल सूक्तियोंसे परिपूर्ण हो जाती है और वह दीर्घायु हो जाता है ।

संविन्मयी देवीमें विश्वकी प्रतिष्ठा

पञ्चरूपपरित्यागादस्वरूपप्रहाणतः । अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत् ॥

प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मीति वा भाष्यते । तत्त्वमसीत्येव सम्भाष्यते । अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा योऽहमस्मीति वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाष्यते सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती ब्रह्मानन्दकलेति ।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् । यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ।
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते । इत्युपनिषत् । वाङ्मे मनसीति शान्तिः । ॐ ॥ (बह्वृचोपनिषत्—२)

पाँचों रूपों (अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप)के परित्यागसे तथा अपने स्वरूपके अपरित्यागसे अधिष्ठानरूप जो एक सत्ता शेष रहती है, वही महत्तत्त्व है ।

उसीको 'प्रज्ञान ही ब्रह्म है' अथवा 'मैं ब्रह्म हूँ' आदि वाक्योंसे प्रकट किया जाता है । 'वह तू है' इस वाक्यसे इसी प्रकार कथन किया जाता है । 'यह आत्मा ब्रह्म है' अथवा 'ब्रह्म ही मैं हूँ' या 'जो मैं हूँ' अथवा 'वह मैं हूँ' या 'जो वह है, सो मैं हूँ' आदि श्रुतिवाक्योंद्वारा जिनका निरूपण किया जाता है, वे ही षोडशी श्रीविद्या हैं । वे ही पञ्चदशाक्षर मन्त्रवाली श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातङ्गी, स्वयंवरकल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्करिणी, राजमातङ्गी अथवा शुकश्यामला या लघुश्यामला अथवा अश्वारूढा या प्रत्यङ्गिरा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानन्दकला आदि नामोंसे अभिहित होती हैं । ऋचाएँ एक अविनाशी आकाशमें प्रतिष्ठित हैं, जिसमें सारे देवता भलीभाँति निवास करते हैं । जो उसे नहीं जानता, वह ऋचासे क्या लाभ पा सकता है ! निश्चय ही जो उसे जान लेते हैं, वे सदाके लिये उसमें स्थित हो जाते हैं । 'ॐ वाङ्मे मनसि'—यह मन्त्र इसका शान्ति-पाठ है

कुण्डलिनी-स्तुति

कुण्डलिनी भगवती आदि शक्तिका ही नामान्तर है। साधनाकी परिपक्वावस्थामें कुण्डलिनी-शक्तिका जाग्रत होनेसे साधक अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। यों तो कुण्डलिनी-जागरणके लययोग, हठयोग, राजयोग मन्त्रयोग आदि अनेक मार्ग शास्त्रोंमें वर्णित हैं, फिर भी तन्त्रशास्त्रोंमें वर्णित मन्त्रयोगका प्रकार कुण्डलि जागरणकी दिशामें अपेक्षाकृत सरल और सुगम कहा जा सकता है। तन्त्रशास्त्रमें उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन कि गया है। रुद्रयामलादिमें कई कुण्डलीस्तव और कवच हैं। शारदातिलकोक्त प्रस्तुत कुण्डलिनी-स्तुतिमें कुण्डलिनी-श पराम्बा भुवनेश्वरीकी स्तुतिके व्याजसे कुण्डलिनी-जागरणकी प्रक्रिया भी बता दी गयी है।

मूलोन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं
भित्त्वाऽऽधारसमूहमाशु विलसत्सौदामिनीसंनिभाम्।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघैः [प्लुतं] पतिं
सम्भाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां संचिन्तयेत् कुण्डलीम्॥ १॥

हंसं नित्यमनन्तमव्ययगुणं स्वाधारतो निर्गता
शक्तिः कुण्डलिनी समस्तजननी हस्ते गृहीत्वा च तम्।
याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूय स्वयं
यान्ती स्वाश्रयमर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी॥ २॥

अव्यक्तं परबिम्बमञ्चितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं
शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासंनिभा।
आनन्दामृतकन्दगं पुरमिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं
संवीक्ष्य स्वगृहं गता भगवती ध्येयानवद्या गुणैः॥ ३॥

मध्ये वर्त्म समीरणद्वयमिथस्सङ्घट्टसंक्षोभजं
शब्दस्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वराम्।
उद्यन्तीं समुपास्महे नवजपासिन्दूरसान्द्रारुणां
सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवं प्राप्तां परां देवताम्॥ ४॥

गमनागमनेषु जा [ला] ङ्किकी सा तनुयाद् योगफलानि कुण्डली।
मुदिता कुलकामधेनुरेषा भजतां काङ्क्षित [वाञ्छित] कल्पवल्लरी॥ ५॥

आधारस्थितशक्तिबिन्दुनिलयां नीवारशूकोपमां
नित्यानन्दमयीं गलत्परसुधावर्षैः प्रबोधप्रदैः।
सिक्त्वा षट्सरसीरुहाणि विधिवत्कोदण्डमध्योदितां
ध्यायेद् भास्वरबन्धुजीवरुचिरां संविन्मयीं देवताम्॥ ६॥

हृत्पङ्केरुहभानुबिम्बनिलयां विद्युल्लतामन्थरां
बालार्कारुणतेजसा भगवतीं निर्भर्त्सयन्तीं तमः।
नादाख्यां परमर्धचन्द्रकुटिलां संविन्मयीं शाश्वतीं
यान्तीमक्षररूपिणीं विमलधीर्ध्यायेद्विभुं तेजसाम्॥ ७॥

भाले पूर्णनिशापति[कर]प्रतिभटां नीहारहारत्विषा
सिञ्चन्तीममृतेन देवभमितेनानन्दयन्तीं तनुम्।

कुण्डलिनी-शक्ति भगवती भुवनेश्वरी

सिन्दूरारूणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्।।

वर्णानां जननीं तदीयवपुषा संव्याप्य विश्वं स्थितां
ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा संविन्मयीमम्बिकाम् ॥ ८ ॥
मूले भाले हृदि च विलसद्वर्णरूपा सवित्री
पीनोत्तुङ्गस्तनभरनम[लस]न्मध्यदेशा महेशी।
चक्रे चक्रे गलितसुधया सिक्तगात्री प्रकामं
दद्यादाद्या श्रियमविकलां वाङ्मयी देवता वः ॥ ९ ॥
आधारबन्धप्रमुखक्रियाभिः समुत्थिता कुण्डलिनी सुधाभिः।
त्रिधामबीजं शिवमर्चयन्ती शिवाङ्गना वः शिवमातनोतु ॥ १० ॥
निजभवननिवासादुच्चरन्ती विलासैः पथि पथि कमलानां चारु हासं विधाय।
तरुणतरणिकान्तिः कुण्डली देवता सा शिवसदनसुधाभिर्दीपयेदात्मतेजः ॥ ११ ॥
सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम् ।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शम्भोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु ॥ १२ ॥
वर्णैरर्णवषड्दिशारविकलाचक्षुर्विभक्तैः क्रमा-
दाद्यैः सादिभिरावृतान् क्षहयुतैः षट्चक्रमध्यानिमान्।
डाकिन्यादिभिराश्रितान् परिचितान् ब्रह्मादिभिर्दैवतै-
र्भिन्दाना परदेवता त्रिजगतां चित्ते विधत्तां मुदम् ॥ १३ ॥
आधाराद् गुणवृत्तशोभिततनुं लिङ्गत्रयं सत्वरं
भिन्दन्ती कमलानि चिन्मयघनानन्दप्रबोधोत्तराम्।
संक्षुब्धध्रुवमण्डलामृतकरप्रस्यन्दमानामृत-
स्रोतःकन्दलिता[निभा]ममन्दतडिदाकारां शिवां भावयेत् ॥ १४ ॥
मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं
कामं बालार्ककालानलजरठकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभम्।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिरलसद्बन्धुजीवाभिरामं
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुं विचिन्त्य ॥ १५ ॥
तस्योर्ध्वं विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराङ्गी-
मुद्गच्छन्तीं सुषुम्नागतु सरणिशिखामाललाटेन्दुबिम्बम्।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां जगदुदयकरीं भावनामात्रगम्यां
मूलं या सर्वधाम्नां स्फुरति निरुपमा हुंकृतोदश्चितोरः ॥ १६ ॥
नीता सा शनकैरधोमुखसहस्रारारुणाब्जोदरे
श्च्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बमधुनः पीयूषधारास्रुतिम्।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिष्यन्दरूपा विशेद्
भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत् ॥ १७ ॥
योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवमात्मनोऽन्तर्बीजांशं दुरितजरापमृत्युरोगान्।
जित्वासौ स्वयमिव मूर्तिमाननङ्गः संजीवेच्चिरमतिनीलकेशजालः ॥ १८ ॥

स्तुतिके प्रथम श्लोकमें कुण्डलिनीके स्वरूपका भुजङ्गके समान आकृतिवाली विद्युत्समप्रभा यह कुल-
वर्णन करते हुए कहा गया है कि मूलाधार चक्रमें कुण्डलिनी सुषुम्णा-मार्गसे षट्चक्रोंका भेदन करती हुई

सहस्रारचक्रस्थित चन्द्रमण्डलके दिव्य अमृतकी वर्षासे वहाँ शिवको तृप्त करती और पुनः अपने मूलस्थान— मूलाधारमें आ जाती है । ऐसी कुण्डलिनी-शक्तिका चिन्तन करना चाहिये । इस विषयका साधारण आभास पानेके लिये सात चक्रोंके नाम, स्थान तथा सुषुम्ना-मार्गका ज्ञान अत्यावश्यक है । अतः यहाँ इसपर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है ।

मूलाधार—यह पायु और उपस्थके मध्य चार दलोंका कमल होता है ।

स्वाधिष्ठान—यह उपस्थके ऊपर छः दलोंका चक्र है ।

मणिपूरक—यह नाभि-स्थानमें दस दलोंवाला होता है ।

अनाहत—यह हृदयमें बारह दलोंका होता है ।

विशुद्धि—यह कण्ठमें सोलह दलोंका होता है ।

आज्ञा—यह भ्रूमध्यमें दो दलोंका होता है ।

सहस्रार—यह मस्तकपर हजार दलोंका होता है ।

इन चक्रोंके विभिन्न रंगों एवं दलोंमें मातृका-अक्षर तथा चक्रोंकी अधिष्ठात्री योगिनियोंका निवास होता है ।

सुषुम्ना मार्ग—मेरुदण्डके भीतर इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाडियाँ हैं । दोनों ओर इडा और पिङ्गला हैं तो मध्यमें है सुषुम्ना । यही कुण्डलिनी-शक्तिके गमनागमनका मार्ग है ।

चार दलोंवाले मूलाधार-चक्रमें त्रिकोणके मध्य स्वयम्भू लिङ्गको साढ़े तीन घेरा देकर तन्तुओंके समान अतिसूक्ष्मरूपा कुलकुण्डलिनी सुप्तावस्थामें स्थित रहती है । इसीका जागरण करनेपर साधक शक्तिसम्पन्न होते हैं ।

कुण्डलिनी-जागरण-विधि—गुरुद्वारा कुण्डलिनी-मन्त्रका उपदेश ग्रहण कर उस मन्त्रका यथाविधि जप करते हुए इसके अतिसूक्ष्म रूपको मन्त्ररूपमें परिणत करके कुण्डलिनी-शक्तिका जागरण किया जाता है ।

जागरणके पश्चात् कुण्डलिनी मूलाधारसे उठकर सुषुम्ना नाडीके मध्यसे सहस्रारमें जाकर वहाँ विराजमान भगवान् सदाशिवको अमृतसे तृप्त करती हुई और स्वयं भी शिवसायुज्यसे परम आनन्दित होती हुई साधकके समस्त शरीरको अमृतसे आप्लावित करती है और फिर अपने स्थान मूलाधारमें आ जाती है । पुनः इसी प्रकार गमनागमन करती हुई साधकको योगसिद्धियाँ प्रदान करती हैं । इस प्रकार प्रसन्न एवं जाग्रत् कुण्डलिनी-शक्ति कामधेनु और वाञ्छाकल्पतरुकी तरह साधकके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती है । कुण्डलिनी-स्तुतिके श्लोकोंमें इसीका वर्णन है ।

स्तुतिका उपसंहार करते हुए अन्तिम श्लोकमें मन्त्रमयी कुण्डलिनी-शक्तिका वर्णन किया गया है— यह मन्त्ररूपिणी कुण्डलिनी-शक्ति मस्तकमें स्थित रक्तवर्णके नीचे मुखवाले सहस्रार-दलके पूर्ण चन्द्रमण्डलसे अमृत-धाराका वर्षण करती हुई सुधापानसे मत्त होकर पुनः पुनः मूलाधारसे सहस्रदल कमलमें जाती और फिर मूलाधारमें आ जाती है ।

इस प्रकार जो साधक कुण्डलिनी-शक्तिका चिन्तन करता है, उसके सभी पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं । वह जरा-मृत्युसे रहित होकर मूर्तिमान् अनङ्गकी तरह परमसुन्दर, नील-कुञ्चित-कुन्तल होकर चिरायु होता है । इस प्रकार शक्ति-साधनामें मन्त्रयोगका ही प्राधान्य स्पष्ट है; क्योंकि मन्त्रयोगद्वारा ही कुण्डलिनी-शक्तिका सरलतासे जागरण सम्भव है । इसीलिये श्रीविद्या एवं त्र्यक्षरी, पञ्चदशाक्षरी, षोडशी, महाषोडशी आदि मन्त्रोंका तन्त्रशास्त्रमें बड़ा ही गौरवपूर्ण वर्णन मिलता है । उक्त मन्त्रोंका कुण्डलिनी-शक्तिसे साक्षात् सम्बन्ध है । अतः शक्ति-उपासनाका प्रधान अङ्ग कुण्डलिनी-शक्ति है ।

मानसपूजा

[शास्त्रोंमें मानस-पूजा और ध्यानका बड़ा ही महत्त्व वर्णित है। भगवान्‌की पूजाकी पूर्णता मानस-पूजासे ही होती है। बाह्य पूजामें प्राणी अपनी सामर्थ्य और क्षमताके अनुसार जो सामग्री और उपचार अर्पण करता है, वह लौकिक होनेके साथ भगवत्-सेवाके लिये अत्यन्त तुच्छ और अत्यल्प भी है। अतः भक्तगण भगवान्‌की पूजाके लिये ऊँची-से-ऊँची दिव्य और अलौकिक सामग्रियोंका चयन करते हैं और मानसिक रूपसे भगवान्‌की सेवामें उसे अर्पण करते हैं। यह सब मानस-पूजा और ध्यानसे ही सम्भव है। अतएव अपनी शक्तिके अनुसार बाह्यपूजन तो करना ही चाहिये; साथ ही पूजाकी पूर्णताके लिये मानस-पूजन और मानस-ध्यान भी अवश्य करणीय हैं। यहाँ मानस-पूजाके विभिन्न स्तोत्र तथा भगवती पराम्बाके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान प्रस्तुत किया जा रहा है। —सं०]

भगवती पराम्बाकी षोडशोपचार मानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात्॥१॥

माता त्रिपुरसुन्दरि! तुम भक्तजनोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाली कल्पलता हो। माँ! यह पादुका आदर-पूर्वक तुम्हारे श्रीचरणोंमें समर्पित है, इसे ग्रहण करो। यह उत्तम चन्दन और कुंकुमसे मिली हुई लाल जलकी धारासे धोयी गयी है। भाँति-भाँतिकी बहुमूल्य मणियों तथा मूँगोंसे इसका निर्माण हुआ है और बहुत-सी देवाङ्गनाओंने अपने करकमलोंद्वारा भक्तिपूर्वक इसे सब ओरसे धो-पोंछकर स्वच्छ बना दिया है।

देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम्।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके॥२॥

माँ! देवताओंने तुम्हारे बैठनेके लिये यह दिव्य सिंहासन लाकर रख दिया है, इसपर विराजो। यह वह सिंहासन है, जिसकी देवराज इन्द्र आदि भी पूजा करते हैं, अपनी कान्तिसे दमकते हुए राशि-राशि सुवर्णसे इसका निर्माण किया गया है। यह अपनी मनोहर प्रभासे सदा प्रकाशमान रहता है। इसके सिवा यह चम्पा और केतकीकी सुगन्धसे पूर्ण अत्यन्त निर्मल तेल और सुगन्धयुक्त उबटन है, जिसे दिव्य युवतियाँ आदरपूर्वक तुम्हारी सेवामें प्रस्तुत कर रही हैं, कृपया इसे स्वीकार करो।

पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्।
तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे॥३॥

देवि! इसके पश्चात् यह विशुद्ध आँवलेका फल ग्रहण करो। भगवान् शिवकी पत्नी त्रिपुरसुन्दरि! इस आँवलेमें

प्रायः जितने भी सुगन्धित पदार्थ हैं, वे सभी डाले गये हैं, इससे यह परम सुगन्धित हो गया है। अतः इसे लगाकर बालोंको कंघीसे झाड़ लो और गङ्गाजीकी पवित्र धारामें नहाओ। तदनन्तर यह दिव्य गन्ध सेवामें प्रस्तुत है, यह तुम्हारे आनन्दकी वृद्धि करनेवाला हो।

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम्।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे॥४॥

सम्पत्ति प्रदान करनेवाली वरदायिनि! त्रिपुरसुन्दरि! यह सरस शुद्ध कस्तूरी ग्रहण करो। इसे स्वयं देवराज इन्द्रकी पत्नी महारानी शची अपने कर-कमलोंमें लेकर सेवामें खड़ी हैं। इसमें चन्दन, कुङ्कुम तथा अगुरुका मेल होनेसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। इससे बहुत अधिक गन्ध निकलनेके कारण यह बड़ी मनोहर प्रतीत होती है।

गन्धर्वामरकिंनरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम्।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम्॥५॥

माँ श्रीसुन्दरि! यह परम उत्तम निर्मल वस्त्र सेवामें समर्पित है, यह तुम्हारे हर्षको बढ़ाये। माता! इसे गन्धर्व, देवता तथा किन्नरोंकी प्रेयसी सुन्दरियाँ अपने फैलाये हुए कर-कमलोंमें धारण किये खड़ी हैं। यह केसरमें रँगा हुआ पीताम्बर है। इससे परम प्रकाशमान सूर्यमण्डलकी शोभामयी दिव्य कान्ति निकल रही है, जिसके कारण यह बहुत ही सुशोभित हो रहा है।

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम्॥

तुम्हारे दोनों कानोंमें सोनेके बने हुए कुण्डल झिलमिलाते रहें, करकमलकी एक अङ्गुलीमें अँगूठी शोभा पाये, कटिभागमें नितम्बोंपर करधनी सुहाये, दोनों चरणोंमें मञ्जीर मुखरित होता रहे, वक्षःस्थलपर हार सुशोभित हो और दोनों कलाइयोंमें कङ्कण खनखनाते रहें। तुम्हारे मस्तकपर रखा हुआ दिव्य मुकुट प्रतिदिन आनन्द प्रदान करे। ये सब आभूषण प्रशंसाके योग्य हैं।

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम्।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे॥७॥

धन देनेवाली शिवप्रिया पार्वति! तुम गलेमें बहुत ही चमकीली सुन्दर हँसली पहन लो, ललाटके मध्यभागमें सौन्दर्यकी मुद्रा (चिह्न) धारण करनेवाली सिन्दूरकी बेंदी लगाओ तथा अत्यन्त सुन्दर पद्मपत्रकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले नेत्रोंमें यह काजल भी लगा लो, यह काजल दिव्य ओषधियोंसे तैयार किया गया है।

अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम्॥८॥

पापोंका नाश करनेवाली सम्पत्तिदायिनी त्रिपुरसुन्दरि! अपने मुखकी शोभा निहारनेके लिये यह दर्पण ग्रहण करो। इसे साक्षात् रति रानी अपने कर-कमलोंमें लेकर सेवामें उपस्थित हैं। इस दर्पणके चारों ओर मूँगे जड़े हैं। प्रचण्ड वेगसे घूमनेवाले मन्दराचलकी मथानीसे जब क्षीरसमुद्र मथा गया, उस समय यह दर्पण उसीसे प्रकट हुआ था। यह चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल है।

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि सम्भ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके॥

भगवान् शंकरकी धर्मपत्नी पार्वतीदेवि! देवाङ्गनाओंके मस्तकपर रखे हुए बहुमूल्य रत्नमय कलशोंद्वारा

शीघ्रतापूर्वक दिया जानेवाला यह निर्मल जल ग्रहण करो। इसे चम्पा और गुलाब आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित किया गया है तथा यह कस्तूरीरस, चन्दन, अगुरु और सुधाकी धारासे आप्लावित है।

कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमैः रक्ताश्वमारादिभिः।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये॥

मैं कह्लार, उत्पल, नागकेसर, कमल, मालती, मल्लिका, कुमुद, केतकी और लाल कनेर आदि फूलोंसे सुगन्धित पुष्पमालाओंसे तथा नाना प्रकारके रसोंकी धारासे लाल कमलके भीतर निवास करनेवाली श्रीचण्डिका देवीकी पूजा करता हूँ।

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे॥११॥

श्रीचण्डिका देवि! देववधुओंके द्वारा तैयार किया हुआ यह दिव्य धूप तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ानेवाला हो। यह धूप रत्नमय पात्रमें, जो सुगन्धका निवासस्थान है, रखा हुआ है। यह तुम्हें संतोष प्रदान करे। जटामांसी, गुग्गुल, चन्दन, अगुरु-चूर्ण, कपूर, शिलाजीत, मधु, कुङ्कुम तथा घी मिलाकर इसे उत्तम रीतिसे बनाया गया है।

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे॥१२॥

देवि त्रिपुरसुन्दरि! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ यह दीप प्रकाशित हो रहा है। यह घीसे जलता है, इसकी दीयटमें सुन्दर रत्नका डंडा लगा है। इसे देवाङ्गनाओंने बनाया है। यह दीपक सुवर्णके चषक (पात्र)में जलाया गया है। इसमें कपूरके साथ बत्ती रहती है। यह भारी-से-भारी अन्धकारका भी नाश करनेवाला है।

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे॥१३॥

श्रीचण्डिकादेवि! देववधुओंने तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यह दिव्य नैवेद्य तैयार किया है। इसमें अगहनीके चावलका स्वच्छ भात है, जो बहुत ही रुचिकर और चमेलीकी सुगन्धसे वासित है। साथ ही हींग, मिर्च और जीरा आदि सुगन्धित द्रव्योंसे छौंक-बघारकर बनाये हुए नाना प्रकारके व्यञ्जन भी हैं। इसमें भाँति-भाँतिके पकवान, खीर, मधु, दही और घीका भी मेल है।

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम्।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम्॥१४॥

माँ! सुन्दर रत्नमय पात्रमें सजाकर रखा हुआ यह दिव्य ताम्बूल अपने मुखमें ग्रहण करो। लवंगकी कली चुभोकर इसके बीड़े लगाये गये हैं, अतः बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। इसमें बहुत-से पानके पत्तोंका उपयोग किया गया है। इन सब बीड़ोंमें कोमल जावित्री, कपूर और सोपारी पड़े हैं। यह ताम्बूल सुधाके माधुर्यसे परिपूर्ण है।

शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरंगिणीललितमौक्तिकाडम्बरम्।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत्॥१५॥

महात्रिपुरसुन्दरी माता पार्वति! तुम्हारे सामने यह विशाल एवं दिव्य छत्र प्रकट हुआ है, इसे ग्रहण करो। यह शरत्-कालके चन्द्रमाकी चटकीली चाँदनीके समान सुन्दर है; इसमें लगे हुए सुन्दर मोतियोंकी झलक ऐसी जान पड़ती है, मानो देवनदी गङ्गाका स्रोत ऊपरसे

नीचे गिर रहा हो। यह छत्र सुवर्णमय दण्डके कारण बहुत शोभा पा रहा है।

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम्।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः॥१६॥

माँ! सुन्दरी स्त्रियोंके हाथोंसे निरन्तर डुलाया जानेवाला यह श्वेत चँवर, जो चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल तथा पसीनेके कष्टको दूर करनेवाला है, तुम्हारे हर्षको बढ़ाये। इसके सिवा महर्षि अगस्त्य, वसिष्ठ, नारद, शुक, व्यास आदि तथा वाल्मीकि मुनि अपने-अपने चित्तमें जो वेदमन्त्रोंके उच्चारणका विचार करते हैं, उनकी वह मनःसंकल्पित वेदध्वनि तुम्हारे आनन्दकी वृद्धि करे।

स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभे-
रीनिनादैरुपगीयमाना।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु
विद्याधरीनृत्यकला सुखाय॥१७॥

स्वर्गके आँगनमें वेणु, मृदङ्ग, शङ्ख तथा भेरीकी मधु ध्वनिके साथ जो संगीत होता है तथा जिसमें अने प्रकारके कोलाहलका शब्द व्याप्त रहता है, वह विद्याधरि प्रदर्शित नृत्य-कला तुम्हारे सुखकी वृद्धि करे।

देवि भक्तिरसभावितवृत्ते
प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं
जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम्॥१८॥

देवि! तुम्हारे भक्तिरससे भावित इस पद्य स्तोत्रमें यदि कहींसे भी भक्तिका कुछ लेश मिले तो उसी प्रसन्न हो जाओ। माँ! तुम्हारी भक्तिके लिये चित्तमें जे आकुलता होती है, वही एकमात्र जीवनका फल है, व कोटि-कोटि जन्म धारण करनेपर भी इस संसारमें तुम्हा कृपाके बिना सुलभ नहीं होती।

एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात्॥१९॥

इन उपचार-कल्पित सोलह पद्योंसे जो परादेव भगवती त्रिपुरसुन्दरीका स्तवन करता है, वह उ उपचारोंके समर्पणका फल प्राप्त करता है।

श्रीललिताचतुष्षष्ट्युपचार मानस-पूजा

[राजराजेश्वरी पराम्बा भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरीका चौंसठ उपचारोंसे युक्त मानस पूजन यहाँ संक्षेपमें संगृहीत है। यह देवी-उपासकों तथा साधकोंके लाभार्थ स्तुतिपरक मानस-पूजा है। इसमें देवीके ६४ मानस भावोपचार समर्पित किये गये हैं। —सम्पादक]

ॐ हृन्मध्यनिलये देवि ललिते परदेवते। चतुष्षष्ट्युपचारांस्ते भक्त्या मातः समर्पये॥१॥
कामेशोत्सङ्गनिलये पाद्यं गृह्णीष्व सादरम्। भूषणानि समुत्तार्य गन्धतैलं च तेऽर्पये॥२॥
स्नानशालां प्रविश्याथ तत्रत्यमणिपीठके। उपविश्य सुखेन त्वं देहोद्वर्तनमाचर॥३॥
उष्णोदकेन ललिते स्नापयाम्यथ भक्तितः। अभिषिञ्चामि पश्चात्त्वां सौवर्णकलशोदकैः॥४॥
धौतवस्त्रप्रोञ्छनं चारक्तक्षौमाम्बरं तथा। कुचोत्तरीयमरुणमर्पयामि महेश्वरि॥५॥
ततः प्रविश्य चालेपमण्डपं श्रीमहेश्वरि। उपविश्य च सौवर्णपीठे गन्धान् विलेपय॥६॥
कालागरुजधूपैश्च धूपये केशपाशकम्। अर्पयामि च मल्ल्यादिसर्वर्तुकुसुमस्रजः॥७॥
भूषामण्डपमाविश्य स्थित्वा सौवर्णपीठके। माणिक्यमुकुटं मूर्ध्नि दयया स्थापयाम्बिके॥८॥
शरत्पार्वणचन्द्रस्य शकलं तत्र शोभताम्। सिन्दूरेण च सीमन्तमलंकुरु दयानिधे॥९॥
भाले च तिलकं न्यस्य नेत्रयोरञ्जनं शिवे। वालीयुगलमप्यम्ब भक्त्या ते विनिवेदये॥१०॥
मणिकुण्डलमप्यम्ब नासाभरणमेव च। ताटङ्कयुगलं देवि यावकश्चाधरेऽर्पये॥११॥
आद्यभूषणसौवर्णचिन्ताकपदकानि च। महापदकमुक्तावल्येकावल्यादिभूषणम्॥१२॥

छन्नवीरं गृहाणाम्ब केयूरयुगलं तथा। वलयावलिमङ्गुल्याभरणं ललिताम्बिके ॥ १३ ॥
ओड्याणमथ कल्यन्ते कटिसूत्रं च सुन्दरि। सौभाग्याभरणं पादकटकं नूपुरद्वयम् ॥ १४ ॥
अर्पयामि जगन्मातः पादयोश्चाङ्गुलीयकम्। पाशं वामोर्ध्वहस्ते च दक्षहस्ते तथाङ्कुशम् ॥ १५ ॥
अन्यस्मिन् वामहस्ते च तथा पुण्ड्रेक्षुचापकम्। पुष्पबाणांश्च दक्षाधः पाणौ धारय सुन्दरि ॥ १६ ॥
अर्पयामि च माणिक्यपादुके पादयोः शिवे। आरोहावृतिदेवीभिश्चक्रं परशिवे मुदा ॥ १७ ॥
समानवेशभूषाभिः साकं त्रिपुरसुन्दरि। तत्र कामेशवामाङ्कपर्यङ्कोपनिवेशिनीम् ॥ १८ ॥
अमृतासवपानेन मुदितां त्वां सदा भजे। शुद्धेन गाङ्गतोयेन पुनराचमनं कुरु ॥ १९ ॥
कर्पूरवीटिकामास्ये ततोऽम्ब विनिवेशय।
आनन्दोल्लासहासेन विलसन्मुखपङ्कजाम्। भक्तिमत्कल्पलतिकां कृती स्यां त्वां स्मरन् कदा॥ २० ॥
मङ्गलारार्तिकं छत्रं चामरं दर्पणं तथा। तालवृन्तं गन्धपुष्पधूपदीपांश्च तेऽर्पये ॥ २१ ॥
श्रीकामेश्वरि तप्तहाटककृतैः स्थालीसहस्रैर्भृतं दिव्यान्नं घृतसूपशाकभरितं चित्रान्नभेदैर्युतम्।
दुग्धान्नं मधुशर्करादधियुतं माणिक्यपात्रार्पितं माषापूपकपूरिकादिसहितं नैवेद्यमम्बार्पये ॥ २२ ॥
साग्रविंशतिपाद्योक्तचतुष्षष्ट्युपचारतः। हृन्मध्यनिलया माता ललिता परितुष्यतु ॥ २३ ॥
इति श्रीमच्छक्तिया मल्लोक्तं मानसपूजनम् ॥

'देवि ललिते! आप मेरे हृदयमें निवास करनेवाली हैं। मैं आपको भक्तिपूर्वक चौंसठ उपचार समर्पण कर रहा हूँ। कामेश्वरके अङ्कमें विराजमान हे भगवती! आप सादर पाद्य ग्रहण करें। हे माता! मैं आपके सब आभूषणोंको उतारकर सुगन्धित तैल समर्पण करता हूँ। अब आप स्नान-शालामें प्रवेश करें एवं वहाँ मणिपीठपर विराजमान होकर देहमें उबटन स्वीकार करें। मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराकर सुवर्णके कलशोंसे आपका अभिषेक करता हूँ एवं धौत वस्त्रसे आपके देहको पोंछकर लाल कौशेय (रेशमी) वस्त्र एवं उत्तरीय वस्त्र अर्पण करता हूँ। अब आप आलेप-मण्डपमें प्रवेश करके वहाँपर स्थित सुवर्णपीठपर बैठकर अनेक प्रकारके इत्र-गन्धोंका विलेपन करें। कालागुरु धूपसे आपके केशोंको धूपित करके मैं नाना प्रकारके सब ऋतुओंमें होनेवाले सुगन्धित फूलोंकी माला अर्पण करता हूँ। हे माता! अब आप भूषण-मण्डपमें प्रवेश करें। वहाँ सुवर्णपीठपर विराजमान होकर मणिमय मुकुट, अर्धचन्द्र, सीमन्त-सिन्दूर, ललाटपर बेंदी, नेत्रोंमें अञ्जन, कानोंमें मणिकुण्डल एवं नासाभरण, अधरपर आलक्तक, गलेमें मङ्गलसूत्र, सुवर्णका हार एवं पदक, महापदक, मुक्तावली, एकावली, छन्नवीर, बाहुओंमें केयूर, वलयावली (चूड़ियाँ), अङ्गूठी, कटिमें कटिसूत्र (मेखला सौभाग्याभरण), चरणकमलमें पादपरक नुपूर और पैरकी अंगुलियोंमें अंगुलीयक आदि आभूषण धारण करके बाँयें ऊपरके हाथमें पाश, दाहिनेमें अंकुश, नीचेके बाँयें हाथमें इक्षुधनु और दाहिनेमें पुष्पबाग धारण कीजिये।

अब आप अपनी आवरण देवियोंके साथ श्रीयन्त्रपर विराजमान हों। वहाँ बिन्दुमें विराजमान महाकामेश्वरके अङ्कमें सुशोभित होकर अमृतासव चषकका पान करके, आचमन करके, ताम्बूल-वीटिका मुखमें सुशोभित करके आनन्द-उल्लास, हास-विलाससे परम प्रसन्न हुई आपका स्मरण करता हुआ मैं कब इस पुण्यका भागी बनूँगा। हे माता! अब आपकी मङ्गल-आरतीका नीराजन करके छत्र-चामरयुक्त, दर्पण, तालवृन्त, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप अर्पण कर दाल, शाक, घी एवं दूध, दिव्यान्न, मधु, शर्करा-से युक्त माष, वटक, पूरी, मालपुआ, अनेक प्रकारके षट्रस व्यंजनसे भरी हुइ सहस्रों थालियाँ समर्पण करता हूँ। इन चौंसठ उपचारोंसे मेरे हृदयमें निवास करनेवाली भगवती राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न हों।

शक्तिके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान

१–सर्वमङ्गलाका ध्यान

हेमाभां करुणाभिपूर्णनयनां माणिक्यभूषोज्ज्वलां
द्वात्रिंशद्दलषोडशाष्टदलयुक्पद्मस्थितां सुस्मिताम्।
भक्तानां धनदां वरं च दधतीं वामेन हस्तेन तद्
दक्षेणाभयमातुलुङ्गसुफलं श्रीमङ्गलां भावये॥

जिनकी कान्ति स्वर्ण-सदृश है, जिनके नेत्र करुणासे परिपूर्ण रहते हैं, जो माणिक्यके आभूषणोंसे विभूषित, बत्तीस दल, षोडशदल, अष्टदल कमलपर स्थित, सुन्दर मुसकानसे सुशोभित, भक्तोंको धन देनेवाली, बायें हाथमें वरद मुद्रा तथा दायें हाथमें अभयमुद्रा एवं बिजौरा नींबूका सुन्दर फल धारण करनेवाली हैं, उन श्रीमङ्गला देवीकी मैं भावना करता हूँ।

२–चण्डिकाका ध्यान

चण्डिका श्वेतवर्णा सा शिवरूपा च सिंहगा।
जटिला वर्तुला त्र्यक्षा वरदा शूलधारिणी॥
कर्त्रिकां बिभ्रती दक्षे पाशपात्राभयान्विता॥

कल्याणरूपिणी चण्डिकाका वर्ण श्वेत है। वे जटा धारण करती हैं। उनके गोलाकार तीन नेत्र हैं और वे सिंहपर आरूढ होती हैं। वे अपने दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, शूल और कर्त्रिका (छुरी या कैंची) तथा बायें हाथोंमें पाश, पात्र और अभयमुद्रा धारण करती हैं।

३–अष्टभुजा कालीका ध्यान

अष्टबाहुर्महाकाया कालमेघसमप्रभा।
शङ्खचक्रगदाकुम्भमुसलांकुशपाशयुक्॥
वज्रं करे बिभ्रती सा महाकाली मुदेऽस्तु नः॥

जिनका शरीर विशाल है, जिनकी अङ्गकान्ति काले मेघके समान है, जो आठ भुजाओंसे सुशोभित हैं तथा उन भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, कुम्भ, मूसल, अंकुश, पाश और वज्र धारण करती हैं, वे महाकाली मेरे लिये आनन्ददायिनी हों।

४–प्रत्यङ्गिराका ध्यान

श्यामाभां च त्रिनेत्रां तां सिंहवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
ऊर्ध्वकेशीं च सिंहस्थां चन्द्राङ्कितशिरोरुहाम्।
कपालशूलडमरुनागपाशधरां शुभाम्।
प्रत्यङ्गिरां भजे नित्यं सर्वशत्रुविनाशिनीम्।

जिनकी अङ्गकान्ति श्याम है, जिनके तीन नेत्र और चार भुजाएँ हैं, जिनका मुख सिंहके मुख-सदृश है, जिनके केश ऊपर उठे रहते हैं, जो सिंहपर आरूढ होती हैं, जिनके बालोंमें चन्द्रमा शोभित होते हैं, जो कपाल, शूल, डमरू और नागपाश धारण करती हैं तथा समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाली हैं, उन मङ्गलकारिणी प्रत्यङ्गिराका मैं नित्य भजन करता हूँ।

५–अपराजिताका ध्यान

नीलोत्पलनिभां देवीं निद्रामुद्रितलोचनाम्।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यां निम्ननाभीवलित्रयाम्।
वराभयकराम्भोजां प्रणतार्तिविनाशिनीम्।
पीताम्बरवरोपेतां भूषणस्रग्विभूषिताम्॥
वरशक्त्याकृतिं सौम्यां परसैन्यप्रभञ्जिनीम्।
शङ्खचक्रगदाभीतिरम्यहस्तां त्रिलोचनाम्॥
सर्वकामप्रदां देवीं ध्यायेत् तामपराजिताम्॥

जिनकी कान्ति नीलकमल-सरीखी है, जिनके नेत्र निद्रासे मुँदे रहते हैं, जिनके केशोंके अग्रभाग नीले और घुँघराले हैं, जिनकी नाभि गहरी और त्रिवलीसे युक्त है, जो करकमलोंमें वरद और अभयमुद्रा धारण करती हैं, शरणागतोंकी पीडाको नष्ट करनेवाली हैं, उत्तम पीताम्बर धारण करती हैं, आभूषण और मालासे विभूषित रहती हैं, जिनकी आकृति श्रेष्ठ शक्तिसे युक्त और सौम्य है, जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाली हैं, जिनके

हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रासे सुशोभित रहते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो समस्त कामनाओंको देनेवाली हैं, उन अपराजिता देवीका ध्यान करना चाहिये ।

६. प्राणशक्तिदेवताका ध्यान

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान् ।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥

जो रक्तसागरमें स्थित पोत-सदृश उत्फुल्ल लाल कमलपर स्थित रहती हैं, करकमलोंमें पाश, ईखका धनुष, त्रिशूल, अंकुश, पञ्चबाण और रुधिरयुक्त कपाल धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं, स्थूल स्तनोंसे युक्त हैं और बाल सूर्य-सदृश वर्णवाली हैं, वे परादेवी प्राणशक्ति हमलोगोंके लिये सुखकारिणी हों ।

७. तुलसीदेवीका ध्यान

ध्यायेच्च तुलसीं देवीं श्यामां कमललोचनाम् ।
प्रसन्नां पद्मकह्लारवराभयचतुर्भुजाम् ॥
किरीटहारकेयूरकुण्डलादिविभूषिताम् ।
धवलांशुकसंयुक्तां पद्मासननिषेदुषीम् ॥

जिनके नेत्र कमल-सरीखे हैं, जो सदा प्रसन्न रहती हैं, चारों हाथोंमें पद्म, कह्लार तथा वरद और अभय मुद्रा धारण करती हैं, किरीट, हार, बाजूबंद, कर्णफूल आदिसे विभूषित रहती हैं, उज्ज्वल रेशमी वस्त्र धारण करती हैं, पद्मासनपर बैठती हैं, उन षोडशवर्षीया तुलसी देवीका ध्यान करना चाहिये ।

८. चतुर्भुजान्नपूर्णाका ध्यान

सिन्दूराभां त्रिनेत्राममृतशशिकलां खेचरीं रक्तवस्त्रां
पीनोत्तुङ्गस्तनाढ्यामभिनवविलसद्यौवनारम्भरम्याम् ।
नानालङ्कारयुक्तां सरसिजनयनामिन्दुसंक्रान्तमूर्तिं
देवीं पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरामन्नपूर्णां नमामि ॥

जिनकी अङ्ग-कान्ति सिन्दूर-सरीखी है, जो तीन नेत्रोंसे युक्त, अमृतपूर्ण शशिकला-सदृश, आकाशमें गमन करनेवाली, लाल वस्त्रसे सुशोभित, स्थूल एवं ऊँचे स्तनोंसे युक्त, नवीन उल्लसित यौवनारम्भसे रमणीय, विविध अलंकारोंसे युक्त हैं, जिनके नेत्र कमल-सदृश हैं, जिनकी मूर्ति चन्द्रमाको संक्रान्त करनेवाली है, जिनके हाथ पाश, अंकुश, अभय और वरद मुद्रासे सुशोभित हैं, उन अन्नपूर्णा देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ।

९. शीतलाका ध्यान

ध्यायेच्च शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥

जो गधेपर आरूढ़ होती हैं, दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं अर्थात् जो नग्न रहती हैं, जो मार्जनी और कलशसे युक्त रहती हैं, जिनका मस्तक सूपसे अलंकृत रहता है, उन शीतला देवीका ध्यान करना चाहिये ।

१०. त्वरिताका ध्यान

नागैः कल्पितभूषणां त्रिनयनां गुञ्जागुणालंकृतां
श्यामां पाशवराङ्कुशाभयवरां दोर्भिर्युतां बालिकाम् ।
पीतां पल्लववासिनीं शिखिशिखाचूडावतंसोज्ज्वलां
ध्यायाम्यन्वहमृक्षसिंहनिवहैः पीठस्थितां सुन्दरीम् ॥

जो नागोंके आभूषणोंसे सुसज्जित, तीन नेत्रोंसे युक्त, गुँथे हुए गुञ्जाफलके हारसे अलंकृत, षोडशवर्षीया, हाथोंमें पाश, अंकुश, वरद और अभय मुद्राओंसे विभूषित, बालिकास्वरूपिणी, पीले वर्णवाली और नूतन कोमल पत्तोंपर निवास करनेवाली हैं, जिनके मस्तकपर मयूर-पिच्छका मुकुट सुशोभित होता है, जो रीछों और सिंहोंके झुंडोंसे घिरी हुई पीठपर स्थित हैं, उन सुन्दरी त्वरिता देवीका मैं प्रतिदिन ध्यान करता हूँ ।

११. विजयाका ध्यान

शङ्खं चक्रं च पाशं सृणिमपि सुमहाखेटखड्गौ सुचापं
बाणं कह्लारपुष्पं तदनु करगतं मातुलुङ्गं दधानाम् ।
उद्यद्बालार्कवर्णां त्रिभुवनविजयां पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां
देवीं पीताम्बराढ्यां कुचभरनमितां संततं भावयामि ॥

जो अपने हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, पाश, अंकुश, विशाल ढाल, खडग, सुन्दर धनुष, बाण, कमल-पुष्प और बिजौरा नीबू धारण करती हैं, जिनका रंग उदयकालीन बालसूर्यके सदृश है, जो त्रिभुवनपर विजय पानेवाली हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, जो पीताम्बरसे विभूषित और स्तनोंके भारसे झुकी रहती हैं, उन विजयादेवीकी मैं निरन्तर भावना करता हूँ ।

१२. वनदुर्गाका ध्यान

अरिशङ्खकृपाणखेटबाणान् सधनुःशूलकतर्जनीं दधाना ।
मम सा महिषोत्तमाङ्गसंस्था नवदूर्वासदृशी श्रियेऽस्तु दुर्गा ॥

जो चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, शूल और कैंची धारण करती हैं तथा भैंसेके मस्तकपर स्थित रहती हैं, वे नवीन दूबकी-सी कान्तिवाली दुर्गा मेरे लिये श्री प्रदान करनेवाली हों ।

१३. नित्याका ध्यान

उद्यद्भानुसमप्रभां रससुखीं पाशाक्षसूत्रं धनुः
खेटं शूलमभीष्टदं च दधतीं वामैश्च षड्भिः करैः ।
दक्षैरङ्कुशपुस्तकेषुकुसुमं खडगं कपालाभयं
माणिक्याभरणोज्ज्वलां त्रिनयनां नित्यां भवानीं भजे ॥

जिनकी कान्ति उदयकालीन सूर्यके समान है, जिनका मुख सरस अर्थात् आनन्दवर्धक है, जो अपने वामभागके छहों हाथोंमें क्रमशः पाश, अक्षसूत्र, धनुष, खेट, शूल और वरदमुद्रा तथा दाहिने भागके छहों हाथोंमें क्रमशः अंकुश, पुस्तक, बाण, फूल, खडग, कपाल और अभयमुद्रा धारण करती हैं तथा माणिक्यके आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, उन नित्या भवानीका मैं भजन करता हूँ ।

१४. नवदुर्गाका ध्यान

(१) शैलपुत्रीदुर्गाका ध्यान

वन्दे वाञ्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्रीं यशस्विनीम् ॥

मैं मनोवाञ्छित लाभके लिये मस्तकपर अर्द्ध[illegible] धारण करनेवाली, वृषपर आरूढ होनेवाली, शूलधारि[illegible] यशस्विनी शैलपुत्री दुर्गाकी वन्दना करता हूँ ।

(२) ब्रह्मचारिणीदुर्गाका ध्यान

दधाना करपद्माभ्यामक्षमालाकमण्डलू ।
देवी प्रसीदतु मयि ब्रह्मचारिण्यनुत्तमा ॥

जो दोनों करकमलोंमें अक्षमाला और कमण्[illegible] धारण करती हैं, वे सर्वश्रेष्ठा ब्रह्मचारिणी दुर्गा[illegible] मुझपर प्रसन्न हों ।

(३) चण्डखण्डादुर्गाका ध्यान

अण्डजप्रवरारूढा चण्डकोपार्भटीयुता ।
प्रसादं तनुतां मह्यं चण्डखण्डेति विश्रुता ॥

जो पक्षिप्रवर गरुडपर आरूढ़ होती हैं, [illegible] कोप और रौद्रतासे युक्त रहती हैं तथा चण्डखण्डा ना[illegible] विख्यात हैं, वे दुर्गादेवी मेरे लिये कृपाका विस्तार क[illegible]

(४) कूष्माण्डादुर्गाका ध्यान

सुरासम्पूर्णकलशं रुधिराप्लुतमेव च ।
दधाना हस्तपद्माभ्यां कूष्माण्डा शुभदास्तु मे ॥

रुधिरसे परिप्लुत एवं सुरासे परिपूर्ण कलशको दो[illegible] करकमलोंमें धारण करनेवाली कूष्माण्डा दुर्गा मेरे लि[illegible] शुभदायिनी हों ।

(५) स्कन्ददुर्गाका ध्यान

सिंहासनगता नित्यं पद्माश्रितकरद्वया ।
शुभदास्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी ॥

जो नित्य सिंहासनपर विराजमान रहती हैं त[illegible] जिनके दोनों हाथ कमलोंसे सुशोभित होते हैं, [illegible] यशस्विनी दुर्गादेवी स्कन्दमाता सदा कल्याणदायिनी हों ।

(६) कात्यायनीदुर्गाका ध्यान

चन्द्रहासोज्ज्वलकरा शार्दूलवरवाहना ।
कात्यायनी शुभं दद्याद् देवी दानवघातिनी ॥

जिनका हाथ उज्ज्वल चन्द्रहास (तलवार) [illegible] सुशोभित होता है तथा सिंहप्रवर जिनका वाहन है, [illegible] दानवसंहारिणी दुर्गादेवी कात्यायनी मङ्गल प्रदान करें ।

(७) कालरात्रिदुर्गाका ध्यान

करालरूपा कालाब्जसमानाकृतिविग्रहा ।
कालरात्रिः शुभं दद्याद् देवी चण्डाट्टहासिनी ॥

जिनका रूप विकराल है, जिनकी आकृति और विग्रह कृष्ण कमल-सदृश है तथा जो भयानक अट्टहास करनेवाली हैं, वे कालरात्रिदेवी दुर्गा मङ्गल प्रदान करें ।

(८) महागौरीदुर्गाका ध्यान

श्वेतहस्तिसमारूढा श्वेताम्बरधरा शुचिः ।
महागौरी शुभं दद्यान्महादेवप्रमोददा ॥

जो श्वेत हाथीपर आरूढ़ होती हैं, श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, सदा पवित्र रहती हैं तथा महादेवजीको आनन्द प्रदान करती हैं, वे महागौरी दुर्गा मङ्गल प्रदान करें ।

(९) सिद्धिदायिनीदुर्गाका ध्यान

सिद्धगन्धर्वयक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि ।
सेव्यमाना सदा भूयात् सिद्धिदा सिद्धिदायिनी ॥

सिद्धों, गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और देवोंद्वारा भी सदा सेवित होनेवाली सिद्धिदायिनी दुर्गा सिद्धि प्रदान करनेवाली हों ।

१५. अष्टमहालक्ष्मीके स्वरूप और ध्यान

(१) द्विभुजा लक्ष्मीका ध्यान

हरेः समीपे कर्तव्या लक्ष्मीस्तु द्विभुजा नृप ।
दिव्यरूपाम्बुजकरा सर्वाभरणभूषिता ॥

राजन् ! दिव्य स्वरूपा, हाथमें कमल धारण करनेवाली, समस्त आभूषणोंसे विभूषित दो भुजावाली लक्ष्मीको भगवान् श्रीहरिके समीप स्थापित करना चाहिये । (इनके ऐसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ।)

(२) गजलक्ष्मीका ध्यान

लक्ष्मीः शुक्लाम्बरा देवी रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
पृथक् चतुर्भुजा कार्या देवी सिंहासने शुभा ॥
सिंहासनेऽस्याः कर्तव्यं कमलं चारुकर्णिकम् ।
अष्टपत्रं महाभागा कर्णिकायां सुसंस्थिता ॥
विनायकवदासीना देवी कार्या चतुर्भुजा ।
बृहन्नालं करे कार्यं तस्याश्च कमलं शुभम् ॥
दक्षिणे यादवश्रेष्ठ केयूरप्रान्तसंस्थितम् ।
वामेऽमृतघटः कार्यस्तथा राजन् मनोहरः ॥
तस्या अन्यौ करौ कार्यौ बिल्वशङ्खधरौ द्विज ।
आवर्जितकरं कार्यं तत्पृष्ठे कुञ्जरद्वयम् ॥
देव्याश्च मस्तके कार्यं पद्मं चापि मनोहरम् ।

श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली, भूतलपर अनुपम सौन्दर्यशालिनी, शुभमयी चतुर्भुजा लक्ष्मी देवीको सिंहासनपर पृथक् स्थापित करना चाहिये । उनके सिंहासनपर सुन्दर कर्णिकासे युक्त अष्टदल कमल बनाना चाहिये । उस कर्णिकापर महाभागा लक्ष्मी स्थित हों । विनायककी भाँति बैठी हुई देवीको चार भुजावाली बनाना चाहिये । यादवश्रेष्ठ ! उनके दाहिने हाथमें केयूरपर्यन्त स्थित विशाल नालवाला सुन्दर कमल धारण कराना चाहिये तथा राजन् ! बायें हाथमें मनोहर अमृतपूर्ण कलश स्थापित करे । द्विजवर ! उनके अन्य दोनों हाथोंमें बेल और शङ्ख धारण कराना चाहिये । उनके पृष्ठभागमें टेढ़े सूँड़वाले दो गजराजोंको स्थापित करे और देवीके मस्तकपर भी मनोहर कमल स्थापित करना चाहिये । (इनके ऐसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ।)

(३) महालक्ष्मीका ध्यान

कोल्हापुरं विनान्यत्र महालक्ष्मीर्यदोच्यते ।
लक्ष्मीवत्सा तदा कार्या सर्वाभरणभूषिता ॥
दक्षिणाधःकरे पात्रमूर्ध्वे कौमोदकीं ततः ।
वामोर्ध्वे खेटकं चैव श्रीफलं तदधःकरे ॥
बिभ्रती मस्तके लिङ्गं पूजनीया विभूतये ।

कोल्हापुरके अतिरिक्त अन्यत्र जब महालक्ष्मीका नाम लिया जाय, तब वहाँ उन्हें लक्ष्मीकी भाँति समस्त आभूषणोंसे भूषित करना चाहिये । उनके दाहिने भागके निचले हाथमें पात्र और उससे ऊपरवाले हाथमें कौमोदकी गदा तथा बायें भागके ऊपरवाले हाथमें ढाल और उससे निचले हाथमें श्रीफल (बेल) धारण कराना चाहिये । वे मस्तकपर लिङ्ग धारण करती हैं, ऐसी देवीका विभूतिके लिये पूजन (और ध्यान) करना चाहिये ।

(४) श्रीदेवीका ध्यान

पाशाक्षमालिकाम्भोजसृणिभिर्वामसौम्ययोः ।
पद्मासनस्थां ध्यायेत श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥

जो भगवती दक्षिण एवं वाम हस्तोंमें पाश, अक्षमाला, कमल और अंकुश धारण किये हुए हैं तथा पद्मासनपर स्थित हैं, उन त्रैलोक्यमाता महालक्ष्मीका ध्यान करना चाहिये ।

(५) वीरलक्ष्मीका ध्यान

वीरलक्ष्मीरितिख्याता वरदाभयहस्तिनी ।
ऊर्ध्वपद्मद्वयौ हस्तौ तथा पद्मासने स्थिता ॥

जो पद्मासनपर स्थित रहती हैं और जिनके ऊपरके दोनों हाथोंमें कमल विद्यमान रहते हैं और नीचेके हाथोंमें वरद और अभयमुद्रा सुशोभित होती हैं, वे देवी वीरलक्ष्मी नामसे विख्यात हैं । (उनका ध्यान करना चाहिये ।)

(६) द्विभुजा वीरलक्ष्मीका ध्यान

दक्षिणे त्वभयं विद्धि ह्युत्तरे वरदं, तथा ।
ऊरू पद्मदलाकारौ वीरश्रीमूर्तिलक्षणम् ॥

जो दाहिने हाथमें अभयमुद्रा तथा बायें हाथमें वरद-मुद्रा धारण करती हैं और जिनकी जाँघें कमलदलकी-सी आकारवाली हैं, यही वीरलक्ष्मीकी मूर्तिका लक्षण है । (ऐसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ।)

(७) अष्टभुजा वीरलक्ष्मीका ध्यान

पाशाङ्कुशाक्षसूत्रवराभयगदापद्मपात्रहस्ता कार्या ॥

अष्टभुजा वीरलक्ष्मीके हाथोंको पाश, अंकुश, अक्षसूत्र, वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, गदा, कमल और पात्रसे युक्त बनाना चाहिये । (इनके ऐसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ।)

(८) प्रसन्नलक्ष्मीका ध्यान

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम् ।
बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मं दधाना-
माद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥

जो परमोत्कृष्ट कल्याणमयी, शुद्ध स्वर्णकी-सी आभा-वाली, तेजःस्वरूपा, सुनहले वस्त्र धारण करनेवाली, समस्त आभूषणोंसे सुशोभित अङ्गवाली, हाथोंमें बिजौरा नीबूं, स्वर्णघट और स्वर्णकमल धारण करनेवाली, समस्त जीवोंकी माता तथा भगवान् विष्णुके वामाङ्कमें विराजमान रहनेवाली हैं, उन आद्या शक्तिकी मैं वन्दना (ध्यान) करता हूँ ।

१६. चतुःषष्टियोगिनीका ध्यान

अष्टाष्टकं प्रवक्ष्यामि योगिनीनां समासतः ।
आद्यष्टकं सुवर्णाभं त्रिशूलं डमरुं तथा ।
पाशं चासिं दधानं तद्ध्यायेत् सर्वाङ्गसुन्दरम् ।
अथ द्वितीयकं ध्यायेदक्षमालामथांकुशम् ।
दधानं पुस्तकं वीणां सुश्वेतमणिभूषणम् ।
ज्वालां शक्तिं गदां कुन्तं दधानं नीलवर्णकम् ।
ध्यायेत्तृतीयं शुभदमष्टकं शुभलक्षणम् ।
खड्गं खेटं पट्टिशं च दधानं परशुं तथा ।
धूम्रवर्णं चतुर्थं तद्ध्यायेदष्टकमादरात् ।
कुन्तं खेटं च परिघं भिंदिपालं तथैव च ।
पञ्चमाष्टकमेतद्धि श्वेतं स्यात्सुमनोहरम् ।
पीतं षष्ठमृषी रक्तमष्टमं च तडित्प्रभम् ।
कुन्तादिकं समं प्रोक्तं षडारभ्याष्टमान्तकम् ।
दिव्ययोगा महायोगा सिद्धयोगा महेश्वरी ।
पिशाचिनी डाकिनी च कालरात्री निशाचरी ।
कंकाली रौद्रवेताली हुंकारी भुवनेश्वरी ।
ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी शुष्काङ्गी नरभोजिनी ।
फट्कारी वीरभद्रा च धूम्राक्षी कलहप्रिया ।
रक्ताक्षी राक्षसी घोरा विश्वरूपा भयंकरी ।
कामाक्षी चोग्रचामुण्डा भीषणा त्रिपुरान्तका ।
वीरकौमारिका चण्डी वाराही मुण्डधारिणी ।
भैरवी हस्तिनी क्रोधदुर्मुखी प्रेतवाहिनी ।
खट्वाङ्गदीर्घलम्बोष्ठी मालती मन्त्रयोगिनी ।
अस्थिनी चक्रिणी ग्राहा कंकाली भुवनेश्वरी ।
कंटकी काटकी शुभ्रा क्रियादूती करालिनी ।
शङ्खिनी पद्मिनी क्षीरा ह्यसंधा च प्रहारिणी ।
लक्ष्मीश्च कामुकी लोला काकदृष्टिरधोमुखी ।
धूर्जटी मालिनी घोरा कपाली विषभोजिनी ।
चतुष्षष्टिस्समाख्याता योगिन्यो वरसिद्धिदाः ।

अब मैं योगिनियोंके आठ अष्टकोंका संक्षेपसे वर्णन कर रहा हूँ । प्रथम अष्टक सुवर्णकी-सी कान्ति

सर्वाङ्गसुन्दर है। वह त्रिशूल, डमरू, पाश तथा तलवार धारण करता है, उसका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। अक्षमाला, अंकुश, पुस्तक और वीणा धारण करनेवाले, मणिके आभूषणोंसे विभूषित, परमोज्ज्वल द्वितीय अष्टकका ध्यान करे। जो ज्वाला, शक्ति, गदा और कुन्त धारण करनेवाला, शुभदायक तथा नील वर्णवाला है, उस शुभलक्षण तीसरे अष्टकका ध्यान करना चाहिये। जो खड्ग, खेट, पट्टिश और परशु धारण करता है तथा जिसका धूम्र वर्ण है, उस चतुर्थ अष्टकका आदरपूर्वक ध्यान करे। जो कुन्त, खेट, परिघ और भिन्दिपाल धारण करता है, परम मनोहर है, जिसका श्वेत वर्ण है, वह पाँचवाँ अष्टक है। छठा अष्टक पीला, सातवाँ लाल और आठवाँ बिजलीकी-सी कान्तिवाला है। छःसे लेकर आठतकके अष्टकोंके कुन्त आदि अस्त्र समान कहे गये हैं।

(अब योगिनियोंके नामोंका वर्णन किया जा रहा है—)

१—दिव्ययोगा, २—महायोगा, ३—सिद्धयोगा, ४—महेश्वरी, ५—पिशाचिनी, ६—डाकिनी, ७—कालरात्री, ८—निशाचरी, ९—कंकाली, १०—रौद्रवेताली, ११—हुंकारी, १२—भुवनेश्वरी, १३—ऊर्ध्वकेशी, १४—विरूपाक्षी, १५—शुष्काङ्गी, १६—नरभोजिनी, १७—फट्कारी, १८—वीरभद्रा, १९—धूम्राक्षी, २०—कलहप्रिया, २१—रक्ताक्षी, २२—घोरा राक्षसी, २३—विश्वरूपा, २४—भयंकरी, २५—कामाक्षी, २६—उग्रचामुण्डा, २७—भीषणा, २८—त्रिपुरान्तका, २९—वीरकौमारिका, ३०—चण्डी, ३१—वाराही, ३२—मुण्डधारिणी, ३३—भैरवी, ३४—हस्तिनी, ३५—क्रोधदुर्मुखी, ३६—प्रेतवाहिनी, ३७—खट्वाङ्गदीर्घलम्बोष्ठी, ३८—मालती, ३९—मन्त्रयोगिनी, ४०—अस्थिनी, ४१—चक्रिणी, ४२—ग्राहा, ४३—कंकाली ४४—भुवनेश्वरी, ४५—कण्टकी, ४६—काटकी, ४७—शुभ्रा, ४८—क्रियादूती, ४९—करालिनी, ५०—शङ्खिनी, ५१—पद्मिनी, ५२—क्षीरा, ५३—असंधा, ५४—प्रहारिणी, ५५—लक्ष्मी, ५६—कामुकी, ५७—लोला, ५८—काकदृष्टि, ५९—अधोमुखी, ६०—धूर्जटी, ६१—मालिनी, ६२—घोरा, ६३—कपाली, ६४—विषभोजिनी। इस प्रकार ये चौंसठ उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाली योगिनियाँ बतलायी गयी हैं।

१७. षोडशमातृकाओंका स्मरण

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश॥

'गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माताएँ, लोकमाताएँ, धृति, पुष्टि, तुष्टि तथा अपनी कुलदेवता—इन सोलह मातृकाओंका गणपतिके साथ मङ्गलकार्यमें पूजन करना चाहिये।'

१८. सप्तघृतमातृकाओंका स्मरण

श्रीर्लक्ष्मीश्च धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती।
मङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः॥

'श्री (ह्रीं-भूमि), लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा और सरस्वती—ये सात घृतमातृकाएँ सभी मङ्गलकार्योंमें पूजी जाती हैं।'

१९. सप्तमातृकाओंके ध्यान

(१) ब्राह्मीका ध्यान

तत्र ब्राह्मी चतुर्वक्त्रा षड्भुजा हंससंस्थिता।
पिङ्गाभा भूषणोपेता मृगचर्मोत्तरीयका॥
वरं सूत्रं स्रुवं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात्।
वामे तु पुस्तकं कुण्डीं बिभ्रती चाभयंकरम्॥

सप्तमातृकाओंमें ब्राह्मी चार मुख और छः भुजाओंसे युक्त हैं। वे हंसपर सवार होती हैं। उनकी अङ्गकान्ति पीली है। वे आभूषणोंसे समुल्लसित और मृगचर्मके उत्तरीयसे विभूषित रहती हैं तथा दाहिने भागके तीनों हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, अक्षसूत्र और स्रुवा तथा बायें भागके तीनों हाथोंमें पुस्तक, कुण्डी और अभयमुद्रा धारण करती हैं।

(२) माहेश्वरीका ध्यान

माहेश्वरी वृषारूढा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना।
श्वेतवर्णा दशभुजा चन्द्ररेखाविभूषिता॥
खड्गं वज्रं त्रिशूलं च परशुं चाभयं वरम्।
पाशं घण्टां तथा नागमंकुशं बिभ्रती करैः॥

पाँच मुख, तीन नेत्र और दस भुजाओंसे युक्त माहेश्वरी वृषपर आरूढ़ होती हैं। उनका वर्ण श्वेत है और वे चन्द्ररेखासे विभूषित रहती हैं। वे अपने हाथोंमें क्रमशः एक ओर खडग, वज्र, त्रिशूल, परशु और अभयमुद्रा तथा दूसरी ओर पाश, घंटा, नाग, अंकुश और वरदमुद्रा धारण किये हैं।

(३) कौमारीका ध्यान

षडानना तु कौमारी पाटलाभा सुशीलका।
रविबाहुर्मयूरस्था वरदा शक्तिधारिणी॥
पताकां बिभ्रती दण्डं पात्रं बाणं च दक्षिणे।
वामे चापमथो घण्टां कमलं कुक्कुटं तथा।
परशुं बिभ्रती चैव तदधस्त्वभयान्विता॥

शोभन स्वभाववाली कौमारी छः मुख और बारह भुजाओंसे युक्त हैं। उनकी अङ्गकान्ति पाटल वर्णकी है। वे मयूरपर सवार होती हैं तथा अपने दायें भागके हाथोंमें वरदमुद्रा, शक्ति, पताका, दण्ड, पात्र और बाण तथा बायें भागके हाथोंमें धनुष, घंटा, कमल, कुक्कुट, परशु और अभयमुद्रा धारण करती हैं।

(४) वैष्णवीका ध्यान

वैष्णवी तार्क्ष्यगा श्यामा षड्भुजा वनमालिनी।
वरदा गदिनी दक्षे बिभ्रती च करेऽम्बुजम्।
शङ्खचक्राभयान् वामे सा चेयं विलसद्भुजा॥

वनमाला धारण करनेवाली एवं छः भुजाओंसे सुशोभित वैष्णवी गरुडपर आरूढ़ होती हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्याम है। वे दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, गदा और कमल धारण करती हैं तथा उनकी बायीं भुजाएँ शङ्ख, चक्र और अभयमुद्रासे सुशोभित होती हैं।

(५) वाराहीका ध्यान

कृष्णवर्णा तु वाराही महिषस्था महोदरी।
वरदा दण्डिनी खड्गं बिभ्रती दक्षिणे करे।
खेटपात्राभयान् वामे सूकरास्या लसद्भुजा॥

विशाल उदरवाली वाराही भैंसेपर सवार होती हैं। इनकी अङ्गकान्ति काली है। इनका मुख सूकरके समान है। ये अपने दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, दण्ड और खड्ग धारण करती हैं तथा इनकी बायीं भुजाएँ ढाल, पात्र और अभयमुद्रासे सुशोभित रहती हैं।

(६) ऐन्द्रीका ध्यान

ऐन्द्री सहस्रदृक् सौम्या हेमाभा गजसंस्थिता।
वरदा सूत्रिणी वज्रं बिभ्रत्यूर्ध्वं तु दक्षिणे।
वामे तु कमलं पात्रं ह्यभयं तदधःकरे॥

सौम्य स्वभाववाली ऐन्द्री सहस्र नेत्रोंसे युक्त हैं। उनकी अङ्गकान्ति स्वर्ण-तुल्य है। वे गजराजपर सवार होती हैं। वे अपने दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, अक्षसूत्र और ऊपरके हाथमें वज्र तथा बायें हाथोंमें कमल, पात्र और नीचेके हाथमें अभयमुद्रा धारण करती हैं।

(७) चामुण्डाका ध्यान

चामुण्डा प्रेतगा कृष्णा विकृता चाहिभूषणा।
दंष्ट्राली क्षीणदेहा च गर्ताक्षी कामरूपिणी।
दिग्बाहुः क्षामकुक्षिश्च मुसलं चक्रचामरे।
अंकुशं बिभ्रती खड्गं दक्षिणे चाथ वामके।
खेटं पाशं धनुर्दण्डं कुठारं चापि बिभ्रती॥

विकृत आकारवाली चामुण्डाके शरीरका रंग काला है। वे नागोंको आभूषणरूपमें धारण करती हैं। उनकी दाढ़ें विशाल हैं, देह दुबली-पतली है और आँखें धँसी हुई हैं। वे स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली हैं। उनकी दस भुजाएँ हैं और कुक्षि क्षीण है। वे प्रेतपर सवार होती हैं। वे दाहिने हाथोंमें मुसल, चक्र, चामर, अंकुश और खड्ग तथा बायें हाथोंमें ढाल, पाश, धनुष, दण्ड और कुठार धारण करती हैं।

श्रीश्री दुर्गासप्तशतीमहायन्त्रम्

[शतचण्डी प्रयोगे]

पूर्वा (देवी पश्चिमा)

बं बटुकाय नमः ८४

पं पद्माय नमः ८०

आं ब्रह्मणे नमः ७०

वं वज्राय नमः ७२

लं इन्द्राय नमः ६२

श्रीबगलामुखी-यन्त्र

॥ श्री बगलामुखी यन्त्रम्॥

(पृष्ठ सं० २७६)

श्रीदुर्गा-सप्तशतीकी संक्षिप्त कथा

उपक्रम—दूसरे मनुके राज्याधिकारमें 'सुरथ' नामक एक चैत्रवंशोय राजा हुए थे। जब शत्रुओं और दुष्ट मन्त्रियोंने उनका राज्य, खजाना और सेना सभी कुछ छीन लिया, तब वे शान्ति पानेके लिये मेधा ऋषिके आश्रममें पहुँचे। इसी बीच उस आश्रममें राजा सुरथकी समाधि नामक एक समदुःखी वैश्यसे भेंट हुई। राजा और वैश्य दोनों मेधा ऋषिके निकट पहुँचे और उन्हें नमनकर पूछे—'महाराज! कृपा करके बताइये कि जिन विषयोंमें दोष देखकर भी ममतावश हम दोनोंका मन उनमें लगा रहता है, क्या कारण है कि ज्ञान रहते हुए भी ऐसा मोह हो रहा है!'

ऋषिने कहा—'राजन्! ज्ञानियोंके चित्तोंको भी महामाया बलात् खींचकर मोहग्रस्त बना देती है।' यह सुनकर राजाने उन महामाया देवीके विषयमें प्रश्न किया। तब ऋषिने कहा—'वे भगवती नित्य हैं और उन्होंने सारे विश्वको व्याप्त कर रखा है। जब वे देवोंके कार्यके लिये आविर्भूत होती हैं, तब उन्हें 'उत्पन्ना' कहा जाता है।' राजाके पूछनेपर ऋषिने उन्हें पराशक्तिके तीन चरित्र बताये, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम चरित्र—जब प्रलयके पश्चात् शेषशय्यापर योगनिन्द्रामें निमग्न भगवान् विष्णुके कर्ण-मलसे मधु और कैटभ नामके दो असुर उत्पन्न हुए और वे श्रीहरिके नाभि-कमलपर स्थित ब्रह्माको ग्रसनेके लिये उद्यत हो गये, तब ब्रह्माने भगवती योगनिद्राकी स्तुति करते हुए उनसे तीन प्रार्थनाएँ कीं—१—भगवान् विष्णुको जगा दीजिये, २—उन्हें दोनों असुरोंके संहारार्थ उद्यत कीजिये और ३—असुरोंको विमोहित कर श्रीभगवान्‌द्वारा उनका वध करवाइये।' तब भगवतीने ब्रह्माको दर्शन दिया। भगवान् योगनिद्रासे उठकर असुरोंसे युद्ध करने लगे। दोनों असुरोंने योगनिद्राद्वारा मोहित कर दिये जानेपर भगवान्‌से वर माँगनेको कहा। अन्तमें उसी वरदानके अनुसार वे भगवान् विष्णुद्वारा मारे गये।

मध्यम चरित्र—प्राचीनकालमें महिष नामक एक महाबली असुरने जन्म लिया। वह अपनी अदम्य शक्तिसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु तथा अन्य सभी देवोंको पराजित कर स्वयं इन्द्र बन बैठा और सभी देवोंको स्वर्गसे निकाल दिया। स्वर्गसुखसे वञ्चित देव मृत्युलोकमें भटकने लगे। अन्तमें उन लोगोंने ब्रह्माके साथ भगवान् विष्णु और शिवके निकट पहुँचकर अपनी कष्ट-कथा कह सुनायी। देवोंकी करुण-कहानी सुनकर हरि-हरके मुखसे एक महान् तेज निकला। तत्पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यमादि देवोंके शरीरोंसे भी तेज निकले। वह तेज एकत्र होकर एक दिव्य देवीके रूपमें परिणत हो गया।

विधि, हरि और हर त्रिदेवोंने तथा अन्य प्रमुख देवोंने उस तेजोमूर्तिको अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। तब देवी अट्टहास करने लगी, जिससे त्रैलोक्य काँप उठा। उस अट्टहासको सुनकर असुरराज सम्पूर्ण असुरोंको साथ लेकर उस शब्दकी ओर दौड़ पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने उग्र स्वरूपा देवीको देखा। फिर तो वे सभी असुर देवीसे युद्ध करने लगे। भगवती और उनके वाहन सिंहने कई कोटि असुरोंका विनाश कर दिया। भगवतीके हाथों असुरके पंद्रह सेनानी—चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, बाष्कल, ताम्र, अन्धक, असिलोमा, उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु, विडालास्य, महासुर, दुर्धरऔर दुर्मुख आदि मारे गये। तब महिषासुर महिष, हस्ती, मनुष्यादिका रूप धारणकर भगवतीसे युद्ध करने लगा और अन्तमें मारा गया।

अपने समग्र शत्रुओंके मारे जानेपर आह्लादित हो देवोंने आद्याशक्तिकी स्तुति की और वर माँगा कि 'हम-लोग जब-जब दानवोंद्वारा विपद्ग्रस्त हों, तब-तब आप हमें आपदाओंसे विमुक्त करें तथा इस चरित्रको पढ़ने-सुननेवाला प्राणी सम्पूर्ण सुख-ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाय।' 'तथास्तु' कहकर देवीने देवोंको ईप्सित वरदान दिया और स्वयं तत्काल अन्तर्धान हो गयीं।

उत्तर चरित्र—पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो महापराक्रमी असुर हुए। उन्होंने इन्द्रका राज्य और यज्ञोंका भागतक छीन लिया। वे दोनों सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, पवन और अग्निके अधिकारोंके अधिपति बन बैठे।

तब देव शोकग्रस्त हो मर्त्यलोकमें आये और हिमालयपर पहुँचकर करुणार्द्र हृदयसे प्रार्थना करने लगे। भगवती पार्वती प्रकट हुईं। उन्होंने देवोंसे पूछा—'आपलोग किसकी स्तुति कर रहे हैं?' इसी समय देवीके शरीरसे 'शिवा' निकलीं और कहने लगीं—'शुम्भ-निशुम्भसे पराजित होकर स्वर्गसे निकाले गये ये इन्द्रादिदेव मेरी स्तुति कर रहे हैं।' पार्वतीके शरीरसे निकलनेके कारण अम्बिका 'कौशिकी' कहलायीं। उनके निकल जानेसे पार्वती कृष्णवर्णा हो गयीं तथा 'काली' नाम धारणकर हिमालयपर रहने लगीं।

इधर परमसुन्दरी अम्बिकाको शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्डने देखा तो दोनोंने जाकर शुम्भसे उनके अतुल सौन्दर्यकी प्रशंसा की। भृत्योंकी बात सुनकर शुम्भने सुग्रीव नामक असुरको अम्बिकाको ले आनेके लिये भेजा। सुग्रीवने भगवतीके पास पहुँचकर शुम्भ-निशुम्भके ऐश्वर्य और शौर्यकी प्रशंसा करते हुए उनसे परिग्रह (विवाह) की बात कही। देवीने उत्तर दिया—'जो मुझे संग्राममें पराभूत करके मेरे बल-दर्पको नष्ट करेगा, उसीको मैं पतिरूपमें स्वीकार करूँगी, यही मेरी अटल प्रतिज्ञा है।' सुग्रीवने शुम्भ-निशुम्भके निकट पहुँचकर भगवती अम्बिकाकी प्रतिज्ञा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। असुरेन्द्रोंने कुपित होकर देवीको बाल पकड़कर खींच लानेके लिये धूम्रलोचन असुरको भेजा, किंतु देवीने तो हुंकारमात्रसे ही उसे भस्म कर दिया।

पश्चात् असुरराजने भारी सेनाके साथ चण्ड-मुण्ड नामक असुरोंको भगवती कौशिकीको पकड़ लानेके लिये भेजा। वे वहाँ पहुँचकर भगवतीको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। तब उनके ललाटसे भयानक काली देवी प्रकट हुईं। उन्होंने सारी असुर-सेनाका विनाश कर दिया और चण्ड-मुण्डका सिर काटकर वे अम्बिकाके पास ले आयीं। इसी कारण उनका नाम 'चामुण्डा' पड़ा। चण्ड-मुण्डका वध सुनकर असुरेशने सात सेनानायकोंको भगवतीसे युद्ध करनेके लिये भेजा। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वराह, नृसिंह, कार्तिकेय—इन सात प्रमुख देवोंकी शक्तियाँ असुर-सेनाके साथ युद्ध करनेके लिये आ पहुँचीं। फिर अम्बिकाके शरीरसे भयंकर शक्ति निकली, जो लोकमें शिवदूती नामसे विख्यात हुई। उसने ईशानको शुम्भ-निशुम्भके पास भेजकर कहलाया कि यदि तुमलोग अपना कल्याण चाहते हो तो देवताओंके लोक और यज्ञाधिकार उन्हें लौटाकर पातालमें चले जाओ।

बलोन्मत्त शुम्भ-निशुम्भ देवीकी बातकी अवहेलना करके युद्धस्थलमें सेनासहित आ डटे। भगवतीने देव-शक्तियोंकी सहायतासे असुरसैन्यका संहार प्रारम्भ कर दिया, तब असुर-सेनाध्यक्ष रक्तबीज भगवती और देवशक्तियोंसे युद्ध करने लगा। उसके शरीरसे जितने रक्तबिन्दु भूमिपर गिरते थे उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। अन्तमें देवीने चामुण्डाको आज्ञा दी कि वह अपने मुखका विस्तारकर रक्तबीजके शरीरके रक्तको अपने मुखमें ले ले और इस तरह उन नये असुरोंका भक्षण कर डाले। चामुण्डाने ऐसा ही किया और भगवतीने उस असुरका सिर काट डाला। तत्पश्चात् निशुम्भ भगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया।

अब शुम्भने क्रोधित होकर अम्बिकासे कहा—'तू दूसरेका बल लेकर अभिमान कर रही है।' भगवतीने उत्तर दिया—'संसारमें मैं एक ही हूँ। ये समस्त मेरी विभूतियाँ हैं। ये मुझसे ही उत्पन्न हुई हैं और मुझमें ही विलुप्त हो जायँगी।' इसके बाद सातों शक्तियाँ देवीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और शुम्भ भी देवीके कौशलसे मारा गया। देवगणने हर्षित होकर अम्बिकाकी स्तुति की। अन्तमें प्रसन्न होकर देवी बोलीं—'संसारका उपकार करनेवाला वर माँगिये।' देवोंने कहा—'जब-जब हमारे शत्रु उत्पन्न हों, आप उनका नाश कर हमें आश्वस्त करें।' भगवती आद्याशक्तिने 'एवमस्तु' कहा और भविष्यमें सात बार भक्तरक्षणार्थ अवतार लेनेकी कथा तथा दुर्गाचरित्रके पाठका महात्म्य वर्णन कर वे अन्तर्धान हो गयीं।

उपसंहार—भगवतीकी उत्पत्ति और प्रभावके तीन चरित्र सुनाकर मेधा ऋषिने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको भगवतीकी उपासनाका आदेश दिया। दोनोंने कठोर उपासना की। अन्तमें देवीने प्रकट होकर राजाको उनका राज्य पुनः वापस होने तथा वैश्यको ज्ञान-प्राप्तिका वरदान दिया। उस वरदानके प्रभावसे राजा सुरथ सूर्यसे उत्पन्न होकर सावर्णि मनु हो गये।

माँके श्री चरणोंमें

माँ ! करुणामयी माँ ! यह तुम्हारा असहाय, अबोध, अज्ञानी, किंकर्तव्य-विमूढ़ बालक तेरे चरणोंकी शरण है । हे अम्ब ! मुझे यह ज्ञात है कि मैं तुम्हारा योग्य पुत्र नहीं हूँ । माँ ! तेरी आराधना तो मैं क्या कर सकता हूँ ? मुझे तो स्तुति-प्रार्थना करनी भी नहीं आती । हे मातः ! अपने मनकी बात कहनी तो दूर रही, मैं तो भलीभाँति रोना भी नहीं जानता । माँ ! दीन-वत्सले ! मुझ-जैसा अयोग्य बालक तेरे चरणारविन्दोंका स्पर्श करनेका भी अधिकारी कैसे हो सकता है ? फिर भी हे अम्ब ! मुझे यह विश्वास है कि अधम-से-अधम एवं पतित-से-पतित पुत्रकी भी अम्बा उपेक्षा नहीं करती—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

'पुत्र कुपुत्र भले हो जाय, पर माता कुमाता नहीं हो सकती ।'

हे माँ ! जगत्में सबसे उपेक्षित हूँ मैं । संसारसे संतप्तकी रक्षा सिवा तुम्हारे और कौन कर सकता है ? जगज्जननी ! कितना भीषण है यह संसार ! यहाँ सभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेषसे संतप्त हो रहे हैं । आधि, व्याधि और मानसिक व्यथाओंने सबको आतंकित, आप्लावित कर रखा है । राज्यका छिन जाना, धन-सम्पत्ति और पुत्रका नाश, प्रिय पत्नीका नष्ट हो जाना, पतिका वियोग, सुहृदोंका अभाव आदि संसारमें अनन्त क्लेश और दुःख हैं, जो प्राणियोंको परितप्त किये रहते हैं । दीनवत्सले ! ऐसी विपत्तिकी घड़ीमें भी आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करनेकी क्षमता हममें नहीं है । हे दयार्णवरूपे ! आपके कृपा-कटाक्षसे ही आपके चरणारविन्दोंमें शरणागति-योग्य हो सकता हूँ। माँ ! आपके चरणोंकी शरणागति भी तो आपकी कृपाका ही फल है ? माँ ! मैंने सुना है कि आपके ये चरण अशरण-शरण हैं । आपका हृदय अकारण-करुण है । दीनरक्षामणि ! क्या इस दीन-हीन, असहाय, अबोध बालकको अपने चरणारविन्दोंका किङ्कर नहीं बनायेंगी ?

हे अशरण-शरण, कल्याणमयी माँ ! इस असार संसारमें अब कोई दूसरा अवलम्ब नहीं है । बिना तुम्हारी कृपादृष्टिकी वृष्टिके जगत्के सभी उपाय, सब साधन व्यर्थ हैं । संसारमें प्राकृत माता-पिता बालककी रक्षा करना चाहते हैं, किंतु अम्ब ! तुम्हारी कृपाके बिना वे भी रक्षा नहीं कर पाते। उनके सतत प्रयत्नशील रहने-पर भी बालककी मृत्यु हो जाती है ! आर्तप्राणोंको बचानेवाली औषध भी आर्तको नहीं बचा सकती; क्योंकि औषध सेवन करते हुए भी प्राणीको मरते देखा गया है । समुद्रमें डूबतेको जलयान बचाता है, पर तुम्हारे कृपा-कटाक्षके बिना माँ ! जहाज भी डूब ही जाता है । माँ ! तुम्हारी कृपासे ही सौभाग्यशालियोंको

सद्बुद्धि प्राप्त होती है, दिव्य वैराग्य होता है, तुम्हारे चरणोंमें प्रीति होती है। यह सब तुम्हारी अहैतुकी कृपाका ही फल है।

हे कल्याणमयी जननी ! एक बार अपनी अनुकम्पाभरी करुण-कोमल दृष्टिसे मेरी ओर निहार दो। माँ, मेरी माँ ! दृढ़ विश्वास है कि तेरे कृपा-कटाक्षके पड़नेसे मेरे सारे कष्ट समाप्त हो जायँगे, मेरी सारी विपत्तियोंका अन्त हो जायगा।

बस, माँ ! ! माँ ओ माँ ! ! अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। इसलिये एक बार मेरी ओर निहार दो। सब कुछ मिल गया मुझे ! 'मैं' और 'मेरा' जो कुछ भी है, सब तेरा ही है, मेरा कुछ भी नहीं। मेरी तो केवल तुम ही हो और मैं तेरा हूँ, माँ ! इसके सिवा मुझे कुछ भी मालूम नहीं। केवल एक बात जानता हूँ। माँ ! इस संसारमें मेरे-जैसा दोषोंसे परिपूर्ण कोई पातकी नहीं, अधम नहीं और न कोई ऐसा पापात्मा हो सकता है, पर तेरे-जैसी पापघ्नी भी कौन हो सकती है माँ ?

परित्राण-परायणे शरणागत-वत्सले, कृपामयी, करुणामयी, कल्याणमयी अम्ब ! इस शरणागत दीन-आर्त शिशुको अपने चरणोंमें आश्रय प्रदान करो—

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि। एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्य तथा कुरु॥

× × × ×

हे जगज्जननी ! तुम्हीं सिद्धि-बुद्धि-स्वरूपा गणपतिप्रिया अम्बिका हो !

माँ ! तुम्हीं विधिप्रिया सरस्वतीस्वरूपा हो। माँ ! तुम्हारा यह हृदयहारी मङ्गलमय रूप ! श्वेत पद्मकी सुविकसित पँखुड़ियोंपर सुखासीन तुम्हारा श्रीविग्रह ! तुम्हारा शुभ्र वाहन हंस जलमें केलि-कुरल कर रहा है। वाम हस्तमें धारित दिव्य वीणाके स्वर्णिम तारोंपर तुम्हारे दक्षिण हस्तकी कोमल अङ्गुलियाँ नाच रही हैं। शेष—एक हाथमें वेद है, तो दूसरे हाथमें अभयमुद्रा। माँ ! स्निग्ध-कोमल, दिव्य, धवल-कान्तियुक्त कितनी भव्य, कितनी चित्ताकर्षक तुम्हारी पावन मङ्गलमूर्ति है ! इसे देखकर हृदयमें पावनताका महासमुद्र उमड़ पड़ता है। प्राणोंको तुम्हारी तेजोमयी, स्निग्ध-मधुर-कोमल कान्ति प्रेमपूरित कर रही है। माँ ! तुम विद्या, बुद्धि, विवेक और ज्ञानकी देवी हो ! कैसा सुमङ्गलमय, परमपावन, परम कल्याणकारी तुम्हारा दिव्य सुन्दर स्वरूप है माँ ! जो अपलक निहारते ही रहते बनता है—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

वरदायिनी माँ ! इस जगत्‌में सभीको कल्याणकारिणी विमल धर्म बुद्धि प्रदान करो, यह मेरी विनम्र विनती है।

माँ ! अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी ऐश्वर्याधिष्ठात्री, विष्णुप्रिया महालक्ष्मी भी तो तुम्हीं हो। सकल ऋद्धि-सिद्धिकी अधिष्ठात्री, समस्त वैभवोंकी जननी, समस्त सुख-सौभाग्य और ऐश्वर्यकी दात्री हो तुम ! रक्तकमलपर तुम्हारे कोमल चरण समासीन हैं। कैसा सुन्दर रूप है ! एक हाथमें शङ्ख है, दूसरेमें चक्र, तीसरे हाथसे तुम अभय-दान दे रही हो तो चौथे हाथमें पद्म है। माँ ! माँ ! ! तुम्हारी आँखोंसे कैसी स्निग्ध द्युति छलक रही है। इसी रूपमें समस्त विश्व, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड तुम्हारे चरणोंमें अपना हृदयकमल समर्पित कर रहे हैं। माँ नारायणी ! तेरी जय हो, जय हो !

हे जगदम्ब ! तुम्हीं तो कामेश्वराङ्कनिलया, अनन्तब्रह्माण्डजननी, षोडशी पराम्बा महात्रिपुरसुन्दरी हो। जगज्जननी महासती पार्वती तुम्हारा ही नाम है। तुम्हींको न, त्रिभुवनमोहन शंकरने वरा था। माँ ! तुम्हारा कैसा मङ्गल रूप है। मेरी मातेश्वरी ! तुम्हारे पावन चरणकमलोंमें मेरे सादर सभक्ति कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

हे जगज्जननि ! अशरण-शरण, मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रकी परमप्रिया प्रियतमा सीता भी तो तुम्हीं हो। पातिव्रतके आदर्शरूप तथा सेवा, समर्पण, त्याग एवं आत्माहुतिके प्रसङ्गमें सदैव सीतारूपसे तुम्हीं अमर हो। माँ ! तुम्हारे चरणोंमें सहस्र-सहस्र विनम्र प्रणिपात स्वीकार हों।

चिन्मयी, निर्विशेष-निर्गुण-निराकार और सगुणसाकारस्वरूपा माँ ! तुम्हीं तो नटनागर श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राणेश्वरी, रास-रासेश्वरी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधारानी हो ! प्रेमके आदर्श-लोकमें समर्पणकी प्रखर विद्युत्किरण छिटकाकर, माधवकी वंशीमें अपने प्राणोंकी झङ्कार मिलाकर तुम प्रेमलोककी अधिष्ठात्री बन गयी हो। सुर-नर-मुनि सेवित तुम्हारे उन्हीं मधुमय कमल-कोमल चरणोंमें मेरा कोटि-कोटि सभक्ति प्रणाम ! माँ मेरी प्रेममयी माँ !!

जगद्धात्री माँ ! परब्रह्ममहिषी साक्षात् परब्रह्मविद्यारूपिणी तुम्हीं हो और तुम्हीं प्रत्यक्-चैतन्य ब्रह्मस्वरूप गायत्री भी हो। माँ ! तुम्हीं दश महाविद्या तथा अनन्त उपविद्यास्वरूपा हो। निगमागमवन्दिते ! सर्वशास्त्र-महातात्पर्यगोचरे भगवती ! सर्वातीत होती हुई भी तुम सर्वस्वरूपा हो, सर्वस्त्री-स्वरूपा, सर्वपुरुष-स्वरूपा, जड-चैतन्य एवं चराचर-स्वरूपा भी तुम्हीं हो। माँ ! तुम्हारे सुकोमल मधुर चरणारविन्दोंमें कोटि-कोटि साष्टाङ्ग प्रणाम ! माँ ! मेरी आनन्दमयी-प्रेममयी माँ !

—तेरे चरणोंका 'चञ्चरीक'

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ५ ॥
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥ ६ ॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १० ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥ ११ ॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥ १२ ॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥ १३ ॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ १४ ॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ १५ ॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ १६ ॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ १७ ॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥ १८ ॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥ २० ॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम् ॥ २१ ॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम्।

जो प्रतिदिन दुर्गाजीके इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है।

प्रसाद

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यकी दृष्टिमें शक्ति-उपासना

समस्त निगमागम-पारदृश्वा, परम परात्परज्ञ भगवान् आद्यशंकराचार्य नित्य-शुद्ध-बुद्ध ब्रह्मनिष्ठ वेदान्ती थे, यह उनके उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र आदिके भाष्यों एवं प्रकरण-ग्रन्थोंसे सुस्पष्ट है। फिर भी उनकी शक्त्युपासना भी अद्वितीय श्रेणीकी रही, यह भी उनके ललितात्रिशती-भाष्य, 'सौन्दर्य-लहरी'-जैसे पचासों देवी-स्तोत्रों तथा 'प्रपञ्चसार' आदि मौलिक आगम ग्रन्थोंसे प्रत्यक्ष सिद्ध है।

उनके द्वारा निबद्ध 'प्रपञ्चसार' ३६ पटलों और ३ हजार छन्दोंका विशाल ग्रन्थ है, जिसपर श्रीपद्मपादाचार्यका ज्ञानमय श्रेष्ठ भाष्य और 'प्रयोगक्रमदीपिका' नामक बृहत् विवरणात्मक वृत्ति है। वस्तुतः यह भाष्य अपने आपमें एक अनमोल अद्वितीय स्वतन्त्र आगमग्रन्थ ही है। वास्तवमें आचार्यश्रीका यह प्रपञ्चसार 'शारदातिलक', 'श्रीविद्यार्णव', 'बृहत्तन्त्रसार', 'मन्त्रमहोदधि' आदि आगमशास्त्रके प्राणभूत ग्रन्थोंका मूल उद्गम कहा जा सकता है और समस्त आगमिक ज्ञानके अधिकारी पश्चाद्वर्ती विद्वान् लक्ष्मणदेशिक, सायणाचार्य, विद्यारण्य मुनि, आचार्य महीधर, राघवभट्ट, कृष्णानन्द, आगमवागीश आदिका प्रबल पथप्रदर्शक रहा है।

'प्रपञ्चसार' में 'शक्ति' शब्द भिन्न-भिन्न अर्थोंमें प्रायः तीन सौ बार प्रयुक्त हुआ है। आरम्भसे ७ पटलोंतक तो शारदा, स्वर्णवर्णा, कुण्डलिनी, कला, मातृका, शक्तिपातात्मिका दीक्षा आदिके रूपमें 'शक्ति' की ही व्याख्या की गयी है। ७ वें पटलके ७० श्लोकोंमें, आठवें पटलके ४५ से ६० श्लोकोंतक १६ श्लोकोंमें तथा द्वितीय पटलमें ४० से ४२ श्लोकोंमें शक्तिके मन्त्र तथा अर्थ प्रतिपादित हैं। आठवें पटलके ४५ से ६० श्लोकोंतक शारदाकी सुरम्य स्तुति की गयी है। आचार्य कहते हैं—

पुस्तकजपवटिहस्ते वरदाभयचिह्नबाहुलते।
कर्पूरामलदेहे वागीश्वरि विशोधयाशु मम चेतः॥
(पटल ८, श्लोक ५१)

अर्थात् कर्पूरके समान उज्ज्वलवर्णाङ्गी भास्वती भगवती शारदे! आप सकलनिगमागमस्वरूपा हैं। आपके चारों हाथोंमें क्रमशः पुस्तक, जपमाला, वर और अभयमुद्रा हैं। आप कृपया मेरे चित्तको पूर्णरूपसे शीघ्र शुद्ध-निर्मल कर दें।

आचार्यने प्रस्तुत ग्रन्थोंमें भुवनेश्वरी आदि महाशक्तियोंकी अनेक शक्तियोंका जैसा वर्णन किया है, उनके नाम, ध्यान, वर्णादि बताये हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। विभिन्न पटलोंमें भुवनेश्वरी, गायत्री, सरस्वती, अपराजिता, लक्ष्मी, नित्या, विलासिनी, मातङ्गी, सर्वमङ्गला आदिके पञ्चाङ्ग निरूपित हैं।

शक्ति क्या है?

आचार्यकी दृष्टिमें शक्ति ही विश्वसारा, परमप्रधान, प्रपञ्चकी सारसर्वस्वभूता वस्तु है और इसी प्रपञ्चका सार 'प्रपञ्चसार' है। कहा भी है—'**प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते।**' (१।२६) ये भगवती ब्रह्मा, विष्णु, महादेवसे लेकर सभी देव-मुनि, मानव-दानवोंको वशीभूत कर आगे बढ़कर भी पराशक्तिके रूपमें अतिवर्तन करती हैं। दूसरे पटलमें प्रणव, ह्रींकार और कुण्डलिनीको ही वे पराशक्ति कहते हैं। ३० वें पटलमें गायत्रीदेवीको सभी शक्तियोंका मूल कहा है। इस पटलमें 'शक्ति' शब्द विशेषरूपसे बार-बार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार विष्णुकी शक्तियोंका भी विवरण है। इसमें देवियोंके श्रेष्ठ स्तोत्र भी हैं। फिर 'सौन्दर्यलहरी', त्रिपुरसुन्दरी, मानसपूजा आदि उनके द्वारा रचित १०० के लगभग स्तोत्र निर्णयसागर प्रेसके स्तोत्र-संग्रह (भाग-२) में संगृहीत हैं, जो परम ज्ञानमय एवं भक्तिमय हैं।

आदिशंकराचार्यकी दृष्टिमें अवान्तर शक्तियाँ

भागवतकारने शक्तिके विषयमें यह उल्लेख किया है कि वह निगमरूपी कल्पवृक्षका सुपरिपक्व मधुर फल है।[1] श्रीमद्भागवतमें भी अन्यत्र **'उपचितनवशक्तिभिरात्मन्'** आदि संकेत यह प्रमाणित करते हैं कि इस सम्बन्धमें भागवतकारकी दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट है, किंतु खेदका विषय है कि एकपक्षीय दृष्टिके कारण पश्चाद्वर्ती १२ टीकाओंमें कहीं भी भगवान् विष्णुकी नौ शक्तियोंमेंसे किसी एकका भी निर्वचन नहीं हो पाया। जो भी हो, आगम-शास्त्र इस ओर पर्याप्त जागरूकताका परिचय देते हैं। भगवान् आदिशंकराचार्यने विष्णुकी नौ शक्तियोंका परिचय इस प्रकार दिया है—

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा ततः परम्।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्राह्या नवमी तथा॥
(प्रपञ्चसारतन्त्र-२०। २९, शारदातिलक १५। २५)

आगमों तथा दुर्गा-सप्तशतीके ८वें एवं ११ वें अध्यायोंमें शैवी, शान्ता, ब्रह्माणी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, माहेश्वरी, चामुण्डा, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, गुणोदरी, विरजा, लोलाक्षी, ज्वालामुखी आदि पचासों शक्तियोंका निर्देश किया गया है। शक्तिनिधिमें भी कारणागम आदिसे अक्षर, वर्णकी शक्तियोंसहित ५०० शक्तियोंका निर्देश है।

जिस प्रकार शारदातिलकमें भगवान् विष्णुकी नौ शक्तियाँ निर्दिष्ट हैं, उसी प्रकार शिवागम, शक्तियामलादिमें शिवकी भी रौद्री, वामा, ज्येष्ठा, काली, कलपदावली, विकरिणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी— ये शैवपीठकी नौ शक्तियाँ हैं। (शा० ति० १८। १५-१६) नारायणीय एवं प्रयोगसारमें इनके क्रमसे श्वेत, रक्त, कृष्ण, पीत, श्याम आदि वर्ण भी निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या और विघ्ननाशिनी—ये नौ गणपतिकी पीठ-शक्तियाँ हैं (शारदाति० १३। ८)।

दुर्गा, त्रिपुरा, लक्ष्मीकी अवान्तर शक्तियाँ भी प्रपञ्चसारमें विस्तारसे निर्दिष्ट हैं। जैसे—जया, विजया, भद्रा, भद्रकाली, सुमुखी, दुर्मुखी, व्याघ्रमुखी, सिंहमुखी और दुर्गा—ये नौ दुर्गाकी शक्तियाँ हैं (शारदाति० २१। ४३-४५)। इसी प्रकार दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा आदि सूर्यकी नौ शक्तियाँ बतायी गयी हैं। गायत्रीकी भी नौ शक्तियाँ बतायी गयी हैं। इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, नंदा, और मनोन्मनी—ये नौ त्रिपुराकी पीठशक्तियाँ हैं— (प्रपञ्चसार २१। १४। ३९-४०)।

रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, रात्रिदा, आर्द्रा, ज्योति, कला आदि चन्द्रमाकी नौ शक्तियाँ हैं (प्रपञ्चसार २१)। सारांश, आचार्यपाद शक्तियोंके विभिन्न रूपोंका प्रतिपादन करते हैं और उनकी दृष्टिमें वे सभी परमात्मा या शिवसे अभिन्न हैं। विश्वप्रपञ्चकी अवस्थितिमें शिव-शक्ति दोनोंकी महिमाका युगपत् निरूपण आचार्यके लिये अपरिहार्य था। जहाँतक अद्वैतकी भूमिकामें निष्कल परमशिवसम्बन्धी उनकी इतर मान्यताका प्रश्न है, वह तो सर्वथा तात्त्विक ही है। उपर्युक्त प्रकारसे शक्तिका भी विपुल विवेचन देखकर यह कहा जा सकता है कि शक्ति-उपासनाके क्षेत्रमें भी वे किसी भी चरम कोटिके शक्ति-उपासकसे किञ्चित् भी पीछे नहीं हैं।

परब्रह्म और शक्ति

निःसंदेह भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य शक्तिवादके अनन्य असाधारण पोषक कहे जा सकते हैं। यही कारण है कि 'सौन्दर्य-लहरी'के प्रारम्भमें ही वे कहते हैं कि 'शक्तिसे युक्त होनेपर ही शिव विश्वके बड़े-से-बड़े कार्य कर पाते

१. 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' (श्रीमद्भागवत १। १। ३)

हैं।' इसके विपरीत यदि वे शक्तिसे युक्त न हों तो सामान्य हलचल, स्पन्दनतक करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये हरि-हर-ब्रह्मादि देवोंके समान जिसने कभी तनिक भी पुण्य अर्जन न किया हो ऐसा पुरुष तुम-जैसी आराध्याकी प्रणति या स्तुति कर ही कैसे सकता है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरि-हर विरिञ्चादिभिरपि
प्रणमन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥

यही नहीं, आचार्यपादने तो शक्तिको शिवरूप आत्माका शरीर ही कहा है। शरीर आत्माके बिना नहीं रह सकता और न आत्मा ही शरीरके बिना व्यक्तता पा सकता है। दोनों ही परस्पराश्रित कहे जा सकते हैं। यथा—

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति भवात्मानमनघम्।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दरसयोः॥

आचार्य ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कहते हैं—'**नहि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्व सिद्ध्यति, शक्तिरहितस्य तस्य प्रवृत्त्यनुपपत्तेः।**' अर्थात् शक्तिके बिना परमेश्वर स्रष्टा ही नहीं हो सकते; क्योंकि तब तो वे क्रियाशील-प्रवृत्तिशील या सक्रिय भी नहीं हो पाते। आगे वे लिखते हैं कि ब्रह्मकी विविधरूपिणी शक्तिके कारण ही दूधसे दही, घी आदिके समान सृष्टिमें विविधता पायी जाती है, दीख पड़ती है—**एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्र-शक्तियोगाद् विचित्रपरिणाम उपपद्यते।**

श्वेताश्वतर-श्रुति भी आचार्यके इसी मतकी पुष्टि करती हुई कहती है कि ब्रह्मको शरीर और इन्द्रियाँ धारण करनेका कोई श्रम नहीं उठाना पड़ता, फिर भी वह (इसी भगवती शक्तिकी कृपासे) सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ बनता और माना जाता है। उसका पूरा सारा काम भगवती शक्ति ही निबाह लेती है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥
(श्वेताश्व० ६।८)

यदि शाक्तमतपर दृष्टिपात किया जाय तो वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि शिव ही अपनी शक्तिद्वारा विश्वरूप बन जाते हैं। अथवा इसे बहुधा इस प्रकार कहा जाता है कि शिव अपनी अपरिच्छिन्न सत्ताको त्यागकर परिच्छिन्न जीव बन जाते हैं और इस प्रकार संसारके सुख-दुःखोंका भोग करते हैं। इसलिये प्रत्येक जीव आत्मरूपसे शिव है और मन एवं शरीररूपसे शक्ति। वास्तवमें शिवको जीवरूपमें भोगके लिये जिन-जिन उपकरणोंकी आवश्यकता होती है, उन-उन रूपोंमें स्वयं शक्ति ही प्रकट होती है—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन भृषे॥

सारा व्यक्त जगत् अर्थात् प्रपञ्चतत्त्वसे निर्मित शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार शिवकी प्रधान अर्धाङ्गिनी भगवती जगदम्बाके ही रूप हैं। इसीसे मिलता-जुलता सिद्धान्त वेदान्तका भी है कि ब्रह्म जीवरूपसे संसारमें प्रवेशकर नाम-रूपकी सृष्टि करता है—**अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति।**

इतना होते हुए भी तान्त्रिकोंके अद्वैतवाद और शंकरके विशुद्ध अद्वैतवादमें एक सिद्धान्तको लेकर थोड़ा-सा अन्तर पड़ता है। तान्त्रिक समस्त संसारको सत्य

मानते हैं। वे कहते हैं कि यह विश्व नाना जीवोंके रूपमें शिवकी ही अनुभूति है, अतएव वह कभी असत्य नहीं हो सकता। जीव मन और शरीरसे मुक्त शिव ही है। अतएव वह वास्तवमें अन्तर्यामी शिव तथा क्रियाशील शक्ति या विकासोन्मुख सृष्टिक्रिया दोनोंके अनुकूल है। शिव चेतनाका अव्यक्त रूप है तो शक्ति उसका सक्रिय रूप। अतः दोनोंमें कोई विरोध नहीं होना चाहिये।

किंतु आचार्य शंकर इसे नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें शिव एक साथ और एक ही समयमें सक्रिय और निष्क्रिय नहीं हो सकते। वास्तवमें वे दोनोंसे परे हैं।' **'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः'** (२ । १४) —इस ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्यमें उन्होंने इसपर विस्तारके साथ प्रकाश डाला है। वे विवश हैं कि **'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्'** आदि श्रुति एकमात्र ब्रह्मकी सत्यताका समर्थन करती हैं। फिर तान्त्रिकमतमें मिथ्याज्ञानको संसारका कारण न माननेसे—**'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति'**...' आदि श्रुतिद्वारा तत्त्वज्ञानको परममुक्तिका जो कारण बताया है, उसकी भी उपपत्ति नहीं बैठती। आचार्य लिखते हैं—

ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यमिति च परमकारणस्यैवैकस्य सत्यत्वावधारणात् ।......**सम्यग्ज्ञानापनोद्यस्य कस्यचिन्मिथ्याज्ञानस्य संसारकारणत्वेनानभ्युपगमात्**। (ब्रह्मसूत्र शां० भा० २ । १ । १४)

इसलिये आचार्यपाद इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि ब्रह्मकी यह शक्ति अविद्याद्वारा आरोपित नाम-रूप ही है। इसीको लोग अविद्यावश ईश्वर मान लेते हैं। वास्तवमें यह न तो ईश्वरका वास्तविक रूप कहा जा सकता है और न ईश्वरसे भिन्न ही। इसी अर्थमें यह विश्व-प्रपञ्चका बीज है, जिसे श्रुति-स्मृतियोंमें मायाशक्ति, प्रकृति आदि नामोंसे उल्लिखित किया गया है। यथा—

सर्वज्ञस्येश्वरस्य आत्मभूते इवाविद्याकल्पिते नामरूपे तत्त्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीये संसारप्रपञ्चबीजभूते सर्वज्ञस्येश्वरस्य मायाशक्तिः प्रकृतिरिति च श्रुतिस्मृत्योरभिलप्येते ।' (ब्र० सू० शां० भा० २ । १ । १४)

इसी अर्थमें प्रभु सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, अपने निर्विशेष वास्तवरूपमें नहीं। यथा—

तदेवमविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्ष्यमेवेश्वरस्येश्वरत्वं सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वं च। न परमार्थतः॥ विद्ययापास्तसर्वोपाधिस्वरूपे आत्मनीशित्रीशितव्यसर्वज्ञत्वादिव्यवहार उपपद्यते।

(ब्र० सू० शां० भा० २ । १ । १४)

इस प्रकार आचार्य शंकर शुद्ध अद्वैतवादी होते हुए भी महामाया आदिशक्ति जगज्जननीके रूपमें बिना किसी प्रकारके संकोचके ईश्वरकी उपासनाके समर्थक हो सकते हैं। कारण, उनके सर्वव्यापक सिद्धान्तमें व्यावहारिक दृष्टिसे हर प्रकारके शास्त्रीय कर्म, उपासना एवं ध्यानादिके लिये निरापद स्थान सुरक्षित है। इसीलिये वे ब्रह्मकी एकतासे परम मुक्ति और अनेकतामें साधारण लौकिक एवं वैदिक व्यवहारका अपने भाष्यमें समर्थन करते हैं—**'एकत्वांशेन ज्ञानान्मोक्षव्यवहारः सेत्स्यति। नानात्वांशेन तु कर्मकाण्डाश्रयौ लौकिकवैदिकव्यवहारौ सेत्स्यत इति।** (ब्र० सू० शा० भा० २ । १ । १४)

ईश्वरकी विश्वजननीरूपमें भावना उपनिषत्समर्थित भी है—

'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी' (श्वेताश्व० ५ । १०)। छान्दोग्य उपनिषद् (६ । ३ । २) में तो ब्रह्मके लिये स्पष्ट भी स्त्रीवाचक (स्त्रीलिङ्गी) 'देवता' शब्दका प्रयोग किया गया है। बादरायण भी **'सर्वोपेता च तद्दर्शनात्'** (२ । १ । ३०) सूत्रसे उपर्युक्त श्रुतिका ही अनुसरण करते हैं। स्वयं आचार्य शंकर भी कहते हैं'—**सर्वशक्तियुक्ता च परा देवतेत्यभ्युपगन्तव्यम्। कुतः तद्दर्शनात्। यथा हि दर्शयति**

श्रुतिः सर्वशक्तियोगं परस्या देवतायाः ।' ने कहते हैं कि विश्वका कारणरूप ब्रह्म निस्संदेह शक्तिसे अभिन्न है— 'कारणस्यात्मभूता शक्तिः शक्तिश्चैवात्मभूतं कार्यम् ।' इसीलिये मीनाक्षी-स्तोत्रमें आचार्य शंकर ठीक शाक्तोंकी तरह माताकी स्तुति करते हैं—

> शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी
> नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वमयी चिन्मयी ।
> तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी
> सर्वैश्वर्यमयी सदाशिवमयी मां पाहि मीनाम्बिके ॥

'मीनाम्बिके ! आप शब्दब्रह्ममयी, चराचरमयी, ज्योतिर्मयी, वाङ्मयी, नित्यानन्दमयी, निरञ्जनमयी, तत्त्वमयी, चिन्मयी, तत्त्वातीतमयी, परात्परमयी, श्रीमयी, सर्वैश्वर्यमयी और सदाशिवमयी हैं, मेरी रक्षा कीजिये ।'

इसी प्रकार सौन्दर्यलहरीमें आचार्यश्रीको परब्रह्मकी पटरानी कहते हुए लिखते हैं—

> गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
> हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम् ।
> तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
> महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि ॥

'परब्रह्मकी पटरानी माँ ! आगमवेत्ता जन सरस्वती देवीको ब्रह्माकी गृहिणी, लक्ष्मीको श्रीहरिकी पत्नी और अद्रितनया पार्वतीको शिवकी सहचरी बतलाते हैं, परंतु आप कोई चौथी महामाया हैं, जिनकी महिमा दुरधिगम और असीम है तथा जो विश्वको भ्रमित कर रही हैं ।'

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा जगदम्बाका स्तवन

> त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
> त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
> कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
> परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥
> तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
> सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥
> सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
> सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृति० २ । ६६ । ७–१०)

'तुम्हीं विश्वजननी मूलप्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो । यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो । तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो । परमतेजस्स्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो । तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो । तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो । तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंकी भी मङ्गल हो ।'

देवताओंद्वारा देवी-स्तवन

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

शक्ति-तत्त्व-विमर्श

(पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्तश्री स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चकी अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती ही सम्पूर्ण विश्वको सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्वप्रपञ्च उन्हींसे उत्पन्न होता है, अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाता है। जैसे दर्पणमें आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि प्रपञ्च प्रतीत होता है, दर्पणको स्पर्श कर देखा जाय तो यहाँ वास्तवमें कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वैसे ही सच्चिदानन्दरूप महाचिति भगवतीमें सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पणके बिना प्रतिबिम्बका भान नहीं होता, दर्पणके उपलम्भमें ही प्रतिबिम्बका उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड नित्य निर्विकार महाचितिमें ही, उसके अस्तित्वमें ही, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होनेपर भास्यके उपलम्भकी आशा नहीं की जा सकती।

सामान्यरूपसे तो यह बात सर्वमान्य है कि प्रमाणाधीन ही किसी भी प्रमेयकी स्थिति होती है। अतः सम्पूर्ण प्रमेयमें प्रमाण कवलित ही उपलब्ध होता है। प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय—ये अन्योन्य (परस्पर) की अपेक्षा रखते हैं। प्रमाणका विषय होनेसे ही कोई वस्तु प्रमेय हो सकती है। प्रमेयको विषय करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति ही प्रमाण कहला सकती है। प्रमेयविषयक प्रमाणका आश्रय अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाता कहलाता है। फिर भी इन सबकी उत्पत्ति, स्थिति और गतिका भासक नित्य बोध आत्मा ही है और वही 'साक्षी' तथा 'ब्रह्म' भी कहलाता है।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसकमेंसे कुछ नहीं है, तथापि वह चिति, भगवती आदि स्त्रीवाचक शब्दोंसे, आत्मा, पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दोंसे और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक शब्दोंसे भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक—इन सबसे पृथक् होनेपर भी उस-उस शरीरके सम्बन्धसे या वस्तुके सम्बन्धसे वही अचिन्त्य, अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूप महाचिति भगवती आत्मा, पुरुष, ब्रह्म आदि शब्दोंसे व्यवहृत होती है। मायाशक्तिका आश्रयण कर वे ही त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, विष्णु, शिव, कृष्ण, राम, गणपति, सूर्य आदि रूपोंमें व्यक्त होती हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप त्रिपुर (तीन देहों)के भीतर रहनेवाली सर्वसाक्षिणी चिति ही त्रिपुरसुन्दरी कहलाती है। उसी माया-विशिष्ट तत्त्वके जैसे राम-कृष्णादि अन्यान्य अवतार होते हैं, वैसे ही महालक्ष्मी, महासरस्वती, महागौरी आदि अवतार होते हैं। यद्यपि श्रीभगवती नित्य ही हैं, तथापि देवताओंके कार्यके लिये वे समय-समयपर अनेक रूपोंमें प्रकट होती हैं। जगन्मूर्ति भगवती नित्य ही हैं, उन्हींसे चराचर प्रपञ्च व्याप्त है, तथापि उनकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे होती है। देवताओंके कार्यके लिये जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होनेपर भी 'देवी उत्पन्न हुई, प्रकट हो गयी'—यों कही जाती हैं—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

(सप्तशती १ । ६४-६६)

कुछ लोगोंका कहना है कि 'शास्त्रोंमें मायारूपा भगवतीकी ही उपासना कही गयी है, माया वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार मिथ्या है, अतः मुक्तिमें उसकी अनुगति नहीं हो सकती। अतः भगवतीकी उपासना अश्रद्धेय है। 'नृसिंह-तापनी' में स्पष्ट उल्लेख है कि नारसिंही माया ही सारे प्रपञ्चकी सृष्टि करती है, वही सबकी रक्षा करती और

सबका संहार करती है, उसी मायाशक्तिको जानना चाहिये। जो उसे जानता है वह मृत्युको जीत लेता है, पाप्माको तर जाता है तथा अमृतत्व एवं महती श्रीको प्राप्त करता है—

'माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सृजति, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति। तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्यात्। य एतां मायां शक्तिं वेद, स मृत्युं जयति, स पाप्मानं तरति, सोऽमृतत्वं गच्छति, महतीं श्रियमश्नुते।'

देवता भी कहते हैं—आप वैष्णवी शक्ति, अनन्तवीर्या एवं विश्वकी बीजभूता माया हैं—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
(सप्तशती ११। ५)

इन सभी वचनोंसे स्पष्ट है कि भगवती मायारूपा ही हैं। देवीभागवतादिके अनुरूप माया स्वयं जडा है। इसी मायाकी उपासनाका यत्र-तत्र स्थानोंमें विधान है, जो अश्रद्धेय ही है। किंतु ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि इनका भाव दूसरा है और निम्नलिखित प्रमाणोंसे सिद्ध है कि देवी साक्षात् ब्रह्मरूपिणी ही है—

'सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः—कासि त्वं महादेवी? साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।' (देव्यथर्वशीर्ष)

'अर्थात् देवताओंने देवीका उपस्थान (उनके निकट पहुँच) कर उनसे प्रश्न किया—'आप कौन हैं?' देवीने कहा—'मैं ब्रह्म हूँ, मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न होता है।'

इसी प्रकार **'अथ ह्येषां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति, भुवनाधीश्वरी तुर्यातीता'** (भुवनेश्वर्युपनिषद्), **'स्वात्मैव ललिता'** (भावनोपनिषद्) आदि वैदिक वचनोंसे तुर्यातीत ब्रह्मस्वरूपा ही भगवती हैं, यह स्पष्ट है। 'त्रिपुरातापनी', 'सुन्दरीतापनी' आदि उपनिषदोंमें 'परोरजसे' आदि गायत्रीके चतुर्थ चरणं प्रतिपाद्य ब्रह्मके वाचकरूपसे 'ह्रीं' बीजको बतलाया है 'काली, तारा उपनिषदों' में भी ब्रह्मरूपिणी भगवतीकी ही उपासना प्रतिपादित हैं। पुराणों, संहिताओंका भी साक्ष्य देखिये। 'सूतसंहिता' में कहा है—

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्।
आराधयेत् परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्।

अर्थात् 'संसार-निवृत्तिके लिये प्रपञ्चस्फुरणशून्य सर्वसाक्षिणी, आत्मरूपिणी पराशक्तिकी ही आराधना करनी चाहिये।'

परा तु सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका।
सर्वाधिष्ठानरूपा स्याज्जगद्भ्रान्तिश्चिदात्मनि॥
(स्कन्द०)

अर्थात् 'सच्चिदानन्दरूपिणी परा जगदम्बिका ही विश्वकी अधिष्ठानभूता हैं। उन्हीं चिदात्मस्वरूपा भगवतीमें ही जगत्‌की भ्रान्ति होती है।'

सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः।
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्।
परात् परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्॥
अनन्तं प्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम्।
शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैन्यवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम्॥
(कूर्मपुराण)

उपर्युक्त सभी वचनोंसे निर्विकार, अनन्त, अच्युत, निरंजन, निर्गुण, ब्रह्मको ही भगवतीका वास्तविक स्वरूप बतलाया गया है। देवीभागवतमें भी कहा है कि निर्गुणा और सगुणा दो प्रकारकी भगवती हैं। रागिजनोंके लिये सगुणा सेव्या है और विरागियोंकी निर्गुणा—

निर्गुणा सगुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः॥

'ब्रह्माण्डपुराण'के ललितोपाख्यानमें कहा है कि चिदेकरसरूपिणी चिति ही तत्पदकी लक्ष्यार्थरूप हैं—

*

चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी ।

कहा जा सकता है कि 'ब्रह्मस्वरूपताके बोधक इन वचनोंसे भगवतीके मायात्वबोधक पूर्व वचनोंका विरोध होगा ।' किंतु ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि वेदान्तमें मायाको मिथ्या कहा गया है । मिथ्या पदार्थ अधिष्ठान (अपने आश्रय)में कल्पित होता है । अधिष्ठानकी सत्तासे अतिरिक्त कल्पितकी सत्ता नहीं हुआ करती । मायामें अधिष्ठानकी सत्ताका ही प्रवेश रहता है, अतः मायास्वरूपकी उपासनासे भी सत्तास्वरूप ब्रह्मकी ही उपासना होगी । इस आशयसे मायास्वरूपके बोधक वचनोंका भी कोई विरोध नहीं होगा ।

जैसे ब्रह्मकी उपासनामें भी केवल ब्रह्मकी उपासना नहीं हो पाती, किंतु शक्तिविशिष्ट ब्रह्मकी ही उपासना होती है; क्योंकि ब्रह्मसे पृथक् होकर शक्ति रह नहीं सकती और केवल ब्रह्मकी उपासना हो नहीं सकती । वैसे ही केवल मायाकी उपासना सम्भव नहीं । केवल मायाकी तो स्थिति ही नहीं बनती, फिर उपासना तो दूरकी बात रही । अधिष्ठानभूत ब्रह्मसे युक्त होकर ही माया रहती है, अतः भगवतीकी मायारूपताका वर्णन करनेपर भी फलतः ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है—

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः ।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं शिवस्य सहजा ध्रुवा ॥

अर्थात् जैसे अग्निमें उष्णता रहती है, सूर्यमें किरणें रहती हैं और चन्द्रमामें चन्द्रिका रहती है, वैसे ही शिवमें उसकी सहज शक्ति रहती है । इस तरह विश्व-स्वरूपभूता शक्तिके रूपमें भगवतीका वर्णन मिलता है । जैसे अग्निमें होम करनेपर भी अग्निशक्तिमें होम समझा जाता है, वैसे ही अग्निशक्तिमें होम करनेपर अग्निमें ही होम समझा जाता है । इसी तरह मायाको भगवती कहनेपर भी ब्रह्मको भगवती समझा जा सकता है । अतः भगवतीकी उपासनाको ललिता त्रिशतीभाष्यादिके अनुसार सर्वत्र ब्रह्मकी ही उपासना समझनी चाहिये ।

जो वाक्य मायाको मिथ्या प्रतिपादन करते हैं उनमें तो केवल मायाका ही ग्रहण होता है; क्योंकि ब्रह्मका मिथ्यात्व ही नहीं है । वह तो त्रिकालाबाध्य, सत्स्वरूप अधिष्ठान है । फिर उपास्य माया पदार्थान्तर्गत ब्रह्मांश मोक्षदशामें भी अनुस्यूत रहेगा, अतः मुक्तिमें उपास्य स्वरूपका त्याग भी नहीं होगा । 'अन्तर्यामिब्राह्मणमें पृथ्वीसे लेकर मायापर्यन्त सभी पदार्थोंमें चेतन-सम्बन्धसे देवतात्व बतलाया गया है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—इस श्रुतिके अनुसार भी सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा कहा गया है । 'सूत-संहिता' में भी कहा है—

चिन्मात्राश्रयमायायाः शक्त्याकारो द्विजोत्तमाः ।
अनुप्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयम्प्रभा ॥
सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी ।
सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवंकरी ॥

'चिन्मात्र परब्रह्मके आश्रित रहनेवाली मायाके शक्त्याकारमें अनुप्रविष्ट स्वयंप्रभा, निर्विकल्पा, सदाकारा, सदानन्दा, संविद् ही शिवाभिन्न शिवस्वरूपा परमा देवी है ।' अथवा भगवती-स्वरूपके प्रतिपादक वाक्योंमें जो माया, शक्ति, कला आदि शब्द हैं, वे सब लक्षणासे मायाविशिष्ट, कलाविशिष्ट ब्रह्मके ही बोधक समझने चाहिये । फलतः मायाविशिष्ट ब्रह्म ही 'भगवती' शब्दका अर्थ है । यह बात स्वयं सदाशिवने भी कही है—

नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित् ।
मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्तितम् ॥
मायाशक्त्यादिशब्दाश्च विशिष्टस्यैव लक्षकाः ।
तस्मान्मायादिशब्दैस्तद् ब्रह्मैवोपास्यमुच्यते ॥

वहाँ एक पक्षमें केवल चैतन्य ही मायादि शब्दोंसे उपास्य कहा गया है । द्वितीय पक्षमें मायाविशिष्ट ब्रह्म मायादि शब्दोंसे कहा गया है । साकार देवताविग्रह सर्वत्र ही शक्तिविशिष्ट ब्रह्मरूपसे ही उपास्य होता है । भगवतीविग्रहमें भी भाषण, दर्शन, अनुकम्पा आदि व्यवहार देखा जाता है । फिर उसमें जडत्वकी कल्पना किस तरह की जा सकती है !

विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकोंके स्वरूपमें एक-एक गुणकी प्रधानता है, जब कि माया गुणत्रयका साम्यावस्थारूप है। वह केवल शुद्ध ब्रह्मके आश्रित है। मायाविशिष्ट तुरीय ब्रह्म ही भगवतीकी उपासनामें ग्राह्य है, यह दिखलानेके लिये कहीं-कहीं भगवतीको माया, प्रकृति आदि शब्दोंसे बोधित किया गया है। मैत्रायणिश्रुतिमें स्पष्ट कहा गया है कि तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति परब्रह्ममें रहती है और मूलप्रकृति-उपलक्षित ब्रह्म शुद्ध तुरीय स्वरूप ही है। अतएव **'त्वं वैष्णवी शक्तिः'** इत्यादि स्थलोंमें तुरीय ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका ही शक्तिरूपमें वर्णन समझना चाहिये। इस प्रकार मायापर मुक्तिके अनन्वयी होने या अश्रद्धेय होनेका दोष कथमपि लागू नहीं होता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक-एक गुणकी अपेक्षा गुणत्रयकी साम्यावस्था उत्कृष्ट है और तद्रूपा माया या प्रकृति ही जिसका स्वरूप है, उस भगवतीकी उपासना भी परमोत्कृष्ट है। अतएव कामार्थी, मोक्षार्थी सभीके लिये भगवतीकी उपासना परमावश्यक है। वही ब्रह्म-विद्या है, वही जगज्जननी है, उसीसे सारा विश्व व्याप्त है। जो उसकी पूजा नहीं करता, उसके पुण्यको माता भस्म कर देती है—

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी॥

(वैकृतिकरहस्य ३८)

'देवीभागवत'के प्रथम मन्त्रमें ही भगवतीके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका संकेत मिलता है—

'सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।'

वह भगवती सर्वचैतन्यरूपा अर्थात् सर्वात्म-स्वरूपा है, सबका प्रत्यक्-चैतन्य आत्मस्वरूप ब्रह्म वही है। वह स्वतः सर्वोपाधिनिरपेक्ष तथा अखण्ड बोधरूप आत्मा है। ब्रह्मविषयक शुद्ध सत्त्वान्तर्मुख वृत्तिपर प्रतिबिम्बित होकर वही अनादि ब्रह्मविद्या है। एकां शक्ति अन्तर्मुख होकर विद्यातत्त्वरूपिणी होती। तदुपाधिक आत्मा 'तुरीया' कहलाता है। बहिर्मुख होने वही 'अविद्या' कहलाती है, तदुपाधिक आत्मा 'प्राज्ञ' है। मायाशवल ब्रह्म ही ध्यानका विषय है, वही बुद्धि प्रेरक है। अतः वेदान्तकी दृष्टिसे शक्तिरूपा भगवती सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त स्वप्रकाश चिति ही हैं और वे। परब्रह्म, आत्मा आदि शब्दोंसे लक्षित होती हैं।

शाक्ताद्वैत या तान्त्रिक दृष्टिमें भगवती

तन्त्रोंके अनुसार 'प्रकाश' ही शिव और 'विमर्श' ही शक्ति है। संहारमें शिवका प्राधान्य रहता है, सृष्टिमें शक्तिका। प्रमामें इदमंश ग्राह्य है और अहंश ग्राहक माना जाता है। भीतर वर्तमान पदार्थों ही बाह्यरूपमें अवभास होता है—

वर्तमानावभासानां भावानामवभासनम्।
अन्तःस्थितवतामेव घटते बहिरात्मना।

प्रकृतिमें सूक्ष्म रूपसे सभी वस्तुएँ स्थित हैं। पर शिव और शक्ति दोनों ही श्लिष्ट होकर रहते हैं निःस्पन्द परम शिवतत्त्व और निषेधात्मक तत्त्व है शक्तितत्त्व है—

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पतः।

अर्थात् ज्ञान और अर्थ दोनों ही अविकल्पित होकर एकमें रहते हैं तब साम्यावस्था समझी जाती है। भगवतीके विषयमें तन्त्र-दृष्टिका यह सूत्ररूप परिचय है। अब शाक्ताद्वैतमें भगवतीके स्वरूपका विवरणात्मक परिचय संक्षेपमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

शाक्ताद्वैतकी दृष्टि यह है कि अनन्त विश्वका अधिष्ठानभूत शुद्ध बोधस्वरूप प्रकाश ही शिवतत्त्व समझा जाता है। उस प्रकाशमें जो विमर्श है, वही शक्ति है। प्रकाशके साथ विचारात्मक शक्तिका अस्तित्व

अनिवार्य है। बिना प्रकाशके विमर्श नहीं और बिना विमर्शके प्रकाश भी नहीं रहता। यद्यपि वेदान्तियोंकी दृष्टिमें बिना विमर्शके भी अनन्त, निर्विकल्प प्रकाश रहता है, तथापि शाक्ताद्वैतियोंकी दृष्टिसे विमर्श हर समय रहता है। यहाँतक कि महावाक्यजन्य परब्रह्माकार वृत्तिके उत्पन्न हो जानेपर भी, आवरक अज्ञानके मिट जानेपर भी स्वयं वृत्तिरूप विमर्श बना ही रहता है। वेदान्ती इस वृत्तिको स्व-पर-विनाशक मानते हैं, किंतु शाक्ताद्वैती कहते हैं कि अपने आपमें ही नाश्य-नाशक-भाव सम्भव नहीं है। यदि उस वृत्तिके नाशके लिये दूसरी वृत्तिकी उत्पत्ति मानेंगे तो उसके भी नाशके लिये वृत्त्यन्तर मानना पड़ेगा, इस प्रकार अनवस्था हो जायगी। अविद्या स्वयं नष्ट होनेवाली है, अतः उससे भी उस वृत्तिरूपा विद्याका नाश नहीं कहा जा सकता। विरोध न होनेके कारण विद्या-अविद्याका सुन्दोपसुन्दन्यायसे भी परस्पर नाश्य-नाशक भाव नहीं कहा जा सकता।

जो कहा जाता है कि जैसे कनकरज जलके भीतर भी मिट्टीको नष्ट करके स्वयं नष्ट हो जाता है, वैसे ही विद्या-रूपावृत्ति स्वातिरिक्त अविद्या एवं तत्कार्य जगत्‌को नष्ट कर स्वयं भी नष्ट हो जाती है; किंतु दृष्टान्तमें कनकरजका नाश नहीं होता, किंतु इतर रजोंको साथ लेकर कनकरज पानीके नीचे बैठ जाता है। अतः यहाँ भी उक्त दृष्टान्तोंसे वृत्तिका नाश नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति **'विषं विषान्तरं जरयति, स्वयमेव जीर्यति, पयः पयोऽन्तरं जरयति, स्वयमेव च जीर्यति'** इत्यादि युक्तियोंकी भी है। अर्थात् वहाँ भी विष या पय नष्ट नहीं होता, प्रत्युत दूसरे पय या विषकी अजीर्णता मिटाकर स्वयं भी पच जाता है। अतएव इन दृष्टान्तोंसे भी वृत्तिका नाश नहीं कहा जा सकता। इसलिये वृत्तिरूप विद्यासे संश्लिष्ट होकर ही अनन्त प्रकाशस्वरूप शिव सदैव विराजमान रहता है।

इसी तरह यह भी विचार उठता है कि अविद्या-निवृत्ति क्या है? कोई वस्तु कहींसे निवृत्त होती हुई भी कहीं-न-कहीं रहती ही है। यदि 'ध्वंसरूपनिवृत्ति' मानी जाय तो अपने कारणमें उसकी स्थिति माननी पड़ेगी, क्योंकि घटादिका ध्वंस होनेपर भी अपने कारण कपाल, चूर्ण आदि कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूपमें उसकी स्थिति माननी ही पड़ती है। यही स्थिति लयरूपा निवृत्तिकी भी है। यदि निवृत्तिको सर्वथा निःस्वरूप कहें तो उसके लिये प्रयत्न नहीं हो सकता। सही कहें तब तो उसी रूपमें शक्तिकी स्थिति रह सकती है। अनिर्वाच्य कहें तो उसकी भी ज्ञानविवर्त्यता माननी पड़ेगी। अतएव कुछ आचार्योंने पञ्च प्रकारा अविद्या-निवृत्ति मानी है तथा उस रूपमें भी विमर्शरूपा शक्तिका अस्तित्व रहता ही है। हाँ, उस समय अन्तर्मुख होकर शिवस्वरूपसे ही शक्ति स्थित रहती है—

'मुक्तावन्तर्मुखैव त्वं भुवनेश्वरि तिष्ठसि॥'
(शक्तिदर्शन)

इसीलिये शक्तिको नित्य कहा गया है—**'नित्यैव सा जगन्मूर्तिर्यया सर्वमिदं ततम्।' 'नहि द्रष्टुर्दृष्टे-र्विपरिलोपो भवति विद्यते'** (बृहदा० उप० ४)-इस वचनसे वृत्तिरूप दृष्टिको नित्य समझा जाता है, जब कि वेदान्ती द्रष्टाकी स्वरूपभूता दृष्टिको नित्य कहते हैं।

शिव-परात्पर—विमर्श, प्रकाश, शक्तिका शिवमें प्रवेशसे बिन्दु, स्त्रीतत्त्व, नादकी उत्पत्ति हुई। जब दूध-पानीकी तरह वे दोनों एक हो गये, तब संयुक्त बिन्दु हुआ। वही 'अर्धनारीश्वर' हुआ। इनकी परस्पर आसक्ति ही काम है। श्वेत बिन्दु पुंस्त्वका तो रक्तबिन्दु स्त्रीत्वका परिचायक है। तीनों जब मिलते हैं, तब कामकलाकी उत्पत्ति होती है। मूल बिन्दु, नाद और श्वेत तथा रक्तबिन्दु—इन चारोंके मिलनेसे सृष्टि होती है। किसीके मतमें नादके साथ अर्धकला भी हुई। काम-कलादेवीका संयुक्त बिन्दु वदन है, अग्नि और चन्द्र वक्षःस्थल है,

अर्धकला जननेन्द्रिय है। 'अ' शिवका प्रतीक है तो 'ह' शक्तिका। यह त्रिपुरसुन्दरी 'अहं' से व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि व्यक्तित्व और अहंसे पूर्ण है। सहस्रारके चन्द्रगर्भसे स्रवित आसवका पान कर, ज्ञान-कृपाणसे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आसुर पशुओंको मारकर, वञ्चना, पिशुनता, ईर्ष्या-रूप मछलियोंको पकाकर, आशा, कामना, निन्दारूप मुद्राको धारण कर, मेरुदण्डाश्रिता रमणियोंमें रमण कर सामरस्यकी प्राप्ति होती है। पञ्च मकार-का भी यही रहस्य है। शिव-शक्तिका संयोग ही 'नाद' है—

यदयमनुत्तरमूर्तिं निजेच्छया विश्वमिदं स्रष्टुम्।
पस्पन्दे सस्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥

शिवसंश्लिष्ट शक्ति विश्वका बीज है। अहं-प्रकाशमें शिव निश्चेष्ट रहता है तो शक्ति सक्रिय रहती है। यही कालीकी विपरीत रति है। विमर्शरूपा शक्ति जब शिवमें लीन होती है, तब 'उन्मना अवस्था' होती है, उसके विकसित होनेपर 'समान अवस्था' होती है—

सच्चिदानन्दविभवात् संकल्पात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥

विभव-सच्चिदानन्दपरमेश्वरके संकल्पसे शक्ति, उससे नाद और नादसे बिन्दुका प्राकट्य होता है। नादमें जो क्रियाशक्ति है, वही बिन्दुकी 'अहं निमेषा' है। सृष्टिकी अन्तिम अवस्था है—'इदम्', 'अहं' महाप्रलयकी पूर्वावस्था है और शक्तिकी उच्छूनावस्था घनीभाव है। ज्ञानप्रधाना शक्ति क्रियारूपेण रजःप्रधाना और बिन्दुतत्त्वसे तमःप्रधाना रहती है। व्यवहारमें शक्तिमान्‌की अपेक्षा शक्तिका आदर अधिक है। बुद्धिके विना बुद्धिमान्‌का, बलके विना बलवान्‌का, शिल्पशक्तिके बिना शिल्पीका कुछ भी मूल्य नहीं रहता। मिठास बिना मिसरीका, सौगन्ध्यके बिना पुष्पोंका, सौन्दर्यके बिना सुन्दरीका, लज्जाके बिना कुलाङ्गनाका कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता। शाक्ताद्वैतकी दृष्टिसे शक्ति शिवस्वरूप ही है। सच्चिदानन्दमें चिद्भाव-विमर्श है, सत्का शिव है। कहा गया है—

रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥

अर्थात् कोई भी प्राणी रुद्रहीन, विष्णुहीन होने शोचनीय होता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'—बलहीन प्राणीको अपनी आत्मा भी उपलब्ध नहीं हो सकती—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥
(सौन्दर्यलहरी ९८)

इस प्रकार परब्रह्म महिषीरूपा भगवतीको आचार्यने तुरीया चिच्छक्ति-रूपा ही बतलाया है।

शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी॥
मानः स एव विश्वात्मा मन्तव्या तु महेश्वरी।
आकाशः शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया॥

समुद्रवेला, वृक्षलता, शब्द-अर्थ, पदार्थ-शक्ति, पुं-स्त्री, यज्ञ-इज्या, क्रिया-फलभुक्, गुण-व्यक्ति, व्यञ्जकता-रूप, बोध-बुद्धि, धर्म-सत्क्रिया, संतोष-तुष्टि, इच्छा-काम, यज्ञ-दक्षिणा, आज्याहुति-पुरोडाश, काष्ठा-निमेष, मुहूर्त-[illegible], ज्योत्स्ना-प्रदीप, रात्रि-दिन, ध्वज-पताका, तृष्णा-लोभ, रति-राग—उपर्युक्त भेदोंसे उसी तत्त्वका अनेकधा प्राकट्य होता है।

'शक्ति' शब्दसे बहुत-से लोग केवल माया-अविद्या आदि बहिरङ्ग शक्तियोंको ही समझते हैं, किंतु भगवान्‌की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति, जीवभूता पराप्रकृति आदि भी 'शक्ति' शब्दसे व्यवहृत होती हैं। जैसे सिता, द्राक्षा, मधु आदिमें मधुरिमा उनका परम अन्तरङ्ग स्वरूप ही

है, वैसे ही परमानन्द-रसामृतसार-समुद्र भगवान्‌की परमान्तरङ्गस्वरूपभूता शक्ति ही भगवती है—

विष्णुशक्तिः परा ज्ञेया क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
(विष्णुपुराण)

यहाँ विष्णु और क्षेत्रज्ञको भी शक्ति ही कहा है। इस प्रकार यद्यपि शक्तियाँ अनेक हैं, तथापि आनन्दाश्रित आह्लादिनी, चेतनांशाश्रित संवित् सदंशाश्रित सन्धिनी शक्ति होती है। क्षेत्रज्ञ तटस्था शक्ति है और माया बहिरङ्गा शक्ति मानी जाती है। तत्त्ववित् लोग कहते हैं कि जैसे पुष्पका सौगन्ध्य सम्यक् रूपसे तभी अनुभूत हो सकता है, जब पुष्पको घ्राणेन्द्रिय हो। अन्य लोगोंको तो व्यवधानके साथ किंचिन्मात्र ही गन्धका अनुभव होता है। उसी तरह भगवतीके सुन्दर रूपका सम्यक् अनुभव परम शिवको ही प्राप्त होता है। वह अन्यकी दृष्टिका विषय ही नहीं—

घृतद्राक्षाक्षीरं मधुमधुरिमा कैरपि परै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदङ्मात्रविषयः
कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥
(आनन्दलहरी)

अर्थात् वस्तुतः निर्गुणा, सत्या-सनातनी, सर्वस्वरूपा भगवती ही भक्तानुग्रहार्थ सगुण होकर प्रकट होती है। वैसे तो भगवतीके अनन्त स्वरूप हैं, विशेषतः शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदा—ये नौ स्वरूप प्रधान हैं।

कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
सर्वस्वरूपा सर्वेशी सर्वाधारा परात्परा।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वमूला निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

इस प्रकार वे ही सर्वेश्वरी चराचरमें सभी स्वरूपोंमें व्याप्त हैं।

गायत्री-तत्त्व

किसी गायत्रीनिष्ठ सज्जनका प्रश्न है कि गायत्री-मन्त्रका वास्तविक अर्थ क्या है? गायत्री-मन्त्रके द्वारा किस स्वरूपसे किस देवताका ध्यान किया जाय? कोई गोरूपा गायत्रीका, कोई आदित्यमण्डलस्था श्वेतपद्मस्थिता देवीका ध्यान करना बतलाते हैं, कोई ब्रह्माणी, रुद्राणी, नारायणीका ध्यान उचित समझते हैं, कहीं पञ्चमुखी गायत्रीका ध्यान बतलाया गया है, तो कोई राधा-कृष्णका ध्यान समुचित मानते हैं। ऐसी स्थितिमें बुद्धिमें भ्रम होता है कि गायत्री-मन्त्रका मुख्य अर्थ और ध्येय क्या है?

इस सम्बन्धमें यद्यपि शास्त्रोंमें बहुत कुछ विवेचन है, तथापि यहाँ संक्षेपमें कुछ लिखा जाता है—बृहदारण्यक उपनिषद् (५। १४)में भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौः—इन आठ अक्षरोंको गायत्रीका प्रथम पाद कहा है, 'ऋचो यजूंषि सामानि'—इन आठ अक्षरोंको गायत्रीका द्वितीय पाद कहा गया है, 'प्राणोऽपानो व्यानः' इन आठ अक्षरोंको गायत्रीका तीसरा पाद माना गया है। इस तरह लोकात्मा, वेदात्मा एवं प्राणात्मा—ये तीनों ही गायत्रीके तीन पाद हैं। परब्रह्म परमात्मा चतुर्थ पाद है।

'भूमिरन्तरिक्षम्' इन श्रुतियोंपर व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि सम्पूर्ण छन्दोंमें गायत्री-छन्द प्रधान है; क्योंकि वही छन्दोंके प्रयोक्ता गयाख्य प्राणोंका रक्षक है। सम्पूर्ण छन्दोंका आत्मा प्राण है, प्राणका आत्मा गायत्री है। क्षतसे रक्षक होनेके कारण प्राण क्षत्र है, प्राणोंका रक्षण करनेवाली गायत्री है। द्विजोत्तम-जन्मका हेतु भी गायत्री ही है। गायत्रीके तीनों पादोंकी उपासना करनेवालोंको लोकात्मा, वेदात्मा और प्राणात्माके संपूर्ण विषय उपनत होते हैं। गायत्रीका चतुर्थ पाद ही 'तुरीय' शब्दसे कहा जाता है। जो

परोरजोजात सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करता है, वह सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष है । जैसे वह पुरुष सर्वलोकाधिपत्यकी श्री एवं यशसे तपता है, वैसे ही तुरीय पादका ज्ञाता श्री और यशसे दीप्त होता है ।

गायत्री सम्पूर्ण वेदोंकी जननी है । जो गायत्रीका अभिप्राय है, वही सम्पूर्ण वेदोंका अर्थ है । विश्व-तैजस-प्राज्ञ, विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत, व्यष्टि-समष्टि जगत् तथा उसकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ प्रणवकी—अ, उ, म्-इन तीनों मात्राओंके अर्थ हैं । सर्वपालक परब्रह्मका वाच्यार्थ सर्वाधिष्ठान, सर्वप्रकाशक, सगुण, सर्वशक्ति, सर्वरहित ब्रह्म प्रणवका लक्ष्यार्थ है । उत्पादक, पालक, संहारक त्रिविध लोकात्मा भगवान् तीनों व्याहृतियोंके अर्थ हैं । जगदुत्पत्ति-स्थिति-संहार-कारण परब्रह्म ही 'सवितृ' शब्दका अर्थ है । तथापि गायत्रीद्वारा विश्वोत्पादक, स्वप्रकाश परमात्माके उस रमणीय चिन्मय तेजका ध्यान किया जाता है, जो समस्त बुद्धियोंका प्रेरक एवं साक्षी है ।

विश्वोत्पादक परमात्माके वरेण्य गर्भको बुद्धिप्रेरक एवं बुद्धिसाक्षी कहनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद परिलक्षित होता है, अतः साधन-चतुष्टयसम्पन्न उत्तमाधिकारीके लिये प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न, निर्गुण, निराकार, निर्विकार परब्रह्मका ही चिन्तन गायत्री-मन्त्रके द्वारा किया जाता है । अनन्त कल्याणगुणगणसम्पन्न, सगुण, निराकार, परमेश्वरकी उपासना गायत्रीके द्वारा की जा सकती है। प्राणिप्रसवार्थक' 'षूङ०' धातुसे 'सवितृ' शब्दकी निष्पत्ति होती है । यहाँ उत्पत्तिको उपलक्षण मानकर उत्पत्ति, स्थिति एवं लयका कारण परब्रह्म ही 'सवितृ' शब्दका अर्थ है । इस दृष्टिसे उत्पादक, पालक, संहारक विष्णु, रुद्र तथा उनकी स्वरूपभूत तीनों शक्तियोंका ध्यान किया जाता है ।

त्रैलोक्य, त्रैविद्य तथा प्राण जिस गायत्रीके स्वरूप हैं, वह त्रिपदा गायत्री परोरजा आदित्यमें प्रतिष्ठित है, क्योंकि आदित्य ही मूर्त-अमूर्त दोनोंका ही रस है । इसके बिना सब शुष्क हो जाते हैं, अतः त्रिपदा गायत्री आदित्यमें प्रतिष्ठित है । 'आदित्य चक्षुः' स्वरूप सत्तामें प्रतिष्ठित है । वह सत्ता बल अर्थात् प्राणमें प्रतिष्ठित है, अतः सर्वाश्रयभूत प्राण ही परमोत्कृष्ट है । गायत्री अध्यात्मप्राणमें प्रतिष्ठित है । जिस प्राणमें सम्पूर्ण देव, वेद, कर्मफल एक हो जाते हैं, वही प्राणस्वरूपा गायत्री सबकी आत्मा है । शब्दकारी वागादि प्राण 'गय' है, उनका त्राण करनेवाली गायत्री है। आचार्य अष्टवर्षके बालकको उपनीत करके जब गायत्री प्रदान करता है, तब जगदात्मा प्राण ही उसके लिये समर्पित करता है । जिस माणवकको आचार्य गायत्रीका उपदेश करता है, उसके प्राणोंका त्राण करता है, नरकादि पतनसे बचा लेता है ।

गायत्रीके प्रथम पादको जाननेवाला यति यदि धनपूर्ण तीनों लोकोंका दान ले, तो भी उसे कोई दोष नहीं लगता । जो द्वितीय पादको जानता है, वह जितनेमें त्रयीविद्यारूप सूर्य तपता है, उन सब लोकोंको प्राप्त कर सकता है । तीसरे पादको जाननेवाला सम्पूर्ण प्राणिवर्गको प्राप्त कर सकता है । सारांश यह है कि यदि पादत्रयके समान भी कोई दाता-प्रतिग्रहीता हो, तब भी गायत्रीविद्को प्रतिग्रहदोष नहीं लगता, फिर चतुर्थ पादके वेदिताके लिये तो ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है जो उसके ज्ञानका फल कहा जा सके । वस्तुतः त्रिपद-विज्ञानको भी प्रतिग्रह-दोष नहीं लगता, फिर चतुर्थ पादके वेदिताके लिये तो ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो उसके ज्ञानका फल कहा जा सके । वस्तुतः त्रिपाद-विज्ञानका भी प्रतिग्रहसे अधिक ही फल होता है, क्योंकि इतना प्रतिग्रह कौन ले सकता है ? गायत्रीके उपस्थान-मन्त्रमें कहा गया है कि 'हे गायत्रि ! आप

त्रैलोक्यरूप पादसे एकपदी हो, त्रयीविद्यारूप पादसे द्विपदी हो, प्राणादि तृतीय पादसे त्रिपदी हो, चतुर्थ तुरीय पादसे चतुष्पदी हो।

इस तरह चार पादसे मन्त्रोंद्वारा आपकी उपासना होती है। इसके बाद अपने निरुपाधिक आत्मास्वरूपसे अपद हो, 'नेति-नेति' इत्यादि निषेधोंसे वह सर्वनिषेधोंका अवधिरूपसे बोधित सम्पूर्ण व्यवहारोंका अगोचर है, अतः प्रत्यक्ष परोरजा आपके तृतीय पादको हम प्रणाम करते हैं। आपकी प्राप्तिमें विघ्नकारी पापी, आपकी प्राप्तिमें विघ्नसम्पादक लक्षण अपने अभीष्टको प्राप्त न करें—इस अभिप्रायसे अथवा जिससे दोष हो, उसके प्रति भी अमुक व्यक्ति अमुक अभिप्रेत फलको प्राप्त न करें, मैं अमुक फल पाऊँ, ऐसी भावनासे वह मिल जाता है। गायत्रीका अग्नि ही मुख है। उनके अग्नि-मुखको न जाननेके कारण एक गायत्रीविद् हाथी बनकर राजा जनकका वाहन बना था। जैसे अग्निमें अधिक-से-अधिक ईंधन समाप्त हो जाता है, वैसे ही अग्नि-मुखी गायत्रीके ज्ञानसे सब पाप समाप्त हो जाते हैं।

'छान्दोग्योपनिषद्'में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण चराचर भूत-प्रपञ्च गायत्री ही है। किस तरह सब कुछ गायत्री है, इसपर कहा गया है कि वाक् ही गायत्री है, वाक् ही समस्त भूतोंका गान एवं रक्षण करती है। 'गो, अश्व, महिष, मा भैषीः' इत्यादि वचनोंसे वाक्द्वारा ही भयकी निवृत्ति होती है। गायत्रीको पृथ्वीरूप मानकर उसमें सम्पूर्ण भूतोंकी स्थिति मानी गयी है; क्योंकि स्थावर-जङ्गम सभी प्राणिवर्ग पृथ्वीमें ही रहते हैं, कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। पृथ्वीको शरीररूप मानकर उसमें सम्पूर्ण प्राणोंकी स्थिति मानी गयी है। शरीरको हृदयका रूप मानकर उसमें सम्पूर्ण प्राणोंकी प्रतिष्ठा कही गयी है। इस तरह चतुष्पाद षडक्षरपाद गायत्री वाक्, भूत, पृथ्वी, शरीर, हृदय, प्राणरूपा षड्विधा गायत्रीका वर्णन है। पुनश्च सम्पूर्ण विश्वको एकपादमात्र कहकर अन्तमें त्रिपाद् ब्रह्मको उससे पृथक् भी कहा है। इसके अतिरिक्त पूर्वकथनानुसार गायत्री-मन्त्रके द्वारा सगुण-निर्गुण किसी भी ब्रह्मस्वरूपकी उपासना की जा सकती है।

सुतरां उत्पत्तिशक्ति ब्रह्माणी, पालिनीशक्ति नारायणी, संहारिणीशक्ति रुद्राणीका ध्यान गायत्री-मन्त्रके द्वारा हो सकता है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश आदि जिन-जिनमें विश्वकारणता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता प्रमाणसिद्ध है, वे सभी परमेश्वर हैं, सभी गायत्री-मन्त्रके अर्थ हैं। इस दृष्टिसे अपने इष्ट देवताका ध्यान भी गायत्री-मन्त्रद्वारा सर्वथा उपयुक्त है। 'सविता' शब्द सूर्यके सम्बन्धमें विशेष प्रसिद्ध है, अतः उसीकी सारशक्ति सावित्रीको आदित्यमण्डलस्था भी कहा गया है। महर्षि कण्वने अमृतमय दुग्धसे महीको पूर्ण करती हुई गोरूपसे गायत्रीका अनुभव किया था—

तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम्॥

विश्वमाता, सुमतिरूपा, वरेण्य सविताकी गर्भस्वरूपा गायत्रीका मैं वरण करता हूँ, जिसको कण्वने हजारों पयोधारासे महीमण्डलको पूर्ण करते हुए देखा। चन्द्रकला-निबद्ध रत्नोंके मुकुटोंको धारण किये, वरद एवं अभय मुद्राएँ, अङ्कुश, चाबुक, उज्ज्वल कपाल, पाश, शङ्ख, चक्र, अरविन्द-युगल दोनों ही ओरके हाथोंमें लिये हुए भगवतीका ध्यान करना चाहिये*। पञ्चतत्त्वों एवं पञ्च देवताओंकी सारभूत महाशक्ति एकत्रित मुक्ता, प्रवाल, हेम, नील धवल पञ्चमुखी भगवतीके रूपमें प्रकट है। आगमोंमें उनका ध्यान यों निर्दिष्ट है—

* गायत्रीदेवीके क्रमशः दाहिने-बायें सर्वोपरि हाथोंमें शङ्ख-चक्र, अन्य नीचे पाश, कपाल, उज्ज्वल कमल, अभय एवं वर-मुद्रा, तथा नीचे कमल-युग्म हैं। जप आदिमें मुद्राएँ भी प्रदर्शनीय हैं।

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥'
(शारदातिलक २१। १५)

इस स्वरूपके ध्यानमें सगुण-निर्गुण दोनों ही ब्रह्मरूप आ जाते हैं। दिव्य कमलपर विराजमान, मनोहर भूषण-अलङ्कारोंसे विभूषित, सुसज्जित उपर्युक्त स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रका जप चाहे किसी स्थान, समय एवं स्थितिमें नहीं किया जा सकता। इसके लिये पवित्र नदीतट आदि देश-संध्यादि काल त[था] पात्रकी अपेक्षा है, तभी वह त्राण कर सकती है।

इसके अतिरिक्त वेदोंकी शाखाएँ, कल्पसूत्र, आश्व[ला]नादि गृह्यपरिशिष्टोंमें शाखाभेदसे भी संध्याध्यानादिको[ं]... कुछ विभिन्नता स्पष्ट है। आगमों-पुराणोंमें उनका ही उपबृं[हण] है। आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टमें निर्दिष्ट ध्यान अन्योंसे भि[न्न] है। देवीभागवतादिका भिन्न है। कम-से-कम चारों वेदों[के] संध्या-ग्रन्थ स्पष्ट ही अलग हैं। आजकल वाजसनेयि शाखाका अधिक प्रचार है। अतः अपनी शाखा, गृ[ह्य] (कल्पसूत्र, श्रौत-गृह्यादि) को ठीक-ठीक जानकर संध्यादि कृत्य करना उचित है।

उपासना और गायत्री

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् शंकर, विष्णु, गणेश, सूर्य एवं भगवती शक्तिकी उपासना प्रत्येक भारतीय करता रहता है। कोई इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी एक देव या देवीकी उपासना करता है तो स्मार्तसम्प्रदायानुसारी पाँचों देवोंकी समष्टि उपासना अपने एक अभीष्टको पञ्चायतनके मध्य रखकर पूजते और उनकी उपासना किया करते हैं। अतएव किसी भी देवता या देवीकी उपासना करनेके लिये उपासनाके स्वरूप और उसके भेदोंपर भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रस्तुत लेखमें सामान्यतः उपासनापर ही प्रकाश डाला जा रहा है। साथ ही उपासनाके संदर्भमें गायत्री-उपासनापर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला जायगा।

उपास्य और उपासनाकी परिभाषा

'उपासना' संस्कृत-साहित्यका शब्द है। संस्कृतके सभी शब्दोंको यह गौरव प्राप्त है कि वे प्रकृति-प्रत्ययके संयोगसे निष्पन्न होते हुए भी प्रकृति-प्रत्ययके समुदित अर्थका प्रतिपादन करते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार उपासना शब्दमें उप+आस्+युच् (अन)—ये तीन अंश हैं। इनमें 'उप' उपसर्ग, 'आस् उपवेशने' धातु और भाव अर्थमें 'युच्' (अन) प्रत्यय है। उपासनम्=उपा[सना] अर्थात् शास्त्रविधिके अनुसार उपास्यदेवके प्रति तैलधा[रा]की भाँति दीर्घकालपर्यन्त चित्तकी एकात्मताको 'उपास[ना]' कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायके ती[सरे] श्लोकके शांकरभाष्यमें लिखा है—'उपासनं नाम यथा[शास्त्र]मुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं यदास[नं] तदुपासनमाचक्षते।' उपासनाके समानार्थक शब्द [हैं—] वरिवस्या, परिचर्या, शुश्रूषा, उपासन आदि हैं। उ[क्त] परिभाषाके अनुसार उपासक, उपास्य और उपासना—तीन वस्तु हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इनका पृथक्-पृ[थक्] स्वरूपनिर्णय करना प्रसङ्गके विरुद्ध न होगा। आ[स्] अर्थात् दीर्घकालपर्यन्त उपास्यके स्वरूप-गुणादिमें चि[त्त]वृत्तिका सतत प्रवाह करनेवालेको 'उपासक' कहा जा[ता] है। उपासक और उपास्यके विविध भेद होनेके का[रण] ये कई प्रकारके होते हैं। इसी प्रकार इन उपास[कों]की उपासना भी विभिन्न प्रकारकी होती है। इस[लिये] उपासक, उपास्य और उपासनाके अनेक भेद हैं।

विश्वमें आत्मातिरिक्त न कोई उपास्य है और न कोई उपासक तथापि शास्त्रके निर्णयानुसार एवं उपासकोंके सबल-दुर्बल भेदके कारण उपासना और उपास्यके अनेक भेद कहे जा सकते हैं। **'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्'** (मुण्डक० १ । १ । ९), **'एको दाधार भुवनानि विश्वा'**, **'अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'**(मुण्डक० ३ । १ । १) इन श्रुति-वाक्योंके अनुसार एवं पुरुष-सूक्तानुसार विष्णु उपास्यदेव कहे गये हैं। रुद्रसूक्तके अनुसार एवं अन्यत्र **'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।'** (श्वेताश्वतर० ३ । २) **'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥'** (श्वेताश्वतर० ६ । ७) आदि श्रुतिवचनोंके अनुसार महेश्वर, रुद्र अथवा शंकर उपास्य-देव ठहरते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र संसारके सर्ग, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, इसलिये वे उपास्यदेव ठहरते हैं। उनके अतिरिक्त **'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'** इस श्रुतिके इन्द्र भी उपास्यदेव निश्चित होते हैं। इन सबकी उपासनाके भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, एवं उपासक भी वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म आदि भेदसे अनेक हैं। किंतु इतने मात्रसे शान्ति नहीं होती; क्योंकि—

न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित् ।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति न शिवस्य तथैव च ॥

—आदि वचनोंके अनुसार विष्णु-शिवादि देवताओंकी उपासना तथा दीक्षा नित्य नहीं हैं। उपनिषद् भी इसमें साहमत्य प्रदान करते हैं कि जिस प्रकार कर्मद्वारा संचित लोक क्षीण होते हैं, उसी प्रकार पुण्यद्वारा प्राप्त लोक भी क्षीण हो जाते हैं। **'अक्षय्यं हि चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति'**के अनुसार वैदिक- 'चातुर्मास्यादि' उपासनाजन्य पुण्यका फल भी प्रलयपर्यन्त ही रहता है। उसके पश्चात् फिर संसारमें प्रवृत्ति होनी स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थितिमें यह निर्णय करना स्वाभाविक है कि हमारा उपास्यदेव कौन है, जिसकी उपासनाद्वारा अक्षय-फलकी प्राप्ति हो ? इस सम्बन्धमें लिङ्गपुराणका यह वचन ध्येय है—

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः ॥

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके निर्माता निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निष्कल परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा ही उपास्यदेव हैं। इसलिये व्यष्टि-उपासनामें **'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'** कहा गया है।

अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥

—आदि अनेक वचनोंके अनुसार भी जगत्-जन्मादि-कारणरूप कार्य-कारणातीत एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही परम उपास्यदेव ठहरते हैं।

उपासनाके भेद

वास्तवमें यद्यपि नित्यानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मामें एकान्त प्रीति करना उपासना है, तथापि सम्पूर्ण संसार-को मोहमें डालनेवाली परब्रह्म परमात्माकी मलिन सत्त्व-प्रधान मायाके वशीभूत जीवके रज और तमभावको नष्ट करनेके लिये उपासनाका आश्रय अवश्य लेना चाहिये। यद्यपि शास्त्रकारोंने मानव-कल्याणके लिये अनेक मार्गोंका उपदेश किया है, फिर भी अविद्याका नाश करनेके लिये तथा आत्मज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कारके सम्बन्धसे वेदान्त और भगवद्गीतामें निम्न त्रिमार्ग बताया गया है। जबतक आत्म-साक्षात्कारकी क्षमता प्राप्त न हो, तबतक चित्तकी शुद्धि एवं मनकी एकाग्रताके लिये कर्म और उपासनाकी परमावश्यकता है। चित्तशुद्धि और मनकी एकाग्रताके पश्चात् यद्यपि कर्मोपासनाकी कोई आवश्यकता नहीं, तथापि लोकानुग्रहके लिये देवोपासना करते रहना अनुचित नहीं है। इसीलिये **'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि।'** यह श्रीमद्भगवद्गीता (३ । २०) में कहा है।

इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता है कि स्वरूपातिरिक्त अन्य उपास्य आत्मसाक्षात्कार-पर्यन्त ऐकान्तिक उपासनाके

योग्य हैं। आत्मसाक्षात्कारके पश्चात् उनकी उस प्रकारकी आवश्यकता नहीं रह जाती। आत्मातिरिक्त अन्य उपास्य भी आत्मत्वेन ही उपासनाकी योग्यता रखते हैं। इस प्रकार आत्मपर्याय परब्रह्म परमात्मा जो उपास्य है, उसके दो भेद हो जाते हैं—१–सगुण और २–निर्गुण। सगुणके पुनः दो भेद हैं—सगुण-निराकार और सगुण-साकार। निर्गुण-निराकार तत्त्व एक ही है। उसकी उपासना बिना निरतिशयानन्दकी प्राप्ति और दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। इसीलिये वेदमें कहा गया है—**'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'** (यजुर्वेद ३१ । १८)। इस प्रकार अन्य सभी मार्गोंका निषेध कर दिया गया है।

सगुण-निराकारकी उपासनाके अन्तर्गत हिरण्यगर्भ आदिसे लेकर जितना कारण और कार्य-ब्रह्मका विस्तार है, वह सभी है। सगुण-साकारके अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे लेकर भैरव, भवानी, शक्ति आदि सभी आकारवाली मूर्तियोंकी उपासना आ जाती है। इस प्रकार पृथ्वीके एक परमाणुसे लेकर महाकाशपर्यन्त अहंतत्त्व, महत्तत्त्व आदि सबमें किसी-न-किसी रूपसे उसी एक निर्गुण, निष्कल, निरञ्जन तत्त्वकी उपासना होती है। बाह्यस्वरूप-कृत भेद विशेष स्वरूपका कारण होते हुए भी अवान्तर एकताके विघातक नहीं होते। इस प्रकार वैदिक, स्मार्त, पौराणिक, तान्त्रिक आदि सभी उपासनाओंमें उपास्यदेवकी व्यापकतासे मुख्यतया परब्रह्म परमात्मा ही उपास्य ठहरते हैं। अवान्तर उपास्योंमें यदि परिच्छिन्न भावको लेकर निष्ठा परिपक्व हो जाती है और उसके अतिरिक्त वास्तविक उपास्य ब्रह्मतक पहुँचनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तो फिर इस प्रकारके उपासक परिच्छिन्न उपासनाके कारण मृत्युके पश्चात् परिच्छिन्न लोकोंको प्राप्त होते हैं।

छान्दोग्य श्रुतिमें प्रजापति भगवान् इन्द्रको उपदेश देते हुए कहते हैं कि—**'तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते। तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः, सर्वे च काम[illegible] स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति, सर्वाꣳश्च कामान्, य[illegible] मात्मानमनुविद्य विजानाति।'** (८ । १२ । [illegible] इसी भावको दृष्टिमें रखते हुए कहा गया है—**'दे[illegible] देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।'** (गीता ७।२[illegible] अर्थात् देवताओंकी उपासनातक सीमित रहनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, परमात्माकी उपासना करनेवाले परमात्माको प्राप्त होते हैं। अतएव उपासकके लिये [illegible] आवश्यक है कि प्रारम्भसे अधिकारानुसार एवं गुरु[illegible] उपदेशानुसार उपास्यदेवका निश्चय करके उससे [illegible] भी क्रमशः परिच्छिन्न भावका परित्याग करते [illegible] अपरिच्छिन्न भावकी ओर अग्रसर होता रहे। अ[illegible] उपासनाकी सीमातक पहुँचनेपर सभी नाम-रूप ल[illegible] जायँगे और **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'** ब्रह्मवेत्ता [illegible] ही हो जाता है। एवं **'ब्रह्मणो नास्ति जन्मातः पुनो न जायते'** के अनुसार उसका जन्म-मरण समाप्त हो[illegible] नित्य निरतिशयानन्द सच्चिद्रूप हो जाता है। वही [illegible] जीवन्मुक्त कहलानेका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

उपासनामें गायत्रीका महत्त्व

उपासना अधिकार-भेदसे अनेक प्रकारकी होती है। हमारे शास्त्रोंमें अधिकारका विचार सर्वत्र किया गया और करना भी चाहिये। बिना अधिकारके निर्णय [illegible] किसी भी कर्ममें सिद्धि नहीं होती। लौकिक [illegible] वाणिज्यादिमें भी अधिकारका विचार किया जाता है। अतएव प्रत्येक उपासनामें अधिकारीका निर्णय [illegible] उपासना-प्रकार, उपास्यके गौरव आदिका विचार [illegible] चाहिये। स्वेच्छया प्रवृत्ति होनेसे न केवल इष्ट-सिद्धि [illegible] बाधा होती है, अपितु हानिकी भी सम्भावना रहती है। अतएव उपासनाके सम्बन्धमें मन्त्र, मन्त्रकी दीक्षा, मन्त्र[illegible] जप, जपका विधान, समय-शुद्धि, आसनशुद्धि आदि[illegible] विचार करके गुरूपदेशद्वारा उस प्रक्रियाका नि[illegible] करना चाहिये। स्वेच्छाचारसे मन्त्रोंका जप अथवा उपा[illegible]

केवल अपनेको ही कष्टदायक सिद्ध नहीं होती, अपितु उसका प्रभाव कुल, प्रान्त और राष्ट्रपर भी विपरीत पड़ता है।

गायत्रीके विषयमें इसलिये लिखना पड़ रहा है कि आज इसका कोई विचार नहीं किया जाता कि इस मन्त्रका कौन अधिकारी है। स्त्री, पुरुष और बच्चे—जिनका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ और जिन्हें विधिवत् गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा भी नहीं दी गयी, वे भी बिना स्नान किये, जूता पहने गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते देखे गये हैं। कुछ तो यहाँतक देखे गये हैं कि मृतकके साथ-साथ गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते चलते हैं। जिस मन्त्रकी इतनी पवित्रता हो कि अन्य लोगोंसे अश्रुत होनेपर ही गुरु शिष्यके कानमें दीक्षा देता है, भला, वही इस प्रकार स्वेच्छया उच्चारण किया गया मन्त्र कैसे फलदायक हो सकेगा। ब्राह्मणके लिये गायत्री-उपासना ही नित्योपासना बतायी गयी है।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥
तावताकृतकृत्यत्वं नास्त्यपेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम्॥
(संध्याभाष्यसमुच्चय)

इस प्रकार ब्राह्मणके लिये शास्त्रोंमें गायत्रीकी उपासनाका एकमात्र विधान है। इसलिये प्राचीनकालमें सभी ब्राह्मण—

तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः।
देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वे द्विजोत्तमाः॥

देवीभागवतके अनुसार सभी ब्राह्मण गायत्रीकी उपासनामें तत्पर रहते थे। गायत्री तथा अन्य मन्त्रोंकी उपासना दीक्षापूर्वक फलप्रद होती है, पुस्तकसे स्वतः पढ़कर मन्त्रके माहात्म्यसे प्रभावित होकर स्वयं ही जप आरम्भ कर देना शास्त्रसम्मत और फलप्रद नहीं होता। लिखा है—

अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
निष्फलं तत् प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत्॥
(बृहत्तन्त्रसार)

दीक्षाके साथ ही मन्त्रके दस संस्कार कर लेने चाहिये। उन दस संस्कारोंकी शास्त्रोंमें व्याख्या और प्रकार लिखा गया है। मन्त्र-संस्कारके साथ मालाका संस्कार भी जपके लिये आवश्यक है। दूकानसे माला खरीदकर सीधे ही जप आरम्भ कर देना सिद्धिदायक नहीं होता। गायत्री-जप-प्रसङ्गमें आसनका विचार भी किया गया है। आसन निम्नलिखितका होना चाहिये—

तूलकम्बलवस्त्राणि पट्टव्याघ्रमृगाजिनम्।
कल्पयेदासनं धीमान् सौभाग्यज्ञानसिद्धिदम्॥
(मत्स्यसूक्तम्)

इनके अतिरिक्त जो व्यक्ति बाँस, पत्थर, लकड़ी, वृक्षके पत्ते, घास, फूसके आसनोंपर जप करते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त नहीं होती, उलटे दरिद्रता आ जाती है। जपकालमें घुटनेके अंदर हाथ रखना चाहिये और मौन होकर जप करे। गायत्रीके विशेष अनुष्ठान आदिमें अनुष्ठानका व्यवधान नहीं होना चाहिये। मन्त्रके अङ्गन्यास, करन्यास, ध्यान, विनियोगपूर्वक जप होना आवश्यक है। इस प्रकार त्रिवर्णके लिये गायत्रीका विशेष गौरव लिखा गया है। त्रिवर्णोंमें ब्राह्मण तो बिना गायत्रीका जप किये काष्ठके हाथीकी भाँति केवल दर्शनमात्र प्रयोजनवाला है।

इस प्रकार गायत्री-उपासनाका महान् स्थान है और उसका अपार गौरव है। अनेक व्यक्तियोंने उपासनाद्वारा सिद्धि प्राप्त की और अब भी प्राप्त कर रहे हैं, पर विधिहीन उपासना करनेपर मन्त्रको दोष देना केवल अज्ञानमात्र ही है। मन्त्र सत्यसंकल्पपूर्ण है। अपने दोषसे मन्त्रकी महत्ताका संकोच नहीं किया जा सकता।

सगुण ब्रह्म और त्रिशक्ति-तत्त्वस्वरूपकी मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)

त्रिमूर्ति और त्रिशक्ति

सनातनधर्मका एक ही परमात्मा, जो निर्गुण, निष्क्रिय, निराकार और निरञ्जन (निर्लिप्त) है, अपनी त्रिगुणात्मक, त्रिशक्त्यात्मक मायाशक्तिसे शबलित होकर जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहाररूपी तीन प्रकारके कार्यके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीनों नामों और मूर्तियोंको धारण करता है और जिन तीन प्रकारकी शक्तियोंसे शबलित होकर त्रिमूर्तिरूपमें आता है, उन्हींका नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली है। अर्थात् ब्रह्माजीकी शक्ति, जिससे सृष्टि होती है, महासरस्वती है, विष्णु-शक्ति, जो पालन करती-कराती है, महालक्ष्मी है और जिससे संहार होता है, उस रुद्र-शक्तिका नाम महाकाली है। इसीलिये भगवान् श्रीशंकराचार्यने भी कहा है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्' ॥

अर्थात् भगवान् अपनी शक्तिसे शबलित होकर ही अपना काम करनेमें समर्थ होते हैं, नहीं तो नहीं। इससे स्पष्ट है कि अपने मूलस्वरूपमें भगवान् निरञ्जन अतएव निष्क्रिय होते हुए भी अपनी मायाशक्तिसे शबलित होकर जगदीश्वर होते हैं, अर्थात् जगत्स्रष्टा, जगत्पालक और जगत्संहर्ता बनते हैं।

तीनों शक्तियों और मूर्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध

तीनों मूर्तियों और शक्तियोंके इस प्रकारसे कर्तव्य-क्षेत्र सिद्ध हुए हैं। महाकाली-शक्तिसहित रुद्र संहार करता है, महालक्ष्मी-शक्तिसहित विष्णु पालन करता है और महासरस्वती-शक्तिसहित ब्रह्मा सृष्टि करता है। अब और आगे बढ़कर देखना है कि इनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है। शास्त्रोंका विचार करनेपर यह बड़े चमत्कारकी बात प्रतीत होती है कि त्रिमूर्तियोंमेंसे किसी एक मूर्तिको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उसका साला होता है तो दूसरा उसका बहनोई। प्रकारान्तरसे देखें और त्रिशक्तियोंमेंसे किसी एक शक्तिको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उसकी ननद बनती है तो दूसरी उसकी भावज; क्योंकि संहार करनेवाले रुद्रकी शक्ति महाकालीका भाई है पालन करनेवाला विष्णु, उसकी शक्ति महालक्ष्मीका भाई है सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा और उसकी शक्ति महासरस्वतीका भाई है संहार करनेवाला रुद्र।

इनका आध्यात्मिक रहस्य

इन तीनों शक्तियों और मूर्तियोंके रूपमें तथा अवयव, आयुध, रंग आदि सब पदार्थोंके सम्बन्धमें उपासनाकाण्डके ग्रन्थोंमें जो अत्यन्त विस्तारके साथ वर्णन मिलते हैं, उनमेंसे एक छोटी-से-छोटी बात भी ऐसी नहीं है जो अनेक अत्युपयोगी तत्त्वोंसे भरी हुई न हो और जो जिज्ञासुओं एवं साधकोंके लिये अत्युत्तम आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली न हो।

महाकाली और रुद्रका काम

तीनों शक्तियोंके रंगों और कार्योंका यह चमत्कारी सम्बन्ध है कि रुद्रको जो संहाररूपी काम करना है, उसे करानेवाली महाकालीरूपी रुद्र-शक्ति अपने भयंकर कार्यके अनुरूप काले रंगकी होती है; परंतु यह संहारका काम संहारके लिये नहीं, अपितु सारे संसारके रक्षण और कल्याणके लिये होता है। इसलिये वह बुरे हिस्सेका संहार करके, अपने पतिका काम पूरा करके बुराईसे बचायी हुई अपनी असली वस्तुको अपने भाई अर्थात् विष्णुके हाथमें सौंपकर कहती है कि 'भाईजी!

मैंने अपने पति श्रीमहादेव—रुद्रकी शक्तिकी हैसियतसे बुराईका संहार कर दिया। अतएव हम दम्पतिका काम पूरा हो गया। अब तुम इस वस्तुको लेकर अपना जो पालन करनेका काम है, उसे करो।'

महालक्ष्मी और विष्णुका काम

विष्णुको जो पालनरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महालक्ष्मीरूपी विष्णु-शक्ति अपने पालनात्मक कार्यके अनुरूप स्वर्णवर्णकी होती है, परंतु वह पालनका काम केवल पालन करके छोड़ देनेके लिये नहीं, अपितु पोषण और वर्धन करनेके उद्देश्यसे किया जाता है। इसलिये वह पालनका काम करके, अपने पतिके कार्यको पूर्ण करके, अपनी पाली हुई उस वस्तुको अपने भ्राता अर्थात् ब्रह्माके हाथमें सौंपकर कहती है कि 'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीमहाविष्णुकी शक्तिकी हैसियतसे इस वस्तुको पाला है। इससे अब हम दम्पतिका काम पूरा हो गया। अब तुम इसे लेकर अपना कार्य, जो नयी वस्तुओंको उत्पन्न करना, अर्थात् पोषण और वर्धन करना है, उसे करो।'

महासरस्वती और ब्रह्माका काम

ब्रह्माको जो नयी वस्तुओंका आविष्कार या सृष्टिरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महासरस्वतीरूपी ब्रह्म-शक्ति अपने सृष्ट्यात्मक कार्यके अनुरूप श्वेत रंगकी होती है; परंतु वह पोषण एवं वर्धनका काम आगे-आगे बढ़ाते जानेके ही अभिप्रायसे नहीं है, अपितु पोषण और वर्धन करनेके समय जो बुरे या अनिष्ट पदार्थ भी उसके साथ सम्मिलित हो जाया करते हैं उनको दूर हटाकर ठीक कर लेनेके उद्देश्यसे ही होता है। इसलिये वह वर्धनके कामके हो जानेके बाद अपनी बढ़ायी हुई वस्तुको अपने भ्राता रुद्रके हाथमें देकर कहती है कि 'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीहिरण्यगर्भ ब्रह्माकी शक्तिकी हैसियतसे इस वस्तुका पोषण और वर्धन किया है, इससे अब हम दम्पतिका काम पूरा हो गया, अब इसके पोषण और वर्धनके समयमें इसमें जो बुराइयाँ और त्रुटियाँ आ गयी हों उनका संहार करनेका काम हमारा नहीं, तुम्हारा है। इसलिये इन्हें हाथमें लेकर खूब मार-मारकर सीधा करो।'

एवं प्रवर्तितं चक्रम्

इस प्रकार एक ही परमात्मा जगदीश्वर महाप्रभु सृष्टि, पालन और संहार—इन तीनों कर्मोंके चक्रको लगातार चलाते हुए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीनों नामोंसे दुनियामें प्रसिद्ध होते हैं और उनके इन तीनों कामोंको करानेवाली जगन्माता भगवती महामायाके अन्तर्गत जो सृष्टि-शक्ति, पालन-शक्ति और संहार-शक्ति हैं, उन्हींके नाम (पूर्वोक्त कारणसे, उलटे क्रमसे) महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं।

पञ्चीकरण और त्रिवृत्करण

प्रत्येक काममें सभी पदार्थोंका समावेश रहता है, जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँच भूतोंमेंसे प्रत्येक भूतके साथ शेष चार भूत भी मिले रहते हैं और सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण—इन तीन गुणोंमेंसे प्रत्येक गुणके साथ शेष दो गुण भी सम्मिलित रहते हैं। इसीसे व्यवहारमें किसी भूत या गुणका नाम लिये जानेपर अभिप्राय इतना ही होता है कि उस प्रकृत पदार्थमें वह भूत या गुण आंशिक है, अतएव वेदान्तसूत्रोंमें भगवान् वेदव्यासने कहा है—

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः।

इसी प्रकार प्रत्येक काममें शेष कामोंका भी समावेश होता रहता है और प्रत्येक साधनके साथ शेष साधनोंकी भी आवश्यकता हुआ करती है, तो भी व्यवहारमें प्रत्येक काम या साधनके नाममें उसी पदार्थका नाम लिया जाता है, जिसका उसमें अधिक समावेश किया गया होता है।

साधनोंका विचार

सिद्धान्तरूपसे यही मानना होगा कि तीनों शक्तियोंमें तीनों शक्तियाँ हैं और सब साधन भी हैं, परंतु ऊपर बताये हुए (**वैशेष्यात्तद्वादस्तद्वादः**) न्यायके अनुसार शास्त्रका यह सिद्धान्त भी ठीक है कि संहार, पालन और सृष्टिके लिये भयंकर बल, पर्याप्त स्वर्ण (अर्थात् धन) और स्वच्छ विद्या ही यथासंख्य (Respectincly) मुख्य साधन है। इसलिये महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती शक्ति, स्वर्ण और विद्याकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं और उनके रंग भी इसीलिये काले, पीले और श्वेत हैं।

इन दम्पतियोंका अभेद्य सम्बन्ध

चूँकि **'मातरिश्वा अपो दधाति'** इत्यादि ज्ञानकाण्ड भी यही बताता है कि ईश्वर असली स्वरूपमें निष्क्रिय है और चलनात्मक वायुरूपी संकल्प-विकल्पकी पूर्तिके लिये शक्तिशवलित होकर ही औपाधिक सक्रियताको प्राप्त करता है, इसीलिये उपासनाकाण्डमें स्पष्ट किया गया है कि शक्ति और शिवको अलग-अलग करके उनमेंसे केवल एककी उपासना नहीं करनी चाहिये। ईशावास्योपनिषद्के 'सम्भूति' और 'असम्भूति'-सम्बन्धी मन्त्रोंसे भी यही तात्पर्य निकलता है और उपासनाकाण्डके ग्रन्थोंमें तो भगवती और भगवान्की अलग-अलग उपासनाका स्पष्ट निषेध है।

भगवान्के बिना भगवती

भगवान्के बिना केवल भगवतीकी उपासना करनेका जो फल या परिणाम होगा, उसके विषयमें श्रीलक्ष्मी-नारायण-हृदय नामक उपासना-ग्रन्थमें स्पष्ट कहा है कि ऐसी उपासनासे—

'लक्ष्मीः क्रुध्यति सर्वदा'

(अर्थात् जिस भगवान्को छोड़कर केवल भगवतीकी उपासना की गयी है वह भगवान् रुष्ट नहीं होता, अपितु उसे छोड़कर जिस भगवतीकी उपासना की है वही देवी जगन्माता रुष्ट हो जाती है। फिर इ[illegible] बढ़कर भयंकर अनर्थ क्या हो सकता है ?)

भगवतीरहित भगवान्

इस दृष्टान्तसे स्पष्ट हो गया कि भगवान्को छो[illegible] केवल भगवतीकी उपासना नहीं करनी चाहिये। अगला प्रश्न यह है कि क्या भगवतीको छोड़कर के[वल] भगवान्की उपासना की जा सकती है ? नहीं, व[ह] मना है। इसमें भगवान् श्रीशंकराचार्यके—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितु[म्]

—इस वचनके अतिरिक्त अन्य प्रमाणकी आवश्य[कता] ही नहीं प्रतीत होती; क्योंकि जब शक्तिके बिना ई[श्वर] कुछ भी नहीं बन सकता, तब ऐसेकी उपासना व्यर्थ ही है।

दक्षयज्ञका दृष्टान्त

इस प्रसङ्गमें दक्षयज्ञवाला उपाख्यान विचारणीय है। शंकरके तिरस्कारसे भगवती दाक्षायणीको क्रोध हुआ है। उनके क्रुद्ध होकर अपने प्राणोंको त्यागनेपर रुद्रगण[ों] वीरभद्र आदिके हाथोंसे दक्षयज्ञका विध्वंस हो गया। इससे हमें यह सुन्दर शिक्षा मिलती है कि ईश्वर[के] तिरस्कारसे शक्तिका नाश होता है और शक्तिका नाश होनेपर हमारे सब काम केवल बिगड़ ही नहीं जाते अपितु बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानोपदेशक गुरु कौन हैं ?

वास्तवमें तो हमारे शास्त्रोंका सिद्धान्त यह है कि परमात्माका ज्ञान भगवतीके अनुग्रहसे ही हो सकता है, अन्य किसी तरहसे नहीं। केनोपनिषद्में जो यक्ष[का] प्रसङ्ग आता है, उसमें कथासंदर्भ यह है कि जब इन्द्र, अग्नि, वायु आदि देवता असुरोंको युद्धमें हराकर य[ह] न जानकर कि भगवान्के दिये हुए अनेक प्रकारके बलोंसे यह विजय प्राप्त हुई है, अहंकारी हो जाते

और समझने लगते हैं कि हमने अपने ही बलसे असुरोंको हरा दिया है, तब उनके उस गर्वको भंग करके उन्हें यथार्थ तत्त्व सिखानेके लिये भगवान् एक बड़े भयंकर यक्षरूपसे प्रकट होते हैं और उन्हें पता नहीं लगता कि यह कौन है ? तत्पश्चात् भगवच्छक्तिरूपिणी उमा आकर उन्हें वास्तविक सिद्धान्त सिखाती हैं। इस कथा-संदर्भसे स्पष्ट है कि भगवती परमेश्वरी जगदम्बा ही हमें परमात्माका ज्ञान दे सकती हैं और यह तो लौकिक व्यवहारकी दृष्टिसे भी स्वाभाविक और उचित ही है कि बच्चे तो केवल अपनी माताको ही जानते हैं और उस मातासे ही उन्हें यह पता लगा करता है कि हमारा पिता कौन है ?

माताका गुरुत्व

(१) मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव ॥

(२) मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

—इत्यादि मन्त्रोंमें माताको ही सबसे पहला स्थान दिया गया है। इसका भी यही कारण है कि माता ही आदिगुरु है और उसकी दया तथा अनुग्रहके ऊपर बच्चोंका ऐहिक, पारलौकिक एवं पारमार्थिक कल्याण निर्भर करता है।

जगन्माताका जगद्गुरुत्व

जब एक-एक व्यष्टिरूपिणी माता भी इस प्रकार अपने-अपने बच्चोंके लिये श्रेयोमार्गप्रदर्शक और ज्ञानगुरु होती है, तब कैमुतिकन्यायसे अपने-आप ही सिद्ध होता है कि जो भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी समष्टिरूपिणी माता है और सारे जगत्‌की माता है, वही अपने बच्चों (अर्थात् समस्त संसार) के लिये कल्याणपथप्रदर्शक ज्ञानगुरु होती है। अर्थात् जगन्माता जगद्गुरु होती है और दुनियामें जितने अन्य गुरु होते हैं, वे सब-के-सब इसी जगन्माताकी एक कलारूपसे ज्ञानोपदेशका काम करते हैं। अतएव भगवान् श्रीशंकराचार्यने भी देवीकी स्तुति करते हुए उसे—

देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम् ॥

—'गुरुरूपसे आकर अभ्युदयका मार्ग दिखानेवाली' बताया है।

इसीलिये शैव, वैष्णव आदि सब उपासना-ग्रन्थोंमें यह नियम मिलता है कि भगवती जगन्माताके द्वारा ही भगवान् जगत्पिताके पास पहुँचा जा सकता है।

स्त्रीजातिका जन्म

पहले यह देखना चाहिये कि भारतीय तथा पाश्चात्त्य शास्त्रोंमें स्त्रीजातिकी उत्पत्तिके विषयमें क्या लिखा है। हमारे श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें ऐतिहासिक वर्णन यह मिलता है कि—

कस्य कायमभूद् द्वेधा।

भगवान्‌ने जिस प्रथम मनुकी सृष्टि की थी, उसके शरीरका दक्षिण भाग स्वायम्भुवमनुरूपी पुरुष बना और वामभाग शतरूपा नामकी स्त्री बनी। इससे स्पष्ट है कि हमारे शास्त्रोंके अनुसार स्त्री और पुरुष मिलकर एक शरीर होते हैं। स्त्री अर्धाङ्गिनी है, इसीलिये भगवान् शंकर अर्धनारीश्वर हैं, इत्यादि।

यही कारण है कि मनीषिमाननीय भगवान् मनुने स्त्रियोंके सम्बन्धमें मान, सत्कार आदि साधारण शब्दोंका नहीं, अपितु 'पूजा' शब्दका ही प्रयोग करते हुए कहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

'जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं वहाँ देवता रमते हैं' और जहाँ स्त्रियाँ दुःखी रहती हैं, वहाँ महालक्ष्मी आदि देवता नहीं बसते। कई स्थानोंमें यहाँतक भी कहा गया है—

यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वै गृहम्।

'जहाँ स्त्रियाँ नहीं पूजी जातीं वह तो घर नहीं है, श्मशान है।'

स्त्रीमात्रका मातृस्वरूप

हमारे शास्त्र तो यहाँतक पहुँचे हुए हैं कि वे इतना ही नहीं कहते कि जगन्माता भगवतीको जगद्गुरु मानो और पूजो, परंतु वे कहते हैं कि स्त्रीमात्रको जगन्माता और जगद्गुरु मानो और पूजो—

'सर्वस्त्रीनिलया'

'जगदम्बामयं पश्य स्त्रीमात्रंविशेषतः ॥'

तात्पर्य यह कि स्त्रीमात्र जगदम्बा भगवतीके चर और प्रत्यक्ष रूप हैं। अतः उन्हें देवी मानकर उनका आदर-सत्कार करना चाहिये।

स्त्रीनिन्दा आदिका निषेध

स्त्री-सत्कारकी विधिके साथ स्त्री-तिरस्कारका निषेध भी शास्त्रमें स्पष्ट शब्दोंमें किया गया है। इस बातके समर्थनके लिये एक ही प्रमाण पर्याप्त होगा—

स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं चाप्रियं वचः।
आत्मनो हितमन्विच्छन् देवीभक्तो विवर्जयेत् ॥

अर्थात् 'देवीका भक्त होकर अपना हित चाहनेवाला स्त्रियोंकी निन्दा करने, उनको मारने, ठगने और उनका दिल दुखानेवाली बातें कहने आदिसे बचे।'

देवीभक्त कौन है ?

इसपर यह पूर्वपक्ष किया जा सकता है कि हम तो शिव, विष्णु आदि दूसरे किसी देवताके भक्त हैं, तुम्हारी देवीके नहीं हैं, इसलिये उपर्युक्त वचन हमारे लिये लागू नहीं हैं। इस आक्षेपका उत्तर यह है कि द्विजमात्र गायत्रीके उपासक हैं और गायत्री त्रिगुणात्मक एवं त्रिशक्त्यात्मक महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती-रूपिणी देवी ही है। अतएव द्विजमात्र प्रत्यक्ष देवीभक्त ही हैं और जो गायत्री-उपासना न करते हुए शिव, विष्णु आदिके ही उपासक हैं, उनके लिये भी तो पूर्वोक्त सब प्रमाण मौजूद हैं कि शक्तिके बिना ईश्वरकी प्रभुता ही नहीं होती। जो अन्य देवताओंके उपासक होते हैं, उन सबको भी देवीकी उपासना बलात्कारसे करनी ही पड़ती है और उसके अनुग्रहका पात्र बननेके लिये उपर्युक्त वचनके अनुसार स्त्रीनिन्दा आदि पातकोंसे अवश्य बचना चाहिये। नहीं तो उन्हें देवीका अनुग्रह नहीं मिल सकता। स्त्री-निन्दासे देवीका कोपपात्र बनना पड़ता है और उससे अपने सारे हितका नाश होता है। इसीलिये भगवान्‌को माता पहले और पिता पीछे कहकर उनसे प्रार्थना करते हैं—

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'

'माता धाता पितामहः।'

'भगवान् हमारी माता भी हैं और पिता भी।' यही क्यों, अपितु भगवान्‌के अवतारोंमें स्त्रीरूपसे मोहिनी अवतार भी गिना जाता है।

मातृभूतेश्वर

दक्षिणमें त्रिशिरःपुरी (त्रिचनापल्ली)में मातृभूतेश्वरका बड़ा प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर भी है, जो भगवान्‌के मातारूपसे किये हुए अवतारके उपाख्यानके आधारपर अति प्राचीन समयका बना हुआ है। जिसके साथ विभीषण आदिका भी ऐतिहासिक सम्बन्ध है और जिसका प्राचीन स्थापत्य, शिलालेख आदिके विशेषज्ञ विद्वान् (Archeologists and Epigraphists) बड़े आश्चर्यके साथ दर्शन आदि किया करते हैं। यह सनातनधर्मकी मुख्य विशेषता है कि इसमें भगवान्‌के भीतर केवल त्रिमूर्तियोंको ही नहीं, त्रिशक्तियोंको भी गिना गया है और प्रत्येक देवके साथ शक्तिरूपिणी एक देवी अवश्य रहती है, जिसकी उपासनाके बिना केवल पुरुषरूपी देवताकी उपासना हो ही नहीं सकती।

देवताओंके नाम

इसीलिये हमारे उपासनाकाण्डमें गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि दम्पतियोंकी उपासनाकी विधि मिलती है और इन्हें अलग-अलग करना मना है।

अधिष्ठान और शक्ति

भगवान् शक्तिके अधिष्ठान हैं, इसलिये आधाररूपी ईश्वरके विना शक्ति रह ही नहीं सकती और जिसके अंदर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति—इन तीनों शक्तियोंका समावेश है, उस अपनी शक्तिके विना ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् और शक्ति परस्पर पूरक (Complementary) और परिशिष्ट Supplementary हैं।

शिवशक्त्यैक्य

इसी हिसाबसे 'शिवशक्त्यैक्यरूपिणी' नामसे श्रीललितासहस्रनाममें देवीके विशेष्यरूपी नामोंका उपसंहाररूपी वर्णन करके अन्तिम नाम विशेषणरूपी 'ललिताम्बिका' दिया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि विशेष्यरूपी ललिताम्बिका देवीके जो विशेषणरूपी 'श्रीमाता', 'श्रीमहाराज्ञी' आदि ९९८ नाम पहले दिये गये हैं, उन सबका 'शिवशक्त्यैक्यरूपिणी' इस (९९९) एक नामके भीतर अन्तर्भाव, उपसंहार, घनीकरण और कोडीकरण किया गया है।

भगवच्छक्तिके चार अर्थ

अबतक ऊपर बताये हुए सब विषयोंकी समालोचना और अनुसंधानसे स्पष्ट होगा कि इस लेखका आरम्भ करते हुए हमने पहले वाक्यमें जिस 'भगवच्छक्ति' शब्दका प्रयोग किया है, उसके चार अर्थ होते हैं और इन चारों अर्थोंका हम सबको मनन करना चाहिये।

पहला अर्थ

'भगवतः शक्तिः भगवच्छक्तिः'—इस षष्ठी-तत्पुरुष-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि भगवती भगवान्की शक्ति है, वही ललितात्रिशती आदिमें बताये हुए 'ईश्वरप्रेरणाकरी' नामको यथार्थ तथा चरितार्थ करती हुई 'ईश्वर'को प्रेरणा करनेवाली और उसके सब काम करवानेवाली है।

दूसरा अर्थ

'भगवति शक्तिः भगवच्छक्तिः।' इस सप्तमी-तत्पुरुष-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि भगवान्में जो शक्ति है, उसीका नाम देवी है और उसकी उपासनाके बिना भगवान्की उपासना नहीं हो सकती।

तीसरा अर्थ

'भगवती चासौ शक्तिश्च भगवच्छक्तिः'—इस कर्मधारय-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि शक्तिरूपिणी देवी भगवती है। अर्थात् षड्गुणैश्वर्यादिसे विभूषित है और उसकी उपासनासे उपासकोंको सब प्रकारकी ऐश्वर्यादि विभूतियाँ अनायास मिल सकती हैं।

चौथा अर्थ

'भगवांश्चासौ शक्तिश्च भगवच्छक्तिः।'—इस कर्मधारय-समासवाली एक और व्युत्पत्तिसे हमें पता लगता है कि देवी और भगवान्में भेद नहीं है, अपितु ऐक्य है।

देवी-महिमाकी अनन्तता

ऐसी जगन्माता भगवतीकी उपासनाकी आवश्यकता और महिमाके विषयपर कितना भी कहते चलें, सब थोड़ा है। कविकुलतिलक श्रीकालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यके दसवें सर्गमें भगवान्के विषयमें जो कहा है—

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥

—वह यहाँ भी ठीक-ठीक लागू होता है। भेद इतना है कि हम उस प्रकरणमें और इस प्रकरणमें—

'श्रमेण तदशक्त्या वा'

—इस पाठको पसंद न करते हुए उसकी जगहपर—

'श्रमेण तदशक्त्या च'

—इस प्रकारका संशोधन करते हुए स्पष्ट कहेंगे कि भगवती और भगवान्की महिमाके सब वर्णनोंका जो उपसंहार अवश्य हुआ करता है वह इसलिये नहीं कि उनकी महिमाका पर्याप्त या तृप्तिजनक वर्णन हो चुका है, अपितु इसलिये कि उनकी महिमाका पर्याप्त या

तृप्तिजनक वर्णन किसीसे और कभी भी हो ही नहीं सकता। जब श्रीअनन्तनाग आदिकी भी यही दुर्गति है, तब कैमुतिकन्यायसे देवी-महिमाका यहाँतक कुछ दिङ्मात्र दर्शन किसी प्रकारसे करके—

'श्रमेण तदशक्त्या च'

—कालिदासकी उक्तिके कुछ संशोधित पाठके अनुसार हम उपसंहार करनेको विवश होते हैं।

उपसंहार

उपसंहार करनेके समय वे ही दो मुख्य प्रसङ्ग बार-बार याद आते हैं जिनमें क्षीराब्धिवासी शेषशायी भगवान् श्रीपुण्डरीकाक्षके अपनी योगनिद्रामें सोते रहनेके समय उनके नाभिकमलसे उत्पन्न छोटे बच्चे ब्रह्माजीके कच्चे मांसको खा जानेके लिये उपस्थित दोनों भयंकर असुरों (मधु और कैटभ)का भगवती महामाया जगन्माता ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर उन्हीं सोये हुए श्रीनारायणसे संहार करवा देती है।

जो जगन्माता **'न केवलं साधारणेषु सर्वेषु सुप्तेषु जागर्ति, अपितु सुप्तेऽपि जगन्नाथे जागर्ति'** अर्थात् केवल साधारण सब जीवोंके ही नहीं, अपितु जगत्पिताके सोते रहनेपर भी जो अपने बच्चोंकी रक्षा और कल्याणके लिये दिन-रात सदा-सर्वदा जागती रहती है, जिसका इसी प्रसङ्गके कारण चण्डी-पाठ सप्तशतीके एक ध्यानश्लोकमें वर्णन है—

'यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥'

—और जिसे शंकरावतार और यतिसार्वभौम भगवान् जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य महाराजजीने भी अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-प्रेमसे भरे हुए भावके साथ—

'देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम्।'

—इत्यादि वर्णनोंसे केवल जगन्माता ही नहीं अपितु यथार्थ जगद्गुरु बताया है, उस जगन्माता भगवतीको छोड़कर आजकलके अति विकट संकटके समयमें हम और किसका आश्रय लें। उसी जगन्माता और जगद्गुरुके श्रीचरणोंके शरणागत होकर, उ… श्रीचरणोंको पकड़कर, हमें अपने हृदयोद्गार… प्रार्थनाको प्रस्तुत करना है।

हमारे हृदयसे अब यही उद्गार और प्रार्थना… रही है कि—

'हे जगन्माता! उस समय मधु-कैटभसे तुम्हारे… बचाये हुए उसी ब्रह्माके द्वारा और इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति… ज्ञानशक्तिरूपिणी, शब्दब्रह्मरूपिणी तुम्हारी ही प्रे… और शक्तिसे भगवान्‌ने जिस सनातन वैदिक धर्म… दुनियाको उपदेश दिया, आज उसका केवल नाश… नहीं अपितु निर्मूलन करनेके लिये दो ही मधु-कै… नहीं, अपितु हजारों, लाखों और करोड़ों असुर को… कोनेसे उपस्थित हो रहे हैं। जगत्पिताजी, जो दुनिया… इस बड़ी बुरी दशामें भी बहुत समयसे चुपचाप… पड़े मालूम देते हैं, अब चातुर्मास्यके समयमें, जब वे… निद्रामें सोते रहनेका नियम भी है, उनके जागनेकी… क्या आशा हो सकती है? परंतु उनकी योगनिद्राके सम… उनके परम भक्त श्रीमान् प्रातःस्मरणीय राजर्षि अम्बरीष… उन्हींके सुदर्शनचक्रने महामुनि दुर्वासासे बचाया था… अवश्य ही जैसे अम्बरीषके पास वह चक्र था, वैसे… तुम्हारे आर्त बच्चोंके पास कोई आयुध नहीं है… भी तुम सदा जागती रहनेवाली हो और भगवान्‌की… निद्राके समयमें तुम्हींने तो मधु और कैटभसे ब्रह्माजी… रक्षा की थी। अब आपके शरणागतोंके इस प्रबल संकट… समय क्या तुम भी सो गयी? फिर हम तुम्हारे शरणा… और अनन्यशरण बच्चोंकी क्या गति होगी? माता! तु… तो जगत्के प्रलयके बाद और उसकी पुनः सृष्टिके… सोनेवाली हो। जगत्की सृष्टि और प्रलयके बीच… तो तुम कभी सोती नहीं और भगवान् जागते रहें… सोते रहें, उनकी शक्तिकी हैसियतसे तुम्हींपर जगत्के… पालनका भार रहता है। इसलिये यदि जगत्के प्रलय…

समय आ गया हो, तब तो चुपचाप रहो; नहीं तो केवल अति शीघ्र नहीं, अपितु एकदम उठ जाओ और हे शरणागत दीनार्तपरित्राणपरायणे ! अपने शरणागत दीन और आर्त सनातनधर्मियोंकी रक्षारूपी अपने कर्त्तव्यको सँभालो ।'

भक्ति-प्रेमोपहाररूपी स्तोत्र और प्रार्थना

निजाङ्घ्रिसरसीरुहद्वयपरागधात्रीप्सिता-
खिलार्थततिदायकत्रिदशसद्मधात्रीरुहम् ।
पदाञ्जनतिकृत्कृते निजकरस्थधात्रीफली-
कृताखिलनयव्रजं हृदि दधामि धात्रीगुरुम् ॥

करधात्रीकृतनतजनकरधात्रीकृतपरात्मपरविद्याम् ।
धात्रीधात्रीमेकां जगतीधात्रीं भजे जगद्धात्रीम् ॥
सुप्ते स्वयोगनिद्रावशतो विष्णौ तदीयनाभिजनिम् ।
डिम्भं जिघांसतोर्द्राक्कारितहननां भजे जगद्धात्रीम् ॥
सुप्तेऽपि जगज्जनके या त्वं जगतीसवित्रि जागर्षि ।
शरणागतरक्षाकृतिनिजकृतिकृतये भजे जगद्धात्रीम् ॥
इत्थं मधुकैटभतो रक्षितशिशवे हिरण्यगर्भाय ।
भगवन्मुखतः श्रावितसमस्तवेदां भजे जगद्धात्रीम् ॥
या ब्रह्माणं पूर्वं विधाय तस्मै हिनोति वेदांस्ताम् ।
हैरण्यगर्भदेशिकरूपां देवीं भजे जगद्धात्रीम् ॥

पातीति पात्री पिबतीति पात्री
व्युत्पत्तिरेवं द्विविधा भवन्ती ।
पीयूषपात्री शरणैकपात्री
द्वेधापि पात्रीभवती भवन्तौ ॥

बुद्धिर्मे कुण्ठिता मातः समाप्ता मम युक्तयः ।
नान्यत् किञ्चिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम ॥
धात्री पात्री हर्त्री वेत्री चास्य त्वमस्य लोकस्य ।
दात्री सकलार्थानां पात्रीकुरु मां त्वदीयकरुणायाः॥

ॐ तत्सत्

विश्वकल्याणार्थ देवीसे प्रार्थना

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥

(दुर्गासप्तशती ११ । ३४, ३५)

(देवताओंने कहा—) 'देवि ! प्रसन्न होओ । जैसे इस समय असुरोंका वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओंके भयसे बचाओ । सम्पूर्ण जगत्का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापोंके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवोंको शीघ्र दूर करो । विश्वकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि ! हम तुम्हारे चरणोंपर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ । त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि ! सब लोगोंको वरदान दो ।'

आशीर्वाद

मन्त्र-शक्ति और उसकी उपासना

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

अनादिकालसे संसार-सागरमें पड़े हुए जीव चाहते हैं कि कभी हमें क्लेश न हो और संसार-बन्धनसे मुक्ति मिले। क्लेश-नाशके लिये वे बहुत कुछ लौकिक प्रयत्न भी करते रहते हैं तथा बन्ध-मोचनके लिये भी अपने संस्कारके अनुसार विचार भी करते हैं। हमारे किये हुए प्रयत्न और विचार पूरी तरहसे सफल नहीं दिखायी पड़ रहे हैं। कारण, हमारी शक्ति संकुचित है। यदि संसारके अधिनायक परमात्मासे सम्पर्क हो तो हमारी शक्ति पूर्ण हो जायगी। तभी हमारा जीवन सफल बनेगा।

हम वह सम्पर्क प्राप्त कर सकते हैं। शास्त्र बताता है कि मन्त्रोंकी आराधनासे देवतालोग हमारे अधीन होते हैं। इससे वे हमारी इच्छा पूर्ण करके क्लेशोंका निवारण करते हैं—'देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनास्तु देवताः।' साथ ही मन्त्रोंके जप-होमादिसे पूजित देवता प्रसन्न होकर सारे सांसारिक सुखों और पुरुषार्थोंको देते हैं—

मन्त्राणां जपहोमाद्यैः स्तूयमाना हि देवताः।
प्रसन्ना निखिलान् भोगान् पुरुषार्थांश्च यच्छति॥

मन्त्र तो हमारे मुखसे निकलनेवाले पचास अक्षर ही हैं। प्रत्येक अक्षर मन्त्र है—'**अमन्त्रमक्षरं नास्ति**'। किन-किन अक्षरोंको जोड़नेसे किस देवताका प्रकाशन होता है और कौन-सी शक्ति प्रकट होती है, यह बात गुरुओं तथा मन्त्रशास्त्रोंसे जान सकते हैं। ऐसे मन्त्रोंका अनुष्ठान क्लेश-विनाश, सम्पत्प्राप्ति और मोक्षलाभके लिये भी किया जा सकता है।

भूत-प्रेत-यक्षिणी आदिसे लेकर परमात्मातककी उपासनाके लिये सप्तकोटि महामन्त्र और साधारण मन्त्र हैं। मानव अपने पूर्व संस्कारके अनुसार ऐहिक सुख-सम्पदा, अनिष्ट-निरसन एवं आत्मोद्धारकी अभिलाषा रखते हैं। ये सभी अभिलाषाएँ मन्त्रोंद्वारा देव-देवियोंकी उपासनासे पूर्ण होती हैं। विधानके अनुसार श्रद्धा और संयमके साथ जप-होम-ध्यान आदि करें तो अवश्य वाञ्छित फल पायेंगे।

तामस लोग यक्षिणी आदिकी उपासना करके चमत्कार दिखा सकते हैं। वे आत्मोन्नति नहीं कर पायेंगे। राजस लोग देव-देवियोंकी उपासना करते हैं, मनमें अनेक लौकिक कामनाओंके होनेसे वे फल तो पायेंगे, पर मनकी शुद्धिसे वञ्चित रह जायँगे। सात्त्विक भावनासे देव-देवियोंकी उपासना करनेसे उपासकोंका जीवन मङ्गलमय बन जाता है और आराध्यदेवकी कृपासे वे आत्मसाक्षात्कार भी कर सकते हैं तथा मनुष्य-जीवनको धन्य बना सकते हैं।

शाक्ततन्त्रके अनुसार श्रीविद्यापञ्चदशाक्षरीका बड़ा महत्त्व है। इस मन्त्रकी प्रतिपाद्या देवी शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका हैं। इस मन्त्रकी उपासना करनेवालोंको शिव और शक्तिमें भेद नहीं देखना चाहिये। इस मन्त्रके विषयमें त्रिशती-उत्तरपीठिकामें हयग्रीवजी कहते हैं—

यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शंकरः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी॥

'जिसका अगला जन्म न हो अर्थात् जो इसी जन्ममें मुक्त हो, वह अथवा साक्षात् शंकर ही पञ्चदशाक्षरी मन्त्रको प्राप्त कर सकते हैं।' इस मन्त्रके एक-एक अक्षरको लेकर शिव और शक्ति दोनोंने त्रिशती-स्तोत्रकी रचना की है। श्रीअगस्त्य मुनिने इस मन्त्रपर श्रीविद्यादीपिका नामक शास्त्रार्थसे परिपूर्ण टीका लिखी है। काम-क्रोध-लोभादिशून्य अधिकारीको गुरु-मुखसे श्रीविद्यामन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके सात्त्विक भावनासे भगवतीकी आराधना करनी चाहिये, इससे शक्ति पूर्ण होती है, सांसारिक जीवन मङ्गलमय बनता है तथा अन्तमें देवीकी कृपासे आत्मसाक्षात्कारपूर्वक मोक्ष भी मिलता है। ऐसा करनेसे हमारा जीवन सफल होगा और सुखपूर्वक मुक्तिकी उपलब्धि होगी।

श्रीविद्या भगवती राजराजेश्वरी

(अनन्तश्रीविभूषित पश्चिमाम्नायस्थ श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सनातनधर्ममें छः रूपोंमें परमेश्वरकी आराधना-उपासना होती है। भगवान् आद्य शंकराचार्यको षण्मत-संस्थापक माना ही जाता है। उनके अनुसार भगवान् इन छः रूपोंमें उपास्य हैं—शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु और निर्गुण-निराकार ब्रह्म। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत एवं विविध आगमोंमें इनके रहस्य, चरित्र और उपासनाके सम्बन्धमें विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इनमें कहीं-कहीं श्रेष्ठता-कनिष्ठताकी भी बात आती है, पर उसका तात्पर्य उपासककी अपने इष्टमें निष्ठाको दृढ़ करनेमें ही है, तत्त्वतः तो इनका परस्पर अभेद ही है। भगवान् विष्णुने कहा है—

ज्ञानं गणेशो मम चक्षुरर्कः शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्या।
विभेदबुद्ध्या मयि ये भजन्ति मामङ्गहीनं कलयन्ति मन्दाः॥

अर्थात् 'गणेश' मेरा ज्ञान है, सूर्य मेरे नेत्र हैं, शिवजी मेरी आत्मा हैं, आद्या भगवती मेरी शक्ति हैं, जो भेदबुद्धिसे मेरा भजन करते हैं, वे मन्द मुझे अङ्गहीन समझते हैं।' इस प्रकार इन छः रूपोंमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म ज्ञानगम्य है, शेष पाँच रूप सगुण-साकार हैं। इनमें शक्ति अन्यतम हैं, जिनकी उपासना विविध रूपोंमें की जाती है। गायत्री, भुवनेश्वरी, काली, तारा, बगला, षोडशी, त्रिपुरा, धूमावती, मातङ्गी, कमला, पद्मावती, दुर्गा आदि उन्हींके रूप हैं।

सभी शांकरपीठोंमें भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुर-सुन्दरीकी श्रीयन्त्रमें परम्परासे आराधना चली आ रही है। भगवान् आद्य शंकराचार्यका एक ग्रन्थ है—सौन्दर्यलहरी। जिसमें भगवतीके तत्त्व, रहस्य, स्वभाव और सौन्दर्यका वर्णन किया गया है। उसमें उन्होंने कहा है—शिव शक्ति-के विना कुछ भी नहीं कर सकते। शक्तिसंयुक्त होनेपर ही वे कुछ करनेमें समर्थ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव उनकी आराधना करते हैं। यद्यपि मधु, क्षीर, द्राक्षा—तीनों मधुर हैं, तथापि इनमें परस्पर विलक्षणता है। पर इनके परस्परके अन्तरको केवल जिह्वा ही जानती है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। इसी प्रकार जगदम्बे! आपके सौन्दर्यका अनुभव केवल परमशिवके नेत्र ही कर सकते हैं। आपके गुण सकल विषयोंके अविषय हैं, मैं कैसे उनका वर्णन कर सकता हूँ। आपसे अन्य देवगण अपने हाथोंमें अभय और वरकी मुद्रा धारण करते हैं, पर शरण्ये! आप ही एक ऐसी हैं, जो हाथमें अभय वर धारण करनेका अभिनय नहीं करतीं, किंतु आपको इसकी आवश्यकता ही क्या है। भयसे त्राण करने और वाञ्छासे भी अधिक फल-प्रदान करनेके लिये तो आपके चरण ही पर्याप्त समर्थ हैं।

अमृतके समुद्रमें एक मणिका द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षोंकी वारी है, नवरत्नोंके नव परकोटे हैं, मध्यमें कदम्ब-वन है, उस वनमें चिन्तामणिसे निर्मित महलमें कल्पवृक्षके नीचे ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पञ्चकृत्यके देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आसनके पाये हैं, सदाशिव फलक हैं। सदाशिवकी नाभिसे निर्गत कमलपर विराजमान भगवतीका जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं।

सौन्दर्य-लहरीमें ज्ञान-सम्बन्ध नामक एक द्रविड शिशुकी कथा आती है—उस बालकके माता-पिता राज-राजेश्वरी भगवती ललिताके परम उपासक थे। पिता प्रतिदिन मन्दिरमें जाकर उनका विधिवत् पूजन करते थे। एक बार वे किसी कामसे कहीं बाहर चले गये। माताको भी असुविधा थी। उन्होंने इस बालकको भगवती-को दुग्धका नैवेद्य लगानेके लिये भेजा। बालकने दुग्धका

पात्र भगवतीकी प्रतिमाके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर बैठ गया। देरतक प्रतीक्षा करनेपर भी जब उसने देखा कि माँ जगदम्बा दुग्ध-पान नहीं कर रही हैं, तब वह रोने लगा। करुणामयी माँने जब रोनेका कारण पूछा, तब उसने कहा—जब मेरे पिता दुग्धका नैवेद्य लगाते थे, तब तो आप उनके हाथसे पीती थीं, मेरे हाथसे आज क्यों नहीं पी रही हैं।' भगवती माँने मन्दस्मितसे बालकको देखते हुए सब पी लिया, किंतु बालकने फिर भी रोना बंद नहीं किया और कहा—'सब क्यों पी लिया? मेरे लिये कुछ भी क्यों नहीं छोड़ा' वात्सल्यमयी माँने उस शिशुको स्नेहसे अपनी गोदमें लेकर स्तन्यपान कराया। वह द्रविड शिशु दुग्धपान करते ही सकल विद्याओंमें निष्णात हो गया।*

'आनन्दलहरी'में आचार्य कहते हैं—कुछ गुणोंके कारण आदरपूर्वक कुछ लोग सपर्णा वल्लीकी सेवा करते हैं, पर मेरी बुद्धि तो यह कहती है कि एकमात्र अपर्णाकी ही सेवा करनी चाहिये। अपर्णा लता वह है जिसमें पर्ण (पत्ते) न हों तथा सूखे पत्ते खाकर पुनः उन्हें भी छोड़कर तप करनेके करण भगवती पार्वतीका भी नाम अपर्णा है। लता बेलको भी कहते हैं, नारीको भी। अभिप्राय यह है कि यदि लताकी ही सेवा करनी है तो सपर्णाके स्थानपर अपर्णा (पार्वती)की करनी चाहिये, जिससे आवेष्टित होकर पुराण स्थाणु (पुराना ठूँठ)—(शिवपक्षमें भी पुरोऽपि नवः पुराणः कूटस्थः) की भक्ति भी कैवल्य फल फलती है। शिवमें मोक्ष प्रदान करनेकी शक्ति जगदम्बाके साहचर्यसे ही आती है। वे माता राजराजेश्वरी उपासकोंको भोग-मोक्ष दोनों ही एक साथ प्रदान करती हैं। जब कि दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। 'मङ्गलस्तव' में कहा गया है—

यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगो
यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

अर्थात् 'जिसे मोक्ष है उसे भोग नहीं, जिसे भोग है, उसे मोक्ष नहीं, पर श्रीविद्या त्रिपुरसुन्दरीके सेवकोंको तो ये दोनों सुलभ हैं।

तात्त्विक दृष्टिसे त्रिपुर अर्थात् जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति के स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीररूप तीन पुरोंकी जो साक्षिणी है, वे निर्विशेषा नियति ही त्रिपुरसुन्दरी है। जिस प्रकार मणि और उसकी प्रभा परस्पर अभिन्न होते हैं, उसी प्रकार शिव और शक्तिका परस्पर अभेद है। शिवको प्रकाश और शक्तिको विमर्श कहा जाता है। शक्तिदर्शनके अनुसार जब शक्ति सृष्ट्युन्मुख होती है, तब छब्बीस तत्त्वोंके रूपमें विलसित होकर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका सर्जन करती है। छब्बीस तत्त्व हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्ध, विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव।

इस दर्शनमें सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह—पाँच कृत्य माने जाते हैं, जिनका देवीभागवतमें भी वर्णन है। सृष्टिके ब्रह्मा, स्थितिके विष्णु, संहारके रुद्र, तिरोधानके ईश्वर और अनुग्रहके देवता सदाशिव हैं, किंतु ये पाँचों बिना शक्तिके निश्चेष्ट रहते हैं। शक्तिसे संचालित होनेपर ही अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं, इसलिये इनको पञ्चप्रेत भी कहा गया है—'पञ्चप्रेतासनासीना' 'पञ्चब्रह्मासनस्थिता' (ललितासहस्रनाम) ये भगवतीके नाम हैं। दसमहाविद्या और नवदुर्गा भी इन्हींके अवतार हैं। एक बार भण्डासुरके उत्पातसे जब जगत् संत्रस्त

* ज्ञानसम्बन्ध तथा आनन्दलहरीपर शोध दूरतक पहुँच गया है। द्रविड लोगोंने विस्तृत अनुसंधान कर शोधकी बात अरिञ्छित् राज तक पहुँचा दी है। इसपर अधिकारिक निर्णय हो तो कार्य सुन्दर हो।

हो गया, तब भगवती त्रिपुरसुन्दरीके रूपमें प्रकट हुई। शिवकी कोपाग्निसे दग्ध कामके भस्मसे गणेशके साथ खेलनेके लिये पार्वतीने एक पुतला बनाया और उसमें प्राण दे दिया। तब तमोगुणी पिण्डको पाकर रमाके द्वारा शापित माणिक्यशेखरके जीवनने उसमें प्रवेश करके क्रमशः भयंकर रूप धारण कर लिया। यही भण्डासुरकी उत्पत्तिका निमित्त बना।

गणेशकी प्रेरणासे उसने उग्र तपस्या करके शिवसे दुर्लभ वर प्राप्त कर लिया। एक सौ आठ ब्रह्माण्डोंका अधिपति बनकर उसने देवताओंको सताना प्रारम्भ कर दिया। उससे संत्रस्त और विस्थापित देवताओंने मेरु पर्वतपर बृहस्पतिके आचार्यत्वमें अनुष्ठित यज्ञमें श्रीसूक्तसे हवन किया। देवताओंपर अनुग्रह करके जगदम्बा अग्निकुण्डसे प्रकट हुई। पञ्चकृत्यके देवताओंकी प्रार्थनापर उन्होंने उन्हें अपना सिंहासन बनाया। समस्त देवताओंके अनुरोधसे वे स्वयं दो रूपोंमें विभक्त होकर कामेश्वर-कामेश्वरी बन गयीं। उनका बालसूर्यके समान दिव्य तेज था, तीन नेत्र थे और चार भुजाएँ थीं। उनमें वे इक्षु, धनु, पुष्प, बाण, पाश और अङ्कुश धारण किये थीं। उनके वस्त्र लाल थे और वे दिव्य आभूषणोंसे आभूषित थीं। कामेश्वरका भी वैसा ही स्वरूप था। श्रीचक्रनगरको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। राजश्यामला उनकी मन्त्रिणी और वाराही उनकी सेनाध्यक्षा बनीं। अपने ही अंशसे अनेक रूप धारण कर उन्होंने नगर बसाया।

देवताओंने बताया कि भण्डासुरके त्राससे मुक्ति पानेके लिये उन्होंने उनकी आराधना की है। भगवतीने शून्यक-नगर-निवासी उस भण्डासुर दैत्यके पास श्रीनारदके द्वारा संदेश भेजा कि देवताओंको सताना छोड़ दे, किंतु वह न माना। अन्ततोगत्वा भण्ड दैत्यके साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। भण्ड समस्त आसुरी शक्तियोंके साथ युद्ध कर रहा था। एक बार वह स्वयं ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल, दन्तवक्र, कंस आदिके रूपमें युद्ध करने आया, पर राजराजेश्वरीने अपनी कराङ्गुलियोंसे नारायणके दस अवतारोंको उत्पन्न करके उन सबका संहार कर दिया। इस युद्धमें वाराही राजश्यामला और बालाने भी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया। अन्तमें कामेश्वरास्त्रसे भगवती त्रिपुरेश्वरीने उसे भस्म कर दिया; क्योंकि अन्य किसी प्रचलित अस्त्रसे वरदानके कारण उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। यह उनकी समस्त आसुरी शक्तियोंपर विजय थी।

इन भगवतीकी उपासना श्रीचक्रपर की जाती है। कहा है—**'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'**। यह श्रीचक्र शिवा-शिव दोनोंका शरीर है। **'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'** के सिद्धान्तानुसार उपासनाके प्रारम्भमें भूशुद्धि, भूतशुद्धि करके विविध न्यासोंसे साधक अपने देहको मन्त्रमय बनाता है। पात्रासादन करके पूजनोपयोगी द्रव्योंको शुद्ध करता है। एतदर्थ वर्धनी, कलश, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य, गुरुपात्र, आत्मपात्र मन्त्रोंसे संस्कृत मण्डलोंमें स्थापित किये जाते हैं। विशेषार्घ्यमें मत्स्य-मुद्रासे त्रिकोण बनाकर मूल त्रिखण्डकी भी उसमें भावना की जाती है। त्रिकोणके मध्यमें बिन्दुकी भावना करके वाम-दक्षिण पार्श्वमें 'हं' 'सः' लिखा जाता है। फिर विशेषार्घ्यको वह्निकला, सूर्यकला, सोमकला, ब्रह्मकला, विष्णुकला, रुद्रकला, ईश्वरकला और सदाशिव-कलासे अभिमन्त्रित करके कतिपय वैदिक मन्त्रोंसे संस्कृत किया जाता है।

शांकरपीठोंमें विशेषार्घ्यके लिये गोदुग्ध या फलोंके रसका प्रयोग करनेकी परम्परा है। उसमें मधु, शर्करा, आर्द्रक-खण्ड निक्षिप्त होता है। विशेषार्घ्यपात्रसे कुछ द्रव्य गुरुपात्रमें लेकर गुरुत्रयका पूजन कर आत्मपात्रमें वही द्रव्य डालकर मूलाधारमें बालाग्रमात्र अनादि वासनारूप ईन्धनसे प्रज्वलित कुण्डलिनीमें अधिष्ठित चिदग्निमण्डलका

ध्यान करके पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प, धर्म-अधर्म सबका कुण्डलिनीरूप चिदग्निमें हवन कर निर्विशेष ब्रह्मरूपसे अवस्थित होकर अन्तर्याग करनेका विधान है। इसमें सुषुम्नाके भीतर मूलाधारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त विस्तृत दिव्य प्रकाशमें अधःसहस्रार, विषुव, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा—इन नौ चक्रोंमें श्रीचक्रके नौ आवरण-देवताओंकी ब्रह्मरन्ध्र-विनिःसृत पञ्च-तत्त्वोंके सारसे पञ्चोपचार पूजा करके समस्त उपचारों और आवरण-देवताओंका देवीके चरणोंमें विलयकी भावना कर उन्हें अपनी आत्मासे अभिन्न समझा जाता है। पुनः उसी आत्मासे अभिन्न पर-चितिको ब्रह्मरन्ध्रसे पुष्पद्वारा श्रीचक्रमें लाकर आवरण-देवताओंके रूपमें परिणत कर ध्यान आवाहन करके चतुः षष्ट्युपचार या षोडशोपचार पूजनके पश्चात् तत्त्वशोधन किया जाता है। इस प्रकार ब्रह्मसे प्रपञ्चकी उत्पत्ति और ब्रह्ममें ही उसके लयकी भावना जिसका स्वरूप है, वह निदिध्यासन इस पूजनमें स्वतः हो जाता है। अन्तमें प्रार्थना और शान्तिपाठके पश्चात् पुनः आत्मरूपसे उनकी स्थापनारूप विसर्जन किया जाता है।

योगीजन भगवती त्रिपुरसुन्दरीको कुण्डलिनीके रूपमें देखते हैं। भगवान् शंकराचार्यने कहा है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे॥

अर्थात् 'हे कुण्डलिनीरूपे भगवती! तुम मूलाधारमें पृथ्वीतत्त्व, मणिपूरमें जलतत्त्व (स्वाधिष्ठान), स्वाधिष्ठानमें अग्नितत्त्व (मणिपूर), अनाहतमें वायुतत्त्व, विशुद्धिमें आकाशतत्त्व, आज्ञामें मनस्तत्त्वको पार करके सहस्रारमें अपने पति परमशिवके साथ एकान्तमें विहार करती हो।'

इसीका संकेत करती हुई मीरा कहती है—

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय।
शूली ऊपर सेज पियाकी किस विध मिलना होय।
गगन-मँडलपर सेज पियाकी किस विध सोना होय।

इस प्रकार देखा जाय तो अनन्त ब्रह्माण्ड-ज[...] कल्याणमयी करुणामयी राजराजेश्वरी श्रीचक्रनगरसम्रा[...] श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरीकी आराधना—उपा[...] सभीके लिये कल्याणकारी है। जो लोग इस प्र[...] आराधना करनेमें असमर्थ हैं, वे उनके नामका [...] करके भी उनका अनुग्रह प्राप्त कर सकते हैं। नारि[...] लिये कहा गया है कि पुरुषोंको जो सिद्धि त्रैपुर मन्[...] जपसे तीन वर्षमें प्राप्त होती है, वह सिद्धि स्त्रि[...] एक ही दिनमें प्राप्त हो जाती है।

त्रिपुरसुन्दरीके भक्त उनको ही सर्वरूप समझते हैं—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्व[...]
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रय[...]
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादि[...]
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः[...]
(लघुस्त[...])

ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन देव; अग्नि, सू[...] चन्द्र, ये तीनों तेज; मन्त्र, उत्साह और प्रभुता; अ[...] महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—ये तीनों शक्ति[...] उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तीन स्वर; स्वर्ग, मर्त्य, पाता[...] तीन लोक; जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीन पद; पु[...] रजतादिमय तीन पुष्कर; ऋक्, यजु, साम तीन [...] (वेद); अ उ म् तीन वर्ण, अर्थ, धर्म, काम तीन वर्ग अ[...] जहाँ भी तीन रूपोंका समन्वित रूप हो, वह स[...] परमार्थतया आपके त्रिपुरा नामसे अन्वित हो जाता है[...]

प्रसन्नताका विषय है कि 'कल्याण' 'शक्ति-उपासना[...] प्रकाशित कर साधकोंका ध्यान इस ओर आ[...] कर रहा है। इससे सबको लाभ होगा।

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितमोदवाणसौभाग्याम्।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे।।

सच्चिदानन्दस्वरूपा महाशक्ति

(अनन्तश्री विभूषित ऊर्ध्वाम्नायश्रीकाशी (सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतके महामहिम मनीषियों, महर्षियोंने निगमागम-शास्त्रोंके आधारपर यह सुनिश्चित सिद्धान्त स्थिर किया है कि समस्त विश्वका उद्भव, धारण एवं लय शक्तिके द्वारा तथा शक्तिमें ही होता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है—'समस्त विश्व महाशक्तिका ही विलास है।' 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतौ'का भी यही तात्पर्य है। देवीभागवतमें भगवती कहती हैं—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।

अर्थात् 'समस्त विश्व मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न सनातन या अविनाशी तत्त्व दूसरा कोई नहीं है।' दुर्गाके विषयमें प्राधानिक रहस्यमें कहा है—

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता॥

'लक्ष्यं लक्षणीयं मायारूपमलक्ष्यं ब्रह्मरूपं तदुभयस्वरूपा त्रिगुणमयी शबल ब्रह्मरूपा'—इत्यर्थः। (नीलकण्ठी व्याख्या)।

लक्ष्य करने योग्य मायारूप है—अलक्ष्य ब्रह्मरूप हैं, इस प्रकार भगवती उभयस्वरूपा है—माया शबल ब्रह्मरूपा है।

'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि'—इत्यादि वैदिकसूत्रमें भगवतीको सर्वात्मक सच्चिदानन्दरूपा ही कहा गया है। देव्यथर्वशीर्षमें भगवती देवोंसे अपने स्वरूपका परिचय देती हुई कहती हैं—**'साऽब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।'** अर्थात् 'मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् अभिव्यक्त होता है।'

'महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरमनुविश्य स्वयमेकैव विभाति।' (बह्वृचोपनिषत्)—स्थूल, सूक्ष्म, कारणात्मक समस्त विश्वमें बाहर-भीतर प्रविष्ट होकर, व्याप्त होकर महात्रिपुरसुन्दरी स्वयं प्रकाशरूपसे भासित हो रही हैं।

यदस्ति सन्मात्रं यद्विभाति चिन्मात्रं यत्प्रियमानन्दं तदेतत्सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। (बह्वृचोपनिषद्)

अर्थात्—भगवती सच्चिदानन्दस्वरूपा हैं।

आचार्य पाद आद्यशंकराचार्य 'सौन्दर्य-लहरी'में स्पष्ट-रूपमें शिवकी विशेषता शक्तिके द्वारा ही है—यह प्रतिपादित करते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

अर्थात् शक्तिके सम्बन्धके बिना शिव निश्चेष्ट ही रहते हैं। हरि-हर-विरंचिकी आराध्या भगवती हैं—यह स्पष्ट है—

'अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।
(सौन्दर्य१)

अद्भुतरामायणके अनुसार सहस्रवदन रावणके शस्त्रसे जब श्रीराम मूर्च्छित हो गये, तब भगवती सीताने कालीका रूप धारण कर उक्त रावणका संहार कर श्रीरामकी मूर्च्छा हटाकर देवताओंको हर्षित किया था। इस प्रकार पराशक्तिकी महिमाका वर्णन करना असम्भव है—

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च।

वर्तमानमें हमारा राष्ट्र भगवती आद्याशक्तिकी आराधना-से प्रायः पराङ्मुख है। इसका परिणाम भी सुस्पष्ट है। भारतके अतीतगौरवकी उत्तुङ्गशिखरारूढ़ता दिव्यातिदिव्य अध्यात्मविज्ञानोपलब्धिका एकमात्र मूल कारण भगवतीकी आराधना थी। कालक्रमसे हमारे देशमें शक्ति-उपासना एवं शाक्त-विज्ञानका ह्रास हो जानेके कारण हमारा राष्ट्र शक्ति राहित्य एवं पराधीनताकी शृङ्खलाओंमें सहस्रों संवत्सरतक आबद्ध हो गया था।

धर्मसम्राट् विश्ववन्द्य स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज-द्वारा पुनः-पुनः अनुष्ठित प्रवर्तित लक्षचण्डी महायज्ञोंद्वारा

भगवतीकी कृपासे हमारा राष्ट्र यद्यपि स्वतन्त्र हो गया है, तथापि यथोचित आराधनाके न होनेसे हम विविध विपत्तियोंके कृष्णमेघमण्डलसे आच्छादित हैं, घिरे हैं। आपके 'कल्याण'के इस विशेषाङ्कद्वारा भगवती शक्तिकी साधनाओंका पुनरुज्जीवन हो तथा भारत पुनः अतीत गौरवको प्राप्त करे—यही आद्याशक्तिसे हमारी प्रार्थना है। 'कल्याण'-परिवारका भगवती उत्तरोत्तर अभ्युदय करें—यही हमारी 'माँ' से प्रार्थना है।

पराशक्तिके विभिन्न रूप

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठस्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती महाराज)

भारतके प्राचीन ऋषि-मुनि इस जगत्के वैचित्र्यके कारणों तथा इसकी तात्त्विक स्थितिको जाननेके प्रयत्नमें जी-जानसे लग गये। फलस्वरूप उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह विश्व विभिन्न स्तरकी शक्तियोंसे सम्पन्न जड़-वस्तुओंसे भरा पड़ा है। एक ही पराशक्ति इन सभीमें विभिन्न मात्रामें भरी है। यही नहीं, इसी पराशक्तिने विभिन्न जड वस्तुओंके भी रूप धारण कर लिये हैं और यही सजीव वस्तुओंमें जीवके रूपमें विलसित होती है।

आधुनिक विज्ञान जो चंद शताब्दी पूर्वतक जड़ एवं चेतन शक्तिको अलग-अलग मानता था, इसे स्वीकार न कर सका, पर अब वह भी भारतीय ऋषि-मुनियोंके इस तत्त्वको 'राम-राम' कहता हुआ स्वीकार करता है और घोषित करता है कि शक्ति जड़के रूपमें परिणत हो सकती है।

इस पराशक्तिकी दो मुख्य स्थितियाँ हैं—निर्गुणा एवं सगुणा। निर्गुण स्थितिमें वह परिपूर्ण ज्ञानस्वरूपिणी एवं कृपासमुद्रस्वरूपिणी है। इसीके ज्ञान एवं कृपाका एक अंश हममें विकसित हुआ है। अतएव प्रत्येकमें ज्ञान-कोष बहुत है, प्रेम भी उसी पराशक्तिके आज्ञारूप है। वेद तो हर एकका अलग-अलग कर्तव्य निर्धारित करता है। उन कर्तव्योंको सबको निभाना पड़ता। ऐसा निभानेसे ही पराशक्तिकी सत्यस्थितिको जान सकते हैं। यही सत्य निम्नलिखित गीता-वाक्यमें भी बताया जाता है—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।'

कर्तव्य पूरा करनेमें निमग्न मन, जो स्वभावतः चञ्चल है, कभी द्वेष एवं क्रोधसे भर जाता है। स्वीकार्य प्रसन्नता और प्रेमके बहिष्कारसे द्वेषका [illegible] अनिवार्य है। तो भी व्यावहारिक स्थितितक [illegible] भावनाओंको स्थगित कर प्रेमकी भावनाको [illegible] चाहिये। पहले तो यह असाध्य मालूम पड़ेगा, [illegible] कर्तव्यको पूरा करें और उसे पराशक्तिको अर्पित [illegible] तो यह सुलभ-साध्य होगा।

ऐसे अर्पण करनेसे सुदृढ़ आधार बनेगा, पराशक्ति[illegible] विभिन्न सगुणरूपोंमें—जिसमें जिसका मन [illegible] लगता हो, उसमें सुदृढ़ लगाना चाहिये। श्रीदु[illegible] लक्ष्मी, सरस्वती आदि इसी पराशक्तिके विद्यमान[illegible] आप हैं। श्रीशिवजी, भगवान् विष्णु, श्रीगणपति[illegible] श्रीकार्तिकेय, श्रीसूर्यनारायणके रूपोंमें भी यही [illegible] विद्यमान है। भगवान् श्रीआदिशंकराचार्यजीके निम्नलि[illegible] वाक्यमें इसी तत्त्वका उल्लेख है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

अस्तु, हम अपनी कर्तव्यपरायणताके रूपमें [illegible] शक्तिकी पूजा करें एवं संतुष्ट हों। दातृ-शक्ति [illegible] पराशक्तिकी ही है, हमारी तो केवल स्वीकरण कर[illegible] ही है। पराशक्तिसे हमारी प्रार्थना है कि चाहे शरीरत[illegible]

भावना सीमित कर द्वैत-भाव ही दे दें, पर आप संतुष्ट हों। चाहे कैलास वैकुण्ठ, मणिद्वीप आदि लोकोंमें नित्य उसका आनन्दानुभव किया जाय, पर आप संतुष्ट हों। अथवा चाहे अपनेमें ही लीन कर अद्वैत स्थितिमें कर लें पर आप संतुष्ट हों। यही हम सबका कर्तव्य है।

वास्तवमें हमारा कर्तव्य तो बिना कोई अभिलाषा किये सर्वशक्तिकी किसी-न-किसी स्वरूपसे भक्ति करना-ही हैं। हमें जो मिलता है, उससे संतुष्ट रहकर उनकी सेवामें तत्पर रहना उच्चस्तरकी उपासना है—

'यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः' इत्यादि।

भारतके शक्तिपीठोंमें कामकोटि-पीठका स्थान

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

षण्मतसंस्थापनाचार्य श्रीमज्जगद्गुरु आदिशंकराचार्यजी-ने अद्वैत-वेद-वेदान्तका प्रचार एवं प्रसार किया। श्री-गणपति, भगवान् शंकर, माँ पार्वती, श्रीविष्णु भगवान्, श्रीसूर्य भगवान् और श्रीकार्तिकेय प्रभुकी उपासनाओंकी पद्धतिको षण्मत कहा जाता है। इन सबमें शक्ति-अर्थात् देवीकी उपासना एक अङ्ग है। प्रत्येक कार्य करनेके लिये मनुष्यमें शक्तिका होना आवश्यक है। सबको शक्ति प्रदान करनेवाली पराशक्ति ही उसकी अधिष्ठात्री देवता हैं। उन्हें श्रीराजराजेश्वरी, श्रीमहादेवी, ललिता या श्रीविद्या आदि भी कहा जाता है। लक्ष्यमें वे ही 'परब्रह्म'-स्वरूपिणी कही जाती हैं। साधकका मन चञ्चल नहीं है, उसे विधि-पूर्वक श्रीविद्याकी दीक्षा लेकर एवं श्रीचक्रकी पूजा करके परब्रह्म परमात्मातक पहुँचना चाहिये। परब्रह्म परमात्मा ही माया-शक्तिको लेकर संसारकी सृष्टि, स्थिति एवं संहार-कार्य करता है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीकी सरस्वती, रूपमें, विष्णुकी महालक्ष्मीरूपमें एवं शंकरजीकी पार्वतीरूपमें वही शक्ति विराजमान है।

भारतवर्षमें शक्ति देवताके मुख्य इक्यावन स्थान शक्तिपीठोंके रूपमें प्रसिद्ध हैं। पौराणिक आख्यायिका है कि दक्ष प्रजापतिकी पुत्रीके रूपमें पार्वतीने जन्म लिया, जिससे उसका नाम दाक्षायणी पड़ा। एक बार दक्ष प्रजापतिने एक महायज्ञ किया, जिसमें भगवान् शंकरको निमन्त्रित करने और सम्मान देनेके बदले दक्ष प्रजापतिने उन्हें निन्दित एवं अपमानित किया। दाक्षायणी देवीको अपने पतिका अपमान एवं तिरस्कार सहन न हुआ तो उन्होंने वहाँ अग्निकुण्डमें अपने शरीरका परित्याग कर दिया। पश्चात् कुपित और दुःखित शिव दाक्षायणीके निर्जीव शरीरको लिये यत्र-तत्र घूमते रहे। सतीके अङ्ग जिन ५१ स्थानोंपर गिरे, वे ही स्थान वर्तमान समयमें शक्तिपीठ नामसे जाने जाते हैं। उन सभी शक्तिपीठोंमें हृदयपीठ गुजरातमें है, जिसे अम्बाजी-पीठ कहते हैं। ऐसे ही नाभिपीठ-श्रीकाञ्चीपुरम् है। श्रीकाञ्चीपुरम्में देवीके पीठको कामकोटि पीठ कहा जाता है। ललितासहस्रनाममें **'ओड्याणपीठ-निलया'** ऐसा उल्लेख है। यहाँ 'काञ्ची' का अर्थ है—स्त्रियोंद्वारा नाभिप्रदेशमें धारण किया जानेवाला आभूषण। इसे संस्कृतमें 'ओड्यान' (उड्डीयान) या रशना, हिंदीमें तागडी या कमरबन्द कहते हैं। काम शब्दका अर्थ है—प्रेम, इच्छा, कोटि शब्दका अर्थ है—अन्त। जिस प्रकार 'धनुष्कोटि' का अर्थ है, धनुषका अन्त, वैसे ही काम-कोटिका अर्थ है—काम सांसारिक वासनाओंका अन्त। अर्थात् मनुष्य-जीवनमें जो काम है, उसकी समाप्ति होनी आवश्यक है। उसकी समाप्तिपर ही मोक्ष प्राप्त होता है। कामाक्षी—कामकी कोटि अर्थात् अन्तिम शक्ति—मोक्ष देनेवाली है। कामाक्षी शब्दका अर्थ है—हमारे काम अर्थात् मनोऽभीष्टको अच्छी आँखोंसे देखनेवाली। सांसारिक दुःखोंसे मुक्ति ही मनुष्य-जीवनकी मनोऽभीष्ट

वस्तु है और यही मनुष्य-जीवनका प्राप्तव्य मुख्य ध्येय भी है। मनुष्यकी आशा पूर्ण करनेवाली एवं कृपादृष्टिपूर्ण आँखोंसे देखकर आशीर्वाद देनेवाली भगवती ही कामाक्षी देवी हैं।

भगवान्का आशीर्वाद पानेके लिये पाँच प्रकारकी दीक्षाओंमेंसे कोई एक उत्तम दीक्षा आवश्यक है—मन्त्र-(वर्ण) दीक्षा, वेधदीक्षा, कलावती दीक्षा, स्पर्शदीक्षा, चाक्षुषी-दीक्षा (अर्थात् आँखोंसे देखना)। कामाक्षीदेवी चाक्षुषी-दीक्षाद्वारा संसारके दुःखोंको दूर करती है। योगशास्त्रकी मान्यता है कि षट्चक्रभेदनद्वारा कुण्डलिनीशक्तिको उठाकर मूलाधारसे सहस्र कमल और उससे ब्रह्मरन्ध्रसे होकर जीवनमें परब्रह्मके साथ एकाकार होना ही 'शिवत्व' या मोक्ष प्राप्त करनेकी मुख्य साधना है। किंतु इस साधनामें कुछ कठिनाई है। इसलिये सुलभतासे ब्रह्मतक पहुँचनेके लिये श्रीचक्र-पूजाका या मेरुपूजाका विधान बनाया गया है।

आजकल शक्तिकी उपासना मन्त्रोंके जप, यन्त्रोंकी पूजा और चण्डीयज्ञ आदि रूपोंमें प्रचलित है। प्राचीन-कालमें शक्ति-देवताकी उपासना वामाचार-रूपमें प्रच[लित] थी। चीनतन्त्र नामपर बौद्ध और जैन लोगोंने तन्त्रका अनुष्ठान किया। वर्तमान समयमें आ[द्य] आद्य शंकराचार्यकी बनायी हुई व्यवस्थाके अनु-दक्षिणाम्नाय वैदिक एवं पौराणिक पद्धतिसे ही शक्ति उपासना की जा रही है, वाममार्गके अनुसार नहीं।

जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य योग शरीर (योगसमाधि-द्वारा कैलासस्थ बारहों क्षेत्रोंमेंसे मुख्य केदारक्षेत्रमें परमेश्वर-पास पहुँचकर उनसे पाँच शिवलिङ्ग एवं सौन्दर्य-नामकदेवीका स्तोत्र अर्थात् तन्त्र-मन्त्रयुक्त सार[गर्भित] ग्रन्थ लाये थे। 'सौन्दर्यलहरी'की आठ प्राचीन व्याख्या[एँ] हैं। अब भी बहुतसे विद्वान् मनीषियोंके द्वारा उसकी व्या[ख्या] हो रही है। वैसे ही जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यने 'प्रपञ्च[सार]' नामक तन्त्र-मन्त्र विषयक शास्त्र लिखा है, जिसमें वेदों, पु[राणों] एवं तान्त्रिक ग्रन्थोंके तन्त्रों एवं मन्त्रोंका उल्लेख कि[या] गया है। अर्थात् यह समस्त वेद-पुराणादिसे संग्रह कि[या] गया है। इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृतिके [अं]तर्गत वेदान्तमार्गमें 'शक्ति-उपासना'का एक मुख्य स्थान है। वह श्रद्धापूर्वक वरेण्य, अनुष्ठेय और उपादेय है।

शक्तिमयी माँसे याचना

(१)

छलक रहे हैं अपलक देखनेको नेत्र,
ललक रहे ये मेरे सकल करण हैं।
आँसू है पदार्घ, मन-मानिककी दक्षिणा है,
सतत प्रदक्षिणामें निरत चरण हैं॥
वाहनको हंस, अवगाहनको मानस है,
आसन कमल-दल विमल चरण है॥
पूजाका अखिल उपकरण सजा है अंब !
आ जा, आज आये हम तेरी ही शरण हैं॥

(२)

तुम तो अपार महासागरमयी हो शान्ति,
धूलिमें पड़ा मैं दूर छोटा-सा फुहारा हूँ।
चाह मिलनेकी है, अथाह बननेको, किन्तु
स्पंदन-प्रवाह-हीन दीन बे-सहारा हूँ।
साध पूर्ण कैसे हो ? अबाध गति मेरी नहीं,
एक आध पलका पथिक पड़ा हारा हूँ।
आकर समोद मुझे गोदमें बिठा लो अंब !
दोषी हूँ मनुज किन्तु तनुज तुम्हारा हूँ।

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री [राम]

शक्ति

(श्रीकांची-प्रतिवादिभयंकरमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य
श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)

सर्वशक्तिमयी महालक्ष्मी

अमरकोशमें 'शक्ति' शब्दके अनेक अर्थ बतलाये गये हैं। यथा—

'कासूसामर्थ्ययोश्शक्तिः' 'शक्तिः पराक्रमः प्राणः' 'षड्गुणाश्शक्तयस्तिस्रः।' इनके अतिरिक्त और भी कई अर्थ हैं, जो दार्शनिकों और तान्त्रिकोंके अभिमत हैं। यह शब्द 'शक्लृ शक्तौ' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न होता है। पदार्थगति अपृथक्-सिद्ध कार्योत्पादनोपयोगी धर्मविशेषको 'शक्ति' कहते हैं। जैसे अग्नि दाह उत्पन्न करती है, यह हमलोग जानते हैं; परंतु कहीं-कहीं ऐसा भी देखा गया है कि अग्निका स्पर्श होनेपर भी दाह नहीं होता। भारतमें इसके उदाहरण बहुत-से मिलेंगे। दक्षिण भारतमें देवी-देवताओंकी मनौती मानकर धधकती हुई आगमें कूदनेकी प्रथा आज भी विद्यमान है। जादूगर लोग तपाये हुए लाल लोहेको अपने हाथोंमें उठा लेते हैं, इससे उनके हाथ-पैर नहीं जलते। चिरकालसे यह बात मानी जाती है कि मणि, मन्त्र और ओषधिके प्रभावसे अग्निका स्पर्श होनेपर भी दाह उत्पन्न नहीं होता। अतएव अग्निमें दाहोपयोगी एक ऐसी शक्तिको मानना पड़ेगा, जो मणि-मन्त्र आदि ओषधियोंके प्रभावसे नष्ट हो सकती है और उनके अभावमें उत्पन्न होती है। मीमांसक लोग इस प्रकारकी शक्तिको प्रधानरूपसे मानते हैं। अर्थात् 'शक्ति' वह वस्तु है जो कारणके साथ अपृथक्-सिद्ध रहकर कार्योत्पादनमें उपयोगी होती है।

अनेक शक्तियाँ

**विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥**
(वि० पु० ६। ७। ६१)

इस श्लोकमें तीन शक्तियोंका उल्लेख है—परा विष्णुशक्ति, अपरा क्षेत्रज्ञशक्ति और तीसरी अविद्या—कर्म नामक शक्ति है। जीवात्माको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तीसरी शक्ति कर्म है। इसीका नामान्तर अविद्या भी है। इसी अविद्याख्य कर्मशक्तिसे वेष्टित होकर क्षेत्रज्ञ नाना प्रकारके संसार-तापोंको प्राप्त होता है और नाना योनियोंमें जन्म लेता है। कहा गया है—

**यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसंततान्॥**
(विष्णुपु० ६। ७। ६२)

'सर्वगा'का अर्थ है—जो सभी योनियोंमें जाती है।' केवल ये तीन ही शक्तियाँ नहीं हैं, अपितु प्रत्येक भावपदार्थमें अलग-अलग शक्ति है—

**शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता॥**
(वही १। ३। २-३)

सभी भावोंमें भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं, जिनका हम न तो चिन्तन कर सकते हैं और न वे हमारे ज्ञानका विषय ही हो सकती हैं। जैसे अग्निकी उष्णता और जलकी शीतलता आदि। अग्नि उष्ण क्यों है, कहाँसे उसमें उष्णता आयी इत्यादि चिन्तन हमलोग नहीं कर सकते, चिन्तन करनेपर भी उष्णता आदि हमारे ज्ञानका विषय नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार ब्रह्मकी भी सर्गादि अनेक शक्तियाँ हैं—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। (श्वेता० ६। ८)

—इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें परमात्माकी नानाविध परा शक्तियाँ कही गयी हैं।

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ॥
(वि० पु० १ । २२ । ५६)

—इत्यादि पुराणवचन समस्त जगत्को ब्रह्मकी शक्ति कहते हैं ।

अहंताशक्ति

इस तरहकी अनेक शक्तियोंमें श्रीमहाविष्णुकी अहंता नामकी एक शक्ति है । वही महालक्ष्मी है ।

तस्य या परमा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ॥
सर्वावस्थां गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी ।
अहंता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी ॥
(लक्ष्मीतन्त्र २ । ११-१२)

अर्थात् महालक्ष्मी इन्द्रके प्रति कहती हैं कि उस परब्रह्मकी जो चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति समस्त अवस्थाओंमें साथ देनेवाली देवी स्वात्मभूता अनपायिनी अहंता नामकी परमाशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूँ । इस शक्तिका दूसरा नाम नारायणी भी है । यह बात भी उसी तन्त्रमें कही गयी है—

नित्यनिर्दोषनिस्सीमकल्याणगुणशालिनी ।
अहं नारायणी नाम सा सत्ता वैष्णवी परा ॥
(लक्ष्मी० ३ । १)

अर्थात् महालक्ष्मी कहती हैं कि 'मैं नित्य, निर्दोष, सीमारहित, कल्याणगुणोंसे युक्त नारायणी नामवाली वैष्णवी परा सत्ता हूँ ।'

ऊपर 'शक्ति' शब्दकी व्याख्या हो चुकी है । कारणोंमें अपृथकसिद्ध रहनेवाला कार्योपयोगी धर्म ही शक्ति है । वह शक्ति दो प्रकारकी है—कुछ तो केवल धर्ममात्र हैं और कुछ धर्म और धर्मी उभयरूप है । अग्न्यादि भावोंकी उष्णता आदि शक्तियाँ केवल धर्म हैं । क्षेत्रज्ञ-शक्ति धर्म और धर्मी उभयरूप है । क्षेत्रज्ञ ईश्वरके प्रति विशेषण होकर धर्म बनते हुए भी स्वयं अनेक धर्मोंवाला है, शक्तिमान् भी है ।

इन दो प्रकारकी शक्तियोंमें भी श्रीमहालक्ष्मी द्वि[illegible] कोटिकी शक्ति है । स्वयं परमात्माकी विशेषण होती [illegible] धर्म होकर भी वह अनेक गुणधर्मवती एवं शक्तिमती है । पहले जो 'विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता' [illegible] विष्णुपुराणके वचन उद्धृत किये थे, उनमें 'विष्णुशक्ति' कही गयी है वह क्या है ? इस वि[illegible] व्याख्याकारोंने नाना प्रकारके मत प्रदर्शित किये; किंतु हम यह समझते हैं कि वह विष्णुशक्ति ही 'अहं[ता]' नामवाली महालक्ष्मी है । उस वचनमें अपराशक्ति [illegible] अविद्याशक्तिके विषयमें जैसा स्पष्टीकरण किया ग[या] वैसा स्पष्टीकरण विष्णुशक्तिके विषयमें नहीं किया गया; केवल एक उसका उल्लेखमात्र कर दिया गया है । [illegible] इसका स्पष्टीकरण अहिर्बुध्न्यसंहिताके निम्नलिखित व[चन] हो जाता है । अहिर्बुध्न्यसंहिताके तीसरे अध्याय[में] 'तस्य शक्तिश्च का नाम' अर्थात् उस परब्रह्मकी शक्ति क्या नाम है ?—नारदके इस प्रश्नका उत्तर दे[ते] अहिर्बुध्न्य कहते हैं—

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः ।
स्वरूपे नैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः ।
सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी ।
इदंतया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते ।
सर्वैरननुयोज्या हि शक्तयो भावगोचराः ।
एवं भगवतस्तस्य परस्य ब्रह्मणो मुने ।
सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः ।

अर्थात् 'समस्त भावोंकी अपृथक्स्थित शक्ति[याँ] अचिन्त्य हैं । पदार्थोंकी शक्तियाँ कार्यद्वारा दृष्टिगोचर होती हैं, स्वरूपतः नहीं । वह समस्त भा[वोंके] साथ-साथ रहनेवाली सूक्ष्मावस्था है । उसे [illegible] वह शक्ति' इस तरह दिखलाकर सिद्ध नहीं कर स[कते] साथ ही 'निषेध' भी नहीं कर सकते । भावोंमें रहनेवाली शक्तियाँ तर्कका विषय नहीं हैं, इसी प्रकार परमात्मा[की]

शक्ति भी चन्द्रमाके साथ चाँदनीकी भाँति सभी भावोंमें रहती है। भावरूप और अभावरूप पदार्थोंमें रहनेवाली परमात्माकी यह शक्ति ही समस्त कार्योंको करती है। इस प्रकार सामान्यतया निरूपण करनेके पश्चात्—

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते।
श्रयन्ती वैष्णवं भावं सा श्रीरिति निगद्यते॥
अव्यक्तकालपुंभावात् सा पद्मा पद्ममालिनी।
कामदानाच्च कमला पर्यायसुखयोगतः॥
विष्णोः सामर्थ्यरूपत्वाद् विष्णुशक्तिः प्रगीयते॥

इन श्लोकोंमें उसी परब्रह्म-शक्तिके लक्ष्मी, श्री, पद्मा, पद्ममालिनी, कमला आदि नाम निर्वचनपूर्वक बताकर उसी-को विष्णुशक्ति बताया गया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विष्णुपुराणोक्त परा विष्णुशक्ति श्रीमहालक्ष्मी ही हैं, जिनके कमला, पद्मा, श्री आदि नामान्तर भी हैं। वही अहंता नामसे भी कही जाती हैं।

शक्तिका उपयोग

शक्ति-पदार्थकी व्याख्या करते हुए पहले बताया था कि कारणमें अपृथक्सिद्ध होकर रहनेवाला कार्योपयोगी धर्म या विशेषण ही शक्ति है। अब यह विचार करना है कि महालक्ष्मीजी यदि शक्ति हैं तो उनमें यह लक्षण समन्वित होता है या नहीं। परब्रह्म परमात्मा जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके कारण हैं—यह वेदान्तशास्त्र-सिद्ध विषय है। उस परमात्माके उन कार्योंमें उपयुक्त होनेवाली श्रीमहालक्ष्मीजीके उस परमात्माका अपृथक्सिद्ध विशेषण होनेके कारण उनमें शक्तिलक्षण ठीक समन्वित हो जाता है।

भगवच्छक्तिरूप श्रीमहालक्ष्मीजीके पाँच कार्य हैं—तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, संहार और अनुग्रह—

शक्तिर्नारायणस्याहं नित्या देवी सदोदिता।
तस्या मे पञ्च कर्माणि नित्यानि त्रिदशेश्वर॥
तिरोभावस्तथा सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च।
अनुग्रह इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम्॥
(लक्ष्मीतन्त्र अ० १२)

इनमें सृष्टि, स्थिति और संहार सुप्रसिद्ध हैं। तिरोभाव कहते हैं—जीवात्माके कर्मरूप अविद्यासे तिरोहित या आच्छादित होनेको। अनुग्रह मोक्षको कहते हैं। यद्यपि ये पाँच कर्म शक्तिरूप लक्ष्मीजीके बताये गये हैं, किंतु वास्तवमें ये हैं परमात्माके ही। परमात्माके सृष्ट्यादि कार्योंमें शक्तिका उपयोग होनेके कारण ही ये शक्तिके कार्य कहे गये हैं। यह बात लक्ष्मीतन्त्रमें ही एक जगह स्पष्ट कर दी गयी है—

निर्दोषो निरधिष्ठेयो निरवद्यः सनातनः।
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् परमात्मा सनातनः॥
षाड्गुण्यविग्रहो नित्यं परं ब्रह्माक्षरं परम्।
तस्य मां परमां शक्तिं नित्यं तद्धर्मधर्मिणीम्॥
सर्वभावानुगां विद्धि निर्दोषामनपायिनीम्।
सर्वकार्यकरी साहं विष्णोरव्ययरूपिणः॥
× × ×
व्यापारस्तस्य देवस्य साहमस्मि न संशयः।
मया कृतं हि यत्कर्म तेन तत्कृतमुच्यते॥

अर्थात् महालक्ष्मीजी कहती हैं कि मैं नित्य, निर्दोष, निरवयव परब्रह्म परमात्मा श्रीमन्नारायणकी शक्ति हूँ। उनके सब कार्य मैं ही करती हूँ। मैं उनका व्यापाररूप हूँ। अतएव मैं जो कार्य करती हूँ वह उन्हींका किया हुआ कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि अग्निका दाह-रूपी कार्य जैसे अग्निगत दाहशक्तिके कारण होता है, वैसे ही परमात्माके सृष्ट्यादि कार्य परमात्मगत शक्तिरूप महालक्ष्मीजीके कारण होते हैं।

मोक्षलाभमें महालक्ष्मीजीका उपयोग

यह पहले बतलाया जा चुका है कि ईश्वरीय सृष्ट्यादि समस्त कार्योंमें तच्छक्तिरूप महालक्ष्मीजीका उपयोग है; परंतु मोक्षदानरूप कार्यमें तो श्रीमहालक्ष्मीजीका विशिष्ट-रूपसे उपयोग है। जीवोंको मोक्षलाभ श्रीमहालक्ष्मीजीके कारण ही होता है—

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया।
रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते॥

यहाँपर 'रक्षा' शब्दसे मोक्षदान ही अभिप्रेत है। परमात्मा मोक्षप्रद हैं, यह सर्वशास्त्रसिद्धान्त है; किंतु वह मोक्षप्रदत्व लक्ष्मीसहित नारायणका है, केवल नारायणका नहीं। मोक्षदानमें मुख्य कर्तृत्व हृषीकेशका होनेपर भी उसमें लक्ष्मीका साथ प्रयोजकरूपमें अन्तर्भूत है। लक्ष्मीके बिना मोक्षदान असम्भव हो जाता है। भगवच्छरणागतिमें लक्ष्मीजीका पुरुषाकारत्व अवश्यापेक्षित है। उसके बिना शरणागति कार्यकरी नहीं होती।

यह बात सर्वतोभावेन शास्त्रज्ञोंने स्वीकार की है कि ईश्वरकी दया ही मोक्षलाभका मुख्य कारण है, उसके बिना जीवके सब प्रयत्न निरर्थक हैं। उस दयाके होनेपर जीवका प्रयत्न अनावश्यक है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥

अर्थात् परमात्मा श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि किसी भी उपायसे लभ्य नहीं हैं, किंतु वे परमात्मा जिसको अपनाते हैं उसीको मिलते हैं। उसीके सामनेसे वह तिरस्करिणी माया हटती है।

वह परमात्माकी दया निर्हेतुकी दया होती है। ईश्वरीय दया किसपर होगी, कब होगी, यह जानना अशक्य है। दयामय परमात्माके सामने जब यह अनाद्यनन्त पापराशियोंसे भरा हुआ जीव श्रीमहालक्ष्मीजीको पुरुषाकार बनाकर **'अकिञ्चनोऽनन्यगतिश्शरण्यं त्वत्पाद-मूलं शरणं प्रपद्ये'** कहता हुआ जा गिरता है, उस समय अनन्यपराधीन अनियाम्य सर्वस्वतन्त्र सर्वकर्मफलप्रद परमात्माकी दयाको उद्बोधित करके उस जीवको दयाका पात्र बनानेवाली श्रीमहालक्ष्मीजीके सिवा दूसरी कौन है? अन्यथा सर्वस्वतन्त्र सर्वकर्मफलप्रद परमात्मासे दया-भिक्षा माँगनेवाले जीवात्माको परमात्मा यदि नियमानुसार कर्मफल भुगताने लग जायँ तो क्या हो सकता है? ऐसे समयमें सर्वजगन्माता कारुण्यमूर्ति श्रीमहालक्ष्मीजी नाना उपायोंसे दण्डधर परमात्माकी दयाको जाग्रत्कर जीवकी रक्षा कराती हैं। यही उनका मातृत्व है।

श्रीपराशरभट्टारकने बड़ा सुन्दर कहा है—

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित् कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः॥

अर्थात् 'हे माता महालक्ष्मी! आपके पति जब कभी पूर्णापराध जीवके ऊपर पिताके समान हितकी दृष्टिसे क्रोधित हो जाते हैं, उस समय आप ही 'यह क्या! इस जगत्में निर्दोष है ही कौन?' इत्यादि रूपसे उपदेश कर उनके क्रोधको शान्त कराकर दयाको जाग्रत्कर अपनाती हैं, तभी तो आप हमारी माता हैं।'

सर्वशक्तिमयी, विशेषतः अनुग्रहमयी श्रीमहालक्ष्मीजीके पुरुषाकारत्व और जीवरक्षणतत्परताके उदाहरण हमें श्रीजानकीजीके अवतारमें स्पष्ट मिलते हैं। रावणकी प्रेरणासे नानाविध कष्ट पहुँचानेवाली राक्षसियाँ जब त्रिजटाके स्वप्नवृत्तान्तसे अवश्यम्भावी राक्षस-वधको जानकर भयभीत हुईं, तब आप-ही-आप उन्हें अभयदान देकर **'भवेयं शरणं हि वः'** कहनेवाली श्रीजानकीजीकी यह जीवदया किसके मनमें आश्चर्य उत्पन्न नहीं करती? रावणवधानन्तर राक्षसियोंको दण्ड देनेकी इच्छा करनेवाले श्रीहनुमान्‌जीसे—**'कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।'**—आदि कहकर उन राक्षसियोंको छुड़ानेवाली श्रीजानकीजीकी वह दया किसको आश्चर्यचकित न करेगी?

श्रीपराशरभट्टारकस्वामीजीने क्या ही सुन्दर कहा है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

आचार्य कहते हैं कि श्रीरामने विभीषण और काककी रक्षा की तो क्या किया? वे दोनों तो शरणागत हुए थे। श्रीजानकीजीने तो राक्षसियोंके बिना कुछ किये ही, अपने-आप हनुमान्-जैसे हठीसे लड़-झगड़कर अपराध करनेवाली राक्षसियोंको तत्काल छुड़ाकर उनकी रक्षा की, यही तो महत्त्वकी बात है। श्रीजानकीजीने श्रीरामगोष्ठीको भी अपने कार्यसे छोटा बना दिया।

श्रीमहालक्ष्मीजीका गुण-वर्णन इस छोटेसे लेखमें नहीं हो सकता। वह तो अपरम्पार है, अतः जीवको महालक्ष्मीके शरणापन्न होना चाहिये।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें शक्तिका स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीगोविन्ददासजी 'संत' धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधिकाजीके साथ ही श्रीकृष्णकी उपासनाका विधान है। जैसे—

राधया सहितो देवो माधवो वैष्णवोत्तमैः।
अर्च्यो वन्द्यश्च ध्येयश्च श्रीनिम्बार्कपदानुगैः॥

'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुगामी वैष्णवजनोंके लिये श्रीराधिकाजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण अर्थात् श्रीराधा-माधव ही अर्चन, वन्दन तथा ध्यान करने योग्य हैं।'

श्रीसुदर्शन-चक्रावतार आद्याचार्य अनन्तश्रीसमलंकृत जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्रने भी स्वरचित 'वेदान्त-कामधेनु' (वेदान्तदशश्लोकी)के चौथे और पाँचवें श्लोकोंमें भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानके साथ-ही-साथ उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके स्वरूप तथा उपासनाका जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष-
मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

'जो स्वभावसे ही समस्त दोषोंसे निर्लिप्त हैं अर्थात् सात्त्विक, राजस और तामस—इन प्राकृतिक हेय गुणोंसे परे हैं और एकमात्र समस्त दिव्य कल्याणकारी गुणोंकी राशि हैं एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चारों व्यूहोंके अङ्गीस्वरूप हैं तथा जिनके नेत्र कमल-सदृश हैं, जो समस्त पापोंको हरण करनेवाले हैं, ऐसे सर्वनियन्ता, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वोपास्य, सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं। साथ ही उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुण और स्वरूपवाली एवं उनके वामाङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान सहस्रों सखियोंद्वारा सदा सेव्यमान भिन्नाभिन्नात्मिका भगवान्‌की दिव्य आह्लादिनी चिच्छक्ति एवं अपने अनन्य भक्तोंको भुक्ति-मुक्ति आदि समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाली श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीका हम सदा-सर्वदा स्मरण करते हैं।'

शक्तिसे ही भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं—'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ हैं। वे सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म ही अपने भक्तोंको आनन्द देनेके लिये दो रूपोंमें परिणत हो गये। जैसे—

'तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्'
(सम्मोहनतन्त्र)

और भी देखिये—

'राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका।'
(श्रीराधिकोपनिषद्)

'राधा कृष्णात्मको नित्यं कृष्णो राधात्मिका ध्रुवम्।'
(ब्रह्माण्डपुराण)

'हरेरर्धतनू राधा राधिकार्धतनुर्हरिः।'
(श्रीनारदपाञ्चरात्र)

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान्के अन्यतम शिष्य श्रीऔदुम्बराचार्यजीने भी कहा है—

श्रीराधिकाकृष्णयुगं समस्थित-
भक्तैर्निषेव्यं निगमादिवर्जितम् ।
(औदुम्बर-संहिता)

जिस प्रकार जल और उसकी तरंग कभी भी भिन्न (अलग) नहीं हो सकती, उसी प्रकार श्रीश्यामा-श्यामका विभाग एवं वियोग नहीं हो सकता ।

आगे चलकर श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायकी आचार्यपरम्परामें अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीश्रीभट्ट देवाचार्यजी महाराज एवं रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराजने 'श्रीयुगलशतक' तथा 'श्रीमहावाणीजी' नामक अपने वाणी-ग्रन्थोंमें भी इसी शक्ति-समन्वित रसमयी उपासनाका प्रतिपादन किया है । जैसे—

प्यारी तन श्याम श्यामा तन प्यारो ।
ज्यों दर्पणमें नैन,-नैन सहित दर्पण दिखवारो ॥
(युगलशतक, पद-सं० ६०)

यह युगल-तत्त्व परस्पर इतना और ऐसा ओत-प्रोत है कि जो कभी भी एक-दूसरेसे पृथक् नहीं हो सकता । जैसे—हाथमें दर्पण लेकर कोई व्यक्ति उसमें अपना मुख देखता है तो उसमें अपने नेत्र भी दिखायी देते हैं और उन नेत्रोंमें हाथमें दर्पण लिये हुए वह द्रष्टा भी दिखायी देता है, ठीक उसी प्रकार श्रीश्यामसुन्दरके श्रीअङ्गमें श्रीकिशोरीजीकी झलक बनी रहती है तथा श्रीकिशोरीजीके कमनीय कलेवरमें श्रीश्यामसुन्दरकी छवि समायी हुई रहती है । और भी—

'राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम्'

तथा—'**एक स्वरूप सदा द्वै नाम**' एवं—'**एक प्राण द्वै गात है, छिन बिछुरे न समात**' (श्रीमहावाणीजी)

अतः जहाँ-कहीं श्रीराधाका नाम व्यक्तरूपसे उपलब्ध न होता हो वहाँ श्रीकृष्णके नाममें ही उनका अन्तर्भाव समझ लेना चाहिये; क्योंकि वे श्रीकृष्णकी प्रिय आत्मा हैं और आत्मा सभीमें निगूढ़ रहती है । अतएव अपनी प्रिय आत्मा होनेके कारण ही श्रीराधाकृष्ण अपना नाम जपनेवालोंपर प्रसन्न हो जाते हैं । श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें सखी-भावकी उपासनाकी ही प्रधानता है । स्वयं श्रीआद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महाप्रभु भी नित्य-निकुञ्जके दिव्य महलमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी टहल (सेवा) में अष्ट सखीजनोंके बीच 'श्रीरङ्गदेवीजू'के रूपमें सदा-सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं ।

शक्ति और शक्तिमान्का नित्य अभिन्न सम्बन्ध रहता है । वे कभी भी एक-दूसरेसे पृथक् नहीं हो सकते । भगवान् शंकर श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—

गौरतेजो बिना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद् वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ॥
(सम्मोहन-तन्त्र)

पातक भी कैसा लगता है—

स ब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी च पञ्चमः ।
एतैर्दोषैर्विलिप्येत तेजोभेदान्महेश्वरि ॥
(सम्मोहन-तन्त्र)

और भी देखिये—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥
(स्कन्दपुराण)

'राधा भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, उन्हींके साथ रमण-विहार करनेसे उनका नाम आत्माराम है, ऐसा तत्त्ववेत्ता महर्षिजन कहते हैं ।'

जिह्वा राधा स्तुतौ राधा नेत्रे राधा हृदि स्थिता ।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधवाराध्यते मया ॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

'जिह्वा, स्तुति, नेत्र, हृदय आदि समस्त अङ्गोंमें श्रीराधा स्थित हैं अर्थात् उस सर्वव्यापिनी श्रीराधाकी मैं नित्य आराधना करता हूँ ।'

आदौ समुच्चरेद् राधां पश्चात् कृष्णं च माधवम्।
विपरीतं यदि पठेद् ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम्॥

कारण कि—

श्रीकृष्णोऽस्ति जगत्तातो जगन्माता च राधिका।
पितुः शतगुणा माता वन्द्या पूज्या गरीयसी॥
(श्रीनारदपाञ्चरात्र)

अतः उपासनामें भगवान्‌से प्रथम उनकी शक्तिकी ही प्रधानता है। जैसे—सीता-राम, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर आदि नामोंमें उच्चारण किया जाता है।

भक्त कबीरने भी यही बात कही है—

कबिरा धारा अगम की सद्‌गुरु दई लखाय।
उलट ताहि पढ़िये सदा स्वामी संग लगाय॥

'हमारे श्रीसद्‌गुरुदेवने हमें अलख-अगोचर परब्रह्मकी 'धारा'को भलीभाँति बता दिया है, उसे उलटकर पढ़ना चाहिये। धाराको उलटा पढ़नेसे 'राधा' बन जाता है। केवल इतना ही नहीं 'स्वामी संग लगाय' राधाके साथ उनके स्वामी 'कृष्ण' को युक्त करके अर्थात् 'राधा-कृष्ण', 'राधा-कृष्ण' इस प्रकार सदैव स्मरण करना चाहिये।'

एक हिंदी-कविका भाव है—

श्रीकृष्ण है सोइ राधिका राधा है सोइ कृष्ण।
न्यारे निमिष न होत है समुझि करहु जनि प्रश्न॥

सारांश यह है कि शक्तिसे ही भगवान् शक्तिमान् हैं, उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण आधे ही हैं। देखिये—

कौन कोंख कीरति की कीरति प्रकाश देतो,
कौतुकी कन्हैया दुलहिन काहि कहिते।
वृन्दावन-वाटिनमें दान दधिघाटिन में,
लूट-लूट काको दधि प्रेम चाह चहते॥
'दिल दरियाव' श्यामा स्वामिनी बिनु,
कैसे घनश्याम रस-रास-रंग कहते।
आदि में न होती यदि राधेजू की रकार जोपैं,
तो मेरे भावें राधेकृष्ण 'आधेकृष्ण' रहते॥
(दरियासाहब)

भगवान् श्रीकृष्णकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधिकाजी-की महिमाके सम्बन्धमें श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके स्तम्भ (प्रकाण्ड विद्वान्) गोलोकवासी पं० श्रीरामप्रतापजी शास्त्री ब्यावरकी एक कृति इस प्रकार है—

केशान् गाढतमो भ्रुवोः कुटिलता रागोऽधरं मुग्धता
चास्यं चञ्चलताक्षिणि कठिनतोरोजो कटिं क्षीणता।
पादौ मन्दगतित्वमाश्रयदहो दोषास्त्वदङ्गाश्रयाः
प्राप्ताः सद्गुणतां गताश्च सुतरां श्रीराधिके धन्यताम्॥

एक बार समस्त अवगुणोंने भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ पहुँचकर यह पुकार की कि 'हे भगवन्! हम सभी सद्‌गुणोंसे तिरस्कृत होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, कहीं भी टिकनेको जगह नहीं। हम भी तो आपकी ही सृष्टिमें आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, अतः हमें भी रहनेके लिये कोई स्थान बताया जाय।' जब अवगुणोंने ऐसी प्रार्थना की तब भगवान् श्रीकृष्ण उनसे कहने लगे कि 'तुम सब श्रीकिशोरीजीकी शरण ग्रहण करो।' यह सुन अवगुणोंने श्रीस्वामिनीजीकी शरण ग्रहण कर प्रार्थना की, तब करुणामयी मातेश्वरी श्रीकिशोरीजीने कहा कि 'तुमने हमारी शरण ग्रहण की है, अतः तुम्हारे बैठनेके लिये कोई स्थान नहीं है तो आओ, हमारे अङ्गोंमें—तुम्हें जहाँ जँचे वहीं बैठ जाओ।' दयामयी मातेश्वरीकी यह बात सुनकर गाढतम (घोर अन्धकार) रूपी दोषने श्रीकिशोरीजीके केशोंका आश्रय लिया, कुटिलताने स्वामिनीजीके भौंहोंका, रागने होठोंका, भोलापनने मुखार-विन्दका, चञ्चलताने नेत्रोंका, कठिनताने स्तनोंका, क्षीणताने कटिप्रदेशका, मन्दता (धीमी गति)ने श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणारविन्दोंका आश्रय ग्रहण किया।

भाव यह है कि जिन-जिन अवगुणोंने श्रीकिशोरीजीके पावनतम श्रीअङ्गके अवयवोंका स्थान ग्रहण किया उन-उन अवयवोंकी और भी अधिक शोभा बढ़ गयी और वे अवगुण सद्‌गुणोंमें परिवर्तित हो गये।

महारासमें भी श्रीकिशोरीजीकी आज्ञा पाकर ही भगवान् उनके साथ रासमण्डलमें पधारते हैं। महारासके राजभोगमें प्रसाद पाते समय भी भगवान् अपने करकमलसे प्रथम ग्रास श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दमें ही अर्पण करते हैं तथा पानका बीड़ा भी प्रथम श्रीकिशोरीजीको अर्पण करके ही आप आरोगते हैं।

यह है श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीकृष्णकी परमाह्लादिनी शक्ति (श्रीराधिकाजी)का स्वरूप, उनकी महिमा तथा उपासना।

आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

अचिन्त्य अनन्त शक्तिमान्, अनन्त कल्याणगुणनिधान, अप्राकृत सच्चिदानन्दविग्रह, अखिलब्रह्माण्डनायक, सकल-जगप्रकाशक, सर्वप्रवर्तक, सर्वान्तर्यामी, प्रेरक, नियन्ता, भक्तिगम्य, भक्ताभीष्टप्रदायक, लीलानर, नटवरवपु श्रीमन्नन्दनन्दन व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र गोपालवेशधारी परब्रह्म-तत्त्व हैं।

उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। जैसा कि **'यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः'** आदि श्रुतियोंमें वर्णित है। उनमेंसे तीन प्रमुख हैं—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और बलशक्ति। ये स्वाभाविकी तथा ऐच्छिक शक्तियाँ हैं। शक्ति सामर्थ्यविशेषको कहते हैं। शक्ति कोई अतिरिक्त पदार्थ नहीं है। शक्ति-शक्तिमान् अभिन्न वस्तु हैं। वह माया, अविद्या, विद्या, प्रकृति आदि पदोंसे व्यवहृत होती है। उन तीनोंके कार्य भगवदिच्छावश भिन्न-भिन्न होते हैं—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
(श्वे० उ० ६। ८)

पुनः वह शक्ति परा-अपरा अर्थात् अन्तरङ्गा-बहिरङ्गा भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे आन्तरङ्गिणी पराशक्ति राधाजी हैं। वे ही श्रीकृष्णको तथा भक्तजनोंको आह्लादित करनेके कारण आह्लादिनी शक्ति कहलाती हैं और सभी शक्तियोंसे श्रेष्ठ महाशक्ति हैं। ये ही महाभावरूपा हैं—

ह्लादिनी सा महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी।
तत्सारभावरूपेयमिति तन्त्रे प्रतिष्ठिता॥
(उज्ज्वलनीलमणि, राधा-प्रकरण ६)

महारासमें प्रकट हुए रसराज श्यामसुन्दरने तरुणी-स्वरूप धारण किया था, इससे उनकी राधापदसे प्रसिद्धि हुई है। वे एकाकी रमण नहीं कर सकते, अतः उन्होंने दूसरेकी अभिलाषा की, तब दूसरेके अभावमें अपनेको ही राधास्वरूपसे आविर्भूतकर रमण किया था। जैसा कि इन श्रुतियोंसे स्पष्ट है—**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** **'एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्।'** **'स आत्मानं स्वयमकुरुत।'**

भगवान्‌की कान्तिमती चित्-शक्ति श्रीराधासे सदा आलिङ्गित रहनेवाले श्रीकृष्ण श्रुतियोंद्वारा सर्वशक्तिमान् प्रतिपादित हैं। परमदयालु भगवान् भक्तवात्सल्यतावश राधा-माधवस्वरूपसे दो प्रकारके रूपधारी हुए हैं।

तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्॥
(गो० सहस्रनाम, सम्मोहनतन्त्र)

अर्थात् उस गोपाल-तत्त्वसे दो ज्योति प्रकट हुईं, एक गौरतेज तथा दूसरा श्यामतेज। गौरतेजके बिना श्यामतेजकी उपासना करनेसे मनुष्य पातकी हो जाता है—

गौरतेजो बिना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे॥
(सम्मोहनतन्त्र)
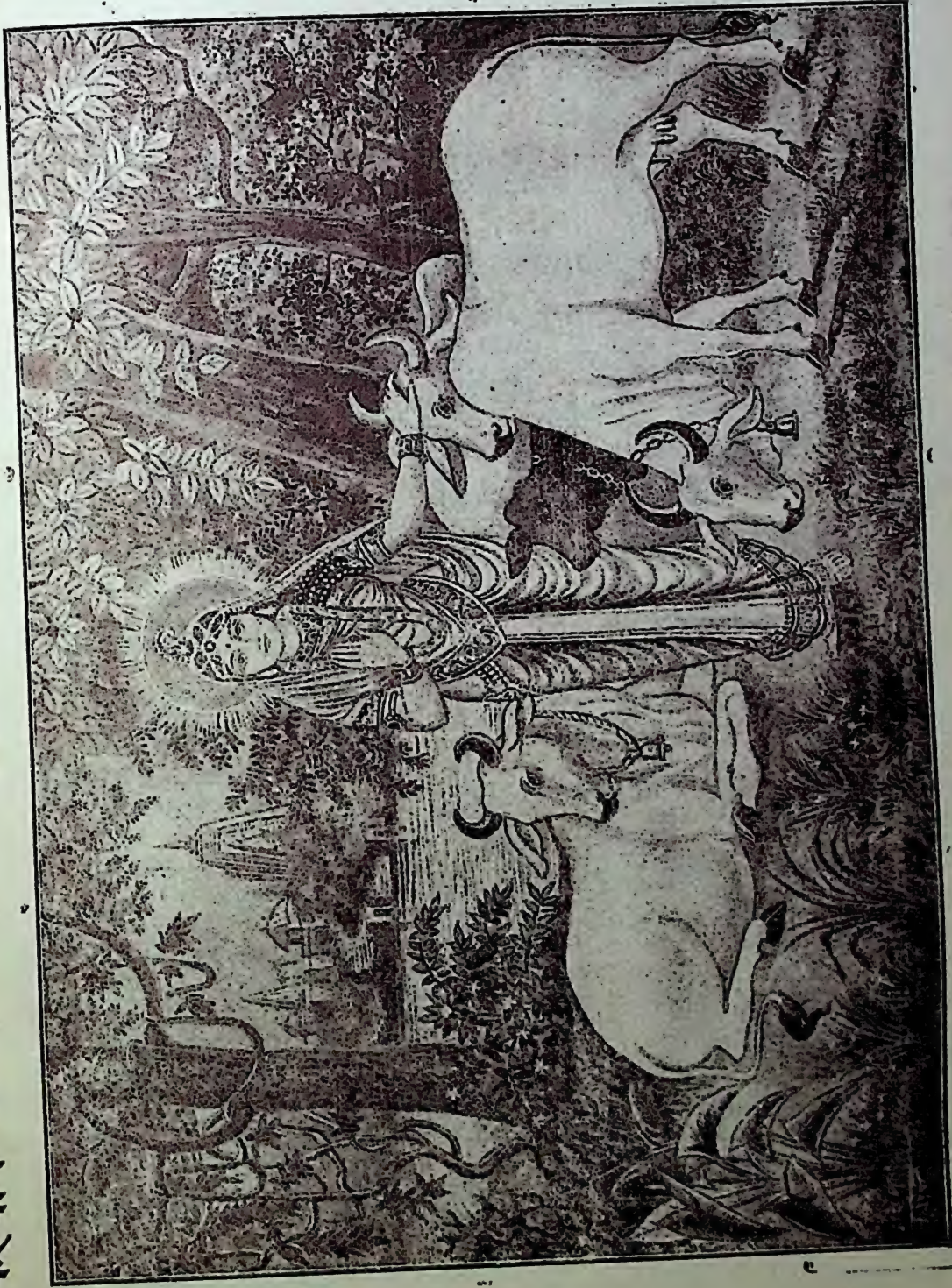
आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा

त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥

राधारूपसे श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णरूपसे राधा संयुक्तरूपमें सभी जनोंमें निवास करती हैं—

राधया माधवो देवो माधवेनैवराधिका ।
विभ्राजते जनेष्वा............ ॥

(श्रीराधिकोपनिषद्)

जिसके स्वरूप, सौन्दर्य, सारस्य आदिसे श्रीकृष्ण आह्लादित होते हैं और जो श्रीकृष्णको आह्लादित करती है, वह शक्ति ह्लादिनी शक्ति है। वही रसिकाग्रणी, रसान्विता राधारूपसे प्रकट हुई है। रासेश्वरीके परिकर, सखी, सहेली, सहचरी आदि उसीके अंशसे प्रकट हुई हैं। उनकी रासलीलाका चिन्तन करनेसे रसिकजनोंका मन आह्लादित होता है, इसलिये ह्लादिनीशक्ति सर्वशक्तियोंसे वरीयसी सिद्ध-शक्ति है। ब्रह्मसंहितामें कहा है कि 'जो आनन्द-चिन्मय-रससे भावित आत्मावाली उन अपनी स्वरूपभूता अन्तरङ्गा शक्तिके साथ गोलोकमें निवास करते हैं और जो सकल व्यक्तियोंके आत्मरूप हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका हम भजन करते हैं।'

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

तात्पर्य यह है कि सदानन्दरूप श्रीकृष्ण भगवान्‌की तीन शक्तियाँ हैं। अन्तरङ्गा पराशक्ति है और बहिरङ्गा बाहरी शक्ति है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बहिरङ्गा मायाशक्तिसे रचित होते हैं। ये अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड एकपाद-विभूति माने जाते हैं तथा भगवान्‌के ये सभी परिकर त्रिपादविभूति हैं—

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

(ऋग्वेद)

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥

(श्रीमद्भा० २ । ६ । १८)

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

(गीता १० । ४२)

अर्थात् मेरे एकांशसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड स्थित है। मैं त्रिपादविभूतिरूप हूँ। मेरे धाम भी त्रिपादविभूतिरूप हैं—अर्थात् दिव्य चिन्मय हैं। मायाद्वारा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है और योगमायाद्वारा धामादिकोंकी अभिव्यक्ति होती है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड (जगत्) जडरूप है; क्योंकि उसकी सृष्टि जडरूपा मायाशक्तिसे होती है और भगवद्धामादि चिन्मय हैं, जिनकी चिन्मयी शक्तिद्वारा सृष्टि की जाती है। (अमृतं दिवि) दिवि शब्दका तात्पर्य भगवद्धामादि और अमृतका अर्थ चिन्मय है। श्रीकृष्णका नित्यधाम गोलोकधाम है। वे गोलोकधामी श्रीकृष्ण अनादिकालसे अपनी आह्लादिनी शक्तिरूप व्रजसुन्दरियोंके साथ विहार करते हैं। कभी ब्रह्माके एक दिनमें किसी समय व्रजभूमिमें विशेष लीलामृतके आस्वादन-हेतु अवतरित होते हैं। यही ब्रह्मसंहिताके पद्यका तात्पर्य है। उपर्युक्त ब्रह्मसंहिताके वचनसे गोपियोंको आनन्दचिन्मय-रसरूपमें निर्णीत किया गया है।

रति-अवस्था क्रमशः प्रेम, भक्ति, स्नेह, प्रणय, मान, राग, अनुराग, भाव-अवस्थाको प्राप्त होकर चरमावस्था महाभाव आख्याको धारण कर लेती है। यह महाभाव ही स्थायी रतिका सारांश है। वह महाभाव स्वजन एवं आर्यपथके त्याग बिना असम्भव है, ऐसा जीव गोस्वामीका व्याख्यान है।

यद्यपि रुक्मिणीप्रभृति पटरानियाँ भी आह्लादिनी शक्ति हैं, पर उनमें महाभावरूपत्व नहीं है; क्योंकि उनमें स्वजन-आर्यपथ-त्यागका अभाव है। व्रजकी गोपियाँ आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाकी अंशरूपा हैं, अतः उनमें महाभाव आंशिक रूपसे विद्यमान है, किंतु महाभावका सारांश मादनभावके अभाववश उनमें महाभावस्वरूपत्व नहीं है। जैसे जलधित्व समुद्रमात्रमें है; किंतु नद, नदी, तडागादिमें नहीं है, उसी प्रकार श्रीराधामें ही

महाभावत्व है। महिषियोंमें उसकी सम्भावना नहीं है। इसी उद्देश्यको लेकर श्रीउद्धवजीने चमत्कृत होकर कहा है—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१)

अर्थात् वृन्दाविपिनमें इन गोपियोंकी चरण-रजका सेवन करनेवाले तृण, गुल्म, लता, ओषधियोंमेंसे मैं कोई भी हो जाऊँ। जो व्रजसुन्दरियाँ दुस्त्यज स्वजन एवं आर्यपथको त्यागकर वेदोंद्वारा गवेषणीय मुक्तिप्रद मुकुन्दकी पदवीको प्राप्त हुईं, उन भगवत्प्रेयसीगण समस्त शक्तियोंमें वरीयसी ह्लादिनी शक्ति नामक जो महाशक्ति है, उसके सार-भावरूप श्रीराधा हैं।

विष्णुपुराणमें कहा गया है कि 'हे भगवन्! समस्त-वस्तुस्थित आपमें ह्लादिनी शक्ति, संधिनी, संवित्—ये मुख्य शक्तियाँ हैं, प्राकृत गुणरहित आपमें मिश्रित तापकारी ह्लाद नहीं है।'—

ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वयि नो गुणवर्जिते।

सर्वाद्य वैष्णवाचार्य श्रीविष्णुस्वामीजीने अपने 'सर्वज्ञ-सूक्त' नामक महाभाष्यमें कहा है कि 'ईश्वर आह्लादिनी एवं संवित् शक्तिसे आश्लिष्ट है तथा जीव अविद्यासे संवृत (घिरा हुआ) है, अतः समस्त क्लेशोंकी खान है'—

ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।
स्वाविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः॥

तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण ह्लादिनी शक्तिसे आलिङ्गित होकर विराजमान हैं। सदानन्दरूप श्रीकृष्णमें जो आनन्दत्व है, वही ह्लादिनी शक्तिकी वृत्ति है। जिसके बिना भगवान् सर्वसमर्थ होनेपर भी आनन्दका उपभोग नहीं कर सकते। जैसे सुन्दर खाद्य पदार्थ घी-खाँडसे युक्त होकर आनन्दप्रद होता है, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण आह्लादिनी शक्तिसे संसर्गित होकर अपनेको आनन्दित करते हैं तथा जगत्‌को आनन्दित कराते हैं।

यह ह्लादिनी शक्ति आनन्द प्रदान करनेके कारण मायाशक्तिकी भाँति जडरूपा नहीं है। अविद्यारूप मायाशक्तिके द्वारा संवृत होकर जीव संसारी हो जाता है एवं समस्त दुःखोंका उपभोग करता है।

विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति। (श्रीमद्भा० ११। १२। २०)

'विश्ल व्याप्तौ' इस धातुसे निष्पन्न विश्लिष्ट शब्द व्यापकरूपको व्यक्त करता है, अतः श्रीराधाके आत्म, बुद्धि, देह, इन्द्रियोंका व्यापकरूपसे आलिङ्गन करके विराजमान श्रीकृष्णकी राधिका प्रियाजी हैं। अर्थात् उस आश्लेषसे उत्पन्न जो प्रीति है, उसकी वे प्रापयित्री हैं। उस ह्लादिनी शक्तिका साररूप जो मादनाख्य भाव है, वह पराकाष्ठाप्राप्त महाभावसे तादात्म्य प्राप्तकर राधा कहलाता है। यह बृहद् गौतमीय-तन्त्रका मर्म है।

देवीभागवतकी दृष्टिसे राधा पाँच प्राणोंकी अधिदेवी होनेसे पाँचवीं प्रकृति बतलायी गयी हैं और परमानन्द-स्वरूपा वे श्रीकृष्ण परमात्माकी रासक्रीडाकी अधिष्ठात्री देवी हैं, जो सभी सुन्दरियोंमें सुन्दरी हैं, श्रीकृष्णके वाम अङ्गसे प्रकट होनेसे अर्धस्वरूपा हैं, परमाद्या, सनातनी, गोलोकवासिनी, गोपीवेषविधायिनी, परमाह्लादरूपा, संतोष एवं हर्षरूपिणी हैं। वे प्राकृत गुणोंसे रहित (निर्गुणा), प्राकृत आकारसे रहित (निराकारा), निर्लिप्ता एवं आत्म-स्वरूपिणी हैं—

परमाह्लादयुक्ता च संतोषहर्षरूपिणी।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी॥
(देवीभाग० ९। १। ४१)

दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—ये पाँच प्रकृति हैं। उनमें सर्वशक्तिस्वरूपा दुर्गा, सर्वसम्पत्स्वरूपा लक्ष्मी, सर्वविद्यास्वरूपा सरस्वती, शुद्धसत्त्वस्वरूपा सावित्री

तथा परमानन्दस्वरूपा राधा परिपूर्णतमा हैं एवं मूल-स्थानीया हैं। श्रीराधाकी उपासना श्रीकृष्णके साथ और श्रीकृष्णकी राधाके साथ करने योग्य है। किस शक्तिसे शक्तिमान्‌की किस रूपमें अभिव्यक्ति होती है, इसका रहस्य जान लेनेपर साधकके लिये ह्लादिनी शक्ति राधा-शक्तिके साधनका मार्ग प्रशस्त होता है, परंतु यह युगल-उपासना गोपीभावद्वारा साध्य है; क्योंकि युगल-उपासनामें श्रीकृष्ण नायक हैं और सभी नायिका हैं। उनकी सेवामें अन्य पुरुषका प्रवेश निषिद्ध है। रासेश्वर-रासेश्वरी दोनों एकाङ्गी हैं, केवल लीलावश दो तनु हैं; किंतु दोनोंमें अभेद ही है। उनके भेदक एवं निन्दक कुम्भीपाकमें पड़ते हैं, ऐसा नारदपाञ्चरात्रमें वर्णित है—

हरेरर्धतनू राधा राधिकार्धतनुर्हरिः।
अनयोरन्तरादर्शी मूर्त्यवच्छेदकोऽधमः॥
(२। ३। ६८)

चिरकालतक श्रीकृष्णकी आराधना करके मनुष्योंका जो-जो कार्य सम्पन्न होता है, वह राधाकी उपासनासे स्वल्पकालमें ही सिद्ध हो जाता है, ऐसा नारदपाञ्चरात्रमें शिव-नारद-संवादमें कहा गया है—

आराध्य सुचिरं कृष्णं यद्यत्कार्यं भवेन्नृणाम्।
राधोपासनया तच्च भवेत् स्वल्पेन कालतः॥
(२। ६। ३१)

श्रीराधोपासना भी यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, पद्धति, स्तोत्र, कवच, सहस्रनामद्वारा होती है। उपर्युक्त साधनोंसे प्रसन्न होकर वे साधकको सकल अभीष्ट सिद्धियाँ देती हैं। युगल-मन्त्रकी उपासनासे क्या-क्या प्राप्त नहीं होता, अपितु सब कुछ वे ही देती हैं, वे ही जगन्माता और श्रीकृष्ण जगत्पिता हैं। पितासे माता सौगुनी श्रेष्ठ मानी गयी है। शास्त्रमें राधा 'राधा' शब्दसे ही सकल अभीष्ट कामोंकी प्रदात्री कहलाती हैं—'**राध्नोति सकलान् कामान् ददाति इति राधा।**'

'**राध्यते आराध्यते यया सा राधा**' '**राधयति—आराधयति कृष्णमिति राधा।**' आदि व्युत्पत्ति-बलसे हरिकी आराधिका शक्ति राधिका कहलाती है। जिनके द्वारा साधक परमतत्त्व श्रीकृष्णको शीघ्र प्राप्त करता है।

रासलीलामें रासेश्वरीसे संयुक्त रासेश्वर जब अन्तर्धान हो गये, तब गवेषणा करती हुई गोपियोंने युगल-सरकारके पदचिह्नोंको देखकर कहा था—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥
(श्रीमद्भा० १०। ३०। २८)

गोपियोंने ही श्रीकृष्णके साथ गयी गोपीका 'राधा' नामकरण किया है कि हम सभीको बिसार कर जिसे साथमें ले गये हैं, उसने पूर्वजन्ममें हरिकी आराधना की है अर्थात् आराधना कर वशमें कर लिया है, इसी कारण इसका नाम श्रीराधा प्रसिद्ध हुआ है। वह प्रेम-भक्तिकी प्रतीक है। जैसे राधाजीने प्रेमवश श्रीकृष्णको वशमें किया है, उसी प्रकार अन्य जो कोई प्रेम करेगा उसे भी रसिकशेखर श्यामसुन्दरकी प्राप्ति हो सकती है।

इसी महाभावस्वरूपा त्रिकालमें भी एकरूपा माया-गुणातीता राधाकी अन्य शक्तियाँ परिकररूपा हैं, जो राधाजीकी सखी बनकर श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासना करती हैं। ऐसा कृष्णयामलमें कहा गया है—

याः शक्तयः समाख्याता गोपीरूपेण ताः पुनः।
सख्यो भूत्वा राधिकायाः कृष्णचन्द्रमुपासते॥
'तस्याः सख्यः स्त्रियोऽपराः' (आदिपुराणे)

'**अत्राद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति। तदेवं रूपं द्विधा विधाय सर्वान् रसान् गृह्णाति स्वयमेव नायिकारूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्, तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो विदुः। तस्मादानन्दमयोऽयं लोके।**'

वह आदिपुरुष एक ही है। वही अपने रूपको दो प्रकारका करके सभी रसोंको ग्रहण करता है, स्वयं नायिकारूप धारणकर आराधनमें तत्पर होता है। इसीसे वेदवेत्ता रसिकजन राधाको आनन्द देनेवाली जानते हैं। अतः वह लोकमें आह्लादिनी-संज्ञाको प्राप्त हुई है।

यह बात सामरहस्यमें लक्ष्मीनारायणके संवादमें तथा आथर्वणिक पुरुषबोधिनी श्रुतिमें भी द्वादश वनोंके प्रस्तावमें कही गयी है—

'तस्याद्या प्रकृतिः राधिका नित्या, निर्गुणा, सर्वालङ्कारशोभिता, प्रसन्नाशेषलावण्यसुन्दरी, अस्मदादीनां जन्मदात्री, अस्या अंशांशा बहवो विष्णुरुद्रादयो भवन्तीति ।'

अर्थात् 'श्रीकृष्णकी आद्या प्रकृति राधिका हैं, जो नित्यस्वरूपा, गुणातीता, सभी अलंकारोंसे सुशोभित, प्रसन्नमुखी, सम्पूर्ण सौन्दर्यकी निधि, हम सभीकी जननी हैं । इन्हींकी अंशकलासे बहुत-से विष्णु, रुद्रादिक देवता होते हैं ।' इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराण, राधारहस्योपनिषद्, कृष्णयामल आदि पुराण-उपनिषदोंमें राधातत्त्व न्यूनाधिक रूपसे प्रतिपादित है । वह ह्लादिनीशक्ति राधा सकल सिद्धियोंकी दात्री हैं । उनकी उपासना दो प्रकारसे है । एक जाप्य मन्त्र-जप, स्तोत्र, कवच, सहस्रनामका पाठ एवं सावरणपूजन, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदि विधिपूर्वक पञ्चाङ्ग पुरश्चरण या जपात्मक पुरश्चरण-द्वारा होती है । दूसरी रसिकोंकी रीतिद्वारा नाममहामन्त्रका अहर्निश जप करना । उसके सिवाय और कोई विधि ग्राह्य नहीं है । मन्त्र-तन्त्रादिकी आवश्यकता नहीं है । केवल भावात्मक उपासना है । इसके अधिकारी विरक्त महापुरुष ही हैं । सभी साधारण व्यक्तिका इस मार्गमें प्रवेश वर्जित है । पहले कह चुके हैं कि यह कार्य गोपीभाव-साध्य है । उसके विना युगल-सरकारके श्रीअङ्गका स्पर्श निषिद्ध है ।

पहली उपासनामें वे वर-अभयमुद्रामें श्रीकृष्णके वामभागमें विराजमान हैं तो दूसरी उपासनामें ताम्बूलादि धारण किये हैं । श्रीमहामुनि निम्बार्काचार्यने 'षोडशी' नामक ग्रन्थमें कहा है—

वामे तु देवीं वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टसिद्धिदाम् ।

अर्थात् 'श्रीकृष्णके वामभागमें सहस्र सखियोंसे [illegible] वृषभानुनन्दिनी, सकलेष्टफलदायिनी, अनुरूप सौभाग्य[illegible] राधा देवीका हम स्मरण करते हैं ।' इससे ज्ञात होता [illegible] कि ह्लादिनी शक्तिसे संयुक्त राधा-कृष्णकी उपासनासे [illegible] मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं । अतः वे परमाराध्या हैं ।

महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीकी आराध्या राधाजी हैं, क्योंकि जब वे भागवतकी कथा प्रारम्भ करने लगे, त[illegible] उन्होंने उनका स्मरण किया, उस समय राधाजीने आज्ञा दी कि लीलाका वर्णन करते समय कहीं भी मेरा तथा मेरी सखियोंका नाम न लेना । तदनुसार शुकदेवजीने अन्या, काचित्, अपरा आदि इङ्गित वचनोंद्वारा लीलाका [illegible] किया था तथा मङ्गलाचरणमें भी उन्होंने कहा है—

'निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ।'

'जिसके समान न कोई है और न बढ़कर है ऐसी राधाके साथ अपने आनन्दमय स्वरूपमें रमण करनेवाले श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं ।' इससे भी शुकदेवजी राधा-कृष्णके परमोपासक सिद्ध होते हैं ।

जगद्गुरु शंकराचार्यजीने भी श्रीकृष्णस्तोत्रमें पहले श्लोकमें राधालिङ्गित श्रीकृष्णकी झाँकी नयनोंसे निहारनेकी प्रार्थना की थी—

'श्रियाऽऽश्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषय[illegible]' इत्यादि ।

वाणी-साहित्यमें रसिकशिरोमणि श्रीहरिदासजीने भी राधालिङ्गित-विग्रहकी साधना की थी, ऐसा उनके [illegible] पदसे प्रतीत होता है—

चलौ क्यों न देखें री खरे दोऊ कुंजन की पर छाँह ।
एक भुजा गहि डार कदम्बकी दूजी भुजा गलबाँह ।
छबिसों छबीली लपट लटक रही कनक बेलि तरु तमाल अरुझाइ ।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी रँगे हैं प्रेम रँग माँह ।

अष्टछापके कवि भक्तप्रवर सूरदासने भी युगल-छविके वर्णन करनेमें अपनी बुद्धिकी अल्पता वर्णन की है—

बसी मेरे नैननमें यह जोरी ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन सँग वृषभानुकिशोरी ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल पीताम्बर झकझोरी ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कौं कहा बरनौं मति थोरी ॥

परमानन्ददासजीने भी रूपक अलंकारमें राधा-लिङ्गितविग्रहका वर्णन बड़े रोचक ढंगसे किया है—

सोभित नव कुंजन की छबि न्यारी ।
अद्भुतरूप तमाल सौं लपटी कनक बेल सुकुमारी ॥
बदन सरोज डहडहे लोचन निरखत पिय सुखकारी ।
'परमानन्द' प्रभु मत्त मधुप ह्वै श्रीवृषभानु सुता फुलवारी ॥

इस प्रकार आदिसे आजतक सभी वैष्णव भक्त राधाकृष्णके उपासक हैं । राधाकृष्णके नाम-रसायनके सेवनसे सभी व्याधियोंसे छुटकारा मिलता है ।

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ।
देहो यथा छायया शोभमानः
शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम् ॥
(राधातापिनी)

अर्थात् 'जो यह राधा और जो यह रसके सागर श्रीकृष्ण हैं, वह एक ही तत्त्व हैं; क्रीडाके लिये दो रूप हुए हैं । जैसे छायासे शरीर शोभायमान होता है, इसी प्रकार दोनों सुशोभित हैं । उनके चरित्र पढ़ने-सुननेसे प्राणी उनके शुद्धधामको प्राप्त होता है ।'

सहज रसीली नागरी सहज रसीलौ लाल ।
सहज प्रेमकी बेलि मनो लपटी प्रेम-तमाल ॥

शक्ति और शक्तिमान्‌का तात्त्विक रहस्य

(निम्बार्काचार्य गोस्वामी श्रीललितकृष्णजी महाराज)

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा ही समस्त शक्तियोंकी मूल उत्स हैं । एकमात्र आनन्दमय श्रीकृष्ण ही आनन्दोल्लासका प्रकाश राधामाधव-युगलरूपमें करते हैं—**'स एकाकी नैव रमते'** श्रुति इस तथ्यकी पुष्टि करती है ।

भगवान् श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं, उनकी ही उपासनासे जीवको आनन्दोपलब्धि होती है, जैसा कि श्रुति कहती है—

'रसो वै सः । रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।'
(तै० उ० २ । ७ । २)

जीवात्मा आनन्दमय रसास्वादन भी भगवत्कृपासे ही कर पाता है । उस कृपालुने रसोल्लासको पञ्चधा शक्ति-द्वारा जगत्‌में विकसित किया है । जैसा कि श्रुतिमें वर्णित है—

**'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।'**
(श्वेता० उ० ६ । ८)

'उन परमेश्वरकी ज्ञान, बल और क्रियारूप स्वरूपभूत दिव्यशक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है ।'

'श्रीराधाहृदयाम्भोजषट्पदः' यह रसिक उपासकों-का मूल चिन्तन है ।

आधिभौतिक जगत्‌में जीव भौतिक सकाम क्षुद्र-वासनासे अभिभूत होनेके कारण ज्ञान, क्रिया, इच्छा, यश, तेज और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये भिन्न-भिन्न विधियोंसे विभिन्न मन्त्रोंकी साधना कर क्षुद्र आनन्द ही प्राप्त कर पाता है, सुखका लेशमात्र ही उसे उपलब्ध होता है, पूर्णानन्द नहीं । इसीलिये श्रुतिने भूमास्वरूप आनन्दमय श्रीराधामाधवकी उपासनाका ही उपदेश दिया है, समस्त शक्तियाँ इन्हींकी अङ्ग हैं—**'भूमा एव विजिज्ञासितव्यः ।'** **'नाल्पे-सुखमस्ति'**—ऐसी प्रत्यक्ष अनन्याश्रिता श्रुति हैं ।

'स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्'—ऐसा उपदेश श्रीनिम्बार्काचार्य स्वामीका है; इसमें वे आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाकी उपासनाको ही सकलेष्टसिद्धिका साधन मानते

हैं, क्योंकि पराशक्ति श्रीराधाकी ही अन्य शक्तियाँ विकसित हैं।

मानव-देहमें ज्ञान, क्रिया और इच्छा—इन तीनों शक्तियोंके तीन आधारस्थल प्रभुने स्थापित किये हैं—बुद्धिमें ज्ञान, देहमें क्रिया और मनमें इच्छा। अखण्ड भगवदाश्रयका त्याग कर क्षुद्र वासनावश जब मनुष्य ज्ञान, क्रिया और इच्छाकी धारणा करता है, तब वह सदा सतृष्ण ही रहता है, उसमें अधूरापन ही रहता है तथा क्षुद्र कामनाओंका बवंडर उठता रहता है, अतः उसका मन चञ्चल रहता है। वह लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणासे व्याकुल रहता है।

ज्ञानयोगद्वारा बुद्धिवासना, भक्तियोगद्वारा मनोवासना और कर्मयोगद्वारा देहवासनाकी निवृत्ति होती है। देहको पवित्र करनेके लिये मन्त्र, बुद्धिको पवित्र करनेके लिये तन्त्र, मनको पवित्र करनेके लिये मन्त्रकी साधनाका विधान है। श्रीगोपालमन्त्रको धारण करनेसे इन्द्रियाँ (ज्ञान-कर्म), गोपाल-महामन्त्रके जपसे मन, गोपाल-सहस्रनामके पाठसे बुद्धि पवित्र होती है; क्योंकि गो अर्थात् समस्त शक्तियोंके पालक एकमात्र गोपालकृष्ण ही हैं। समस्त शक्तियोंकी मूलाधिष्ठात्री गोपी श्रीराधा सकलेष्ट-प्रदात्री हैं। जलतरंगन्यायसे सदा अद्वैतभावमें विराजमान रहकर ये दोनों भिन्न-भिन्न सुखोंकी प्रतीति कराते हैं, अतः द्वैताद्वैत हैं, यही हमारा अभीष्ट सिद्धान्त है। श्रीशुकदेवजी भागवत-प्रवचनका प्रथम मङ्गलाचरण करते हुए इस रहस्यपर प्रकाश डालते हैं—

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे
सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना-
मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥

'मैं उन परमात्मा आनन्दकन्दके श्रीचरणोंमें नमन करता हूँ, जो देहान्तर्यामी रूपसे विराजते हैं, ज्ञान, क्रिया और इच्छाशक्तिसे ही ज्ञेय हैं अन्यथा दर्शन सम्भव नहीं है, जीवोंको वे सद्गुणोंसे कर उनका संरक्षण करते हुए अपनेमें लीन कर (भक्तोंपर ही उक्त प्रकारकी कृपा होती है)।'

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥

'जो प्रभु भक्तोंकी रक्षा करते हैं, भक्तिके बिना तक पहुँचना बहुत कठिन है, जो सदा अपने वृन्दा धाममें निरस्तसाम्यातिशय अनुपमा स्वामिनी श्रीराधाके साथ रमण करते हैं, उन राधामाधवको मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ।'

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

'जिन राधामाधवका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंको तत्काल पवित्र कर देता है, उन्हें बार-बार नमन है।'

भगवान् ब्रह्मा भी अपना अनुभव व्यक्त करते हैं—

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते
न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे
यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः॥

'मेरी वाणी कभी असद्भाषण नहीं करती, मेरा मन कभी असच्चिन्तन नहीं करता, मेरी इन्द्रियाँ कभी असत् कार्य नहीं करतीं; क्योंकि मैं कर्मणा, मनसा, वाचा उत्कण्ठापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका ही भजन करता हूँ।'

इन प्रमाणोंसे निश्चित होता है कि जीवका कल्याण एकमात्र आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और आनन्दकन्द श्रीकृष्णकी आराधनासे ही सम्भव है।

श्रीकृष्णकी शक्ति श्रीराधा और श्रीवृन्दावन

(लेखक—माध्वगौड़ेश्वराचार्य डॉ० श्रीवराङ्ग गोस्वामी, एम्० डी० एच्०, डी० एस्-सी०, ए० आर० एम्०पी०)

श्रीवृन्दावनकी निकुञ्जलीलाके मनन और अवलोकनसे यही सिद्ध होता है कि जितनी बार निकुञ्ज-लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन माध्वसम्प्रदायाचार्य छः गोस्वामियोंने किया, उनमें प्रधानता श्रीव्रजेश्वरीकी ही थी, श्रीकृष्णकी उतनी प्रधानता० नहीं थी। इसका बृहत् स्पष्टीकरण श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी कर दिया था। यह रहस्यमय तत्त्व-दर्शन, 'उनकी' या गुरुकी कृपासे ही सम्भव है। किसी-किसी कृपापात्र अधिकारीको तो श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीकी 'श्रीराधासुधानिधि' नामक ग्रन्थके अवलोकनसे भी यह रहस्य-बोध प्राप्त होता है, पर वह सब भी वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाकी कृपापर ही निर्भर है।

श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायके जिन छः गोस्वामियोंको श्रीराधिकाजी समय-समयपर खाने-पीनेकी दूध आदि प्रसादी-सामग्री देकर जो दर्शन दिया करती थीं, वे भी उनके मार्मिक तत्त्वोंको नहीं समझ पाते थे। जब वे अन्तर्धान हो जाती थीं, तब उनकी समझमें आता था कि 'स्वयं श्रीव्रजेश्वरी-को यह सहन नहीं हुआ कि हम भूखे रहकर उनकी आराधना करें।' श्रीवृन्दावन श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंका प्रधान केन्द्र है और आजतक उनकी दिव्य-लीलाएँ यहाँ बराबर होती रहती हैं, किंतु जिनपर उनकी कृपा-कटाक्षका लेशमात्र भी आभास होता है, वे ही उसे देख पाते हैं। उनकी कृपाकटाक्ष भी उन लोगोंको ही प्राप्त होती है, जिनमें सच्ची निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति और प्रेमकी अटूट लगन होती है। सबको वह कृपाकटाक्ष प्राप्त नहीं होता।

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'

श्रीकृष्ण श्रीवृन्दावनको एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ते; क्योंकि श्रीव्रजेश्वरीने भी वृन्दावनको एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़ा है। यह लोकापवाद है कि श्रीकृष्णने वृन्दावन छोड़ दिया। वस्तुतः श्रीनन्दनन्दन तो सदा वहीं रहे हैं और अब भी वहाँ हैं—यह चिर सत्य है।

एक बार श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायके एक वैष्णव वृन्दावनसे हरिद्वार जा रहे थे कि श्रीव्रजेश्वरीने आकर उनसे कहा कि 'यहाँ तो हरिके घरमें हो, अतः तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो गया है, किंतु हरिके द्वारपर कुछ प्राप्त नहीं होगा।' इसे सुनते ही उनके प्राण आकुल हो गये और वे स्वयं अपनी कुटियामें समाधिस्थ हो गये। एक और गौड़ीय वैष्णव जो सदैव अपने पास एक गोपालजीकी मूर्ति रखते थे और श्रीवृन्दावनको श्रीकृष्णकी साक्षात् लीलास्थली समझते थे। वे लुटेरिया हनुमानसे दो मील आगे वर्तमानमें पुलिस-चौकी-सैयदके पास नित्यकर्मसे अवकाश प्राप्त कर नगरमें आते थे। उनका भजन-पूजन यही था कि वे 'राधा-गोवर-चोट्ठी'का निरन्तर उच्चारण और श्रीविहारीजीके मन्दिरके पास एक ब्राह्मण परिवारसे दो-तीन टुकड़ा मधुकरी प्राप्त कर उसीपर सादा जीवन-निर्वाह करते थे। एक दिन जिस ब्राह्मण-परिवारसे उनका बड़ा ही प्रेम था, उस परिवारमें जब वे मधुकरी माँगने पहुँचे तो देखा गृहस्वामी ब्राह्मणके पुत्र गोपालकी अर्थी रखी हुई है। कहते हैं कि उन्होंने उसे आवाज दी कि 'गोपाल उठता क्यों नहीं?' इसपर गोपाल जीवित हो गया। ऐसी अनेक कथाएँ जो वस्तुतः सत्य हैं, वृन्दावनकी नित्यधामताके विषयमें प्रचलित हैं। अटल श्रद्धा-विश्वास ही इन कथाओं और उनके अनुभवकी मार्मिकताको प्रत्यक्ष करा सकता है। श्रीराधा श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति और नित्य सहचरी है, वे वृन्दावन-धाममें युगलरूपमें नित्य विराजमान और लीलारत हैं—इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये।'

आदिशक्ति महामाया पाटेश्वरी और उनकी उपासना

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

पराम्बा महेश्वरी जगज्जननी जगदीश्वरी भवानीकी महिमा अचिन्त्य, अपार और नितान्त अमेय है। उनकी आत्यन्तिक कृपा-शक्तिसे ही उनके स्वरूपका नहीं, अपितु रूपका परिज्ञान सम्भव है। वे परमकरुणामयी एवं कल्याणस्वरूपिणी शिवा हैं। देवताओंने भगवती महामायाके स्वरूपके सम्बन्धमें कहा है कि आप ही सबकी आश्रयभूता हैं, यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूता अव्याकृता परा प्रकृति हैं—

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥
(दुर्गासप्तशती ४ । ७)

परमप्रसिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटनकी परमाराध्या महामाया पाटेश्वरी महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी हैं, वे पर और अपरसे परे रहनेवाली परमेश्वरी हैं। ऐतिहासिक तथा अनेक पौराणिक तथ्योंसे यह निर्विवाद है कि देवीपाटन महामाया महेश्वरीका पत्तन अथवा नगर है। देवीका पट (वस्त्र) उनके वाम स्कन्धसहित इसी पुण्य-क्षेत्रमें गिरा था, इसलिये यहाँकी अधिष्ठात्री महामायाको पटेश्वरी या पाटेश्वरी कहा जाता है। इस विषयमें अत्यन्त प्रसिद्ध श्लोक है—

पटेन सहितः स्कन्धः पपात यत्र भूतले।
तत्र पाटेश्वरीनाम्ना ख्यातिमाप्ता महेश्वरी ॥
(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड)

देवीपाटनको पातालेश्वरी शक्तिपीठ भी कहा जाता है। ऐसी भी मान्यता प्रचलित है कि भगवती सीताने इसी स्थलपर पातालमें प्रवेश किया था; पर यह स्थान भगवती सतीके अङ्ग वामस्कन्धके पटसहित पतनसे ही ख्याति प्राप्त कर पाटेश्वरीपीठके नामसे व्यवहृत है, स्वीकार कर लेनेमें किसी तरहकी पौराणिक ऐतिहासिक आपत्तिके लिये अवकाश नहीं है। महामाया पाटेश्वरीका पूजा-स्थान तो समस्त जगत् है; वे सर्वत्र ही हैं, पर वामस्कन्ध उन्हींका पूर्ण है है। उनके अङ्गके खण्ड होनेका अर्थ यह नहीं है उतने ही अङ्गमात्रसे वे तत्सम्बन्धी शक्तिपीठकी स्था... हैं। वे खण्डाङ्गमें भी सर्वाङ्ग हैं। देववाणी इ... समर्थन करती हुई कहती है—'अम्ब! आपने ही समस्त विश्वको व्याप्त कर रखा है'—

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्। (दुर्गासप्तशती ११ ।...)

भगवती पाटेश्वरी जगत्की सर्वाधारस्वरूपिणी। देवीपाटन सिद्धपीठ और शक्तिपीठ दोनों है; क्योंकि ऐतिहासिक तथा परम्परागत सर्वमान्य तथ्य है कि सा... अभिनव-शिव भगवान् महायोगी गोरक्षनाथने शि... प्रेरणासे इस पुण्यस्थलपर शक्तिकी उपासना और आराधना द्वारा अपने योग-अनुभवसे समस्त जगत्को जीवनामृत अ... योगामृत प्रदान किया था। देवीपाटनमें भगवती महेश्वरी इतिहासप्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है कि महा... विक्रमादित्यने यहाँ देवीकी स्थापना की थी। इसका अ... यह है कि योगेश्वर गोरक्षनाथद्वारा आराधित जगद... पाटेश्वरीकी उन्होंने उपासना की थी और मन्दिरका जीर्णो... कराया था। प्राचीन मन्दिरको भारतीय इतिहास... मध्यकालमें मुगल बादशाह औरंगजेबकी आज्ञासे उस... सेनाने ध्वस्त कर दिया था। उसके बाद नये मन्दिर... निर्माण सम्पन्न हुआ। श्रीविक्रमादित्यके पहले ... देवीपाटनकी महिमा इसलिये अकाट्य है कि महाभारत... युद्धके महासेनानी दानवीर कर्णने इस पुण्यक्षेत्रमें भगवती...

परशुरामसे ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था तथा युद्धविद्या और शस्त्रास्त्र-प्रयोगकी शिक्षा प्राप्त की थी। इसलिये यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि इस अत्यन्त प्राचीन शक्तिपीठको परशुरामजीने भी अपनी तपस्यासे सम्मानित किया था। भगवान् श्रीगोरक्षनाथद्वारा उपासित महामाया पाटेश्वरीकी परम प्रख्याति, भगवान् परशुरामकी तपस्या और दानवीर कर्णकी शस्त्रास्त्र-प्रयोग-विद्याकी सम्प्राप्तिसे आदृत तथा महामहिम भारत-सम्राट् विक्रमादित्यद्वारा आराधित जगदीश्वरीकी ऐतिहासिक गरिमा देवीपाटनकी सांस्कृतिक महनीयताकी प्रतीक है।

भगवती पाटेश्वरीसे सम्बद्ध देवीपाटन शक्तिपीठ उत्तरप्रदेशके गोंडा जनपदमें पूर्वोत्तर रेलवेके बलरामपुर स्टेशनसे इक्कीस किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। तुलसीपुर रेलवे स्टेशनसे केवल सात सौ मीटरकी दूरीपर सीरिया (सूर्या) नदीपर स्थित यह शक्तिपीठ भगवती जगदम्बाकी उपासनाका भव्य भौम प्रतीक है। नेपाल राज्यकी सीमाको देवीपाटन पुण्यपीठ स्पर्श करता है। भारत और नेपालकी पारस्परिक मैत्री और सह-अस्तित्वकी सद्भावना-का यह आध्यात्मिक स्मारक चिरकालतक दोनों देशोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित रहेगा।

अनेक पुराणनिगमागमसम्मत तथ्य यह है कि दक्ष-प्रजापतिके यज्ञमें योगाग्निद्वारा प्रज्वलित सतीके शरीरके शवके ५१ खण्डित अङ्गोंसे ५१ शक्तिपीठोंकी स्थापना हुई थी। शिवपुराण, देवीभागवत तथा तन्त्रचूड़ामणि आदि अनेक ग्रन्थोंमें शक्तिपीठकी परम्परा और उससे सम्बद्ध सतीके शरीरके खण्ड-खण्ड होनेका आख्यान उपलब्ध होता है। शक्तिपीठ-परम्पराके अनुसार ५१ वर्णसमाम्नायके आश्रय आदिशक्ति भगवती जगदम्बाकी उपासनाके ५१ शक्ति-पीठ सम्पूर्ण भारतमें अवस्थित हैं। उन्हीं शक्तिपीठोंमें महामाया पाटेश्वरीके उपासना-स्थल देवीपाटन शक्तिपीठकी परिगणना की जाती है।

ऐसा वर्णन मिलता है कि प्रजापति दक्षने महामाया योगनिद्राकी उपासना की थी। वे दक्षकी आराधनासे प्रसन्न होकर सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं। देवीभागवतके सातवें स्कन्धके तीसवें अध्यायमें सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली शक्तियोंकी नामावलि दी गयी है। उपर्युक्त संदर्भमें ही वर्णन है कि भगवती जगदम्बाकी एक ज्योतिने दक्षके घर अवतार लिया। परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके सत्यांश होनेसे उन देवीका नाम सती प्रसिद्ध हुआ। वे शिवकी पत्नी हुईं। इन्हीं सतीने दक्षके यज्ञमें शरीरकी आहुति दे दी थी। देवीभागवतके उपर्युक्त संदर्भमें सतीका प्रसंग विशिष्ट रूपसे वर्णित है। वहाँ इस प्रकार कहा गया है कि मुनिवर दुर्वासा जम्बूनदीके तटपर विराजमान प्रधान देवता जगदम्बाके पास गये। देवीने प्रसन्न होकर प्रसादस्वरूप अपने गलेकी पुष्पमाला उन्हें दी। दक्षकी प्रार्थनापर मुनिवर दुर्वासाने वह माला उन्हें प्रदान कर दी। दक्षने अन्तःपुरमें उस मालाको अपनी शय्यापर रख दिया और रातमें उसी (शय्या) पर पत्नीके साथ शयन किया। इस पाप-कर्मके प्रभावसे दक्षके मनमें भगवान् शिव और सतीके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया। इसी अपराधके परिणामस्वरूप सतीने दक्षसे उत्पन्न अपने शरीरको योगाग्निद्वारा भस्म कर दिया।

एक दूसरा आख्यान शिवपुराण-रुद्रसंहिताके सती-खण्डके २६वेंसे ४२वें अध्यायतकमें वर्णित है, जिसका सारांश यह है कि प्राचीनकालमें महान् मुनियोंने तीर्थराज प्रयागमें एक यज्ञ आयोजित किया। उसमें सतीसहित भगवान् शिव भी उपस्थित थे। उसमें जब दक्ष प्रजापति आये, तब सब लोगोंने उनका नमन किया, पर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महेश्वर आसनसे नहीं उठे। दक्षने सभी लोगोंसे शिवको यज्ञसे बहिष्कृत करनेके लिये कहा। नन्दीको क्रुद्ध देखकर भगवान् शिवने उन्हें

समझाया और अपने प्रमुख गणोंके साथ वे अपने स्थानपर चले गये।

दक्षने एक दूसरे महायज्ञका (कनखलमें) आयोजन किया और उसमें शिवको निमन्त्रित नहीं किया। उस यज्ञमें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, समस्त लोकपाल, महर्षि-मुनिगण उपस्थित थे। यज्ञमें जाते हुए चन्द्रमासे समाचार पाकर सतीने शिवसे चलनेका अनुरोध किया। वे तो न गये, पर सतीके मनमें विशेष आग्रह देखकर उन्हें जानेकी आज्ञा प्रदान कर दी। वहाँ यज्ञमें शिवका भाग न देखकर सती रुष्ट हुईं। दक्षने शिवकी निन्दा की। दाक्षायणी सतीने योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देनेका निश्चय किया। उन्होंने विधिपूर्वक जलका आचमन कर वस्त्र ओढ़ लिया और पवित्र भावसे आँखें मूँदकर पतिका चिन्तन करती हुई वे योगमार्गसे स्थित हो गयीं। उन्होंने आसनको स्थिर कर प्राणायामद्वारा प्राण और अपानको एकरूप कर नाभिचक्रमें स्थित किया। फिर उदान वायुको बलपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया, उसके बाद वे हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले गयीं। इस प्रकार सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गमें योगमार्गके अनुसार वायु और अग्निकी धारणा की। चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया। उनका शरीर तत्क्षण गिरा और योगाग्निसे जलकर भस्म हो गया। आकाश, पृथ्वी और पातालमें हाहाकार मच गया। आकाशवाणीने दक्षकी भर्त्सना की और समस्त देवताओंको यज्ञसे बाहर जानेकी प्रेरणा दी।

दक्षयज्ञ ध्वस्त हुआ। बादमें शिव आये। उन्होंने गणनायक वीरभद्रद्वारा विच्छिन्न दक्षके सिरको शरीरसे जोड़ दिया। सतीके वियोगमें क्षुब्ध भगवान् शिव उनका मृत शरीर लेकर घूमने लगे। देवीभागवतके सातवें स्कन्धके तीसवें अध्यायमें वर्णन है कि उन्होंने सतीके श[illegible] उठाकर अपने कंधेपर रख लिया। वे स्थान-स्थानपर [illegible] लगे। ब्रह्मासहित देव चिन्तित हुए कि कहीं शिवके [illegible] होनेसे प्रलय न हो जाय। भगवान् विष्णुने तुरंत [illegible] उठाया और जिस-जिस स्थानपर भगवती सतीके [illegible] गिरे थे, वहाँ-वहाँ अन्वेषण कर उन अङ्गोंको [illegible] डाला। तदनन्तर जहाँ-कहीं भी शरीरके खण्ड थे, [illegible] शंकरकी अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गयीं। शिवने देवता[illegible] कहा कि 'जो इन स्थानोंपर उत्तम भक्तिके साथ [illegible] शिवा (भवानी) की उपासना करेंगे, उनके लिये [illegible] भी दुर्लभ नहीं होगा। जहाँ सतीके अपने अङ्ग हैं, [illegible] जगदम्बा निरन्तर वास करेंगी।' ये स्थान [illegible] मन्त्र-जपके लिये विशेष उपयोगी हैं। ये देवी[illegible] वाराणसी, नैमिषारण्य, प्रयाग, केदार, गोकर्ण, [illegible] वृन्दावन, चित्रकूट, वैद्यनाथ आदि स्थानोंमें है।

देवीभागवतके उपर्युक्त संदर्भके अनुसार १०८ पी[illegible] पर ज्ञानार्णव, तन्त्रचूड़ामणि आदिके अनुसार ५१ शक्ति[illegible] विशेष प्रसिद्ध हैं। पातालमें परमेश्वरी हैं। पाताल[illegible] परमेश्वरी ही पाटेश्वरी महाशक्तिके रूपमें स्वीकृत [illegible] जाती हैं; क्योंकि देवीपाटनमें वामस्कन्धसहित दे[illegible] पट गिरकर सीधे पातालमें प्रवेश कर [illegible] था। देवीपाटनके पाटेश्वरीपीठकी यही समन्वया[illegible] मान्यता है।

सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटनमें शिवकी आज्ञासे महा[illegible] गोरक्षनाथने पाटेश्वरीपीठकी स्थापना कर भगवती[illegible] आराधना और योगसाधना की थी। देवीपाटनमें उप[illegible] १८७४ ई०के शिलालेखमें उल्लेख है—

महादेवसमाज्ञप्तः सतीस्कन्धविभूषिताम्।
गोरक्षनाथो योगीन्द्रस्तेन पाटेश्वरीमठम्।

देवीपाटन शक्ति-उपासना और योगसाधनाका [illegible] क्षेत्र है। पाटेश्वरीके मन्दिरके अन्तःकक्षमें प्रतिमा [illegible]

है, केवल चाँदीजड़ित गोल चबूतरा है। कहा जाता है, इसीके नीचे पातालतक सुरंग है। इसी चबूतरेपर महामायाकी समुपस्थितिकी यथार्थ स्वीकृतिके माध्यमसे उन्हें पूजा समर्पित की जाती है। चबूतरेपर कपड़ा बिछा रहता है। इसके ऊपर ताम्रछत्र है, जिसपर दुर्गासप्तशतीके सम्पूर्ण श्लोक अङ्कित हैं। उसके नीचे चाँदीके ही अनेक छत्र हैं। मन्दिरमें अखण्ड ज्योतिके रूपमें घीके दो दीपक जलते रहते हैं। मन्दिरकी परिक्रमामें मातृगणोंके यन्त्र विद्यमान हैं। मन्दिरके उत्तरमें सूर्यकुण्ड है, इसमें रविवारको स्नानकर षोडशोपचारसे देवीकी पूजा करनेवालेका कुष्ठरोग निवृत्त हो जाता है। यहाँ महिषमर्दिनी कालीका मन्दिर है और वटुकनाथ भैरवकी आराधना होती है। यहाँ अखण्ड धूनी भी है। इस पुण्यक्षेत्रमें चन्द्रशेखर महादेव और हनुमान्‌जीके भी मन्दिर हैं। देवीपाटन नेपालके सिद्धयोगी बाबा रतननाथका शक्ति-उपासना-स्थल है। वे प्रतिदिन योगशक्तिसे दाँग (नेपालकी पहाड़ियों)से आकर महामाया पाटेश्वरीकी आराधना किया करते थे। देवीके वरसे उनकी भी यहाँ पूजा होती है। देवीने योगीको आश्वासन दिया था कि जब तुम पधारोगे, तब तुम्हारी पूजा होगी। रतननाथ-मठ दाँग चौधरास्थानसे प्रत्येक वर्ष चैत्र शुक्ल ५को पात्रदेवता पाटन आते हैं और एकादशीको वापस जाते हैं। देवीपाटनमें प्रतिवर्ष नवरात्रमें बहुत बड़ा मेला लगता है। देशके प्रत्येक भागसे श्रद्धालु भक्तजन आकर महामाया पाटेश्वरीके चरणदेशमें अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं।

महामाया पाटेश्वरीकी महिमा अकथनीय है। उनके अपार सौन्दर्यसे समस्त जगत् सम्मोहित हो उठता है और उनकी अनायास-अकारण कृपासे भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करता है। दुर्गासप्तशतीके श्लोक ११।५ से यह कथन सर्वथा प्रमाणित है—

सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥

भगवती पाटेश्वरीकी प्रसन्नता परम सिद्धिदायिनी है। भगवती जगदीश्वरीके चरणोंमें आत्मनिवेदनकर जीवात्मा अभय हो उठता है। महामाया पाटेश्वरीके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण सिद्धियाँ, समस्त पदार्थ यहाँतक कि भोग-मोक्ष सब करतलगत हो जाते हैं।

महामाया वैष्णवी-शक्तिका स्तवन

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥ (मार्कण्डेयपुराण)

'तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत्‌को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो। देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्‌में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्बे! एकमात्र तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो।'

शक्तितत्त्व-विमर्श

शक्तितत्त्व एवं उपासना

(पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके विचार)

प्रश्न—शक्तितत्त्व क्या है ?

उत्तर—जो निर्विशेष शुद्ध तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधार है, उसीको पुंस्त्वदृष्टिसे 'चित्' और स्त्रीत्वदृष्टिसे 'चिति' कहते हैं। शुद्ध चेतन और शुद्ध चिति—ये एक ही तत्त्वके दो नाम हैं। मायामें प्रतिबिम्बित उसी तत्त्वकी जब पुरुषरूपसे उपासना की जाती है, तब उसे ईश्वर, शिव अथवा भगवान् नामोंसे पुकारते हैं और जब स्त्रीरूपसे उसकी उपासना करते हैं, तब उसीको ईश्वरी, दुर्गा अथवा भगवती कहते हैं। इस प्रकार शिव-गौरी, कृष्ण-राधा, राम-सीता तथा विष्णु-महालक्ष्मी—परस्पर अभिन्न ही हैं। इनमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है, केवल उपासकोंके दृष्टि-भेदसे ही इनके नाम और रूपोंमें भेद माना जाता है।

प्रश्न—शक्त्युपासनाका अधिकारी कौन है ? और उसका अन्तिम फल क्या है ?

उत्तर—शक्तिकी उपासना प्रायः सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये की जाती है। तन्त्रशास्त्रका मुख्य उद्देश्य सिद्धि-लाभ ही है। आसुरी प्रकृतिके पुरुष उसे मद्य-मांस आदिसे पूजते हैं, जिससे उन्हें मारण-उच्चाटन आदि आसुरी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा दैवी प्रकृतिके पुरुष गन्ध-पुष्प आदि सात्त्विक पदार्थोंसे पूजते हैं, जिससे वे नाना प्रकारकी दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यद्यपि शक्तिके उपासक प्रायः सकाम पुरुष ही होते हैं, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसके निष्काम उपासक होते ही नहीं। परमहंस रामकृष्ण ऐसे ही निष्काम उपासक थे। ऐसे उपासक तो सब प्रकारकी सिद्धियोंको ठुकराकर उसी परमपदको प्राप्त होते हैं जो परमहंसोंका गन्तव्य स्थान है। यही शक्त्युपासनाका चरम फल है। दुर्गासप्तशतीमें जिस प्रकार देवीको 'स्वर्गप्रदा' बतलाया गया है उसी प्रकार [illegible] 'अपवर्गदा' भी कहा है—

स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।

प्रश्न—शक्त्युपासनाका महत्त्व सूचित करनेवाली [illegible] सच्ची घटना बतलाइये ?

उत्तर—प्रायः सवा सौ वर्ष हुए, जगन्नाथपुरीके [illegible] एक जमींदार थे। लोग उन्हें 'कर्ताजी' कहकर पु[illegible] करते थे। उन्होंने एक पण्डितजीसे वैष्णवधर्मकी दी[illegible] ली। पण्डितजी ऊपरसे तो वैष्णव बने हुए थे, पर वास्त[illegible] वे श्यामा (काली) देवीके उपासक थे। वस्तु[illegible] उनकी दृष्टिमें श्याम और श्यामामें कोई भेद न था[illegible] कुछ लोगोंने कर्ताजीसे इस बातकी शिकायत की। [illegible] कर्ताजीको अपने गुरुजीसे इस विषयमें कोई प्रश्न करने[illegible] साहस नहीं हुआ। उस देशके लोग अपने गुरु[illegible] बहुत अधिक गौरव मानते हैं। पण्डितजी रात्रिके सम[illegible] काली माँकी उपासना किया करते थे। अतः कु[illegible] लोगोंने कर्ताजीको निश्चय करानेके लिये उन्हें रात्रिमें—जिस समय पण्डितजी पूजामें बैठते थे—ले जाने[illegible] आयोजन किया। एक दिन जिस समय पण्डितजी मातृ[illegible] पूजा कर रहे थे, वे अकस्मात् कर्ताजीको वहीं ले[illegible] आ धमके। कर्ताजीको आये देख पण्डितजी कुछ स[illegible] और उन्होंने जगदम्बासे प्रार्थना की कि 'माँ! य[illegible] तेरे चरणोंमें मेरा अनन्यप्रेम है तो तू श्यामासे श्या[illegible] हो जा।' पण्डितजीकी प्रार्थनासे वह मूर्ति कर्ताजी[illegible] सहित अन्य सब दर्शकोंको श्रीकृष्णरूप ही दिखला[illegible] दी। इस प्रकार अपने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार क[illegible] भगवतीने भगवान्‌के साथ अपना अभेद सिद्ध कर दिया। काली-कृष्णकी यह बात अंग, बंग, कलिंग आदि देशों[illegible] बहुत प्रचलित है।

शक्ति-साधना

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०)

जो विचारशील हैं तथा साधनराज्यमें प्रविष्ट हैं, वे जानते हैं कि साधनामात्र ही शक्तिकी आराधना है; क्योंकि किसी भी मनुष्यकी अन्तर्दृष्टिके सम्मुख चाहे कैसा भी आदर्श लक्ष्यरूपमें प्रतिष्ठित क्यों न हो, यदि वह शक्तिसंचय करते हुए अपनी दुर्बलताका परिहार न कर सके तो सम्यक्‌रूपसे उस आदर्शकी उपलब्धि कर उसे आत्मस्वरूपमें परिणत करनेमें वह समर्थ न होगा। समस्त सिद्धियाँ शक्तिसापेक्ष हैं। अतएव साधकको चाहे-जैसी सिद्धि अभीष्ट हो, उसका आत्मशक्तिके अनुशीलन विना प्राप्त होना सम्भव नहीं।

इस प्रकार विचार करनेसे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा अन्य किसी भी देवताकी उपासना मूलतः शक्तिकी ही उपासना है। इस प्रकारसे वैष्णवादि समस्त सम्प्रदायोंकी सारी साधनाएँ शक्ति-साधनाके अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात् भावसे भी शक्तिकी साधना हो सकती है। यहाँ साक्षात् शक्ति-साधनाके सम्बन्धमें ही संक्षेपमें कुछ लिखा जा रहा है।

हम इन्द्रियद्वारमें रूप, रसादि जिस पाञ्चभौतिक स्थूल-जगत्‌का अनुभव करते हैं, वह इन्द्रियोंकी उपशान्त अवस्थामें तद्रूपमें वर्तमान नहीं रहता। वस्तुतः एक तरहसे बाह्य जगत् इन्द्रियोंका ही बहिर्विलासमात्र है। चक्षुसे ही रूपका विकास होता है तथा चक्षु ही पुनः उस रूपका दर्शन करता है। समष्टि-चक्षु रूपका स्रष्टा है और व्यष्टि-चक्षु उसका भोक्ता है। इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। अतएव समष्टिभावापन्न पञ्चेन्द्रियसे भौतिक जगत्‌का विकास होता है तथा व्यष्टिगत पञ्चेन्द्रियाँ उस जगत्‌का सम्भोग करती हैं। इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके मूल स्थानमें लीन कर सकनेसे एक ओर जहाँ बाह्य जगत्‌का लोप हो जाता है, वहीं दूसरी ओर इन्द्रियोंके अभावके कारण उनकी सम्भोग-सम्भावना ही निवृत्त हो जाती है। यदि पहलेसे ही चित्त-क्षेत्रमें ज्ञानका सार हो तो इस अवस्थामें विशुद्ध अन्तःकरणका आविर्भाव होता है तथा साथ-ही-साथ अन्तर्जगत्‌का स्फुरण होता है। बाह्य जगत्‌की भाँति अन्तर्जगत्‌में भी समष्टिभूत अन्तःकरण स्रष्टा है तथा व्यष्टि-अन्तःकरण उसका भोक्ता है। जिसे अन्तर्जगत् या आतिवाहिक जगत्‌के नामसे वर्णन करते हैं, वह वस्तुतः विशुद्ध अन्तःकरणका बाह्य विकासमात्र है। बाह्येन्द्रियोंकी भाँति अन्तःकरणके भी निरुद्धवृत्तिकी अवस्थाको प्राप्त होनेपर अन्तर्जगत्‌का लोप हो जाता है। इसके पश्चात् जीव शुद्ध कारणभूमिमें स्थान पाता है। तब समष्टिकारण विन्दुका स्फुरणात्मक कारण जगत् ही दृश्य होता है और व्यष्टिकारण विन्दु तदात्मकभावमें उस दृश्यका दर्शन करता है। सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूल ग्रन्थिका भेदन कर पाता है तो वह मूल अविद्याके विलासस्वरूप इस मिथ्या प्रपञ्चके पाशजालसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है।

इस तरह स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् शक्तिके ही विकासमात्र हैं। शक्तिके इन तीन विभागों अर्थात् आत्मा, देवता तथा भूतरूपमें शक्तिकी तीन प्रकारकी अवस्थितिका अनुसरण करते हुए उसका परिणामस्वरूप जगत् भी कारणादि त्रिविधरूपमें प्रकट होता है। शक्तिके बहिर्मुख होकर घनीभाव तथा स्थूलत्वको प्राप्त करनेपर एक ओर जहाँ भौतिक तत्त्वोंका आविर्भाव होता है, वहीं दूसरी ओर वह क्रमशः विरल होते-होते अन्तःसंकोच-अवस्थाको प्राप्तकर 'आत्मा' अथवा 'बिन्दु' पदवाच्य हो जाती है। अतएव तथाकथित आत्मा,

देवता और भूत एक ही आद्याशक्तिकी त्रिविध अवस्था-मात्र है। वैसे ही कारण, लिङ्ग तथा स्थूल—यह त्रिविध जगत् भी एक ही मूल सत्ताके तीन प्रकारके परिणामके सिवा और कुछ नहीं है। शक्तिके साथ सत्ताका क्या सम्बन्ध है, सम्प्रति हम उसकी आलोचना नहीं करेंगे। फिर भी यह स्मरण रखना होगा कि दोनोंके वैषम्यसे ही जगत्की सृष्टि तथा सम्भोग, अर्थात् ईश्वरभाव और जीवभावका उन्मेष होता है; किंतु जब साम्य-अवस्था उदय होती है, तब एक ओर जहाँ जीव और ईश्वरका पारस्परिक भेद तिरोहित हो जाता है, वहीं दूसरी ओर सृष्टि और दृष्टि एकार्थबोधक व्यापार हो जाते हैं। तब भूमिभेदके अनुसार साम्यकी उपलब्धि होते-होते त्रिविध साम्यके बाद स्वाभाविक नियमसे परमाद्वैत अथवा महा-साम्यका आविर्भाव होता है। जो शक्ति और सत्ता स्थूलभूमिमें आत्मप्रकाश किये हुए हैं, उनका साम्य ही प्रथम साम्य है। उसी प्रकार सूक्ष्म और कारण-जगत्के सम्पर्कमें रहनेवाली शक्ति और सत्ताका साम्य क्रमशः द्वितीय और तृतीय साम्यके नामसे पुकारा जाता है। यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेदका परिहार कर जिस महासाम्यमें एकत्व लाभ करता है, वही परमाद्वैत या ब्रह्मतत्त्व है। महाशक्तिके उद्बोधनके बिना इस अद्वैत-तत्त्वमें स्थिति लाभ करना तो दूर रहा, प्रवेशाधिकार पानेकी भी सम्भावना नहीं है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि भूमिभेदसे प्रत्येक स्तरमें शक्तिके उद्बोधनकी आवश्यकता है। नहीं तो तत्तत् भूमिकी सत्ता अचेतन-भावको त्यागकर स्वयंप्रकाश चैतन्यके साथ एकीभूत नहीं हो सकती; क्योंकि अनुद्बुद्ध शक्ति सत्ताकी प्रकाशक नहीं होती और अप्रकाशमान सत्ता कभी चिद्भावापन्न नहीं हो सकती। वह असत्कल्प एवं जडताका ही नामान्तरमात्र होती है।

उपर्युक्त विश्लेषणसे समझा जा सकता है कि शक्तिकी आराधनाके बिना एक ओर जिस प्रकार स्थूलभावको आयत्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दूसरी ओर आत्मसत्ताकी भी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः पृथ्वीमें जितने प्रकारके धर्मसम्प्रदाय हैं, उनमें शक्तिकी आराधना किये बिना किसीका काम नहीं चलता।

यह अनन्त वैचित्र्यमय विश्व, जिसे हम निरन्तर नाना प्रकारसे अनुभव करते हैं, वस्तुतः शक्तिके आत्म-प्रकाशके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सुसूक्ष्म कारण-जगत्, लिङ्गात्मक सूक्ष्म-जगत् और इन्द्रियगोचर स्थूल-जगत् शक्तिके ही विभिन्न विकासमात्र हैं। इस विश्वके मूलमें जो पूर्ण सत्ता पारमार्थिक रूपमें वर्तमान है, वही शक्तिका परम रूप है। विशुद्ध चैतन्यके नामसे वर्णन करनेपर भी इसका ठीक परिचय नहीं दिया जा सकता। सच्चिदानन्द शब्दसे वर्णन करनेपर भी इसका ठीक-ठीक निर्देश नहीं किया जा सकता। इस वाणी और मनके अगोचर अनिर्देश्य अवर्णनीय परमार्थसत्ताको ही शास्त्रमें 'परमपद' कहा गया है। यह सत् है या असत्—यह विषय लौकिक विचारके विषयीभूत न होनेपर भी विचारदृष्टिसे देखनेपर आलोचनाप्रसङ्गसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसमें प्रकाश और विमर्श—ये दोनों अंश अविनाभूतरूपमें वर्तमान हैं। प्रकाशके बिना जिस प्रकार विमर्श असम्भव है, उसी प्रकार विमर्शको त्यागकर प्रकाशकी स्थिति भी सम्भव नहीं है। यह शिव शक्तिस्वरूप प्रकाश और विमर्श नित्य सम्बन्ध ही चैतन्यरूपसे महापुरुषोंकी अनुभूतिमें आता है तथा शास्त्रमें प्रचारित होता है; किंतु चैतन्य होनेपर भी वह प्रकाश और विमर्शकी साम्यावस्थामें अव्यक्त ही रह जाता है। इसी अवस्थाका दूसरा नाम 'परम पद' है। इस साम्यावस्थामें महाशक्तिस्वरूप अनादिशक्ति परम शिव-के साथ सामरस्य-भावापन्न होकर अद्वयरूपमें विराजमान रहती है। स्वरूपदृष्टिसे इस अवस्थाको एक प्रकारसे परब्रह्म-भावका ही नामान्तर कहा जा सकता है, परंतु इसमें इसके स्वरूपभूत स्वातन्त्र्यके नित्य वर्तमान रहनेके

कारण यह ब्रह्मतत्त्वसे विलक्षण ही है। महाशक्तिस्वरूप इस परम पदकी जो बात यहाँ कही गयी है, उससे कोई भ्रमवश यह न समझे कि यही निष्कल अथवा पूर्णकल परमेश्वर है; क्योंकि निष्कल, निष्कल-सकल तथा सकल— ये विश्वकी ही तीन अवस्थाएँ हैं; परंतु महाशक्ति सर्वातीत होनेके कारण विश्वात्मक होते हुए भी वस्तुतः विश्वोत्तीर्ण है। इस विश्वातीत परम पदसे इसीके स्वातन्त्र्यस्वरूप आत्मविलाससे नित्य साम्यके भग्न न होते हुए भी एक प्रकारकी भग्नवत् अवस्थाका उद्भव होता है तथा इस वैषम्यके फलस्वरूप गुणप्रधान भावमें छत्तीस तत्त्वसमन्वित विश्वका आविर्भाव होता है। अखण्ड परमार्थ स्वरूपके शिव-शक्तिसे अभिन्न-रूप होनेपर भी स्वातन्त्र्यजनित विक्षोभके कारण उसके द्वारा अथवा उसीमें भेदमय विश्वप्रपञ्चका उदय होता है। अतएव त्रिविधविभाग-विशिष्ट समस्त विश्व मूलतः शक्तिका ही विकास है, यह सुनिश्चित है।

कामरूपपीठ एवं स्वयम्भूलिङ्ग

जब वह पराशक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्वको अर्थात् प्रकाशको देखनेके लिये उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति और शिव साम्यभावापन्न होकर एक बिन्दुरूपमें परिणत होते हैं, जिससे पारमार्थिक चैतन्य प्रतिफलित होकर ज्योतिर्लिङ्गरूपमें प्रकटित होता है। यही बिन्दु तान्त्रिक परिभाषामें 'कामरूपपीठ' के नामसे प्रसिद्ध है। इस पीठमें अभिव्यक्त चैतन्य 'स्वयम्भूलिङ्ग'के नामसे परिचित है। यह शक्तिपीठ एक मात्रा शक्ति-अंश और एक मात्रा शिवांशको समभावमें लेकर संघटित होता है। शक्ति और शिवके इस अंशद्वयको आचार्यगण शान्ताशक्ति और अम्बिकाशक्तिके नामसे वर्णन करते हैं। इस पीठमें महाशक्तिका आत्मप्रकाश परावाक्-रूपमें प्रख्यात है। जिन्होंने तन्त्रानुमोदित योगसाधनका यथाविधि अभ्यास किया है वे जानते हैं कि यहींसे शब्दराज्यकी सूचना होती है। यही प्रणवका परम रूप अथवा वेदका स्वरूप है।

पूर्णगिरिपीठ एवं बाणलिङ्ग

इसके पश्चात् शक्तिके क्रमिक विकासके होते-होते शान्ताशक्ति 'इच्छा'-रूपमें परिणत होती है तथा शिवांश अम्बिकाशक्ति भी 'वामा'-रूपमें आविर्भूत होती है। इन दोनों शक्तियोंके पारस्परिक वैषम्यका परिहार होनेपर जिस अद्वय सामरस्यमय बिन्दुका आविर्भाव होता है, उससे तदनुरूप चैतन्यका स्फुरण होता है। इस बिन्दुको 'पूर्णगिरिपीठ' एवं इस चिद्विकासको 'बाणलिङ्ग'के नामसे समझना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टिसे यह 'पश्यन्ती वाक्'की अवस्था है। पराशक्ति शब्दकी प्रथम भूमिमें अथवा कामरूप-पीठमें आत्मगर्भस्थ विश्वको नित्य वर्तमान-रूपमें देखती है। वहाँ अतीत और अनागतरूप खण्डकालकी सत्ता नहीं है तथा दूर और निकटका व्यवधान भी नहीं है। कार्य और कारणका कठोर नियम यहाँ अपरिज्ञात है। इस नित्यमण्डलमें किसी प्रकारका आवरण नहीं है और न किसी प्रकारका विक्षोभ या चाञ्चल्य ही देखा जाता है। यह शान्तिमय अवस्था है।

नित्यमण्डल, जालन्धपीठ और इतरलिङ्ग

इसके बाद इच्छाशक्तिके उन्मेषके साथ-साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है। जिसे 'नित्य-मण्डल' कहा गया है, वह शक्ति-गर्भस्थ बीजभूत विश्व है। इच्छाके प्रभावसे जब उसके गर्भके एकदेशसे विसृष्टि होती है, तभी उसे सृष्टि नाम प्राप्त होता है। इस भूमिसे ही कालका प्रभाव प्रारम्भ होनेके कारण यह सृष्टिक्रिया एक साथ न होकर क्रमानुसार होती है। इसी प्रकार देश और कार्य-कारणभावका स्फुरण भी यहींसे समझना चाहिये। इसकी परावस्थामें इच्छाशक्तिके उपराम होनेपर ज्ञानशक्तिका उदय होता है तथा वह शिवांश ज्येष्ठाशक्तिके साथ अद्वैतभावमें मिलित

होकर 'जालन्धपीठ'-रूप सामरस्य बिन्दुकी सृष्टि करता है। इस बिन्दुसे अभिव्यक्त चैतन्य 'इतरलिङ्ग' नामसे प्रसिद्ध है। शक्तिके इस स्तरमें 'मध्यमा वाक्' आविर्भूत होती है और इसके प्रभावसे सृष्ट जगत् तत्तद्भावमें स्थित होता है।

उड्डीयानपीठ एवं परलिङ्ग

जब स्थितिशक्ति क्षीण हो जाती है, तब स्वभावके नियमसे ही अन्तर्मुख आकर्षणकी प्रबलता होनेके कारण संहारशक्तिकी क्रिया आरम्भ होती है। तब ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिके रूपमें परिणत होकर शिवांश रौद्री शक्तिके साथ साम्यभावको प्राप्त हो जाती है। उसके फलस्वरूप जिस अद्वैत बिन्दुका आविर्भाव होता है, उसे 'उड्डीयान-पीठ' कहते हैं। इस बिन्दुसे चिच्छक्ति महातेजःसम्पन्न 'परलिङ्ग'रूपमें अभिव्यक्त होती है। यह शब्दकी 'वैखरी' नामक चतुर्थ भूमि है। हम जिस संहारशील क्षयधर्मक जगत्का अनुभव करते हैं वह इस वैखरी शब्दकी ही विभूति है।

प्रणव और त्रिकोण

पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी शब्दकी जिन तीन अवस्थाओंके विषयमें कहा गया है, वही प्रणवके 'अ' कार, 'उ'कार और 'म' कार हैं, अथवा ऋक्, यजुः और साम--इस वेदत्रयरूपमें ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रतिभात होती हैं। त्रिलोक, त्रिदेवता, त्रिकाल प्रभृति अखण्ड परावाक् अथवा तुरीय-वाक्का ही त्रिविध परिणाममात्र हैं। बिन्दुगर्भित जो महात्रिकोण समस्त विश्वब्रह्माण्डके मूलरूपमें शास्त्रोंमें सर्वत्र व्याख्यात हुआ है, वह इसी चतुर्विध शब्दके सम्बन्धसे प्रकटित होता है। इस त्रिकोणकी तीन रेखाएँ पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तीन प्रकारके शब्द सृष्टि, स्थिति और संहाररूप तीन प्रकारके व्यापार वामा, ज्येष्ठा और रौद्री किंवा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप तीन प्रकारके शिवांश अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप तीन शक्त्यंशके प्रतिनिधिमात्र हैं। त्रिकोणका मध्य बिन्दु परावाक् अथवा अम्बिका और शान्ता—इन दो शिवशक्त्यंशका साम्यभावापन्न स्वरूप है। यद्यपि बिन्दुमें शिव और शक्ति दोनोंका ही अंश है एवं त्रिकोणमें भी वही है, तथापि बिन्दु प्रधानतः 'शिव'-रूपमें एवं त्रिकोण भी 'शक्ति' या 'योनि'-रूपमें परिणत हो जाता है। इस बिन्दुसमन्वित त्रिकोणमण्डलसे समस्त बाह्य जगत्का आविर्भाव होता है।

आद्याशक्तिका स्वरूप-निर्वचन और आत्मदर्शन

आद्याशक्ति तत्त्वातीत होते हुए भी सर्वतत्त्वमयी और प्रपञ्चरूपा है। वह नित्या, परमानन्दस्वरूपिणी तथा चराचर जगत्की बीजस्वरूपा है। वह प्रकाशात्मक शिवके स्वरूपज्ञानका उद्बोधक दर्पणस्वरूप है। अहंज्ञान ही शिवका स्वरूप-ज्ञान है। आद्याशक्तिका आश्रय लिये बिना इस आत्मज्ञानका प्रकाश नहीं हो सकता। आगमविद्गण कहते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने सामने स्थित स्वच्छ दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर उस प्रतिबिम्बको 'अहं'-रूपमें पहचान लेता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपने अधीन स्वकीय शक्तिको देखकर अपने स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं। आत्मशक्तिका दर्शन एवं आत्मस्वरूपकी उपलब्धि और आस्वादन एक ही वस्तु है। यही पूर्णाहंताका चमत्कार अथवा सच्चिदानन्दकी घनीभूत अभिव्यक्ति है। 'मैं पूर्ण हूँ'—यह ज्ञान ही नित्यसिद्ध आत्मज्ञानका प्रकृत स्वरूप है। वस्तुका सामीप्य-सम्बन्ध न होनेपर जैसे दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण नहीं कर सकता अथवा वस्तुका सांनिध्य होनेपर भी प्रकाशके अभावसे दर्पणमें स्थित प्रतिबिम्ब जैसे प्रतिबिम्बरूपमें नहीं भासता, उसी प्रकार पराशक्ति भी प्रकाशस्वरूप परम शिवके सांनिध्यके बिना अपने अन्तःस्थित विश्वप्रपञ्चको प्रकटित करनेमें समर्थ नहीं होती। इसी कारण शुद्ध शिव अथवा शुद्ध शक्ति

परस्पर सम्बन्धरहित होकर अकेले जगत्के निर्माणका कार्य नहीं कर सकते। दोनोंकी अपेक्षित सहकारिताके बिना सृष्टिकार्य असम्भव है। सारे तत्त्व इन दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धसे ही उद्भूत होते हैं। इससे कोई यह न समझे कि शिव और शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श परस्पर विभिन्न और स्वतन्त्र पदार्थ हैं।

शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।

—शास्त्रका यही अन्तिम सिद्धान्त है। तथापि संहारकार्यमें शिवका और सृष्टिकार्यमें शक्तिका प्राधान्य स्वीकार करना होगा। पराशक्ति स्वतन्त्र होनेके कारण परावाक्-प्रभृति क्रमका अवलम्बन कर विश्वसृष्टिका कार्य-सम्पादन करती है और सृष्ट विश्वके केन्द्रस्थानमें अवस्थित होकर उसका नियमन करती है। यही स्वातन्त्र्य उपर्युक्त रीतिसे क्रमशः इच्छा, ज्ञान और क्रियाका आकार प्राप्तकर वैचित्र्यका आविर्भाव करता है और विश्वरूप धारण करता है। शिव तटस्थ और उदासीन रहकर निरपेक्ष साक्षिरूपमें आत्मशक्तिकी यह लीला देखा करते हैं। यह नाना तत्त्वमय विश्वसृष्टि ही पराशक्तिका स्फुरण है। अतएव शक्तिकी एक अव्यक्त वा प्रलीन अवस्था है, जहाँ शक्ति शिवके साथ एकाकार होकर शिवरूपमें ही विराजमान रहती है तथा उसकी एक अभिव्यक्त अवस्था भी है, जिसमें उसके द्वारा तत्त्वमय विश्व या देवताचक्र एक साथ ही एवं क्रमशः आविर्भूत होते हैं। पराशक्तिद्वारा अपने स्फुरणका दर्शन और विश्वका आविर्भाव एक ही बात है; क्योंकि इस आदिम भूमिमें दृष्टि और सृष्टि समानार्थक हैं, परंतु इस क्रमिक आविर्भावकी एक प्रणाली है।

महाशक्ति और शिव

सृष्टिके आदिमें अनादिकालसे जो अव्यक्त, पूर्ण निराकार और शून्यस्वरूप वस्तु विराजमान है, वह तत्त्वातीत, प्रपञ्चातीत तथा व्यवहार-पथके भी अतीत है। वही शाक्तोंकी महाशक्ति हैं और शैवोंके परम शिव हैं। वाणी और मनके अगोचर होनेके कारण ही इसे अनुत्तर कहा जाता है। वस्तुतः इसका वर्णन न तो कोई कभी कर सका है और न आगे कर सकनेकी ही सम्भावना है। इसे विशुद्ध प्रकाश कहें तो अन्तर्लीन विमर्शके कारण यह प्रकाशमान है। अतएव इसमें स्वयंप्रकाशभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार इसे विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि प्रकाशहीन विमर्श असत्कल्प है। इस तत्त्वातीत और अनुत्तर अवस्थाके लिये शास्त्रमें वाचकरूपमें आदिवर्ण 'अ'कारका प्रयोग होता है। इसके बाद दोनोंकी सामरस्य-अवस्था है, 'अ'काररूप प्रकाशके साथ 'ह'काररूप विमर्शका अर्थात् अग्निके साथ सोमका साम्यभाव ही 'काम' अथवा 'रवि' नामसे प्रसिद्ध है। शास्त्रमें जिस अग्नीषोमात्मक बिन्दुका उल्लेख पाया जाता है, वह भी यही है। शिव ही 'अ' और शक्ति ही 'ह' है—बिन्दुरूपमें यही 'अहं' अथवा पूर्णाहंता है। साम्यभङ्ग होनेपर यह बिन्दु प्रस्पन्दित होकर शुक्ल और रक्त बिन्दुरूपमें आविर्भूत होता है। इस प्रस्पन्दन-कार्यसे जो अभिव्यक्त होता है उसे ही शास्त्रमें संविद् अथवा चैतन्यके नामसे वर्णित किया जाता है। इसीका दूसरा नाम चित्कला है। अग्निके सम्पर्कसे घृत जिस प्रकार गलकर धारारूपमें बहने लगता है, उसी प्रकार प्रकाशात्मक शिवके सम्पर्कसे विमर्शरूपा पराशक्ति द्रुत होती है तथा उससे एक परमानन्दमय अमृतकी धाराका स्राव होता है। यही धारा एक प्रकारसे उपर्युक्त चित्कला एवं दूसरे प्रकारसे ब्रह्मानन्दका स्वरूप है। निष्कल चैतन्यमें कलाका आरोप सम्भवनीय नहीं है। अतएव यह चित्कला महाशक्तिके स्वातन्त्र्यके उन्मेषके कारण शिव-शक्तिके आपेक्षिक वैषम्यसे उत्पन्न शक्तिभावके प्राधान्यसे प्रकाशांश और विमर्शांशके घनीभूत संश्लेषणसे उद्भूत होती है। शुद्ध

प्रकाश किंवा शुद्ध विमर्श बिन्दुपदवाच्य नहीं है। जिस विमर्शशक्तिमें निखिल प्रपञ्च विलीन रहता है, उसके संसर्गसे अनुत्तर अक्षरस्वरूप प्रकाश बिन्दुरूप धारण करता है। यह संसर्ग विमर्शशक्तिमें प्रकाशके अनुप्रवेशके सिवा और कुछ नहीं है। इस बिन्दुका नामान्तर प्रकाशबिन्दु है, जो विमर्शशक्तिके गर्भमें स्थित रहता है। इसके पश्चात् विमर्शशक्तिके प्रकाशबिन्दुमें अनुप्रविष्ट होनेपर यह बिन्दु उच्छून हो जाता है अर्थात् पुष्टिलाभ करता है, तब उससे तेजोमय बीजस्वरूप नाद निर्गत होता है। इस नादमें समस्त तत्त्व सूक्ष्मरूपसे निहित रहते हैं। नाद निर्गत होकर त्रिकोणाकार रूप धारण करता है। यही 'अहम्' नामक बिन्दुनादात्मक प्रकाश विमर्शका शरीर है। इसमें प्रकाश शुक्लबिन्दु है और विमर्श रक्तबिन्दु तथा दोनोंका पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक साम्य मिश्रबिन्दु है। इसी साम्यका दूसरा नाम परमात्मा है। इसीको 'रवि' या 'काम' के नामसे पुकारते हैं, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अग्नि और सोम इसी कामके कला-विशेष हैं। अतएव कामकला कहनेसे तीनों बिन्दुओंका बोध होता है। इन तीन बिन्दुओंका समष्टिभूत महा-त्रिकोण ही दिव्याक्षरस्वरूपा आद्याशक्तिका अपना रूप है। इसके मध्यमें रविबिन्दु देवीके मुखरूपमें, अग्नि और सोमबिन्दु स्तनद्वयरूपमें तथा 'ह'कारकी अर्धकला अथवा हार्धकला योनिरूपमें कल्पित होती है। यह हार्धकला अत्यन्त रहस्यमय गुह्य तत्त्व है, इसका विशेष विवरण इस निबन्धमें देना अनावश्यक है, तथापि सम्प्रति जिज्ञासु साधककी तृप्तिके लिये इतना कहा जा सकता है कि शिव-शक्तिके मिलनसे उत्पन्न अमृतकी धारा प्रवाहित होनेपर उससे जिस लीलारूप तरङ्गकी उत्पत्ति होती है वही तान्त्रिक परिभाषामें हार्धकलाके नामसे विख्यात है। यह जो त्रिकोणके विषयमें कहा गया है, वह पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—इन त्रिविध शब्दोंका परस्पर संश्लेषात्मक सम्मिलित स्वरूप है और इसका केन्द्रस्थित बिन्दु, जिसका स्वरूप अहंरूपमें वर्णित हुआ है, वह परमातृकाका विलासक्षेत्र सदाशिवतत्त्व-स्वरूप है। मध्यबिन्दु तथा मूल त्रिकोणसे समस्त तत्त्वों और पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। चाहे किसी भी देवता या किसी भी स्तरके मूलतत्त्वका अनुसंधान करो, उसकी चरमावस्थामें यह लिङ्गयोनिका समन्वयरूप त्रिकोणमध्यस्थ बिन्दु अथवा बिन्दुगर्भित त्रिकोण दिखलाई देगा। इसी कारण तन्त्रशास्त्रमें जिस-किसी भी देवताके चक्रका वर्णन आया है, उसमें सर्वत्र ही यह बिन्दु और त्रिकोण मूलस्थानमें साधारणभावसे वर्तमान है। चतुरस्र प्रभृति पीठका वर्णन होनेपर भी अन्तर्दृष्टिसे देखनेपर उनके भी मूलमें त्रिकोणकी सत्ता अवस्थित देखी जाती है। त्रिकोणके विभिन्न स्पन्दनसे वासनाकी विचित्रता तथा तदनुरूप चक्रकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ निष्पन्न होती हैं। वर्तमान प्रबन्धमें उसकी आलोचना प्रासङ्गिक न होगी।

महाबिन्दु अनन्त कलाकी समष्टि होनेपर भी तत्तद् ब्रह्माण्डके अभिव्यक्त उपादानकी मात्राके अनुसार निर्दिष्ट-संख्यक कलाद्वारा गठित होकर अव्यक्त-गर्भसे अहंरूपमें आविर्भूत होता है। यह दर्शनशास्त्रका एक गम्भीरतम रहस्य है। वेदान्तादि निखिल शास्त्र निष्कल अव्यक्त सत्ता किस प्रकारसे 'अहम्' रूपमें आत्मप्रकाश करती है, इसे अनादिसिद्ध स्वीकार करते हैं। किंतु इस 'अहम्' की उत्पत्तिप्रणाली और तिरोभावप्रणाली योग-सम्पत्तिसम्पन्न तान्त्रिक द्रष्टाके सिवा अन्य किसी साधकको अपरोक्षभावसे अनुभूत नहीं होती। व्यष्टि, समष्टि एवं महासमष्टि—सर्वत्र एक ही प्रणालीकी क्रिया देखनेमें आती है। कलाकी निरन्तर और क्रमिक पूर्णतासे एक ओर जिस प्रकार बिन्दुरूप पूर्णकला अथवा अहं-तत्त्वका विकास होता है, उसी प्रकार उसके निरन्तर और क्रमिक क्षयसे क्रमशः शून्यस्वरूप अहंभाववर्जित

आत्मभावका आविर्भाव होता है। दोनोंमें ही पूर्णकलाकी एक कला नित्य साक्षीरूपमें प्रपञ्चके लय होनेके बाद भी जाग्रत् रहती है। यही एक कला निर्वाणकलारूपमें जीवकी उन्मनी अवस्थामें रहती है। इसकी भी निवृत्ति हो जानेपर जिस निष्कल अवस्थाका विकास होता है, वही शिव-शक्ति-तत्त्व है, वही महाबिन्दु है, अतएव यह शिवत्व सदाशिवका नाममात्र है। ब्रह्माण्डकी चरमावस्था जिस प्रकार अस्मितामें पर्यवसित होती है, जो प्रकृति और पुरुषका अवलम्बन करके आत्मलाभ करती है, उसी प्रकार समस्त विश्वके पर्यवसानमें इस विराट् अस्मिरूप अर्थात् बिन्दु-स्वरूप सदाशिवतत्त्वका आविर्भाव होता है, जिसमें अधिष्ठित होकर शिव-शक्तिरूप मूल वस्तु लीलामय भावमें आत्म-प्रकाश करती है। अतएव बिन्दुरूप अहंकारके आत्म-समर्पणके बिना महाबिन्दु या पूर्णाहंताके स्वरूपकी उपलब्धि सम्भवनीय नहीं है। इस उपलब्धिमें पञ्च-दशकलात्मक संसारी जीव एवं षोडश अथवा निर्वाण-कलात्मक मुक्त जीव—किसीकी सत्ता नहीं रहती। यह जीवभावविनिर्मुक्त शिवभाव है, यह पहले ही कहा जा चुका है। पाशजालसे मुक्त होकर जीवजगत् जबतक शिवरूपमें प्रकाशित नहीं होता तबतक पूर्णस्वरूपा महाशक्तिका यथार्थ संधान पाना बहुत ही कठिन है। शिवभाव प्राप्त होनेपर भी शवरूपमें परिणत हो शवासन-परिग्रह न कर सकनेपर अपने भीतर महाशक्तिका उन्मेष नहीं प्राप्त हो सकता।

स्थूल जगत्, जिसे हम सर्वदा अनुभव करते हैं, दीपकलिकासे विकीर्ण प्रभामण्डलकी भाँति एक बिन्दुका बाह्य प्रसारण अथवा विकिरणमात्र है। इन्द्रियोंके प्रत्याहारसे इस रश्मिमालाको उपसंहृत कर सकनेपर बाह्य जगत् स्वभावतः बाह्य बिन्दुमें विलीन हो जाता है। इसी प्रकार लिङ्गात्मक आभ्यन्तरिक जगत् भी विक्षुब्ध अन्तःकरणका बाह्य विलासमात्र है तथा वह भी विलीन होनेपर तदनुरूप बिन्दुस्वरूपमें अव्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार कारणजगत् उपसंहारको प्राप्त होकर कारण-बिन्दुमें पर्यवसित होता है। ये तीनों जगत् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाके द्योतक हैं। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण——ये तीनों बिन्दु ही त्रिकोणके तीन प्रान्तोंके तीन बिन्दु हैं। इन्हें 'अकार', 'उकार' और 'मकार'के नामसे भी सांकेतिक भाषामें निर्देश किया जा सकता है। अन्तर्मुख-प्रेरणासे जब ये तीनों बिन्दु रेखारूपमें भीतरकी ओर प्रवाहित होकर एक महाबिन्दुरूपमें पर्यवसानको प्राप्त होते हैं, तो वे ही तुरीयबिन्दु अथवा महाकारणरूपमें अभिहित होनेके योग्य होते हैं। वही त्रिकोणका अन्तःस्थित मध्यबिन्दु है, जिसके विषयमें पहले कहा जा चुका है। इस बिन्दुमें अनादिकालसे दिव्य मिथुन शिव-शक्तिका अथवा परमपुरुष और परा-प्रकृतिके शृङ्गारादि अनन्त भावोंका विलास चलता रहता है। राधाकृष्णकी युगल-मिलन आदि बुद्ध एवं प्रज्ञापार-मिताका युगनद्धस्वरूप, God the Father तथा God the son का Holy Ghost के अभ्यन्तर पारस्परिक सम्मिलन इसीका द्योतन करते हैं। यह त्रिकोण ही प्रणवका स्वरूप है। सार्धत्रिवलयाकारा भुजङ्गविग्रहा सुषुप्ता कुण्डलिनी शक्ति भी इसीका नामान्तर है। कुण्डलिनीका प्रबुद्ध भाव सम्यक्रूपसे सिद्ध होनेपर शिव-शक्तिका भेद विगलित हो जाता है तथा साथ-ही-साथ जीवके साथ शिवका अथवा शक्तिका पार्थक्य तिरोहित हो जाता है, तब चक्र या यन्त्र अव्यक्तगर्भमें विलीन हो जाता है। बिन्दु एवं त्रिकोणका भेद दूर होनेके कारण बिन्दुका बिन्दुत्व तथा त्रिकोणका त्रिकोणत्व कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। जो रहता है उसका किसी नाम-रूपद्वारा निर्देश नहीं होता। वह सब तत्त्वोंका मूलकारण होनेपर भी किसी विशिष्ट तत्त्वके रूपमें अभिहित होनेके योग्य नहीं रहता। वह चित्, अचित् और ईश्वरका अनादिभूत आदिकारण होनेपर भी

चित्, अचित् या ईश्वर—किसी भी नामसे वर्णित नहीं हो सकता।

शक्ति-साधनाका मूलसूत्र नादानुसंधान अथवा शब्दका क्रमिक उच्चारण है। बिन्दु या कुण्डलिनी विक्षुब्ध होकर नादका विकास करती है। पूर्ण परमेश्वरकी स्वातन्त्र्यशक्तिसे बिन्दुका विक्षोभकार्य सम्पन्न होता है। इसीका दूसरा नाम गुरुकृपा या परमेश्वरका अनुग्रह है। इस चिदाकाशस्वरूप बिन्दुको दूसरी कोई निम्नभूमिस्थ शक्ति विक्षुब्ध नहीं कर सकती। कुण्डलिनी जब मूलाधारके नीचे ऊर्ध्वमुख सहस्रार अथवा अकुलकमलमें विराजमान रहती है तब वह अव्यक्त नाम विश्वोत्तीर्ण अवस्थाके अन्तर्गत रहती है; परंतु स्वातन्त्र्यवश उसकी अभिव्यक्ति होनेपर मूलाधारमें ही उसकी अनुभूति होती है। निराधार निरालम्ब सत्तासे, यहींसे आधारभावकी सूचना होती है। क्रमशः इस शक्तिके उद्बोधनकी मात्राके अनुसार आधारभाव पुनः क्षीण हो जाता है एवं परिशेषमें सर्वतोभावेन तिरोहित होकर ऊर्ध्वस्थ अधोमुख सहस्रदल-कमलमें पुनः अकुलमें ही उसका लय होता है, मध्यस्थ व्यापार केवल पूर्ण चैतन्य-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये हैं। जो अनन्त गर्भमें अचेतनभावसे अनादिकालसे सुषुप्तावस्थामें था, वह पूर्णरूपसे प्रबुद्ध होकर चैतन्यस्वरूपके अवलम्बनपूर्वक पुनः उस अनन्त गर्भमें प्रविष्ट हो जाता है। यह एक अकुलसे दूसरे अकुलपर्यन्त जो मार्ग है वही विश्व-जगत्का मूलीभूत चक्र है। वृत्ताकार मार्गमें मनुष्य जिस स्थानसे चलता है, निरन्तर सरलतापूर्वक आगे बढ़ता जाय तो वह पुनः उसी स्थानपर लौट आता है। यही मध्यका—आवरण-चक्रका स्वरूप है। इस प्रकारके चक्र कितने हैं इसका संख्याद्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता; तथापि साधकजन अपने-अपने प्रयोजन और उद्देश्यके अनुसार उनका कुछ निर्देश कर गये हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिकाग्र और आज्ञा—ये अज्ञानराज्यके अन्तर्गत हैं। यद्यपि अधोवर्ती चक्रकी अपेक्षा ऊर्ध्ववर्ती चक्रमें शक्तिकी सूक्ष्मता तथा निर्मलता विकास अधिक है तथापि वे अज्ञानकी सीमाके अन्तर्गत हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

ज्ञानके संचारके साथ-साथ ही आज्ञाचक्रका भेद हो जाता है, अथवा दूसरे प्रकारसे यह कह सकते हैं आज्ञाचक्रका भेदन करनेसे ज्ञानका उदय होता है। इस चक्रके बाद ही बिन्दुस्थान है, यही बिन्दु योगियोंका तृतीय नेत्र अथवा ज्ञानचक्षु कहलाता है। इसी बिन्दुसे ऊर्ध्व भूमिकी सूचना मिलती है। चित्तको एकाग्र करके उपलब्ध किये बिना अर्थात् विक्षिप्त अवस्थामें बिन्दुमें स्थिति नहीं हो सकती। बिन्दु-अवस्थामें स्थिति होनेपर भी यथार्थ लक्ष्यकी प्राप्तिमें अनेकों व्यवधान रह जाते हैं। यद्यपि बिन्दुभूमिमें साधक अहंभावमें प्रतिष्ठित होकर आपेक्षिक द्रष्टा बनकर निम्नवर्ती समस्त प्रपञ्चको निरपेक्षभावसे देखनेमें समर्थ होता है, तथापि जबतक वह बिन्दु पूर्णतया तिरोहित नहीं हो जाता, अर्थात् पूर्णतया अहंभावका विसर्जन अथवा आत्मसमर्पण नहीं होता, तबतक महाबिन्दु अथवा शिवभावकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसीलिये बिन्दुभावको प्राप्त होकर साधकको क्रमशः कलाक्षय करते-करते पूर्णतया विगतकल-अवस्थामें उपनीत होना पड़ता है।

बिन्दुके बाद उल्लेखयोग्य प्रधान चक्र बिन्दु-अर्ध अथवा अर्धचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध है। बिन्दुको चन्द्रबिन्दु कहा जाता है, इसीलिये यह अवस्था अर्धचन्द्र नामसे वर्णित होती है। इसी अवस्थामें अष्टकला शक्तिका विकास होता है। इसके आगे अर्थात् शक्तिकी नव कलाके क्षीण होनेपर एक अवरोधमय घोर आवरणस्वरूप विलक्षण अवस्थाका उदय होता है। बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी इस स्तरका भेदन करके ऊपर उठना कठिन

है; परंतु अनुग्रह-शक्तिके विशिष्ट प्रभावसे भाग्यवान् साधक इस चक्रका भेदन कर ऊपर उठनेमें समर्थ होता है। शास्त्रमें यह अवस्था 'रोधिनी' नामसे प्रसिद्ध है। इस आवरणका भेदन करनेसे ही साधक नादभूमिमें उपनीत होता है। नाद चैतन्यका अभिव्यञ्जक है, अतः इस अवस्थामें चिच्छक्ति क्रमशः अधिकतर स्पष्ट हो जाती है। ब्रह्मरन्ध्रके जिस स्थानमें नादका लय होता है, यह वही स्थान है। इसके बाद साक्षात् चिच्छक्तिका आविर्भाव होता है। इसी शक्तिसे समस्त भुवन विवृत हो रहे हैं।

इस अवस्थाके आगे त्रिकोणस्वरूपा 'व्यापिका' है, वह बिन्दुके विलासस्वरूप वामादि शक्तित्रयसे संघटित है। तदनन्तर सर्वकारणभूता समनाशक्तिका आविर्भाव होता है। यह शिवाधिष्ठित है और समस्त ब्रह्माण्डोंकी भरण-शीला है। एतदारूढ़ शिव ही परम कारण और पञ्च-कृत्यकारी हैं। यह चिदानन्दरूपा पराशक्ति है; यहीं मनोराज्यका अन्त होता है। इसके आगे मन, काल, देश, तत्त्व, देवता तथा कार्य-कारणभाव सभी सदाके लिये तिरोहित हो जाते हैं। जो जपादि क्रियाके द्वारा नादके उत्थानका अभ्यास करते हैं, वे जानते हैं कि आज्ञाचक्र-पर्यन्त अर्थात् जहाँतक अक्षमाला या वर्णमालाका आवर्तन होता है, वहाँतक उच्चारण अथवा ऊर्ध्वचालनका काल एक मात्रासे न्यून नहीं हो सकता। बिन्दुमें वह अर्धमात्रामें पर्यवसित होता है। इसके बाद वह क्रमशः क्षीण होते-होते समनाभूमिमें एक क्षणके रूपमें परिणत होता है। इसके आगे मनके स्पन्दनशून्य हो जानेके कारण देश, काल नहीं रह जाते तथा समस्त मानसिक विक्षोभ या कल्पनाजालके उपशान्त होनेपर निर्विकल्पक निवृत्तिभाव होनेपर भी—देश, काल और निमित्तके अतीत तथा मनोभूमिके अगोचर होनेपर भी—वस्तुतः नितान्त निष्कल अवस्था नहीं है; क्योंकि इस अवस्थामें इसमें विशुद्ध चिद्रूपा एक कला शेष रहती है, जो निर्वाणकलारूपसे शास्त्रमें प्रसिद्ध है तथा योगिजन जिसे द्रष्टा या साक्षिचैतन्यके नामसे पुकारते हैं। सांख्यका कैवल्य इसी अवस्थाकी सूचना देता है; क्योंकि सांख्यकी प्रकृति पञ्चदशकलात्मिका है और उसका पुरुष षोडशी या निर्वाणकलाका स्वरूप है।

'पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्।'

इस कलासे ऊपर उठे बिना महाबिन्दु या परमात्म-स्वरूप शिवतत्त्वकी उपलब्धि नहीं हो सकती। सांख्यभूमिसे अग्रसर होनेपर वेदान्तकी साधना होती है—इस एक कलामात्रावशिष्ट निर्वाणभूमि या उन्मनाभूमिको पारकर महाबिन्दुरूप पूर्णाहंतामय अवस्थामें पदार्पण करना भी वही है। पूर्णाहंतास्वरूप शिवभावकी स्फूर्ति होनेपर जब इसका भी परिहार होता है—जब बिन्दुका क्रमशः क्षय होते-होते उन्मनी अवस्थाका अवसान होनेपर बिन्दु शून्य हो जाता है, तब पूर्णस्वरूप महाशक्तिका आविर्भाव होता है; अर्थात् महाबिन्दुके पूर्णरूपमें स्थित होनेपर उसमें पराशक्तिकी नित्य अभिव्यक्ति होती है। पक्षान्तरमें महाबिन्दुके रिक्त हो जानेपर परम शिवका आविर्भाव होता है। वस्तुतः शिव-शक्तिके विभिन्न न होनेके कारण तथा महाबिन्दुकी पूर्ण और रिक्त अवस्था भी नित्य-सिद्ध होनेके कारण शून्य और पूर्णत्वका आविर्भाव नित्य ही मानना होगा। जो रिक्त दिशा है, लौकिक दृष्टिसे वही अमावस्या है और जो पूर्ण दिशा है वही पूर्णिमा है। महाशक्तिके प्राधान्यको अङ्गीकार कर अमावस्याकी ओर जो उसकी स्फूर्ति होती है वही कालीरूपमें तथा जो पूर्णिमाकी ओर स्फूर्ति होती है वही षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्याके रूपसे साधक-समाजमें परिचित होती हैं। कालीकुल और श्रीकुलका यही गुप्त रहस्य है। मध्यपथमें तारा या तारिणी विद्या है। यहाँ उसकी आलोचना नहीं करनी है। हमने जो कुछ कहा है वह महाशक्तिका प्राधान्य

अङ्गीकार करके ही कहा है; परंतु प्रकाश या शिव-स्वरूपका प्राधान्य अङ्गीकार करनेपर इस अवस्थामें कुछ भी कहनेको नहीं रह जाता।

स-कल, निष्कल और मिश्र—शक्तिकी ये तीन अवस्थाएँ हैं, अतः शक्तिकी उपासना भी स्वभावतः इन तीन श्रेणियोंमें ही अन्तर्मुक्त हो जाती है। उपासनाके क्रमसे स-कलभावकी उपासना निकृष्ट है, मिश्रभावकी उपासना मध्यम है एवं निष्कल उपासना ही श्रेष्ठ है; परंतु हमलोग जिसे साधारणतया उपासना कहते हैं वह इन तीन श्रेणियोंमेंसे किसीके अन्तर्गत नहीं है; क्योंकि जबतक गुरुकी कृपादृष्टिसे कुण्डलिनी शक्तिका उद्बोधन तथा सुषुम्नाके मार्गमें प्रवेश नहीं हो जाता तबतक उपासनाका अधिकार नहीं उत्पन्न होता। मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त चक्रेश्वरीरूपमें शक्तिकी आराधना ही निकृष्ट उपासना है; परंतु जो साधक इन्द्रिय और प्राणकी गतिका अवरोध कर कुलपथमें प्रविष्ट नहीं हो सकता उसके लिये देवीकी अधम उपासना भी सम्भव नहीं है। साधक क्रमशः अधमभूमिसे यथाविधि साधना-द्वारा निर्मलचित्त होकर मध्यम भूमिकी उपासनाका अधिकारी होता है। तदनन्तर उत्तम अधिकार प्राप्तकर भगवतीकी अद्वैत उपासनासे सिद्धि-लाभ करता है। मनुष्य जबतक द्वन्द्वमय भेदराज्यमें वर्तमान रहता है, तबतक उसके लिये निम्नभूमिकी उपासना ही स्वाभाविक है। कर्म ही इसका रूप है। चतुरस्रसे वैन्दवचक्रपर्यन्त अथवा मूलाधारसे सहस्रदल-कमलपर्यन्त सदल आवरण देवतादिसहित समग्र देवीचक्रकी उपासना ही कर्मात्मक अपरा पूजा है। इस पूजा अर्थात् षट्चक्रके क्रियारूप अनुष्ठानका अवलम्बन कर अग्रसर न हो सकनेसे चित्तमें कदापि अभेदज्ञानका उदय नहीं हो सकता। स्वयं भी भगवतीकी अपरा पूजा किया करते थे, महाजनोंका सिद्धान्त है। इसीलिये ज्ञानीके लिये चक्रपूजा उपेक्षणीय नहीं है। साधक अपनी देहमें विभिन्न प्रकारके गणेश, ग्रह, नक्षत्र, राशि, योगिनी एवं पीठका विधिपूर्वक न्यास वा स्थापन कर सकते हैं, केवल इसीके प्रभावसे साक्षात् परमेश्वरतुल्य बल प्राप्त कर सकते है।*

निम्नभूमिकी उपासनाके प्रभावसे साधकका अधि[कार-] बल बढ़ जानेपर वह मध्यम भूमिमें उपनीत हो भेदाभेद अवस्थाको उपलब्ध करता है। तब [एक] ज्ञान और कर्मका आविर्भाव होता है और [क्र]मशः अद्वैतधाममें क्रमशः बाह्य चक्रादिका लय हो जाता है। इसके बाद जब ज्ञानमें कर्मकी परिसमाप्ति हो जाती है, तब अभेद या अद्वैतभूमिकी स्फूर्ति होती है और सा[धक] परापूजाका नित्य-अधिकार स्वभावतः ही प्राप्त कर लेते है। एकमात्र परमशिवकी स्फूर्ति या ब्रह्मज्ञान ही परा-पूजाका नामान्तर है। इस ज्ञान अथवा परमतत्त्व-विकासको लौकिक जगत्में कोई समझ नहीं सकता।

अधोमुख श्वेतवर्ण सहस्रदलकमल या अकुल कमलकी अन्तःकलिकामें वागभव नामक एक प्रसिद्ध त्रिकोण है। इस त्रिकोणसे परादिक्रमसे चार प्रकारके वाक् या शब्द उत्पन्न होनेके कारण इसका नाम वाग्भव है। इस त्रिकोणके मध्यमें विश्वगुरु परम शिवकी पादुका है। वह प्रकाश, विमर्श तथा इन दोनोंके सामरस्यभेदसे तीन प्रकारकी है। इस पादुकासे निरन्तर परमामृत निकलता रहता है—इस स्निग्ध अमृतमय चन्द्ररश्मिद्वारा समस्त विश्वका संजीवन, माधुर्यसम्पादन और तृप्ति होती है। यह पादुका समस्त जीवोंका आत्मस्वरूप है।

* जिन्होंने सत्य ही स्वदेहमें देवताओंका न्यास करना सीख लिया है, उनकी सामर्थ्यकी तुलना नहीं हो सकती। इस प्रकारका मनुष्य यदि न्यासरहित साधारण मनुष्यको प्रणाम कर ले तो उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।

इसके बाद शिवाद्वैतभावनारूप प्रसादको ग्रहण करनेसे समस्त तत्त्व विशुद्ध होकर विमल आनन्दका उदय होता है। तत्त्व-शुद्धि और आनन्दसंचारके पश्चात् हृदयाकाशमें जिस परम नादका उदय होता है, उसका चिन्तन करने-पर आद्याशक्तिके आनन्दमय स्वरूपकी उपलब्धि होती है। साधकके हृदयमें इस प्रकारके नादकी अभिव्यक्ति ही आन्तर जप या मानस जपके नामसे प्रसिद्ध है। चित्तके बाह्य प्रदेशसे लौटकर अन्तर्मुखमें एकाग्र होनेपर इसका अनुभव होता है। इससे अश्रु, पुलक, स्वेद, कम्प प्रभृति सात्त्विक विकारोंका उन्मेष होता है। इस आन्तर-जप या नादानुसंधानके समय इन्द्रियसंचार नहीं रहता, इसीलिये इसे बाह्य जप नहीं कहा जा सकता। बाह्य जप विकल्पका ही प्रकार-भेद है; परंतु आन्तर जपमें विकल्पका व्यापार शून्य हो जाता है। यही निष्कल चिन्तन अथवा ध्यानका स्वरूप है। वस्तुतः यह चित्तकी निरन्तर अन्तर्मुखताके सिवा और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारका चिन्तन तबतक उदित नहीं होता जबतक शुद्ध चैतन्यका संकोचभाव दूर नहीं हो जाता। पर चित्कला महा-शक्तिका उल्लास होनेपर स्वतः ही इस संकोचका नाश हो जाता है। तब पूर्णाहंता स्वयमेव विकसित हो जाती है। इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले शब्द, स्पर्श प्रभृतिके द्वारा आत्मदेवताकी जो पूजा होती है, उसे स्वाभाविक पूजा अथवा सहज उपासना कहकर महायज्ञरूपसे शास्त्रमें उसकी प्रशंसा की गयी है। विषयानुभवजन्य आनन्द महानन्दके साथ मिलनेपर जिस वैषम्यहीन अवस्थाका उदय होता है, वही भगवतीकी उत्तम उपासनाका प्रकृत तत्त्व है।

हमने अत्यन्त संक्षेपमें शक्ति-साधनाके साधारण तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ निवेदन किया है। द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत—ये त्रिविध उपासनाएँ शक्ति-साधनाके ही अन्तर्गत हैं। अतः समस्त देवताओंकी साधना तथा योग, कर्म प्रभृति सब इसके अन्तर्गत हैं। काली, तारा-प्रभृति-भेदसे साधनाके प्रकारभेद अप्रासङ्गिक समझकर यहाँ आलोचित नहीं हुए हैं। बीजतत्त्व और मन्त्र-विज्ञान, नादबिन्दुकलाका स्वरूपालोचन, मन्त्रोद्धार और मन्त्रचैतन्य प्रभृति क्रियाएँ, दीक्षा और गुरुतत्त्व, दीक्षा-तत्त्व, अध्वशुद्धि, भूत और चित्तकी शोधन-क्रिया, मातृका और पीठविचार, न्यास और प्राणप्रतिष्ठा—इस प्रकार अनेकों विषय शाक्त-साधनाकी विस्तृत आलोचना-सूचीके अन्तर्गत हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शक्ति-उपासनाके सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इन सब प्रासङ्गिक विषयोंका भी ज्ञान होना आवश्यक है।

मुक्तिदायिनी महाविद्या

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥

(दुर्गासप्तशती १। ५५-५६)

'जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भगवान् विष्णुकी महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक आकर्षणकर मोहमें डाल देती है। उसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है।'

शक्तितत्त्वका रहस्य

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

'शक्ति' शब्द बहुव्यापक होनेके कारण इसके रहस्यको समझनेकी मैं अपनेमें शक्ति नहीं देखता, तथापि अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार यत्किञ्चित् लिख रहा हूँ।

शक्तिके रूपमें ब्रह्मकी उपासना

शास्त्रोंमें 'शक्ति' शब्दके प्रसङ्गानुसार अलग-अलग अर्थ किये गये हैं। तान्त्रिक लोग इसीको पराशक्ति कहते हैं और इसीको विज्ञानानन्दघन ब्रह्म मानते हैं। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदिमें भी 'शक्ति' शब्दका प्रयोग देवी, पराशक्ति, ईश्वरी, मूलप्रकृति आदि नामोंसे विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्मके लिये भी किया गया है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्मका तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म एवं गुह्य होनेके कारण शास्त्रोंमें उसे नाना प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की गयी है। इसलिये 'शक्ति' नामसे ब्रह्मकी उपासना करनेसे भी परमात्माकी ही प्राप्ति होती है। एक ही परमात्म-तत्त्वकी निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार, देव, देवी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, राम, कृष्ण आदि अनेक नाम-रूपसे भक्तलोग उपासना करते हैं। रहस्यको जानकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार उपासना करनेवाले सभी भक्तोंको उसकी प्राप्ति हो सकती है। उस दयासागर प्रेममय सगुण-निर्गुणरूप परमेश्वरको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा समझकर श्रद्धा-पूर्वक निष्काम प्रेमसे उपासना करना ही उसके रहस्यको जानकर उपासना करना है, इसलिये श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उस विज्ञानानन्दस्वरूपा महाशक्ति देवीकी उपासना करनी चाहिये। वह निर्गुणस्वरूपा देवी जीवोंपर दया करके स्वयं ही सगुणभावको प्राप्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारकार्य कर... स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्व...
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मि...
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्व...
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनात...
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहवि...
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्प...
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्र...
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्ग...

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृति० २ । ६६ । ७-...

'तुम्हीं विश्वजननी मूलप्रकृति ईश्वरी हो, ... सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विरा... रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन ... हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण... तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम पर... स्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परमतेजः... और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण क... हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं पर... हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयर... हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली ... सर्वमङ्गलोंकी भी मङ्गल हो।'

उस ब्रह्मरूप चेतनशक्तिके दो स्वरूप हैं—... निर्गुण और दूसरा सगुण। सगुणके भी दो भेद हैं— एक निराकार और दूसरा साकार। इसीसे सारे संसार... उत्पत्ति होती है। उपनिषदोंमें इसीको पराशक्तिके नाम... कहा गया है।

तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः सम... जीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। ...

शाक्तमजीजनत् । अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् । सैषा पराशक्तिः । (बह्वृचोपनिषद्)

'उस पराशक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए । उसीसे सब मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ और बाजा बजानेवाले किन्नर सब ओरसे उत्पन्न हुए । समस्त भोग्य पदार्थ और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम, मनुष्यादि प्राणिमात्र उसी पराशक्तिसे उत्पन्न हुए । ऐसी वह पराशक्ति है ।'

ऋग्वेदमें भगवती कहती है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा-
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभ-
र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥
(ऋग्वेद०अष्टक ८ । ७ । ११)

अर्थात् 'मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवोंके रूपमें विचरती हूँ । वैसे ही मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंके रूपको धारण करती हूँ ।'

ब्रह्मसूत्रमें भी कहा है—

'सर्वोपेता तद्दर्शनात्' (द्वि० अ० प्रथमपाद)

'वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्यसे युक्त है; क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है ।'

यहाँ भी ब्रह्मका वाचक स्त्रीलिङ्ग शब्द आया है । ब्रह्मकी व्याख्या शास्त्रोंमें स्त्रीलिङ्ग, पुँल्लिङ्ग और नपुंसक-लिङ्ग आदि सभी लिङ्गोंमें की गयी है । इसलिये महाशक्तिके नामसे भी ब्रह्मकी उपासना की जा सकती है । बंगालमें श्रीरामकृष्ण परमहंसने माँ, भगवती, शक्तिके रूपमें ब्रह्मकी उपासना की थी । वे परमेश्वरको माँ, तारा, काली आदि नामोंसे पुकारा करते थे । और भी बहुत-से महात्मा पुरुषोंने स्त्रीवाचक नामोंसे विज्ञानानन्दघन परमात्माकी उपासना की है । ब्रह्मकी महाशक्तिके रूपमें श्रद्धा, प्रेम और निष्कामभावसे उपासना करनेसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है ।

शक्ति और शक्तिमान्‌की उपासना

बहुत-से सज्जन इसे भगवान्‌की ह्लादिनी शक्ति मानते हैं । महेश्वरी, जगदीश्वरी, परमेश्वरी भी इसीको कहते हैं । लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, सीता आदि सभी इस शक्तिके ही रूप हैं । माया, महामाया, मूल-प्रकृति, विद्या, अविद्या आदि भी इसीके रूप हैं । परमेश्वर शक्तिमान् है और भगवती परमेश्वरी उसकी शक्ति है । शक्तिमान्‌से शक्ति अलग होनेपर भी अलग नहीं समझी जाती । जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे भिन्न नहीं है । यह सारा संसार शक्ति और शक्तिमान्‌से परिपूर्ण है और उसीसे इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं । इस प्रकार समझकर वे लोग शक्तिमान् और शक्ति-युगलकी उपासना करते हैं । प्रेमस्वरूपा भगवती ही भगवान्‌को सुगमतासे मिला सकती है । इस प्रकार समझकर कोई-कोई केवल भगवतीकी ही उपासना करते हैं । इतिहास-पुराणादिमें सब प्रकारके उपासकोंके लिये प्रमाण भी मिलते हैं ।

इस महाशक्तिरूपा जगज्जननीकी उपासना लोग नाना प्रकारसे करते हैं । कोई तो इस महेश्वरीको ईश्वरसे भिन्न समझते हैं और कोई अभिन्न मानते हैं । वास्तवमें तत्त्वको समझ लेना चाहिये, फिर चाहे जिस प्रकार उपासना करे, कोई हानि नहीं है । तत्त्वको समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे सभी उस एक प्रेमास्पद परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं ।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी उपासना

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि शास्त्रोंमें इस गुणमयी विद्या-अविद्यारूपा मायाशक्तिको प्रकृति, मूल-प्रकृति, महामाया, योगमाया आदि अनेक नामोंसे कहा है । उस मायाशक्तिकी व्यक्त और अव्यक्त अर्थात् साम्यावस्था तथा विकृतावस्था—दो अवस्थाएँ हैं । उसे कार्य, कारण एवं व्याकृत, अव्याकृत भी कहते हैं ।

तेईस तत्त्वोंके विस्तारवाला यह सारा संसार तो उसका व्यक्त स्वरूप है। जिससे सारा संसार उत्पन्न होता है और जिसमें यह लीन हो जाता है, वह उसका अव्यक्त स्वरूप है।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
(गीता ८। १८)

अर्थात् 'सम्पूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेश-कालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लय होते हैं।'

संसारकी उत्पत्तिका कारण कोई परमात्माको और कोई प्रकृतिको तथा कोई प्रकृति और परमात्मा दोनोंको बतलाते हैं। विचार करके देखनेसे सभीका कहना ठीक है। जहाँ संसारकी रचयिता प्रकृति है वहाँ समझना चाहिये कि पुरुषके सकाशसे ही गुणमयी प्रकृति संसारको रचती है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥
(गीता ९। १०)

अर्थात् 'हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे यह मेरी माया चराचरसहित सर्व जगत्‌को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतुसे ही यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है।'

जहाँ संसारका रचयिता परमेश्वर है वहाँ सृष्टिके रचनेमें प्रकृति द्वार है—

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥
(गीता ९। ८)

अर्थात् 'अपनी त्रिगुणमयी मायाको अङ्गीकार करके स्वभावके वशसे परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदायको बारम्बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ।'

वास्तवमें प्रकृति और पुरुष दोनोंके संयोगसे चराचर संसारकी उत्पत्ति होती है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(गीता १४। [illegible])

'हे अर्जुन! मेरी महद्ब्रह्मरूप प्रकृति [illegible] त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है अर्थात् [illegible]धानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतनरूप बीज स्थापन करता हूँ। उस जड-चेतनके संयोगसे [illegible] भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

चूँकि विज्ञानानन्दघन, गुणातीत परमात्मा निर्[illegible] होनेके कारण उसमें क्रियाका अभाव है और त्रिगुण[illegible] माया जड होनेके कारण उसमें भी क्रियाका अभाव [illegible] इसलिये परमात्माके सकाशसे जब प्रकृतिमें स्पन्दन [illegible] है तभी संसारकी उत्पत्ति होती है। अतएव प्र[illegible] और परमात्माके संयोगसे ही संसारकी उत्पत्ति हो[illegible] अन्यथा नहीं। महाप्रलयमें कार्यसहित तीनों गुण का[illegible] लय हो जाते हैं, तब उस प्रकृतिकी अव्यक्त[illegible] साम्यावस्था हो जाती है। उस समय सारे जीव [illegible] कर्म और वासनासहित उस मूल प्रकृतिमें अव्यक्त[illegible] स्थित रहते हैं। प्रलयकालकी अवधि समाप्त होने[illegible] उस मायाशक्तिमें ईश्वरके सकाशसे स्फूर्ति होती है [illegible] विकृत अवस्थाको प्राप्त हुई प्रकृति तेईस तत्त्वोंके [illegible] परिणत हो जाती है, तब उसे व्यक्त कहते हैं। [illegible] ईश्वरके सकाशसे ही वह गुण, कर्म और वास[illegible] अनुसार फल भोगनेके लिये चराचर जगत्‌को रचती है।

त्रिगुणमयी प्रकृति और परमात्माका परस्पर आ[illegible] और आधार एवं व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। प्रकृति आ[illegible] और परमात्मा आधार है। प्रकृति व्याप्य और पर[illegible] व्यापक है। नित्य चेतन, विज्ञानानन्दघन परमा[illegible] किसी एक अंशमें चराचर जगत्‌के सहित प्रकृति [illegible]

जैसे तेज, जल, पृथिवी आदिके सहित वायु आकाशके आधारपर है, वैसे ही यह परमात्माके आधारपर है। जैसे बादल आकाशसे व्याप्त है, वैसे ही परमात्मासे प्रकृतिसहित यह सारा संसार व्याप्त है—

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥
(गीता ९। ६)

अर्थात् 'जैसे आकाशसे उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पत्तिवाले होनेसे सम्पूर्ण भूत मेरेमें स्थित हैं—ऐसे जान।'

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(गीता १०। ४२)

'अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगमायाके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
(ईश० १)

अर्थात् 'त्रिगुणमयी मायामें स्थित यह सारा चराचर जगत् ईश्वरसे व्याप्त है।'

किंतु उस त्रिगुणमयी मायासे वह लिपायमान नहीं होता; क्योंकि विज्ञानानन्दघन परमात्मा गुणातीत, केवल और सबका साक्षी है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
(श्वेता० ६। ११)

अर्थात् 'जो देव सब भूतोंमें छिपा हुआ, सर्वव्यापक, सर्वभूतोंका अन्तरात्मा (अन्तर्यामी आत्मा), कर्मोंका अधिष्ठाता, सब भूतोंका आश्रय, सबका साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे परे है, वह एक है।'

श० उ० अं० १५-१६—

इस प्रकार गुणोंसे रहित परमात्माको अच्छी प्रकार जानकर मनुष्य इस संसारके सारे दुःखों और क्लेशोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है। इसके जाननेके लिये सबसे सहज उपाय उस परमेश्वरकी अनन्यशरण है। इसलिये उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द परमात्माकी सर्व प्रकारसे शरण होना चाहिये।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

'क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अत्यन्त अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो पुरुष मुझे ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

विद्या-अविद्यारूप त्रिगुणमयी यह महामाया बड़ी विचित्र है। इसे कोई अनादि, अनन्त और कोई अनादि, सान्त मानते हैं तथा कोई सत् और कोई असत् कहते हैं एवं कोई ब्रह्मसे अभिन्न और कोई ब्रह्मसे भिन्न बतलाते हैं। वस्तुतः यह माया बड़ी विलक्षण है, इसलिये इसे अनिर्वचनीय कहा गया है।

अविद्या—दुराचार, दुर्गुणरूप आसुरी, राक्षसी, मोहिनी प्रकृति, महत्तत्त्वका कार्यरूप यह सारा दृश्यवर्ग इसीका विस्तार है।

विद्या—भक्ति, पराभक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग, योगमाया, समष्टि बुद्धि, शुद्ध बुद्धि, सूक्ष्म बुद्धि, सदाचार, सद्गुणरूप दैवीसम्पदा—यह सब इसीका विस्तार है।

जैसे ईंधनको भस्म करके अग्नि स्वतः शान्त हो जाती है, वैसे ही अविद्याका नाश करके विद्या भी स्वतः शान्त हो जाती है, ऐसे मानकर यदि मायाको अनादि-सान्त बतलाया जाय तो यह दोष आता है कि यह माया आजसे पहले ही सान्त हो जानी चाहिये थी। यदि कहें कि भविष्यमें सान्त होनेवाली है तो फिर इससे छूटनेके

लिये प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यकता है ? इसके सान्त होनेपर सारे जीव अपने-आप ही मुक्त हो जायँगे ? फिर भगवान् किसलिये कहते हैं कि यह त्रिगुणमयी मेरी माया तरनेमें बड़ी दुस्तर है, किंतु जो मेरी शरण हो जाते हैं वे इस मायाको तर जाते हैं।

यदि इस मायाको अनादि, अनन्त बतलाया जाय तो इसका सम्बन्ध भी अनादि-अनन्त होना चाहिये। सम्बन्धको अनादि-अनन्त मान लेनेसे जीवका कभी छुटकारा हो ही नहीं सकता और भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके अन्तरको तत्त्वसे समझ लेनेपर जीव मुक्त हो जाता है—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥
(गीता १३। ३४)

अर्थात् 'इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको* तथा विकारसहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।'

इसलिये इस मायाको अनादि, अनन्त भी नहीं माना जा सकता। इसे न तो सत् ही कहा जा सकता है और न असत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कहा जा सकता कि इसका विकाररूप यह सारा संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं बतलाया जा सकता कि यह दृश्य जडवर्ग सर्वथा परिवर्तनशील होनेके कारण इसकी नित्य सम-स्थिति नहीं देखी जाती।

इस मायाको परमेश्वरसे अभिन्न भी नहीं कह सकते; क्योंकि माया अर्थात् प्रकृति जड, दृश्य, दुःखरूप विकारी है और परमात्मा चेतन, द्रष्टा, नित्य, आनन्दरूप और निर्विकार हैं। दोनों अनादि होनेपर भी परस्पर इनका बड़ा भारी अन्तर है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
(श्वेता० ४। १०)

'त्रिगुणमयी मायाको तो प्रकृति (तेईस तत्त्व-जड़-वर्गका कारण) तथा मायापतिको महेश्वर जानना चाहिये।'

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते
विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥
(श्वेता० ५। १)

'जिस सर्वव्यापी, अनन्त, अविनाशी, परब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मामें विद्या, अविद्या दोनों स्थित हैं। अविद्या क्षर है, विद्या अमृत है (क्योंकि विद्यासे अविद्याका नाश होता है) तथा विद्या और अविद्यापर शासन करनेवाला परमात्मा दोनोंसे ही अलग है।'

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(गीता १५। १८)

'चूँकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक और वेदमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।'

इसलिये इस मायाको परमेश्वरसे अभिन्न नहीं कह सकते। वेद और शास्त्रोंमें इसे ब्रह्मका रूप बतलाया है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'
'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७। १९)
'सदसच्चाहमर्जुन' (गीता ९। १९)

तथा माया ईश्वरकी शक्ति है और शक्तिमान्से शक्ति अभिन्न होती है। जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे अभिन्न है। इसलिये परमात्मासे इसे भिन्न भी नहीं कह सकते।

चाहे जैसे हो, तत्त्वको समझकर उस परमात्माकी उपासना करनी चाहिये। तत्त्वको समझकर की हुई उपासना ही सर्वोत्तम है। जो उस परमेश्वरको तत्त्वसे

* क्षेत्रको जड, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके भेदको जानना है।

*

समझ जाता है, वह उसे एक क्षण भी नहीं भूल सकता; क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, इस प्रकार समझनेवाला परमात्माको कैसे भूल सकता है ? अथवा जो परमात्माको सारे संसारसे उत्तम समझता है, वह भी परमात्माको छोड़कर दूसरी वस्तुको कैसे भज सकता है ? यदि भजता है तो परमात्माके तत्त्वको नहीं जानता; क्योंकि यह नियम है कि मनुष्य जिसे उत्तम समझता है उसीको भजता है अर्थात् ग्रहण करता है।

मान लीजिये एक पहाड़ है। उसमें लोहे, ताँबे, शीशे और सोनेकी चार खानें हैं। किसी ठेकेदारने परिमित समयके लिये उन खानोंको ठेकेपर ले लिया और वह उनसे माल निकालना चाहता है तथा चारों धातुओंमेंसे किसीको भी निकाले, समय लगभग बराबर ही लगता है। उन चारोंमें सोना सर्वोत्तम है। इन चारोंकी कीमतको जाननेवाला ठेकेदार सोनेके रहते हुए उसे छोड़कर क्या लोहा, ताँबा, शीशा निकालनेके लिये अपना समय लगा सकता है ? कभी नहीं। एव प्रकारसे वह तो केवल सुवर्ण ही निकालेगा। वैसे ही माया और परमेश्वरके तत्त्वको जाननेवाला परमेश्वरको छोड़कर नाशवान् भोग और अर्थके लिये अपने अमूल्य समयको कभी नहीं लगा सकता। वह सब प्रकारसे निरन्तर परमात्माको ही भजेगा।

गीतामें भी कहा है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(१५।१९)

अर्थात् 'हे अर्जुन! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।'

इस प्रकार ईश्वरकी अनन्य भक्ति करनेसे मनुष्य परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है। इसलिये श्रद्धापूर्वक परमेश्वरका भजन, निष्काम प्रेमभावसे नित्य-निरन्तर परमेश्वरका भजन, ध्यान करनेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्नशील रहना चाहिये।

परमाराध्या परमेश्वरी

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मां देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्॥
(ऋग्वेद० १०।१२५।३)

'मैं ही निखिल ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हूँ, उपासकगणको धनादि इष्टफल देती हूँ। मैं सर्वदा सबका ईक्षण (दृष्टिपात) करती हूँ, उपास्य देवताओंमें मैं ही प्रधान हूँ, मैं ही सर्वत्र सब जीवदेहोंमें विराजमान हूँ, अनन्त ब्रह्माण्डवासी देवतागण जहाँ कहीं रहकर जो कुछ करते हैं, वे सब मेरी ही आराधना करते हैं।'

शक्तितत्त्व-मीमांसा

(१)

(स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती महाराज (शास्त्री स्वामी) एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम् ।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥
षोडश्यम्बारसास्वादप्रसक्तकरपात्रिणे ।
षोडशानन्दनाथाय नतोऽस्मि गुरुमूर्तये ॥

प्रकाशात्मा सदाशिव, विमर्शात्मिका महाशक्ति तथा उभयसामरस्यभावापन्न शुक्ल-रक्तप्रभासंवलितमूर्ति मन-वाणी-तर्कादिसे परे त्रिपुर महासुन्दरीके अलौकिक तेजःपुञ्जके स्वरूप परमाराध्य श्रीकरपात्रस्वामिचरणों—श्रीगुरुपादारविन्दयुगलकी हम वन्दना करते हैं । चन्द्रमाकी पञ्चदशतिथिरूप पञ्चदशकलाओं—लौकिक नित्याओंसे अतीत पञ्चदशकलाओंकी आधारभूता अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-जननी षोडशीपराम्बाके अलौकिक रसास्वादमें संलग्न परमकुशल श्रीषोडशानन्दनाथ करपात्री स्वामीस्वरूप परमपावन गुरुमूर्तिके प्रति हम नत-मस्तक हैं ।

शक्ति अनन्त हैं, वैसे तत्त्व भी अनन्त हैं । तत् और त्वं पदार्थके शोधनमें तत्त्वका स्वार्थ निहित है; परंतु यह तत्त्वशोधन गम्भीर अद्वैत वेदान्तका विषय है, इस कारण उस अंशका विवेचन यहाँ शक्य नहीं है, किंतु शक्तिको जाने अथवा विना जाने भी समस्त जगत् शक्तिका ही उपासक है । जैसे ऊपर संकेत किया गया कि एक दार्शनिक शक्ति-तत्त्वका, वैयाकरण शब्द-शक्तिका, साहित्यिक तथा कवि अर्थशक्तिका, वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें भौतिक शक्तिका तथा राज-नीतिज्ञ अपनी राजनीतिक शक्तिका विवेचन करता है, इसी प्रकार कोई व्यापारी अथवा विश्वके या जीवनके किसी भी विभाग या क्षेत्रमें कार्यरत व्यक्ति भी वस्तुतः किसी शक्तिकी ही उपासना करते हैं ।

भौतिक वैज्ञानिक भौतिक शक्तिको ही जग[त्का] प्रमुख कारण मानते हैं । इनर्जी (Energy) [के] विविध मात्रामें फैली हुई तरङ्गें ही कहीं रंग (Colou[r]) कहीं स्थूलता (Solidity) आदिरूपमें परिणत हो[कर] इस विविध वैचित्र्यसम्पन्न विश्वको जन्म देती [हैं] । प्रकृतिवादी दार्शनिक (Naturalists) भी इ[सी] सिद्धान्तके पोषक हैं । यद्यपि (Einstein) आंईन्सटाईन[का] सिद्धान्त अन्तिम तत्त्व 'शक्ति' (Energy)को मानता है तथापि इन सबमें शक्ति केवल भौतिक अ[तः] अचेतन है । यदि कोई चेतना नामकी वस्तु है तो [वह] केवल भौतिक शक्तिकी ही उपज है, उससे भिन्न नहीं । फ्रांसके महान् दार्शनिक हेनरी बर्गसां (Hen[ri] Bergson)के मन्तव्यमें समस्त विश्वकी संचालिका [एक] शक्ति है, जिसे वह इलाँ विताल (Elan Vit[al]) परमशक्ति (Vital force) ही मानता है; परंतु [इन] सबमें उपास्यता, पूज्यत्व नामकी कोई वस्तु नहीं है ।

पाश्चात्त्य अथवा प्राच्य, धार्मिक अथवा सांस्कृ[तिक] धाराओंमें भी शक्तिको परम शक्ति, परमेश्वर अ[थवा] उच्चतम उपास्य नहीं माना गया । ईसाई-मतमें मेरि[-] सेंट मेरी-सेंट एग्नीज (St. Marry St Agnes) आदि कुछ देवियोंका पूजन अवश्य होता है, परंतु [वह] केवल परमाराध्य ईशपुत्र ईसाके सम्बन्धसे । पर आरा[ध्य] ईसा—क्राइष्ट अथवा उनके भी प्रशस् फादर—(Graclous father) परम दयालु पिता, जिन्हें गॉ[ड] (God) परमेश्वर और उनके पुत्रके नामसे पुका[रा] जाता है—वे ही परमाराध्य हैं । इस्लाममें [भी] बीबी साकिना, गरजा (गिरिजा) आदि कुछ [दे]

परमाराध्य तो अल्लाह तथा उनके रसूल अल्लाह पैगम्बर हजरत मुहम्मद ही हैं ।

इस कारण हिंदूधर्मको छोड़कर किसी मत-मतान्तरमें परमात्मा अथवा परमेश्वरकी स्त्री-रूपमें आराधनाका विधान नहीं दीखता। इस्लाम और ईसाई-मतोंमें विश्वकी प्रथम मानवी मनुष्य-जातिकी प्रथम माता हौवा अथवा ईव (Eve),सेटन (Satan) शैतानकी धमकीके आगे झुक गयी और विज्ञानवृक्ष (Tree of Knowledge) के फलको उसने स्वयं भी खाया और बाबा आदमको भी खिलाया, जिसके फलस्वरूप गॉडने उन्हें अदनके बगीचेसे बाहर निकाल दिया और आजतक सभी मानव-जाति उस फलको भोग रही है। इस्लाममें भी ऐसी ही धारणा है। इस कारण इन दोनों विचारधाराओंमें स्त्रीका स्थान बहुत नीचा है । महान् कवि शेक्सपियरने दुर्बलताको ही वोमन (स्त्री)का नाम कहा है—Frailty thy name is woman) 'निर्बलता ! तेरा नाम स्त्री है ।'

इससे सर्वथा विपरीत हिंदूधर्मने महिलाको शक्ति माना है। यहाँतक कि परमब्रह्म सदाशिव भी शक्तिसे युक्त होकर ही विश्वादि रूपोंमें फैल सकते हैं अन्यथा उसके बिना जीवनस्पन्दसे रहित केवल 'शव' रह जाते हैं। अतः परब्रह्मका चिन्तन पुरुषरूपमें, स्त्रीरूपमें, अथवा निष्कल सच्चिदानन्द लक्षणरूप अथवा सचराचर विग्रहरूपमें किया जा सकता है। शक्ति और शक्तिमान्का परस्पर अभेद सम्बन्ध है। अग्निकी दाहकत्व-प्रकाशकत्व शक्ति कभी भी अग्निसे भिन्न नहीं रहती, उसका परिज्ञान भी परिणामसे ही होता है। अग्नि जलते ही प्रकाश हो जाता है, अन्धकार मिट जाता है, लकड़ी आदि पदार्थ जल जाते हैं। यह प्रकाशकत्व-दाहकत्व यदि अग्निमें न हो तो वह नष्ट हो जायगा अथवा अग्नि ही नहीं कहलायगा । ऐसे ही सब पदार्थोंमें उनकी सहजशक्तिकी विद्यमानता अनिवार्य है। बीजमें अङ्कुर रूपसे फूटनेकी शक्ति है। विकासवाद इसीपर आधारित है। इस 'शक्ति'के अनन्त रूप हैं। एक परमाणुसे लेकर अनन्त ब्रह्माण्डोंमें यह शक्ति सर्वथा ओत-प्रोत है। सर्वथा शक्ति गतिशून्य होनेसे वस्तु जड़ अथवा अचल कहलाती है। परंतु उसी अचलको चलायमान करनेपर शक्ति कहलाती है। वैसे ही गतिशून्यको गतिशील और गतिशीलकी गतिको रोक देना भी शक्तिका कार्य है। पर यह सब रूप अचेतन अर्थात् भौतिक शक्तिमें भी हो सकते हैं। चित्-शक्ति इससे सर्वथा विलक्षण है। इसीलिये भौतिकवादी जहाँ अपना दृष्टान्त एक यन्त्रके ज्ञानशून्य स्वभाव और संचलनमें मानता है, वहींपर चैतन्यवादी चेतन यन्त्र-संचालनके उद्देश्यमें मानता है। एक घड़ीका निर्माता घड़ीके सभी कलपुर्जोंको इस रूपसे व्यवस्थित करता है कि प्रत्येक कलपुर्जा अपने कर्तव्यको करता हुआ, दूसरे कलपुर्जोंकी हलचलमें पूरक हो, बाधक न हो और फिर सम्पूर्ण घड़ी-यन्त्रके सभी पुर्जे अपने उद्देश्यको निभाते, अपने साथी कलपुर्जोंके पूरक होकर सम्पूर्णके उद्देश्यमें योगदान करें। यह उद्देश्य ज्ञानपूर्वक हलचल ही चेतन शक्तिका स्वरूप है। इसीको—'चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका' कही गयी है। इस दृष्टिकोणसे भी चेतन और जड दोनों अपनी-अपनी शक्तिपर आश्रित हैं।

शक्ति-तारतम्य और उद्देश्य-तारतम्य (Grades of reality and Grades of Utility) ही उपासनाका आधार है। चेतनतत्त्व उसका कूटस्थ है। इस प्रकार अल्पशक्ति महाशक्तिका आराधन कर महत्ताको प्राप्त कर सकती है, परंतु वस्तुतः उपाधिभेदोंको छोड़कर शक्ति-शक्तिमें कोई भेद न रहनेसे एक विराट् शक्ति अथवा अनन्त शक्ति ही सभी शाक्त दार्शनिकोंका अन्तिम आदर्श है। उसीको पूर्ण आदर्श (Supreme Ideals) अथवा (Absolute) शुद्ध आदि नामोंसे पुकारा गया है। विराट्

हिरण्यगर्भ अथवा अव्याकृत इसी सर्वव्यापी महाशक्तिके विभिन्नरूप अथवा अङ्ग हैं।

समस्त पूर्णसत्ताका प्रमाण अनन्त ज्ञान है। 'अस्ति' का प्रमाण 'भाति' ही है। कोई भी जड पदार्थ अपनी अथवा दूसरेकी सत्ताको जान नहीं सकता, अतः उसके अस्तित्वका प्रमाण भी चेतन ही है। इस कारण सत्के साथ चित्का सहकार अनिवार्य है। इस अनन्त-शक्तिमें उद्देश्यज्ञान ही एकमात्र शक्तिका चरमफल है और यही उपासनाका प्रेरक है। लोक, परलोक अथवा आत्मतृप्ति, आप्तकाम, पूर्णकाम तथा परमनिष्काम इस उपासनाके संचालक उद्देश्य हैं। प्राणिमात्र ज्ञाताज्ञात-रूपमें इस उपासनामें संलग्न देवाधिपति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मानव तथा मानवसे निम्नकोटिके जीव भी आत्मपूर्तिके लिये अपने-अपने अभिलषितकी पूर्तिके लिये प्रयत्नशील हैं। वही उनकी उपासना तथा अभिलषित इष्ट है। मानवमें भी शक्तिके आधिदैविक रूपको वेद-शास्त्रोंसे जानकर विधिपूर्वक उपासना किसी भाग्य-शालीका ही सौभाग्य हो सकता है। गीता कहती है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

सहस्रों मनुष्योंमें कोई एक मनुष्य सफलताके लिये प्रयत्न करता है और उन प्रयत्नशील व्यक्तियोंमें कोई एक भाग्यशाली मुझ परब्रह्मको यथार्थरूपमें जान पाता है।

इस प्रकार पुरुषरूपमें परब्रह्मकी उपासना करने-वाला उसे परमेश्वर, परमपिता, भगवान्, गॉड, जेहोवा, खुदा आदि नामोंसे पुकारता है। स्त्रीरूपमें उपासना करनेवाला भगवती, शक्ति, माता आदि नामोंसे व्यवहार करता है। भगवान्‌के समान भगवती भी अनन्त-अनन्त रूपिणी है। वैज्ञानिककी जड़शक्तिसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है। इसकी उपासनाके भी अनन्त भेद हैं। उपासककी भावनाके अनुरूप बौद्ध, जैन सभी भारतीय वेदबाह्यमत भी तारादि शक्तियोंका विधान करते। हिंदूधर्ममें वैदिक तथा तान्त्रिक दोनों मार्गोंसे उपासना सकती है। दशमहाविद्याएँ सभी सामान्य मनोरथ-सिद्धि परमार्थ-तत्त्व-प्राप्ति-पर्यन्त उपासनाका विधान करती है।

शक्ति-उपासनामें 'दक्षिण' और 'वाम' दो मार्ग मुख्य माने जाते हैं। लौकिक सुखोंकी प्राप्ति, अभीष्ट-सिद्धि तथा दुःख-निवृत्तिके लिये कौल तन्त्रोंका विधान किया गया है। इनमें प्रायः वाममार्गका अवलम्बन और पञ्चमकारका प्रयोग किया जाता है किंतु इसके विपरीत दक्षिण अथवा वैदिक मार्ग निषिद्ध वस्तुका उपयोग नहीं करता। सौन्दर्यलहरीमें आद्य भगवान् शंकराचार्य महाराज इस मार्गको प्रशस्त एवं सुगम मार्ग बताकर इसकी प्रशंसा करते हैं—

चतुष्षष्ट्यातन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्॥

भगवान् पशुपति महादेवने तत्तत्कामनाप्रद चतुः-षष्टि तन्त्रोंसे जगत्का अतिसंधान करके अन्तमें आपके स्वतन्त्र तन्त्रका अवतरण किया। यह ६५ वाँ तन्त्र जगदीश्वरी पराम्बाका अलौकिक तन्त्र सभी साधकोंके अभ्युदय-निःश्रेयसका एकमात्र साधन बना। यह सर्वथा अलौकिक, वेद और लोकमें अत्यन्त गोपनीय तन्त्र है श्रीविद्या है, जिसमें श्रीचक्रका अनुसंधान और बाह्य आभ्यन्तर उपासनाका प्रावधान किया गया है।

इसके अनुसार परमशिव प्रकाशात्मा अद्वय हैं, उनकी सहज स्फुरता विमर्शशक्ति बालार्कारुण-वर्णवाली महाशक्ति ललिताम्बा महाकामेश्वरसे सर्वथा सामरस्य भावापन्न जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहृतिकी परम कारण है। इस महाशक्तिकी अभिव्यक्ति श्रीयन्त्र अथवा श्रीचक्रमें दिखायी गयी है। यह श्रीचक्र समस्त विश्वके रूपमें तथा साधकके शरीरमें अभिव्यक्त है। श्रीचक्रका बाह्य

इस प्रकार है—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः॥

सम्मुख कोणवाले पञ्चत्रिकोणोंको पञ्चशक्ति-चक्र कहा गया है, मध्यकोण और बिन्दुकी दूसरी चार शिव त्रिकोणोंको मिलाकर कुल नव चक्रोंमें शिवशक्ति-सामरस्यरूप श्रीचक्र है। इसमें बिन्दुरूप परशिव और त्रिकोणरूपिणी शक्ति है। इसीका ऐक्यानुसंधान वास्तविक उपासना है। इसका अन्तिम फल शिवशक्ति-सायुज्यप्राप्ति है।

यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शंकरः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी॥

इस प्रकार श्रीविद्याका उपासक पुनर्जन्ममें नहीं आता। आचार्य शंकरने श्रीविद्योपासकको—'चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः' कहकर मृत्यु-पाशसे सर्वथा निर्मुक्त परानन्दरसका उपभोक्ता शिव कहा है। शक्तितत्त्व ही सृष्टि-स्थिति-संहारका एकमात्र कारण है, यह दर्शन और विज्ञान दोनोंको स्वीकार है और मानवके लिये परमपद पूर्णत्व—(Absolute Idea) 'एबसोल्यूट आइडिया' पूर्णज्ञानका साधन माना गया है। भगवान् श्रीकृष्णकी भाषामें—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

इसीकी शरणमें सम्पूर्णभावसे जानेपर ही पराशान्ति तथा शाश्वत शान्तिमय स्थान (Eternal peace) की प्राप्ति होगी।

---

(२)

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्दजी सरस्वती)

श्रुति-स्मृतियोंमें ब्रह्म और माया (शिव और शक्ति)-की जहाँ एकरूपता सिद्ध है, वहाँ दोनोंकी विलक्षणता भी सिद्ध है। लक्षणसाम्यसे वस्तु-साम्यके कारण ब्रह्म एवं मायाकी एकरूपता मान्य है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** (तैत्ति० २।१) आदि स्थलोंमें ब्रह्मसे और **'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।'** (देव्युपनिषद्) आदि स्थलोंमें माया-शक्तिसे प्रपञ्चोत्पत्त्यादिका निरूपण है। इस तरह लक्षणसाम्यके कारण शिव और शक्तिकी एकरूपता मान्य है। **'बहु स्यां प्रजायेय'** (छान्दोग्योपनिषद् ६।२।३); **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (निरालम्बो०) आदि श्रुतियाँ ब्रह्ममें बहुभवनसामर्थ्य और उसकी बहुरूपताका वर्णन कर शिवतत्त्वकी उपादान-कारणताको सिद्ध करती हैं। छान्दोग्यश्रुति मृद्विज्ञानसे घटादि-विज्ञानको दृष्टान्तरूपसे प्रस्तुतकर 'ब्रह्मविज्ञानसे सर्वविज्ञान'तक की प्रतिज्ञा करती है। महर्षि बादरायणविरचित ब्रह्मसूत्रोंसे भी यही रहस्य विदित होता है—**'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'** (ब्रह्मसूत्र १।४।२३) **'तदैक्षत'** (छान्दो० ६।२।३) **'सोऽकामयत'** (बृह० १।२।४।), **'स ईक्षाञ्चक्रे'** (प्रश्नो० ६।३) आदि उपनिषद्-वचन चेतन परब्रह्मको ही जगत्का निमित्तकारण सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार 'शिव' सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक, स्थावर-जङ्गमात्मक या क्रिया-कारण-फलात्मक जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारण सिद्ध होता है—**'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेता० ४।१०)के अनुसार मायाशक्तिको उपादान माने तो **'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः'** (भगवद्गीता ९।१०) **'इन्द्रो मायाभिः'** (बृह० २।५।१९) के अनुसार उसीको निमित्त मान सकते हैं। इस तरह माया-शक्ति भी जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण सिद्ध होती है।

ऐसी स्थितिमें मायानामक शक्तिको परिणामी अभिन्न निमित्तोपादान और शिवको विवर्ती अभिन्न निमित्तोपादान-

कारण स्वीकार करनेपर सृष्टिपरक वचनोंकी शाक्त और शाम्भव उभय उपासनापद्धति[1]की संगति सध जाती है। वेदान्तमें शक्तिकी शिवरूपता 'बाधदृष्टि'[2]से और शिवकी सर्वरूपता तथा शक्तिरूपता 'अध्यास-दृष्टि'से है अथवा सर्व-सर्वात्मामें, व्याप्य-व्यापकमें, स्वतन्त्र-अस्वतन्त्रमें अभेदसम्बन्धकी दृष्टि[3]से शिव और शक्ति (भगवत्तत्त्व और भगवती)में साम्य सिद्ध है। अथवा श्रद्धा-विश्वास, चिति-चित्, संवित्-बोध, सुख-आनन्द, ब्रह्म-आत्मा, प्रकृति-पुरुष आदिकी तरह लिङ्गभेद होनेपर भी दोनों (शिव-शक्ति)में वस्तुभेद नहीं है।

आश्रय-विषय-निरपेक्ष 'शक्ति' संविदानन्दस्वरूप शिव ही है। आश्रयरहित होनेके कारण शक्तिकी चिद्रूपता और विषयरहित होनेके कारण उसकी आनन्दरूपता है। यद्यपि सांख्योंके मतमें प्रकृति (प्रधान) आश्रय-निरपेक्ष है। फिर भी स्वयं परार्थ होनेके कारण विषयरूप है या उपादान होनेके कारण विषयरूप है और विषयोत्पादक भी। वह विषयसापेक्ष इसलिये भी है; क्योंकि कार्यानुमेया[4] है। कारणगत विविध प्रकारकी शक्तिका अनुमान विविध प्रकारके कार्यको देखकर ही होता है। बीजमें अङ्कुर, पत्र-पुष्प-फलादि उत्पन्न करनेवाली परस्पर-विलक्षण शक्तियोंका अनुमान अङ्कुरादि परस्पर विलक्षण कार्योंको देखकर ही होता है। सुख-दुःख-मोहात्मक प्रपञ्चको देखकर सुख-दुःख-मोहात्मक प्रधानका अनुमान होता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार आश्र[य-] विषय-सापेक्ष वृत्तिरूप ज्ञान जड़ और आश्रय (ज्ञाता) विषय (घटादि) सापेक्षज्ञान 'चिति' रूप है। [उसी] प्रकार आश्रय-विषय-सापेक्ष शक्ति जड़ और आश्र[य-]विषय-रहित शक्ति 'चिति'रूपा है।

आश्रय-विषय-सापेक्ष शक्तिके द्योतक विवि[ध] अभिधान—जहाँ 'शक्ति' आश्रय-विषय-सापेक्ष है, वहाँ [वह] अविद्या, प्रकृति, माया, तम आदि नामोंसे कही ग[यी] है[5]। आश्रयका आवरक होकर शक्ति अविद्या [या] अज्ञान मान्य है। ऐसी स्थितिमें वह 'तम' क[हने] योग्य है। आश्रयका अविमोहक होकर वह 'प्र[कृति'] मान्य है। एक ही वस्तु माया और अविद्या न[ामसे] व्यवहृत हो सकती है। अनावरक और आवरक होने[के] कारण मायावी उसकी (अपनी) मायासे विमोहित न[हीं] होता, पर दृष्टिबन्ध या चक्षुर्बन्धके द्वारा वह अनभिज्ञों[को] विमोहित करता है। देहलीपर लगा हुआ चि[क] (पर्दाविशेष)कक्षमें विद्यमान व्यक्तिके लिये अनाच्छा[दक] और बाहर विराजमान व्यक्तिके लिये आच्छा[दक] होनेके कारण क्रमशः माया और अविद्या-तुल्य है। यह बात दूसरी है कि भगवान् लीलापूर्वक ही विश्व[-] मोहिनी और स्वजनमोहिनी मायाके समान ही स्वमोहिनी मायाको भी स्वीकार करते हैं।

शक्तिके अवान्तरभेद अनेक होनेपर भी वस्तुतः वह एक ही है। यद्यपि **'अजामेकाम्'** (श्वेता० ४। ५)...

१—'उपासना द्विविधा शाम्भवं शाक्ती चेति' २. 'नास्ति सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः '(माया स्वात्मनि कल्पिता)' (पाशुपतब्रह्मो० . ४४, ४५)। ३—श्रीनिम्बार्कादि वैष्णवाचार्योंके मतमें। ४—'सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।' (सांख्यकारिका ८), 'सुखदुःखमोहात्मकमहत्तत्त्वादि पृथिव्यन्तं जगत् सुखदुःखमोहात्मककारणकं कारणतादात्म्यकार्यत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा आत्मा। (सांख्यकारिकाकी व्याख्या)५. 'एषाऽऽत्मशक्तिः' (देव्युपनिषद् १०), 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' (श्वेता० ४। १०), 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' (नृसिंहोत्तर० ९), 'गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिः' (पैङ्गलो०), 'सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या विद्या' (त्रिपाद्विभूति- महानारायणो० ३), 'तमः शब्देनाविद्या' (त्रिपाद० ४), 'सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपद्यते' (सरस्वती-रहस्यो० १४) 'माया च तमोरूपा' (नृसिंहोत्तर०९), 'ब्रह्मैव स्वशक्तिं प्रकृत्याभिधेयार्पितस्य' 'ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः' (निरालम्बो०), 'अनिर्वचनीया एव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबल-मिति च। (गणेशोत्तर० ४), 'अविद्यां प्रकृतिं विद्धि' (योगवा० ६। ९। ६)।

अनुसार वह एक और 'इन्द्रो मायाभिः' (बृह० २।५।१९) 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वेता० ६ । ८) इन श्रुतियोंके अनुसार 'शक्ति' विविध सिद्ध होती है, तथापि अनेक माननेमें गौरव और एक माननेमें लाघव है । यद्यपि शक्ति-अनेकत्व स्वाभाविक मानकर उसके अनेकत्व-प्रतिपादक वचनोंकी सिद्धि जातिमें एकवचन मानकर भी साधी जा सकती है, तथापि इस प्रकारकी सङ्गति लाघवानुगृहीत नहीं है । मायाको एक और मायागत शक्तिको अनेक मानकर तथा उसीको जीवात्माकी उपाधि मानकर एक जीवकी सिद्धि होनेमें लाघव है । जीवके अनेकत्वकी प्रतीति तो देहात्मभावके समाश्रयसे स्वप्नवत् भ्रम-सिद्ध है—'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' (कठो० २ । २ । ९) आदि श्रुति उसीका अनुवर्तन कर शनैः-शनैः परावरीयक्रमसे सत्यसहिष्णु बनानेके अभिप्रायसे प्रवृत्त है। माया अघटितघटनापटीयसी है । उसकी लोकोत्तरचमत्कृति स्वप्न-रचनामें समर्थ जीवनिष्ठ निद्राशक्तिवत्[1] कैमुतिकन्यायसे सिद्ध है। 'मायाम्' (श्वेता० ४ । १०), 'अजामेकाम्' (श्वेता० ४ । १०), तथा 'अजो ह्येकः' (श्वेता० ४ । ५) में जीव (पुरुष) की एकरूपता मान्य है ।

शक्त (शक्तिमान्) को विविध शाक्य (कार्य) रूपोंमें व्यक्त करना अथवा शक्तिमान्‌को समाश्रित रहकर स्वयंको ही विविध रूपोंमें व्यक्त करना और कार्यगत धर्मोंको नियमित रखकर सांकर्यदोषसे होनेवाले विप्लवसे प्राणियोंकी रक्षा करना शक्ति-वैभव (शक्तिका अद्भुत चमत्कार और स्वभाव) है । जिस प्रकार एक ही तेज अधिभूत 'रूप', अध्यात्म 'नेत्र' और 'आधिदैव' आलोक (सूर्य)के रूपमें व्यक्त होता है, अर्थात् तेजका आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक रूप क्रमशः रूप, तेज और सूर्य है अथवा तेजमें समाश्रित शक्ति ही नेत्र, रूप और आलोक-रूप त्रिपुटीरूपमें अभिव्यक्त है, वैसे ही समस्त अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म-प्रपञ्चके रूपमें एक ही शक्ति विलसित हो रही है । इस तरह अध्यात्मवर्ग ही शक्तिका आध्यात्मिक रूप है । अधिभूत वर्ग ही उसका आधिभौतिक और आधिदैव-मण्डल ही उसका आधिदैविक रूप है । आधिदैवरूपमें शक्तिका सत्त्वप्रधान, अध्यात्मरूपमें उसका वैकारिक (सात्त्विक) और तैजस (राजस) प्रधान अभिव्यञ्जन है ।

अवतारवादकी उत्थानिका और समन्वयकी स्वस्थ रूपरेखा—अध्यात्मरामायणादिके आध्यात्मिक पक्षपर विचार करें तो शिव,विष्णु, गणपति,सूर्य और इनके विविध अवतार भी शक्तिके ही अवतार हैं । दार्शनिकता यह है कि वेदान्तवेद्य भगवत्तत्त्व निर्गुण-निराकार और शक्ति सगुण-निराकार है । अवतार-विग्रह सगुण-साकार है । सगुण-साकारकी अपेक्षा सगुण-निराकार और सगुण-निराकार-की अपेक्षा निर्गुण-निराकारका व्यावहारिक महत्त्व कम परिलक्षित होता है । ऐसा होनेपर भी दार्शनिक (प्रामाणिक) सर्वाधिक महत्त्व निर्गुण-निराकारका प्रत्यक्त्व, निर्विशेषत्व, अविक्रियत्वादिरूप हेतुओंसे हैं । ऐसी स्थितिमें 'शक्ति सगुण-निराकार ही बनी रहे और शक्तिमान् सगुण-साकार हो जाय, इस पक्षमें सगुण-साकार नियम्य और सगुण-निराकार नियामक बना रहेगा; यदि शक्ति ही सगुण-साकार हो जाय तो शक्तिका ही अवतार मान्य होगा ।' ऐसी आशङ्काका परिहार इस प्रकार है कि जैसे दर्पणकी अपेक्षा उसके योगसे अभि-व्यक्त सूर्य (प्रतिबिम्बात्मक सूर्य) का अधिक महत्त्व होता है, वैसे ही शक्तिकी अपेक्षा अभिव्यक्त शक्तिमान्‌का अधिक उत्कर्ष द्योतित होता है । ब्रह्माजीसे अभिव्यक्त श्रीवराहरूप भगवद्विग्रहका ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंकी दृष्टिमें अधिक महत्त्व प्रसिद्ध ही है । अथवा जैसे

१. निद्राशक्तिर्यथा देहे दुर्घटस्वप्नकारिणी । ब्रह्मण्येषा स्थिता माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ (पञ्चदशी १३ । ८६)

काष्ठयोगसे अभिव्यक्त होनेपर भी दाहक-प्रकाशक वह्नि ही मान्य है, तद्वत् शक्तियोगसे स्फुरित होनेपर भी अवतारी और उद्धारक भगवत्तत्त्व ही मान्य है। मृन्निष्ठ पिण्डोत्पादिनी शक्तिके योगसे व्यक्त पिण्ड भी मृत्पिण्ड ही मान्य है, शक्ति-पिण्ड नहीं। समन्वयकी दृष्टि यह है कि 'मृद्योगसे पिण्डोत्पादिनी शक्ति पिण्ड बनती है अथवा पिण्डोत्पादिनी शक्तिके योगसे मिट्टी पिण्ड बनती है'—कहने और समझनेकी ये दोनों ही प्रथा प्रशस्त हैं। अग्निनिष्ठ दाहिका शक्तिमें डाली गयी आहुति अग्निमें जिस प्रकार मान्य है, उसी प्रकार अग्निमें डाली गयी आहुति अग्निशक्तिमें मान्य है। ऐसी स्थितिमें शक्तिमान्के समस्त अवतार 'शक्ति'के और शक्तिके समस्त अवतार 'शक्तिमान्'के मान्य हैं। अध्यात्मरामायणमें अध्यात्म-अधिभूत-अधिदैव, जीव तथा माया (योगमाया)-शक्तिसे अतीत परम प्रकाश तत्पदके लक्ष्यार्थ या अखण्डार्थके रूपमें श्रीरामभद्रको द्योतित करनेके अभिप्रायसे भगवती सीताने '**रामो न गच्छति**' आदि वाक्योंका प्रयोग किया है।

'तस्माज्ज्योति (एका ज्योति) रभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्' (सम्मोहनतन्त्र-गोपालसहस्रनाम १९, वेद-परिशिष्ट) के अनुसार तो श्रीराधा-कृष्ण भगवत्तत्त्वके अवतार सिद्ध होते हैं। उनकी अभिव्यक्तिमें मायाशक्ति दीपकी अभिव्यक्तिमें तैलादितुल्य अथवा जलतरङ्गकी अभिव्यक्तिमें वायुतुल्य केवल निमित्त सिद्ध होती है।

ब्रह्मसूत्रमें देवताको विग्रहवती माना गया है। '**त्रिपाद-विभूति-महानारायणोपनिषद्**' के अनुसार भगवान्को सगुण-साकार विग्रहवान् मानना अत्यावश्यक है। यदि ईश्वर विग्रहवान् नहीं माना जायगा तो वह आकाशादिके तुल्य जड ही सिद्ध होगा—'**सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारत्वं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलं निराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत**'। केनोपनिषदादिमें उमा-महेश्वरादिके अवतारका स्पष्ट उल्लेख है।' '**इदं वि**... **विचक्रमे**' (वा० सं० ५। १५), '**अजायमानो ब**... **विजायते**' (वा० सं० ३१। १९) आदि श्रुतियों... अवतारका उल्लेख है। इससे साधिष्ठान-साभास शक्ति... चेतनत्व और शक्तियुक्त शिवमें जगत्-कर्तृत्वकी सि... होती है।' '**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते**' (श्वे... ४। ८), '**पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते**' (श्वे... ४। ८), '**देवात्मशक्तिम्**' (श्वेता० १। ३) '**शक्त... सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः। यतोऽतो ब्रह्म... स्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः॥**' (विष्णु० १। ३।...) आदि स्थलोंमें कार्य-कारणके निरासपूर्वक शक्तिका प्र... पादन है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि... वचन स्वरूप-सहकारिमात्रके प्रतिपादक हैं। शक्ति... स्वरूपमात्रता भी नहीं हो सकती; क्योंकि '**पराऽस्य**' इ... षष्ठ्यन्तपदसे स्वरूपातिरिक्तका प्रतिपादन किया ग... है।' '**अस्य शक्तिर्विविधा**' आदि वचनोंसे उस शक्ति... अनेकता भी श्रुत होनेसे उसे एकरूप ब्रह्म भी कह... ठीक नहीं। उपक्रमोपसंहारादि षड्विध लिङ्गोंसे ई... स्वरूपकी निश्चयात्मिका होनेसे उक्त श्रुतियोंको अर्थ... भी नहीं कहा जा सकता। साथ ही नैयायिकादिकों... भी इन वचनोंको ईश्वरस्वरूपपरक माना है, अतः इ... अर्थवाद बतलाना उचित नहीं। श्रुतिसिद्ध वस्तुका शु... तर्कसे अपलाप उचित नहीं—

> **श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेव**
> **तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।**
> **श्रुत्या विरोधे न भवेत् प्रमाणं**
> **भवेदनर्थाय विना प्रमाणम्॥**
> (ब्रह्मविद्योपनिषद् ३१)

शाक्तागम-मतानुयायियोंकी दृष्टिसे अत्यन्त अन्तर्मुख... शक्ति शिवस्वरूप ही रहती है। वेदान्तियोंके म... आश्रय-विषय-निरपेक्ष शक्ति सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वप्रका... चिति ही रहती है। भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने ...

है कि संकल्पके विना संकल्प नहीं और संकल्पके बिना चित्त (मन) चित्त नहीं, चिद्रूप ही है। आगम-विदोंने—**'चित्तं चिदिति जानीयात्'** कहकर इसी तथ्यका प्रकाश किया है। मनकी माया (अविद्या) रूपता और आत्मरूपता निगमागम-सम्मत है। मननी-शक्तियुक्त आत्मा ही मन है, यह प्रपञ्च मनोमात्र है, मन्तव्ययोगसे विधुर मन सुप्तिमें अविद्यारूपसे और मन्तव्य-मिथ्यात्वके अनन्तर मननीशक्ति-विहीन मन आत्मरूपसे अवशिष्ट रहता है—**'स मनाङ् मननीशक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते'** (योगवासिष्ठ), **'न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता'** (विवेकचूडामणि), **'मुक्तौ निर्विषयं स्मृतम्'** (मैत्रायण्युप० ६। ३४), **'विद्धि मायामनोमयम्'** (भाग० ११। ७। ७)। सुप्तिमें लीन, समाधिमें विस्मृत और मोक्षमें बाधित मन आत्मरूपसे ही अवस्थित रहता है।

जीवको 'परा-प्रकृति' कहनेकी प्रथा (भगवद्गीता ८) इस बातको सिद्ध करती है कि अचित् ही प्रकृति नहीं, अपितु चित् भी प्रकृति या शक्ति है। इसी अभिप्रायसे शक्तिकी सच्चिदानन्दरूपता मानकर उसकी उपासनाकी प्रथा है। माना कि मृद्विहीन 'घट' मिथ्या है और घटविहीन मिटटी जलानयनमें अक्षम, पर घटमें जलानयन मृद्योगसे ही है, वैसे ही ब्रह्मके बिना शक्ति मिथ्या है और शक्ति-विहीन ब्रह्म प्रपञ्चरचनादिमें पङ्गु, पर शक्तिमें प्रपञ्च-रचनादि-सामर्थ्य ब्रह्माधिष्ठित होनेके कारण ही है। जिस प्रकार अमरवेल आश्रम-वृक्षके आश्रित रहकर ही पुष्पोंको उत्पन्न (अभिव्यक्त) करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार शक्ति अपने आश्रय ब्रह्मके आश्रित रहकर ही विविध विषयोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। वस्तुस्थिति यह है कि शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, गणेशादि वेद-शास्त्रसम्मत सभी रूपोंमें एक पूर्णतम तत्त्व ही व्यक्त होता है। पञ्चदेवोंके माहात्म्य-प्रतिपादक सभी सद्ग्रन्थोंमें अन्तिम स्वरूप एक ही मिलता है। इनके सहस्रनामोंमें अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। कारण पञ्चदेवोंके निर्गुण-निराकार और विराट् आदि सगुण-साकार-स्वरूपमें किसी प्रकारका वैषम्य नहीं है। अवतारवादकी दृष्टिसे उनके श्रीविग्रह और आयुधादिकोंको लेकर ही अवान्तर-भेद है।

पञ्चदेवोंमें उत्कर्षापकर्षके वारणकी प्रक्रिया इस प्रकार है। सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा निर्गुण-निराकार होते हुए भी अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे अन्तर्यामी सर्वेश्वर सगुण-निराकार-भावको प्राप्त होते हैं। स्थावर-जङ्गमात्मक प्रपञ्चके अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण होनेसे सबके नियमनमें सगुण-निराकार परमात्मा समर्थ होते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अहं, चित्त, बुद्धि, मन और अन्तःकरणके योगसे क्रमशः शिव, गणपति, शक्ति, सूर्य और वासुदेव (विष्णु)-भावको प्राप्त होते हैं। **'नहि निन्दा निन्द्यं निन्दयितुं प्रवर्तते अपितु विधेयं (स्तव्यं) स्तोतुम्'** (निन्दा निन्द्यकी निन्दामें प्रवृत्त न होकर स्तुत्यकी स्तुतिमें पर्यवसित-प्रतिफलित होती है।) इस रीतिसे वस्तुतः पाँचोंका उत्कर्ष है। विविध प्रकारके उपासकोंका योगक्षेम वहन करनेके अभिप्रायसे प्रसङ्गानुसार किसी एकका उत्कर्ष स्थापित किया जाता है। उत्कर्षस्थापनकी विधि यह है कि अपने इष्टदेवको आकाश और अन्तःकरणमें अधिदैव-क्षेत्रज्ञरूपसे उपास्य मानना चाहिये। भूतचतुष्टयका कारण आकाश और अन्तःकरण-चतुष्टयका कारण (आश्रय) अन्तःकरण स्वयं है। आकाश और अन्तःकरणके भी नियामक इनमें अन्तर्यामिरूपसे प्रतिष्ठित सर्वेश्वरका चरम उत्कर्ष स्वाभाविक है। इसी रूपसे अपने इष्टदेवकी आराधना अपेक्षित है। श्रीमद्भागवतमें विराट-विग्रहको व्युत्थित (उज्जीवित) करनेमें असमर्थ ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंका उल्लेख करनेके अनन्तर चित्तरूप अध्यात्मसहित क्षेत्रज्ञ वासुदेवके प्रवेश-से विराट्को उज्जीवित सिद्धकर वासुदेव भगवान्‌का

उत्कर्ष स्थापित किया गया है। ध्यान रहे कि चित्त श्रीमद्भागवतके अनुसार सत्त्वप्रधान महत्तत्त्व है। यह सर्वकार्योंमें प्रथम है। यही कारण है कि उसके योगसे चैत्यरूप श्रीविष्णुतत्त्वका उत्कर्ष स्थापित किया गया है। 'सूतसंहिता' के अनुसार 'अहं' के अधिदैव शिवको ही क्षेत्रज्ञ मानकर तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहं, विशेषणरूप अन्तःकरण और उपाधिरूप अन्तःकरणके योगसे व्यूहात्मक पञ्चविध शिवकी अपेक्षा अन्तःकरणोपहित मूलात्मक शिवका चरम उत्कर्ष सिद्ध है।

भक्तोंको अभीष्ट भिन्न-भिन्न स्वरूपोंके दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य-माधुर्य-सौरस्य-सौगन्ध्यादि लोकोत्तर गुणगणोंमें चित्तके आसक्त होनेके अनन्तर अदृश्य, अग्राह्य, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य परमतत्त्व सुस्पष्ट रूपसे भासित होता है। इसमें दार्शनिकता यह है कि जैसे —'सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म' (सर्वसारोपनिषद्) आदि स्थलोंमें सत्य, ज्ञानादि ब्रह्मके विशेषण या [illegible] सरीखे परिलक्षित होनेपर भी वस्तुतः ब्रह्मके लक्षण [illegible] ब्रह्मरूप ही हैं अथवा ये लक्षक होनेसे ब्रह्म निर्गुण है, वैसे ही साम्य, असङ्गता आदि गुणगण सच्चि[दा]नन्दमात्र होनेसे ब्रह्मरूप ही है। जैसे तत्त्वज्ञोंके [illegible] अकर्ममें अकर्मदर्शनके कारण (अविक्रिय आत्मा[को] अकर्ता समझनेके कारण) अर्थात् कर्मासक्ति, फलास[क्ति], अहंकृति, नानात्वबुद्धि और अभिनिवेशसे विरहित [illegible] अनुष्ठित होनेके कारण 'अकर्म' हैं, तद्वत् अविद्या, [illegible] और कर्मसे विरहित भगवद्विग्रह-संलग्न दिव्याति[दिव्य] गुणगण अगुण होनेसे अगुणके ही प्रापक हैं। [illegible] लीलाशक्तिके योगसे अभिव्यक्त नाम-रूप-लीला-[illegible] आदि भी भगवान्‌के ही अभिव्यञ्जक हैं।

(क्रमशः)

राजराजेश्वरी माँकी सर्वसमर्थता

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥

(सौन्दर्यलहरी)

'हे शरणागतरक्षिके माँ! तुमसे अन्य प्रायः सभी देवगण अपने करोंसे वर तथा अभयदान देनेवाले हैं। एक तुम्हीं ऐसी हो जिसने वर तथा अभयदान-का अभिनय नहीं किया है। तब क्या तुम्हारे भक्तोंको वर तथा अभय नहीं मिलता? नहीं, ऐसी बात नहीं है। हे शरण्ये माँ! भक्त लोगोंका भयसे रक्षण करनेके लिये तथा उन्हें अभीष्ट वरदान देनेके लिये तुम्हारे चरण ही समर्थ हैं। (अर्थात् इतर देवगण जो वस्तु हाथसे देते हैं, वही वस्तु तुम पैरसे देती हो; क्योंकि तुम राजराजेश्वरी ब्रह्ममयी हो।)

महागौरी शैलपुत्री

वन्दे वाहि छतलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्री यशस्विनीम्॥

शक्ति-उपासनाके महत्त्वपूर्ण सूत्र

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वमय, समस्तगुणाधार, निर्विकार, नित्य, निरंजन, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता, विज्ञानानन्दघन, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। वे एक ही अनेक भावों और अनेक रूपोंमें लीला करते हैं। हम अपने समझनेके लिये मोटे रूपसे उनके आठ रूपोंका भेद कर सकते हैं। एक—नित्य, विज्ञानानन्दघन, निर्गुण, निराकार मायारहित, एकरस ब्रह्म; दूसरे—सगुण, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त, निराकार परमात्मा; तीसरे—सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्मा; चौथे—पालनकर्ता भगवान् विष्णु; पाँचवें—संहारकर्ता भगवान् रुद्र; छठे—श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदुर्गा, काली आदि साकाररूपोंमें अवतरित रूप; सातवें—असंख्य जीवात्मारूपसे विभिन्न जीवशरीरोंमें व्याप्त और आठवें—विश्व-ब्रह्माण्डरूप विराट्। ये आठों रूप एक ही परमात्माके हैं। इन्हीं समग्ररूप प्रभुको रुचिवैचित्र्यके कारण संसारमें लोग ब्रह्मा, सदाशिव, महाविष्णु, ब्रह्म, महाशक्ति, राम, कृष्ण, गणेश, सूर्य, अल्लाह, गॉड आदि भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें विभिन्न प्रकारसे पूजते हैं। वे सच्चिदानन्दघन अनिर्वचनीय प्रभु एक ही हैं, लीलाभेदसे उनके नाम-रूपोंमें भेद है और इसी भेदभावके कारण उपासनामें भेद है। यद्यपि उपासकको अपने इष्टदेवके नाम-रूपमें ही अनन्यता रखनी चाहिये तथा उसीकी पूजा शास्त्रोक्त पूजा-पद्धतिके अनुसार करनी चाहिये, परंतु इतना निरन्तर स्मरण रखना चाहिये कि शेष सभी रूप और नाम भी अपने इष्टदेवके ही हैं। अपने ही प्रभु इतने विभिन्न नाम-रूपोंमें समस्त विश्वके द्वारा पूजित होते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं।

सारे जगत्‌में वस्तुतः एक वे ही फैले हुए हैं। जो विष्णुको पूजता है वह अपने-आप ही शिव, ब्रह्मा, राम, कृष्ण आदिको और जो राम, कृष्णको पूजता है वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको पूजता है। एककी पूजासे स्वाभाविक ही सभीकी पूजा हो जाती है; क्योंकि एक ही सब रूपोंमें व्याप्त हैं; परंतु जो किसी एक रूपसे अन्य समस्त रूपोंको अलग मानकर उनकी अवज्ञा करके केवल अपने एक इष्ट रूपको ही अपनी ही सीमामें आबद्ध रखकर पूजता है, वह अपने परमेश्वरको छोटा बना लेता है, उन्हें सर्वेश्वरत्वके आसनसे नीचे उतार देता है। इसलिये उसकी पूजा सर्वोपरि सर्वमय भगवान्‌की न होकर एकदेशनिवासी स्वल्प देव-विशेषकी होती है और उसे वैसा ही उसका अल्प फल भी मिलता है। अतएव पूजो एक ही रूपको, परंतु शेष सब रूपोंको उसी एकके वैसे ही शक्तिसम्पन्न अनेक रूप समझो।

× × ×

वास्तवमें वह एक महाशक्ति ही परमात्मा है, जो विभिन्न रूपोंमें विविध लीलाएँ करती हैं। परमात्माके पुरुषवाचक सभी स्वरूप इन्हीं अनादि, अविनाशिनी अनिर्वचनीया, सर्वशक्तिमयी, परमेश्वरी आद्यामहाशक्तिके ही हैं। ये ही महाशक्ति अपनी मायाशक्तिको जब अपने अंदर छिपाये रखती हैं, उससे कोई क्रिया नहीं करतीं, तब निष्क्रिय, शुद्ध ब्रह्म कहलाती हैं। ये ही जब उसे विकासोन्मुख करके एकसे अनेक होनेका संकल्प करती हैं, तब स्वयं ही पुरुषरूपसे मानो अपनी ही प्रकृतिरूप योनिमें संकल्पद्वारा चेतनरूप बीज स्थापन करके सगुण, निराकार परमात्मा बन जाती हैं। इन्हींकी अपनी शक्तिसे, गर्भाशयमें वीर्य-स्थापनसे होनेवाले विकारकी भाँति उस प्रकृतिमें क्रमशः

सात विकृतियाँ होती हैं (महत्तत्त्व-समष्टि बुद्धि, अहंकार और सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएँ—मूल प्रकृतिके विकार होनेसे इन्हें विकृति कहते हैं, परंतु इनसे अन्य सोलह विकारोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इन सातोंके समुदायको प्रकृति भी कहते हैं ।), फिर अहंकारसे मन और दस (ज्ञान-कर्मरूप) इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्रासे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है । (इसीलिये इन दोनोंके समुदायका नाम प्रकृतिविकृति है । मूलप्रकृतिके सात विकार, सप्तधा विकाररूपा प्रकृतिसे उत्पन्न सोलह विकार और स्वयं मूलप्रकृति—ये कुल मिलाकर चौबीस तत्त्व हैं ।) इस प्रकार वह महाशक्ति ही अपनी प्रकृतिसहित चौबीस तत्त्वोंके रूपमें यह स्थूल संसार बन जाती हैं और जीवरूपसे स्वयं पचीसवें तत्त्वरूपमें प्रविष्ट होकर खेल खेलती हैं ।

चेतन परमात्मरूपिणी महाशक्तिके बिना जड प्रकृतिसे यह सारा कार्य कदापि सम्पन्न नहीं हो सकता । इस प्रकार महाशक्ति विश्वरूप विराट् पुरुष बनती हैं और इस सृष्टिके निर्माणमें स्थूल निर्माणकर्ता प्रजापतिके रूपमें आप ही अंशावतारके भावसे ब्रह्मा और पालन-कर्ताके रूपमें विष्णु और संहारकर्ताके रूपमें रुद्र बन जाती हैं । ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रभृति अंशावतार भी किसी कल्पमें दुर्गारूपसे होते हैं, किसीमें महाविष्णुरूपसे, किसीमें महाशिवरूपसे, किसीमें श्रीरामरूपसे और किसीमें श्रीकृष्णरूपसे । एक ही शक्ति विभिन्न कल्पोंमें विभिन्न नाम-रूपोंसे सृष्टि-रचना करती है । इस विभिन्नताका कारण और रहस्य भी उन्हींको ज्ञात है । यों अनन्त ब्रह्माण्डोंमें महाशक्ति असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनी हुई हैं और अपनी मायाशक्तिसे अपनेको ढककर आप ही जीवसंज्ञाको प्राप्त हैं । ईश्वर, जीव, जगत्—तीनों आप ही हैं । भोक्ता, भोग्य और भोग—तीनों आप ही हैं । इन तीनोंको अपनेसे ही निर्माण करनेवाली और तीनोंमें व्याप्त रहनेवाली भी आप ही हैं ।

परमात्मरूपा ये महाशक्ति स्वयं अपरिणामिनी हैं, परंतु इन्हींकी मायाशक्तिसे सारे परिणाम होते हैं। ये स्वभावसे ही सत्ता देकर अपनी मायाशक्तिको क्रीड़ा-शीला अर्थात् क्रियाशीला बनाती हैं, इसलिये इनके शुद्ध विज्ञानानन्दघन नित्य अविनाशी एकरस परमात्मरूपमें कदापि कोई परिवर्तन न होनेपर भी इनमें परि[illegible] दीखता है; क्योंकि इनकी अपनी शक्ति मायाका क्रि[illegible] स्वरूप नित्य क्रीडामय होनेके कारण सदा बदलता रहता है और वह मायाशक्ति सदा इन महाशक्ति[illegible] अभिन्न रहती है । वह महाशक्तिकी ही स्व-शक्ति है और शक्ति शक्तिमान्से कभी पृथक् नहीं हो सकती, भले ही वह पृथक् दीखे । अतएव शक्तिका परि[illegible] स्वयमेव ही शक्तिमान्पर आरोपित हो जाता है, [illegible] प्रकार शुद्ध ब्रह्म या महाशक्तिमें परिणाम[illegible] सिद्ध होता है ।

× × ×

चूँकि संसाररूपसे व्यक्त होनेवाली यह समस्त क्रीड़ा महाशक्तिकी अपनी शक्ति मायाका ही खेल है [illegible] मायाशक्ति उनसे अलग नहीं, इसलिये यह सारा उन्हींका ऐश्वर्य है । उन्हें छोड़कर जगत्में और कोई वस्तु नहीं, दृश्य, द्रष्टा और दर्शन—तीनों वे आप ही हैं। अतएव जगत्को मायिक बतलानेवाला मायावाद भी [illegible] हिसाबसे ठीक ही है ।

× × ×

इसी प्रकार महाशक्ति ही अपने मायारूपी दर्पणमें अपने विविध शृङ्गारों और भावोंको देखकर जीवरूपसे आप ही मोहित होती हैं । इससे आभासवाद [illegible] सत्य है ।

× × ×

परमात्मरूप महाशक्तिकी उपर्युक्त मायाशक्तिको अनादि और सान्त कहते हैं । सो उसका अनादि होना तो ठीक ही है; क्योंकि वह शक्तिमयी महाशक्तिकी अपनी

शक्ति होनेसे उन्हींकी भाँति अनादि है, परंतु शक्तिमयी महाशक्ति तो नित्य अविनाशिनी हैं, फिर उनकी शक्ति माया अन्तवाली कैसे होगी ? इसका उत्तर यह है कि वास्तवमें वह अन्तवाली नहीं है। अनादि, अनन्त, नित्य, अविनाशी परमात्मरूपा महाशक्तिकी भाँति उसकी शक्तिका भी कभी विनाश नहीं हो सकता, परंतु जिस समय वह कार्यकरणविस्ताररूप समस्त संसारसहित महाशक्तिके सनातन अव्यक्त परमात्मरूपमें लीन रहती है, क्रियाहीना रहती है, तबतकके लिये वह अदृश्य या शान्त हो जाती है और इसीसे उसे सान्त कहते हैं। इस दृष्टिसे उसे सान्त कहना सत्य ही है।

× × ×

कोई-कोई परमात्मरूपा महाशक्तिकी इस मायाशक्तिको अनिर्वचनीय कहते हैं, सो भी ठीक ही है; क्योंकि यह शक्ति उन सर्वशक्तिमयी महाशक्तिकी अपनी ही तो शक्ति है। जब वे अनिर्वचनीय हैं, तब उनकी अपनी शक्ति अनिर्वचनीय क्यों न होगी ?

× × ×

कोई-कोई कहते हैं कि इस मायाशक्तिका ही नाम महाशक्ति, प्रकृति, विद्या, अविद्या, ज्ञान, अज्ञान आदि है, महाशक्ति अलग वस्तु नहीं है। सो उनका यह कथन भी एक दृष्टिसे सत्य ही है; क्योंकि मायाशक्ति परमात्मरूपा महाशक्ति ही शक्ति है और वही जीवोंको बाँधनेके लिये अज्ञान या अविद्यारूपसे और उनकी बन्धन-मुक्तिके लिये ज्ञान या विद्यारूपसे अपना स्वरूप प्रकट करती है, तब इनसे भिन्न कैसे रही ? हाँ, जो मायाशक्तिको ही शक्ति मानते हैं और महाशक्तिका कोई अस्तित्व ही नहीं मानते, वे तो मायाके अधिष्ठान ब्रह्मको ही अस्वीकार करते हैं, इसलिये वे अवश्य ही मायाके चक्करमें पड़े हुए हैं।

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण। ये दोनों बातें भी ठीक हैं; क्योंकि उन एकके ही तो ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशीला रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती हैं और जब वह महाशक्तिमें मिली रहती है, तब महाशक्ति निर्गुण हैं। इन अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामंजस्य है। वे जिस समय निर्गुण हैं उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई वर्तमान है और जब वे सगुण कहलाती हैं, उस समय भी वे गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही हैं। उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसे उनका वैसा ही रूप भान होता है। वास्तवमें वे कैसी हैं, क्या हैं—इस बातको वे ही जानती हैं।

× × ×

कोई-कोई कहते हैं कि शुद्ध ब्रह्ममें मायाशक्ति नहीं रह सकती; क्योंकि माया रही तो वह शुद्ध कैसे ? बात समझनेकी है। शक्ति कभी शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं रह सकती। यदि शक्ति नहीं है तो उसका शक्तिमान् नाम नहीं हो सकता और शक्तिमान् न हो तो शक्ति रहे कहाँ ? अतएव शक्ति सदा ही शक्तिमान्‌में रहती है। शक्ति नहीं होती तो सृष्टिके समय शुद्धब्रह्ममें एकसे अनेक होनेका संकल्प कहाँसे और कैसे होता ? इसपर कोई यदि यह कहे कि 'जिस समय संकल्प हुआ उस समय शक्ति आ गयी, पहले नहीं थी।' अच्छी बात है, पर बताओ, वह शक्ति कहाँसे आ गयी ? ब्रह्मके सिवा कहाँ जगह थी, जहाँ वह अबतक छिपी बैठी थी ? इसका क्या उत्तर है ? 'अजी, ब्रह्ममें कभी संकल्प ही नहीं हुआ, ये सब असत् कल्पनाएँ हैं,

मिथ्या स्वप्नकी-सी बातें हैं।' अच्छी बात है, पर ये मिथ्या कल्पनाएँ किसने किस शक्तिसे की और मिथ्या स्वप्नको किसने किस सामर्थ्यसे देखा? और मान भी लिया जाय कि यह सब मिथ्या है तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शुद्ध ब्रह्मका अस्तित्व किससे है? जिससे वह अस्तित्व है वही उसकी शक्ति है। क्या जीवनीशक्तिके बिना भी कोई जीवित रह सकता है? अवश्य ही ब्रह्मकी वह जीवनीशक्ति ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। वही जीवनीशक्ति अन्यान्य समस्त शक्तियोंकी जननी है, वही परमात्मरूपा महाशक्ति है। अन्यान्य सारी शक्तियाँ अव्यक्तरूपसे उन्हींमें छिपी रहती हैं और जब वे चाहती हैं, तब उन्हें प्रकट करके काम लेती हैं। हनुमान्‌में समुद्र लाँघनेकी शक्ति थी, पर वह अव्यक्त थी, जाम्बवान्‌के याद दिलाते ही हनुमान्‌ने उसे व्यक्त रूप दे दिया। इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा या परमाशक्ति भी नित्य शक्तिमान् हैं, हाँ, कभी वह शक्ति उनमें अव्यक्त रहती है और कभी व्यक्त। अवश्य ही भगवान्‌की शक्तिको व्यक्त रूप भगवान् स्वयं ही देते हैं। यहाँ किसी जाम्बवान्‌की आवश्यकता नहीं होती, परंतु शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसीसे ऋषि-मुनियोंने इस शक्तिमान् परमात्माको महाशक्तिके रूपमें देखा।

× × ×

इन्हीं सगुण-निर्गुणरूप भगवान् या भगवतीसे उपर्युक्त प्रकारसे कभी महादेवरूपके द्वारा, कभी महाशिवरूपके द्वारा, कभी महाविष्णुरूपके द्वारा, कभी कृष्णरूपके द्वारा, कभी श्रीरामरूपके द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति होती है और ये ही परमात्मरूपा महाशक्ति पुरुष और नारीरूपमें विविध अवतारोंमें प्रकट होती हैं। अपने पुरुषरूप अवतारोंमें स्वयं महाशक्ति ही लीलाके लिये उन्हींके अनुसार रूपोंमें उनकी पत्नी बन जाती हैं। ऐसे बहुत-से इतिहास मिलते हैं जिनमें म[illegible] विष्णुने लक्ष्मीसे, श्रीकृष्णने राधासे, श्रीसदाशिवने उ[illegible] और श्रीरामने सीतासे एवं इसी प्रकार श्रीलक्ष्मी, [illegible] उमा और सीताने महाविष्णु, श्रीकृष्ण, श्रीसदाशिव [illegible] श्रीरामसे कहा है कि हम दोनों सर्वथा अभिन्न [illegible] एकके ही दो रूप हैं, केवल लीलाके लिये एक[illegible] रूप बन गये हैं, वस्तुतः हम दोनोंमें कोई भी [illegible] नहीं है।

× × ×

ये ही आदिके तीन जोड़े उत्पन्न करके महालक्ष्मी हैं, इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता बन[illegible] जिनसे विश्वकी उत्पत्ति होती है। इन्हींकी श[illegible] विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पालन [illegible] संहार करते हैं। दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, [illegible] तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, [illegible] शान्ति, कान्ति, लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी श[illegible] हैं। ये ही गोलोकमें श्रीराधा, साकेतमें श्री[illegible] क्षीरोदसागरमें लक्ष्मी, दक्षकन्या सती, दुर्गतिना[illegible] मेनकापुत्री दुर्गा हैं। ये ही वाणी, विद्या, सर[illegible] सावित्री और गायत्री हैं। ये ही सूर्यकी प्रभा[illegible] पूर्णचन्द्रकी सुधावर्षिणी शोभाशक्ति, अग्निकी दा[illegible] शक्ति, वायुकी वहनशक्ति, जलकी शीतलता[illegible] धराकी धारणाशक्ति और शस्यकी प्रसूतिशक्ति हैं। [illegible] ही तपस्वियोंका तप, ब्रह्मचारियोंका ब्रह्मतेज, गृहस्थो[illegible] सर्वाश्रम-आश्रयता, वानप्रस्थोंकी संयमशीलता, संन्यासि[illegible] का त्याग, महापुरुषोंकी महत्ता और मुक्त पुरुषोंकी [illegible] हैं। ये ही शूरोंका बल, दानियोंकी उदारता, [illegible] पिताका वात्सल्य, गुरुकी गुरुता, पुत्र और शि[illegible] गुरुजनभक्ति, साधुओंकी साधुता, चतुरोंकी चातुरी [illegible] मायावियोंकी माया हैं। ये ही लेखकोंकी लेखन[illegible] वाग्मियोंकी वक्तृत्वशक्ति, न्यायी नरेशोंकी प्रजा[illegible]

शक्ति और प्रजाकी राजभक्ति हैं। ये ही सदाचारियोंकी दैवी सम्पत्ति, मुमुक्षुओंकी षटसम्पत्ति, धनवानोंकी अर्थसम्पत्ति और विद्वानोंकी विद्यासम्पत्ति हैं। ये ही ज्ञानियोंकी ज्ञानशक्ति, प्रेमियोंकी प्रेमशक्ति, वैराग्यवानोंकी विरागशक्ति और भक्तोंकी भक्तिशक्ति हैं। ये ही राजाओंकी राजलक्ष्मी, वणिकोंकी सौभाग्यलक्ष्मी, सज्जनोंकी शोभालक्ष्मी और श्रेयोऽर्थियोंकी श्री हैं। ये ही पतिकी पत्नी-प्रीति और पत्नीकी पतिव्रताशक्ति हैं। सारांश यह कि जगत्‌में सर्वत्र परमात्मरूपा महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें खेल रही हैं। सर्वत्र स्वाभाविक ही शक्तिकी पूजा हो रही है। जहाँ शक्ति नहीं है वहीं शून्यता है। शक्तिहीनकी कहीं कोई पूछ नहीं। प्रह्लाद, ध्रुव भक्तिशक्तिके कारण पूजित हैं। गोपी प्रेमशक्तिके कारण जगत्पूज्य हैं। भीष्म, हनुमान्‌की ब्रह्मचर्यशक्ति; व्यास, वाल्मीकिकी कवित्वशक्ति; भीम, अर्जुनकी शौर्यशक्ति; युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्रकी सत्यशक्ति; शंकर, रामानुजकी विज्ञानशक्ति; शिवाजी, प्रतापकी वीरशक्ति; इस प्रकार जहाँ देखो वहीं शक्तिके कारण ही सबकी शोभा और पूजा है। सर्वत्र शक्तिका ही समादर और बोलबाला है। शक्तिहीन वस्तु जगत्‌में टिक ही नहीं सकती। सारा जगत् अनादिकालसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे निरन्तर केवल शक्तिकी ही उपासनामें लगा रहा है और सदा लगा रहेगा।

× × ×

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूप प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं, ये ही मायाधीश्वरी हैं, ये ही सृजन-पालन-संहारकारिणी आद्या नारायणी शक्ति हैं और ये ही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर होती हैं। परा और अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा ये ही दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वैत, अद्वैत दोनोंका समावेश है। ये ही वैष्णवोंकी श्रीनारायण और महालक्ष्मी, श्रीराम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा, शैवोंकी श्रीशंकर और उमा, गाणपत्योंकी श्रीगणेश और ऋद्धि-सिद्धि, सौरोंकी श्रीसूर्य और उषा, ब्रह्मवादियोंकी शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या हैं तथा शाक्तोंकी महादेवी हैं। ये ही पञ्चमहाशक्ति, दशमहाविद्या, नवदुर्गा हैं। ये ही अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिताम्बा हैं। ये ही शक्तिमान् और शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं। ये ही माता, धाता, पितामह हैं, सब कुछ ये ही हैं। सबको सर्वतोभावसे इन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।

× × ×

श्रीकृष्णरूपके उपासक इन्हींकी उपासना करते हैं। श्रीराम, शिव या गणेशरूपके उपासक इन्हींकी उपासना करते हैं। इसी प्रकार श्री, लक्ष्मी, महाविद्या, काली, तारा, षोडशी आदि रूपोंके उपासक इन्हींकी उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण ही काली हैं, माँ काली ही श्रीकृष्ण हैं। इसलिये जो जिस रूपकी उपासना करते हों, उन्हें उस उपासनाको छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इतना अवश्य निश्चय कर लेना चाहिये कि 'मैं जिन भगवान् या भगवतीकी उपासना कर रहा हूँ, वे ही सर्वदेवमय और सर्वरूपमय हैं, सर्वशक्तिमान् और सर्वोपरि हैं। दूसरोंके सभी इष्टदेव इन्हींके विभिन्न स्वरूप हैं।' हाँ, पूजामें भगवान्‌के अन्यान्य रूपोंका यदि कहीं विरोध हो या उनसे द्वेषभाव हो तो उसे अवश्य निकाल देना चाहिये। साथ ही यदि किसी तामसिक पद्धतिका अवलम्बन किया हुआ हो तो उसे भी अवश्य ही छोड़ देना चाहिये।

× × ×

तामसिक देवता, तामसिक पूजा, तामसिक आचार सभी नरकोंमें ले जानेवाले हैं, भले ही उनसे थोड़े कालके

लिये सुख मिलता हुआ-सा प्रतीत हो। वस्तुतः देवता तामसिक नहीं होते, पूजक अपनी भावनाके अनुसार उन्हें तामसिक बना लेते हैं। जो देवता अल्प सीमामें आबद्ध हों, जिन्हें तामसिक वस्तुएँ प्रिय हों, जो मांस-मद्य आदिसे प्रसन्न होते हों, पशुबलि चाहते हों, जिनकी पूजामें तामसिक गंदी वस्तुओंका प्रयोग आवश्यक हो, जिनके लिये पूजा करनेवालेको तामसिक आचारकी प्रयोजनीयता प्रतीत होती हो, वे देवता, उनकी पूजा और उन पूजकोंके आचार तामसी हैं और तामसी पापाचारीको बार-बार नरकोंकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

यद्यपि तन्त्रशास्त्र समस्त श्रेष्ठ साधनशास्त्रोंमें एक बहुत उत्तम शास्त्र है, उसमें अधिकांश बातें सर्वथा अभिनन्दनीय और साधकको परमसिद्धि—मोक्ष प्रदान करानेवाली हैं, तथापि जिस प्रकार सुन्दर बगीचेमें भी असावधानीसे कुछ जहरीले पौधे उत्पन्न हो जाया करते हैं और फूलने-फलने भी लगते हैं, इसी प्रकार तन्त्रमें भी बहुत-सी अवाञ्छनीय गंदगी आ गयी है। यह विषयी कामान्ध मनुष्यों और मांसाहारी मद्यलोलुप अनाचारियोंकी ही काली करतूत मालूम होती है; नहीं तो श्रीशिव और ऋषिप्रणीत मोक्षप्रदायक पवित्र तन्त्रशास्त्रमें ऐसी बातें कहाँसे और क्यों आतीं? जिस शास्त्रमें अमुक-अमुक जातिकी स्त्रियोंका नाम ले-लेकर व्यभिचारकी आज्ञा दी गयी हो और उसे धर्म तथा साधन बताया गया हो, जिस शास्त्रमें पूजाकी पद्धतिमें बहुत ही गंदी वस्तुएँ पूजासामग्रीके रूपमें आवश्यक बतायी गयी हों, जिस शास्त्रको माननेवाले साधक हजार स्त्रियोंके साथ व्यभिचारको और अष्टोत्तरशत नरबालकोंकी बलिको अनुष्ठानकी सिद्धिमें कारण मानते हों, वह शास्त्र तो सर्वथा अशास्त्र और शास्त्रके नामको कलङ्कित करनेवाला ही है। व्यभिचारकी आज्ञा देनेवाले तन्त्रोंके अनेक मैंने पढ़े हैं और तन्त्रके नामपर व्यभिचार और बहुत करनेवाले मनुष्योंकी घृणित गाथाएँ विश्वस्त सूत्रसे सुनी हैं। ऐसे महान् तामसिक कार्योंको शास्त्रसम्मत मानकर भलाईकी इच्छासे इन्हें करना सर्वथा भ्रम है, भारी भूल है और ऐसी भूलमें कोई पड़े हुए हों तो उन्हें शीघ्र ही इससे निकल जाना चाहिये। जो जान-बूझकर धर्मके नामपर व्यभिचार, हिंसा आदि करते हों, उन्हें तो जब माँ चण्डीका भीषण दण्ड प्राप्त होगा, तब उनके होश ठिकाने आयेंगे। दयामयी माँ अपनी भूली हुई संतानको क्षमा करें और उसे रास्तेपर लावें, यही प्रार्थना है।

× × ×

इसके अतिरिक्त पञ्चमकारके नामपर भी बड़ा अन्याय-अनाचार हुआ तथा अब भी बहुत जगह हो रहा है, उससे भी सतर्कतासे बचना चाहिये। बलि तथा मद्यप्रदान भी सर्वथा त्याज्य हैं। माताकी संतान अपनी भलाईके लिये—मातासे ही अपनी कामना पूरी करानेके लिये, उसी माताकी प्यारी भोली संतानकी हत्या करके उसके खूनसे माँको पूजती है। जो माँके बच्चोंके खूनसे माँके मन्दिरको अपवित्र और कलंकित करती है, उसपर माँ कैसे प्रसन्न हो सकती हैं? माँ दुर्गा-काली जगज्जननी विश्वमाता हैं। मनुष्य अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये—धन-पुत्र, वैभव, सिद्धि या मोक्षके लिये भ्रमवश निरीह बकरे, भैंसे और अन्यान्य पशु-पक्षियोंके गलेपर छुरी फेरकर मातासे सफलताका वरदान चाहता है, यह कैसी अज्ञता और असम्भव बात है। निरपराध प्राणियोंकी दुःखपूर्वक हत्या करने-करानेवाला कभी सुखी हो सकता है? उसे कभी शान्ति मिल सकती है? कदापि नहीं। दयाहीन मांस-लोलुप मनुष्योंने ही इस प्रकारकी

चलायी है। जिसका शीघ्र ही अन्त हो जाना चाहिये। जो दूसरे निर्दोष प्राणियोंकी गर्दन काटकर अपना भला मनायेगा, उसका यथार्थ भला कभी नहीं हो सकता। यह बात स्मरण रखनी चाहिये। ध्यान दो, तुम्हें खूँटेसे बाँधकर यदि कोई मारे या तुम्हारे गलेपर छुरी फेरे तो तुम्हें कितना कष्ट होगा? नन्हीं-सी सुई या काँटा चुभ जानेपर ही तलमला उठते हो; फिर इस पापी पेटके लिये और राक्षसोंकी भाँति मांससे जीभको तृप्त करनेके लिये गरीब पशु-पक्षियोंको धर्मके नामपर—अरे, माताके भोगके नामपर मारते तुम्हें लज्जा नहीं आती? मानो उन्हें कोई कष्ट ही नहीं होता। याद रखो, वे सब तुमसे बदला लेंगे और तब तुम्हें अपनी करनीपर निरुपाय होकर हाय-तोबा करना पड़ेगा। अतएव सावधान! माताके नामपर गरीब निरीह पशु-पक्षियोंकी बलि देना तुरंत बंद कर दो, माताके पवित्र मन्दिरोंको उसीकी प्यारी संतानके खूनसे रँगकर माँके अकृपाभाजन मत बनो।

बलिदान अवश्य करो, परंतु करो अपने स्वार्थका और अपने दोषोंका। माँके नामपर माँकी दुःखी संतानके लिये अपना न्यायोपार्जित धन दानकर धनका बलिदान करो, माँकी दुःखी संतानका दुःख दूर करनेके लिये अपने सारे सुखोंकी और अपने प्यारे शरीरकी भी बलि चढ़ा दो। न्योछावर कर दो निष्कामभावसे माँके चरणों-पर अपना सारा धन, जन, बुद्धि, बल, ऐश्वर्य, सत्ता और साधन, उसकी दीन, हीन, दुःखी, दलित संतानको सुखी करनेके लिये। तुमपर माँकी कृपा होगी। माँके पुलकित हृदयसे जो आशीर्वाद मिलेगा, माँकी गद्गद वाणी तुम्हें अपने दुःखी भाइयोंकी सेवा करते देखकर जो स्वाभाविक वरदान देगी उससे तुम निहाल हो जाओगे। तुम्हारे लोक, परलोक दोनों बन जायँगे। तुम प्रेय और श्रेय दोनोंको अनायास पा जाओगे। माँ तुम्हें गोदमें लेकर तुम्हारा मुख चूमेंगी और फिर तुम कभी उनकी शीतल सुखद नित्यानन्दमय परमधाममय गोदसे नीचे नहीं उतरोगे।

बलिदान करना है तो बलि चढ़ाओ—कामकी, क्रोधकी, लोभकी, हिंसाकी, असत्यकी और इन्द्रिय-विषयासक्तिकी; माँ तुम्हारी इन वस्तुओंको नष्ट कर दे, ऐसी माँसे प्रार्थना करो। माँकी चरणरजरूपी तीक्ष्णधार तलवारसे इन दुर्गुणरूपी असुरोंकी बलि चढ़ा दो अथवा प्रेमकी कटारीसे ममत्व और अभिमानरूपी राक्षसोंकी बलि दे दो। तुम कहोगे कि 'फिर माँके हाथमें नरमुण्ड क्यों है? माँ भैंसेको क्यों मार रही हैं? माँ राक्षसोंका नाश क्यों कर रही हैं? क्या वे माँके बच्चे नहीं हैं? उन अपने बच्चोंकी बलि माँ क्यों स्वीकार करती हैं?' तुम इसका रहस्य नहीं समझते। उनकी बलि दूसरा कोई चढ़ाता नहीं, वे स्वयं आकर बलि चढ़ जाते हैं। अवश्य ही वे भी माँके बच्चे हैं, परंतु वे ऐसे दुष्ट हैं कि माँके दूसरे असंख्य निरपराध बच्चोंको दुःख देकर, उन्हें पीड़ा पहुँचाकर, उनका स्वत्व छीनकर, उनके गले काटकर स्वयं राजा बने रहना चाहते हैं। स्वयं माँ लक्ष्मीको अपनी भोग्या बनाकर मातृगामी होना चाहते हैं, माँ उमासे विवाह करना चाहते हैं, ऐसे दुष्टोंको भी माँ मारना नहीं चाहतीं, शिवको दूत बनाकर उन्हें समझानेके लिये भेजती हैं। पर जब वे किसी प्रकार नहीं मानते, तब दयापरवश हो उनका उद्धार करनेके लिये उन्हें बलिके लिये आह्वान करती हैं और वे आकर जलती हुई अग्निमें पतंगकी भाँति माँके चरणोंपर चढ़ जाते हैं। माँ दूसरे सीधे बालकोंको आश्वासन देने और ऐसे दुष्टोंको शासनमें रखनेके लिये ही मुण्डमाला धारण करती हैं। मारकर भी उनका उद्धार करती हैं। इन असुरोंकी इस बलिके साथ तुम्हारी आजकी यह स्वार्थपूर्ण बकरे और पक्षियोंकी निर्दयता और कायरतापूर्ण बलिसे कोई तुलना नहीं हो सकती। हाँ, यह तुम्हारा आसुरीपन राक्षसीपन अवश्य है और इसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। अतएव राक्षस न बनो, माँकी प्यारी, दुलारी संतान बनकर उसकी सुखद गोदमें चढ़नेका प्रयत्न करो।

(क्रमशः)

भगवती शक्तिकी अद्भुत कृपा

(श्रीकरपात्रीकिंकर श्रीजगन्नाथ स्वामी)

'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः'—किसी भी वस्तुकी सिद्धि लक्षण तथा प्रमाणसे ही होती है। रूपके अस्तित्वमें चक्षु ही प्रमाण है, शब्दके अस्तित्वमें श्रोत्रेन्द्रिय प्रमाण हैं, ठीक इसी प्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अनवगत वस्तुमें मन्त्रब्राह्मणात्मक अपौरुषेय वेद ही प्रमाण हैं। यागजन्य स्वर्ग होता है, यह कार्य-कारणभाव प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होता, अपितु **'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत'**—इस वेद-वाक्यसे उक्त कार्यकारणभाव जाना जाता है। अशब्द, अरूप, अव्यपदेश्य, निर्भास्यमान, निर्दश्यदक, चित्-रूप ब्रह्ममें भी एकमात्र वेद ही प्रमाण है। वेद तटस्थ तथा स्वरूप—द्विविध लक्षणोंद्वारा ब्रह्मका निरूपण करता है। **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** यह ब्रह्मका स्वरूप-लक्षण है। **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** आदि ब्रह्मका तटस्थ-लक्षण है। अर्थात् जिससे अनन्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हो उसे ब्रह्म समझना चाहिये।

शक्ति भी ब्रह्मरूप ही है। देवीभागवतकी भगवती, विष्णुपुराणके विष्णु, शिवपुराणके शिव, श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण, रामायणके मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम—इन पाँचोंमें वेदोक्त ब्रह्मका लक्षण घटित होनेसे ये ब्रह्म ही हैं, जिस प्रकार एक ही पदार्थ नाम-रूपके भेदसे अनेकधा प्रतीत होता है। यथा—सुवर्णसे निर्मित कटक, मुकुट, कुण्डलादि। श्रीगोस्वामीजीने भी इसी बातको रामचरितमानसमें प्रकट किया है—**'जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।'** गोस्वामीजीने अपनी श्रीकिशोरीजीको ब्रह्मरूप सिद्ध किया है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

श्रीमद्भागवतमें भी उसी ब्रह्मको हरि, विरिञ्चि, ... संज्ञाओंसे अभिहित किया है—**'स्थित्यादये हरिविरिञ्चि हरेति संज्ञाः।'** (श्रीमद्भा० १।२।२३)

नृसिंह-तापनीय उपनिषद्में भी कहा है—... **नारसिंही सर्वमिदं सृजति, सर्वमिदं रक्षति, सर्व... संहरति।'** अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डजननी राजरा... षोडशी, महाषोडशी, महात्रिपुरसुन्दरी भगवती ही अ... ब्रह्माण्डोंका सृजन, पालन तथा संहरण करती हैं।

स्कन्दपुराणमें भी भगवतीका ब्रह्मस्वरूप ... किया गया है—

परा तु सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका।
सर्वाधिष्ठानरूपा स्याज्जगद्भ्रान्तिश्चिदात्मनि।

अर्थात् 'सच्चिदानन्दरूपा जगदम्बा ही ... विश्वकी अधिष्ठानभूता है। उसी भगवतीमें जग... भ्रान्ति होती है।'

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत ललितोपाख्यानमें तो भग... तत्पदलक्ष्यार्थ ही स्वीकार किया गया है—

'चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी।'

'सूतसंहिता' भी भगवतीको ब्रह्मरूपमें अ... करती है—

सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदरूपिणी।
सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवंकरी।

देवीभागवतमें भी भगवतीको सगुण-निर्गुण उ... रूपसे स्वीकार किया गया है। अन्यत्र भी भगवतीको—

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता।

उसी शक्तिको विभिन्न दृष्टियोंसे आत्मपुरा... दर्शनोंने स्वीकार किया है—

केचित् तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे।
ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम्॥
विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः।
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः॥
(देवीभागवत)

अर्थात् 'कोई इसे तप कहते हैं, कोई तम, जड, ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति, अजा, विमर्श, अविद्या कहते हैं।'

'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च'—इस वचनके आधारपर भगवतीको निखिल विश्वोत्पादक ब्रह्म ही स्वीकार किया गया है।

दूसरी बात यह है कि दार्शनिक दृष्टिसे प्रणवका जो अर्थ है वही 'ह्रीं' का अर्थ है। स्थूल विश्वप्रपञ्चके अभिमानी चैतन्यको 'वैश्वानर' कहते हैं, अर्थात् समस्त प्राणियोंके स्थूल विषयोंका जो उपभोग करता है। इसी जागरित-स्थान वैश्वानरको प्रणवकी प्रथम मात्रा 'अकार' समझना चाहिये। अर्थात् समस्त वाङ्मय, चार वेद, अठारह पुराण, सत्ताईस स्मृति, छः दर्शन आदि प्रणवकी एकमात्रा अकारका अर्थ है। 'अकारो वै सर्वा वाक्' (श्रुति) अर्थात् समस्त वाणी अकार ही है। स्वप्नप्रपञ्चका अभिमानी चैतन्य 'तैजस' कहलाता है अर्थात् वासनामात्राका स्वप्नमें उपभोग करता है। यह तैजस ही प्रणवकी द्वितीया मात्रा 'उकार' है। अर्थात् अकार-मात्राकी अपेक्षा उकार-मात्रा श्रेष्ठ है।

सुषुप्ति-प्रपञ्चके अभिमानी चैतन्यको प्राज्ञ कहते हैं अर्थात् वह सौषुप्तिक सुखके आनन्दका अनुभव करता है। यही प्राज्ञ प्रणवकी तीसरी मात्रा 'मकार' है। जो अदृश्य-अव्यवहार्य-अग्राह्य-अलक्षण-अचिन्त्य तत्त्व इन मात्राओंसे परे है अर्थात् अद्वैत शिव ही प्रणव है। वही आत्मा है।

अब 'ह्रीं' कारका विचार करें। जो शास्त्रमें प्रणवकी व्याख्या है, वही ह्रींकारकी व्याख्या है। ह्रींकारमें जो 'हकार' है वही स्थूल देह है, 'रकार' सूक्ष्मदेह और 'ईकार' कारण-शरीर है। हकार ही विश्व है, रकार तैजस और ईकार ही प्राज्ञ है। जैसा कि कहा है—

नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये।
हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः।
ईकारः कारणात्मासौ ह्रींकारश्च तुरीयकम्॥

इस प्रकार जान लेनेके बाद—

'हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत्।
रकारं तैजसं देवं ईकारे प्रविलापयेत्।
ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत्॥

हकाररूप विश्वका रकाररूप तैजसमें प्रविलाप करें तथा रकाररूप तैजसका ईकाररूप प्राज्ञमें विलय करे। फिर ईकाररूप प्राज्ञको ह्रींकार (ब्रह्म) में प्रविलाप करे। ऐसा ही देवी-भागवतमें कहा गया है।

कुछ लोग भगवतीका स्वरूप मायिक, जड़ या अनिर्वचनीय स्वीकार करते हैं, किंतु जब उक्त विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि भगवती ब्रह्म ही है, तब उनके शरीरको 'जड़' या 'अनिर्वचनीय' कहना उचित नहीं। भगवतीका शरीर अप्राकृतिक, अभौतिक, अलौकिक सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। इसी दृष्टिसे भगवान् वेदव्यासने भगवान्का शरीर सच्चिदानन्द-स्वरूप ही माना है। यथा—

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१३।५४)

अर्थात् भगवान्का शरीर सच्चिदानन्दमात्र है। गोस्वामीजीने भी यही स्वीकार किया है—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

भगवान् राम-कृष्ण आदिके शरीरको भौतिक नहीं समझना चाहिये।

यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः।
मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलं स्नानमाचरेत्॥

अर्थात् 'जो भगवान् कृष्णके शरीरको भौतिक समझता है उसका मुख देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।' भगवान् व्यास तो स्पष्ट कहते हैं कि **'स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।'**—अर्थात् भगवान्का शरीर स्वेच्छामय ही होता है। भगवती तथा भगवान्में केवल व्याकरणकी दृष्टिसे शाब्दिक भेद है। वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं है, अस्तु।

देवसे देवीका महत्त्व अधिक क्यों ?

अब विचार करना है कि उमा-महेश्वर, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम आदि व्यवहारमें प्रथम भगवतीका ही नाम क्यों लिया जाता है? इसका समाधान भी रोचक है। पहले तो महर्षि पाणिनिकी व्याकरण-दृष्टिसे देखें तो उन्होंने भी शिव-राम-विष्णुकी अपेक्षा भगवती राधा-सीतादिमें कुछ गुणोंकी विशेषता देखकर ही अपने प्रयोगोंमें देवसे पूर्व देवीका नाम रखा है। दार्शनिक दृष्टिसे भी देखें तो पहले **त्वं स्त्री त्वं पुमान्** इत्यादि श्रुति ही नारीका प्रथम उल्लेख करती है। शुद्धबुद्ध-नित्यमुक्त ब्रह्म प्रथमतः नारीका स्वरूप ग्रहण करता है तभी वह सर्जनक्षम्य होता है। इसीलिये देवीका पूर्व-प्रयोग किया जाता है। लोकमें भी बिना भगवती (नारी) के घर श्मशान-सा लगता है। एक दूसरी दृष्टिसे देखें तो निर्गुण ब्रह्म कुछ भी सृष्टि आदि नहीं कर सकता। जब भगवतीका योग होता है तभी वह निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर सृष्टि आदि करनेमें समर्थ होता है। भगवान् शंकराचार्य भी यही कहते हैं—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्' इत्यादि। 'अर्थात् शक्तिसंवलित न होनेपर वह 'शिव' 'शिव' कहलाता है, शिव शब्दमेंसे 'इ' कार निकाल दें तो 'शव' ही रह जाता है। जिसके ऊपर भगवतीका कृपा-कटाक्ष पड़ जाता है वही लोकप, वरुण, कुबेर, [illegible] कहलाता है।

लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि [illegible]
(मान[illegible])

भगवान् वेदव्यासजी भी कहते हैं—'[illegible] **बहुतिथं पदपाङ्गमोक्षकामाः तपः समचरन्**' (श्रीमद्भागवत)

अर्थात् ब्रह्मादि भी भगवतीके कृपाकटाक्षकी [illegible] जोहते रहते हैं। तभी तो आद्य शंकराचार्य भी भगवती[illegible] कृपाकटाक्षकी कामना करते हैं।' **'दवीयांसं दीनं [illegible] कृपया मामपि शिवे।'** अर्थात् हे शिवे! मुझ दीन[illegible] गरीबको भी एक बार देख लो।

एक बार गोस्वामीजी महाराज भगवान् रामके [illegible] गये और बोले कि महाराज! मेरा उद्धार करो तो [illegible] अपना बही-खाता उठाकर देखकर कहने लगे कि [illegible] आपका नम्बर नहीं आया है। तब गोस्वामीजी महा[illegible] निराश होकर श्रीमैथिली-किशोरीजीके पास गये [illegible] कहने लगे—

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
दीन, सब अंग हीन, छीन, मलीन अघी अघाइ।
(विनयपत्रिका ४१)

माँने पूछा—'गोस्वामीजी महाराज! क्या कष्ट है?' उन्होंने कहा—'माँ! आपके प्राणनाथ श्रेष्ठ प्रेमास्प[द] मेरी सुनवाई नहीं करते। जब-जब उनके पास जाता [हूँ] तब-तब वे बही-खाता देखने लगते हैं।' माताने पूछा—'[बेटा!] क्या कहना चाहते हो?' गोस्वामीजी कहने लगे—'माँ! [जब] सरकार आपके पास आ जायँ तब शबरी, जटायु, सुग्रीवकी करुण-कथा चलाकर मेरी भी कथा [चला] देना।' माँने पूछा—'इससे आपका क्या [बन] जायगा?' गोस्वामीजीने कहा—

'सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ।'

कहनेका अभिप्राय यह कि बिना भगवतीकी कृपाके मनुष्यका कल्याण नहीं हो सकता।

हनुमान्‌जी महाराज भगवान्‌से मिलनेपर कृतकृत्य न हो पाये, किंतु जब वे माँसे मिले तो कृतकृत्य हो गये—'**अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता॥**' कहाँतक कहा जाय? भैया भरत भी भगवान् रामसे मिलनेपर शोक-रहित नहीं हो पाये—

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सियपद पदुम परागा॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥

इसीलिये तो श्रीकिशोरीजीरहित रामजी दया नहीं करते। पूरा-पूरा धर्मशास्त्रका पालन करते हैं।

श्रीकिशोरीजीके न रहनेसे ही वाली मारा गया, ताड़का मारी गयी, किंतु आपके अपराधी जयन्तका आपके सांनिध्यमात्रसे प्राण-रक्षण हो गया।' **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।**' कुपुत्र हो सकता है किंतु कुमाता नहीं होती। अन्ततोगत्वा बालक अपराध माँकी गोदीमें करता है तो क्या माँ उस बालकको अपनी गोदीसे उतार देती है? ब्रह्माजी कहते हैं प्रभो!—

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
(श्रीमद्भा० १०।१४।१२)

अर्थात् 'जब बालक गर्भमें होता है तब वह पाद-विक्षेप करता है, माँको कष्ट भी होता है; किंतु माँ उसके अपराधपर ध्यान नहीं देती।' इसीलिये भगवान् शंकराचार्य कहते हैं—

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिवे॥

अर्थात् जिस प्रकार भूमिपर पैर स्खलित होकर गिरनेवालेके लिये भूमि ही रक्षिका—आधार होती है, उसी प्रकार हे माँ! तुम्हारे प्रति किये गये दोषोंसे दूषित अपराधियोंकी रक्षिका—शरणदात्री तुम्हीं हो।

वस्तुतः माँकी करुणा अहैतुकी होती है। भगवान् रामके दरबारमें तो 'शरण' शब्दका उच्चारण करना पड़ता है। जब रावण मर गया, तब भगवान् रामने हनुमान्‌जी महाराजको श्रीकिशोरीजीके पास भेजा तो उन्होंने एक दृश्य देखा। वह दृश्य यह था कि नानारूप धारण करके राक्षसियाँ उन्हें भय दिखा रही थीं। हनुमन्तलालको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कहा कि 'मैं आपसे एक वर चाहता हूँ।' माँने पूछा—'पुत्र! क्या वर चाहते हो?' हनुमान्‌जी बोले—'माँ! आपकी आज्ञा हो जाय तो मैं किसीके दाँत तोड़ डालूँ, किसीकी आँख फोड़ डालूँ।' माँसे नहीं रहा गया, वे तुरंत ही बोल पड़ीं—'बेटा! अभी आपने राघवकी सभाको देखा है, मेरी सभाको नहीं। राघवकी सभामें तो 'शरण' शब्द कहना पड़ता है। ये तो मेरी सखियाँ हैं, इनपर दया करो।' कवि कहता है कि श्रीकिशोरीकी सभाने भगवान्‌की सभाको छोटा बना दिया।

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥
(श्रीगुणरत्नकोष)

अर्थात् विभीषणको तो भगवान् रामके सामने शरण शब्दका उच्चारण करना पड़ा, पर राक्षसियोंको सीताजीके पास नहीं। वे प्रणाममात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं।

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा॥

शक्ति एवं पराशक्ति

(लेखक—श्रीपट्टाभिरामजी, शास्त्री 'पद्मभूषण')

आज हम प्रचण्ड भौतिक विज्ञान-धारामें बह रहे हैं। अनन्त आकाशमें जितना चाहें, उतना विचरण कर सकते हैं, किंतु मानव-जन्मका एक ऐसा परम लक्ष्य होता है, जिसकी प्राप्तिसे सारा विचरण ही समाप्त हो जाता है। चन्द्र-मण्डल पहुँचे, तब भी तृप्ति नहीं होती। शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल आदि-आदि ग्रहोंतक जानेकी पिपासा बनी रहती है। पिपासा होनेपर उसके शमनके लिये मानवका यत्न होना चाहिये। क्षुधित एवं पिपासित होकर मानवको रहना उचित नहीं है। क्षुधा एवं पिपासा अलक्ष्मीके मल हैं। अतएव श्रुति कहती है—

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।

अलक्ष्मीके मलको हटाना प्रत्येक बुद्धिमान् मानवका कर्तव्य है। अलक्ष्मीको दूर करना—हटाना दो दृष्टिकोणसे सम्भव है। एक सांसारिक भौतिक दृष्टिसे, दूसरा आध्यात्मिक-पारमार्थिक दृष्टिसे। संसारमें मानव 'प्राण'का व्यवहार जीवात्माके लिये करता है 'प्राण चला गया अर्थात् मर गया।' कभी शक्ति-बलके लिये व्यवहार करता है—क्षुधा एवं पिपासाका शमन होनेपर 'प्राण आया'। इन दोनों व्यवहारोंका यह निष्कर्ष निकलता है कि शक्तिका आना-जाना प्राणधर्म है। ईश्वरकी सृष्टिमें यह आश्चर्यजनक है कि प्राणवायु निकल जानेके लिये अनेक द्वार होते हुए भी ठहरा है।

नवद्वारपुरे ह्यस्मिन् वायुः संयाति संततम्।
तिष्ठतीत्यद्भुतं तत्र गच्छतीति किमद्भुतम्॥

विवेकी मानव अपनी बुद्धि-शक्तिसे विवेचना करेगा तो इस निष्कर्षपर पहुँचेगा कि जरा-मरण शरीरके, शोक-मोह मनके और क्षुत्पिपासा प्राणके धर्म हैं, ये आत्मासे सम्बन्ध नहीं रखते। आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक पूर्वोक्त पिपासाको आत्मधर्म मानकर उत्तरोत्तर ग्रहोंपर ही आक्रमण करनेके लिये अपनी विवेकशक्तिका व्यय करता रहता है। चिरन्तन वैज्ञानिक ऋषि-महर्षियोंका सिद्धान्त कुछ और ही था। वे कहते हैं—

नाहं याचे पदमुडुपतेर्नाधिकारं मघोनो
नापि ब्राह्मीं भुवनगुरुतां का कथान्या प्रपञ्चे।
अन्यस्यान्यः श्रियमभिलषन्नस्तु कस्तस्य लोके
मह्यं शम्भो दिश मसृणितं मामकानन्दमेव॥

मानव अपनी बुद्धि-शक्तिसे विविध वस्तुओंको, जो अनित्य, नश्वर और घातक हैं, आविष्कृत करके अपनेको सर्वज्ञ समझ लेता है, किंतु अपने स्वरूपको नहीं जानता। अपने स्वरूपका ज्ञान होते ही आविष्कारकी पिपासा शान्त हो जाती है। अभी कुछ दिन पूर्व लोग काष्ठोंको जलाकर पाक बनाकर स्वादिष्ट अन्न-भोजन करते थे, तदनन्तर कोयला-मिट्टीके तेलका उपयोग होने लगा, इसके बाद सिलिण्डर गैसका प्रयोग होने लगा, फिर गैसको नलोंसे पाक होने लगा। पूर्व-पूर्व साधन लुप्त हो गये, नये-नये साधनोंको लाघवकी दृष्टिसे ग्रहण करनेमें तत्परता हुई। इस नवीन गैसके आविष्कारका परिणाम यह हुआ कि काष्ठ, कोयला, मिट्टीके तेलसे काम चलानेवाले महर्घता-पिशाचसे ग्रस्त हुए। उनको काष्ठ आदि प्राप्त नहीं होते हैं, वे रख नहीं सकते। एक ओर क्रय करनेकी शक्तिसे विहीन होते हैं तो दूसरी ओर वैज्ञानिक आध्यात्मिक शक्तिसे दूर होते जा रहे हैं। एक ओर आर्थिक संतुलन बिगड़ रहा है तो दूसरी ओर दैव-चिन्तन घट रहा है। यह है भौतिक विज्ञानके आविष्कारका फल। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि भौतिक विज्ञानके आविष्कार निरर्थक हैं, किंतु मितव्ययिताकी ओर चिन्तन अधिक होना चाहिये। यह चिन्तन तभी होगा, जब हम पूर्वोक्त

पिपासाको कम करेंगे । करोड़ों-अरबों-खरबों खर्च कर हम भी चन्द्रमण्डलतक आदमीको भेजनेका प्रयास करते हैं, दूसरी ओर 'गरीबी हटाओ' पाठ पढ़ाते हैं । गरीबीका हटाना मितव्ययितासे ही साध्य है—

अन्नं धान्यं वसु वसुमतीत्युत्तरेणोत्तरेण
व्यामुह्यन्ते परमकृपणाः पामरा किं विचित्रम् ।
भूमिः खं द्यौर्द्रुहिणपुरमित्युत्तरेणोत्तरेण
व्याकृष्यन्ते विमलमतयोऽप्यस्थिरेणैव धाम्ना ॥

यदि हम वैज्ञानिक भी पामरके समान ही रहे तो क्या लाभ हुआ ? यदि हम आधुनिक भौतिक विज्ञानकी ओर बुद्धि-शक्तिको कम कर 'प्रज्ञान'की ओर बुद्धिका व्यय करते तो देशान्तरसे प्रबल भी बन सकते और देशान्तरका मार्गदर्शी बन सकते । हमारे भारत-देशका संनिवेश विलक्षण है । त्रिकोणात्मक यन्त्र लिखकर उसके अंदर भारत-चित्रको रखिये और तीनों कोनोंमें दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती देवियोंकी प्रतिष्ठा कर मध्यगत भारतमाताको बिन्दुस्थानमें विराजमान श्रीराजराजेश्वरी ललिता पराम्बाके समान ध्यान करें तो प्रतीत होगा कि भारत क्या है । यह स्थिति देशान्तरोंको अलभ्य है । उन देशोंके चित्र टेढ़े-मेढ़े हैं, वे त्रिकोणचक्रके अंदर नहीं आ सकते जैसा भारतका चित्र आता है । पराशक्तिस्वरूपिणी श्रीराजराजेश्वरी ललिता पराम्बिका अपनी शक्तिका दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वतीमें संचार करती हैं और दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वतीके उपासकोंमें वे पराशक्तिसे प्राप्त शक्तियोंका संचार करती हैं । इतना ही नहीं, विश्व—जगती-तलके चराचर वस्तुओंमें पराशक्ति व्याप्त है । इसी कारण पत्थर, काष्ठ, मिट्टी, ओषधितक गुल्म-लता आदियोंसे चित्र-विचित्र वस्तुओंका निर्माण कर पाते हैं । तिलसे ही तेल निकाल सकते हैं, न कि बालूसे । अपने कंधे-पर दूसरेको चढ़ा सकते हैं, पर स्वयं अपने कंधेपर चढ़ नहीं सकते । रोटी बनानेके लिये आटाको जलसे ही संयवन—सानना सम्भव है, तेल एवं घीसे नहीं । तेल, घी, मक्खन थोड़ा मिला सकते हैं । तात्पर्य यह कि प्रत्येक पदार्थमें एक विलक्षण शक्ति है, जो पराशक्तिके संचारसे प्राप्त है । अतएव भारतीय परम्परा है कि पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाशमें लोग देवता-बुद्धि रखते हैं; क्योंकि ये पराशक्तिसे शक्ति-सम्पन्न हैं । इसी दृष्टिसे हमें एकता-बुद्धि उत्पन्न होती है । एकता, अखण्डता शब्दोंकी आवृत्तिसे एकता-बुद्धि नहीं होती, किंतु ये पराशक्तिसे शक्तिसम्पन्न हैं, इस निश्चयसे होती है । वैज्ञानिक अपनी बुद्धिशक्तिसे इन्हें शक्तिसम्पन्न समझ बैठे हैं । हाँ, वैज्ञानिकों-का यह महत्त्व है कि पृथ्वी, अप् आदिमें जो शक्ति है, उसे समझकर ही वे आविष्कारमें प्रवृत्त होते हैं; किंतु इस प्रकार समझनेकी शक्ति उन्हें कहाँसे प्राप्त हुई, यह चिन्तन नहीं करते, यही न्यूनता है । प्रज्ञानी वैज्ञानिक पराशक्ति-प्रभावको समझकर स्वयं पराशक्तिके स्वरूपको प्राप्तकर तदतिरिक्त कोई शक्ति नहीं है, इस सिद्धान्तपर रहते हैं ।

दार्शनिकोंमें मीमांसक 'सामर्थ्यं सर्वभावानां शक्तिरित्यभिधीयते' कहकर शक्तिको अतिरिक्त पदार्थ सिद्ध करते हैं । मीमांसकोंका कथन है कि वेद भगवान्को प्राधान्य देकर वेदविहित कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये । कर्मोंमें अपार शक्ति विद्यमान है । अलौकिक फलोंके साधनके साथ मानवके अपेक्षित ऐहिक फलोंको साधनेकी शक्ति कर्मोंमें विद्यमान है । कर्मोंमें क्रियाशक्ति कहाँसे आयी, इसका निरूपण करते हुए मीमांसक कहते हैं कि वेद-मन्त्रोंसे यह शक्ति प्राप्त होती है । अर्थात् मन्त्रशक्ति क्रियाओंमें संक्रान्त होती है । मन्त्र तो शब्दात्मक है । शब्दशक्ति एवं क्रियाशक्तिका संगम है । मन्त्रशक्ति दो प्रकारकी होती है, एक क्रियाशक्तिसे संक्रान्त होनेके लिये प्रमाणान्तरकी अपेक्षा न रखनेवाली शक्ति और दूसरी प्रमाणान्तरकी अपेक्षा रखनेवाली है । जिसके बिना जो कार्य सम्पन्न न हो सकता हो, उसके सम्बन्धके लिये शब्दशक्ति प्रमाणान्तरकी

अपेक्षा नहीं रखती। जैसे दुर्गा परमेश्वरी सर्वशक्ति, महालक्ष्मी धन-धान्य-वितरणशक्ति, महासरस्वती विद्या-ज्ञानशक्तिको प्रदान करनेकी सामर्थ्य रखती हैं। ये तीनों पराशक्तिके रूपान्तर होते हुए भी जिसके ये रूपान्तर हैं, उसकी अपेक्षा न रखते हुए अपनी शक्तिका प्रयोग कर सकती हैं, किंतु ये सभी बिन्दुस्थानमें विराजमान श्रीराज-राजेश्वरी ललिता पराम्बिकाके अधीन रहती हैं। उसी प्रकार मन्त्र-शब्दोंमें विद्यमान शक्ति प्रमाणान्तरकी अपेक्षा किये बिना ही क्रियाशक्तिके साथ संगत हो जाती है।

जहाँ मन्त्रोच्चारणके बिना क्रिया-कलापका अनुष्ठान नहीं हो सकता, ऐसा आक्षेप आनेपर अपनी शक्तिसे समाधान नहीं हो पा रहा है, वहाँ प्रमाणान्तरकी अपेक्षा होती है। वह प्रमाणान्तर है 'अपूर्व'। अपूर्व वह अदृष्ट कर्मराशि है, जिसका फल-दान प्रारम्भ नहीं हुआ। अपूर्व प्रक्रियाके चिन्तनसे अवगत होता है कि पूर्व-तन्त्र एवं तन्त्रशास्त्रकी मिलती-जुलती समानता है। जैसा कि एक देवताको प्रधान मानकर किसी यागके अनुष्ठान करते हुए अनेक अङ्ग-देवताओंका क्रियात्मक अनुष्ठान होता है। प्रधान याग और अङ्ग-यागसे सभी श्रौत याग विभक्त हैं। उनमें प्रधान याग फलका उत्पादक और अङ्ग-याग उपकारक माना जाता है। यद्यपि प्रधान याग फलके उत्पादनमें शक्ति रखता है, तथापि अङ्गोंकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक अङ्ग अपने उपकारस्वरूप अवान्तर शक्ति अपूर्वको उत्पन्न कर प्रधानके साथ साहित्यको प्राप्त करता है। इन शक्तियोंके साहित्यसे ही प्रधान अपनी शक्तिके द्वारा फलजनक बनता है। अतएव प्रधान यागकी शक्ति अङ्ग-यागोंका 'प्रयोजक',—अनुष्ठापक बनती है। अर्थात् अनुशासक-अनुशास्य भावना बनती है। सभी शक्ति मिलकर भेद होते हुए भी अभिन्न होकर फलोत्पादक बनती हैं, उसी प्रकार श्रीचक्रके पूजनमें त्रिकोणात्मक यन्त्रके मध्य बिन्दुस्थानमें अधिष्ठित श्रीराजराजेश्वरीके अनेक परिवार-देवता हैं। उनमें परमेश्वरी, महालक्ष्मी, महासरस्वतीका विशेष स्थान। इन तीनोंके भी अङ्ग-देवता अनेक हैं। ये अङ्ग हुए भी शक्तिसम्पन्न हैं। अपनी-अपनी शक्ति पराशक्ति जो बिन्दुस्थानमें अधिष्ठित है उससे जाती हैं। स्वतन्त्रतासे पराशक्ति मोक्षसाम्राज्यतक देनेकी सामर्थ्य रखती है, किंतु अपने परिवार-देवताओंकी सहायताको छोड़ती नहीं। इससे सहभाव-भावना उपदेश मिलता है।

ये न केवल परिवार-देवताओंकी सहायताकी अपेक्षा रखती हैं, अपितु मन्त्रगत शक्तिकी भी अपेक्षा रखती हैं। यह श्रौत यागोंमें भी समान है। मन्त्रगत शक्ति विषयमें शिक्षा-ग्रन्थकारोंने विवेचना कर निश्चय किया है। 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त जितने वर्ण उनको पाँच वर्गोंमें बाँटकर क्रमशः एक-एकके अनिल-अग्नि-पृथ्वी-चन्द्र और सूर्य देवता माना है— **अनिलाग्निमहीन्द्वर्काः।'** विश्वमें ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जो इसे मानता न हो। इन देवताओंकी शक्ति सहित मन्त्रके प्रधान देवताकी शक्ति क्रिया-शक्ति सहायता करती है।

त्रिकोणयन्त्रके मध्यमें अवस्थित भारत पराशक्ति-स्थानापन्ना है। तीनों कोणोंमें अवस्थित श्रीदुर्गा परमेश्वरी, महालक्ष्मी, महासरस्वतीके दिशा-... भारतवासी आराधक हैं। कोई समष्टिसे आराधना करते हों तो दूसरे व्यष्टिसे आराधना करते हैं। सभी भारतवासी इनके उपासक हैं। अतएव मनुने—

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।
(२। २०)

—कहकर अपने विचारको प्रकाशित किया। कि पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन शक्तियोंसे उपकार कर आत्मशक्तिको बढ़ाते हैं,

प्रकार त्रिकोणयन्त्रावस्थित पराशक्ति-स्थानापन्न भारतमाता अपने परिवार—जनताकी शक्तिसे उपकृत होकर विश्वके गुरुस्थानको पुनः प्राप्त करें। एतदर्थ हमारा कर्तव्य है कि आपसी भेदभावको भुलाकर एकजुट होकर दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वतीकी उपासनामें हमें लग जाना चाहिये। इससे एक महान् लाभ होगा कि आजकलके भ्रष्टाचार, दुराचार, हत्या, डकैती, आतंकवाद, अलगाववाद आदि बुराइयाँ मिट जायँगी। ये बुराइयाँ भौतिक विज्ञान-धारासे मिट नहीं सकतीं, न तो राजनीतिसे इनका हल हो सकता है। इसके लिये पराशक्तिका ही आश्रय लेना होगा। हम दृढ़तासे कह सकते हैं कि लाखोंकी संख्यामें विद्वान् मिलकर श्रद्धा-निष्ठासे दुर्गा-परमेश्वरीका पूजन, स्तवन-पाठ-हवन करें तो इन उत्पातोंसे भारतमाताको बचा सकते हैं। कतिपय चूहोंसे पहाड़को समतल नहीं बनाया जा सकता, तन्निमित्त बुलडोजरको काममें लेना पड़ता है। अतः लाखों संख्यामें विद्वान् सम्मिलित होकर पराशक्तिका आराधन करें। एतदर्थ गण्य-मान्य सज्जन एकत्रित होकर परामर्श करें और एक रूप-रेखाको तैयार कर कार्यान्वित करनेका यत्न करें। हमारी परम्परा रही है कि देशके ईति-बाधाओंसे बाधित हो जानेपर वैदिक विधिसे सामूहिक अनुष्ठान, वेद-पारायण आदि अनुष्ठित होते थे। हम हिंसाको हिंसासे रोक नहीं सकते, यह उचित भी नहीं है। भारतीय भौतिक शक्तिसे आध्यात्मिक शक्तिको महत्त्व देते हुए आये हैं। हमें भी आध्यात्मिक शक्तिसम्पदासे परिपुष्ट होना है। देशान्तरके समान भौतिक सम्पदाके अर्जनमें दोष नहीं है, किंतु उसीमें भरोसा नहीं रखना है; क्योंकि आज एक उस शक्तिसे प्रबल हो सकता है, कल वह दुर्बल पड़ सकता है। आध्यात्मिक शक्ति-सम्पदा यदि परिपुष्ट हुई तो वह कभी घटेगी नहीं। अतः भौतिक विज्ञानसे शक्तिका सम्पादन करें और पराशक्तिके आराधनसे हम आध्यात्मिक शक्तिसे सम्पन्न हों। तदर्थ दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वतीकी आराधनामें लग जाना चाहिये।

नवीनतामें रहते हुए भी प्राचीनताका अवलम्बन करना ही बुद्धिमानोंका कार्य है। श्रीचक्रकी विधिवत् आराधना करते हुए हम मन्त्रोंके जपद्वारा सांसारिक पीड़ाओंको दूर कर सकते हैं। चिरन्तन वैज्ञानिक ऋषि-महर्षि अपनी विज्ञानकी शक्तिद्वारा अनुसंधानकर मन्त्रोंकी शक्तिसे परिचय रखते थे। उन मन्त्रोंको विधिवत् उपदेश-परम्परासे प्राप्त किये हुए आधुनिक पराशक्तिके आराधक लोकोपकारकी दृष्टिसे प्रयोग कर सफलताको प्राप्त कर सकते हैं, किंतु श्रद्धाकी आवश्यकता है। कभी-कभी हम भारतवासी प्रकृतिके प्रकोपका पात्र बन जाते हैं। कहीं धरती धँस जाती है, झंझावात झोपड़ियोंको उड़ा देता है, चट्टान मकानोंको गिरा देता है, जलतत्त्व गाँव-गाँवको आप्लावित कर देता है। जनता नाना प्रकारके क्लेशोंका अनुभव करती है! अन्ततः इस विपरीत स्थितिका कारण क्या है। कोई भी कार्य बिना कारणसे होता नहीं। मानव इस विप्लवको रद्द करा नहीं सकता। इसका कारण है—हममें दैवचिन्तन-विहीनता। हम वैज्ञानिक चमत्कारजनक नाना पदार्थोंका आविष्कार करते हुए दैवचिन्तनसे विहीन होकर हमारे बुद्धिबलसे ही ये पदार्थ आविष्कृत हुए हैं, यह समझते हैं और अत्याचार, भ्रष्टाचार, हत्या, डकैती आतंक आदि दुष्कर्म भी करते हैं। इन कार्योंका कोई फल होना ही है। प्रत्युत फल है विपरीत प्रकृतिका प्रकोप। कुपित प्रकृतिके विप्लवका अनुभव करना छोड़कर दूसरा उपाय नहीं। प्रकृति प्रकुपित न हो ऐसा करनेका उपाय वैज्ञानिकोंमें नहीं है। चिरन्तन वैज्ञानिक ऋषि-महर्षियोंके पास ऐसे अनेक उपाय थे। वे प्रयोगमें उन उपायोंको क्रियान्वित करते भी थे, जिससे प्रकृतिका विशेष प्रकोप नहीं होता था। उन उपायोंको हम तब अपना सकते हैं जब हम प्राचीनताकी

ओर दृष्टि रखेंगे। आज हम प्रकृतिके प्रकुपित होनेपर विमानसे खाना गिराते हैं, पुनर्वासके लिये प्रबन्ध करते हैं। '**प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्**' न्याय है। कष्ट प्राप्त होनेपर उसको दूर करना आश्चर्य नहीं है, किंतु प्राप्त ही न हो, ऐसा आचरण ही उत्तम है। वही आचरण दैव-आराधना है। आराधनासे ही आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है, केवल रेडियोद्वारा प्रसारणसे नहीं। अनुष्ठानमें लोगोंको लगाना होगा। अनुष्ठान करने-करानेकी हममें शक्ति है। हम उस शक्तिसे पराशक्तिको संतुष्ट और प्रसन्न रख सकते हैं। हम करोड़ों-अरबों धनको पानीकी तरह वृथा बहा रहे हैं, किंतु दैव-आराधना-की चिन्ता भी नहीं करते। तदनुकूल भारतमें शिक्षा नहीं देते। भारतमें अनेक शक्तिपीठ विद्यमान हैं। उन स्थानोंमें अनुष्ठानका प्रबन्ध करना चाहिये। सरकार इस पवित्र कार्यको नहीं करायेगी; क्योंकि वह धर्म-निरपेक्षताका सिद्धान्त लेकर बैठी है। अतः मेरा अनुरोध है कि गण्य-मान्य धनाढ्य मिलकर भारतव्यापी सिद्धपीठोंमें पराशक्तिकी आराधनाके लिये योजना बनायें तो सरकार इसका विरोध न करेगी। देश पूर्वोक्त बाधाओंसे मुक्त होगा और क्षेम-सुभिक्ष भी रहेगा।

अनुकर्ता बनकर रहनेकी अपेक्षा अनुकार्य बनकर रहना भारतीय परम्परा है। अनुकरण सुलभ है, हम दूसरोंसे सीख सकते हैं, किंतु हमसे लोग सीखें, ऐसा बनना कठिन है। श्रुति आदेश करती है—

'**अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः॥**'

(तैत्तिरीयोप० १। ११)

—'यदि अनुष्ठेय कर्मोंमें या चारित्रमें संदेह उत्पन्न होता हो तो लोभरहित अच्छे कार्मों[illegible] रखनेवाले, सतत चिन्तन करनेवाले, धर्मको चा[illegible] जो ज्ञानी महात्मा जैसे रहते हों वैसे है, [illegible] है।' इस आदेशसे यह अर्थ निकलता है कि श्री[illegible] समान हमें रहना है, रावणके समान नहीं। [illegible] श्रीरामचन्द्र अनुकार्य पुरुषोत्तम हैं। श्रीराम पराशक्ति[illegible] अवतार हैं। पराशक्तिसे ही हम शक्तिसम्पन्न हो[illegible] हैं। लक्ष्मण अन्तरिक्षमें छिपकर युद्ध [illegible] इन्द्रजित्को अपने विविध अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा अन्वेषण[illegible] भी प्राप्त न कर सके। अन्तमें—

धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्[illegible]
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम्

(वाल्मी० युद्ध० अध्याय [illegible])

—इस मन्त्रको पढ़कर बाणके प्रयोग [illegible] विजयी हुए। मन्त्रशक्तिका यह अद्भुत माहात्म्[illegible] नियत-कर्मानुष्ठान, निष्ठावान्, शास्त्रानुशासन[illegible] ज्येष्ठोपसेवी, गुरुभक्ति-सम्पन्न, निरहंकारी, विनीत, [illegible] ध्ययनसम्पन्न व्यक्ति ही आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न हो[illegible] आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति पराशक्तिसे अनु[illegible] होता है। आध्यात्मिक शक्तिके अर्जनमें वेद[illegible] पदार्थोंका अनुष्ठान जैसी सहायता करता है, [illegible] वेदनिषिद्ध पदार्थोंका त्याग भी सहायता करता[illegible] विहित पदार्थोंके अनुष्ठानसे एवं निषिद्ध पदा[illegible] त्यागसे आत्मबल प्राप्त होता है, एवं आत्मबल[illegible] व्यक्ति पराशक्तिकी शक्तिको प्राप्त करनेमें क्षमता [illegible] है। अतः सभी भारतवासी अपने कर्तव्योंका [illegible] पालन करते हुए परकीय कार्यक्षेत्रमें हस्तक्षेप न [illegible] हुए आत्मबलको संचितकर पराशक्तिकी आराधना[illegible] भारतमाताको प्रकृत संकटसे छुड़ायें, यही भारतवासि[illegible] मेरा बार-बार हार्दिक अनुरोध है।

शाक्ततन्त्रमें 'कला'-विमर्श

(लेखक—पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

शाक्त-तन्त्रमें कलाके स्वरूप तथा संख्याके विषयमें विशेष विचार किया गया है। माधवाचार्य-प्रणीत शंकर-दिग्विजयमें भी हम कलाओंका संकेत पाते हैं। इस विषयका विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इस ग्रन्थके प्राचीन व्याख्याकार धनपतिसूरिने इस प्रसङ्गमें कुछ बातें लिखी हैं, इनमेंसे कुछ बातें प्राचीन प्रामाणिक तन्त्रग्रन्थोंसे थोड़ा विपरीत पड़ती हैं। फलतः इन ग्रन्थोंकी सहायतासे इस विषयमें तथ्यका निर्णय किया जा रहा है।

दिग्विजयके प्रसङ्गमें शंकराचार्यके मूकाम्बिकाके मन्दिरमें जाने तथा भगवतीकी स्तुति करनेका वर्णन इस ग्रन्थके बारहवें सर्गमें किया गया है। वहाँ भगवतीकी स्तुतिमें निम्नलिखित पद्य मिलता है। इसके अर्थको ठीक-ठीक समझनेके लिये तन्त्रशास्त्रकी कुछ बातोंके जाननेकी आवश्यकता है। पद्य यों हैं—

अष्टोत्तरत्रिंशति याः कलास्ता-
स्वर्ध्याः कलाः पञ्च निवृत्तिमुख्याः।
तासामुपर्यम्ब तवाङ्घ्रिपद्मं
विद्योतमानं विबुधा भजन्ते ॥
(१२ । ३१)

तन्त्रशास्त्रके अनुसार तीन रत्न हैं—शिव, शक्ति और बिन्दु। ये ही तीनों तत्त्व समस्त तत्त्वोंके अधिष्ठाता और उपादानरूपसे प्रकाशमान होते हैं। शिव शुद्ध जगत्‌के कर्ता हैं, शक्ति करण है तथा बिन्दु उपादान है।

बिन्दु

पाञ्चरात्र-आगममें विशुद्ध सत्त्वशब्दसे जिस तत्त्वका अर्थ समझा जाता है, बिन्दु उसीका द्योतक है। इसीका नाम महामाया है। यही बिन्दु शब्दब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्या-शक्ति तथा व्योम—इन विचित्र भुवन, भोग तथा भोग्यरूपोंमें परिणत हो शुद्ध होकर शुद्ध जगत्‌की सृष्टि करता है। जब शक्तिके आघातसे इस बिन्दुका स्फुरण होता है, तब उससे कलाका उदय होता है। कला शब्दका अर्थ है—अवयव, टुकड़े, हिस्से। अतः ये कलाएँ वे भिन्न-भिन्न अवयव हैं, जिनमें सृष्टि-कालमें बैन्दव उपादान शक्तिके आघातसे अपनेको विभक्त करता है। सृष्टि-कालमें मूल प्रकृति अंश-रूपिणी, कलारूपिणी तथा कलांशरूपिणी भिन्न-भिन्न अभिव्यक्त रूपोंको धारण करती है। दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती अंशरूपिणी हैं, पुष्टि, तुष्टि और अन्य देवियाँ कलारूपिणी हैं। जगत्‌की समस्त स्त्रियाँ कलांश-रूपिणी हैं, जो महामायाकी साक्षात् अभिव्यक्ति होनेसे हमारी समधिक श्रद्धाके पात्र हैं—'**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु**' (दुर्गासप्तशती ११ । ६)। इन कलाओंकी उत्पत्ति वर्णोंसे होती है, अतः वर्ण-विषयक विचार यहाँ आवश्यक है।

मूलाधारमें स्थित शब्दब्रह्ममयी विभु कुण्डलिनी-शक्ति ही वर्णमालिकाकी सृष्टि करती है। इसका विस्तृत वर्णन तन्त्रग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। (शारदातिलक प्रथम पटल श्लोक १०८—११३ तथा द्वितीय पटल) और मातृकाचक्रविवेकमें इस विषयका साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। कुण्डलिनी-शक्ति वर्णोंको उत्पन्न करती है। गूढार्थदीपिकाकारके अनुसार शक्ति मूलकारणभूत शब्दके उन्मुख होनेकी अवस्थाका नामान्तर है—**शक्तिर्नाम मूलकारणस्य शब्दस्योन्मुखीकरणावस्थेति।**

वर्णकी उत्पत्ति—

इस शक्तिसे ही ध्वनिका उदय होता है, ध्वनिसे नादका, नादसे निरोधिकाका, उससे अर्धचन्द्रका, उससे बिन्दुका और इस बिन्दुसे परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी-रूप चतुर्विध शब्दोंका

जन्म होता है। परा वाक्के उदयका स्थान मूलाधार है। आगे चलकर स्वाधिष्ठान-चक्रमें उसे पश्यन्ती कहते हैं, हृदयमें उसे मध्यमा कहते हैं और मुखसे कण्ठ-तालु आदि स्थानोंका आश्रय लेकर अभिव्यक्त होनेवाली वाणीको वैखरी कहते हैं—

स्वात्मेच्छाशक्तिघातेन प्राणवायुस्वरूपतः।
मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्ये नाद उत्तमः॥
स एवोर्ध्वतया नीतः स्वाधिष्ठाने विजृम्भितः।
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वे शनैः शनैः॥
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिधः।
तथा तयोर्ध्वं नुन्नः सन् विशुद्धौ कण्ठदेशतः॥
वैखर्याख्यस्ततः कण्ठशीर्षताल्वोष्ठदन्तगः।
जिह्वामूलाग्रपृष्ठस्थस्तथा नासाग्रतः क्रमात्॥
कण्ठताल्वोष्ठकण्ठौष्ठा दन्तौष्ठा द्वयतस्तथा।
समुत्पन्नान्यक्षराणि क्रमादादिक्षकावधि॥
आदिक्षान्तरतेत्येषामक्षरत्वमुदीरितम्॥

(राघवभट्टकी शारदातिलक टीकामें उद्धृत, पृष्ठ ६०)

वर्णप्रकार

वर्ण तीन प्रकारके हैं—(१) सौम्य (चन्द्रमा-सम्बन्धी), (२) सौर (सूर्य-सम्बन्धी) तथा (३) आग्नेय (अग्नि-सम्बन्धी)। स्वर सौम्य वर्ण हैं जो संख्यामें १६ हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। प्रपञ्चसार (तृतीय पटल श्लोक ४-७) के अनुसार इन स्वरोंमें ह्रस्व अ, इ, उ तथा बिन्दु (ं) पुँल्लिङ्ग हैं, दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ तथा विसर्ग (ः) स्त्रीलिङ्ग हैं और ऋ, ॠ, ऌ, ॡ नपुंसक होते हैं। ह्रस्व स्वरोंकी स्थिति पिङ्गला नाड़ीमें, दीर्घ स्वरोंकी इडा नाड़ीमें तथा नपुंसक स्वरोंकी स्थिति सुषुम्ना नाड़ीमें रहती है—

पिङ्गलायां स्थिता ह्रस्वा इडायां संगताः परे।
सुषुम्नामध्यगा ज्ञेयाश्चत्वारो ये नपुंसकाः॥

(शारदातिलक २। ७)

स्पर्श व्यञ्जनोंको सौर वर्ण कहते हैं। ककारसे लेकर मकारतकके पचीस वर्ण तत्तत् स्थानोंको स्पर्श कर उत्पन्न होते हैं। अतः उन्हें स्पर्श कहते हैं। व्यापक वर्ण आग्नेय हैं। ये संख्यामें दस हैं— य र ल व, श ष स ह क्ष त्र।

कलाओंके प्रकार

इन्हीं तीन प्रकारके वर्णोंसे अड़तीस कलाओंकी उत्पत्ति होती है। स्वरोंसे सौम्य (चन्द्रकी) कला (१६), स्पर्शयुग्मोंसे सूर्यकला (१२), यकारादि व्यापक वर्णोंसे अग्निकला (१०) का उदय होता है—

तत्त्रिभेदसमुद्भूता अष्टात्रिंशत् कला मताः।
स्वरैः सौम्याः स्पर्शयुग्मैः सौरा याद्याश्च वह्निजाः।
षोडश द्वादश दश संख्याः स्युः क्रमशः कलाः॥

(प्रपञ्चसार, ३ पटल)

चान्द्री कलाएँ षोडश हैं और उनका जन्म अलग-अलग षोडश स्वरोंसे होता है। उसी प्रकार आग्नेयी कलाएँ दस व्यापक वर्णोंसे पृथक्-पृथक् उत्पन्न होती हैं, परंतु सौर कलाओंका उदय एक-एक स्पर्श वर्णसे नहीं होता, प्रत्युत दो स्पर्शोंके मिलनसे होता है। यह एक विचारणीय विषय है। रवि ही अग्नि-सोमात्मक है। शिवशक्तिका वह सामरस्य है। साम्यावस्थामें जो सूर्य है वही वैषम्यावस्थामें अग्नि तथा चन्द्रमा है। क्षोभ होते ही सूर्य एक ओर अग्नि बन जाता है तथा दूसरी ओर चन्द्र बन जाता है। 'योगिनीहृदयतन्त्र' की दीपिकामें (पृष्ठ १०) अमृतानन्दनाथने इसे स्पष्ट कर लिखा है—

अग्नीषोमात्मकः कामाख्यो रविः शिवशक्तिसामरस्यवाच्यात्मा जातः। तदुक्तं चिद्गगनचन्द्रिकायाम्—

भोक्तृभोगमयगोविमर्शनाद्
देवि मां चिदुदधौ दृढां दशाम्।
अर्पयन्ननलसोममिश्रणं
तद्विमर्श इह भानुजृम्भणम्॥

सौरी कलाओंमें प्रायः आग्नेयी तथा शुचिचान्द्री— उभय कलाओंका शुचि मिश्रण है। दो स्पर्शोंसे मिलकर

एक-एक सूर्यकलाका उदय मानना युक्तियुक्त है। मकार स्वयं रविरूप है 'तदन्त्यश्चात्मा रविः स्मृतः' प्रपञ्चसार ३।८) अतः मकारको छोड़ देनेपर चौबीस स्पर्शोंसे बारह कलाएँ उत्पन्न होती हैं। क्रमसे स्पर्शोंका योग नहीं किया जाता, प्रत्युत एक अक्षर आरम्भका और दूसरा अक्षर अन्तका लिया जाता है। इस प्रकार बारह सौर कलाएँ उत्पन्न होती हैं।

अब इन अड़तीस कलाओंके नाम 'प्रपञ्चसार' (३। १५–२०) तथा 'शारदातिलक' (२। १३–१६) के अनुसार नीचे दिये जाते हैं—

१६ चन्द्रकलाएँ (कामदायिनी)

१–अँ—अमृता
२–आँ—मानदा
३–इँ—पूषा
४–ईँ—तुष्टि
५–उँ—पुष्टि
६–ऊँ—रति
७–ऋँ—धृति
८–ॠँ—शशिनी
९–ऌँ—चन्द्रिका
१०–ॡँ—कान्ति
११–एँ—ज्योत्स्ना
१२–ऐँ—श्री
१३–ओं—प्रीति
१४–औं—अंगदा[1]
१५–अं—पूर्णा
१६–अः—पूर्णामृता

१२ सौरी कलाएँ (वसुदा)

१–कं भं—तपिनी
२–खं बं—तापिनी
३–गं फं—धूम्रा
४–घं पं—मरीचि
५–ङं नं—ज्वालिनी
६–चं धं—रुचि
७—छं दं—सुषुम्ना
८—जं थं—भोगदा
९—झं तं—विश्वा
१०—ञं णं—बोधिनी
११—टं ढं[2]—धारिणी
१२—ठं डं[3]—क्षमा

इस प्रकार १२ देवियाँ १२ सौरी कलाएँ हैं।

१० आग्नेयी कलाएँ[4] (धर्मप्रदा)

१–यं—धूम्रार्चि
२–रं—उष्मा
३–लं—ज्वलिनी
४–वं—ज्वालिनी
५–शं—विस्फुलिङ्गिनी
६–षं—सुश्री
७–सं—सुरूपा
८–हं—कपिला
९–ळं—हव्यवहा
१०–क्षं—कव्यवहा[5]

इस प्रकार १० देवियाँ १० सौरी कलाएँ हैं।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र (भाग २, पृष्ठ ८९४) में इन कलाओंके नाम तथा रूपका उल्लेख भी ठीक इसी प्रकारसे किया गया है। माधवने मूकाम्बिकाकी जो स्तुति लिखी है, वह श्रीविद्याके सम्प्रदायसे ही मिलती है। श्रीविद्यार्णवतन्त्रमें उसका उपलब्ध होना नितान्त पोषक प्रमाण है। अतः इस श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन परम्पराके अनुसार आचार्य शंकर 'श्रीविद्या'-सम्प्रदायके प्रमुख साधक थे। एतद्विषयक अन्य प्रमाणोंमें इस प्रमाणका भी उल्लेख होना आवश्यक है।

१—धनपति सूरिकी टीकामें निर्दिष्ट 'गदा' नाम अशुद्ध है।

२–३—टीकामें 'रं हं' तथा 'णं वं' अशुद्ध हैं। इनके स्थानपर 'टं ढं' तथा 'ठं गं' होना चाहिये।

४–प्रपञ्चसारकी अँगरेजी भूमिका (पृष्ठ २१) में लेखकने 'धूम्रार्चि' को दो नाम मान लिया है तथा मूलग्रन्थमें (पृष्ठ ४१, श्लोक १९) 'हव्यकव्यवहे' द्विवचनान्त होनेपर भी उन्होंने इसे एक ही (दसवीं) कलाका नाम निर्देश किया है।' यह ठीक नहीं है।

५–धनपति सूरिकी टीकामें भी इन कलाओंके नाम देनेमें भ्रम हुआ है। ७ वीं कलाका नाम 'सपाया' नहीं, सुरूपा है। ८वींका नाम 'कविता' नहीं कपिल है, ९वीं कलाका नाम बिल्कुल छोड़ दिया गया है। १० वीं कलाकी उत्पत्ति 'ह' से न होकर 'क्ष' से होती है। इन अशुद्धियोंको शुद्ध करके पढ़ना चाहिये।

भगवान् और उनकी दिव्य शक्ति

(परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

(१)

जो सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे अलग है, वह भगवान्‌की शुद्ध प्रकृति है। यह शुद्ध प्रकृति भगवान्‌का स्वकीय सच्चिदानन्द-घन-स्वरूप है। इसीको संधिनी-शक्ति, संवित्-शक्ति और आह्लादिनी-शक्ति कहते हैं*। इसीको चिन्मयशक्ति, कृपाशक्ति आदि नामोंसे कहते हैं। श्रीराधाजी†, श्रीसीताजी आदि भी यही हैं। भगवान्‌को प्राप्त करानेवाली भक्ति और ब्रह्मविद्या भी यही है।

प्रकृति भगवान्‌की शक्ति है। जैसे, अग्निमें दो शक्तियाँ रहती हैं—प्रकाशिका और दाहिका। प्रकाशिका शक्ति अन्धकारको दूर करके प्रकाश कर देती है तथा भय भी मिटाती है। दाहिका-शक्ति जला देती है तथा वस्तुको पकाती एवं ठण्डकको भी दूर करती है। ये दोनों शक्तियाँ अग्निसे भिन्न भी नहीं हैं और अभिन्न भी नहीं हैं। भिन्न इसलिये नहीं हैं कि वे अग्निरूप ही हैं अर्थात् उन्हें अग्निसे अलग नहीं किया जा सकता और अभिन्न इसलिये नहीं हैं कि अग्निके रहते हुए भी मन्त्र, औषध आदिसे अग्निकी दाहिका-शक्ति कुण्ठित की जा सकती है। ऐसे ही भगवान्‌में जो शक्ति रहती है, उसे भगवान्‌से भिन्न और अभिन्न—दोनों ही नहीं कह सकते।

जैसे दियासलाईमें अग्निकी सत्ता तो सदा रहती है, पर उसकी प्रकाशिका और दाहिका-शक्ति छिपी हुई रहती है, ऐसे ही भगवान् सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें सदा रहते हैं, पर उनकी शक्ति छिपी हुई रहती है। उस शक्तिको अधिष्ठित करके अपने वशमें करके उसके द्वारा भगवान् प्रकट होते हैं—'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया' (गीता ४ । ६) जैसे, जबतक अग्नि अपनी प्रकाशिका और दाहिका-शक्तिको लेकर प्रकट नहीं होती, तबतक सदा रहते हुए भी अग्नि नहीं दीखती, ऐसे ही जबतक भगवान् अपनी शक्तिको लेकर प्रकट नहीं होते, तबतक भगवान् सदा सर्वत्र वर्तमान रहते हुए भी नहीं दीखते।

राधाजी, सीताजी, रुक्मिणीजी आदि सब भगवान्‌की निजी दिव्य शक्तियाँ हैं। भगवान् सामान्यरूपसे सब जगह रहते हुए भी कोई काम नहीं करते। जब करते हैं, तब अपनी दिव्य शक्तिको लेकर ही करते हैं। उस दिव्य शक्तिके द्वारा भगवान् विचित्र-विचित्र लीलाएँ करते हैं। उनकी लीलाएँ इतनी विचित्र और अलौकिक होती हैं कि उन्हें सुनकर, गाकर और याद करके भी जीव पवित्र होकर अपना उद्धार कर लेते हैं।

निर्गुण-उपासनामें वही शक्ति 'ब्रह्मविद्या' हो जाती है और सगुण-उपासनामें वही शक्ति 'भक्ति' हो जाती है। भक्ति भगवान्‌का ही अंश है। जब वह दूसरोंमें मानी हुई ममता हटाकर एकमात्र भगवान्‌की स्वतःसिद्ध वास्तविक आत्मीयताको जाग्रत् कर लेता है, तब भगवान्‌की शक्ति उसमें भक्ति-रूपसे प्रकट हो जाती है। वह भक्ति इतनी विलक्षण है कि निराकार भगवान्‌को भी साकार

* संधिनी-शक्ति 'सत्'-स्वरूपा, संवित्-शक्ति 'चित्'-स्वरूपा और आह्लादिनी-शक्ति 'आनन्द'-स्वरूपा है।

† अवतारके समय भगवान् अपनी शुद्ध प्रकृतिरूप शक्तियोंसहित अवतरित होते हैं और अवतार-कार्योंमें शक्तियोंसे काम लेते हैं। श्रीराधाजी भगवान्‌की शक्ति हैं और उनकी अनुगामिनी अनेक सखियाँ हैं, जो सब भक्तिरूपा हैं और भक्ति प्रदान करनेवाली हैं। भक्तिरहित मनुष्य इन्हें नहीं जान सकते। इन्हें भगवान् और राधाजीकी कृपासे ही जान सकते हैं।

प्रकट कर देती है, भगवान्‌को भी खींच लेती है। वह भक्ति भी भगवान् ही देते हैं।

भगवान्‌की भक्तिरूप शक्तिके दो रूप हैं—विरह और मिलन। भगवान् विरह भी भेजते हैं* और मिलन भी। जब भगवान् विरह भेजते हैं, तब भक्त भगवान्‌के बिना व्याकुल हो जाता है। व्याकुलताकी अग्निमें संसारकी आसक्ति जल जाती है और भगवान् प्रकट हो जाते हैं। ज्ञानमार्गमें भगवान्‌की शक्ति पहले उत्कट जिज्ञासाके रूपमें आती है (जिससे तत्त्वको जाने बिना साधकसे रहा नहीं जाता) और फिर ब्रह्मविद्यारूपसे जीवके अज्ञानका नाश करके उसके वास्तविक स्वरूपको प्रकाशित कर देती है; परंतु भगवान्‌की वह दिव्य शक्ति, जिसे भगवान् विरहरूपसे भेजते हैं, उससे भी बहुत विलक्षण है। 'भगवान् कहाँ हैं! क्या करूँ! कहाँ जाऊँ!'—इस प्रकार जब भक्त व्याकुल हो जाता है, तब यह व्याकुलता सब पापोंका नाश करके भगवान्‌को साकाररूपसे प्रकट कर देती है। व्याकुलतासे जितना शीघ्र काम बनता है, उतना विवेक-विचारपूर्वक किये गये साधनसे नहीं।

(२)

भगवान् अपनी प्रकृतिके समाश्रयसे अवतार लेते हैं और तरह-तरहकी अलौकिक लीलाएँ करते हैं। जैसे अग्नि स्वयं कुछ नहीं करती, उसकी प्रकाशिका-शक्ति प्रकाश कर देती है, दाहिका-शक्ति जला देती है, ऐसे ही भगवान् स्वयं कुछ नहीं करते, उनकी दिव्य शक्ति ही सब काम कर देती है। शास्त्रोंमें आता है कि सीताजी कहती हैं—'रावणको मारना आदि सब काम मैंने किया है, रामजीने कुछ नहीं किया।'

जैसे मनुष्य और उसकी शक्ति (बल) है, ऐसे ही भगवान् और उनकी शक्ति है। उस शक्तिको भगवान्‌से अलग भी नहीं कह सकते और एक भी नहीं कह सकते। मनुष्यमें जो शक्ति है, उसे वह अपनेसे अलग करके नहीं दिखा सकता, इसलिये वह उससे अलग नहीं है। मनुष्य रहता है, पर उसकी शक्ति घटती-बढ़ती रहती है, इसलिये वह मनुष्यसे एक भी नहीं है। यदि उसकी मनुष्यसे एकता होती तो वह उसके स्वरूपके साथ बराबर रहती, घटती-बढ़ती नहीं। अतः भगवान् और उनकी शक्तिको भिन्न अथवा अभिन्न कुछ भी नहीं कह सकते। दार्शनिकोंने भिन्न भी नहीं कहा और अभिन्न भी नहीं कहा। वह शक्ति अनिर्वचनीय है। भगवान् श्रीकृष्णके उपासक उस शक्तिको श्रीजी (राधाजी) के नामसे कहते हैं।

जैसे पुरुष और स्त्री दो होते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण और श्रीजी दो नहीं हैं। ज्ञानमें तो द्वैतका अद्वैत होता है अर्थात् दो होकर भी एक हो जाता है और भक्तिमें अद्वैतका द्वैत होता है अर्थात् एक होकर भी दो हो जाता है। जीव और ब्रह्म एक हो जायँ तो 'ज्ञान' होता है और एक ही ब्रह्म दो रूप हो जाय तो 'भक्ति' होती है। एक ही अद्वैत-तत्त्व प्रेमकी लीला करनेके लिये, प्रेमका आस्वादन करनेके लिये, सम्पूर्ण जीवोंको प्रेमका आनन्द देनेके लिये श्रीकृष्ण और श्रीजी—इन दो रूपोंसे प्रकट होता है†। दो रूप होनेपर भी

* संतोंकी वाणीमें आया है—'दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय।' अर्थात् भगवान्‌ने कृपा करके मेरे लिये विरह भेज दिया।

† येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थे द्विधाभूत्। (श्रीराधातापनीयोपनिषद्)

'जो ये राधा और जो कृष्ण रसके सागर हैं, वे एक ही हैं, पर लीलाके लिये दो रूप बने हुए हैं।'

दोनोंमें कौन बड़ा है और कौन छोटा, कौन प्रेमी है और कौन प्रेमास्पद ?—इसका पता ही नहीं चलता। दोनों ही एक दूसरेसे बढ़कर विलक्षण दीखते हैं, दोनों एक-दूसरेके प्रति आकृष्ट होते हैं। श्रीजीको देखकर भगवान् प्रसन्न होते हैं और भगवान्‌को देखकर श्रीजी। दोनोंकी परस्पर प्रेम-लीलासे रसकी वृद्धि होती है। इसीको रास कहते हैं।

भगवान्‌की शक्तियाँ अनन्त हैं, अपार हैं। उनकी दिव्य शक्तियोंमें ऐश्वर्य-शक्ति भी है और माधुर्य-शक्ति भी। ऐश्वर्य-शक्तिसे भगवान् ऐसे विचित्र और महान् कार्य करते हैं, जिन्हें दूसरा कोई कर ही नहीं सकता। ऐश्वर्य-शक्तिके कारण उनमें जो महत्ता, विलक्षणता और अलौकिकता दीखती है, वह उनके सिवा और किसीमें देखने-सुननेमें नहीं आती। माधुर्य-शक्तिमें भगवान् अपने ऐश्वर्यको भूल जाते हैं। भगवान्‌को भी मोहित करनेवाली माधुर्य-शक्तिमें एक मधुरता, मिठास होती है, जिसके कारण भगवान् बड़े मधुर और प्रिय लगते हैं। जब भगवान् ग्वालबालोंके साथ खेलते हैं, तब माधुर्य-शक्ति प्रकट रहती है। यदि उस समय ऐश्वर्य-शक्ति प्रकट हो जाय तो सारा खेल बिगड़ जाय; ग्वालबाल डर जायँ और भगवान्‌के साथ खेल भी न सकें। ऐसे ही भगवान् कहीं मित्ररूपसे, कहीं पुत्ररूपसे और कहीं पतिरूपसे प्रकट हो जाते हैं तो उस समय उनकी ऐश्वर्य-शक्ति छिपी रहती है और माधुर्य-शक्ति प्रकट रहती है। तात्पर्य यह कि भगवान् भक्तोंके भावोंके अनुसार उन्हें आनन्द देनेके लिये ही अपनी ऐश्वर्य-शक्तिको छिपाकर माधुर्य-शक्ति प्रकट कर देते हैं।

जिस समय माधुर्य-शक्ति प्रकट रहती है, उस समय ऐश्वर्यशक्ति प्रकट नहीं होती और जिस समय ऐश्वर्य-शक्ति प्रकट रहती है, उस समय माधुर्य-शक्ति प्रकट नहीं होती। ऐश्वर्य-शक्ति केवल तभी प्रकट होती है, जब माधुर्यभावमें कोई शङ्का पैदा हो जाय। जैसे, माधुर्य-शक्तिके प्रकट रहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़ते हैं, परंतु 'बछड़े कहाँ गये ?' यह शङ्का पैदा होते ही ऐश्वर्य-शक्ति प्रकट हो जाती है और भगवान् तत्काल जान जाते हैं कि बछड़ोंको ब्रह्माजी ले गये हैं।

भगवान्‌में एक सौन्दर्य-शक्ति भी होती है, जिससे प्रत्येक प्राणी उनमें आकृष्ट हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्यको देखकर मथुरापुरवासिनी स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं—

> **गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं**
> **लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्।**
> **दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-**
> **मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥**
>
> (श्रीमद्भा० १० । ४४ । १४)

'इन भगवान् श्रीकृष्णका रूप सम्पूर्ण सौन्दर्यका सार है, सृष्टिमात्रमें किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है। इनका रूप किसीके सँवारने-सजाने अथवा गहने-कपड़ोंसे नहीं, प्रत्युत स्वयंसिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती; क्योंकि यह नित्य नवीन ही रहता है। समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इस रूपके आश्रित हैं। इस रूपके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं। गोपियोंने पता नहीं कौन-सा तप किया था, जो अपने नेत्रोंके दोनोंसे सदा इनकी रूप-माधुरीका पान किया करती हैं।'

शुकदेवजी कहते हैं—

> **निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना**
> **मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप।**
> **प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः**
> **पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम्॥**
> **पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया।**
> **जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः॥**
>
> (श्रीमद्भा० १० । ४३ । २०-२१)

'परीक्षित् ! मंचोंपर जितने लोग बैठे थे, वे मथुराके नागरिक और राष्ट्रके जन-समुदाय पुरुषोत्तम भगवान्

श्रीकृष्ण और बलरामजीको देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके नेत्र और मुखकमल खिल उठे, उत्कण्ठासे मर गये। वे नेत्रोंद्वारा उनकी मुख-माधुरीका पान करते-करते तृप्त ही नहीं होते थे; मानो वे उन्हें नेत्रोंसे पी रहे हों, जिह्वासे चाट रहे हों, नासिकासे सूँघ रहे हों और भुजाओंसे पकड़कर हृदयसे लगा रहे हों!'

भगवान् श्रीरामके सौन्दर्यको देखकर विदेह राजा जनक भी विदेह अर्थात् देहकी सुध-बुधसे रहित हो जाते हैं—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
(मानस १।२१५।४)

और कहते हैं—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
(मानस १।२१६।२)

वनमें रहनेवाले कोल-भील भी भगवान्के विग्रहको देखकर मुग्ध हो जाते हैं—

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥
(मानस २।१३५।३)

प्रेमियोंकी तो बात ही क्या, वैरभाव रखनेवाले राक्षस खर-दूषण भी भगवान्के विग्रहकी सुन्दरताको देखकर चकित हो जाते हैं और कहते हैं—

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
(मानस ३।१९।२)

तात्पर्य यह कि भगवान्के दिव्य सौन्दर्यकी ओर प्रेमी, विरक्त, ज्ञानी, मूर्ख, वैरी, असुर और राक्षसतक सबका मन आकृष्ट हो जाता है।

वेदोंमें शक्ति-तत्त्व

(लेखक—श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

परब्रह्म—करुणामयी मातृशक्तिके रूपमें

'ममयोनिरप्स्वन्तः समुद्रे।' (ऋग्० १०।१२५।७)

वेदने विश्वको जो महत्त्वपूर्ण तथ्य दिये हैं, उनमें एक यह है कि वह परब्रह्मको माताके रूपमें भी प्रस्तुत करता है। परब्रह्मका यह मातृस्वरूप मानवोंके लिये अद्भुत सहारा बन गया है; क्योंकि सांसारिक प्रेमोंमें माताका प्रेम ही सबसे सहज माना जाता है। मातासे बढ़कर और कोई निःस्वार्थ प्रेम कर नहीं सकता। किसीके करुण पुकारको भले ही कोई अनसुनी कर दे, किंतु मातासे कभी उसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। जबतक वह बच्चेका कष्ट नहीं मिटा लेती, तबतक उसे चैन ही नहीं।

एक बार घोर अकाल पड़ा। यह संकट विश्वके शत्रु दुर्गमासुरद्वारा लाया गया था। उसने ब्रह्मासे वर प्राप्तकर चारों वेदोंको अपने हाथोंमें कैद कर लिया और वेदज्ञोंके मस्तिष्कपर आच्छन्न होकर वहाँसे भी उन्हें लुप्त कर दिया था। वैदिक क्रियाओंके अवरुद्ध हो जानेसे वर्षोंसे वर्षा भी बंद हो गयी थी। नदी-नालोंसे धूल उड़ रही थी, समुद्र भी सूख चले थे। पेड़-पौधे झुलस गये थे। भीषण तपन और भूख-प्याससे लोग तड़प रहे थे। विवश होकर देवोंने पराम्बाकी शरण ली—'क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति।' सामूहिक गुहार लगायी गयी और पराम्बा प्रकट हो गयीं। अपने बच्चोंका वह बिलखना उनसे देखा नहीं गया। आँखें छलछला आयीं। शीघ्र ही अन्तरमें उठनेवाला करुणाका आवेग अकुलाहटके साथ आँसूकी धारा बनकर बह निकला। निकासके लिये दो आँखें कम पड़ रही थीं। झट पराम्बाने कमल-सी कोमल बहुत-सी आँखें बना लीं। अब सैकड़ों आँखोंसे आँसूकी अजस्र धाराएँ बह निकलीं। क्षणमें विश्वका तपन समाप्त हो गया। नदी-नाले भर गये। समुद्रमें

हिलोरें उठने लगीं। पेड़-पौधोंमें अंकुर फूटने लगे। पराम्बाने फलों और फूलोंके ढेर लगा दिये। लहलहाते घासोंका संचार हो गया। लोगोंके प्राणोंमें प्राण आ गये। विश्व संतृप्त हो गया, फिर भी पराम्बाकी आँखोंके आँसू कम नहीं हो रहे थे। वे नौ दिन और नौ रातें रोती ही रह गयीं।[1] अपने बच्चोंकी बीती हुई वह छटपटाहट वे भूल नहीं पा रही थीं। उनके बीते हुए वे आर्तनाद अब भी उनके हृदयको साल ही रहे थे। यही तो माताका हृदय होता है!

विश्वके इतिहासमें इस घटनाकी समता नहीं मिलेगी। इतनी करुणा भला और कौन कर सकता है! पराम्बा तो करुणा-सिन्धु हैं। इनकी करुणाकी एक बूँदके एक कणसे संसारकी समस्त करुणाएँ बनी हैं। फिर पराम्बाकी करुणाकी थाह भला कोई कैसे लगा सकता है! भगवान् व्यासदेवको माता 'शताक्षी' की यह करुणा बेजोड़ ही लगी। उन्होंने स्पष्ट निर्णय दे दिया कि 'माता शताक्षीकी तरह कोई दयालु हो ही नहीं सकता। वे अपने बच्चोंका कष्ट देखकर नौ दिनोंतक लगातार रोती ही रह गयीं'—

न शताक्षीसमा काचिद् दयालुर्भुवि देवता।
दृष्ट्वारुदत् प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी॥
(शिवपु० उ० सं० ५० । ५२)

पराम्बाने ऋग्वेदके वाक्सूक्तमें इस तथ्यका निर्देश कर दिया है। उन्होंने कहा है कि मैं करुणामय हूँ; क्योंकि मेरा आश्रय करुणाका समुद्र ब्रह्म है—

मम योनिः······समुद्रे।[2] (ऋग्० १० । १२५ । ७)

और इस करुणा-जलसे ओत-प्रोत जो ब्रह्म है मैं ही हूँ।

अप्स्व अन्तः······। (ऋग्० १० । १२५ ।

ममतामयी माँ

पराम्बाने वाक् (वागाम्भृणी) सूक्तमें बतलाया कि समस्त प्राणियोंको मैं ही उत्पन्न करती हूँ। इसके लिये किसीकी सहायता अपेक्षित नहीं। जिस प्रकार वायु किसी दूसरेकी सहायताके बिना ही स्वयं बहती रहती है, उसी तरह मैं भी बिना किसी दूसरेकी प्रेरणाके स्वेच्छासे सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त होती हूँ—

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
(ऋग्० १० । १२५ ।

अहं सुवे। (ऋग्० १० । १२५ ।

इस तरह समस्त प्राणी मेरी ही संतान हैं। इनसे मेरी इतनी ममता रहती है कि इन्हें प्यार किये बिना मैं रह नहीं पाती। अतः मायामय देह धारणकर बाहर-भीतर सब ओरसे छूकर प्यार करती रहती हूँ। 'अहमात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि।' (सायण) बच्चोंका बिना स्पर्श किये माताकी ममता पूरी कहाँ है?

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।
(ऋग्० १० । १२५ ।

पराम्बा आगे कहती हैं—'मैं जैसे भूतलवासियोंको स्पर्श कर प्यार प्रकट करती रहती हूँ, वैसे ही सुदूर लोकवासियोंको भी छूकर, गोदमें भरकर प्यार करती रहती हूँ।'

१-रुरोद नव चाह्नानि नव रात्रीः समाकुला। (शि० पु० उ० सं० ५० । ४)

२-भगवान् सौन्दर्य, आनन्द, करुणा आदि समस्त दिव्य गुणोंके सागर हैं। 'राधोपनिषद्' ने भगवान्को सुखसिन्धु कहा है—

'अस्य अगाधस्य सुखसिन्धोः।'

ऋग्वेदने सामान्यतया जो 'समुद्र' शब्दका प्रयोग किया है वह इसीलिये कि ऐसा करनेसे सौन्दर्य आदि गुणोंका इससे संयोग किया जा सके।

स्वर्गके वासी मेरी दिव्य संतान हैं। मेरे ये पुत्र मेरी सृष्टिकी रक्षामें आलस्यरहित होकर निरन्तर लगे ही रहते हैं। इन देवताओंमें प्रधान हैं—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, विष्णु आदि बारह आदित्य, अग्नि, इन्द्र, अश्विनीकुमार, सोम, त्वष्टा, पूषण और भग। ये भिन्न-भिन्न स्थानोंपर जितने भी कार्य करते हैं, सब मेरे लिये करते हैं—

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा। (ऋग्० १० । १२५ । ३)

'ये एक क्षण भी विश्राम नहीं करते, चलते ही रहते हैं। अतः मैं भी इनके साथ चलती रहती हूँ और साथ रहनेका प्यार दिया करती हूँ। इतना ही नहीं, इनका भरण-पोषण और गोदमें लेकर दुलार भी कर लिया करती हूँ'—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।*
(ऋग्० १० । १२५ । १-२)

पराम्बा आगे बतलाती हैं—'इस तरह मेरे समस्त बच्चे मेरे द्वारा ही खाते-पीते, देखते-सुनते और प्यारका जीवन जीते हैं'—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। (ऋग्० १० । १२५ । ४)

तैत्तिरीय उपनिषद्‌में आया है—

को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। (२ । ७ । २)

पराम्बा कहती हैं कि 'यदि मैं आनन्दस्वरूप न होती तो कोई जीना ही क्यों चाहता? जीने, खाने-पीने, सोने आदिमें जो सुखकी प्रतीति होती है, वह इसीलिये कि सर्वत्र मेरा ही आनन्दांश अनुस्यूत है। जिस तरह मेरा 'सत्'-अंश और 'चित्'-अंश कण-कणमें अनुस्यूत है, उसी तरह मेरा 'आनन्द'-अंश भी व्याप्त है।

पराम्बा आप्तकाम हैं, सदा तृप्त हैं। उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती। फिर भी अपने बच्चोंकी भूख-प्यास-पर सदैव ध्यान देती हैं। इस सम्बन्धमें पराम्बाने कहा है—'मेरे कुछ ऐसे लाड़ले हैं, जो मुझे खिलानेमें रस लेते हैं। मेरे खिलाये बिना वे कुछ खाना नहीं चाहते। रोटीकी भूख तो रहती ही नहीं, प्रेमकी भूख अवश्य बहुत लगती है और इसीलिये तो यह प्रपञ्च मैंने फैला रखा है। प्रेमसे दिया हुआ छिलका भी जब खा जाती हूँ, तब प्रेमसे अर्पित हवि और सोमरसको क्यों न खाऊँ-पीऊँगी? इनका दिया खाती हूँ और इनके घरोंको धन-धान्यसे भर देती हूँ—

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।
(ऋग्० १० । १२५ । २)

एक बार त्रिपुरासुर भी विश्वका संहार करनेके लिये उद्यत हुआ। उसके कार्योंसे त्राहि-त्राहि मच गयी। रुद्रसे मेरी संतानोंकी दुर्दशा न देखी गयी। वे धनुष उठाकर त्रिपुरासुरसे भिड़ गये। इस कार्यसे रुद्रपर मेरा प्यार उमड़ पड़ा। बच्चोंका स्पर्श करनेकी तृष्णा तो मुझे रहती ही है, इस बार रुद्रके धनुषको ही छू दिया। स्पर्श पाते ही धनुष अपने-आप तनकर गोल हो गया। रुद्रको उसे चढ़ानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उससे निकला एक बाण ही काम कर गया—

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
(ऋग्० १० । १२५ । ६)

दुर्गमासुर-जैसे कुछ ऐसे विश्वके शत्रु होते हैं, जो वर पाकर देवताओंद्वारा भी अवध्य हो जाते हैं। ऐसे दुष्टोंसे विश्वको बचाने तथा उनका भी उद्धार करनेके लिये मैं स्वयं संग्राममें उतर पड़ती हूँ—

अहं जनाय समदं कृणोमि। (ऋग्० १० । १२५ । ६)

* मन्त्रमें 'चरामि' के साथ 'बिभर्मि' का भी प्रयोग है। 'भृ' धातुके दो अर्थ होते हैं (१) पोषण करना और (२) धारण करना—'डुभृञ् धारणपोषणयोः'।

इस तरह वेदने परब्रह्मको मातृशक्तिके रूपमें प्रस्तुत कर जनताके दुर्गम पथको सरल, सरस और आकर्षक बना दिया है। पराम्बाने अपनी वत्सलताका वर्णन स्वयं श्रीमुखसे किया है। शताक्षी-अवतारमें उनके वचन हैं—

वत्सान् दृष्ट्वा यथा गावो व्यग्रा धावन्ति सत्वरम्।
तथैव भवतो दृष्ट्वा धावामि व्याकुला इव ॥
(शि॰पु॰, उ॰सं॰ ५० । ४२)

अर्थात् 'तुम बच्चोंको देख लेनेके बाद मैं मिलनेके लिये व्याकुल हो जाती हूँ, तब प्रेमाकुलता इतनी बढ़ जाती है कि तुमतक पहुँचनेके लिये मुझे दौड़ना पड़ता है। इस अवसरपर मेरी दशा वही हो जाती है, जो अपने बछड़ोंको देखकर गायोंकी होती है।'

पराम्बाने पुनः कहा—'मैं तुम्हें इस दृष्टिसे देखती हूँ कि तुम मेरे बच्चे हो। तुम्हें देखनेपर मैं देखती ही रह जाती हूँ। बिना देखे रह ही नहीं पाती। बिना देखे तो एक क्षण भी एक युगकी तरह प्रतीत होने लगता है। इसीलिये तो पृथिवीसे लेकर स्वर्गतक दौड़ लगाया करती हूँ। लगता है कि तुम्हारे लिये मैं अपने प्राणोंको भी निछावर कर दूँ'—

मम युष्मानपश्यन्त्याः पश्यन्त्या बालकानिव ।
अपि प्राणान् प्रयच्छन्त्या क्षण एको युगायते ॥
(शिवपु॰, उ॰सं॰ ५० । ४३)

कितना मार्मिक प्रेमावेदन है। कितना प्यार-भरा आश्वासन है! लगता है, इसी क्षण माताकी ओर दौड़ पड़ें। यदि ब्रह्म माताके स्वरूपमें न आता तो और किसी स्वरूपमें इतनी स्वाभाविकतासे भरा प्रेम-संदेश वह कभी नहीं दे पाता।

२—शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद

पराम्बाने वाक्सूक्तमें जो यह बतलाया है कि 'मेरा आश्रय ब्रह्म है'—'**मम योनिः···समुद्रे**', इससे प्रतीत होने लगता है कि 'आश्रय' एक तत्त्व हुआ और 'आश्रयी' दूसरा तत्त्व। इस तरह परब्रह्म और उसकी शक्ति—दोनों पृथक्-पृथक् दो तत्त्व प्रतीत होते हैं और अद्वय... अनुपपन्न होने लगता है! किंतु वास्तविकता ठीक... विपरीत है। सच तो यह है कि पराम्बाने ... आश्रय बतलाकर द्वैतको ही निरास किया है। ... पराम्बा अपनेको आश्रित न बतलातीं, स्वतन्त्र ... तभी द्वैतकी आपत्ति आती। यही कारण है कि ... शंकरने शक्तिकी स्वतन्त्रताका खण्डन किया है। ... अपना आश्रय बतलाकर पराम्बाने व्यक्त कर दि... मुझमें और परब्रह्ममें कोई भेद नहीं है; क्योंकि ... और शक्त्याश्रयमें कोई भेद नहीं होता। अग्निकी दा... और प्रकाशिका शक्तियाँ अग्निको छोड़कर न... सकतीं। यही बात भगवान् वेदव्यासने कही है—

यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थि...
(दे॰ भा॰ ९ । १ ।...)

इसी दृष्टान्तका आश्रयण कर शक्तिदर्शनने ... शब्दोंमें बतलाया है कि शक्ति और शक्त्याश्रयमें ... भेद नहीं होता—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति ...

स्वयं पराम्बाने देवीभागवतमें स्पष्ट शब्दोंमें ... दिया है कि 'मुझमें और परब्रह्ममें सदा एकता है, ... भेद है ही नहीं। जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ और ... हूँ वही परब्रह्म है'—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ...
योऽसौ साहमहं योऽसौ······।

प्रत्येक व्यक्तिमें बहुत-सी सामान्य और वि... शक्तियाँ होती हैं। जैसे बोलनेकी शक्ति, देखनेकी श... सुननेकी शक्ति, चलने-फिरनेकी शक्ति आदि।... शक्तियोंको यदि व्यक्तिसे पृथक्-पृथक् गिना जाय तो ... व्यक्तिको 'एक' न कहा जा सकेगा। अनेक शक्ति... आधारपर उसे भी अनेक मानना पड़ेगा। इन अ... शक्तियोंके रहते हुए भी किसी व्यक्तिको जो 'एक' क... जाता है, वह इसीलिये कि शक्तिकी कभी पृथक् ... रूपमें गणना नहीं होती—

सर्वथा शक्तिमात्रस्य न पृथग् गणना क्वचित्।
(स्वामी विद्यारण्य)

इसपर प्रश्न उठता है कि 'यह आश्रय है और यह आश्रयी है'—इस तरह जब भेदकी प्रतीति सुस्पष्ट हो रही है, तब उस अनुभवका अपलाप भी भला कैसे किया जा सकता है ?' इसके उत्तरमें देवीभागवतके पूर्वोक्त श्लोकका चौथा चरण है—'भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्।' 'यह भेद-प्रतीति बुद्धि-भ्रम है । वास्तविकता यही है कि शक्ति और शक्त्याश्रयमें कोई भेद नहीं होता, शक्ति शक्त्याश्रयस्वरूपा ही होती है ।'

सीतोपनिषद्में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रसे सीता (शक्ति)का प्रतिपादन हुआ है । यह कथन तभी सम्भव है, जब शक्ति और शक्त्याश्रयमें अभेद हो। यदि शक्ति भिन्न होती तो सूत्रका स्वरूप होता—'अथातो शक्तिजिज्ञासा ।'

'राधिका-तापिनी'-उपनिषद्में स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि रससिन्धु राधा और श्रीकृष्ण दो शरीर न होकर एक ही शरीरवाले हैं । जैसे देह और उसकी छाया दो दीखते हैं, किंतु दोनोंका शरीर दो न होकर एक है, वैसे ही राधा और श्रीकृष्ण लीलाके लिये दो दीखते हैं, वास्तवमें दोनोंका शरीर दो न होकर एक है—

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्।
देहो यथा छायया शोभमानः
शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम्॥

इस तरह उस परम तत्त्वको हम चाहे 'परब्रह्म' कहें चाहे 'पराम्बा' कहें; उल्लसित ब्रह्म कहें या 'चिदानन्द-लहरी' बात एक ही है; क्योंकि तत्त्वतः दोनों एक हैं ।

अभेदमें भी एकका प्राधान्य रुचिमूलक है

इस तरह शक्ति और शक्त्याश्रयमें अभेद रहनेपर भी अपनी रुचिके आधारपर दोनोंमेंसे किसी एकको प्रधानता दी जाती है । अद्वैतमतके महान् पक्षधर आचार्य शंकरने शक्त्याश्रयको प्रधानता देकर 'ब्रह्मसूत्र'-का भाष्य लिखा और शक्तिको प्रधानता देकर 'परमार्थ-सार' लिखा । इनके मतको शक्त्याश्रयको प्रधानता देकर 'ब्रह्माद्वैतवाद' कहा जाता है और शक्तिको प्रधानता देकर 'मायावाद' । इसी तथ्यको समझानेके लिये 'गुह्यकाली-उपनिषद्'ने शक्तिको प्रधानता देनेके लिये ठीक उन्हीं शब्दोंको दोहराया है, जिन शब्दोंमें 'श्वेताश्वतरोपनिषद्'ने शक्त्याश्रयको प्रधानता दी है। एक उदाहरण देखिये—

न तस्य कार्य करणं च विद्यते
न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥
(६ । ८)

'श्वेताश्वतर'के ठीक इन्हीं शब्दोंका प्रयोग केवल लिङ्गप्रयुक्त विभक्तिव्यत्यय करके 'गुह्यकाल्युपनिषद्'ने किया है—

तस्या न कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।
परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

प्रेमरूपा पराम्बा अपने प्रत्येक बच्चेकी रुचिको आदर देती हैं । पराम्बाके जिस रूपको देखनेके लिये भक्त छटपटाता है, यदि उस रूपका उसे दर्शन न मिले तो बेचारा छटपटाता ही रह जायगा । दूसरे रूपकी दवा उसे लगेगी नहीं । यही तो पराम्बाकी कृपाकी पराकाष्ठा है कि वे प्रत्येक भक्तकी रुचिके अनुसार अपनेको ढाल लेती हैं—

उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।
(रा० पू० ता० उ० १ । ७)

आत्मामें स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व नहीं

उस अद्वय तत्त्वमें न स्त्रीत्व है, न पुंस्त्व और न नपुंसकत्व ही है—

न स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसकम्।
(गु० का० उप० ६५)

निर्गुणोपासक इसी रूपमें परमात्माको देखते हैं, उनकी ऐसी ही रुचि होती है। इसलिये पराम्बा उनके लिये न स्त्री हैं, न पुरुष हैं और न नपुंसक ही हैं, बस, निर्विशेष आत्मरूप हैं—

अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
(दे० भा०)

आत्मामें स्त्रीत्व, पुंस्त्व, उभयत्व भी

किंतु जो लोग सगुणोपासक हैं, पराम्बाके प्रेमके भूखे हैं, जिनका हृदय उनका तृप्तिकर प्यार चाहता है, उनकी आँचलकी सघन छाया चाहता है, उनके शीतल और सुवासित चरणोंमें माथा टेकना चाहता है और उनके स्नेहोर्मिल हस्तोंका स्पर्श चाहता है, उनकी उपेक्षा क्या ममतामयी एवं करुणामयीसे कभी सम्भव है ? जो सामान्यरूपसे सभी बच्चोंके लिये, उनके लिये भी जो उन्हें जानते-मानते तक नहीं, पृथ्वीसे लेकर स्वर्गतक दौड़ लगाया करती हैं, वह पराम्बा इन प्रेमाकुल बच्चोंकी उपेक्षा कैसे कर सकेंगी ? वे उनके लिये मातृशक्तिके रूपमें आती हैं। वेदने बतलाया है कि 'रसस्वरूप वही पराम्बा किसीके लिये मातृशक्तिके रूपमें, किसीके लिये पुरुषरूपमें, किसीके लिये कुमाररूपमें और किसीके लिये कुमारीके रूपमें अपनेको ढाल लेती हैं'—

सा च स्त्री सा त्व पुमान् सा कुमारः सा कुमारिका।
(गु० का० उ० ५२)

वे पराम्बा श्रीरामकृष्ण परमहंस-जैसे लाडलोंके लिये 'काली' बन जाती हैं, व्रजबालाओंकी रुचिके अनुसार पुरुष बन जाती हैं, चक्रवर्तीके लिये 'कुमार' बन जाती हैं, विदेह राजाके लिये कुमारी बन जाती हैं और किसीके लिये उभयरूप (अर्धनारीश्वर) बन जाती हैं—

या काली सैव कृष्णः स्याद् यः कृष्णः सैव कालिका।

प्रेमास्वादके लिये द्वैताभास

रहस्यकी बात यह है कि पराम्बा रसरूपा हैं, प्रेमरूपा हैं। प्रेम ही उनका सर्वस्व और प्रेम ही उनका स्वभाव है।

रसो वै सः। (उपनिषद्)
प्रेमसर्वस्वस्वभावा। (नारद-पाञ्चरात्र)
चिदेकरसरूपिणी। (ललितोपाख्यान)

प्रेममें द्वैत अनुकूल नहीं होता; क्योंकि इसमें समरसता नहीं आ पाती। काक और मृग दोनोंमें व्यावहारिक भेद है, दोनों एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। तब यदि दोनोंमें प्रगाढ़ प्रेम हो जाय तो भी दोनों समरस नहीं हो सकते। काक न तो अपना रूप खोकर मृग बन सकता है और न मृग अपना रूप खोकर काक।

समुद्र और लहरोंमें वास्तविक भेद नहीं होता। केवल नाम और रूपका भेद होता है; क्योंकि लहरोंके कण-कणमें बाहर-भीतर और चारों ओर समुद्र ही विद्यमान है। समुद्रसे भिन्न उनकी सत्ता ही नहीं है। समुद्र उस आभासित द्वैतके आधारपर लहरोंको उद्वेलित करता और उनके साथ प्रेमका खेल खेलने लगता है। उमंगमें भरकर लहरोंको अपनेमें लिपटा लेता है। लहरें मचलकर जब अलग होने लगती हैं, तब उन्हें फिर कसकर अपनेमें लिपटा लेता है। यह खेल अबाधित गतिसे चलता रहता है। प्रेममें पुनरुक्ति नहीं होती। इस खेलमें जब लीनताकी अवस्था आनेको होती है, तब लहरोंकी सारी अठखेलियाँ बंद हो जाती हैं। वे आनन्दोद्रेकसे अपनापन खोकर समुद्रमें मिलकर एक समरस हो जाती हैं।

अम्बिकाके नेत्रोंसे कालीका प्रादुर्भाव

भृकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफल काद् द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्ताऽसिपाशिनी॥

यह समरसता काक और मृगमें नहीं हो पाती; क्योंकि वहाँ वास्तविक द्वैत—भेद है, आभासित नहीं। स्वयं प्रेम अद्वय होता है और पराम्बा प्रेमरूप हैं, अतएव वे अद्वय और एक हैं—

स्वयमेकैव। (बह्वृचोपनिषद्)

एकेयं (प्रेमसर्वस्वस्वभावा) (नारद-पाञ्चरात्र)

प्रेमके आस्वादनके लिये द्वैताभासकी नितान्त अपेक्षा होती है। इसके बिना प्रेमका बाहरी खेल चल नहीं पाता। अद्वैतसे द्वैतका विरोध है, द्वैताभासका नहीं। द्वैताभास तो प्रेमके खेलमें चमक ला देता है। आप्तोंका अनुभव है कि **'प्रेमके लिये जो अद्वैतमें द्वैतकी** भावना की जाती है **वह अद्वैतानन्दसे भी अधिक हृदयाकर्षक** होती है—

प्रेमार्थं भावितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

कारण, प्रेम ब्रह्मानन्द-सागरमें उल्लास ले आता है, जिससे वह उपोद्वलित एवं तरंगित हो उठता है। इसी भावको व्यक्त करनेके लिये बह्वृचोपनिषद्ने पराम्बाको 'सच्चिदानन्द' न कहकर 'सच्चिदानन्द-लहरी' कहा है—

सा……चिदानन्दलहरी।

आनन्दाम्बुधि वह पराम्बा अपने पुत्रोंका सुख-स्पर्श पानेके लिये, उन्हें हलरानेके लिये, गोदमें लिपटानेके लिये, गले लगानेके लिये उन्हें लहरोंका रूप प्रदान करती है। इस तरह पराम्बा 'सत्, चित् और आनन्द'की लहरोंवाली हो जाती हैं।

पराम्बारूप यह अम्बुधि सब जगह व्याप्त है। पृथ्वी आदि समस्त लोकोंकी लहरें इसीसे सत्ता पाती हैं। इन लहरोंके कण-कणमें पराम्बाम्बुधि अनुस्यूत हैं। नाम और रूपकी उपाधिके अतिरिक्त लहरों और पराम्बाम्बुधिमें स्वरूपका अन्तर नहीं होता। लहरोंमें परस्पर भी औपाधिक भेद होता है। कुछ लहरें तो अध्यात्मकी सर्वोच्च अवस्थाको प्राप्त रहती हैं। वे आनन्दमें मग्न होकर पराम्बाम्बुधिमें समरस बनी रहती हैं। इनमेंसे कुछ पराम्बाकी प्रेम-लीलासे आकृष्ट होकर उसके आस्वादनके लिये समरसता छोड़कर फिर तरंगका रूप ले लेती हैं—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते।

(आचार्य शंकर, नृ० ता० उ० भाष्य)

इसके विपरीत कुछ लहरें अत्यन्त भोली-भाली होती हैं। पराम्बुधिसे आश्लिष्ट रहनेपर भी वे उन्हें नहीं जानतीं, नहीं मानतीं। फिर वे इनसे प्रेम क्या करेंगी? वे प्यार करती हैं दूसरी-दूसरी लहरोंपर। उनपर इतनी आसक्त हो जाती हैं कि उन्हींपर मर मिटती हैं और इस तरह प्यासी-की-प्यासी रह जाती हैं। यह इनकी पतन करानेवाली कैसी अज्ञता है!

एक लहर दूसरी लहरसे प्यार करे, यह बुरा नहीं है। बुरी है आसक्ति, नादानी। पराम्बा प्रत्येक लहरमें व्याप्त हैं, प्रत्येक लहर उन्हींकी है, यह समझकर प्रत्येकसे प्यार करना ही चाहिये; किंतु प्रकाशको छोड़कर अपनी छायाके पीछे दौड़ना नादानी है। जितना ही अपनी छायाके पीछे कोई दौड़ेगा, प्रकाश उससे उतना ही दूर-दूर—बहुत दूर भागता जायगा। साथ ही छाया भी लंबीसे बहुत लंबी होती चली जायगी। उसे पकड़नेके लिये जितनी ही दौड़-धूप की जायगी, वह (छाया) उतनी ही और लंबी होती चली जायगी। अन्तमें वह छाया गहनतम अंधकारमें विलीन हो जायगी। उस लुप्त छायाके लिये कोई हाहाकार करे, मर मिटे तो क्या यह उसकी मूर्खता नहीं? ये भोली लहरें ऐसी ही मूर्खता करती हैं। इसका परिणाम बुरा होता है। वे इस लोकमें कष्ट झेलती हैं और परलोकमें भी दारुण यातना पाती हैं। बेचारी उल्लसित आनन्द पानेके लिये आयी थीं और कहाँ जा फँसीं!

किंतु करुणामयी पराम्बा नरकमें भी इन अधम लहरियोंका साथ नहीं छोड़तीं। बस, रुद्र आदि देवोंकी तरह इन्हें भी अपने साथका सुख देना चाहती हैं। प्यारसे सहलाती हैं, गले लगाती हैं, गोदमें बिठाती हैं, दुलारती हैं, पुचकारती हैं और समझाती हैं—'भोली लहरियो! तुम मेरी हो, प्रकाशरूप हो। छायासे नाता क्यों जोड़ रखा है? मेरा-तुम्हारा नाता ही सच्चा नाता है। नश्वर छायासे नाता ही क्या? यह मायाका चक्कर है। उधरसे मुँह मोड़कर मुझे पहचानो, अपनेको पहचानो। छायासे सम्बन्ध न तोड़ोगी तो क्षीणतापर क्षीणता होती ही चली जायगी'—

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति।(ऋग्० १०। १२५। ४)

किंतु भोली लहरियाँ माया-प्रदत्त 'अहंता' और 'ममता'के लौह-आवरणसे अपनेको इस तरह ढँक लेती हैं कि पराम्बाम्बुधिमें सर्वथा निमग्न रहनेपर भी न तो इसका अनुभव कर पाती हैं, न ब्रह्म-संस्पर्शका ही।

इसी बीच सज्ञान लहरियोंका एक बहुत बड़ा समूह वहाँ इकट्ठा हो चुका था। पराम्बाकी प्रेम-सिक्त सीखें उनके कानोंमें अमृत उड़ेल रही थीं और हृदयमें प्रकाश भर रही थीं। पराम्बाकी दृष्टि जब उनपर पड़ी, तब वे वात्सल्यसे सराबोर हो गयीं। उनकी प्रेमभरी श्रद्धासे विभोर हो उन्होंने परमार्थ-तत्त्वका उपदेश बिना उनके पूछे ही उन्हें दे डाला—

श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।(ऋग्० १०। १२५। ४)

(श्रुत) श्रद्धासे मेरी बातोंको सुननेवाली लहरोंका ओ समूह!(श्रुधि) सुनो। मैं (ते) तुम्हें (श्रद्धिवं) श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका (वदामि) उपदेश करती हूँ। वह ब्रह्म-तत्त्व मैं ही हूँ—

इदृग्वस्त्वात्मिकाहम्। (सायण)

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
(देवीभा० ११। ४। ५)

पराम्बाने बिना पूछे ही इस गोपनीय तत्त्वका उपदेश कर दिया, इससे उनकी ममता आँकी सकती है। भोली लहरियोंने भले ही उससे लाभ उठाया हो, पर सज्ञान लहरियोंका तो इससे बहुत हुआ। भोली लहरोंने उनकी बात अनसुनी कर दी किंतु सज्ञान लहरोंने बहुत ही श्रद्धासे इसे सुना गुना था। फिर भी पराम्बाने उन्हें सावधान कर आवश्यक समझा; क्योंकि अत्यन्त गोपनीय तत्त्वको उन्हें बिना पूछे ही बतला दिया था। उन्होंने कहा कि इस तत्त्वको तुम्हें बिना पूछे स्वयं ही जो बतलाया वह इसीलिये कि यही परमार्थ-तत्त्व है और देवता तथा मानवोंने इसका सेवन किया है—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
(ऋग् १०। १२५। ५)

उपदेशका प्रभाव

सज्ञान लहरें उत्तम अधिकारी थीं। पराम्बाके उपदेशमात्रसे उन्हें परमार्थका साक्षात्कार हो गया। ब्रह्मरूपा बन गयीं। ऐसी ही लहरियोंमें 'आम्भृणी' ऋषिकी कन्या 'वाक्' भी थी। पराम्बाने देव्यथर्वशीर्षमें जिन ऋचाओंका गान किया है, वे इनकी अन्तर्दृष्टिके सामने उभर गयीं और सस्वर उन्हीं आनुपूर्वीमें उच्चरित हो गयीं। अतः यह देवीसूक्त इनके नामसे 'वाक्-सूक्त' भी कहलाता है।

(क्रमशः)

उपनिषदोंमें शक्ति-तत्त्व

(१)

(लेखक—डॉ० श्रीओमप्रकाशजी पाण्डेय)

उपनिषदोंमें सर्वप्रथम केन-उपनिषद्में उमा हैमवती-का प्रसङ्ग आता है, जो अहंकारग्रस्त देवताओंको परम सत्ताकी शक्तिमत्ताका ज्ञान कराती हैं। अग्नि, वायु, इन्द्र-प्रभृति देवोंको यह भ्रम था कि दहन, उत्पवन आदिकी जो शक्तियाँ हमें प्राप्त हैं, उनके अधिष्ठाता हम स्वयं हैं। भगवती उमा हैमवती और कालान्तरसे उनके माध्यमसे अवतरित यक्ष देवोंके अहंकारका शमन कर यह बोध करा देते हैं कि ये शक्तियाँ वस्तुतः ब्रह्मकी हैं। श्वेताश्वतर-उपनिषद्के चतुर्थ अध्यायमें त्रिगुणात्मिका प्रकृति और मायाकी अभिन्नताका निरूपण करते हुए कहा गया है कि प्रकृति ही माया है और महेश्वर उसके अधिष्ठाता हैं—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

रक्त, श्वेत और कृष्ण वर्णमयी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका भी विशद विवरण सांख्यदर्शनसे पहले श्वेताश्वतर-उपनिषद्में है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

इसी उपनिषद्के षष्ठ अध्यायमें ब्रह्मकी पराशक्तिकी विविधताका उपपादन हुआ है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

गायत्री-उपासना मन्त्र-संहिताओंमें बहुधा निर्दिष्ट है, किंतु उसका चरम विकास उपनिषदोंमें ही दृष्टिगोचर होता है। छान्दोग्योपनिषद्में गायत्रीको सर्वभूतात्मक तथा वाङ्मयी बतलाकर उसकी आराधनाका निर्देश है—

'गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किं च वाग्वै गायत्री, वाग् वा इदं सर्वं गायति च त्रायते च।'
(३। १२। १)

महानारायणोपनिषद्में गायत्रीके उसी रूपका उपबृंहण है, जिसका निरूपण अथर्ववेदमें—'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पावमानी द्विजानाम्' के रूपमें हुआ था। इसी उपनिषद्में गायत्री-माताका आह्वान कर उनसे अपनी स्तुतियोंको स्वीकार करनेकी प्रार्थना निर्दिष्ट है—

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व नः॥

देवी-दर्शनकी 'आशा' सभी प्राणियोंके अन्तःकरणमें अवस्थित महाशक्ति है। इसीसे प्रेरित होकर व्यक्ति क्रियाशील होता है। यही वह महाज्योति है, जो हृदयको सदैव आलोकित रखती है। छान्दोग्य-उपनिषद्के तत्त्वद्रष्टाओंने उसी आशारूप महाशक्तिकी ब्रह्मरूपमें उपासनाका निर्देश दिया है—

आशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते…
स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः समृद्ध्यन्ति॥
(छा०उ० ७। १४। १-२)

शक्ति-उपासनाकी दिशामें महानारायणोपनिषद् स्पष्ट विवरणकी प्रस्ताविका है। 'दुर्गा'का नाम सर्व-प्रथम इसीमें प्राप्त होता है। दुर्गाके कात्यायनी, कन्याकुमारी, महाशूलिनी, सुभगा, काममालिनी और गौरी आदि नामान्तर इसमें सुव्यक्तरूपमें पठित हैं। यथा—

कात्यायन्यै विद्महे कन्यकुमारि धीमहि।
तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्॥

साथ ही महाशूलिन्यै विद्महे महादुर्गायै धीमहि । तन्नो भगवती प्रचोदयात् ॥
सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥'

आदि गायत्रियाँ भी हैं । पृथ्वी और दूर्वा-सदृश वस्तुओं-की देवी-रूपमें प्राणप्रतिष्ठा कर उनसे पाप-मोचन और संरक्षणकी प्रार्थना की गयी है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुंधरे ।
शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥
सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा ।
सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्ननाशिनी ॥

भगवती महालक्ष्मीका आह्वान भी इस उपनिषद्में किया गया है—

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥
ॐ भूर्लक्ष्मीः भुवर्लक्ष्मीः सुवः कालकर्णी ।
तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥

इन परिनिष्ठित उपनिषदोंके अतिरिक्त बहुसंख्यक साम्प्रदायिक उपनिषदें भी उपलब्ध हैं । इनमें शैव, वैष्णव और योगमूलक उपनिषदोंके साथ ही शाक्त-सम्प्रदायसे सम्बद्ध उपनिषदें भी प्राप्त होती हैं । इनकी संख्या १८ है । इनमेंसे आथर्वण द्वितीयोपनिषद्में अणिमादि आठ सिद्धियों, ब्राह्मी प्रभृति आठ शक्तियों, सर्वसंक्षोभिणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वोन्मादिनी प्रभृति दस मुद्राओं, विभिन्न तन्मात्राओंकी अधिष्ठातृ-शक्तियों एवं अनङ्गकुसुमा आदि भगवतीके अन्य रूपोंके नमस्कारात्मक मन्त्र संकलित हैं । 'ह्रीं' तथा 'श्रीं'का अनिवार्यतया सभी मन्त्रोंमें योग है ।

कामराजकीलितोद्धारोपनिषद्में शक्ति-उपासनाके अन्तर्गत शक्ति-चक्र आदिकी पूजाका विधान है । 'कालिकोपनिषद्'में नवीन मेघके समान रूपवाली, शवासना भगवती महाकालिकाका ध्यान करनेका निर्देश है ।

जैसा कि नामसे स्पष्ट है, 'गायत्रीरहस्योपनिषद्' और 'गायत्र्युपनिषद्'—इन दोनोंमें गायत्रीके स्वरूप, उपासना-विधान और फलावाप्तिका विशद विवेचन किया गया है । गायत्रीरहस्योपनिषद्में बतलाया गया है कि अग्निसे ओङ्कारकी उत्पत्ति हुई, ओङ्कारसे व्याहृतियों तथा व्याहृतिसे गायत्रीकी । ऋग्वेदादि गायत्रीके चार पाद हैं और वेदाङ्ग उसके शिरःस्थानीय ।

'गुह्यकाली-उपनिषद्'में विश्वके विभिन्न उपादानोंको देवी-स्वरूपके अन्तर्गत निरूपित कर कहा गया है कि जैसे बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार देवीके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञाता व्यक्ति नाम-रूपको छोड़कर परा जगन्माताको प्राप्त कर लेता है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं जगदम्बामुपैति ॥
(गुह्यकाली-उप० ३८)

जगदम्बा अपाणिपाद होती हुई भी सबको ग्रहण कर लेती हैं, चक्षुरहित होती हुई भी सबपर कृपादृष्टि डालती हैं, कर्णरहित होती हुई भी सबकी व्यथा-वेदना सुन लेती हैं । समस्त ज्ञेय वस्तुएँ उन्हें ज्ञात हैं, किंतु उनके सूक्ष्म और सम्पूर्ण स्वरूपको कोई नहीं जानता । वह महाशक्ति सर्वातिशायिनी है—

अपाणिपादा जननी ग्रहीत्री
पश्यत्यचक्षुः सा शृणोत्यकर्णा ।
सा वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तामाहुराद्यां महतीं महीयसीम् ॥

'पीताम्बरोपनिषद्'में दस महाविद्याओंके अन्तर्गत भगवती बगलाकी ध्यानोपासना-विधि निरूपित है । इनके विशेषण हैं—ब्रह्मस्वरूपिणी, सर्वस्तम्भकरी, पीतवसना, पीतविभूषणा, स्वर्णसिंहासनमध्यकमलस्था इत्यादि ।

'राजश्यामलारहस्योपनिषद्'के प्रवक्ता ऋषि मतङ्ग हैं और श्रोता कूर्चिमार। इसमें बतलाया गया है कि गुरुकी आज्ञासे राजश्यामला-मन्त्रका विभिन्न विधियोंसे जप करनेसे कौन-कौन-सी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वृत्ति यदि आध्यात्मिक रहे, दृष्टिमें पारमार्थिकता हो, तो लौकिक विषयवासनाजन्य क्रिया-कलाप भी अन्ततः उदात्त हो जाते हैं।

सभी शाक्त-सम्प्रदायसे सम्बद्ध उपनिषदोंमें 'वनदुर्गोपनिषद्' सर्वाधिक बृहदाकारवाली है। इसमें आरम्भमें ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगादि बतलाकर सात श्लोकोंमें भगवती दुर्गाका ध्यान किया गया है। ध्यानके एक श्लोकसे ज्ञात होता है कि 'वनदुर्गा' नाम भगवती विन्ध्यवासिनी देवीके लिये आया है और इस उपनिषद्‌की योजनाका उद्देश्य वस्तुतः वनदुर्गाके रूपमें उनकी कृपाकी उपलब्धि है—

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां सौदामिनीसंनिभां
शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम्।
ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां
ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननाम्॥

इसमें देवीके प्रसादनार्थ दुर्गादेवीसे सम्बद्ध बहुसंख्यक मन्त्र और प्रायः सभी परम्परागत प्रमुख स्तुति-पद्य समाकलित हैं। बीच-बीचमें रुद्रोंका संस्तवन-नमन भी किया गया है। उपनिषद्‌में विभिन्न कष्टोंसे त्राण दिलानेके लिये की गयी यह प्रार्थना अत्यन्त मार्मिक है—

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतौघात्
सुतदुहितृकलत्रोपद्रवैर्व्याप्यमानम्।
विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं
सकलभुवनमातस्त्राहि मां त्वां नमस्ते॥

'कालिकोपनिषद्'का ही संक्षिप्त रूप है—श्यामोपनिषद्। जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है। १५-१६ पङ्क्तियोंकी अतिसंक्षिप्त श्रीचक्रोपनिषद्‌के आरम्भमें श्रीचक्र-न्यासका निर्देश है। अन्तमें कहा गया है कि शक्तिकी कृपाके बिना मोक्षादिकी प्राप्ति नहीं होती—

बिना शक्तिं न मोक्षो न ज्ञानं न सत्यं न धर्मो न तपो न हरिर्न हरो न विरिञ्चिः। सर्वं शक्तियुक्तं भवेत्। तत्संयोगात् सिद्धीश्वरो भवेत्।

इस प्रसङ्गकी श्रीविद्यातारक, षोढा, हंसषोढा और सुमुखिसंज्ञक उपनिषदें शाक्त-उपासना, श्रीचक्र-स्थापना आदिके अत्यन्त निगूढ पक्षोंकी प्रस्तोत्री हैं, जो गुरु-मुखसे ही श्रव्य हैं। इनमें मन्त्र और मातृकाओंसे संवलित परमरहस्यमय शक्तितत्त्व समाम्नात हैं।

---

(२)

(लेखक—श्रीश्रीधर मजूमदार, एम्० ए०)

प्राचीनकालके आत्मदर्शी महापुरुषोंने, जो अपनी सूक्ष्म अमोघ अन्तर्दृष्टि अथवा अतीन्द्रिय ज्ञानके कारण 'ऋषि' कहलाते थे, इस तत्त्वका उद्घाटन किया कि ब्रह्ममें अन्तर्निहित शक्ति ही सृष्टिका आदिकारण है। उन लोगोंने ध्यानावस्थित होकर यह अनुभव किया कि ब्रह्मकी निजशक्ति ही, जो उसके स्वरूपमें प्रच्छन्नरूपसे विद्यमान है, कारण है। ब्रह्म ही समस्त कारणोंका संचालक है, जिसमें काल और अहं भी सम्मिलित हैं (श्वेताश्वतरोनिषद् १। ३)*। यहाँ आलंकारिक ढंगसे गुण गुणीसे भिन्न कर दिया गया है और यह प्रत्यक्ष है कि श्रुतिने अन्ततोगत्वा इस गुणशक्तिको गुणीसे अभिन्न माना है। यही पराशक्ति है, यही अन्तश्चेतना

---

* ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
य: कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

है और यही सूक्ष्म तथा कारण-शरीरकी संचालिका है, यह आन्तरिक और बाह्य समस्त वस्तुओंको प्रकाश देनेवाली है। इस शक्तिको सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्मसे सर्वथा अभिन्न माना गया है तथा इसका बह्‌वृचोपनिषद्‌में इस प्रकार वर्णन आता है—वह (शक्ति) स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरकी परम शोभा है, वह सत्, चित्, आनन्दकी लहरी है। वह भीतर-बाहर व्याप्त रहती हुई स्वयं प्रकाशित हो रही है। (बह्‌वृचोपनिषद्, खण्ड १)[1] वह समस्त दृश्य पदार्थोंके पीछे रहनेवाली वस्तु-सत्ता (प्रत्यक्-चित्ति) है। 'वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् और अनात्म है।' (बह्‌वृचोपनिषद्, खण्ड १)[2] वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय परमात्माकी—परम दिव्य चेतनाकी आदि अभिव्यक्ति है। (बह्‌वृचोपनिषद्, खण्ड १)[3]

मैत्र्युपनिषद्‌के—'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे…' (५।३) इस मन्त्रके अनुसार स्पष्ट है कि ब्रह्मके दो रूप हैं—जड़ और चेतन। जड़ असत् है, परिवर्तनशील है और विनाशशील है तथा चेतन सत् है। वही ब्रह्म और वही प्रकाश है। शाक्तोंने परब्रह्म परमात्माके उपर्युक्त दोनों रूपोंको एकत्रकर 'शक्ति'के नामसे निर्दिष्ट किया है। महर्षि बादरायणके ब्रह्मसूत्रमें भी जो उपनिषदोंकी एक समन्वयपूर्ण तथा समालोचनात्मक व्याख्या है, इसमें इसी सिद्धान्तकी प्रतिध्वनि मिलती है। उसके दूसरे अध्यायके दूसरे पादमें सृष्टिके कारण-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न प्रचलित सिद्धान्तोंका विश्लेषण कर अन्ततोगत्वा यह निर्णय किया गया है कि चैतन्यादि-विशिष्ट शक्ति ही सृष्टिका कारण है; क्योंकि अन्तिम स्थितिमें ब्रह्म और शक्ति एक ही हो जाते हैं। (ब्रह्मसूत्र २। २। ४४)। वेदान्त यह भी स्वीकार करता है कि ब्रह्मके अंदर शक्ति स्वभावसे ही मौजूद रहती है और विश्वकी उत्पत्ति उसी शक्तिसे होती है।

इस सर्वव्यापी, चिन्मय पराशक्तिकी—जो सगुण और निर्गुण, निराकार और साकार दोनों हैं, अथवा संक्षेपमें जिसे परब्रह्म परमात्माका पर्यायवाची शब्द कह सकते हैं—समस्त हिंदू-जाति अनादिकालसे पूजा और ध्यान करती आ रही है। संसारके किसी भी भागमें प्रचलित किसी धर्मसे उपरिनिरूपित शक्तिवादका कोई विरोध नहीं है। शाक्तलोग सभी धर्मोंमें एक ही परम दिव्यशक्तिकी अभिव्यक्ति देखते हैं। वे इसी अनन्त पराशक्तिको ही विश्वका चेतन कारण समझते हैं और इस पराशक्तिको वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं। उनके मतसे मोक्ष अथवा निरतिशय स्वतन्त्रता इस परम शक्तिके अथवा अपरिमेय आत्माके वास्तविक स्वरूपमें स्थित होनेका ही नाम है तथा यह स्थिति सच्चे ज्ञान और सच्ची भक्तिके तुल्य अनुपातमें सम्मिश्रणसे ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा ज्ञान सर्वव्यापक आत्माके वास्तविक स्वरूपका बोध करा देता है और सच्ची भक्ति अनन्य प्रेमको जगाती है, जिसका पर्यवसान अहंकारके सम्पूर्ण समर्पणमें हो जाता है।

तन्त्रोंमें इस महाशक्तिकी उपासनाका पूरा विकास हुआ है, जिसका अन्तिम उद्देश्य वेदान्तका अद्वैतवाद ही है। इस दृष्टिसे 'कुलार्णवतन्त्र' और 'महानिर्वाणतन्त्र' सबसे आगे बढ़े हुए हैं। महानिर्वाणतन्त्र कहता है कि परमात्मामें स्थित हो जाना ही सर्वोत्कृष्ट पूजा है। इसके बाद दूसरी श्रेणीमें ध्यानकी प्रक्रिया आती है। सबसे निम्न श्रेणीकी पूजामें स्तुतिके कुछ पद गाये जाते हैं और प्रार्थनाके कुछ शब्द कहे जाते हैं तथा बाह्यपूजा तो अधमसे भी अधम कही गयी है।

१. सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति।
२. सैषात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा।
३. चिद्रूपा द्वितीयब्रह्मसंविच्चि:।

शाक्तमतके अनुयायियोंने ठीक-ठीक उपनिषदोंके अनुसार शक्ति-तत्त्वका प्रतिपादन कर अनन्तरवर्ती धार्मिक साधकोंके ज्ञान और साधनकी सुगमताके लिये वेदान्तकी सृजनकारिणी चैतन्यशक्तिके सिद्धान्तकी ही पुष्टि की है। हाँ, इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि वेदान्तके 'परब्रह्म'को तन्त्रोंमें 'पराशक्ति' कहने लगे। इस प्रकार अन्तर तो केवल पारिभाषिक शब्दोंमें ही रह गया, तत्त्वतः मूलमें तो सर्वथा एकता ही है।

चिति-शक्तिकी सर्वात्मकता—सत्-चित्-आनन्द-रूपा शक्ति अपनी सर्वव्यापकतासे सदा-सर्वत्र एकरस विराजमान है। चिति-शक्ति, चिच्छक्ति, चेतन-शक्ति, दैवी-शक्ति, परा-शक्ति, ब्रह्म, आत्मा—सब इसके पर्याय-शब्द हैं। उपनिषदोंमें इसका विशद विवेचन है। बह्वृचोपनिषद्में कहा है—

'देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्। सैव कामकलेति विज्ञायते'''तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। तस्या एव रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्'''सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत् प्राणिस्थावर-जङ्गमं मनुष्यमजीजनत्। सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या'''सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती '''महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक्-चितिः। सैवात्मा। ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिदाद्याऽद्वितीय-ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी'''बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रम्। यद्विभाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दं तदेतत्सर्वाकारा महात्रिपुर-सुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत् सर्वं परं ब्रह्म। पञ्चरूपपरित्यागादस्वरूपप्रहाणतः। अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत् इति। प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मीति वा भाष्यते। तत्त्वमसीत्येवं सम्भाष्यते अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा'''या भाष्यते सैषा षोडशी श्रीविद्या''''''बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति'''वा शुकश्यामलेति वा'''प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती ब्रह्मानन्द-कलेति। ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।'

इससे विदित है कि सृष्टिकी आदिमें देवी ही थीं—'सैषा परा शक्तिः।' इसी पराशक्ति भगवतीसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई। संसारमें जो कुछ है, इसीमें संनिविष्ट है। भुवनेश्वरी, प्रत्यङ्गिरा, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानन्दकला आदि अनेक नाम इसी पराशक्तिके हैं।

अलकैं

देतीं निज भक्तन को सुख-शान्ति, धन-धाम,
शम्भु पै सवार पेढ़ि बंद किये पलकैं।
रोष की जरत ज्वाल, लोचन विशाल लाल,
भालपर स्वेद-बिन्दु मोतिन-से झलकैं॥
रूप देखि दरकत दम्भिन के दिल, दुष्ट-
दानव पछाड़तीं समर में उछल कैं।
खप्पर, खड्ग हाथ, मुण्डन की माल उर,
रण-चण्डिका की रक्त-रंग-भरी अलकैं॥

—जगन्नाथ प्रसाद

शक्ति-पूजाकी प्राचीनता एवं पुराणोंमें शक्ति

(लेखिका—डॉ० कु० कृष्णा गुप्ता, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

ब्रह्मकी शक्ति उसे कहा गया है, जिससे उसने समस्त विश्वको उत्पन्न किया है। ब्रह्माका कर्तृत्वभाव उसका ऐश्वर्य है। भगवान्‌का बल वह है जिससे वे सतत कार्य करते भी नहीं थकते। वीर्यके गुणद्वारा ब्रह्म जगत्‌का उपादान-कारण रहते भी अपरिणामी ही रहता है और उसका तेज वह है जिससे वह बिना सहायताके जगत्‌की रचना करता है। ये पाँचों गुण ज्ञानके अन्तर्गत हैं, ज्ञानरूप हैं और सर्वगुणसम्पन्न हैं। जब वह अपनेको नाना रूपमें प्रकट करनेका संकल्प करता है, तब सुदर्शन कहलाता है।

प्रत्येक वस्तुकी शक्तियाँ स्वभावसे अचिन्त्य और द्रव्यसे अपृथक् स्थित हैं। वे द्रव्यकी सूक्ष्म या अव्यक्त अवस्थाएँ हैं जो पृथकरूपसे गोचर नहीं होतीं या किसी शब्दद्वारा उनका विधान या निषेध नहीं किया जा सकता तथा जो कार्यरूपसे जानी जा सकती हैं—

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः।
स्वरूपेणैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः॥
सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी।
इदंतया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते॥

ईश्वरमें शक्ति उसी प्रकार अभिन्नरूपसे स्थित है जिस प्रकार चन्द्ररश्मि चन्द्रमासे अभिन्न है। शक्ति सहज-रूप है और जगत् उसकी अभिव्यक्ति है। इसे आनन्द कहा गया है; क्योंकि वह निरपेक्ष है। वह नित्य है; क्योंकि कालातीत है। वह पूर्ण है; क्योंकि अरूप है। वह जगत्-रूपसे अभिव्यक्त होता है, इसलिये उसे लक्ष्मी कहते हैं। यह अपनेको जगत्-रूपसे संकुचित करती है, इसलिये कुण्डलिनी कही जाती है और ईश्वरकी महान् शक्ति होनेके कारण विष्णुकी शक्ति भी कही गयी है। शक्ति वास्तवमें ब्रह्मसे भिन्न है तो भी उससे अभिन्न दीखती है। इस शक्तिद्वारा ईश्वर अविराम-रूपसे बिना थके और बिना अन्यकी सहायता लिये सतत जगत्‌की ... करता है 'सततं कुर्वतो जगत्।' ईश्वरकी शक्ति ... प्रकारसे प्रकट होती है—स्थावर-रूपसे तथा क्रिया... ईश्वरकी क्रियाशक्ति सहज है, जो विचार और सं... रूपसे क्रियामें व्यक्त होती है—

स्वातन्त्र्यमूलमिच्छात्मा प्रेक्षारूपं क्रियाफ...

इसे संकल्प या विचार कहा गया है, जिसकी ... अव्याहत है और जो अव्यक्त, काल, पुरुष इत्यादि ... जड़ और चेतन पदार्थोंको उत्पन्न करती है।

इसी शक्तिको दूसरे शब्दोंमें लक्ष्मी या ... शक्ति कहा गया है जो अव्यक्तको अपने विकास... प्रेरित करती है, प्रकृति-तत्त्वोंको पुरुषके सम्मुख ... करती है और समस्त अनुभवमें ओत-प्रोत ... अनुस्यूत है। जब वह इन व्यापारोंका ... नहीं करती, तब प्रलय होता है। इसी शक्तिके ... सृष्टि-सर्जनके समय त्रिगुणात्मक प्रकृति विकास... बनती है। प्रकृति-पुरुषका संयोग भी इसी शक्ति... होता है।

भारतीय दर्शनकी आद्याशक्ति प्रकृति ही रही ... इसी कारण शक्तिको जगत्‌में प्रमुख स्थान दिया ... है। मातृदेवीके मापसे विश्वमें इसी शक्तिकी पूजा हो ... रही है। मिश्र, मेसोपोटामिया, ईरान तथा प्रागैतिहासिक ... भारतमें मातृदेवी, भू-देवीकी कुरूप आकृतियाँ ... जाती रहीं। संसारकी उत्पत्ति (विश्व-सृष्टि) को ... मानकर शक्तिकी पूजा सदा होती रही। सामवेद... मन्त्र 'एक एव द्विधा जातः' के द्वारा भी यही ... गया है कि ईश्वरने अपनेको व्यक्त करनेके लिये ...

एवं प्रकृति—दो भागोंमें विभक्त किया । ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें इसी भावको विस्तारसे दिया गया है । ईश्वरने स्त्री-तत्त्व उत्पन्न किया । उसे 'प्रकृति' कहते हैं । उसे ही माया, महामाया अथवा शक्ति कहते हैं । उसका और ब्रह्मका स्वभाव एक माना गया है । प्रकृति ब्रह्मसे उत्पन्न एवं उसके समस्त गुणोंसे युक्त है । सृष्टिके विस्तार-हेतु प्रकृतिने अनेक देवियोंके रूपमें स्वयंको प्रकट किया—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ।
(देवी० १ । १५ । ५२)

—'यह सारा जगत् मैं ही हूँ । मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा अविनाशी तत्त्व नहीं है ।' वेदोंमें देवीको ॐकारकी अर्धमात्रा तथा गायत्रीमें प्रणव माना है । देवीने स्वयं हिमालयसे कहा है—

अहमेवास पूर्वं हि नान्यत् किंचिन्नगाधिप ।

'सर्वप्रथम मैं ही थी, दूसरा कोई न था ।' यही आदिशक्ति शाक्त-सम्प्रदायकी आराध्या है ।

'इच्छाधिकमपि समर्था वितरणे ।'

'मनुष्यकी इच्छासे भी अधिक फल प्रदान करनेकी सामर्थ्यसे युक्त है ।'

शाक्त-सम्प्रदायकी आराध्या देवी शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायमें भी पूजी जाती हैं । वेदमाता गायत्रीकी उपासना सभी द्विज करते हैं—

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम् ॥

'आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं, इसलिये सभी द्विज शाक्त हैं—शैव और वैष्णव नहीं ।'

भारतमें वैष्णव विष्णुको एवं शैव शिवको पूजते हैं; किंतु शक्तिकी पूजा शाक्तोंके साथ वैष्णव और शैव दोनों सम्प्रदायके व्यक्ति करते हैं । देवी अथवा आदि-शक्तिके बिना ब्रह्मा भी कुछ प्राप्त नहीं कर सकते ।

शक्ति-पूजाकी प्राचीनताको हम सिन्धुघाटीकी सभ्यता-तक ले जा सकते हैं । उत्खननसे प्राप्त बहुसंख्यक चक्राकार वर्तुल फलकोंको प्रजनन-शक्तिका प्रतीक माना गया है । इसी प्रकार जीव-दृष्टिकी प्रयोजनीयता नित्य प्रत्यक्ष करके तन्त्र-शास्त्रोंमें 'पितृमुख' और 'मातृमुख'-के रूपमें स्त्री एवं पुरुष जन-नागोंकी उपासना विकसित हुई । सुमेर-जातिका एक वर्ग जीविकोपार्जनके लिये उर्वरा भूमिकी खोजमें स्त्री और पुरुषकी प्रतीक-उपासना लेकर भारतमें आया । परवर्ती कालमें शिल्पीद्वारा रची गयी देवीकी आकृतियाँ ही सकाम भक्तिकी आग्रह हुईं । सभी यज्ञोंमें जिसे प्रथम पूजा जाता है, जिसकी अनुकम्पासे प्राणि-जगत्के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं, नारीकी ऐसी शक्तिका पूजन शिल्पमें नारी-आकृतिद्वारा सम्भव हुआ ।

परतत्त्वकी मातृरूपमें उपासना करनेकी पद्धति वैदिक युगमें बीजाकार रूपमें प्रचलित थी । शाक्त-पुराणोंमें मातृ-ब्रह्मकी उपासनाने प्रधानता प्राप्तकर पौराणिक भक्तिमार्गकी साधना-धारामें विशेष वेगका संचार कर दिया । ऋग्वेदमें मातृ-ब्रह्मका सुस्पष्ट परिचय मिलता है 'अदिति' नाममें । 'अदिति सर्वलोकजननी, विश्वधात्री, मुक्तिप्रदायिनी, आत्मस्वरूपिणी' आदि है । ऋग्वेदके वाक्सूक्त या देवीसूक्त (१० । १२५) में आद्याशक्ति जगज्जननी देवी भगवतीके स्वरूप और महिमाका वर्णन है । इसमें देवी स्वमुखसे कहती है—'ब्रह्मस्वरूपा मैं ही रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवोंके रूपमें विचरण करती हूँ । मैं ही मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि तथा अश्विनी-कुमारद्वयको धारण करती हूँ ।' वही देवी जनकल्याणके लिये असुरोंके दलनमें निरत रहती है—**अहं जनाय समदं कृणोमि**—वही जगत्की एकमात्र अधीश्वरी है । **अहं राष्ट्री** तथा भक्तोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है—**संगमनी वसूनाम्** ।

जीवके अभ्युदय और निःश्रेयस्—सब उसकी कृपापर निर्भर करते हैं—

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।
(ऋग्वेद १० । १२५ । ५)

'मैं जिसे-जिसे चाहती हूँ, उसे-उसे श्रेष्ठ बना देती हूँ। उसे ब्रह्मा, ऋषि या उत्तम प्रज्ञाशाली बना डालती हूँ।'

कृष्णयजुर्वेदके अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यकमें जगज्जननी भगवतीके स्वरूप और महिमाको प्रकाशित करनेवाला स्तुति-मन्त्र निम्नलिखित है—

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये
सुतरसि तरसे नमः॥
(तैत्तिरीय आरण्यक १० । १)

'जिसका वर्ण अग्निके सदृश है, जो तपःशक्तिके द्वारा जाज्वल्यमान हो रही है, जो स्वयं प्रकाशमान है, जो ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलकी प्राप्तिके लिये साधकोंके द्वारा उपस्थित होती है, मैं उन्हीं दुर्गादेवीकी शरण ग्रहण करता हूँ। हे देवि! तुम संसार-सागरको पार करनेवालोंके लिये श्रेष्ठ सेतुरूपा हो, तुम्हीं परित्राण-कारिणी हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।'

केनोपनिषद्में ब्रह्मविद्या और ब्रह्मशक्तिस्वरूपिणी हैमवती उमाका प्रसङ्ग है। उससे ज्ञात होता है कि आद्या-शक्ति ही सर्वभूतोंमें शक्तिरूपमें अवस्थित हैं। उनकी शक्तिके बिना अग्नि एक तृणको भी नहीं जला सकती, वायु एक छोटे-से तृणको भी एक स्थानसे हटा नहीं सकती।

पुराणोंमें शक्ति

वेदों और उपनिषदोंमें निहित आद्याशक्तिके तत्त्वोंका आश्रय लेकर शाक्त-पुराणोंमें देवीके स्वरूप, महिमा और उपासना-प्रणालीका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। पौराणिक युग शक्तिकी उपासनाका यौवनकाल कहा जाता है; क्योंकि पुराणोंके व्यापक प्रचारसे शक्तिकी उपासनाको इतना बल मिला कि वह घर-घरकी उपास्य बन गयी। देवीके लिये प्रयुक्त हुए जगन्माता तथा जगदम्बा आदि विशेषण उनके मातृरूपको लक्षित करते हैं। देवीका यह रूप पुराण-साहित्यमें अधिक स्पष्ट एवं विकसित हुआ है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति, पृथ्वी और उसकी गन्ध तथा क्षीर और उसकी धवलतामें कोई भेद नहीं है, उसी तरह शक्ति और शक्तिमान्में अभेद दर्शाया गया है। सांख्य-दर्शनका प्रकृति तथा पुरुष-सम्बन्धी सिद्धान्त इसी जगदम्बा आदिशक्तिका प्रतीक है। पुराण निश्चयरूपसे वैदिक सिद्धान्तोंके विस्तारमात्र हैं। उनकी रचनाका उद्देश्य वेदार्थका उपबृंहण करना ही रहा है। देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण, कालिकापुराण, देवीपुराण, महाभागवत आदि पुराणों तथा उपपुराणोंमें देवीका माहात्म्य वर्णित है। मार्कण्डेयपुराणके अन्तर्गत 'सप्तशतीचण्डी' देवी-माहात्म्यसे सम्बन्ध रखनेवाले श्रेष्ठ और नित्य पाठ्यग्रन्थके रूपमें हिंदू-समाजमें प्रचलित है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अन्तर्गत प्रकृतिखण्डमें, शिवपुराणके अन्तर्गत उमासंहिता-प्रकरणमें तथा ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत ललितोपाख्यान-प्रकरणमें भी शक्तिके माहात्म्य और साधनापद्धतिका वर्णन है।

महाभागवत—महाभारतके अन्तर्गत भगवती गीतामें देवीके परमेश्वरीत्वका वर्णन उपलब्ध होता है—

सृजामि ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम्।
संहरामि महारुद्ररूपेणान्ते निजेच्छया॥
दुर्वृत्तशमनार्थाय विष्णुः परमपूरुषः।
भूत्वा जगदिदं कृत्स्नं पालयामि महामते॥

देवी कहती है—'मैं ही ब्रह्मारूपसे जगत्की सृष्टि करती हूँ तथा अपनी इच्छाके वश महारुद्ररूपसे अन्तमें संहार करती हूँ। मैं ही पुरुषोत्तम विष्णुरूप धारण करके दुष्टोंका विनाश करते हुए समस्त जगत्का पालन करती हूँ।'

देवीभागवत—देवीभागवत यद्यपि उपपुराण माना जाता है, परंतु शाक्तमतवालोंके लिये यह किसी महापुराणसे कम नहीं है। इसमें शक्ति-तत्त्वका विस्तृत प्रतिपादन किया गया है। शक्तिकी प्रधानताको स्वीकारा गया है। शक्तिकी महिमापर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि महाशक्ति ही शारीरिक विकार, मोह, अहंकार, आलस्य, राग-द्वेष तथा वासनाके प्रतीक मधु-कैटभ, महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ, धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड तथा रक्तबीजका सामर्थ्य या धर्म-सिंहपर आरूढ़ होकर प्रभुत्व स्थापित करनेवाले विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे लक्ष-लक्ष दुष्प्रवृत्तिरूप असुरोंके साथ ही लीला-लीलामें विनास कर देती है। यह देवी तृतीय नेत्रसे ज्ञानकी वर्षा कर ज्ञानियोंको अमृत प्रदान करती है। देवी तथा ब्रह्ममें वास्तविक भेद नहीं है। इसका प्रतिपादन इस प्रकार है—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥
(देवीभा० ३।६।२)

'मैं और ब्रह्म एक ही हैं, मुझमें और ब्रह्ममें किंचिन्मात्र भेद नहीं है। जो वे हैं वही मैं हूँ, जो मैं हूँ वही वे हैं। भेदकी प्रतीति बुद्धिभ्रमके कारण होती है।' शक्तिकी महिमापर प्रकाश डालते हुए एक स्थलपर कहा गया है—

वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप।
शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा॥

'समस्त भूतोंमें सर्वरूपसे शक्ति विद्यमान है। शक्तिके बिना प्राणी सर्वदा शवके समान हो जाता है।'

शक्ति एक ही है। आराधकोंके गुण-कार्य-भेदसे उसके महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, शिव, विष्णु, ब्रह्माके समानधर्मा रूप हो जाते हैं। कहीं-कहीं आद्यादेवी महालक्ष्मीको मानकर उन्हींसे काली और सरस्वतीका प्रादुर्भाव माना गया है—

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥

देवीने स्वयं एक स्थानपर कहा है—'मैं ही बुद्धि, श्री, कीर्ति, गति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एवं क्षमा हूँ। कान्ति, शान्ति, स्पृहा, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं ही हूँ। संसारमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसमें मेरी सत्ता न हो। जो कुछ दिखायी देता है वह सब मेरा ही रूप है। मैं ही सब देवताओंके रूपमें विभिन्न नामोंसे स्थित हूँ और उनकी शक्तिरूपसे पराक्रम करती रहती हूँ। जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें ज्योति एवं चन्द्रमामें शैत्य मैं ही हूँ। संसारके समस्त जीवोंकी स्पन्दन-क्रिया मेरी शक्तिसे ही होती है। यह निश्चय है कि मेरे अभावमें वह नहीं हो सकती। मेरे बिना शिव दैत्योंका संहार नहीं कर सकते। संसारमें जो व्यक्ति मुझसे रहित है वह 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता।'

मार्कण्डेयपुराण—शाक्त-मतका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीदुर्गासप्तशती' मार्कण्डेयपुराणका ही एक प्रमुख अंश है। इसमें देवी भगवती दुर्गाकी कथा विस्तृतरूपमें वर्णित है। इसमें देवीने कहा है कि जब-जब संसारमें दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओंका संहार करूँगी। दुष्टदलन तथा धर्मस्थापनके लिये देवी अवतीर्ण होती हैं—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
(मा० पु० ९१।५१)

देवीका माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—'देवीने इस विश्वको उत्पन्न किया है और वे ही जब प्रसन्न होती हैं तब मनुष्योंको मोक्ष प्रदान कर देती हैं। मोक्षकी सर्वोत्तम हेतु-स्वरूपा, ब्रह्मज्ञानस्वरूपा, विद्या एवं संसार-बन्धनकी कारणरूपा वे ही हैं,

वे ही ईश्वरकी भी अधीश्वरी हैं । इसमें शक्तिके विषयमें लिखा है—

यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥

'अर्थात् 'हे देवि ! जगत्‌में सर्वत्र जड़-चेतन जो कुछ पदार्थ है, उन सबोंकी मूलशक्ति या प्राण आप ही हैं ।'

इस संसारका कारण चिन्मयी, प्राणस्वरूपिणी, संसारव्यापिनी एकमात्र शक्ति ही है । इसी शक्तिको नमस्कार करते हैं—

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण—इस पुराणके प्रकृतिखण्ड (२ । १६ । १७–२०)में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

'तुम सबकी जननीभूत मूलप्रकृति ईश्वरी हो, सृष्टि-उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें रहती हो और अपनी इच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो । तुम कार्योंके लिये सगुण बन जाती हो, परंतु वास्तवमें तुम निर्गुणा ही हो । तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य और सनातनी हो, परम तेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हो, सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा और परात्परा हो । तुम बिना आश्रयरहित सर्वपूज्या और सर्वबीजस्वरूपा हो, तुम सर्वज्ञा, सर्वमङ्गलकारिणी और सर्वप्रकारके मङ्गलोंकी भी मङ्गल हो ।

इसी पुराणमें एक अन्य स्थानपर श्रीकृष्ण राधाको सम्बोधित करते हुए कहते हैं—'हे राधे ! जिस तरह तुम हो, उसी तरह मैं भी हूँ । हम दोनोंमें अभेद है । जिस तरह क्षीरमें धवलता, अग्निमें जलानेकी शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध विद्यमान है, उसी तरह मैं तुममें हूँ । मैं तुम्हारे बिना सृजन-क्रियामें असमर्थ हूँ । सृजन-क्रियाका मैं बीजरूप और तुम आधारभूता हो, तुम्हीं सम्पत्ति, विश्वकी आधारभूता और सबकी सर्वशक्तिरूपा हो ।

शिवपुराण—इस पुराणके उमासंहिता-प्रकरणमें शक्तिके माहात्म्यका वर्णन दिया गया है । भगवान् शिव संसारव्यापी पुँल्लिङ्गताको धारण करते हैं और देवप्रिया शिवा समस्त स्त्रीलिङ्गताको धारण करती है—

पुँल्लिङ्गमखिलं धत्ते भगवान् पुरशासनः ।
स्त्रीलिङ्गं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा ॥

उपर्युक्त पुराणोंके अतिरिक्त कालिकापुराण शक्तिवादका स्वतन्त्र पुराण है । ब्रह्माण्डपुराणके द्वितीय भागके अन्तर्गत 'ललितासहस्रनाम'का तीन सौ बीस श्लोकोंका पूरा प्रकरण है । कूर्मपुराणमें परमेश्वरीके आठ महान् नाम आये हैं । वहीं ऐसा उल्लेख है कि अर्धनारीश्वरके पुरुष-अंशमेंसे शिव प्रकट हुए और स्त्री-अंशमेंसे शक्तियाँ उद्भूत हुईं ।

साधन-मार्गमें शक्ति-तत्त्व

(दिवंगत महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी, तर्कभूषण)

शक्ति और शक्तिमान् परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न—इस विषयमें मीमांसक और नैयायिक एकमत नहीं हैं। नयायिक कहते हैं —'शक्ति कोई पृथक् पदार्थ नहीं; क्योंकि उसके माने बिना भी काम चल जाता है । जैसे दाहरूप कार्यके द्वारा हम अग्निकी दाहिका-शक्तिका अनुमान कर लेते हैं । दाह्य वस्तुका अभाव होनेपर दाहिका-शक्तिका पृथक् व्यपदेश नहीं रहता । जब दाहरूप कार्यकी उत्पत्ति होती है, तब उसे देखकर ही लोग अग्निको दाहक या दाहिका-शक्ति-सम्पन्न कहते हैं। श्रुति परब्रह्मको अद्वय, सच्चिदानन्दस्वरूप कहती है और फिर वही श्रुति कहती है—**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म ।'** 'जिससे प्राणिवर्ग जन्म ग्रहण करते हैं, जिसके द्वारा जन्म-ग्रहणके उपरान्त जीते हैं और अन्तमें प्रयाणकालमें जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, वही ब्रह्म है ।'

जन्म, जीवन और सम्प्रवेश (प्रलय)—इन तीन कार्योंके द्वारा जनन-पालन-संहार-कारिणी शक्ति है, उसकी सिद्धि उपर्युक्त शास्त्र-वाक्य तथा तन्मूलक अनुमान-प्रमाणके द्वारा होती है, किंतु जगत्‌की जन्म-स्थिति-प्रलयकारिणी त्रिविध शक्ति ब्रह्मकी स्वरूपा-शक्ति नहीं, उनकी अपरा (बहिरङ्गा) शक्ति है । विष्णुपुराणमें कहा गया है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥

'विष्णुशक्ति ही पराशक्तिके नामसे निर्दिष्ट है । दूसरी शक्तिका नाम क्षेत्रज्ञ या जीव-शक्ति है । दोनों शक्तियोंके अतिरिक्त ब्रह्मकी एक और शक्ति है, उस तृतीया शक्तिको शास्त्रकार 'अविद्याकर्म' नामसे पुकारते हैं ।' अविद्या (भ्रान्ति) जिसका कर्म है, यही 'अविद्या-कर्म' शब्दका अर्थ है ।]

किस प्रकारके कार्यद्वारा हम इस तृतीया शक्तिके स्वरूपको जान सकते हैं, यह बात भी विष्णुपुराणमें आये श्लोकसे स्पष्ट है—

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।
संसारतापनखिलानवाप्नोत्यनुसंततान् ॥

'राजन् ! इस तृतीया शक्तिद्वारा ही वेष्टित होकर क्षेत्रज्ञशक्ति अर्थात् समस्त जीव धारावाहिकरूपसे सदा-सर्वदा सांसारिक तापोंका अनुभव करते हैं ।' संसारके सभी जीव अशेष प्रकारसे दुःख-भोग करते हैं, यह बात सर्वसम्मत है । यह परब्रह्म जिस शक्तिसे प्रभावित होता है, उसीको अविद्या—बहिरङ्गा-शक्ति कहते हैं । इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि जहाँ दुःखभोगरूपी कार्य है, वहाँ उसके मूलमें कारणरूपा कोई शक्ति अवश्य है । संसारमें जो कुछ कार्य है, सब जिस कारणसे समुद्भूत है, उसीको ब्रह्म, परमात्मा अथवा श्रीभगवान्—इन तीन शब्दोंके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ।

श्रीमद्भागवतका कथन है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

'तत्त्वज्ञलोग जिसे ज्ञानरूप, अद्वय तत्त्व कहते हैं, उसे ही वेदान्ती ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त लोग भगवान् कहते हैं ।' इससे सिद्ध होता है कि जीवोंके दुःखभोगरूप कार्यके अनुकूल जो शक्ति श्रीभगवान्‌में विद्यमान है, वही उनकी अपरा-शक्ति या बहिरङ्गा-शक्ति है । इसी प्रकार शक्तिका एक दूसरा नाम शास्त्रोंमें प्रकृति मिलता है । गीता (७ । ४-५)में कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

'अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठ भागोंमें मेरी अपरा-प्रकृति विभक्त है । इससे सर्वथा विलक्षण मेरी दूसरी प्रकृति भी है । वह 'जीव' या 'क्षेत्रज्ञ-शक्ति' है । इसीके द्वारा परिदृश्यमान निखिल प्रपञ्चका धारणरूप कार्य सम्पादित होता है ।' यही शक्ति भोक्तृ-प्रपञ्चका मूल तथा पूर्वनिर्दिष्ट प्रकृति (अपरा-शक्ति) या भोग्य-प्रपञ्चका निदान है । परमात्मा स्वयं अद्वय और अखण्ड-सच्चिदानन्दस्वरूप होते हुए भी अपने ही अचिन्त्य स्वभावसे अपनी दोनों बहिरङ्गा और तटस्था शक्तियोंकी सहायतासे स्वयं भोक्ता और भोग्य बनकर इस प्रपञ्च-नाट्यकी लीला (अभिनय) करते हैं । वे यह लीला अतीत-अनादि-कालसे करते आ रहे हैं और अनन्त भविष्यत्-कालमें भी करते रहेंगे । यही सनातन हिंदू-धर्मके साधन-मार्गका सर्वथा श्रेय-सिद्धान्त है । इस सिद्धान्तमें जिसका विश्वास नहीं है, वह सनातन-हिंदू-धर्मके साधन-मार्गमें प्रवेश करनेका अधिकारी नहीं है ।

इन तटस्था और बहिरङ्गा-शक्तियोंके अतिरिक्त परब्रह्मकी एक और शक्ति है, जिसका नाम स्वरूपा-शक्ति है, जिसका परिचय हमें विष्णुपुराणमें मिलता है—

ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥
(१ । १२ । ६९)

'भगवन् ! आप संसारकी सब वस्तुओंके आश्रय हैं, अतः आनन्ददायिनी, सत्तादायिनी और प्रकाश या बोधकारिणी तीनों शक्तियाँ आपमें विद्यमान हैं । इन्हीं त्रिविध शक्तियोंका वृत्तिभेदसे भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा प्रतिपादन किया जाता है । वस्तुतः यह आपकी स्वरूपाशक्ति ही है । प्राकृत सुख और ताप देनेवाली सत्त्व, रज और तमोगुणमयी आपकी अपरा (बहिरङ्गा) शक्तिका आपपर किसी प्रकारका प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि आप सब प्रकारके प्राकृत गुणोंसे असंस्पृष्ट हैं ।' विष्णुपुराणके इस श्लोकका तात्पर्य अति गम्भीर है, अतः इसका कुछ विस्तृत विवेचन यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा ।

बहिरङ्गा-शक्तिके विषयमें कहा गया है कि वही जीवोंके सब प्रकारके क्लेशोंका निदान—मूलकारण है । अर्थात् वह परमेश्वरमें विद्यमान रहते हुए भी उनके दुःख और मोहादिकी उत्पादिका नहीं होती, केवल जीवोंमें ही दुःख और मोहादिके उत्पादनका कारण बनती है । कारण, जीव अनादि अज्ञानके कारण आत्म-स्वरूपको भूलकर प्राकृत प्रपञ्चके अंदर किसी-न-किसी वस्तुमें अहंता, ममता-बुद्धिसे सम्पन्न हो जाते हैं । सांसारिक जीवोंका यह स्वभाव ही है । जबतक देह, इन्द्रिय और भोग्य-विषयोंमें अहंता और ममता-बुद्धि रहती है, तबतक कोई जीव इस ताप (दुःख-भोग) से छुटकारा नहीं पा सकता । आत्माराम, अद्वय एवं सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरमें इस प्रकारकी अहंता और ममता-बुद्धिरूपी मोह न रहनेके कारण, उनमें अपरा या बहिरङ्गा शक्तिके विद्यमान रहते हुए भी उस शक्तिके प्रसूत-कार्योंमें दुःख भोगना या अपनेको दुःखी माननेका अनुभव करना उनमें नहीं होता । इसीका नाम मायाका प्रभाव है ।

इस बहिरङ्गा-शक्ति और उसके लीला-स्थान अज्ञानान्ध जीवोंसे सम्पूर्णतया पृथक् परमात्मामें एक प्रकारकी और शक्ति है, नाना प्रकारके कार्योंद्वारा नाना रूपोंमें प्रतीत होनेपर भी एक चित्-शक्तिके नामसे ही शास्त्रोंमें उसका वर्णन किया गया है । उसकी कार्यविधिपर ध्यान देनेसे ही इसकी त्रिविधता तथा साथ ही मूलतः एकरूपता समझमें आ सकती है ।

स्वयं सत् अर्थात् एकमात्र परमार्थ-सत्तायुक्त होकर परब्रह्म अपनी जिस स्वरूपा-शक्तिद्वारा उत्पत्ति और विनाशग्रस्त, सत् या असत्‌रूपमें अनिर्वाच्य प्रापञ्चिक वस्तुमात्रको कुछ कालके लिये सत्तायुक्त कर देता है, उस शक्तिका नाम 'संधिनी-शक्ति' है।

स्वप्रकाश चित्स्वरूप ब्रह्म अपनी जिस शक्ति-द्वारा अज्ञानमोहित जीवोंको ज्ञान या प्रकाशसे सम्पन्न करके स्पर्श, रूप और रसादि भोग्य-पदार्थोंका भोक्ता या ज्ञाता बना देते हैं, उस शक्तिका नाम 'संवित्-शक्ति' है। अर्थात् वह जीवकी विषय-भोग-निर्वाहिका तथा अपने अनन्त-अपरिमेय स्वरूपका प्रतिक्षण स्वयं ही साक्षात्कार करानेवाली अनुकूल शक्ति है, उसे परब्रह्मको 'संवित्-शक्ति' या 'स्वरूपभूता-शक्ति' कहते हैं।

स्वयं अनाद्यनन्त आनन्दस्वरूप परब्रह्म जिस शक्तिद्वारा अपने आनन्दस्वरूपको जीवोंकी अनुभूतिका विषय बनाकर स्वयं भी आत्मभूत परमानन्दका साक्षात्कार करते हैं, उस स्वरूपा-शक्तिका नाम 'ह्लादिनी-शक्ति' है। यही स्नेह, प्रणय, रति, प्रेम, भाव और महाभाव-रूपमें भगवदनुगृहीत जीवोंकी शुद्ध सत्त्वमयी निर्मल मनोवृत्तियोंमें प्रतिफलित होकर 'भक्ति'-शब्दावाच्य हो जाती है। यही कलि-पावनावतार श्रीश्रीचैतन्यदेवके पदाङ्कानुसरणपरायण गौड़ीय वैष्णवाचार्योंका सिद्धान्त है। यद्यपि इस सिद्धान्तका विस्तार-पूर्वक विश्लेषण करना इस प्रबन्धका उद्देश्य नहीं है, फिर भी संक्षेपमें यहाँ उसका अनुशीलन किया जा रहा है।

संसारमें सभी जीव सुख चाहते हैं और वही सभी जीवोंके जीवनका चरम या परम लक्ष्य है। इस सुखके आस्वादन या भोगके लिये जीव-हृदयमें जो आकांक्षा है, वही जीवकी सब प्रकारकी प्रवृत्तिका प्रधान कारण है। सुख ही आत्माका स्वरूप है, अथवा यों कहें कि सब कुछ छोड़कर केवल अपने यथार्थ स्वरूपका ही निरन्तर और निरुपद्रव-रूपसे आस्वादन करनेकी ऐकान्तिक इच्छा ही जीवका स्वभाव है। यही इच्छा उसे संसारमें लाती है और उसे संसारसे मुक्त कर उसकी आत्माके आत्मभूत चिदानन्दघन परब्रह्मके स्वरूपमें पुनः विलीन कर देती है। यही उसके नर-जन्म प्राप्त करनेका चरम और परम प्रयोजन है।

देह और इन्द्रियरूपी प्राकृत वस्तुओंमें 'मैं-मेरे'की अनादि दुरपनेय भ्रान्तिके जालमें पड़कर जीव समझता है कि बाहरी उपायोंसे मुझे शाश्वत सुख मिल सकता है; किंतु सुख बाहरी वस्तु नहीं, वह तो अपना ही प्रकाशमय स्वरूप है, इसे वह भूल गया है। इसीलिये वह संसारमें बद्ध हो भ्रान्तिवश मरु-मरीचिकाके जलसे प्यास मिटानेके लिये उन्मत्तके समान इधर-उधर दौड़-धूप करता हुआ अविराम जन्म, मृत्यु और जरा आदिद्वारा पीड़ित हो रहा है। उसे जब आत्मभूत अविनाशी और प्रकाशस्वरूप सुखका पता चलेगा, तभी उसकी सांसारिक गति पलट जायगी। तब वह साधनाके असली मार्गपर चलनेमें समर्थ होगा और पूर्ववत् आत्माराम और आत्मकाम हो जायगा।

भक्तिरसामृतसिन्धुके अनुसार—'शुद्ध सत्त्वविशेष' अर्थात् श्रीभगवान्‌की स्वरूपा-शक्ति ह्लादिनीकी प्रधान वृत्ति या परिणतिविशेष भक्तिकी प्रथमावस्थारूप जो भाव है, वह शुद्ध सत्त्वविशेषका ही अन्यतम स्वरूप है। यह भाव प्रेम-भक्तिरूप उदयोन्मुख सूर्यका प्रथम प्रकाशमान आलोकस्वरूप है। यही भाव उदित होनेपर आनन्दमय श्रीभगवान्‌को साक्षात्कारका विषय बनानेके लिये नाना प्रकारकी सात्त्विक अभिलाषाओंको आविर्भूत कर संसार-तापसे कठिन-भावापन्न मानवके अन्तःकरणमें आर्द्रता सम्पादित करता है। यही भावका स्वरूप है।

तन्त्रशास्त्रमें कहा है—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्यभिधीयते।
सात्त्विकाः स्वल्पमात्राः स्युरत्राश्रुपुलकादयः॥

'प्रेमकी प्रथमावस्थाको ही 'भाव' कहते हैं। यह भाव जब मानवहृदयमें समुदित होता है, तब सहज ही अश्रु और रोमाञ्च प्रभृति सात्त्विक भावोंका विकास हो जाता है।'

प्रेमकी प्रथमावस्थारूप यह भाव आलंकारिकोंद्वारा वर्णित 'अनुरागरूप' मनोवृत्ति नहीं है। यह तो नित्य-सिद्ध ह्लादिनी-शक्तिका वृत्तिविशेष है, अतः यह भी नित्य है। फिर भी इसकी अभिव्यञ्जक होनेके कारण मनुष्यका चित्तवृत्तिविशेष भी लोगोंमें 'भाव', 'रति' प्रभृति शक्तिके अवस्था-विशेषके वाचक शब्दोंद्वारा निर्दिष्ट होता है। इसीसे श्रीरूपगोस्वामी भक्तिरसामृतसिन्धुमें लिखते हैं—

आविर्भूय मनोवृत्तौ व्रजन्ती तत्स्वरूपताम्।
स्वयं प्रकाशमानापि भासमाना प्रकाश्यवत्॥
वस्तुतः स्वयमास्वादस्वरूपैव रतिस्त्वसौ।
कृष्णादिकर्मकास्वादहेतुत्वं प्रतिपद्यते॥

'साधककी सात्त्विक मनोवृत्तिमें आविर्भूत या अभिव्यक्त होकर यह रति या भाव उस मनोवृत्तिके समान हो जाता है। यह रति स्वयंप्रकाश-स्वभावा है। यह मनोवृत्तिमें प्रतिफलित होकर प्रकाश्यवस्तुके सदृश बन जाती है, किंतु वस्तुतः प्रकाश्यवस्तु नहीं है, अपितु प्रकाश या चिद्रूपता ही इसका स्वरूप है। यह रति स्वयं आस्वाद-स्वरूप हो जाती है और इस प्रकार साधककी मनोवृत्तिमें अभिव्यक्त होकर भक्तद्वारा श्रीभगवान्‌के साक्षात्कारका सम्पादन करती है।'

शक्ति-स्वरूप-निरूपण

(लेखक—स्व० पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र)

जगत्‌के निमित्त और विवर्तोपादानकारण सच्चिदानन्द परब्रह्मकी स्वाभाविक जो पराशक्ति है, वही शक्ति-तत्त्व भगवती है। वेद एवं भारतके शक्ति-दर्शन कहते हैं—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

ब्रह्मकी यह पराशक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है।

निर्गुणः परमात्मा तु त्वदाश्रयतया स्थितः।
तस्य भट्टारिकाऽसि त्वं भुवनेश्वरि भोगदा॥
(शक्तिदर्शन)

'भुवनेश्वरि! तुम्हारा आश्रय निर्गुण परमात्मा है और तुम उसकी भोगप्रदा भार्या हो।' जैसे ब्रह्मके औपाधिक स्वरूप शिव, विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति हैं वैसे ही आदिशक्तिकी औपाधिक स्वरूपा पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती प्रभृति हैं। यह शक्ति कहीं माया-शब्दसे, कहीं प्रकृति-शब्दसे श्रुति तथा स्मृतिमें अनेक बार प्रतिपादित है। व्यापक, नित्य, सर्वात्मक होनेके कारण देश, काल, वस्तु—इन तीनोंसे यह शक्ति परिच्छेद्य नहीं है, अर्थात् किसी देशमें इसका अत्यन्ताभाव नहीं है, किसी कालमें ध्वंस नहीं है, किसी वस्तुमें भेद नहीं है। यह अघटित-घटनामें अति निपुण है। चिदाभासमें नाना प्रकारका संसार, दर्पणमें नगरमें अनेक तरहके कार्यकारणभाव, क्षणमें युगबुद्धि, स्वप्न, बीजमें वृक्ष तथा ऐन्द्रजालिक चमत्कार—इन सभीकी रचना मायासे होती है।

मैं स्थूल हूँ, मैं अन्धा हूँ, मैं इच्छा करता हूँ, शङ्ख पीला है, शीशेमें यह मेरा मुख है, आदि सभी भ्रान्तियोंको यह मायाशक्ति ही उत्पन्न करती है। यह मायाशक्ति सर्वथा अबाध्य नहीं, सत्त्वेन अप्रतीयमान नहीं और सदसदात्मक भी नहीं है; क्योंकि गोत्व-अश्वत्वकी तरह अबाध्यत्व एवं सत्त्वरूपसे अज्ञायमानत्व दोनों ही परस्पर विरुद्ध हैं।

अतएव यह सत्, असत् और सदसत्—इन तीनोंसे विलक्षण 'अनिर्वचनीय' है । वेदान्तका कथन है—

प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः ॥

(चित्सुखी)

'जो सत्त्वसे, असत्त्वसे और सत्त्व-असत्त्व दोनोंसे विचार-मार्गको नहीं प्राप्त करता, उसे वेदान्तवेत्ता लोग 'अनिर्वाच्य' कहते हैं ।' अनिर्वचनीयत्व मायाके लिये अलंकार ही है । यह सत्त्व, रजस्, तमस् गुणत्रयात्मक है । यथा—इसीके एकदेशके परिणाम शब्दादि पञ्चतन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी हैं । उपादान-समान सत्ताश्रय कार्यको 'परिणाम' कहते हैं । मायामें चैतन्यका प्रतिबिम्ब 'जीव' है और अविद्यामें चैतन्यका प्रतिबिम्ब 'ईश्वर' है । इस पक्षमें बिम्बसे भिन्न चिदाभासरूप असत्य हैं । अन्तःकरण या अविद्यासे अवच्छिन्न चैतन्य जीव है । मायावच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है । यद्यपि जीव और ईश्वरमें चिदाभासता नहीं आती, फिर भी अवच्छेदके मायासे कल्पित होनेके कारण वियदादि प्रपञ्चवत् इन दोनोंमें मायिकत्व अनिवार्य हैं । जीव एवं ईश्वरके चिदाभासत्व तथा मायिकत्वके प्रमाण ये हैं—

(१) एवमेवैषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा जीवेशावभासेन करोति । (श्रुति)

(२) चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः । (शक्तिसूत्र)

अर्थात् इसी प्रकार यह माया स्वात्मक्षेत्र दिखाकर प्रतिबिम्बद्वारा जीव और ईश्वरकी रचना करती है । ईश्वरसे लेकर पृथ्वीपर्यन्तकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारमें पराशक्तिस्वरूपा, स्वतन्त्रता, शिवात्मक पतिसे अभिन्न-चिति भगवती ही कारण है ।

जैसे अग्निकी दाहकता और भानुकी प्रभा कृशानु और भानुसे भिन्न नहीं है, वैसे ही मायात्मक पराशक्ति परब्रह्मसे भिन्न नहीं है ।

यथा—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः—कासि त्वं महादेवीति । साब्रवीत्-अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगदुत्पन्नम् । (श्रुति)

'सब देवगण भगवतीके पास गये और उन्होंने पूछा कि महादेवि ! तुम कौन हो ? भगवतीने उत्तर दिया, मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ, मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक संसार उत्पन्न हुआ है ।'

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वैकमूर्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

(महाकालसंहिता)

'देवि ! तुम अचिन्त्य तथा अमित आकारवाली शक्तिका स्वरूप हो, अथवा अचिन्त्य तथा अमित आकारवाला जो ब्रह्म है, उसकी शक्तिका स्वरूप हो, अथवा बड़े शिल्पियोंसे अचिन्त्य तथा अमिताकार संसारकी एक ही शक्ति हो, प्रतिव्यक्तिकी अधिष्ठान-सत्ताकी मात्र मूर्ति हो अथवा ब्रह्मरूप अधिष्ठान-सत्ताकी ही मूर्ति हो, और गुणातीत तथा अबाधित बोधमात्रसे जानी जाती हो अथवा निर्गुण-निर्द्वन्द्व बोधस्वरूप ब्रह्ममात्रसे गम्य हो—**'परमशिवदृङ्मात्रविषयः'** (आनन्दलहरी) । इस प्रकार तुम परब्रह्मस्वरूपसे सिद्ध हो ।'

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति ।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव ॥

(शक्तिदर्शन)

शक्ति शक्त्याश्रयसे अलग नहीं है, शक्ति और शक्तिमान्‌में वह्नि तथा दाहकता-शक्तिके अभेदके सदृश सर्वदा अभेद बना रहता है ।

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

(देवीभागवत)

'मैं और ब्रह्म—इन दोनोंमें सर्वदा एकत्व है, भेद कभी नहीं है। जो यह है सो मैं हूँ और जो मैं हूँ सो यह है, भेद भ्रान्तिसे कल्पित है, वस्तुतः नहीं है।'

यहाँपर शङ्का होती है कि मुक्तिमें मायाकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है, किंतु अधिष्ठानभूत ब्रह्मकी नहीं, तब मायाकी ब्रह्मके साथ एकता कैसे हुई ? इस संशयको दूर करनेके पाँच उपाय हैं, जिनमें पहला यह है कि महर्षि जैमिनिके मतानुसार जीवको ईश्वरत्व प्राप्त होना ही मोक्ष है। इसका प्रमाण यह है—

ब्राह्मणजैमिनिरूपन्यासादिभ्यः। (ब्रह्मसूत्र)

अर्थात् मोक्षमें अपहतपाप, सत्यसंकल्पत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व प्रभृति ब्रह्मसम्बन्धी रूपोंसे जीव निष्पन्न होता है; क्योंकि श्रुतियोंमे ऐसा उपन्यास किया गया है। ईश्वर चिदाभास या अवच्छिन्न होनेसे मायिक है, तब ईश्वररूपसे मोक्षमें भी माया रहती ही है, उसका उच्छेद नहीं होता। सकल ब्रह्माण्डमण्डल ब्रह्मका एक पाद है, इसके अतिरिक्त अनन्त ब्रह्मके और भी तीन पाद हैं—**'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'** (वाजसनेयिसंहि० ३१।३)

चतुष्पाद ब्रह्ममें व्याप्त होकर माया-शक्ति ब्रह्ममें ही रहती है, जैसे अग्निमें व्याप्त दाहकता-शक्ति समस्त अग्निमें ही रहती है, न कि एकदेशमात्रमें। मोक्षमें विद्योदयसे एक पादका नाश होनेपर भी त्रिपाद ब्रह्ममें पूर्ववत् पराशक्ति बनी रहती है, उसका नाशक कोई नहीं है, आधार तो नित्य ही है।

मोक्षमें भी मायाका अस्तित्व अबाधित—'तत्त्वमसि,' 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि अखण्डार्थक वाक्यसे जहदजहल्लक्षणा या अभिधाद्वारा उत्पाद्य अविद्या और उसके कार्यको विषय न करनेवाली, निर्विकल्पक, अपरोक्ष ब्रह्माकारा अन्तःकरणकी सात्त्विकी वृत्ति ब्रह्मविद्या है, जो नाम-रूपात्मक वियदादि प्रपञ्चको नष्ट कर देती है। यह मायाका परिणाम होनेसे मायात्मक है, इसका नाश मोक्षमें नहीं होता, अन्यथा **'नहि द्रष्टुः'** आदि श्रुतिविरोध और युक्तिविरोध हो जायगा।

कुछ देरके लिये मान भी लिया जाय कि मुक्ति-समयमें उक्त विद्या नहीं रहती, तो फिर उसका नाश भी किससे होगा ? विद्यान्तरसे या सुन्दर, उपसुन्दर एवं अन्त्य, उपान्त्य शब्दके तौरपर अविद्यासे या अविद्याके नाशसे ? या कनकरजोवत् अपनेसे ही (उक्त विद्यासे ही) ?

यदि विद्यान्तरसे कहा जाय तो उसका विद्यान्तरसे और उसका भी विद्यान्तरसे इस प्रकार अनवस्था-भयसे विद्याको अविनाशी मानें तो प्रथम विद्याको ही विनाशी मान लेना उचित है। विद्योत्पत्ति-क्षणमें विद्या और अविद्या दोनोंके रहनेसे अग्रिम क्षणमें अविद्यारूप नाशकसे विद्याका और विद्यारूप नाशकसे अविद्याका नाश स्वीकार करना भी ठीक नहीं है; क्योंकि प्रकाशसे तो तमका नाश होता है, तमसे प्रकाशका नहीं। इसी तरह अविद्याद्वारा विद्याका नाश होना असम्भव है, परस्पर नाश्य-नाशक-भाव इन दोनोंमें नहीं है।

तृतीय पक्षमें अभावके निस्स्वरूप होनेके कारण नाशकता कहनेयोग्य ही नहीं है, कारणता भावमात्र ऊपर रहती है। शेष चतुर्थ पक्ष भी ठीक नहीं; क्योंकि एक पदार्थमें नाश्य-नाशक-भाव कहीं भी सिद्ध नहीं है। जो दृष्टान्त पहले बतलाया गया था, उसमें साध्य और साधन दोनोंका अभाव रहनेसे अन्वय-दृष्टान्त हो नहीं सकता। वहाँ कनकरज नष्ट नहीं होता, किंतु मिट्टीके साथ पानीके नीचे छिप जाता है। अहैतुक नाश तो हो ही नहीं सकता, उसका प्रलाप करना वेद-विरुद्ध ही है।

फिर अविद्याका नाश निवृत्तिरूप है या ध्वंसरूप अथवा लयरूप ? यदि निवृत्तिरूप हो तो कहीं-न-कहीं अविद्याकी स्थिति माननी पड़ेगी। यह निवृत्ति अन्य

निवृत्तिमर्यादाका अतिक्रमण कैसे करेगी ? ध्वंसरूप हो तो प्रतियोगीके अवयवमें ध्वंसकी उत्पत्ति नियत होनेसे अविद्याके अवयवको अङ्गीकार करना पड़ेगा। लयरूप हो तो भी कारणमें कार्यका लय देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। तदनुसार लयके लिये उसका कारण मानना नहीं पड़ेगा, अर्थात् स्वरूपसे या अवयवरूपसे या कारणरूपसे मोक्षमें अविद्या रहती है, उसे टाला नहीं जा सकता।

अविद्याकी निवृत्ति यदि सत् हो तो द्वैतापत्ति हो जायगी, असत् हो तो शशशृङ्गकी तरह उसमें उत्पाद्यत्व नहीं आयेगा। व्याघात होनेके कारण सदसदात्मक मान सकते ही नहीं। अनिर्वचनीय हो तो अनिर्वचनीय सादि-पदार्थका अज्ञानोपादानकत्व एवं ज्ञाननिवर्त्यत्व नियत होनेसे उसे आविद्यक और ज्ञाननिवर्त्य मानना पड़ेगा। अतः सत्, असत्, सदसत् और अनिर्वचनीय—इन चार कोटियोंसे अलग पञ्चम प्रकार अविद्या-निवृत्ति है—यह अवश्य स्वीकार करना होगा। तब अविद्या-निवृत्तिरूपसे ही मोक्षमें माया रहती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्षमें भी मायाका उच्छेद नहीं होता, किसी-न-किसी रूपमें माया बनी रहती है और वह नित्य है। अद्वैत-वेदान्त-मतसे इस मतमें यह वैलक्षण्य है। मोक्षमें मायाके रहनेपर भी विपदादिरूपेण उसका परिणाम नहीं हो सकता; क्योंकि तत्त्वज्ञानके प्रभावसे संचित कर्मोंका नाश हो चुका है। सृष्टि कर्म-भोगके लिये होती है, अतएव कारणभाव होनेसे संसार उत्पन्न नहीं हो सकता। बन्धावस्थामें माया बहिर्मुखी रहती है और मोक्षावस्थामें अन्तर्मुखी, अतः बद्ध और मुक्तमें वैलक्षण्य भी सिद्ध है। शक्तिदर्शन भी यही कहता है—

मुक्तावन्तर्मुखैव त्वं भुवनेश्वरि तिष्ठसि।

'हे भुवनेश्वरि ! तुम मुक्तिमें अन्तर्मुखी रहती हो।'

मोक्षमें माया माननेपर अद्वैतभङ्ग भी नहीं हो सकता; क्योंकि अनिर्वचनीय पदार्थ पारमार्थिक अद्वैतका व्याघातक नहीं होता। पारमार्थिक सत्तामें रहनेवाला जो भेद है, उसका अप्रतियोगित्वरूप ही अद्वैतब्रह्ममें अभीष्ट है, न कि द्वितीयराहित्यमात्र। इसी तरह अद्वैतके घटनेमें माया बाधक नहीं है। बहिर्मुख माया-शून्यत्व ही 'कैवल्य' नाम-रूप-विमुक्ति और 'अविद्यास्तमय' प्रभृति शब्दोंका अर्थ है, अतएव सकल श्रुतिसामञ्जस्य भी इस मतमें हो जाता है। माया-नित्यत्वके प्रमाण हैं—

(१) माया नित्या कारणं च सर्वेषां सर्वदा किल।
(देवीभागवत)

(२) नित्यैव सा जगन्मूर्तिः। (सप्तशती)

(३) प्रकृतिः पुरुषश्चेति नित्यौ।
(प्रपञ्चसारतन्त्र)

अम्ब-अनुकम्पा

(रचयिता—स्व० पं० श्रीकृष्णशंकरजी तिवारी, एम्० ए०)

दारै दुख दारिद घनेरे सरनागतके, अंब अनुकंपा उर तेरे उपजत ही।
मंदिरमैं महिमा बिराजै इंदिराकी नित, गाजै झनकार धुनि कंचन-रजत ही॥
गाज-सी परत अनसहन बिपच्छिन पै, मत्त गजराजनको घंटा गरजत ही।
हारे हिय सारे हथियार डरि डारे देत, द्वारे देत हिम्मत नगारेके बजत ही॥

भारतीय संस्कृतिमें शक्ति-उपासनाके स्वरूप

(लेखक—आचार्य डॉ० पं० श्रीरामप्यारेजी मिश्र, एम्० ए० संस्कृत तथा हिंदी, व्याकरणाचार्य, पी-एच्० डी०)

शक्ति-उपासना भारतीय संस्कृतिकी गौरवमयी आधार-पीठिका है। व्यापकता, लोकख्याति तथा उपयोगिताकी दृष्टिसे शक्ति-उपासना विशेष चर्चित, रहस्यमयी तथा आलोच्य हो गयी है। पर अपने आध्यात्मिक आधार तथा विपुल आगम-शास्त्र-भाण्डारके कारण अतिरमणीय है। उपासनाके शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर तथा गाणपत्य, पञ्च सम्प्रदायोंमें क्रमशः शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य तथा गणपतिको परम तत्त्व मानकर उपासना की जाती है। ऐश्वर्य तथा पराक्रमस्वरूप एवं इन दोनोंको प्रदान करनेवाली शक्ति नित्यके व्यावहारिक जीवनमें आपदाओंका निवारण कर ज्ञान, बल, क्रियाशक्ति प्रदान कर, धर्म, अर्थ, कामकी याचककी इच्छासे भी अधिक पूर्तिकर जीवनको लौकिक सुखोंसे धन्य बना देती है। साधकका व्यक्तित्व सबल, सशक्त, निर्मल एवं उज्ज्वल कीर्तिसे सुरभित हो जाता है। साधक (शक्ति-उपासक) अलौकिक परमानन्दको प्राप्तकर मुक्तिका अधिकारी हो जाता है।

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥
(देवीभा० ९। २। १०)

देवर्षि नारदजीकी जिज्ञासाको शान्त करते हुए भगवान् नारायणने कहा था कि देवी भगवतीशक्ति नित्या सनातनी ब्रह्मलीला प्रकृति हैं। **तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवान् तेन कथ्यते॥** अग्निमें दाहकता, चन्द्र तथा पद्ममें शोभा और रविमें प्रभाकी भाँति वह आत्मासे शश्वद्युक्त है, भिन्न नहीं। जैसे स्वर्णके बिना स्वर्णकार कुण्डल तथा मिट्टीके बिना कुम्हार घटका निर्माण नहीं कर सकता, उसी प्रकार सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति (शक्ति) के बिना शक्तिमान् आत्मा सृष्टिका निर्माण नहीं कर सकता। आचार्य शंकरकी दृष्टिमें शक्तिकी आराधना हरि, हर तथा विरिञ्चादि सभी करते हैं। शिव शक्तिसे (इ=शक्ति) युक्त होनेपर ही समर्थ होते हैं। इ=शक्तिसे हीन शिव मात्र शव शेष रहते हैं। वे स्पन्दनरहित हो जाते हैं। अतः पुण्यात्मा ही देवीको प्रणाम कर पाते हैं, उनकी स्तुति कर सकते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥
(आनन्दलहरी १)

उपासकको उपास्यकी कृपासे ही तेजस्विता मिलती है। उसका निर्देश ऋग्वेदमें इस प्रकार है—

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।
(१०। १२५। ५)

शक्तिके स्वरूप-ज्ञानके लिये आचारनिष्ठ उपासकको वेद, उपनिषद्, आगम, तन्त्रशास्त्र, मार्कण्डेयपुराण, देवीभागवतके अध्ययन-चिन्तनके साथ ही तत्त्वज्ञ गुरुसे दीक्षित होना भी अपेक्षित है। देवीके इक्यावन शक्तिपीठों, उनके प्रधान एक सौ आठ स्थानोंका भ्रमण-दर्शन भी परम उपयोगी है। सर्वाधिक सफलता मात्र माँकी कृपासे ही सम्भव है। उसके लिये उपासकोंके चरितोंका चिन्तन भी अवश्य करना चाहिये। बंगालके स्वनामधन्य श्रीरामकृष्णदेव परमहंसकी काली-उपासना अतीव प्रेरणाप्रद है। साधक कमलाकान्त, भक्त रामप्रसादकी देवी-भक्ति भी उपासकको मनोबल प्रदान करती है। इसी प्रकारके संत महापुरुषोंकी चर्चाएँ

समस्त देशव्यापी हैं। महाराष्ट्रके संत एकनाथ महालक्ष्मीके उपासक थे। समर्थ गुरु रामदासकी आराध्या भवानी थीं। इस महाशक्तिके स्वरूपोंका संकेत ऋग्वेदके देवीसूक्तमें आम्भृणी ऋषिकी कन्या वाक्‌की वाणीमें स्पष्ट है--

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥
(ऋग्वेद १०। १२५। १)

'मैं रुद्रों और वसुओंके साथ विचरण करती हूँ। आदित्यों और देवोंके साथ रहती हूँ। मित्र और वरुणको धारण करती हूँ। इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंका अवलम्बन करती हूँ।' इसी सूक्तमें परात्पराशक्ति राज्यकी अधीश्वरी, धनदात्री, ज्ञानदात्री, सर्वव्यापी तथा सब प्राणियोंमें आविष्ट कही गयी है। वाग्देवता मनुष्योंके शरणदाताओंकी भी उपदेशिका है और जिसे चाहती है उसे बली, स्तोता, ऋषि तथा बुद्धिमान् बना देती है। द्यावा-पृथिवीमें व्याप्त यही पराम्बा इन्द्रकी शत्रुवधमें सहायता करती है। इसीने आकाशको उत्पन्न किया है। यही समस्त संसारमें विस्तीर्ण है और द्युलोकको स्पर्श करती है। महिमामयी यह माँ प्रवहमान वायुकी भाँति भुवन-निर्माण करती हुई गतिशील है। इसने द्यावा-पृथिवीका अतिक्रमण कर लिया है।

आदिशक्ति देवतामयी अदितिका भी प्राणरूपमें प्रकट होने, बुद्धिरूपा गुहामें प्रवेशकर निवास करने तथा भूतोंके साथ प्रादुर्भूत होनेका निर्देश है। उसीको परमतत्त्व माना गया है।

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत।
एतद्वै तत्।
(कठ० २। १। ७)

श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में इसी आदिशक्तिसे लोहित, शुक्ल तथा कृष्ण—विविध प्रकारकी सृष्टि होनेका वर्णन है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः॥
(४। ५)

इसी शक्तिसे स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रियाओंका आविर्भाव होता है।

आद्याशक्ति तथा उसके महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती-रूपों, उसके परब्रह्म तथा त्रिदेवोंके सम्बन्धका उल्लेख आनन्दलहरीमें इस प्रकार है—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमे
महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥

शक्तितत्त्व तथा उसके स्वरूपके सम्बन्धमें जनमेजयने व्यासजीसे पूछा था—**सा का? कथं समुत्पन्ना? कुत्र कस्माच्च किंगुणा?** व्यासजीने उन्हें इस सम्बन्धमें वही उत्तर दिया था, जो उन्हें नारदजीने बताया था। ब्रह्माजीने स्वयं नारदजीको यह देवीतत्त्व बताया था। ब्रह्माजीने नारद मुनिसे कहा था कि 'जब प्रलयकालमें जलराशिमात्र शेष थी, और कुछ नहीं बचा था, उस समय मुझे अपने कारणकी जिज्ञासा हुई और मैं सहस्रवर्ष-पर्यन्त कमलनालसे उतरकर पृथिवी (आधार) नहीं प्राप्त कर सका था, **'तपस्तप'**की आकाशवाणीसे तप करनेका आदेश पाकर उसी पद्ममें एक सहस्र वर्षतक तप करता रहा। पुनः **'सृज'** का आदेश मिलनेपर निरुपाय होकर चिन्तित था, तभी मधु-कैटभ दैत्योंने मुझे युद्धके लिये ललकारा। वहाँ जलमें उतरते-उतरते मुझे शेषशायी भगवान् महाविष्णुके दर्शन हो गये। महाविष्णु योगनिद्रामें शयन कर रहे थे। ब्रह्माजीने निद्रास्वरूपिणी देवीकी स्तुति की। निद्रामुक्त भगवान् विष्णुने पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करनेके पश्चात् उन दैत्योंका वध कर डाला। दैवात् वहीं भगवान् शिव भी आ गये। वहीं इन ब्रह्मा, विष्णु, शिव—त्रिदेवोंको देवीने दर्शन देकर सृष्टि, स्थिति तथा संहारके कार्योंको

सावधानीपूर्वक करनेका निर्देश दिया । साधनहीन ब्रह्माने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पुनः देवीसे सृष्टि-साधनोंकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की । देवीने देवोंको एक विमानपर बैठनेका निर्देश दिया । त्रिदेव विमानद्वारा स्थानान्तरमें—स्वर्ग-सदृश प्रदेशमें पहुँच गये । वहाँ उन लोगोंने विमानस्थिता अम्बिकाको देखा । वहाँ स्वर्गके समस्त देवोंको देखकर त्रिदेव विस्मित हो गये । क्रमशः विमान ब्रह्मलोक, कैलास तथा वैकुण्ठधाममें पहुँचा । वहाँ उन्हें अन्य ब्रह्मा, शिव, विष्णु दिखायी पड़े । विस्मित त्रिदेव जब विमानसे क्षीरसागरमें गये, तब उन्हें कान्तिमें करोड़ों लक्ष्मियोंसे भी अधिक सुन्दरी श्रीभुवनेश्वरीदेवीके दर्शन हुए । उन सहस्रनयना, सहस्रकरसंयुता, सहस्रवदना, रम्या देवीको देखकर विष्णुके मनमें ऐसा विचार आया—

एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः ।
महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया ॥
सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ ।
विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात् ॥
मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसङ्गता ।
क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रमाद्याः सुरयोषितः ।
लक्षांशेन तुलामस्या न भवामः कदाचन ॥
(देवी० ३ । ३ । ५१, ५५, ६०, ६२)

देवीके दर्शनके लिये उत्सुक ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जब विमानसे उतरकर उनके समीप गये, तब तीनों उसी क्षण स्त्रीरूप हो गये । वहाँके अद्भुत दृश्यका नारदसे वर्णन करते हुए ब्रह्माजीने बताया कि 'नारद ! अतीव अद्भुत दृश्य था । हमलोगों (स्त्रीरूपमें त्रिदेवों)ने श्रीभुवनेश्वरीदेवीके नखदर्पणमें अखिल ब्रह्माण्डको देखा—

वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः ।
सर्वं तदखिलं दृष्टं नखमध्यस्थितंचन ॥
(देवी० ३ । ४ । १९)

त्रिदेवोंने देवीको स्तवोंसे आह्लादित कर दिया । प्रसन्न देवीने शिवजीको 'नवाक्षर' मन्त्र प्रदान किया तथा ब्रह्माको उपदेश दिया—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।
योऽसौ साहमहं याऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥
(देवी० ३ । ६ । २)

देवीने वहीं ब्रह्माको महासरस्वती, विष्णुको महालक्ष्मी तथा शिवको महाकाली (गौरी) देवियोंको देकर ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा कैलास जाकर स्व-स्व कार्योंके पालनका निर्देश देकर भेज दिया ।

'स्थलान्तरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम् ।'
'दूसरे स्थानोंपर जानेपर पुनः त्रिदेव पुरुषरूपमें हो गये । इस प्रकार आद्याशक्तिकी तथा तीन महाशक्तियोंकी उपासनाका प्रवर्तन हो गया और पञ्चविध सम्प्रदायोंमें शाक्त-सम्प्रदाय विशेष गौरवास्पद माना गया ।

सगुण-उपासनाके ब्रह्मपदसे सम्बन्धित चिद्-भावका आश्रय लेकर विष्णु, सद्भावसे शिव, तेजोभावप्रधान सूर्य, बुद्धिप्रधान गणपति तथा भगवत्-शक्तिका आश्रय ग्रहण कर शक्तिकी उपासनाका क्रम उद्भूत हुआ । चिदंशसे जगत्का दर्शन, सदंशसे जगत्के अस्तित्वका अनुभव, तेज-अंशसे ब्रह्मकी ओर आकर्षण, बुद्धिसे सद्ब्रह्म और असत् जगत्के भेदका ज्ञान होता है । शक्ति सृष्टि, स्थिति और लय करती हुई जीवको बद्ध भी करती तथा मुक्ति भी प्रदान करती है । इन उपासनाओंसे ब्रह्म-सांनिध्य तथा अन्तमें ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है । इनकी पाँच पृथक् गीताएँ हैं । इनके प्रधान देवोंका ब्रह्मरूपमें निर्देश है । शक्ति-उपासनामें मातृभावसे उपास्यकी करुणा उपासकको सर्वदा सुलभ रहती है । उपासनाकी शक्ति-प्रधानतामें मधुरता विशेष है ।

शक्ति-उपासनामें काली, तारा, त्रिपुरा या षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, मातङ्गी, कमला या कमलात्मिका और बगलामुखी—इन दस महाविद्याओं-का अत्यन्त महत्त्व है । विष्णुके दशावतारोंकी भाँति ही इनमेंसे प्रत्येकके उपासक पृथक्-पृथक् हैं । इनकी पूजामें भी गोप्यताका समावेश हो गया है । इनमें प्रथम

दो 'महाविद्या', पाँच विद्या तथा अन्तकी तीन 'सिद्धविद्या'-
के नामसे ख्यात हैं। षोडशीको श्रीविद्या माना जाता है,
उनके ललिताराजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बालापञ्चदशी
आदि अनेक नाम हैं। इन्हें आद्याशक्ति माना जाता
है। ये भुक्ति-मुक्तिदात्री हैं। अन्य विद्याएँ भोग या
मोक्षमेंसे एक ही देती हैं। इनके स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा
तुरीय चार रूप हैं।

सांसारिक रागी पुरुष सगुण तथा विरागी निर्गुणके
पूजक हैं—

सगुणा निर्गुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः प्रोक्ता निर्गुणा तु विरागिभिः॥
(देवीभागवत)

भगवान् नारायणने नारदको बताया था कि गणेश-
जननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—
ये देवियाँ सृष्टिकी पाँच प्रकृति कही जाती हैं।
ये ही देवियाँ दानवी बाधाओंके उपस्थित होनेपर
अवतार लेकर शत्रुओंका संहार करती हैं
(मा० पु० ९१। ५१)। कुछ मनीषी मानते हैं
कि तात्त्विक पाँच त्रिवर्ग—प्राण, भूति, ध्वनि, तेज और
प्रभा ही राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और सावित्री नामसे
विख्यात हो गये। इसी प्रकार कालान्तरमें पवित्रताकी
शक्ति 'गङ्गा' तथा रक्षिका-शक्ति तुलसी नामसे पूजा
पाने लगीं। देवीके विभिन्न अवयवोंसे ही शाक्त-सम्प्रदायमें
दशावतारोंका होना माना गया है।

विष्णु भगवान्के चक्रसे कटे सतीके शरीरके कटि-
भागसे ऊपरके अङ्ग जहाँ गिरे, वे स्थान दक्षिणमार्ग तथा
कटिसे नीचेके भाग जहाँ गिरे, वे स्थान वाममार्गकी
उपासनामें विशेष सिद्धिप्रद माने जाते हैं। ऐश्वर्य,
पराक्रम तथा ज्ञान, आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वकी
प्राप्तिके लिये समस्त भारतदेशमें शक्ति-उपासनाका
समादर है। मिस्र, फिनीशिया तथा यूनानमें भी देवीकी
पूजाके प्रमाण मिलते हैं।

काशीमें नवरात्रके नौ दिनोंमें मुखनिर्मालिका, ज्येष्ठा,
सौभाग्य गौरी, शृङ्गार गौरी, विशालाक्षी, ललिता, भवानी,
मङ्गला तथा महालक्ष्मी—इन नौ गौरियों तथा शैलपुत्री,
ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी,
कालरात्री, महागौरी तथा सिद्धिदात्री—इन नौ दुर्गादेवियोंके
क्रमसे यात्रा-दर्शन करनेकी प्रथा है।

आगमशास्त्रमें नीलकण्ठी, क्षेमंकरी, हरसिद्धि, रुद्रांश-
दुर्गा, बनदुर्गा, अग्निदुर्गा, जपदुर्गा, विन्ध्यवासिनी दुर्गा
तथा रूपमारी दुर्गाको नौ दुर्गा कहा गया है। इन सब
देवियोंके तीन नेत्र तथा चार भुजाएँ हैं। मात्र उत्तर-
प्रदेशके विन्ध्याचल (मिर्जापुर) में प्रस्तर-मूर्तिमें
दुर्गाजीके तीन नेत्र स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं।

कुमारी-पूजन भी देवी-उपासनाका एक अङ्ग है।
इस क्रममें दो वर्षसे दस वर्षतककी कुमारियोंका क्रमशः
कुमारी, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, कालिका, शाम्भवी,
दुर्गा, चण्डिका और सुभद्रा नामसे पूजन किया जाता
है। वर्जित कन्याओंको छोड़कर सम्पूर्ण मनोरथोंकी
सिद्धिके लिये ब्राह्मण, यशके लिये क्षत्रिय, धनके लिये वैश्य
तथा पुत्रके निमित्त शूद्र-कन्याका पूजन करना चाहिये।

शक्ति-साधनाका मूल सूत्र नादज्ञान या शब्दका
क्रमिक उच्चारण है। बिन्दु या कुण्डलिनी विक्षुब्ध होकर
नादका विकास करती है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक,
अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा—इन पादचक्रोंमें क्रमशः
डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा हाकिनी-
की उपासना विकसित क्रममें—सहस्रारचक्रमें महाशक्ति-
का स्वरूप धारण कर लेती है। आज्ञाचक्रके भेदनसे
ज्ञानोदय होता है। यही बिन्दुस्थान योगियोंका ज्ञानचक्षु है।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-अवस्थाके द्योतक त्रिकोणको
प्रणवस्वरूप माना गया है। सांख्यकी प्रकृति पुरुषकी-
षोडशी अमृता कला मानी गयी है। बिन्दुके क्रमशः
क्षय होनेपर महाशक्तिका आविर्भाव होता है। महाशक्ति

अमावास्याभिमुख स्फूर्ति काली तथा पूर्णिमोन्मुखी स्फूर्ति षोडशी है।

शक्ति-उपासनाका अधिकार कुण्डलिनीके उद्बुद्ध होकर सुषुम्नामें प्रवेश करनेपर उत्पन्न होता है। द्वैत कालतक अपर-पूजा चलती है। साधक कर्मकी समाप्ति करके अद्वैतमें प्रवेश कर परा-पूजाका अधिकारी होता है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्तीसे वाणीकी साधना जब परावस्थाको प्राप्त करती है, तब सात्त्विक विकारोंकी उत्पत्तिके अनन्तर उल्लास—आनन्दकी पूर्णावस्था ही महाशक्तिकी उत्तम उपासना है।

शक्ति-उपासनामें बीजतत्त्व, यन्त्र-चक्र, मन्त्र, दीक्षा, गुरु, अध्व, भूत, द्रव्यशुद्धि, चित्तशुद्धि, मातृका, पीठ, न्यास तथा मुद्रा, प्राणप्रतिष्ठाका सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। उपासना वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्र—तीन विधियोंसे अधिकारीके योग्यतानुसार फलवती होती है।

शक्ति-उपासनामें वीराचार, पश्वाचार तथा दिव्याचारोंका पालन किया जाता है।

शक्ति-उपासना वैदिक कालसे पौराणिक युगतक सात्त्विक तथा भावप्रधान होनेके कारण ज्ञानप्रधान थी। आज भी दक्षिण-मार्गके उपासक शिशु-प्रवृत्तिसे रूप, जय, यश, शत्रु-विनाश-हेतु मन्त्रों, स्तोत्रों तथा सप्तशती (मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत) एवं देवीभागवतके पाठसे देवीकी उपासना कर नवार्णजप, सात्त्विक हवन-द्वारा भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करते हैं। देशभेदसे उपासनामें कुछ अन्तर अवश्य है। शारदीय नवरात्र तथा सरस्वती-पूजनमें वंगीय परम्परा, भक्तिप्रधान महाराष्ट्रपरम्परा तथा दक्षिण भारतकी सप्तशतीपाठ-विधिमें कुछ क्रम भिन्न हो गये हैं।

वाम (प्रशस्य) प्रज्ञावान् योगीका नाम है। पहले परद्रव्य, परदारा तथा परापवादरहित ब्राह्मण वाममार्गके अधिकारी होते थे। वाममार्गकी शक्ति-उपासना सर्वसिद्धियोंको शीघ्र प्रदान करती थी। शिव-शक्तिमें अभेद रखनेवाले कौल (कौलिक, वाम, चीन, सिद्धान्ती तथा शाबर) चक्रों तथा मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—पञ्चमकारोंकी उपासनासे (इनके आध्यात्मिक, सांकेतिक यथार्थके ज्ञानपूर्वक—मात्र वाच्यार्थ नहीं) लौकिक-पारलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। 'भैरवी चक्र' लौकिक मद्य-मांस-सेवन, बलि तथा अनाचारसे अनधिकारी बौद्धों तथा तान्त्रिकोंने इसे कलुषित बना दिया। तन्त्रशास्त्रोक्त यौगिक तथ्योंके पालनसे इस मार्गको भी उपयोगी बनाकर शक्ति-साधक अपना तथा देशका हित कर सकता है।

सभी स्त्रियोंको देवी मानकर उनका सम्मान करना, काम-क्रोध-मद-मोह प्रभृति आन्तरिक तथा बाह्य अनाचारों एवं दोषोंको छोड़ना शक्ति-उपासनाके लिये अनिवार्य एवं अति उपयोगी है।

भारतके विभिन्न अञ्चलोंके शास्त्र, पूजन-विधिसे अपरिचित लक्ष-लक्ष सामान्य नर-नारी, बालिका-बालक लोकगीतोंसे 'माँ' को द्रवित कर लेते हैं। योग-विधियों, साधनोंसे अनभिज्ञ कोटि-कोटि ग्रामीणजन नवरात्रों तथा देवी-उत्सवोंमें सम्मिलित होकर तन्मयतापूर्वक यत्किञ्चित् पत्र, पुष्प, ध्वजा, नारियल अर्पित कर अभीप्सित फल प्राप्त करते हैं। कुछ सुरथ-जैसे राज्यकामी उपासक सावर्णि मनु हो जाते हैं तथा अन्य समाधि-जैसे वैश्य आराधक ज्ञान प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति यथार्थ एवं अतीव प्रेरक है—

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्॥

शक्ति और शक्तिमान्‌की अभिन्नता

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

सभी निगमागमोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्तिमें परमार्थतः अभिन्नता ही है। केवल व्यावहारिक सत्तामें भेद है। शिव, विष्णु, शक्ति आदिके उपासकोंकी अपने-अपने आराध्यमें यथारुचि एकान्त निष्ठा सुदृढ़ करनेके लिये ही शैव, शाक्त, वैष्णवादि तत्तत् पुराणोंमें तत्तत् देवोंकी अद्वितीय महिमा बतलायी गयी है। परस्परवर्णित तारतम्यभावसे न तो वास्तविक तारतम्य सिद्ध होता है और न पुराणोंमें कोई तात्त्विक भेद ही। शिव, विष्णु या शक्ति किसीकी सर्वप्रधानता मानकर उपासना करनेवालोंका मङ्गल-ही-मङ्गल है, यदि वे अपने उपास्य-देवसे भिन्न देवोंके प्रति द्रोहभाव नहीं रखते[1]।

सारांश यह कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा शक्तिमें परस्पर कोई तारतम्य भाव नहीं है। इसी रहस्यका उद्घाटन वेद, पुराण आदि करते हैं। छान्दोग्योपनिषद्‌का कथन है कि समस्त जगत् ब्रह्मात्मक है—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**।[2] तैत्तिरीयोपनिषद्‌की श्रुति कहती है कि जिस परब्रह्म परमात्मासे समस्त भूतोंके जन्म, स्थिति और लय होते हैं उसीको जानना चाहिये, वही ब्रह्म है—**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति**[3]।'

इसीका प्रतिपादन **'जन्माद्यस्य यतः'** यह ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भागवत आदि करते हैं। यही सिद्धान्त प्रकारान्तरसे भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें बतलाते हैं कि यह समस्त विश्व वासुदेवमय है—**'वासुदेवः सर्वमिति'** सत् तथा असत् सब कुछ स्वयं भगवान् ही हैं—**'सदसच्चाहमर्जुन'**। भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है—

'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।'

इसी बातका स्पष्ट प्रतिपादन देवीभागवतमें हुआ है—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।

अर्थात् यह समस्त जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा अन्य कोई अविनाशी वस्तु नहीं है।

देवी नित्या, सनातनी होकर भी साधुओं और देवोंके परिमाणके लिये आविर्भूत होकर उत्पन्ना बतलायी जाती है तथा विभिन्नरूपोंमें लीला करती है—

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥
(दुर्गासप्तशती १। ६६)

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
(वही ११। ५५)

वास्तविक रूपमें तो वह एक ही है—**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीयाका ममापरा।** (वही १०। ५) देवीके अवतारका यही कारण है, जो स्वयं देवीने देवीभागवतमें कहा है—

साधूनां रक्षणं कार्यं हन्तव्या येऽप्यसाधवः।
वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः॥
युगे युगे तानेवाहमवतारान् बिभर्मि च॥

साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका संहार, वेदोंका संरक्षण करनेके लिये ही देवी प्रत्येक युगमें अवतार लेती है।

यही बात गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

---

१. सिव द्रोही मम भगत (दास) कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥

२. छान्दोग्य० ३। ४।

३. तैत्तिरीय भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाक

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इससे स्पष्ट है कि परमात्मा और पराशक्तिका अवतार एक ही उद्देश्यसे होता है एवं दोनों तात्त्विक दृष्टिसे एक ही हैं। ऐतरेयोपनिषद्में बतलाया गया है कि प्रकट होनेसे पहले यह जगत् एकमात्र परमात्मा ही था। उससे भिन्न दूसरा कोई भी चेष्टा करनेवाला नहीं था। उस परम पुरुष परमात्माने लोकोंकी रचना करनेके विचारसे इन (चतुर्दश) लोकोंकी रचना की।

आत्मा वा अयमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकानसृजत् (ऐतरेयो० १। १। १-२)

यही बात बह्वृचोपनिषद्में बतलायी जाती है कि सृष्टिके आदिमें एक देवी ही थी। उसीने ब्रह्माण्ड (चतुर्दशभुवन) उत्पन्न किया। उसी पराशक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए। उसीसे सभी मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर वाद्यवादक उत्पन्न हुए। उसी पराशक्तिसे समस्त भोगपदार्थ, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज—जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम मनुष्यादि प्राणिमात्र हैं, उत्पन्न हुए। ऐसी वह पराशक्ति है—

'देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्। तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्, विष्णुरजीजनत्, रुद्रोऽजीजनत्, सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत् किंचैतत् प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्। सैषा परा शक्तिः।' (देव्यु०)

ऋग्वेदके वागाम्भृणी सूक्त तथा देव्यथर्वशीर्षमें इस विषयका सविस्तार प्रतिपादन हुआ है। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि परमात्मा और पराशक्ति एक ही हैं। उनमें तात्त्विक अन्तर नहीं है। 'शक्ति' और 'शक्तिमान्'-में पारमार्थिक भेद कैसे हो सकता है ? अतः वेद, पुराण, एवं तर्कसम्मत यह सिद्धान्त प्रमाणित है कि परमात्मा तथा पराशक्ति दोनों सर्वथा अभिन्न हैं।

श्रीराधा-तत्त्व

(रचयिता—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

मनमोहन-मन-मोहिनि स्यामा।
सदा-सदा अनुगत प्रीतम की, तदपि केलि में नित अति वामा॥
महाभावमूरति अति रसिका, ललित ललन-लालिता सुधामा।
चित-चोरनि चित-चोर स्याम की, गरबीली हूँ प्रिय-रतिरामा॥ १॥
दोउ दोउ के चकोर अरु चन्दा, दोउ पंकज दोउ अति गुनग्रामा।
दोउ कों दोउ की ललक निरन्तर, दोउ रस-रसिक दोउ रसधामा॥ २॥
दोउ अभिन्न हूँ दोउ भिन्न-से, पूर्नकाम हूँ, सतत सकामा।
सदा मिलितहूँ रहहिं अमिल-से, केलिकलानिधि दच्छिन वामा॥ ३॥
पावन प्रीति-रीति की प्रतिमा, तदपि प्रीतिरस-ललक ललामा।
का का कहि बरनें या रस कों, जा के रसराज हूँ अनुगामा॥ ४॥

विविध रूपोंमें माँ शक्तिकी अनुपम स्नेहपूर्ण दया

(भोगवर्धन-पीठाधीश्वर ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीकृष्णानन्दसरस्वतीजी महाराज)

तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे।
(श्रीशंकराचार्य)

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डजननी, कल्याणमयी, करुणामयी, पुत्रवत्सला पराम्बा जगदम्बाकी अहैतुकी अनुकम्पाके बिना जीवका व्यावहारिक तथा पारमार्थिक कल्याण असम्भव है। किसी भी क्षेत्रमें शक्तिकी पूजाके अभावमें जीवकी गति नहीं। इसीलिये अनादि-अविच्छिन्न सनातन परम्परा-प्राप्त, श्रौतस्मार्तानुसारी आप्तजनानुमोदित, शिष्ट-परिगृहीत भारतीय सम्प्रदायपरम्पराओंमें जहाँ शैवत्व, वैष्णवत्व, सौरत्व, गणपतित्व सापेक्ष हैं, वहीं केवल एकमात्र शक्तित्व निरपेक्ष है। देवी-भागवत तथा निर्वाणतन्त्र तृतीय पटलमें कहा गया है—

शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवाः।
उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्॥

'सभी द्विज शाक्त ही हैं, न तो वे शैव हैं और न वैष्णव; क्योंकि वे सब परम अक्षर (अविनाशी)-स्वरूपा गायत्रीकी उपासना करते हैं।'

लोकमें भी माताका महिमा पितासे अधिक है। पिताको जाननेके लिये माँका संकेत आवश्यक है; किंतु माता शिशुके लिये भी पहचान-परिचयसे निरपेक्ष है। कुछ ही घण्टोंका उत्पन्न बालक मातृ-अङ्कको समझ लेता है। उसे अङ्गसे कुछ बतानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीलिये श्रुति-स्मृति, पुराण-इतिहास, आगमादिमें पहले माँका नाम लेनेके बाद ही पिताके नामोच्चारणकी विधि है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीराधाकृष्ण-उच्चारणके प्रसङ्गमें देवर्षि नारद श्रीनारायणसे पूछते हैं—

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं विदुर्बुधाः।
निमित्तमस्य मां शक्तं वद भक्तजनप्रिय॥

—'पहले राधाका उच्चारण करके तत्पश्चात् ही श्रीकृष्णके नाम लेनेकी बात विद्वज्जन कहा करते हैं। इसका क्या कारण है, हे भक्तजनोंके प्रिय! मुझे ठीक बात बतलानेकी कृपा करें।'

इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय।
जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्-पिता॥
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः।
राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः॥
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः।
'प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिदं मम॥'
'गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर।'
'प्रसीद कमला-कान्त गृहाण मम पूजनम्।'
इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम।
'रा' शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः।
'धा'शब्दोच्चारतः पश्चात् धावत्येव ससंभ्रमः॥

भावार्थ यह कि प्रकृति और पुरुषमें प्रकृति ही माँ है और तीनों लोकोंमें माताका स्थान पितासे सौगुना महिमामय है। लोक और वेद दोनोंमें ही माताके नामका प्रथम उच्चारण होता है। गौरी-शंकर, राधा-कृष्ण, रोहिणी-चन्द्र, संज्ञा-सूर्य आदिका उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि मातृशक्ति ही प्रधान है। सामवेदकी कौथुम-शाखामें भी यही सरणि प्राप्त होती है। वास्तवमें 'रा' के उच्चारणसे तो भगवान् चलनेको प्रवृत्तमात्र होते हैं, किंतु 'धा'के उच्चारण होते ही वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये दौड़ पड़ते हैं।

पाणिनीय व्याकरणमें भी 'माता-पितरौ' प्रयोग प्राप्त होता है। शास्त्रका आदेश है—

पितुः शतगुणा पूज्या वन्ध्या माता गरीयसी।
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः॥

—'पितासे शतगुणी पूज्या महिमामयी माँ है। वन्ध्या-माता (स्त्री) भी आदरणीया है। गुरुओंमें गुरु

माता परम श्रेष्ठा हैं।' 'मातृदेवो भव' पितृदेवो भव' आदि शास्त्रवचनोंमें क्रमपर दृष्टिपात करनेपर माताके सर्वोच्च स्थानका संकेत स्वयं ही प्रकट रूपमें परिलक्षित होता है। जनसाधारण भी श्रीराधा-कृष्ण, सीता-राम, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण, साम्ब-सदाशिव ऐसा प्रयोग करते हैं।

वस्तुतः नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त, निर्विशेष, निरुपाधिक, निराकार-निर्विकार, निर्गुण-निरञ्जन, निर्द्वन्द्व-निर्दक्, निर्लिप्त, साक्षीभूत, वाङ्मनसातीत, अप्रमेय ब्रह्मके अवतरणमें प्रेरिका भी वह भगवती शक्ति ही है; क्योंकि उनमें विद्यमान वात्सल्य, अहैतुकी दयाका अनुरोध होता है कि जीवोंकी सद्गतिके लिये निरुपाधिक ब्रह्म सोपाधिक, सविशेष, लीला रूप ग्रहण करे और जीव तद्रूप भगवान्‌की लीलाओं एवं चरित्रोंके मनन-गायन और स्मरणसे अपनेको धन्य कर सके। भगवान् स्वयं स्वीकार करते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'मातृप्रकृति ही भगवान् विष्णु, शङ्कर और प्रजापतिका शरीर ग्रहण करती है। ब्रह्माजीद्वारा की गयी स्तुतिसे यह बात प्रमाणित है—

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशानमेव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥

विचार करके देखा जाय तो इन सबमें हेतु है भगवतीका जीवके प्रति दया-भाव। जीव-पुत्रके लिये, उसके कल्याणके लिये माँ शक्तिके हृदयमें अनुपम स्नेह और अहैतुकी दया है। परमात्माकी अदालतमें बिना किसी फीसके यदि उसके अनन्त अपराधोंके बावजूद कोई वकालत करनेवाली दिव्यशक्ति है तो वह है श्रीमाँ। उसका हृदय सदा-सर्वदा जीवरूपी पुत्रके प्रति वात्सल्यसे अनुपूरित है। वही उसे मुक्त कराती है, समस्त कार्य-भोगोंसे उसे बरी करा देती है। अपनी इसी स्वाभाविक ममता और महान् क्षमा-भावनाके कारण ही भगवती सीताने जयन्तद्वारा किये गये अक्षम्य अपराधके प्रति भी क्षमाका भाव प्रकट किया। जिसके अनुशासनमें काल, यम, सूर्य, चन्द्र, दिक्पाल आदि अनेक शक्त देव स्व-स्वकर्तव्योंके प्रति तनिक भी विचलित नहीं होते, ऐसे प्रभुके अनुशासनसे निर्मित न्यायालयमें जयन्त काक-जैसे भीषण अक्षम्य घोर महापापीके जीवनकी रक्षा-हेतु वकालत अम्बा सीताके ही वशकी बात हो सकती थी। द्रष्टव्य है कि भगवती सीताकी उपस्थिति थी तो जयन्त जैसा बड़ा-से-बड़ा अपराधी पापी भी बच गया और उनकी अनुपस्थिति थी तो छोटा-सा अपराधी भी बालि मारा गया।

एक और मार्मिक बात उल्लेखनीय है। सभी देवताओंने कृपा करने-करानेमें कोई-न-कोई शर्त—अनुबन्ध लगा रखा है। जैसे—'**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' या तवास्मीति च याचते'**: आदि, किंतु अनुग्रह मूर्ति माँ शक्ति सीताजीने कोई भी शर्त या बन्धन नहीं लगाया। उनकी कृपा सर्वत्र बरसती है। प्रमाण है वाल्मीकि रामायणका वह प्रकरण, जब श्रीहनुमान्‌जी अशोक-वाटिकामें सीताजीसे मिलते हैं। इसके पूर्व वे सीताजीको सभी राक्षसिनियोंद्वारा धमकाया जाता देख चुके हैं। बादमें वे इस आदेशकी प्रतीक्षा करते हैं कि माँ उन्हें आज्ञा देती तो विधिवत् वे राक्षसिनियोंको यथातथ्य दण्ड देते। पर भगवती यही कहती हैं कि 'हे वानरश्रेष्ठ! इन अकरणीय अनुचित कार्योंके हेतु ये स्वयं नहीं हैं। ये बेचारी तो राजाज्ञासे बँधी हैं। इनके प्रति दण्ड नहीं, क्षमाभाव ही उचित है।' धन्या है वह परात्परा शक्ति दयामयी माँ! तत्त्वदृष्टि और गहरी प्राण-वत्ताके साथ रामायणका मनन किया जाय तो लगेगा कि रामकथामें सीता-चरित्र उत्तरोत्तर दिव्य है। रामायण जितना '**रामस्य अयनं रामायणम्**' वाली व्याख्याको चरितार्थ करता है, उससे कम '**रामायाः अयनं रामायणम्**'-

इस व्याख्याको अनुमोदित नहीं, उत्कर्षके साथ प्रशस्त भी करता है।

भगवती पराम्बा सदा जीवके पक्षमें रहती हैं। वे पक्षपात भी उसीका करती हैं। इतना ही नहीं, जीव-पुत्रके कल्याणार्थ ये अपनेको गिराकर भी उसे उठाती हैं। यह उनके स्वभावका एक अङ्ग है। भगवत्पदी भागीरथी कलिकलुषविनाशिनी पतितपावनी दीनजनोद्धारिणी श्रीगङ्गा-जी भी तो यही करती हैं। जो अच्युत—ब्रह्मपदसे च्युत—भ्रष्ट जीवको पुनः अच्युतपदप्राप्ति करानेके लिये स्वयं अपनेको भी उस अच्युतपदसे च्युत कर लेती हैं। क्या कहीं किसी अन्यमें है, ऐसी दया?

जगज्जननि जाह्नवि त्वयि निमज्जतां जन्मिनां
सदाशिवशिरःस्थितां शिवकरीति किं चक्ष्महे।
इदं तु महदद्भुतं जगति जातु नालोकितं
यदच्युतपदच्युता तदच्युतपदं यच्छसि॥
(गङ्गाष्टक)

'संसारमें ऐसी कोई दयामयी माँ नहीं देखी गयी जो अपने सर्वस्वप्रिय देवके द्वारा सम्मानित मुकुटमणि होकर, सर्वोन्नतिके शिखरपर स्थान पाकर भी नीचे गिरनेको तैयार हो। इस विषयमें भगवती गङ्गाकी करुणा ही हेतु है। भवसागरमें निमग्न जनोंके उद्धार-हेतु भगवान् चन्द्रचूड़का मस्तक-स्थान छोड़कर वही दयामयी माँ आती है धराधामपर। सगरके पुत्रोंका उद्धार तो करती ही है, असंख्य लोगोंकी मुक्तिका हेतु भी बनती है। एक भक्तके शब्दोंमें—

न काचिल्लोकेऽस्मिन् पतति जलकूपे निपतितं
शिशुं दृष्ट्वा स्वीयं प्रलपति तटस्थैव जननी।
अहो गङ्गा गङ्गाधरमुकुटकूटान्निपतिता
समुद्धर्तुं लोकान् किमिति भवकूपे निपतितान्॥
(गङ्गाष्टक)

गङ्गास्वरूपा मातृशक्तिकी अपरिमेया करुणा उनके आर्द्रचित्तकी उद्घोषणा है। देवीका हृदय नित्य-निरन्तर करुणासे आर्द्र है। वेदादि-शास्त्र इनका बहुशः निरूपण करते हैं—

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

वैरियोंके प्रति भी यही भावना रखती हुई देवी उन्हें समराङ्गणमें नष्ट करती हैं, अन्यथा मारे जानेपर राक्षस मुक्त कैसे होते? उन्हें मुक्त भी करना कृपाका फल है, अकृपाका नहीं—

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिपु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी॥

केनोपनिषद्के अनुसार सर्वश्रेष्ठ यक्षावतारधारी यक्ष-ब्रह्मने अग्नि, वायुको तो अपना स्वरूप-ज्ञान कराया, पर दर्पके मूर्तिरूप देवराजको दर्शन ही नहीं दिया, बातचीत, ज्ञान-प्रदान करनेको कौन कहे। उस समय अपमान-बोधसे पीड़ित सुरपतिपर दया की उमा हैमवतीने ही। उनकी कृपासे उन्हें ब्रह्म-विद्याकी प्राप्ति हुई।

इसी प्रकार अमृतका मन्थन-चक्र चलनेके बाद विकराल ज्वालाओंसे दग्ध करनेकी शक्ति लेकर उत्पन्न विषके पान करनेका प्रश्न उठनेपर भगवान् भूतनाथने जो करुणा प्रकट की, उसकी प्रेरिका भी माँ भगवती उमा ही थीं। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीकृष्ण-प्रिया श्रीराधाके स्नेहवात्सल्यका तो कहना ही क्या? उनकी आराधनाके बिना न तो सच्ची आराधना होती है, न हो सकती है। वे ही वास्तवमें ब्रह्माकाराकारिता अन्तःकरकी चरमावृत्ति-स्वरूपा हैं, रसरूपा हैं। रसरूपके दर्शन-हेतु आवरणका भंग होना नितान्त आवश्यक है और श्रीराधिकाके अनुग्रहके अभावमें आवरणका भंग कहाँ? यहाँतक कि अद्वैतवेदान्तीके लिये भी सकलानर्थनिवृत्तिपूर्वक

परमानन्द-प्राप्ति-स्वरूप स्वभिन्नात्मैक्यबोधके लिये ब्रह्ममें वृत्ति तो आवश्यक है ही और यह कथनकी अपेक्षा नहीं रखता कि उक्त वृत्ति श्रीराधाके अतिरिक्त है ही क्या ?

संसारमें सत्ता और आनन्द क्या किसीके भी मित्र रहे हैं ? किन्तु इसी सत्ता और आनन्दको भी व्रजभक्तोंका मित्र, जीवोंका मित्र बना देना यही तो इन श्रीव्रजेन्द्रनन्दिनी श्रीराधारानीकी निरुपम स्नेहपूर्ण दया है। यह उपकार सिवा प्रेमरूपा भगवती श्रीराधाके और कौन कर सकता है ?

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
(श्रीमद्भागवत, १०)

उपासनाओंका फल है उपास्यके गुणोंका उपासकमें आ जाना। विघ्नविनाशादिगुणविशिष्ट ब्रह्म 'श्रीमन् महागणपतिकी, मर्यादापालकत्वगुण विशिष्ट श्रीरामचन्द्र राघवेन्द्रकी, मदन-दाहकत्वगुणविशिष्ट ब्रह्म विश्वनाथ सदाशिवकी, कन्दर्पदर्पदलन मदनमोहन कामविजयत्वादिगुणविशिष्ट ब्रह्म साक्षान्मन्मथमन्मथ श्रीकृष्णचन्द्र प्रभुकी उपासनाओंसे उपासकोंमें भी ये गुण समाविष्ट होते हैं, किन्तु इन विशिष्ट नामधेय प्रभुओंमें ये गुणगण कहाँसे आते हैं ? उत्तर यही है कि इनके गुणोंका भी मूलस्थान, उद्गमस्थान दयामयी माँ शक्ति ही हैं। यही कारण है कि भगवान् अथवा विशिष्टगुणसम्पन्न ब्रह्म भी शक्तिकी आराधनामें नित्य-निरन्तर लगे रहते हैं।

वास्तवमें भक्ति किसी भी ईश्वरके स्वरूपकी हो, ईश्वरकी गुणवत्ता—जो भक्तिके कारण और फल दोनोंमें विद्यमान और प्रधान है—शक्तिके हेतुत्वमें ही निहित है। शक्ति, भगवान्‌की भगवत्ता है और भगवत्तामें निहित दिव्यगुणोंका अधिष्ठान भगवती ही है। उन पराम्बाकी अकारण दया जीवको सहज उपलब्ध होती है। इसीलिये सभी उनकी कृपाके लिये उत्सुक हैं और उन जगदम्बाकी करुणा भी ऐसी कि वे अपने पुत्रोंके कल्याण-हेतु सतत, बिना किसी शर्तके सदा-सर्वदा उद्यत रहती हैं। जीवकी समस्त अपात्रताके बावजूद इस एकमात्र पदकी अर्थगरिमासे नित्य आप्लाविता वे भगवती सदा-सर्वदा अनुकम्पामयी हैं। उन्हें शत-शत नमन।

प्रगट प्रभाव जगदम्बेको

(रचयिता—श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी')

लूले-लँगड़े को पग देत है परिक्रमा में,
दिव्य छबि-दर्शन को दृष्टि देत अंधे को।
आरत पुकार पर दौरिकै सँभारत है,
फंदे सब तोरि कै बचावै निज-बंदे को॥
धार करुणा की ढारती है शरणागत पै,
शुद्ध करि शीघ्र तारती है जीव गंदे को।
करत अभाव पाप-ताप को स्वभाव ही सौं,
'प्रेमीकवि' प्रगट प्रभाव जगदम्बे को॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता

(योगिराज श्रीदेवरहवा बाबाके अमृत-वचन)

शास्त्रोंमें कहा गया है—**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** अर्थात् शक्तिहीनको न आत्माकी और न परमात्माकी ही प्राप्ति होती है।

आज विश्वमें सर्वत्र भीषण अशान्ति छायी हुई है। लोग रोग-शोक-ग्रसित होते जा रहे हैं। हिंसा, भ्रष्टाचार आदि कुप्रवृत्तियाँ दिनानुदिन बढ़ती जा रही हैं। सभी विकासके नामपर मूढ़तावश महाविनाशकी तैयारीमें लगे हैं। इसका एकमात्र कारण शक्तिकी आराधनासे विमुख होना ही है।

ब्रह्ममयी माँकी उपासना-आराधनासे मनुष्य सद्यः विशिष्ट शक्ति लाभ करता है। परमवत्सला सर्वशक्ति-दात्री माँका ध्यान-वन्दन करनेसे साधक सर्वसद्गुणोंका पुञ्ज हो जाता है। उसका अन्तर्मन दिव्य आलोकसे प्रकाशित हो जाता है।

विश्वमें जितने भी जड़-चेतन पदार्थ हैं, वे सभी अपनी-अपनी शक्तिसे ही अपने-अपने अस्तित्वको रखते हैं; अतः शक्ति विश्वमय और विश्वाधार है। प्रत्येक जीव जाने-अनजाने शक्तिकी पूजा करता है; किंतु उसके शुद्ध स्वरूपको न जानकर मोहित हो रहा है। सच्ची शक्तिको पहचानकर जीव दुःख और मृत्युको जीत लेता है। मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र होकर निष्ठायुक्त अखण्ड साधनाके फलस्वरूप साधक परम प्रेमस्वरूपा शक्ति माताका दर्शन करता है। उसकी प्रज्ञा प्रखर हो जाती है। उसके अन्तःकरणमें एक ऐसे तेज और शक्तिका प्रकाश होता है, जिसके सम्पर्कमें आनेवाला असाधु साधु हो जाता है, नास्तिक भी भगवद्भक्त हो जाता है और संसारके समस्त तापोंसे परितप्त पुरुष शान्तिका अधिकारी बन जाता है।

परमाराध्या माँ पग-पगपर हमारी सार-सँभाल करती है। जिस माँको हम दूर समझकर दुःखी और असहाय बने रोते हैं, वह हमारे अत्यन्त निकट है। देवीकी स्तुतिमें देवताओंने कहा है—

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

'जो देवी चेतनारूपसे सब प्राणियोंमें बसी हुई है, हममें जो चैतन्य है वह देवीके अस्तित्वका ही द्योतक है, उस देवीको हम नमस्कार करते हैं, बार-बार उसे नमस्कार करते हैं।'

आगे कहा है—

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।

'देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूप बनकर रहती है।' हम विचार इसीलिये कर पाते हैं कि माँ बुद्धिरूप होकर हमें विचार करनेमें सहायता देती है।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।

दिनभर काम करते-करते जब हम थक जाते हैं, तब माँ नींद बनकर हमारे पास आती है, रोज आती है, बिना बुलाये स्वयं आती है; परंतु हम उसे पहचान नहीं पाते।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।

माँने हमें शरीर दिया है, इसलिये वह चाहती है कि हम उसकी रक्षा करें, अतः माँ क्षुधारूपसे (भूख बनकर) इस शरीरकी रखवालीमें हमारी सहायता करती है।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।

माँको हम इतने प्यारे हैं कि वह एक क्षण भी हमसे अलग रहना नहीं चाहती। सदा हमारे साथ हमारी छाया बनी फिरती है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।

हम जो कुछ भी छोटा या बड़ा कार्य सम्पन्न करते हैं, माँ शक्ति बनकर हमें उसे पूरा करनेमें सहायता देती है।

इस प्रकार कल्याणमयी माता भगवती अहर्निश हमारे हितसाधनमें संलग्न रहती है तथा तरह-तरहके रूप बनाकर हमें सुखी बनानेमें तत्पर रहती है।

माता ही संसारमें अधिक पूज्या है—**'न मातुः परं दैवतम्'**। अखिल विश्व-जननीके अनन्त क्रोडमें ये अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड शिशुवत् खेल रहे हैं—

त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा
खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः।
जननि तानि पुनः करणानि च
त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथ हंकृतिः॥
(देवीभागवत ३। ५। ३)

अतः कल्याणेच्छुक मानवोंको विश्वकी मूलाधार महामाया शक्तिकी आराधनाद्वारा अपने जीवनको समुन्नत और सार्थक बनाना चाहिये।

प्रेषक—श्रीमदन शर्मा, शास्त्री

श्रीशक्ति-उपासना

(पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

**या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥***
(दुर्गास० ४। ५)

शक्ति और शक्तिमान् दो नहीं, एक ही हैं। शक्ति-सहित पुरुष शक्तिमान् कहलाता है। जैसे 'शिव' में 'इ' शक्ति है। 'इ' को निकाल दें तो 'शिव' 'शव' बन जायँगे। जब प्रलयकाल होता है, तब भगवान् समस्त संसारको समेटकर उदरस्थ कर लेते हैं। जब कालान्तरमें पुनः सृजनकाल समुपस्थित होता है, तब संकल्प-शक्तिद्वारा भगवान् या भगवती एकसे बहुत बन जाते हैं—**एकोऽहं बहु स्याम्**।

भगवान् प्रकृति, योगमाया या अविद्याका आश्रय लेकर पुनः जगत्-प्रपञ्चको चलाते रहते हैं। इस प्रकार प्रवाहरूपसे यह संसार नित्य है। सृष्टि-प्रलय कालके अनुसार होते हैं, अतः काल भी नित्य है। जिस प्रकृतिके स्वभावके कारण यह संसार-चक्र चल रहा है, वह प्रकृति महामाया भी नित्य है। सब कुछ नित्य-ही-नित्य है। अनित्य कुछ भी नहीं। अथवा यों कहिये कि अनित्य भी नित्य ही है। जगत्में कोई देवीको मानते हैं तो कोई देवको।

ब्रह्मवैवर्त-पुराणके गणेशखण्डमें बतलाया गया है कि सृष्टिके समय एक बड़ी शक्ति पाँच नामोंसे प्रकट हुई। वे पाँच नाम हैं†—(१) राधा, (२) पद्मा, (३) सावित्री, (४) दुर्गा और (५) सरस्वती। इनमें राधा कौन कहलायी ? जो देवी परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिष्ठात्री हैं और प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा हैं, वे ही 'राधा' नामसे सुप्रसिद्ध हैं। जो ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंको करनेवाली हैं, वे ही परमानन्दस्वरूपिणी देवी 'लक्ष्मी' नामसे प्रसिद्ध हैं। जो विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं, परमेश्वरकी दुर्लभ शक्ति हैं और वेदों, शास्त्रों तथा समस्त योगोंकी जननी हैं,

* जो देवी पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं लक्ष्मीरूपसे तथा पापियोंके यहाँ दरिद्रारूपसे विराजती हैं, शुद्ध अन्तःकरणवालोंके यहाँ बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंके यहाँ श्रद्धारूपसे और कुलीनोंके यहाँ लज्जारूपसे रहती हैं, उन देवी भगवतीको हम नमस्कार करते हैं। हे देवि ! आप सम्पूर्ण विश्वका परिपालन करें।

† सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती॥

वे 'सावित्री' कही जाती हैं। जो बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सर्वज्ञानात्मिका और सर्वशक्तिस्वरूपिणी हैं, वे 'दुर्गादेवी' के नामसे प्रसिद्ध हैं। जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं, शास्त्रीय ज्ञानको प्रदान करनेवाली हैं तथा जो श्रीकृष्णके कण्ठसे उत्पन्न हुई हैं, वे 'सरस्वती' देवी कहलाती हैं। इस प्रकार एक ही देवी या देव बहुत रूपोंसे जाने-माने जाते हैं। यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका है। इसमें सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण सदासे रहे हैं और सदा रहेंगे। यह दूसरी बात है कि कभी सत्त्वगुणकी प्रधानता हो जाती है, कभी रजोगुण बढ़ जाता है तो कभी तमोगुणकी वृद्धि होती है। मनुष्य भी सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी सदासे रहे हैं और सदा होते रहेंगे। जो जैसा गुणवाला होता है, उसकी उपास्या देवी भी वैसी ही होती है। भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि जो सत्त्वगुणी या सात्त्विक प्रकृतिके होते हैं, वे परमात्माके साक्षात् स्वरूप—भगवान् देवताओंकी आराधना करते हैं, जो राजसी प्रकृतिके पुरुष होते हैं, वे यक्षों-राक्षसोंकी पूजा करते हैं और जो तमोगुणी पुरुष हैं, वे भूत-प्रेत, पिशाचादिकी उपासना करते हैं।* जैसा जिसका स्वभाव है, जैसी जिसकी प्रकृति है, जैसी जिसकी श्रद्धा है उसीके अनुसार वह बर्ताव करेगा और वैसा ही उसे फल मिलेगा। जिसकी पूर्वजन्मोंके संस्कारोंके अनुसार जैसी प्रकृति और जैसा स्वभाव होता है, वह तदनुरूप ही कर्म करता है। स्वभावको दुरतिक्रम एवं दुस्त्यज बताया गया है।

इसी प्रकार देवी तो एक ही हैं, किंतु उनकी पूजा प्रकृतिभेदसे सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी तीन प्रकारकी होती है। जो जैसी पूजा करेगा उसे वैसा ही फल भी मिलेगा। जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य तथा शक्ति—इन पञ्चदेवोंके पूजक हैं। वे मुख्यतया विष्णुकी ही पूजा करते हैं और उन्हींके अन्तर्गत चारों देवोंकी भी। किंतु जो इन पाँचोंमेंसे केवल एकके ही उपासक हैं, वे एक ही देवकी उपासना करते हैं। जो अन्य देवोंको नहीं मानते, वे 'अनन्य' कहलाते हैं।

हमारे पुष्टि-मार्गके वल्लभवंशीय गुसाईं प्रतिवर्ष व्रजकी चौरासी कोसकी यात्रा करते हैं। यह कभी कहींके गुसाईं उठाते हैं तो कभी कहींके। उनके बड़े-बड़े लक्षपति, कोटिपति धनिक शिष्य-सेवक होते हैं। सहस्रों शिष्य-सेवक यात्रामें आते हैं। विशेषकर गुजराती भक्त अधिक संख्यामें होते हैं। गोस्वामी-स्वरूपोंका वैभव परम ऐश्वर्यसम्पन्न राजसी होता है। उनके शिष्य-सेवक उन्हें साक्षात् श्रीकृष्णका स्वरूप ही मानते हैं। नन्दग्राम, बरसाने तथा वृन्दावन आदिके सेवाधिकारी भी गुसाईं ही कहलाते हैं, किंतु उनका वैभव गोकुलिया वल्लभ-कुलवाले गोस्वामियोंकी भाँति नहीं है।

एक बार व्रज-यात्रामें एक वल्लभ-कुलके गोस्वामी बरसानेमें पालकीमें बैठकर आये। उनके आस-पास सैकड़ों शिष्य-सेवक थे, उनका बड़ा ठाट-बाट था। उसी समय बरसानेके एक गुसाईंजी अपने खेतमेंसे चरी काटकर उसका बोझ सिरपर लादे आ रहे थे। गाँवके लोगोंने उन्हें देखकर कहा—'गुसाईंजी पायँ लागों, गुसाईंजी राम-राम।'

जो गुसाईंजी पालकीमें बैठे थे, वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने तो अपने ही गुसाइयोंको ठाट-बाट और वैभवके रूपमें देखा था। यह सिरपर बोझ लादे देहाती कैसा गुसाईं है?

अतः उन्होंने बड़ी नम्रतासे पूछा—'भाई! आप कौन-से गुसाईं हैं? यह सुनकर वे बोझ लिये ही खड़े हो गये और बोले—'तू कौन सो गुसाईं ऐं।'

* यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

उन्होंने कहा—'हम तो अनन्य हैं।'

बरसानेवाले गुसाईंजी बोले—'हम फनन्य' हैं।'

पुष्टिमार्गीय गुसाईंजीने पूछा—'फनन्य' क्या है ?'

बरसानेवालेने पूछा—'अनन्य का ?'

तब पुष्टिमार्गीय गुसाईंजीने कहा—'हम शिव, शक्ति, गणेश आदि अन्य किसी देवताको न मानकर एकमात्र श्रीकृष्णको ही मानते हैं। अन्य किसी देवको देव न मानकर केवल एकमात्र अपने इष्टदेवको ही माननेवालेको 'अनन्य' कहते हैं।'

तब बरसानेवाले गुसाईंजीने कहा—'तुम तो और देवतानको जानत तो हतो, परि मानत नाहीं। हम सिवाय अपनी लाड़िलीजीके और काहू कूँ जानत ही नाहीं। जो अपने इष्ट कूँ छोड़िके और काहू कूँ जानत ही नाहिं वही 'फनन्य' है।'

बात हँसीकी है। यह घटना घटी थी या लोगोंने बना ली, कुछ निश्चित नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो अनन्योपासक होते हैं, वे इष्टके अतिरिक्त अन्य देवोंको नहीं मानते। उनकी पूजा नहीं करते। यही नहीं, अन्य देवोंका विरोध भी करते हैं।

अनन्य हों या फनन्य, शक्तिकी उपासना सभीको करनी ही पड़ती है। कोई भी मत हो, कोई भी सम्प्रदाय हो, सबमें किसी-न-किसी रूपमें शक्तिकी उपासना अवश्य होती है। बौद्धोंमें भी शक्ति-उपासना होती थी। वैष्णवोंमें—विष्णुकी उपासना करें तो उनकी शक्ति लक्ष्मी अवश्य रहेंगी। केवल नारायणकी नहीं, 'लक्ष्मी-नारायण'की पूजा होती है। रामोपासकोंमें केवल श्रीरामकी ही नहीं, अपितु उनकी शक्तिसहित 'सीता-राम'की उपासना होती है। श्रीकृष्णके साथ उनकी आह्लादिनी शक्ति राधाजीकी पूजा होती है। पुष्टिमार्गमें केवल बालकृष्णकी उपासना है, वहाँ भी श्रीराधाजीकी मान्यता है। भगवत्-शक्तिसे ही चराचर विश्वका संचालन हो रहा है। श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसीताजी, श्रीराधाजी—ये विशुद्ध सात्त्विक शक्तियाँ हैं। वैसे केवल शक्तिकी भी सात्त्विकी पूजा देवीरूपमें की जाती है। वे महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली कहलाती हैं। देवरूपमें ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र कहलाते हैं। देवरूपमें जिस प्रकार महाविष्णु ही सबके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं, उसी प्रकार देवीरूपमें महालक्ष्मी ही सर्वसत्त्वमयी तथा सम्पूर्ण तत्त्वोंकी अधीश्वरी हैं। वे ही निराकार और साकार रूपमें रहकर नाना प्रकारके नामोंको धारण करती हैं*। महाप्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतः देवीके भी सात्त्विक, राजस और तामस—ये तीन रूप हैं। सबका आदि-कारण त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही हैं, वे ही दृश्य और अदृश्य रूपसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थिर रहती हैं।

सात्त्विक लोग फल, फूल, मेवा, मिष्टान्नद्वारा ही उनकी पूजा करते हैं। जो लोग राक्षसी, तामसी प्रकृतिके हैं, वे महाकाली, चण्डिकाकी मांस-मदिरादिसे पूजा करते हैं। वैष्णवोंके लिये जैसे शिवजीके निर्माल्यका निषेध है, वैसे ही चण्डिकाका अन्न भी निषिद्ध बताया गया है। 'नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च' यहाँ चण्डिकान्न मांस-मदिरा ही समझना चाहिये। सात्त्विकी देवीके फल-फूल और अन्न आदिका निषेध नहीं है।

जो लोग घोर तामसी हैं, अघोरी हैं, वाममार्गीय हैं, वे भी देवीके ही उपासक हैं। उनके यहाँ मांस, मदिरा, मैथुन, मछली और मुद्रा—इन पञ्चमकारोंद्वारा देवीकी उपासना होती है। उनकी उपासनाकी बातें सुनकर ही हम लोगोंके रोयें खड़े हो जाते हैं। वे लोग

* महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी। निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत्॥

(प्राधानिक रहस्य)

अर्धरात्रिमें श्मशानमें जलती हुई चिताके समीप बैठकर मृतक देहके मांसको मनुष्यकी खोपड़ीमें खाते हैं, सुरापान करते हैं। उनमें भी बड़े-बड़े सिद्ध हो गये हैं। उनकी स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी है। वे सात्त्विकी उपासना कर ही नहीं सकते। हड्डियोंकी माला धारण करते हैं। जिन दिनों मैं बदरीनाथजीसे ऊपर तपोवनमें रहता था, वहाँ मेरे पास ही एक शाक्त अघोरी भी रहता था। उस तपोवनमें भगवती पार्वतीने तप किया था। वहाँ भगवती पार्वतीकी ही मूर्ति है। वह अघोरी हड्डियोंकी माला धारण किये रहता था। ऐसे लोग पञ्च-मकारोपासक होते हैं। देवी सात्त्विक-उपासकोंको सात्त्विक, राजस उपासकोंको राजस और तामस उपासकोंको तामस फल देती हैं। देवी तो सभीकी हैं। पुत्र जैसे आहारके उपयुक्त होते हैं, माँ उन्हें वैसा ही आहार प्रदान करती हैं। शरीरमें यदि शक्ति न हो तो कोई भी कार्य हो ही नहीं सकता। सभी कार्य शक्तिपर ही निर्भर है।

ऐसी ही एक कथा है कि भगवान् आद्य शंकराचार्य केवल निर्गुण-निराकार अद्वैत परब्रह्मके उपासक थे। एक बार वे काशी पधारे तो वहाँ उन्हें अतिसार हो गया। बार-बार शौच जाना पड़ता था, इससे वे अत्यन्त कृश हो गये। वे शौच करके एक स्थानपर बैठे थे। उनपर कृपा करनेके लिये भगवती अन्नपूर्णा एक गोपीका रूप बनाकर एक बहुत बड़ा दहीका पात्र लिये वहाँ आकर बैठ गयीं। कुछ देरके पश्चात् अहीरिनने कहा—'स्वामीजी! मेरे इस घड़ेको उठवा दीजिये।'

स्वामीजीने कहा—'माँ! मुझमें शक्ति नहीं है, मैं उठवानेमें असमर्थ हूँ! माँने कहा—'तुमने शक्तिकी उपासना की होती, तब शक्ति आती। शक्तिकी उपासनाके बिना भला शक्ति कैसे आ सकती है?'

यह सुनकर भगवान् शंकराचार्यकी आँखें खुल गयीं। उन्होंने शक्तिकी स्तुतिमें स्तोत्रोंकी रचना की। भगवान् शंकराचार्यजीके स्थापित चार पीठ हैं। चारोंमें ही चार शक्तिपीठ हैं। उन्होंने भगवती दक्षिणामूर्तिकी स्तुतिमें बहुत सुन्दर स्तोत्र रचे हैं।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण संसार शक्तिसे ओत-प्रोत है। भगवती शक्ति अनेक रूपोंसे संसारमें व्याप्त हैं। जितने भी स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, सब शक्तिके ही रूप हैं। संसारमें तीन प्रधान शक्तियाँ हैं, उन्हींसे इस सम्पूर्ण जगत्का संचालन हो रहा है। उनमें एक तो जनमोहिनी शक्ति है, जो स्त्रीके रूपमें जगत्में विद्यमान है। स्त्री न हो तो संसार चले ही नहीं, सब ऐकान्तिक त्यागी विरागी बन जायँ। पहले ब्रह्माजीने मानसिक सृष्टि ही आरम्भ की। मनसे संकल्प किया, ऋषि उत्पन्न हो गये। उनसे ब्रह्माजीने कहा—'तुम भी सृष्टि बढ़ाओ।'

जब कोई आकर्षण हो, कुछ वासना हो, कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा हो तब तो वे सृष्टि-कार्यमें प्रयुक्त हों! जब कोई इच्छा ही नहीं, आकर्षण ही नहीं, तब व्यर्थमें सृष्टिकार्यमें वे क्यों प्रवृत्त हों!

ऋषियोंने कहा—'महाराज! हम इस झंझटमें नहीं पड़ेंगे।'

ब्रह्माजीने कहा—'अरे, तुम कैसी बातें करते हो। यदि तुम सब ऐसे ही उदासीन, ऐकान्तिक हो जाओगे तो सृष्टि कैसे चलेगी?'

ऋषियोंने कहा—'क्या हमने कोई सृष्टि चलानेका ठेका लिया है? न चले, भले ही न चले, हम इस चक्करमें नहीं फँसते।'

तब तो ब्रह्माजी बड़े दुःखी हुए। भगवान्की शरणमें गये और बोले—'प्रभो! सृष्टि बढ़ानेकी कोई सुन्दर-सी वस्तु उत्पन्न करो।'

उसी समय ब्रह्माजीके दो रूप हो गये। एक तो पुरुषरूप मनु हुए, जिनके वंशज 'मनुष्य' कहलाये। दूसरी स्त्री शतरूपा हुई, जिसने अपने शत-शत रूपोंसे पुरुषोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसे देखकर सभीका हृदय पानी-पानी हो गया। सब चाहने लगे— नारी हमें मिल जाय। उस नारीको देखकर ब्रह्माजी परम प्रमुदित हुए कि अब तो हमें सृष्टिकी कुंजी मिल गयी।

भागवतकारने लिखा है कि प्रजापति ब्रह्माजीने सृष्टिके आरम्भमें मानसिक रूपसे उत्पन्न ऋषियोंको सृष्टि-विषयसे ऐकान्तिक उदासीन देखा, तब स्त्रीको अपने शरीरसे उत्पन्न किया, जिसने मनुष्योंकी मतिको हरण कर लिया।* यह तो जनमोहिनी शक्ति स्त्री हुई। दूसरी जगमोहिनी शक्ति है, जिसे प्रकृति, महामाया, अविद्या कुछ भी कहा जा सकता है। यह त्रिगुणात्मिका देवी ही संसारको चला रही है। विषम होनेपर सृष्टि-संचालन होने लगता है और सम होनेपर प्रलय हो जाता है। तीसरी है मनमोहन-मोहिनी शक्ति, जिसे राधा कहें, रासेश्वरी कहें अथवा सर्वेश्वरी कहें! ये श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीकृष्णको इनके बिना आह्लाद नहीं, प्रेम नहीं, आनन्द नहीं और प्रसन्नता नहीं। बस, सम्पूर्ण जगत् इन तीनों प्रकारकी शक्तियोंका ही पसारा है।

अपने जीवनमें मैंने माता जगदम्बा भगवतीकी कभी विधिवत् उपासना नहीं की। फिर भी माँ अपनी अज्ञ संतान समझकर मेरे ऊपर वाणीरूपमें, विद्यारूपमें, पुस्तिका-रूपमें, लेखनी-रूपमें, बुद्धिरूपमें कृपा करती ही रहती हैं। पुत्र चाहे कुपुत्र ही क्यों न हो, माताकी कृपा तो सभी पुत्रोंपर रहती ही है।

* विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः। स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता॥

शक्ति और शक्तिमान्

[एक विवेचन]

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

संसारमें हम जो कुछ नेत्रोंसे देखते हैं और जिसे नेत्रोंसे न देखनेपर भी उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसमें कोई-न-कोई शक्ति न हो; परंतु वस्तु तो इन्द्रियोंसे अनुभव की जा सकती है, पर शक्ति किसी भी इन्द्रियकी विषय नहीं है। वह कार्यानुमेया अर्थात् अपने कार्यके द्वारा अनुमित होती है। हम हरीतकीको आँखोंसे देखते हैं, परंतु उसमें मलावरोधको निवृत्त करनेकी शक्ति है, यह बात तो उसका सेवन करनेपर उसका कार्य देखकर ही जानी जाती है। अग्निको आँखोंसे देखा जा सकता है, परंतु उसकी दाहिका-शक्तिका ज्ञान तो उसके द्वारा किसी वस्तुका दाह होनेपर ही होता है। इसी प्रकार विश्वके विभिन्न पदार्थोंमें जो विलक्षण शक्तियाँ हैं, वैज्ञानिक लोग विविध प्रकारके प्रयोगोंद्वारा ही उनका निर्णय करते हैं। इस प्रकार जैसे सर्वसाधारणकी दृष्टिमें यह दृश्य-प्रपञ्च सत्य है, उसी प्रकार इसमें अभिन्नरूपसे ओत-प्रोत शक्तितत्त्व भी उतना ही सत्य है; और जिस प्रकार इन्द्रिय-दृष्टिसे अनेकरूप प्रतीत होनेपर भी दृश्यरूपसे यह अभिन्न है, उसी प्रकार कार्य या परिणामोंकी भिन्नता होनेपर भी वस्तुतः शक्तितत्त्व भी अभिन्न और अद्वितीय ही है। जैसे एक ही चेतना गोलकोंके भेदसे शब्दादि पाँच विषयोंको ग्रहण करती है और एक ही विद्युत् आश्रयोंके भेदसे कहीं दाह, कहीं प्रकाश, कहीं शैत्य और कहीं गतिरूप अनेकों क्रियाएँ करती है, उसी प्रकार

एक ही सार्वभौम शक्ति विभिन्न आश्रयोंमें विभिन्न व्यापारोंकी अभिव्यक्ति करती है। स्वप्नमें अनेक प्रकारके पदार्थ और व्यापार देखे जाते हैं, परंतु वे सब एक ही स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिके विलासके सिवा और क्या हैं?

वास्तवमें मूलतत्त्व एक और अभिन्न ही है, यद्यपि तात्त्विक दृष्टिसे ये शब्द भी उसका परिचय देनेमें असमर्थ और अपर्याप्त हैं। जहाँ अनेकता और भिन्नता होती है वहीं एकता और अभिन्नताका उल्लेख हो सकता है। आभूषण एक या अनेक हो सकते हैं, परंतु सुवर्णको न एक कह सकते हैं और न अनेक। तरंगें एक या अनेक हो सकती हैं, पर जल न एक होता है न अनेक। ऐसी दृष्टि इन दृश्य पदार्थोंके विषयमें है, फिर जो सर्वाधिष्ठान और सर्वातीत है, उसका परिचय किन्हीं शब्दोंसे कैसे दिया जा सकता है। वह तो शब्दातीत है तथापि उसका आकलन करानेके लिये शब्दोंका आश्रय लिया ही जाता है। इसके सिवा दूसरा कोई उपाय भी नहीं है।

ऊपर कहा गया कि मूलतत्त्व एक और अभिन्न है, परंतु वृत्तियोंके भेदसे वह तीन रूपोंमें भासता है—स्व, प्रत्यक्ष और परोक्ष। अथवा मैं, यह और वह। जिस विचारमें 'मैं'की प्रधानता होती है उसे अध्यात्मवाद, जिसमें 'यह'की प्रधानता होती है उसे अधिभूतवाद और जिसमें 'वह'की प्रधानता होती है उसे अधिदैववाद कहते हैं। अध्यात्मवादमें प्रवेश करनेके लिये बुद्धिकी प्रखरता अपेक्षित है। अधिभूतवादमें खोज करनेके लिये इन्द्रियोंकी प्रधानता होनी चाहिये और अधिदैववादकी अनुभूतिके लिये हृदयकी प्रधानता अपेक्षित है। बुद्धि, इन्द्रिय और हृदय—तीनों ही हमारी चेतनाके अङ्ग हैं। अतः किसके निर्णयको सत्य कहें और किसको असत्य। वास्तवमें तीनों ही व्यावहारिक सत्य हैं; किंतु जिनमें जिस दृष्टिकी प्रधानता होती है वह उसे सत्य कहता है तथा दूसरोंको असत्य या भ्रान्त। वास्तवमें परमार्थ सत्य तो वह तत्त्व है जिसके ये तीनों वाद दृष्टि-विलास है।

यहाँ जो तीन दृष्टियाँ कही गयी हैं, वे तीनों ही साधनरूप भी हैं और असाधनरूप भी। यदि इनके द्वारा अल्पमें आसक्ति होती है तो तीनों ही असाधनरूप हैं और यदि पूर्णमें आस्था होती है तो तीनों साधनरूप हैं। जब मनुष्य आत्मकेन्द्रित हो जाता है, तब अध्यात्मवादी होनेपर भी दूसरोंको तुच्छ एवं भ्रान्त समझने लगता है; किंतु यदि उसे सब आत्मदेवका ही दृष्टि-विलास जान पड़े तो सचमुच वह महान् और समदर्शी है। इसी प्रकार अपने शरीर, परिवार या जातिको ही सर्वस्व माननेवाला राग-द्वेषका शिकार हुए बिना नहीं रह सकता, किंतु जो राष्ट्र या विश्वको अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है तथा राग-द्वेषसे रहित और निष्काम है, वह ईश्वरवादी न होनेपर भी महापुरुष कहलाता है। वही सच्चा आधिभौतिकवादी है। आजकल जिन अर्थनिष्ठ भोगी लोगोंको भौतिकवादी कहा जाता है, वे तो भोगवादी हैं। सच्चे भौतिकवादी तो **'सर्वभूतहिते रताः'** होते हैं। इसी प्रकार जो अधिदैववादी भगवान् या इष्टदेवके किसी एक रूपमें ही आसक्त हैं तथा दूसरोंकी भावनाओंका तिरस्कार करते हैं, वे भी साम्प्रदायिक संकीर्णताकी शृङ्खलामें बँधकर राग-द्वेषसे मुक्त नहीं रह सकते। अवश्य ही प्रत्येक सम्प्रदायकी एक साधन-पद्धति है। यदि दूसरोंके प्रति हेयबुद्धि न रखकर उसका अनुसरण किया जाय तो अपने इष्टदेवका साक्षात्कार होकर सब उन्हींका लीला-विलास जान पड़ेगा। फिर किसी अन्य सम्प्रदायके प्रति द्वेष-बुद्धि कैसे रहेगी—**"निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।"**

इस प्रकार निश्चय होता है कि संसारमें जो अनेक प्रकारके वाद और मतान्तर हैं, वे वस्तु-भेदके कारण नहीं अपितु दृष्टि-भेदके कारण हैं । सभी सम्प्रदायोंकी साधन-पद्धतियोंमें भेद रहनेपर भी वे परमतत्त्वको तो सर्वोपरि, सार्वभौम, सर्वकारण और सर्वातीत ही मानते हैं और वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है । जब सिद्धान्ततः **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** या **'वासुदेवः सर्वमिति'** है तो हम किसे सत्य कहें और किसे असत्य । उपयोगकी दृष्टिसे कड़ाही और तलवारका भेद है, परंतु वास्तवमें दोनों लोह ही तो हैं । ब्रह्म-दर्शनके लिये अद्वैतवादी नाम-रूपका बाध करना आवश्यक समझते हैं, परंतु यदि नाम-रूपका बाध किये बिना भी कड़ाहीको लोहा कहें तो उसे असत्य तो नहीं कह सकते । अपनी-अपनी बातको हृदयङ्गम करानेके लिये महानुभावोंने अनेकों प्रकारकी प्रक्रियाओंकी उद्भावना की है; परंतु परमार्थ किसी प्रक्रियाके अधीन तो नहीं है ।

आजकल एक मुख्य विवाद ईश्वरवाद और अनीश्वर-वादका है । जिनकी दृष्टि 'यह'-प्रधान है वे ईश्वरकी सत्तामें विश्वास नहीं करते । कहते हैं, 'यह सब प्रकृतिका कार्य या परिणाम है ।' इससे भिन्न कोई ईश्वर नहीं है; परंतु अभीतक सम्भवतः वे यह निर्णय नहीं कर सके कि यह प्रकृति क्या बला है ? यदि जड़ता इसका स्वरूप है तो चेतनके बिना इसका निर्णय किसने किया । वास्तवमें प्रकृति, नेचर, माया, शक्ति— ये सब एक ही तत्त्वके नाम हैं और वह तत्त्व स्वतन्त्र नहीं, किसीका स्वभाव ही हो सकता है । प्रकृति या नेचरका तो अर्थ ही स्वभाव है । माया जादूको कहते हैं और वह किसी जादूगरमें ही रहता है । शक्ति भी किसी शक्तिमान्की ही होती है । इस प्रकार ये जिसकी हैं, उसीका नाम ईश्वर है । ईश्वरकी ईश्वरता ही प्रकृति, माया या शक्ति कही जाती है ।

एक बात सूक्ष्म दृष्टिसे विचारणीय है । हम इन्द्रियोंके द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचोंको ही तो ग्रहण करते हैं । ये सब गुण हैं और गुणोंकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती । गुणकी प्रतीति किसी द्रव्यके अधीन ही होती है । इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् प्रतीति-गुणमात्र है और जिसकी प्रतीति तो हो किंतु सत्ता न हो उसीको तो असत् कहते हैं । अतः यह सम्पूर्ण गुणवर्ग असत् है तथा जिसके अधीन इसकी प्रतीति होती है, वही सत् है । वही सर्वाधिष्ठानभूत परमात्मा है । इस प्रकार प्रतीति गुणरूप प्रपञ्चकी है और सत्ता परमात्माकी है; परंतु व्यवहारमें प्रतीतिके बिना परमात्मा और परमात्माके बिना प्रतीति नहीं रहती । अतः जिनकी तत्त्वावगाहिनी दृष्टिमें गुणमयी प्रतीति महान् है, वे परमात्माको निर्गुण कहते हैं और जिनकी दृष्टिमें व्यवहारनिर्वाहक प्रतीति सत् है, वे परमात्माको सगुण मानते हैं । अतः यहाँ भी केवल दृष्टिका ही भेद है, वस्तुका नहीं । वास्तवमें असत् भी अधिष्ठान-दृष्टिसे सत् ही है । इसीसे भगवान् कहते हैं **'सदसच्चाहमर्जुन ।'**

इस प्रकार एक ही परमार्थतत्त्वकी जिज्ञासु लोग निर्गुण-निराकार रूपसे अनुभूति करते हैं और भावुक उपासक लोग सगुण-साकार-रूपमें उपासना करते हैं । गुण तात्त्विक दृष्टिसे भले ही असत् हो, परंतु व्यावहारिक दृष्टिसे उनका अपलाप नहीं किया जा सकता और इन व्यावहारिक और तात्त्विक या परमार्थ-दृष्टियोंका भेद भी व्यावहारिक ही तो है, इसे पारमार्थिक तो कहा नहीं जा सकता । अतः सगुणवादी इस प्रपञ्च-को भगवान्की निजी अभिन्न शक्तिका ही विलास मानते हैं तथा निर्गुणवादी इसे माया या गुणोंका विस्तार कहकर इसकी उपेक्षा करते हैं । हमारे सामने सुवर्णका एक आभूषण है । जिसे शृंगार करना है उसके लिये वह आभूषण-रूपमें भी सत्य है । इसे परिणामवाद

भगवती दुर्गादेवी

बिनादि शर्मा

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणाम [illegible]

कहते हैं। जिसे सुवर्णकी आवश्यकता है वह आभूषण-की आकृतिकी उपेक्षा करके सुवर्णका ही मूल्य करता है। इसे विवर्तवाद कहते हैं; किंतु सुवर्णकी अपनी दृष्टिमें आभूषण नामकी कोई वस्तु न कभी हुई, न है। यह तत्त्वकी अपनी दृष्टि है। इसे अजातिवाद कहते हैं। इस प्रकार वस्तु एक होनेपर भी दृष्टिभेदसे विचार-भेद हो जाता है।

इस प्रकार जो मूलतत्त्व है वही अपनेमें संनिहित शक्तिके द्वारा अनेक रूपमें भासता है—**'हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।'** वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्‌में कोई भेद नहीं है। शक्तिमान् या परमात्मा भले ही निर्विशेष हो, परंतु उसकी अनुभूति सविशेष रूपमें ही होती है। वास्तवमें निर्विशेषता भी तो एक विशेषता ही है, तथापि जिनमें सकाम भावकी प्रधानता होती है वे प्रधानतया शक्तिरूपमें भगवान्‌की उपासना करते हैं और जिनमें निष्कामभावकी प्रधानता होती है वे शक्तिमान् रूपमें उनका भजन करते हैं; परंतु यह कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। प्रेमीजन अपने प्रेमास्पदकी अपनी रुचिके अनुसार भावना कर सकते हैं। वास्तवमें तो शक्ति और शक्तिमान्‌में कोई भेद है नहीं; परंतु प्रायः यह देखा जाता है कि शिवोपासनाकी अपेक्षा शक्त्युपासनासे कार्य-सिद्धि शीघ्र होती है, तथापि जो माँके अनन्य भक्त हैं, वे केवल उनकी अहैतुकी कृपा और वात्सल्य ही चाहते हैं। भगवान् न स्त्री हैं न पुरुष; परंतु भक्तकी भावनाके अनुसार वे सब कुछ बन जाते हैं तथा सब कुछ बनकर भी कुछ नहीं बनते। यही उनकी अचिन्त्य और अनिर्वचनीय महिमा है।

शक्ति-तत्त्व अथवा श्रीदुर्गा-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीसकलनारायण शर्मा, काव्यसांख्यव्याकरणतीर्थ)

श्रीपार्वतीको हिमालयकी पत्नी मेनकाके गर्भसे उत्पन्न कहा गया है। वैदिक कोष 'निघण्टु'के अनुसार 'मेना'-'मेनका' शब्दोंका अर्थ 'वाणी' और 'गिरि', 'पर्वत' आदि शब्दोंका अर्थ मेघ होता है। अमरसिंहने—**'अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका'** में सबको एक-सी कहा है। वे जगन्माता हैं। वे जगत्‌का पालन करती हैं, इस काममें मेघ भी उनका सहायक हुआ। हिमालयका एक अर्थ मेघ भी है। यास्कने 'निरुक्त'के छठे अध्यायके अन्तमें हिमका अर्थ जल किया है—**'हिमेन उदकेन'** (नि० अ० ६)। ऋग्वेदका कथन है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती।
(१। १६४। ४१)

मातासे संततिका आविर्भाव होता है। मेनका—वेदवाणीने उनका ज्ञान लोगोंको कराया। वेदोंने हमें सिखाया है कि परमात्मा अपनेको स्त्री और पुरुष—दो रूपोंमें रखते हैं, जिससे प्राणियोंको ईश्वरके मातृत्व-पितृत्व दोनोंका सुख प्राप्त हो।

'त्र्यम्बकं यजामहे' (यजुर्वेद)। इसका अर्थ है कि हम दुर्गासहित महादेवकी पूजा करते हैं। सामवेदके षड्विंश-ब्राह्मणमें 'त्र्यम्बक' शब्दका यही अर्थ बतलाया है—**'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य स त्र्यम्बकः।'** सायणाचार्यने इसके भाष्यमें लिखा है कि **'पृषोदरादित्वात् सलोपः'** अतएव 'स्त्री' शब्दका सकार 'त्र्यम्बक' शब्दमें नहीं दीखता। श्लेषालङ्कारसे इस शब्दका अर्थ 'त्रिनेत्र' भी होता है, जिसका तात्पर्य है कि वे त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ हैं, न कि उनके तीन आँखें मात्र हैं। इस प्रकार षड्विंश-ब्राह्मणके अर्थसे स्पष्ट है कि परमात्माके अपने दोनों रूपोंमें भाई-बहनका-सा सम्बन्ध है; क्योंकि दोनों पूर्णकाम हैं।

श्रीदुर्गाजी दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गतिको मिटानेके लिये वीरताकी आवश्यकता है। वीर सिंह-समान शत्रुओं-को भी अपने वशमें रखता है। इसी शिक्षाके लिये उनका वाहन सिंह है। तन्त्र और पुराणोंमें उनके हाथोंमें रहनेवाले अस्त्र-शस्त्रोंका वर्णन है, जो वास्तवमें पापियोंको दिये जानेवाले रोग-शोकके द्योतक हैं। उनके हाथका त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक पीड़ाओंको जानता है। प्रलयकालमें ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, जीवके रुण्ड-मुण्ड इधर-उधर बिखरे रहते हैं। इसलिये परमेश्वर अथवा परमेश्वरीको लोग चितानिवासी और रुण्ड-मुण्डधारी कहते हैं। उस समय उनके अतिरिक्त दूसरेकी सत्ता ही नहीं रहती। माताके भयसे पापी राक्षसोंके रक्त-मांस सूख जाते हैं। अतएव कवियोंने कल्पना की है कि वे रक्त-मांसका उपयोग करती हैं। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि वे युद्धके समय मद्य पीती थीं; किंतु मद्य और मधुसे अभिप्राय अभिमान अथवा उन्मत्तता करनेवाले आचरणका है। नारद-भक्तिसूत्र कहता है कि ईश्वर दीनबन्धु और अभिमान-द्वेषी हैं, उनमें अभिमानकी मात्रा भी नहीं है—

ईश्वरस्याभिमानद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च।

सर्वव्यापक होनेके कारण वे सब दिशाओंमें व्याप्त हैं, जो उनके वस्त्रके समान हैं। इसीलिये उनका नाम 'दिगम्बरा' है। जगज्जननीका शरीर दिव्य है। उसमें पञ्चतत्त्वों या विकारोंका संयोग नहीं है। उनका शरीर शुद्ध तथा नित्य होता है, यह महर्षि कपिल भी सांख्य-सूत्रमें स्वीकार करते हैं—

'उष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिकसांसिद्धिकश्चेति नियमः।'

जैसे घिसनेपर दियासलाईसे आग प्रकट होती है वैसे ही भक्तोंके कल्याणके लिये दिव्यरूप आविर्भूत होते हैं। केनोपनिषद्‌में चर्चा है कि एक बार देवताओंमें विवाद हुआ कि कौन देव बड़े हैं। जब निर्णय नहीं हो सका तब यक्ष—पूजनीय परमेश्वर उनके मध्यमें चले आये। सबकी शक्ति क्षीण हो गयी, वे उन्हें नहीं पहचान सके। उस समय उमा—दुर्गाने प्रकट होकर कहा कि 'यक्ष ब्रह्म हैं।' माता ही अपने बच्चोंको पिताका नाम सिखाती है। उमाके प्रकट होनेमें बच्चेकी स्नेहमयी करुणा कारण है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीम्। तां होवाच किमेतद्यक्षमिति। सा ब्रह्मेति होवाच…। (केनोपनिषद्)

देवताओंको स्वरूप धारण करनेके लिये बाहरी साधनकी आवश्यकता नहीं होती। महामहिम होनेके कारण केवल आत्मासे ही उनके सब काम हो जाते हैं—

आत्मेषवः। आत्मायुधम्। आत्मा सर्वं देवस्य।
(निरुक्त दैवतकाण्ड)

परमात्मा निराकार रहकर भी सब काम कर सकते हैं। वे दिव्य मूर्ति इसीलिये धारण करते हैं कि लोग मूर्ति-पूजाकर शीघ्र उन्हें प्राप्त कर सकें।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत।
(ऋग्वेद ८। ६९। ८)

इस मन्त्रमें **'पुरम्'** शब्दका अर्थ है शरीर-मूर्ति। लोग बाल-बच्चोंके साथ मूर्ति-पूजा करें। मन्त्रमें **'अर्चत'** क्रिया तीन बार व्यवहृत हुई है। जिसका भाव है—शरीर, मन और वचनसे मूर्ति-पूजा करना उचित है। अन्तमें माता-पिता साम्बशिवसे प्रार्थना है कि संकट-दुःख-रूप पापोंसे सबको बचावें। हम अनन्त प्रणाम करते हैं—

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।
(यजुर्वेद)

शक्ति-सिद्धिका श्रेष्ठ साधन

(योगिराज श्रीअरविन्द)

भवानी अनन्त-शक्ति हैं

विश्वके अन्तहीन प्रवाहोंमें सनातनका चक्र अपने पथपर प्रचण्ड गतिसे घूमता है। उसके घूमनेके साथ ही सनातनसे प्रवाहित होनेवाली और उस चक्रको घुमानेवाली अनन्त-शक्ति भवानी मानवकी अन्तर्दृष्टिके सम्मुख नानाविध आकारों और अनन्त रूपोंमें दृष्टिगोचर हो उठती हैं। प्रत्येक आकार एक-एक युगको निर्मित तथा परिलक्षित करता है। वे अनन्त-शक्ति कभी प्रेमका, कभी ज्ञानका, कभी त्यागका और कभी दयाका रूप धारण करती हैं। ये अनन्त-शक्ति भवानी दुर्गा भी हैं और काली भी; ये ही प्रिय राधा हैं और लक्ष्मी भी। वे हमारी माता हैं और हम सबकी स्रष्ट्री भी। वर्तमान युगमें माता शक्तिमयी माताके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वे विशुद्ध शक्ति हैं।

सारा जगत् शक्तिरूपिणी मातासे परिपूर्ण है

जरा आँखें उठाकर अपने चारों ओरके जगत्पर दृष्टि डालें। जिधर भी दृष्टि डालते हैं, उधर शक्तिके विराट् पुञ्ज हमारी आँखोंके सामने आ खड़े होते हैं— प्रचण्ड, तीव्र और अटल शक्तियाँ, शक्तिके विकराल रूप, भीषण और व्यापक सैन्यदल दृष्टिगत होते हैं। सब-के-सब व्यापक और शक्तिशाली रूप धारण कर रहे हैं। युद्धकी शक्ति, धनकी शक्ति एवं विज्ञानकी शक्ति दसगुनी अधिक शक्तिशालिनी और दुर्दमनीय हो उठी हैं। वे अपने कार्यकलापमें सौगुनी अधिक भयंकर, द्रुत और व्यापृत दिखायी देती हैं, अपनी साधन-सम्पदा, शस्त्रास्त्रों और यन्त्र-उपकरणोंमें हजारगुनी अधिक समृद्ध हैं— जैसी कि वे अतीत इतिहासमें कभी भी देखनेमें नहीं आयीं। जगदम्बा सर्वत्र कार्यरत हैं। उनके शक्तिशाली हाथोंसे निर्मित होकर महाकाय राक्षस, असुर और देव संसारकी रङ्गभूमिमें वेगसे उतरते चले आ रहे हैं।

हमने पश्चिममें मन्द, पर शक्तिशाली गतिसे महान् साम्राज्योंका उत्थान होते देखा है। हमें जापानके जीवनमें सहसा तीव्र और अप्रतिहत अभ्युदय दृष्टिगोचर हो रहा है। दूसरी और आर्य शक्तियाँ हैं, जो एकमात्र आत्मबलिदान एवं त्यागकी विशुद्ध ज्वालामें स्नात हैं; किंतु सब-की-सब जगन्माताकी ही विभूतियाँ हैं—उनके नये पक्ष, नव-निर्माण और सर्जनकी ही आकृतियाँ हैं। वे पुरानी शक्तियोंमें अपनी आत्मा उँडेल रही हैं तथा नयी शक्तियोंमें नये जीवनका चक्र चला रही हैं।

शक्तिकी कमीसे भारतीयोंकी विफलता

परंतु भारतमें श्वास मन्दगतिसे चलती है, इस कारण दैवी प्रेरणा आनेमें देर लगती है। हमारी प्राचीन मातृभूमि नया जन्म लेनेका प्रयत्न कर रही है। वह मानसिक कष्ट झेलकर और आँसू बहाकर भी चेष्टा कर रही है, पर उसका वह प्रयत्न निरर्थक है। फिर भी उसे रोग क्या है? उसका इतना महान् विस्तार है, इसलिये उसे इतना शक्तिशाली भी होना ही चाहिये। निश्चय ही उसमें कोई बड़ी त्रुटि है। हममें किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तुकी कमी है। उसे पकड़ पाना कठिन नहीं। हममें और सभी वस्तुएँ हैं, किंतु कमी है केवल शक्ति और ऊर्जाकी। हमने शक्तिकी अवहेलना कर दी है, इसलिये शक्तिने भी हमारा साथ छोड़ दिया है। हमारे हृदयमें, हमारे मस्तिष्कमें, हमारी भुजाओंमें माँ नहीं हैं।

नये जन्मकी अभिलाषा हममें बहुत है, उसमें किसी तरहकी कमी नहीं। कितने प्रयास किये जा चुके हैं।

धर्म, समाज और राजनीतिमें कितनी ही क्रान्तियाँ आरम्भ की गयी हैं; किंतु सबका एक ही परिणाम रहा है या होनेको है। क्षणभरके लिये वे चमक उठती हैं और फिर उनके तेजका क्षय होने लगता है, आग बुझ जाती है। यदि वे बची भी रहें तो खाली सीपियों या छिलकोंके रूपमें ही बची रहती हैं, जिनमेंसे ब्रह्म निकल चुका होता है या वह तमस्के वशीभूत और निष्क्रिय हो जाता है। हमारा आरम्भ बहुत शक्तिशाली होता है, पर उसका न विकास होता है न कोई फल।

अब हम दूसरी दिशामें कदम बढ़ा रहे हैं। हमने एक बहुत बड़ी औद्योगिक क्रान्तिका आरम्भ किया है, जो हमारे दरिद्र देशको समृद्ध और समुन्नत करेगी। हमने पुराने अनुभवसे कुछ नहीं सीखा। हम यह नहीं देख पाये कि जबतक हम पहले मूलभूत वस्तु नहीं प्राप्त कर लेंगे, शक्तिका अर्जन नहीं कर लेंगे, तबतक इस औद्योगिक क्रान्तिका भी वही हाल होगा जो अन्य क्रान्तियोंका हुआ है।

शक्तिके अभावमें ज्ञान मृतक-तुल्य

हमारी ज्ञान-सामर्थ्य संकुचित नहीं हुई है, हमारी बुद्धिकी धार मन्द या कुण्ठित नहीं हुई है; किंतु वह ज्ञान निष्प्राण है। वह हमारे सहारेके लिये अंधेकी लाठी न बनकर हमपर एक भार हो गया है, जिसके नीचे हम दबे जा रहे हैं; क्योंकि यह सभी महत्-तत्त्वोंकी प्रकृति है। यदि उनका उपयोग नहीं किया जाता अथवा उनका दुरुपयोग किया जाता है तो वे भारवाहीपर ही टूट पड़ते हैं और उसे नष्ट कर डालते हैं। यूरोपीय विज्ञानने ज्ञानकी जो अमोघ शक्ति दी है, वह महापराक्रमी दानवके हाथका हथियार है, भीमसेनकी प्रचण्ड गदा है। उससे हम निर्बल लोग भला क्या कर सकते हैं, सिवा इसके कि उसे अधिकृत करनेकी चेष्टामें अपना काम ही तमाम कर डालें!

*

राष्ट्र—करोड़ों लोगोंकी शक्ति

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? वह न भूखण्ड-है, न वाक्यालङ्कार है और न मानस-कल्पना ही है। जिस प्रकार भवानी महिषमर्दिनीका प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओंकी शक्तिके मिलनेसे हुआ था उसी तरह भारत-माता एक शक्ति है, जो करोड़ों देशवासियोंकी शक्तिसे मिलकर बनी है। जिस शक्तिको हम भारत-माता अथवा भवानी-माता कहते हैं, वह लोगोंकी एकताबद्ध जीती-जागती शक्ति है, किंतु वह निष्क्रिय है, तमके ऐन्द्रजालिक घेरेमें कैद है, अपने ही लालोंकी स्वनिर्मित जड़ता और अज्ञानान्धकारसे आच्छादित है। उस तमस्से मुक्ति पानेका एक ही उपाय है—अपने अन्तःस्थित ब्रह्मको जगाना।

संसारके भविष्यके लिये भारतका नवजन्म अनिवार्य

भारतका नाश नहीं हो सकता, हमारी जाति निर्जीव नहीं हो सकती; क्योंकि मानव-जातिके सभी भागोंमेंसे एकमात्र भारतके भाग्यमें ही सबसे उच्च एवं अत्यन्त प्रोज्ज्वल सिद्धि प्राप्त करना विधि-विहित है। भावी मानव-जातिके हितके लिये वह सिद्धि बहुत आवश्यक है। भारतको ही अपने अंदरसे समस्त विश्वका भावी धर्म प्रकट करना होगा—एक ऐसा विश्वजनीन शाश्वत धर्म, सनातनधर्म जो सभी धर्मों, विज्ञानों और दर्शनोंमें समन्वय स्थापित कर सके तथा मानवमात्रमें एकात्मभावको जाग्रत् एवं प्रतिष्ठित कर सके। इसी प्रकार नैतिकताके क्षेत्रमें भारतका लक्ष्य होगा मानवतासे दानवताको दूर करना, विश्वको आर्य-धर्ममें दीक्षित करना। ऐसा करनेके लिये उसे पहले अपने-आपको पुनः आर्य बनाना होगा।

यह किसी भी जातिके लिये अतिशय महान् और अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं चमत्कारकारक कार्य है। इसीकी सूचना देनेके लिये भगवान् रामकृष्णका पदार्पण हुआ तथा उसीकी शिक्षा स्वामी विवेकानन्दने भी दी।

हमलोगोंको अब भी याद रखना चाहिये कि वह जगदम्बा काली ही थीं, जो भवानी हैं। वे शक्तिकी जननी हैं, जिनकी पूजा स्वामी रामकृष्ण परमहंस करते थे और जिनके साथ उनका तादात्म्य हो गया था।

व्यक्तियोंके आगा-पीछा करनेकी या उनकी असफलताओंकी प्रतीक्षा भारतका भाग्य नहीं करेगा। जगदम्बाकी माँग है कि लोग उनकी पूजाके लिये उत्साहित हों और उसे विश्वव्यापी बना दें।

शक्तिके लिये शक्ति जननीकी आराधना

आज हमारी जातिको आवश्यकता है शक्तिकी, पुनः शक्ति और अधिकाधिक शक्तिकी; किंतु यदि यह शक्ति हमारी ईप्सित है तो बिना शक्तिकी जननीकी आराधनाके हम उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? वे अपनी पूजाकी माँग नहीं करतीं, प्रत्युत हमारी सहायताके लिये तथा हमारे ऊपर कृपापूर्वक सहायताकी वृष्टि करनेके लिये ही ऐसा करती हैं। यह कोई चपलतापूर्ण कपोल-कल्पना या वहम नहीं है और न अन्धविश्वास ही है, अपितु यह सम्पूर्ण जगत्का एक साधारण नियम है। यदि देव देना भी चाहें तो हमारे माँगे बिना अपने-आप नहीं दे सकते। परमेश्वर भी मानव-जीवनमें अनायास प्रवेश नहीं करते। चिरकालिक अनुभवके द्वारा प्रत्येक उपासक जानता है कि हम भगवती शक्तिकी ओर मुड़ेंगे, उनकी कामना करेंगे तथा उनकी उपासना करेंगे तभी वे अपने अकथनीय सौन्दर्य एवं परमानन्दकी धारा हमपर बरसायेंगी। जो बात परमेश्वरके सम्बन्धमें सत्य है, वही आदिशक्तिके सम्बन्धमें भी; क्योंकि वे भी उनसे ही निःसृत हैं।

(श्रीअरविन्दकी रचना 'भवानी-मन्दिर' से संकलित और अनूदित) —अनुवादक—जगन्नाथ वेदालङ्कार

शीर्षस्थ शक्ति केवल ज्ञान

(आचार्य श्रीतुलसीजी)

संसारमें अर्हता और महत्ताका मानदण्ड स्थूलता या सूक्ष्मता नहीं, अपितु तेजस्विता और शक्तिसम्पन्नता है। शक्ति एक माध्यम है विकासकी पगडंडियोंको मापनेका। शक्तिहीन व्यक्ति कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, वह स्वयंको प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। मनुष्यकी तो बात ही क्या, जड़-चेतन सभी तत्त्वोंमें शक्तिकी पूजा होती है। इसी बातसे प्रेरित होकर एक कविने लिखा है—

हस्ती स्थूलवपुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि-
स्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः॥

'हाथी बहुत मोटा होता है, पर अंकुशके वशमें रहता है तो क्या हाथी अंकुश-जितना ही बड़ा है? दीपकके जलते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, तो क्या अन्धकार दीपक-जितना ही है? वज्रके आघातोंसे पहाड़ भी टूटकर गिर पड़ते हैं, तो क्या पहाड़ वज्र-जितने ही होते हैं? नहीं, स्थूल होनेसे कुछ नहीं होता, जिसके पास तेज होता है, शक्ति होती है, वही बलवान् होता है।'

भारतीय संस्कृतिमें 'शक्ति' को दैवी अर्हता प्राप्त है। मन्त्रकी साधना करनेवाले साधक शक्तिका आवाहन करते हैं और उसके द्वारा कठिन-से-कठिन काममें सफलता प्राप्त हो जाती है, ऐसा उनका विश्वास है।

शक्ति दो प्रकारकी होती है, पाशविक और मानवीय। पाशविक शक्तिसे काम तो होता है, पर उसमें विवेक और चेतना लुप्त हो जाती है। कुछ व्यक्ति

पाशविकसे भी आगे राक्षसी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी शक्तियोंके प्रति हमारे मनमें कोई आकर्षण नहीं है। जिन शक्तियोंका प्रयोग करते समय मनुष्यपर पशुता या राक्षसीपन सवार हो जाय, उन शक्तियोंके उपयोगसे मानव-जातिका हित-सम्पादन हो सकता है, यह बात समझमें नहीं आती।

मानवीय शक्तिके दो रूप हैं—चेतनाका विकास और चमत्कारोंका प्रयोग। चमत्कारोंद्वारा शक्तिका प्रदर्शन होता है, पर यह उसका सही उपयोग नहीं है। 'चमत्कारको नमस्कार'—जैसी कहावतें प्रसिद्ध हैं, किंतु अध्यात्मके क्षेत्रमें इनका कोई मूल्य नहीं। जो व्यक्ति चमत्कारके लिये शक्तिका अर्जन करता है और जादूगर या ऐन्द्रजालिकके रूपमें उसका प्रयोग करता है, वह सोनेके थालमें रेत डालता है, अमृतसे पाँव धोता है, हाथीपर ईंधनका भार ढोता है और दुर्लभ चिन्तामणि रत्न फेंककर कौआ उड़ाता है। इस दृष्टिसे आध्यात्मिक साधकोंके सामने शक्तिके प्रयोगको लेकर अनेक प्रकारकी वर्जनाएँ हैं।

शक्ति जड़ पदार्थमें भी होती है और चेतनतत्त्वमें भी। जड़को अपनी शक्तिका बोध नहीं होता, किंतु चेतन प्राणीको अपनी शक्तिका बोध हो भी सकता है और नहीं भी। शक्तिका अक्षय स्रोत आत्मा या चेतना ही है। यह शक्ति प्रत्येक आत्मवान्‌के पास होती है, पर उसकी पहचान और जागरणके अभावमें वह स्वयंको दीन-हीन अनुभव करने लगता है। चेतनाके एक-दो दरवाजोंको खोलकर भीतर झाँकनेसे ही ज्ञात हो सकता है कि वहाँ शक्तियोंका सघन जाल बिछा हुआ है।

जैन-आगमोंमें अनेक प्रकारकी शक्तियोंका वर्णन है। उन्हें तीन भागोंमें वर्गीकृत किया जा सकता है—मानसिक, वाचिक और कायिक। ध्यान, तप और भावना—ये तीन शक्ति प्राप्त करनेके साधन हैं। इन साधनोंद्वारा व्यक्ति शक्तिके उस चरम छोर-तक पहुँच सकता है, जहाँ निःशेष शक्तियोंका समावेश है। ज्ञान और दर्शनके अनन्त पर्यायोंका उद्घाटन, चारित्रकी पूर्णता और अन्तहीन शक्तियोंका अनावरण करनेवाला व्यक्ति वीतराग बन जाता है। उसके बाद कोई भी शक्ति आवृत नहीं रहती। लौकिक शक्तिके सामने यह घटना भी अपने-आपमें एक चमत्कार-जैसी प्रतीति देती है, पर लोकोत्तर जगत्‌में यह आत्माका शुद्ध स्वरूप है। आत्मोपलब्धि या आत्मानन्दकी अनुभूति उसी व्यक्तिको हो सकती है, जो अपनी चिन्मय, आनन्दमय और शक्तिमय आत्माका साक्षात्कार कर लेता है।

प्राचीन कालमें जो बातें चमत्कार-जैसी प्रतीति देती थीं, आज वे विज्ञानके परिप्रेक्ष्यमें यथार्थताका बोध दे रही हैं। किसी युगमें दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरबोध और पूर्वाभास आदि घटनाएँ विस्मयकारक मानी जाती थीं। आज ऐसे उपकरण आविष्कृत हो गये हैं, जो रेडियो-तरंगों, रश्मियों तथा रासायनिक द्रव्योंद्वारा आश्चर्यको सहजतामें परिणत कर चुके हैं। अतीन्द्रिय तथ्योंकी खोजने विज्ञानको गतिशील बनाया है। विज्ञानकी इतनी प्रगतिके बावजूद उसका विषय तथ्योंकी खोजतक सीमित है। अतीन्द्रिय ज्ञानकी उपलब्धिके लिये मनुष्यको अध्यात्मकी शरण स्वीकार करनी ही होगी।

अध्यात्मका उद्देश्य है अतीन्द्रिय चेतनाका विकास। चेतनाका सम्पूर्ण विकास उसकी मंजिल है। इसके मध्यवर्ती पड़ावोंपर साधक अनेक प्रकारकी शक्तियोंको उपलब्ध करता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे चेतनाके विकासका जो मूल्य है, वह अन्य शक्तियोंका नहीं हो सकता। फिर भी वे साधककी निष्ठा, एकाग्रता और अभ्यासका साक्ष्य तो बनती ही हैं। जैनग्रन्थोंमें ऐसी अनेक लब्धियों या शक्तियोंकी चर्चा है। यहाँ उनमेंसे कुछ शक्तियोंका उल्लेख किया जा रहा है—

मानसिक शक्ति--ध्यान, भावना आदिके प्रयोगसे मनको इतना एकाग्र बना लेना कि चिन्तनमात्रसे किसीपर अनुग्रह और निग्रह किया जा सके।

वाचिक शक्ति—मन्त्रके जपसे तथा सत्यकी साधनासे वाणीको इतना विशद बना लेना कि मुँहसे अनायास निकली हुई प्रत्येक बात उसी रूपमें घटित हो जाय।

कायिक शक्ति—तपस्याद्वारा शरीरको इतना शक्ति-सम्पन्न बना लेना कि उसके किसी भी अवयवमें रोग-निवारणकी क्षमता उत्पन्न हो जाय। इस वर्गमें निम्न-लिखित लब्धियोंके नाम प्राप्त होते हैं—

आमर्ष ओषधि--हाथ, पाँव आदिके स्पर्शमात्रसे रोगको दूर करनेकी क्षमता।

क्ष्वेल ओषधि--थूकसे रोग-निवारणकी क्षमता।

जल्ल-ओषधि--मेलसे रोग-निवारणकी क्षमता।

मल-ओषधि--कान, दाँत, आँख आदिके मलसे रोग-निवारणकी क्षमता।

विप्रुट् ओषधि—मल-मूत्र आदिसे रोग-निवारणकी क्षमता।

सर्व-ओषधि—शरीरके किसी भी अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदिसे रोग-निवारणकी क्षमता।

आस्य-विष—वाणीद्वारा दूसरेमें विष व्याप्त करनेकी क्षमता।

दृष्टि-विष—दृष्टिद्वारा दूसरेमें विष व्याप्त करनेकी क्षमता।

अक्षीण महानस--हाथके स्पर्शमात्रसे भोजनको अखूट बनानेकी क्षमता।

उपर्युक्त लब्धियोंका सम्बन्ध इस दृश्यमान औदारिक शरीरसे है। वैक्रिय, तैजस और आहारक शरीर इससे सूक्ष्म होते हैं। इनकी क्षमताएँ भी अद्भुत हैं।

वैक्रिय लब्धि—इस लब्धिके प्रयोगसे शरीरको छोटा-बड़ा, हल्का-भारी बनाया जा सकता है तथा एक साथ अनेक रूपोंका निर्माण किया जा सकता है।

तैजस लब्धि--इस लब्धिके दो रूप हैं—शीत और उष्ण। शीत-लब्धि अनुग्रहकारक है और उष्ण-लब्धि निग्रहकारक। इस निग्रह-शक्तिका प्रयोक्ता एक स्थानपर बैठा हुआ साढ़े सोलह देशोंको भस्मसात् कर सकता है।

आहारक लब्धि—यह लब्धि विशिष्ट साधकको ही उपलब्ध हो सकती है। साधक इस लब्धिका प्रयोग तब करता है, जब उसके सामने समाधानका कोई दूसरा विकल्प नहीं रहता। इस लब्धिद्वारा वह एक हाथके शरीरका निर्माण कर महाविदेह-क्षेत्रमें विराजमान तीर्थ-करोंके पास पहुँचता है, वहाँ अपनी शङ्काका समाधान पाता है और लौटकर आता है।

शक्तियोंकी इस शृङ्खलामें दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूर-आस्वादन, दूर-स्पर्शन, दूर-घ्राण आदि लब्धियोंका भी उल्लेख है। जंघा-चारण, विद्याचारण तथा आकाश-गामित्व आदि शक्तियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं। कठिनाई एक ही है इनके प्रयोगकी पद्धतियोंका विस्मरण। आज किसी भी योगी, साधु-संन्यासी अथवा प्रचेता व्यक्तिके पास इन शक्तियोंको पाने और सँजोकर रखनेकी सही तकनीक होती तो जैनधर्म शक्तिका पर्यायवाची धर्म बन जाता।

जैनधर्मके प्रणेता तीर्थंकर कहे गये हैं। उन्होंने प्रासङ्गिक रूपसे लब्धियों या शक्तियोंका वर्णन किया है। इनके गुण-दोषोंकी चर्चा की है, पर इसके साथ ही प्राप्त शक्तियोंके प्रयोगपर नियन्त्रण लगा दिया है। उन्होंने कहा है--'साधकका उद्देश्य आत्मोपलब्धि है, लोकरंजन नहीं। कोई भी साधक संयमकी साधनाको विस्मृत कर अनुस्रोतमें बहेगा तो उसकी साधनाका तेज मंद हो जायगा'—इसी पृष्ठभूमिके आधारपर जैनधर्ममें

शक्ति-पूजाके प्रयोगको मान्यता नहीं दी गयी। आत्माकी अनन्त शक्तियोंको जानो, समझो, उनपर जमे हुए आवरणोंको उतारो तथा अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञानके सहारे यात्रा करते हुए केवलज्ञानके आलोकसे आलोकित बनो। 'केवलज्ञान' ऐसी शक्ति है, जो सृष्टिके हर रहस्यको परत-दर-परत खोलकर रख देती है। इसके द्वारा व्यक्ति सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन जाता है। कोई भी शक्ति, लब्धि, ऋद्धि अथवा चमत्कार इससे विशिष्ट नहीं है। सब शक्तियोंमें तत्त्वतः शीर्षस्थ शक्ति 'केवल-ज्ञान'को हमारा शतशः प्रणाम है।

दुर्गे देवि ! इहागच्छ

(श्री १०८ स्वामी ओंकारानन्दजी महाराज)

अपौरुषेय वेदोंकी अनेक स्फूर्तिदायक ऋचाएँ शक्ति-सम्पन्नतासे वेष्टित होनेकी ओर मानवको प्रेरित करती हैं। देवोंके अधिपति इन्द्रका वर्णन युद्धके देवताके रूपमें अनेक बार आया है—

'पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः॥' (ऋग्० ८। ३२। १८)

यहाँतक कि युद्ध जीतनेवाले अश्वोंतकको 'दिव्य' माना जाता था। धर्मरक्षार्थ शक्ति-परीक्षणसे उन्मुखता अनार्यपन था।

लोकाचार और राजनीतिके परम गुरु मनु तथा याज्ञवल्क्य, शान्तिपर्वके उपदेष्टा व्यास, अर्थशास्त्रके प्रणेता कौटिल्यने न्यायस्थापनार्थ शक्ति-प्रदर्शनको कभी हेय नहीं माना, अपितु उन्होंने तो इस विषयमें युद्ध-संरचनाओंके सभी पहलुओंपर व्यापक विचार प्रस्तुत किये। यही कारण है कि उनके उद्देश्योंसे सूर्य और चन्द्रवंशी पौराणिक यशस्वी सम्राटोंने तथा ऐतिहासिक नरेशोंने एक-एक अंगुल मातृभूमिके लिये शक्तिका उपयोग किया। महाराजा रघु, दिलीप, भगीरथ, दशरथ, राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, बिम्बसार, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, विक्रमादित्य, महाराणा सांगा, पृथ्वीराज चौहान, प्रताप, शिवा और गुरुगोविन्द सिंह अपने वीरोचित गुणोंके कारण आज भी घर-घरमें पूजनीय हैं।

वैदिक कालसे ही शक्तिकी आराधना भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अङ्ग रही है। उपासना, उपास्य और उपासक तिपाईके वे तीन पाये हैं, जिनमेंसे किसी एकको भी विस्मृत करनेपर संतुलन अस्थिर हो उठेगा। उपासना जहाँ लक्ष्यका भान कराती है वहीं उपास्य-प्रतीक अपने उच्चादर्शोंसे हमें निरन्तर प्रेरित किये रहता है, पर साधनाके उद्योग-हेतु उपासकको ही अपने कदम आगे बढ़ाने होते हैं। भारतीय संस्कृति शक्ति-उपास्यके रूपमें देवी दुर्गाको सर्वोपरि मानती है। शक्ति-उपासनाके गर्भमें भी यही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निहित है। श्वेताश्वतरोपनिषद् उपासनासे भगवत्प्राप्ति (वाञ्छित कामना) के तथ्यकी पुष्टि करती है—

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः
परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं
देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्॥
(६। ५)

उपासनाका चाहे कोई भी अङ्ग क्यों न हो, सगुण, निर्गुण, सकाम, निष्काम यहाँतक कि वेदान्त-प्रक्रियाके अनुरूप 'आत्म-दर्शन' ही क्यों न हो, बलहीन होनेके कारण उससे भी वञ्चित रह जाता है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥
(मुण्ड० उप० ३। २। ४)

'यह आत्मा शक्तिसे हीन पुरुषको अप्राप्य है। यह पुत्रादिसे आसक्तिरूप प्रमादसे भी लभ्य नहीं है अथवा संन्यासरहित तपस्यासे भी प्राप्तव्य नहीं है; परंतु जो विद्वान् इन उपायोंसे उस प्राप्तिके योग्य आत्म-तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करता है, उसका यह आत्मा ब्रह्मधाममें प्रविष्ट हो जाता है।

उपासनाके सम्बन्धमें एक विशेष उल्लेखनीय बात उपासककी प्रवृत्ति है। चाहे कैसा भी वेद, दान, यज्ञ, नियम और तप क्यों न हो, दुष्ट प्रवृत्तिवाले व्यक्तिको सिद्धि प्राप्त नहीं होती—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥
(मनुस्मृति ९७)

'देवो भूत्वा यजेद् देवम्' के आदर्शका निर्वहन आवश्यक है। प्रकृतिने हमें मानसिक शक्तिको शारीरिक शक्तिका स्थान लेनेके लिये प्रदान नहीं की है, अपितु शारीरिक शक्तिपर यथायोग्य नियन्त्रण-हेतु प्रदान की है। शक्ति-अर्जनमें आयु बाधक नहीं होती—

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसां हेतुः॥
(भर्तृहरि-नीतिशतक)

'सिंह-शावकका मत्त गजराजपर आक्रमण उचित ही है। यह शक्तिशालियोंका स्वभाव है। तेजस्वी होनेमें अवस्था कारण नहीं होती।'

शक्ति-उपासनाके सम्बन्धमें इस भ्रान्तिका निराकरण भी आवश्यक है कि त्रिदेव और उनके परात्पर परब्रह्म राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव पृथक्-पृथक् हैं। इनकी अभिन्नता निर्विवाद है। ये परात्पर ब्रह्म नित्य ही स्वरूपभूता पराशक्तिसे सम्पन्न हैं। जब यह शक्ति शक्तिमान्में अदृश्य या निष्क्रिय रहती है, तब शक्तिमान्का वैभव गौण हो जाता है और जब कभी क्रियाशील होकर प्रकट हो जाती है, तब प्रमुख बन जाती है। वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्का नित्य-निरन्तर अविभाज्य सम्बन्ध है। शक्ति और शक्तिमान्को सर्वदा एक-दूसरेकी अपेक्षा स्वाभाविक है। न तो शिवके बिना शक्ति रहेगी और न शक्तिके बिना शिव। यदि शक्तिमान् न हो तो शक्ति कहाँ रहे और शक्ति न हो तो शक्तिमान् तो अस्तित्वहीन शव ही रहेगा—

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न च शक्त्या विना शिवः॥
(शिव० वाय० सं० उत्तर ४)

कृष्णयजुर्वेदीय **'रुद्रहृदयोपनिषद्'** भी इस विषयकी पुष्टि करती है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः॥

जहाँ शक्तिसमन्वितताका प्रश्न आता है वहाँ निःसंदेह युद्धमें पीठ दिखाना अधम श्रेणीका परिचायक है— **'मनुष्यापसदा ह्येते ये भवन्ति पराङ्मुखाः'** (महाभा० शां० १००। ३७) या संग्राममें पीठ न दिखानेवाले सत्पुरुष संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं— **'सुदुर्लभाः सुपुरुषाः संग्रामेष्वपलायिनः।'** (महा० शां० १०२। ३६) परंतु दूसरी ओर शक्तिसम्पन्नताका अर्थ अपनी क्षमाशीलताका परित्याग नहीं। **'क्षमा वीरस्य भूषणम्'**।

संजयके नीति-वचनोंसे प्रताड़ित धृतराष्ट्रको अपने वचनोंद्वारा आप्लावित करनेवाले महामना विदुरके वचन सचेष्ट करते हैं कि—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥
(विदुरनीति १। ६२)

'राजन्! शक्तिशालीकी क्षमा और निर्धनका दान, पुरुषको स्वर्गसे भी ऊपर स्थान दिलाते हैं।'

वैसे तो नारी अनादिकालसे ही सरस्वती-पुत्रों एवं कलाकारोंकी मूल उपास्य, सामन्तशाही और राजघरानोंकी प्रतिस्पर्धा-प्रतीक, दार्शनिक तथा संतोंकी पहेली रही है; परंतु विश्वकी सर्वोच्च भारतीय संस्कृतिने मातृशक्तिको आद्याशक्ति—ब्रह्मरूपमें प्रतिष्ठित कर न केवल आत्माका चरमोत्कर्ष प्राप्त किया, अपितु नारीमें निहित शक्ति एवं स्नेहको आदर्श स्वरूप देकर—**'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'** का आश्चर्यजनक उद्घोष भी प्रस्तुत किया।

प्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वान् रोलाँने अपने विचारोंके संदर्भमें स्वीकार किया है कि दुर्गासप्तशतीके **'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** नवार्ण-मन्त्रको मैं संसारकी सर्वश्रेष्ठ प्रार्थनाओंमें परिगणित करता हूँ।

ऋषिप्रवर मार्कण्डेय आठवें मनुकी पूर्व-कथाके माध्यमसे नृपश्रेष्ठ सुरथ और वणिकश्रेष्ठ समाधिको पात्र बनाकर मेधा ऋषिके मुखसे भगवती महामायाके जिन स्वरूपोंका वर्णन करते हैं वही दुर्गासप्तशतीका मूल आख्यान है।

अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीने मधु-कैटभ-संहारकके रूपमें तमोगुणकी अधिष्ठात्रीदेवी योगनिद्राकी जिस रूपमें स्तुति की है, वह स्वयंमें नारीके वास्तविक स्वरूपकी उज्ज्वल झाँकी है—

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।

(दुर्गासप्तशती)

'देवि! तुम सौम्य और सौम्यतर तो हो ही, परंतु इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य पदार्थ हैं, तुम उन सबकी अपेक्षा अधिक सुन्दरी हो।'

पापात्मा तथा पुण्यात्मा और सत्पुरुषों तथा कुलीनोंके अन्तःकरणका विश्लेषण करते हुए भगवान् व्यासदेव महिषासुरमर्दिनीका यशोगान किस सारगर्भित ढंगसे करते हैं—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

(दु० स० ४।५)

'जो पुण्यात्माओंके घरोंमें लक्ष्मी, पापात्माओंके यहाँ दरिद्ररूपा, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयमें सुबुद्धि-रूप, सत्पुरुषोंमें श्रद्धा तथा कुलीनोंमें लज्जारूपमें निवास करती हैं, उन दुर्गाको मैं नमस्कार करता हूँ।'

महानिर्वाण-तन्त्रके अनुसार इस विश्वकी प्रत्येक नारी जगन्माताकी प्रतिमूर्ति है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि नारी-जातिके प्रति निष्कपट उपास्य-भाव जाग्रत् किये बिना जगज्जननीकी उपासना अधूरी है।

जबतक देशकी अगणित निरीह और विपन्न बालिकाएँ उपेक्षित और क्षुधातुर हैं, जबतक समाजकी अनेक माताएँ संतप्त-विदग्धा स्नेहकी तृष्णासे तृषातुर हैं, तबतक जगद्धात्री माँ दुर्गाको प्रसन्न करना मात्र भ्रान्त-धारणाका ही पोषण कर पायेगा; क्योंकि वे तो प्राणि-मात्रकी बुद्धि, चेतना और स्मृतिमें ही नहीं अपितु उनकी क्षुधा-तृषामें भी निवास करती हैं—

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

(दुर्गासप्तशती)

विश्वमें बढ़ती अमानवीय प्रवृत्ति, कलह, द्वेष, दम्भ, पाखण्ड और पैशाचिकताका नग्न नृत्य, दैन्य और दुःखका आर्तनाद, अहर्निश अशुभ आशङ्काओंकी विवशता और आत्मप्रताडनाके झंझावात, मानव-मानवके बीच वैषम्यकी खाई आदि दोष बढ़ते जा रहे हैं। इन्हें निर्मूल करनेके लिये माँ दुर्गाकी उपासना सक्षम है। क्या शंकराचार्यकी यह प्रार्थना कभी हमारे अन्तस्तलसे भी प्रस्फुटित हुई!—

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥
(देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र)

यदि मानवका पञ्चम कोष आनन्दसे परिपूर्ण होकर पुकार उठे कि दुर्गे देवि! **'इहागच्छ'** तो माँको आनेमें कहीं देर लगती है? वह झट पुत्रको गोदमें उठा लेती है और पुचकारकर उसका कष्ट दूर कर देती है।

वाममार्गका यथार्थ स्वरूप

(ले०—स्वामी श्रीतारानन्दतीर्थजी)

'तान्त्रिक धर्म' आरम्भसे ही वैदिक धर्मका साथी रहा है; क्योंकि दोनों हरि-हरद्वारा प्रकट हैं और जिस तरह हरि-हरमें अभेद है, उसी तरह वेद और तन्त्र (निगम-आगम) में भी अभेद है। श्रीमद्भागवतके ११ वें स्कंधमें स्वयं भगवान्‌का कथन है—

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः।

अर्थात् मेरा यज्ञ वैदिक, तान्त्रिक तथा वेद और तन्त्रसे मिश्रित तीन प्रकारका है। वैदिक और तान्त्रिकके पृथक्-पृथक् होनेपर द्वैतकी भावना होगी, पर वेद-तन्त्र दोनोंके मिश्रित हो जानेपर अद्वैत-भावना ही बन जायगी। इसी कारण हमारे महर्षि अपनी प्रिय संतान सनातन आर्य हिंदू-जनताके कल्याणार्थ वेद-तन्त्रसे मिश्रित कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड—दोनों पद्धतियोंका निर्माण वेद-तन्त्रके अभेद-रूपसे करके दोनोंका लक्ष्य एक ज्ञानकाण्ड ही निश्चित कर गये हैं, जिससे वेद-तन्त्रमें तथा कर्मकाण्ड-उपासनाकाण्डमें परस्पर भेदका भूतावेश न हो पाये।

किंतु—**'कालस्य कुटिला' गतिः** आजकल तन्त्र-तत्त्वसे अनभिज्ञ जनतामें सर्वत्र एक महान् शङ्का उत्पन्न हो गयी है कि तन्त्रमें वाममार्ग है और वाममार्गमें भैरवीचक्र तथा पञ्चमकारोंकी प्रधानता है। फिर भी हमलोगोंको 'वाम' शब्दमात्रसे भयभीत नहीं हो जाना चाहिये, उसके वास्तविक अर्थका अन्वेषण करना चाहिये। 'वाम' शब्द स्पष्टरूपसे वेदमें आया है। ऋग्विधानमें कहा है—

अस्य वामस्य सूक्तं तु जपेच्चान्यत्र वा जले।
ब्रह्महत्यादिकं दग्ध्वा विष्णुलोकं स गच्छति॥

अर्थात् इस 'अस्य वामीय' सूक्तके पाठमात्रसे ही विष्णुलोककी प्राप्ति अर्थात् **'तद् विष्णोः परमं पदम्'** विष्णुपद-प्राप्तिरूपी मोक्ष मिलता है। निरुक्तमें 'वाम' शब्दका अर्थ 'प्रशस्य' लिखा है। यथा—

अप्नेमाः, अनेमाः, अनेद्यः, अनवद्यः, अनभिशस्ताः, उक्थ्यः, सुनीथः, पाकः, वामः, वयुनमिति दश प्रशस्यनामानि।

यहाँ 'वाम' नाम प्रशस्यका है। 'प्रशस्य' प्रज्ञावान् ही होते हैं। यथा—

य एव हि प्रज्ञावन्तस्त एव हि प्रशस्या भवन्ति।
(दुर्गाचार्य)

इससे सिद्ध होता है कि प्रज्ञावान् प्रशस्य योगीका नाम 'वाम' है और उस योगीके मार्गका ही नाम 'वाममार्ग' है। तन्त्रके प्रवर्तक भगवान् शिव कहते हैं—

'वामो मार्गः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।'

अर्थात् वाममार्ग अत्यन्त कठिन है और योगियोंके लिये भी अगम्य है। फिर वह इन्द्रियलोलुप जनताके लिये गम्य कैसे हो सकता है? शिवजीका कथन है कि **'लोलुपो नरकं व्रजेत्'**—(विषय-) लोलुप वाम-मार्गी नरकगामी होता है; क्योंकि वाममार्ग जितेन्द्रियके लिये है और जितेन्द्रिय योगी ही होते हैं। इस प्रकार

वाममार्गके अधिकारीके लक्षण सुननेसे ही यह स्पष्ट हो जायगा कि वाममार्ग जितेन्द्रिय योगी पुरुषोंका है, न कि लोलुप लोगोंका। यथा—

परद्रव्येषु योऽन्धः परस्त्रीषु नपुंसकः।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः।
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारिता॥

(मेरुतन्त्र)

अर्थात् 'परद्रव्य, परदारा तथा परापवादसे विमुख संयमी ब्राह्मण ही वाममार्गका अधिकारी होता है।' और भी—

अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सर्वसिद्धिदः।
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्मभिः॥

(पुरश्चर्यार्णव)

अर्थात् 'शिवोक्त सर्वसिद्धियोंको देनेवाला वाममार्ग इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाले योगीके लिये ही सुलभ है। अनन्त जन्म लेनेपर भी वह लोलुपके लिये सुलभ नहीं हो सकता।' और भी—

तन्त्राणामतिगूढत्वात् तद्भावोऽप्यतिगोपितः।
ब्राह्मणो वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बुद्धिमान् वशी॥
गूढतन्त्रार्थभावस्य निर्मथ्योद्धरणे क्षमः।
वाममार्गेऽधिकारी स्यादितरो दुःखभाग् भवेत्॥

(भावचूडामणि)

अर्थात् 'तन्त्रोंके अत्यन्त गूढ़ होनेके कारण उनका भाव भी अत्यन्त गुप्त है। इसलिये वेद-शास्त्रोंके अर्थ-तत्त्वको जाननेवाला जो बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय पुरुष गूढ़ तन्त्रार्थके भावका मथन करके उद्धार करनेमें समर्थ हो वही वाममार्गका अधिकारी हो सकता है। उसके सिवा दूसरा दुःखका ही भागी होता है।'

इस तरह तन्त्र-ग्रन्थोंमें वाममार्गके अधिकारीका वर्णन बहुत जगह पाया जाता है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि इन्द्रिय-लोलुप लोगोंका वाममार्गमें कोई अधिकार नहीं, अपितु उसका अधिकारी जितेन्द्रिय व्यक्ति ही है।

अब जरा 'भैरवी-चक्र'पर विचार करें। तन्त्रमें एक भैरवी-चक्रका ही नहीं, किंतु श्रीचक्र, आद्याचक्र, शिव-चक्र, विष्णुचक्र आदि नाना प्रकारके चक्रोंका वर्णन आता है और इनका वर्णन उपनिषदोंमें भी आता है। भावनोपनिषद्, त्रिपुरातापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उप-निषदोंने चक्रोंकी बहुत अधिक महिमा गायी है। जैसे—

'देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन् महाचक्रनामकं नो ब्रूहीति, सर्वकामिकं सर्वाराध्यं सर्वरूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारम्।'

(नृसिंहतापिनी)

'तदेतन्महाचक्रं बालो वा युवा वा वेद स महान् भवति, स गुरुर्भवति।'

(नृसिंहतापिनी)

जब देवताओंने भगवान्‌से कहा कि महाचक्रोंके नायकका वर्णन हमें सुनाइये तो भगवान्‌ने कहा कि वह महाचक्रनायक सब देवताओं और ऋषियोंद्वारा आराधित, सर्वरूप, सर्वादि तथा मोक्षका द्वार है। उस चक्रको जो बालक या युवा जानता है, वह महान् हो जाता है, वह गुरु होता है। ऋग्वेदमें भी लिखा है—**'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।'** अर्थात् ऐसे चक्रमें, जिसमें पाँच कोण हैं, सम्पूर्ण भुवन ठहरे हुए हैं। इस तरह चक्रके विषयमें बहुत-से प्रमाण वेदोपनिषदोंमें मिलते हैं।

इसी प्रकार पञ्चमकारोंका वर्णन भी आध्यात्मिक भावसे भरा हुआ है।[1]

---

[1] पञ्चमकारके आध्यात्मिक भावसम्बन्धी विवेचन पृथक्‌रूपसे श्रीदयाशङ्कर रविशङ्करके लेखमें द्रष्टव्य है, जो—यहीं इसके आगे प्रकाशित है—(सं०)।

पञ्च मकार-साधनाका रहस्य

(१)

(कवि श्रीदयाशंकर रविशंकरजी)

शाक्तागमोंके तीन भेद हैं—समयाचार, कौल और मिश्र। जो तन्त्र वैदिकमार्गका अनुसरण करते हुए श्रीविद्याका प्रतिपादन करते हैं, उन्हें समयाचार या 'समयमत' कहते हैं। इसके वसिष्ठसंहिता, सनकसंहिता, सनन्दनसंहिता, सनत्कुमारसंहिता और शुकसंहिता—पाँच मुख्य ग्रन्थ हैं। महामाया, शाबरतन्त्र आदि चौसठ तन्त्रोंको 'कौलमत' कहते हैं। कौल या 'वाममार्ग'में मद्य, मांसादि उपहारों तथा अत्यन्त बीभत्स दुराचारोंद्वारा देवतार्चन, मन्त्रजप अनुष्ठानके विधान हैं। इसी मेंपञ्च-मकारकी विधि है। अतः उपासनाके वाम और दक्षिण—ये दो मार्ग बताये गये हैं। वाममार्गको शिष्टजन अनादरकी दृष्टिसे देखते हैं।* आखिर ऐसा क्यों और इसका यथार्थ रहस्य क्या है ? यह जाननेके लिये स्वाभाविक वृत्ति होती है।

कहते हैं, पहले वाममार्ग रहस्यात्मक एवं शुद्ध था। 'ललितासहस्रनाम'पर आचार्य भास्कररायद्वारा 'सौभाग्य-भास्कर' नामक अत्यन्त प्रौढ व्याख्या लिखी गयी है। उसमें श्रीललितासहस्रनाममें आये हुए **'कौलिनी कुलयोगिनी'** (१ । २।८८), **'महातन्त्रा महामन्त्रा'**- (३ । ४ । १०७) **'कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्पर सेविता'** (५ । ११ । २२०) आदि स्थलोंमें तथा **'कौलिनी, महातन्त्रा, कौलमार्गतत्परसेविता, सव्यापसव्यमार्गस्था'** आदि नामोंकी व्याख्यामें श्रीभास्करराय कौल-तन्त्रके सम्बन्धमें सप्रमाण और युक्तियुक्त बातें स्पष्टरूपेण लिखते हैं। इसी प्रकार उक्त ग्रन्थके दशम शतककी ग्यारहवीं कलाके २२६वें श्लोकमें **'पञ्चमी पञ्चभूतेषु'** यह पद आता है। इसमें **'पञ्चमी'** पदके अर्थको लेकर भी प्रकृत प्रसङ्गपर वहाँ बहुत उत्तम विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थमें जहाँ-जहाँ श्रीललिताम्बाके तान्त्रिक नामोंका निर्देश है, वहाँ श्रीभास्कररायने श्रुति, पुराण आदिके प्रमाणोंसे विस्तृत व्याख्या लिखकर वाममार्गपर लगाये जानेवाले कलङ्कका बहुत ही विद्वत्ता-पूर्वक निरसन (खण्डन) किया है।

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय तारानन्दतीर्थके संगृहीत 'तन्त्र-तत्त्व-प्रकाश, नामक निबन्धमें इस विषयको सप्रमाण स्पष्ट किया गया है, जिसे कहीं-कहीं छन्दोबद्ध हिंदी अनुवादके साथ नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

मदिरा

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता या पानयोग्या सुरा ।
सा हाला पिबतामनर्थफलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता
यां पित्वा मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्तिं गताः॥

भरी है जो सहस्रार पद्मरूपी भाजनमें,
बनी है जो चंद्रकी कलासुधाके स्रावसे ।
तोषदायिनी करे त्रिलोकको अशोक ऐसी,
पानयोग्य सुरा है छुड़ावे कालरवसे ॥

मांस

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्त्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः ।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नरा
नाश्नीयात् पशुमांसमात्मविमतेहिंसापरं सज्जनः ॥

कामादि छः पशुओंको विवेक-खड्गसे नष्ट करना ही मांस-साधन है।

---

* 'कौल कामबस कृपिनविमूढा', 'तजि श्रुति पंथ बाम मग चलहीं' आदिमें गोस्वामीजीने भी इसकी आलोचना की है। वायु, नारद-कूर्मादि पुराणोंमें भी इसे भयास्पद कहा है।

मीन

अहंकारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः
षडेतान् मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याग्नौ नियमितकृतिर्धीवरकृति-
स्तदा खादेत् सर्वान्न च जलचराणां च पिशितम्॥

विष-विरागरूपी बागुरा बिछाइ दैके
धीवर कृतीकी मुनि कृतिको अनुसरै।
द्वेष, मद, मान, दंभ, मत्सर, पैशुन्य आदि
पीन मीनवृंद विद्यावह्निमें लै धरै॥

मुद्रा

आशातृष्णाजुगुप्साभय-
विशदघृणामानलज्जाप्रकोपात्
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः
पाच्यमानाः समंतात्।
नित्यं संभक्षयेत् तानव-
हितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहति-
विमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा॥

आशा अरु तृष्णा, भय, घृणा, मान, लज्जा, कोप,
जुगुप्सा, ये मुद्रा अष्ट भारी कष्टकारी हैं।
ब्रह्मरूप पावकमें आठोंको पकाय देवैं
तांत्रिक क्रियाकलापके जो अधिकारी हैं॥
बार-बार करिकै अहार सार ग्रहैं वाको
भूतलमें दिव्य भावनाके जो बिहारी हैं।
मुद्राप्रिय माननीय ऐसे महीमंडलमें
स्व-पर-भेद-भाव-भिन्न अपर पुरारी हैं॥

मैथुन

या नाडी सूक्ष्मरूपा
परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्तालिङ्गनार्हा
न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते-
मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने
तां परिष्वज्य नित्यम्॥

उपर्युक्त रीतिसे पञ्चमकारके आध्यात्मिक रहस्यका उद्घाटन कर उसके ऊपर लगे कलङ्क-पङ्कका प्रक्षालन पूज्यपाद श्रीस्वामी तारानन्दतीर्थने किया है।

इसी प्रकार परम वन्दनीय, परमोपासक, विद्वच्चक्र-चूड़ामणि श्रीभास्कररायने भी अपने कौलोपनिषद्-भाष्य, वरिवस्यारहस्यारहस्य आदि ग्रन्थोंमें इस विषयको श्रुति-स्मृति आदि प्रमाणोंसे बहुत सुन्दर रीतिसे प्रतिपादित किया है, जिन्हें इस विषयमें विशेष जानकारीके लिये उपर्युक्त ग्रन्थोंका परिशीलन करना चाहिये।

(२)

(० श्रीनारायणदासजी पहाड़ा, 'बावलानन्द')

शक्ति-उपासनामें तीन प्रधान पद्धतियाँ या उपासना-मार्ग प्रचलित हैं। १—दक्षिणमार्ग या समयाचार, २—मिश्र मार्ग एवं ३—कौल अथवा वाममार्ग। दक्षिणमार्ग तो परमश्रेष्ठ है, पर वाममार्गी उपासनामें पञ्चमकारोंका नाम लिया जाता है। वामाचारका तीसरा नाम वीराचार भी है। इस मार्गके ६४ प्राचीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। मिश्रमार्गके मुख्य ग्रन्थ ८ हैं। दक्षिणमार्गके श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य आदि सैकड़ों ग्रन्थ हैं, पर प्राचीन वाममार्गीय पद्धतिमें पञ्चमकारोंकी विशेष चर्चा आती है। उनके कुछ चित्ताकर्षक लम्बे-चौड़े आपातरम्य माहात्म्य भी वर्णित किये गये हैं। आध्यात्मिक मकारोंकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्॥

अर्थात् 'मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—यह पाँच आध्यात्मिक मकार ही योगिजनोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।'

स्पष्ट है कि मद्य-मांसका उपयोग करनेवाले तामसी अथवा राजसी प्रकृतिके ही मानव हो सकते हैं, सात्त्विक प्रकृतिके लोगोंको तो वस्तुका उपयोग तो अलग रहा, इनका नाम सुनना भी पसंद नहीं करते। हमारे समाजमें भी आध्यात्मिक दृष्टिसे शराबी और मांसाहारियोंको हेय दृष्टिसे देखा जाता है; क्योंकि यह निश्चित है कि उनका उपयोग तमोगुणकी वृद्धि करता है। इसीलिये भारतीय धर्मशास्त्रोंमें इनके त्यागका आदेश है और इनकी सर्वत्र निन्दा की गयी है।

वास्तवमें देखा जाय तो वाममार्गके तन्त्रोंकी भाषा सांकेतिक है, उन्हें उसी रूपमें समझना उपयुक्त रहेगा। तन्त्रोंमें इन (संकेतों)का दो रूपोंमें वर्णन किया गया है।

मद्य—मद्यका यहाँ संकेत नारियलका पानी है। कुलार्णव तन्त्रमें नारियलका पानी और दूध दोनोंका वर्णन आता है। 'योगिनीतन्त्र'में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिये अलग-अलग अनुकल्प दिये गये। जैसे गुड़ और अदरकका रस मिलानेसे ब्राह्मणकी सुरा बनती है। कांसेके पात्रमें नारियलका पानी क्षत्रिय और कांसेके पात्रमें मधु वैश्यकी सुरा कही गयी है। जहाँ सुराका विधान है, वहाँ पूजामें इन वस्तुओंका प्रयोग अभीष्ट है।

अब सुराका दिव्य रूप क्या है, यह देखें अन्तर्योग-में कुण्डलिनी शक्तिको ही सुरा कहा है—

न मद्यं माधवीमद्यं मद्यं शक्तिरसोद्भवम्।
सामरस्यामृतोल्लासो मैथुनं तत् सदा शिवम्॥

मद्यसे मदिराका तात्पर्य नहीं है। शिव-शक्तिके संयोगसे जो महान् अमृतत्व उत्पन्न होता है, यही वास्तविक शक्तिदायक रस है। ब्रह्मरन्ध्र-सहस्रदलसे जो द्रवित होता है उसका पान करना ही मद्यपान है। इसके अतिरिक्त लौकिक मद्य पीनेवाला मद्यप है। तन्त्र-तत्त्व-प्रकाशमें आया है—

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकला सुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।
सा हाला पिबतामनर्थफलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता
यां पीत्वा मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्तिं गताः॥

अर्थात् जो सहस्रार-कमलरूपी पात्रमें भरी है और चन्द्रमा-कला-सुधासे स्रवित है, वही पीनेयोग्य सुरा है। इसका प्रभाव ऐसा है कि वह सब प्रकारके अशुभ कर्मोंको नष्ट कर देती है। इसीके प्रभावसे परमार्थ-कुशल ज्ञानियों, मुनियोंने मुक्तिरूपी फल प्राप्त किया है। निरंजन, निर्विकार, सच्चिदानन्द-परब्रह्मके विलयमें योगसाधना-द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मद्य कहते हैं।

अतः तन्त्रसाधकको देवीकी तरह सुराका—मदका ही पान करना चाहिये। तभी उसकी आत्मा शक्तिशाली होगी और वह आत्म-साक्षात्कारके योग्य हो सकेगा। यदि इस सुराका पान नहीं किया जाता, अर्थात् अहंकारका नाश नहीं किया जाता तो सौ कल्पोंमें भी ईश्वरदर्शन करना असम्भव है। यही वर्णन दिव्यभावमें समझना चाहिये। तभी हमारा परम कल्याण है?

मांस—मांसके विषयमें योगिनीतन्त्रमें कहा है—

मांसं मत्स्यं तु सर्वेषां लवणार्द्रकमीरितम्।

सबका मांस और मत्स्य लवण तथा अदरक बतलाया गया है। एतदर्थ मांसका अनुकल्प है लवण, अदरक, लहसुन, तिल और गेहूँकी बालें। कुलार्णव-तन्त्रमें भी मांसके स्थानपर लवण, अदरक, गेहूँ या लहसुनसे पूजाका विधान कहा गया है। मांसके लिये दिव्य रूप है—समस्त वस्तुओंको अन्तर्यामी ईश्वरको समर्पित करना। मांसाहारका प्रतीकात्मक स्पष्टीकरण करते हुए शास्त्रोंमें कहा है—

मा शब्दाद् रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रियान्।
एतद् यो भक्षयेद् देवि स एव मांससाधकः॥

'मा' शब्द रसनाप्रिय वस्तुओंका नामान्तर है, उसका परित्याग या अन्तर्मौन रहकर जो वाक्संयम करके मौन

रहता है, वही वास्तवमें मांससाधक है। पाप-पुण्यरूपी पशुको ज्ञानरूपी खडगसे मारकर जो योगी मनको ब्रह्ममें लीन करता है, वही सच्चा मांसाहारी है।

ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नराः
नाश्नीयात् पशुमांसमात्मविमतेर्हिंसाकृतं सज्जनः।

'जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पशुओंको विवेकरूपी तलवारसे मारकर उसको भक्षण करे एवं दूसरोंको सुख पहुँचावे; वही सच्चा बुद्धिमान् है। ऐसे ही ज्ञानी और पुण्यशीलजन पृथ्वीके देवता कहे जाते हैं। ऐसे सज्जन कभी पशु-मांसका प्रयोग करके पापी नहीं वनते।' पशुवधसे मांसकी प्राप्ति होती है। मांस-लोलुपोंने उपासनाके अतिरिक्त हवन-यज्ञोंमें भी अर्थका अनर्थ कर पशुवध करना प्रारम्भ किया था। उपनिषदमें कहा है—**'कामक्रोधलोभादयः पशवः।'** भैरवयामलमें भी कहा है—

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति ते वै बुधाः॥

अर्थात् 'विवेकी मानव काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी पशुओंको विवेकरूपी तलवारसे काटकर दूसरे प्राणियोंको सुख देनेवाले निर्विषय तत्त्वका भक्षण करते हैं।' आलङ्कारिक रूपसे यह आत्मशुद्धिकी, कुविचारों, पाप-तापों, कषाय-कल्मषोंसे बचनेकी शिक्षा है।

'परमार्थसारमें—**मायापरिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान् पशुर्भवति**—मायाके कारण मलिनबुद्धि होनेसे मानव पशुभावको प्राप्त होता है। तन्त्रमें कहा है—**इन्द्रियाणि पशून् हत्वा'**—इन्द्रियरूप पशुका वध करें।

मत्स्य—तन्त्रशास्त्रोंमें मत्स्यका विधान आया है। उनका अनुकल्प है लाल मूली और बैंगन आदि। योगिनी-तन्त्रमें कहा है—**'मांसमत्स्यं तु सर्वेषां लवणादिक-रिसम्'** अर्थात् सबका मांस और मत्स्य (मछली)को लवण आदि कहा गया है। 'कुलार्णवतन्त्र'में भी जहाँ मत्स्यका विधान है, वहाँ बैंगन, मूली या पानी-फलको अर्पित करनेका निर्देश समझना है।

मत्स्य और उसका सेवन करनेवाले सच्चे मत्स्य-साधकके शास्त्रोंमें इस प्रकार लक्षण दिये गये हैं। कहा है कि मन आदि सारी इन्द्रियोंको वशमें करके आत्मामें लगानेवालेको ही मीनाशी कहते हैं, दूसरे तो जीव-हिंसक प्राणी हैं।

अहंकारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः
षडेतान् मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याग्नौ नियमितकृतिर्धीवरकृतिः
सदा खादेत् सर्वान्न च जलचराणां कुपिशितम्॥

(तन्त्रतत्त्वप्रकाश)

'अहंकार, दम्भ, मद, पिशुनता, मत्सर, द्वेष—ये छः मछलियाँ हैं, इनको धीवरकी तरह विषय-विरागरूपी जालमें पकड़े। उनको सद्विद्यारूपी अग्निपर पकाकर नियमपूर्वक काममें लेता रहे। इनके अतिरिक्त जलमें रहनेवाली मछलियोंको खाना तो सर्वथा धर्मविरुद्ध पापकर्म है।'

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतौ सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु सो भवेन्मत्स्यसाधकः॥

दो मत्स्य गङ्गा-यमुनाके भीतर सदा विचरण करते रहते हैं। जो व्यक्ति इन दोनोंका भक्षण करता है, उसका नाम मत्स्य-साधक है। गङ्गा-यमुनासे आशय है मानव-शरीरस्थ इडा-पिंगला नाड़ीका। उनमें निरन्तर बहनेवाले श्वास-प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं। जो साधक प्राणायामद्वारा इन श्वास-प्रश्वासोंको रोककर कुम्भक करते हैं वे ही यथार्थमें मत्स्य-साधक हैं। इन उदाहरणोंमें स्पष्ट है कि इन्द्रियोंका वशीकरण, दोषों तथा दुर्गुणोंका त्याग, साम्यभावकी सिद्धि और योग-साधनमें रत रहना ही मत्स्यका ग्रहण करना है। इनका सांकेतिक अर्थ न समझकर प्रत्यक्ष मत्स्यके द्वारा पूजन करना तो अर्थका अनर्थ होगा और साधनाक्षेत्रमें एक कुप्रवृतिको बढ़ावा

देना होगा। इससे मत्स्य पवित्रताका ही प्रतीक सिद्ध होता है। इसको इसी रूपमें ग्रहण करना उपयुक्त है। तभी और हमारा हमारे कुलका उद्धार होगा।

मुद्रा

मुद्राके माहात्म्यका वर्णन करते हुए कुलार्णवतन्त्रमें कहा है—

इत्यादिपञ्चमुद्राणां वासनां कुलनायिके।
ज्ञात्वा गुरुमुखाद् देवि यः सेवेत स मुच्यते॥

हे कुलनायिके! हे देवि! ये उपर्युक्त पञ्च-मुद्राओंकी वासनाको गुरुके मुखसे समझकर और ज्ञान प्राप्त करके जो सेवन किया करता है वह मुक्तिको प्राप्त करता है। मुद्राका अनुकल्प है चावल, धान। योगिनीतन्त्रमें कहा है—'**भ्रष्टधान्यादिकं यच्च चर्वणीयं प्रचक्षते सा मुद्रा।**' भ्रष्ट धान्यादि अर्थात् जो भुने हुए चर्वणीय द्रव्य हैं, उन्हींको मुद्रा कहते हैं। कुलार्णवतन्त्रमें चावल, गेहूँ अथवा धानको ही मुद्राके स्थानपर चढ़ानेका आदेश दिया गया है। मुद्राका दिव्य रूप है—बुराइयोंका त्याग। ज्ञानकी ज्योतिसे अपने अन्तरको जगमगानेवाला ही मुद्रा-साधक कहा जाता है। कौलावलीतन्त्रके ८०वें पटलमें हो गया है—

आशा तृष्णा महामुद्रा ब्रह्माग्नौपरिपाचिता।
ऋषयोऽश्नन्ति नियतं चतुर्थी सैव कीर्तिता॥
(पटल ८०)

आशा और तृष्णा महामुद्रा है। जो ब्रह्मकी अग्निमें परिपाचित होती है। ऋषिगण नियतरूपसे इनका प्राशन कर जाते हैं, वही चतुर्थी कही गयी है। 'तन्त्र-तत्त्वप्रकाश'में आया है—

आशा तृष्णा जुगुप्सा भयविशदघृणा मानलज्जा प्रकोपो
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः पच्यमानाःसमन्तात्
नित्यं स भक्षयेत् तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी।
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा

आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, भय, घृणा, घमण्ड, लज्जा, क्रोध—ये आठ कष्टदायक मुद्राएँ हैं। सत्कर्ममें निरत पुरुषोंको इन्हें ब्रह्मरूप अग्निमें पका डालना चाहिये। दिव्य भावानुरागी सज्जनोंको सदैव इनका सेवन करना और इनका सार ग्रहण करना चाहिये। ऐसे पशुहत्यासे विरत साधक ही पृथ्वीपर शिवके तुल्य उच्च आसन प्राप्त करते हैं। 'मन्त्र-मुक्तावली'में कहा है—

मन्त्रार्थमन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते॥

अर्थात् मन्त्रका अर्थ और मन्त्र-चैतन्यकी योनि-मुद्रा जो मानव नहीं जानता, वह चाहे सौ करोड़ जप क्यों न करे, उसको कदापि सिद्धि नहीं होती। कुलार्णव-तन्त्रमें आया है—

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शितव्याः कुलेश्वरि॥

हे 'कुलेश्वरि! देवताओंका मुद अर्थात् आनन्द उत्पन्न करने और उनके मनको उपासकके प्रति द्रवित कर देनेसे मुद्रा यह नाम पड़ा है, जो अवश्य ही देवोंको दिखायी जानी चाहिये।'

उपासनाकालमें आन्तरिक भावोंको व्यक्त करनेके लिये बाह्य शरीरकी विशेष भाव-भंगिमाएँ हैं, उन्हें ही मुद्रा कहते हैं। यह उपासकके आन्तरिक भावोंकी भाषा है। जिसके माध्यमसे वह अपने इष्टदेवतासे वार्तालाप करता है; क्योंकि बाह्यरूपसे उसके शरीरके अवयवोंका संचालन होता है, वह उसके हृदय और मनका प्रतीक माना जाता है। हाथों और अंगुलियोंकी सहायतासे बनायी गयी ये भङ्गिमाएँ जब बार-बार बनायी जाती हैं, उसी रूपमें वह आन्तरिक भावोंका रूप बन जाती हैं। ऐसा लगता है, जैसे सूक्ष्म ही स्थूल आकारमें साकार हो गया है और दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। मुद्राएँ १०८ संख्यामें हैं। आवाहन, विसर्जन, ऊर्ध्व आदि उपासनाके सभी अङ्गोंके लिये मुद्राओंका विधान है। मुद्राओंका प्रयोग

काम्य कर्म, प्रतिष्ठा, स्नान, आवाहन, नैवेद्य, अर्पण और विसर्जनके साथ किया जाता है।

मैथुन–मैथुनका अनुकल्प है—उपर्युक्त विधिसे पुष्पोंका समर्पण। तन्त्रमें लतासाधनाको बहुत कलङ्कित किया गया है। वास्तविकता यह कि तन्त्रमें पारिभाषिक शब्द होते हैं। उनके अर्थोंको न समझनेसे भ्रम फैलता है। इसीसे तन्त्रमें तथाकथित गंदगीका प्रवेश हुआ है। इस पदके शाब्दिक अर्थके विषयमें योगिनी-तन्त्रमें कहा है।

सहस्रारोपरि बिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे।
मैथुनं शयनं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम्॥

हे शिवे! सहस्रदल-पद्मोपरि बिन्दुमें जो कुण्डलिनी-का मिलन है वही यतियोंका परम मैथुन है यह कहा गया है। मैथुनका अर्थ है—मिलाना। साधारण भाषामें स्त्री और पुरुषके मिलनको मैथुन कहा है। परंतु तन्त्रशास्त्रकी पारिभाषिक भाषामें मैथुनका अभिप्राय हाड़-मांसवाले स्त्री-पुरुषका नहीं है। स्त्रीसे अभिप्राय है कुण्डलिनी-शक्तिसे जो हमारे अंदर सोयी हुई है। इसका स्थान मूलाधार है। सहस्रारमें शिवका स्थान है। इस शिव और शक्तिका मिलन ही वास्तविक मिलन अथवा मैथुन है। योगकी भाषामें सुषुम्नाका प्राणसे मिलन ही मैथुन कहा जाता है। पराशक्तिके साथ आत्माके विलास-रसमें निमग्न रहना ही मुक्त आत्माओंका मैथुन है। किसी स्त्री आदिका ग्रहणकर उससे मैथुन नहीं। 'भैरवयामल'में आया है—

या नाडी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्ना
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुजरमणीसुन्दरीवारयोषा।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे तं युगपवनगतं मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमय
भवने तां परिष्वज्य नित्यम्॥

परमानन्दको प्राप्त हुई सूक्ष्म रूपवाली सुषुम्ना नाड़ी है, वही आलिंगन करने योग्य सेवनीया कान्ता है, न कि मानवी सुन्दरी वेश्या! सुषुम्नाके सहस्रार चक्रके अन्तर्गत परम ब्रह्मके साथ संयोग होनेका नाम ही मैथुन है, स्त्री-सम्भोगका नहीं। विश्ववन्द्य योगीजन सुखमय वनस्थली आदिमें ऐसे ही संयोगका परमानन्द प्राप्त किया करते हैं।

यह पाँच मकारोंका रहस्य है। इस प्रकार तन्त्रमें जहाँ-जहाँ भी मद्य, मांस, मुद्रा, मीन, मैथुन शब्द आये हैं वहाँ उनका आलंकारिक वर्णन ही किया गया है। उसे न समझकर भोग-लिप्सुओंने अपने मानसिक स्तरके अनुरूप उनके अर्थ निकालकर उनका प्रत्यक्ष व्यवहार प्रारम्भ कर लिया है जिसके कारण जनसाधारणमें तन्त्र-विद्याकी उपेक्षा होने लगी एवं वह निम्नकोटिके विषयलोलुप वर्गतक ही सीमित रह गया। वास्तवमें तन्त्र बहुत उच्च स्तरकी साधना है। पञ्चमकारोंसे उसको कभी बदनाम नहीं करना चाहिये। उनके आलङ्कारिक रहस्योंका समझना आवश्यक है। इस प्रकार जो शुद्धतमा मनोरमा परमाराध्या पराम्बाकी सच्चे रूपसे साधना—उपासना करता है, उसका तथा उसके कुलका वास्तविक कल्याण है। माँ दयामयी भवतारिणी उसके भवबन्धन काटकर मोक्ष प्रदान करती है।

बलिदान-रहस्य

(स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)

दक्षिणमार्गीय इष्ट-पूजाके षोडश उपचारोंमें तो नहीं, किंतु वामाचारमें नैवेद्यके बाद बलिदान भी उपचारमें सम्मिलित है। भाव यह कि यदि उपासकने उपासनाके अन्तमें सर्वस्व समर्पणकर, पूजकने पूजाके अन्तमें उपास्य—पूज्य इष्टदेवको अपना सब कुछ बलिदान देकर उपास्यदेवसे अपना भेद-भाव मिटा न दिया, वह उपास्यमें विलीन, तन्मय होकर तद्रूप न हो गया, उसे **'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'**, **'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'**—यह भाव न प्राप्त हुआ, **'दासोऽहम्'** का **'दा'** नष्ट होकर **'सोऽहम्'** न रह गया तो पूजाकी पूर्णता ही क्या हुई ? इसी कारण बलिदान भी पूजाका एक अङ्ग है। बलिदानके बिना न जगन्माता ही प्रसन्न होती हैं और न भारतमाता ही। जिस देशमें जितने बलिदानी देश-सेवक, देश-नेता उत्पन्न होते हैं, उस देशकी उतनी ही सच्ची उन्नति होती है।

यह बलिदान चार प्रकारका है। सबसे उत्तम कोटिका बलिदान 'आत्म-बलिदान' है। इसमें साधक जीवात्मभाव-को काटकर परमात्मापर चढ़ा देता है। इस बलिदानद्वारा अज्ञानवश परमात्मासे जीवात्माकी जो पृथकता दीखती है, वह एकाएक नष्ट हो जाती है और साधक स्वरूप-स्थित होकर अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। जबतक यह न हो सके तबतक द्वितीय कोटिका बलिदान करना चाहिये। इसमें कामरूपी बकरे, क्रोधरूपी भेड़, मोहरूपी महिष आदिका बलिदान किया जाता है। अर्थात् 'षड्रिपुका बलिदान' ही द्वितीय कोटिका बलिदान है। तृतीय कोटिमें इतना न हो सकनेपर किसी-न-किसी इन्द्रिय-प्रिय वस्तुका बलिदान होता है। प्रत्येक विशेष पूजाके अन्तमें जिस वस्तुपर लोभ होता है उसका बलिदान अर्थात् संकल्पपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। यही तृतीय कोटिका बलिदान है। इस प्रकारसे मिठाई, प्याज, लहसुन, मादक वस्तु आदिके प्रति आसक्ति छूट सकती है। यदि ऐसा भी न हो सके तो क्रमशः छुड़ानेके लिये चतुर्थ कोटिका बलिदान है।

मैथुन, मांस-भक्षण, मद्यपान—इनमें लोगोंकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। महाराज मनुने भी **'प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्'** कहकर इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है; किंतु **'निवृत्तिस्तु महाफला'** अर्थात् मनुष्यको प्रवृत्ति छोड़कर क्रमशः मोक्षफलदायक निवृत्तिकी ओर अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण व्यवस्था बाँधकर इन वृत्तियोंको क्रमशः नियमित करते हुए इनसे निवृत्ति करानेके निमित्त विवाह, यज्ञ और सोमपान आदिका विधान राजसिक अधिकारमें किया गया है। यही कारण है कि विवाहके समय स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि संसारसे कामभाव उठाकर अपनेमें ही केन्द्रीभूत करके क्रमशः निवृत्तिपथके पथिक बनेंगे। राजसिक, वैदिक, तान्त्रिक यज्ञमें हिंसादिका भी यही समाधान है। अर्थात् स्वभावतः सात्त्विक प्रकृति मनुष्योंके लिये यह यज्ञ नहीं है। जो लोग मांस-मद्य आदिका सेवन पहलेसे करते हैं, वे पूजादिके नियममें बँधकर क्रमशः मांसाहार आदि छोड़ दें। जो अबाधरूपसे मांस-मद्यादिका सेवन करते हैं, वे वैसा न करें और संयत होकर क्रमशः ऐसा करें, जिससे उनकी मांस-मद्यकी प्रवृत्ति कम होते-होते अन्तमें बिल्कुल छूट जाय, यही इसका वास्तविक रहस्य है। यह सबके लिये नहीं है; परंतु जब वेद पूर्ण ग्रन्थ है तो इसमें केवल सात्त्विक ही नहीं, किंतु सभी प्रकारके अधिकारियोंके कल्याणके लिये विविध विधान होने चाहिये, इसी कारण राजसिक अधिकारीको क्रमशः सात्त्विक बनानेकी ये विधियाँ

यज्ञरूपसे शास्त्रोंमें बतायी गयी हैं। ये संयमके लिये हैं, न कि यथेच्छाचारके लिये। किसीके संहार, मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये विधिहीन, अमन्त्रक पूजादि तामसिक हैं।

दक्षिणाचारके अनुसार सात्त्विक पूजामें पशु-बलिका विधान नहीं है। राजसमें कूष्माण्ड, ईख, नीबू आदिकी बलि है। केवल वामाचारमें पशु-बलिका विधान है। महाकाल-संहितामें स्पष्ट कहा गया है—

सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्॥
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम्॥

'सात्त्विक अधिकारके उपासक कदापि पशु-बलि देकर जीव-हत्या न करें, वे ईख, कोहड़ा या वन्य फलोंकी बलि दें अथवा खोवा, आटा या चावलके पिण्डसे पशु बनाकर बलि दें।' यह सब भी रिपुओंके बलिदानका निमित्तमात्र ही है, जैसे कि महानिर्वाण-तन्त्रमें कहा है—

'कामक्रोधौ पशू द्वाविमावेव बलिमर्पयेत्।'
'कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्॥'

काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओंका बलिदान करके उपासना करनी चाहिये। यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है।

मधु-कैटभ-वधकी पौराणिक, यौगिक और वैदिक व्याख्या

(साहित्य-वाचस्पति डॉ० श्रीविष्णुदत्त राकेश, एम्० ए०, डी०लिट्०)

मार्कण्डेयपुराणके ८१वें अध्यायमें मधु और कैटभ नामक असुरोंके विनाशकी कथा आयी है, जो इस प्रकार है—कल्पान्तमें महाप्रलयके समय यह समस्त जगत् एक महासमुद्रके रूपमें जलमय हो गया और उसमें भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर योगनिद्रामें निद्रित हो गये। तभी विष्णुके कानोंके मैलसे मधु-कैटभ नामके दो असुर उत्पन्न हुए तथा विष्णुके नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हो गये। उग्र असुरोंको देखकर प्रजापतिने विष्णुको योगनिद्रामग्न देखा। विष्णुके नेत्रोंमें स्थित महामाया योगनिद्राको जगानेके लिये ब्रह्माने स्तुति प्रारम्भ की। ब्रह्माने कहा—'अतुल तेजोमय विष्णुकी उस योगनिद्राकी मैं स्तुति करता हूँ, जो समस्त विश्वकी जननी है, समस्त विश्वका पालन-पोषण करनेवाली है और समस्त विश्वकी स्थिति और संहारका कारण है। आप जगन्मयी हैं। इस जगत्‌की उत्पत्तिमें सृष्टिस्वरूपा, इस जगत्‌के पालनमें स्थिति-स्वरूपा और इस जगत्‌के संहारमें संहृति-स्वरूपा हैं। इस प्रकार यह समस्त विश्व आपके ही स्वरूपमें सर्वदा अन्तर्विलीन है। हे देवि! आप समस्त जगत्‌के लिये प्रकृति अथवा सत्त्व, रज और तमोगुणकी साम्यावस्था हैं तथा आप ही समस्त जगत्‌के लिये सत्त्व-रजस-तमसके गुणत्रयका विभाजन करनेवाली विकृति हैं। विश्वमयी होनेसे जगत्‌के सदात्मक और असदात्मक पदार्थोंकी जो शक्ति है, वह आप ही हैं। आपके अतिरिक्त और किसीका अस्तित्व नहीं है। आप ही परात्पर हैं। (सप्तशती अ० १ रात्रिसूक्त)

इस स्तुतिके बाद भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय और वक्षःस्थलसे बाहर निकलकर योगनिद्रा ब्रह्माके आँखोंके सामने प्रकट हो गयी। योगमायासे अलग होते ही विष्णु उस अर्णव (कल्पान्त-कालीन महासमुद्र) से उठ खड़े हुए। पाँच हजार वर्षतक विष्णुका उन (मधु-कैटभ)से द्वन्द्व-युद्ध हुआ। महामायासे मोहित हुए असुरोंने विष्णुसे वर माँगनेको कहा। विष्णुने कहा—'मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों मेरे

*

हाथों मारे जाओ।' मधु-कैटभ बोले—'हमें वहाँ मारो जहाँ जल-प्लाव न हो।' विष्णुने इतना कहनेपर उन्हें अपनी जंघापर रखा और चक्रसे उनका सिर काट लिया।

देवीभागवतके प्रथम स्कन्धके ६ से ९ तकके अध्यायोंमें भी यह आख्यान आया है। वहाँ एक बात विशेष यह कही गयी है कि असुरोंकी देह चार हजार कोसवाली थी। विष्णुने जंघाएँ सटाकर उनपर उन्हें रखा तथा उन दैत्योंके रक्त और मज्जासे पृथ्वी पट गयी। इसी कारण पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ा। तबसे मिट्टी खाना निषिद्ध समझा जाने लगा——

तदाकर्ण्य वचस्तस्य विचिन्त्य मनसा च तौ।
वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्रकम्॥
(१।९।८०)
भयाद्द्वै द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा।
(१।९।८१)
मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समंततः।
अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः॥
(१।९।८४)

इस कथाका रहस्यात्मक अर्थ क्या है, अब इसपर विचार करना है।

आख्यानकी वेद-मूलकता

ऋग्वेदके वागाम्भृणी सूक्त (१०।१०।१२५) की सातवीं ऋचामें कहा गया है कि मैं ही इस जगत्के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठान-स्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्ति-स्थान परमात्मा-रूप समुद्रमें तथा बुद्धिकी व्यापकता-रूप जलमें मेरे कारण-स्वरूप चैतन्य ब्रह्मकी स्थिति है। अतएव मैं समस्त भुवनोंमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ——

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥

तात्पर्य यह कि दुर्गाका उद्भव-स्थान महासमुद्रमें है। महासमुद्रको ही 'अम्भृण' कहते हैं। अम्भृणका अर्थ है——**अपां बिभर्ति यः।** अर्थात् आपस्तत्त्वको धारण करनेवाला। एकार्णवमें स्थित आप् (जल) ही विष्णु हैं और इसी विष्णुके अङ्गोंका रस देवी योगमाया हैं। सायणाचार्य इसे 'वाक्' कहते और अम्भृणकी कन्या बताते हैं। शरीरमें एकार्णव हृदयस्थ प्रदेश है जहाँसे वह द्युलोक अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रको छूती है। ब्रह्माण्डमें, समस्त भुवनोंमें व्याप्त होकर जगत्के पिता आदित्य (प्रसविता) को स्पर्श करती है। ब्रह्माण्डका केन्द्रबिन्दु विष्णुकी नाभि है, उससे जगत् उत्पन्न होता है। वही ब्राह्मी स्थिति है, उसका अवरोधक रज और तम है। स्थितिमें सत्त्व रहता है तो सृष्टि नहीं होती। तम रहता है तो भी सृष्टि नहीं होती। सत्त्व-भावमें साम्य रहता है, जब रजोगुणसे इसमें वैषम्य आता है तभी सृष्टि होती है। ब्रह्म-भाव या सर्गभावके अवरोधक रज और तमके प्रतीक मधु-कैटभका जब विनाश होता है अर्थात् सत्त्व जब रज और तमसे विकृत होता है तब सृष्टि होती है। अर्थात् सत्त्वगुण प्रबल होकर रजोगुण और तमोगुणको अपने नियन्त्रणमें रखकर सृष्टिक्रमका संचालन करने लगता है। मत्स्यपुराण (१७०।२) में इन्हें रज और तमका ही प्रतीक कहा गया है——

तौ रजस्तमसौ विघ्नसंभूतौ तामसौ गणौ।
एकार्णवे जगत् सर्वं क्षोभयन्तौ महाबलौ॥

कालिकापुराणके ६१ वें अध्यायमें भी इन्हें रजोगुण और तमोगुण कहा गया है।

वैसे भी विष्णु विराज है। जब वह अव्याकृत रहता है तब उसे 'आपः' कहते हैं। उसकी शक्ति अव्याकृता प्रकृति है। सक्रिय होकर यह दो रूपोंमें बँट जाता है, व्याकृत हो जाता है——एक प्रकृति और दूसरा पुरुष।

प्रकृति योगमाया है तो पुरुष विष्णु है। इनसे मन और प्राण उत्पन्न होते हैं जो क्रमशः सत् और असत्के रस हैं। मन ब्रह्मा है, इसके चार मुख हैं—चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार। प्राण विष्णु है और इसकी चञ्चलता मन-ब्रह्मा है। आवरण और विक्षेप मधु-कैटभ हैं। ज्ञान चक्र है। इसीसे चञ्चलताके हेतु आवरण और विक्षेपकी समाप्ति होती है तथा मन एकाग्र होता है, नानात्वकी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। वृत्तिकी स्थिरताकी दशा ही शेष है और उसपर स्थित विष्णु योग-पुरुष है।

दूसरे शब्दोंमें विष्णु तपुर्मूर्धा ऋषि हैं, अर्थात् ऐसे साधकके प्रतीक हैं जिसका मस्तिष्क एकाग्रताके कारण तप रहा है। यह एकाग्रता ज्ञानाग्निजन्य है। नाभि-कमलमें स्थित ब्रह्मा नाभिसे ऊर्ध्वमें होनेवाले प्राणात्मक प्रकृष्ट यज्ञका प्रतीक है। इसे वेदके शब्दोंमें 'प्रयाज' कहेंगे। नाभिके नीचेके प्राण मधु-कैटभ हैं, जो उन्हें प्रयाज नहीं करने देते। मोटे शब्दोंमें ये अपान हैं। ये ब्रह्मत्वके द्वेषी भाव हैं। नराशंस अग्नि भद्रकाली या देवी है जो स्तुत होनेपर, आवाहित होनेपर अपानको प्राणके अनुकूल बना देती है। इस अवस्थाको 'अनुयाज' कहते हैं। मनन और ज्ञान दो जंघाएँ हैं, जिनपर द्वेषी भावको रखकर नष्ट किया जा सकता है—

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः।
(ऋक् १०। १८२। २)

प्रजापति सृष्टिकी प्रजनन-शक्तिका भी प्रतीक है—'प्रजननं प्रजापतिः', अतः वह रज है। जब मधु-कैटभरूप तम इसे क्षुब्ध करता है तब भूतोंकी सृष्टि होती है अर्थात् तमसे युक्त हुए विना रज सृष्टि उत्पन्न नहीं कर सकता। अर्थात् यह प्रकरण आध्यात्मिक साधना और सृष्टि-निर्माण दोनोंपर प्रकाश डालता है।

एक व्याख्या यह भी सम्भव है कि एकार्णव रात्रि है। विष्णु आकाश है। नेत्र प्राची दिशा है, उससे योगनिद्राका निकलना उषाका आगमन है। विष्णुका जागरण अग्नि है। **'प्राची हि दिगग्नेः'** यह शतपथ (६। ३। ३। २) कहता भी है। इस अग्निका पिण्डीभाव नाभिकमल है। ब्रह्मा सूर्य हैं। असित अर्थात् काला विष्णु इसका रक्षक है। सूर्यमें दो भाग हैं। एक तेजस्वरूप जो कैटभ है और दूसरा अप्रकाशमान कृष्णरूप जो मधु है। ये सूर्यके काले धब्बे (सन-स्पाट) हैं। ये ही जल-जलकर सूर्यको गोल बनाये रखते हैं। इनका जलना और गोलाकार बना रहना ही चक्र चलना है। सूर्यकी किरणें पृथ्वी-पृष्ठपर दिन-रातके रूपमें गिरती हैं। पृथ्वीपृष्ठ विष्णुकी जंघाएँ हैं—**'महीतलं तज्जघने'**। कालरूप दिन-रातका उनपर गिरना ही मधु-कैटभका शरीरपात है। अथर्वके तृतीय काण्डके सत्ताईसवें सूक्तमें **'प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः'** यह जो आया है उसका भी यही अर्थ है। इसका तात्पर्य है कि दिव्य शक्तिकी ज्योतिसे ही सब ज्योतित होता है और उसीकी सत्तासे सबकी सत्ता प्रतीत होती है। कठोपनिषद् (२।२।१५)में कहा गया है—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

योगमूलक व्याख्या

इस कथामें नारायणको अध्यात्म-निष्ठाका प्रतीक समझा जा सकता है। शेष आधार-शक्तिके प्रतीक हैं। निद्रादेवी महासुप्तिरूपा बीज-शक्ति हैं। पद्म रजोगुणकी

विमर्श-शक्ति स्पन्द है। ब्रह्मा शब्दब्रह्म—प्रणव है। प्रणवका प्रथम रूप ध्वन्यात्मक है, फिर शब्दोंका रूप धारणकर वह अनेकधा व्यक्त होता है। उससे रूपका प्रसार होता है। विराट् ब्रह्माण्ड कान है। इसका मैल अन्तरिक्ष है। मधु-कैटभ नादके आवरण हैं। विश्वाकार होनेका भाव चक्र है। अहं और इदंका भाव जंघाएँ हैं। आवरणके नष्ट होनेपर वर्णात्मिका शक्ति वेदराशिका रूप तथा अर्थात्मिका शक्ति समस्त सृष्टिका रूप धारण कर लेती है।

विष्णु अध्यात्म-साधनाके प्रतीक हैं तो ब्रह्मा ज्ञानके प्रतीक। इनके मार्गमें बाधक हैं मधु-कैटभ। मधु प्रसाद है और कैटभ भ्रान्ति तथा विक्षेप। ये दोनों ज्ञानके शत्रु हैं। भगवान्के जागनेपर अर्थात् अध्यात्म-निष्ठाके दृढ़ होनेपर दोनोंका नाश होता है। **'अहं ब्रह्मास्मि'** भावका उदय ही चक्रका गतिमान् होना है। ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म हो जाता है—**'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'** अतः नारायणतत्त्वका साक्षात्कार करनेवाला ब्रह्मा भी प्रजापति बन जाता है—**'तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।'** अतः सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके उदय (भद्रकालीका दर्शन) होनेपर सब दोषोंकी बीजरूपी वासनाके क्षय होनेपर कैवल्यपदकी प्राप्ति होती है। अतः कैवल्य-प्राप्तिकी प्रक्रियापर भी इस आख्यानसे प्रकाश पड़ता है।

अग्निहोत्रका प्रतीक

यह कथा अग्निहोत्रसे भी सम्बन्धित है। विष्णु प्रजापति हैं। नाभिकमल स्थण्डिल अथवा अग्निवेदी है। ब्रह्मा स्थापित अग्नि है। चार वेद इसके चार मुख हैं। योगनिद्रा वाक् है, जो प्रजापतिको अग्निमें आहुति देनेके लिये प्रेरित करती है। मैत्रायणीसंहितामें आया है—

स्वाहा इति स्वा ह्येनं वागभ्यवदत्। जुहुधीति। तत् स्वाहाकारस्य जन्म। (१। ८। १)

सायंकाल तथा प्रातःकाल मधु-कैटभ हैं। अंधकार, आँधी और अमेध्य पदार्थोंका अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर उड़ना ही इनका कार्य है जो क्रमशः अग्निहोत्रके शत्रु हैं। वेद जिन्हें उषाएँ **'दिवः दुहितरः'** कहता है, वे ही नानात्वमयी प्रकाश-किरणें चक्र हैं, जिनसे मधु-कैटभ क्षीण होते हैं। पुराणोंमें इन्हें **'मन्देहा'** बताया गया है। इस अग्निहोत्रका सम्बन्ध जायापती-सदृश है। प्रातःकालीन अग्निहोत्र जाया है तथा सायंकालीन पति है। काठकसंहितामें आया है—**'अग्निहोत्रे वै जायापती'**। प्रातःकालीन यज्ञसे सूर्य-ज्योति तथा सायंकालीन यज्ञसे चन्द्र-ज्योतिका जन्म होता है। पहला अग्नि है तो दूसरा सोम। अग्नीषोम ही जगत्का आधार है। यही क्रिया शरीर-यज्ञमें भी सम्पन्न होती रहती है। मत्स्य-पुराणमें कहा गया है कि इस वृत्तान्तको जाननेवाले प्राचीन याज्ञिक महर्षियोंने वेदके दृष्टान्तोंद्वारा यज्ञमें कमलकी रचनाका विधान बताया है—

एतस्मात् कारणात् तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः।
याज्ञिकैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे पद्मविधिः स्मृतः॥
(मत्स्य० १८९। १६)

इससे स्पष्ट होता है कि मत्स्यपुराणकार मधु-कैटभकी कथाका तात्पर्य अग्निहोत्रकी रक्षा मानते हैं। मार्कण्डेयमें, ब्रह्माकी स्तुतिमें, इस प्रसङ्गमें कहे गये 'स्वाहा' और 'वषट्' शब्द आख्यानकी यज्ञ-मूलकताको ही सिद्ध करते हैं। जो इस प्रक्रियाको नहीं जानता, वेदका कर्म-विषयक ज्ञान उसके लिये व्यर्थ है।

षडध्व—एक संक्षिप्त परिचय

'षडध्व' शब्दमें दो पद हैं—षट्+अध्व। षट्का अर्थ छः है और 'अध्व' का अर्थ है मार्ग। शैव और शाक्त—दोनों सम्प्रदायोंमें इस षडध्व-विज्ञानका उल्लेख पाया जाता है और इसी कारण दोनों दर्शनोंकी एकवाक्यता सुस्पष्ट हो जाती है। अन्तर इतना ही है कि शाक्त लोग शिव और शक्ति—दोनोंकी उपासना करते हुए भी 'शक्ति'को ही प्राधान्य देते हैं जब कि शिवोपासक शक्तिसहित 'शिव'को प्रधान मानते हैं। अर्थात् वहाँ शक्ति शिवका अङ्ग बन जाती है, शाक्तोंकी तरह अङ्गी नहीं।

ऊपर जो छः मार्ग (षडध्व) बताये हैं, उनमें तीन शब्दके और तीन अर्थके मार्ग हैं। शब्दके तीन मार्ग हैं—१—वर्ण, २—पद और ३—मन्त्र (पदसमूह)। इनमें पिछले दोनों पहले दोनोंके आश्रित अर्थात् पद वर्णके और मन्त्र पदके आश्रित होते हैं। अर्थके मार्ग या अध्व तीन हैं—१—कला २—तत्त्व और ३—भुवन। इनमें भी दूसरा और तीसरा क्रमशः पहले और दूसरेपर आश्रित हैं।

इनमें वर्ण, पद और मन्त्रके अर्थ तो प्रायः सर्व-विदित हैं। 'कला' कहते हैं शक्तिके सामान्य एवं परात्पर रूपको। फिर भी उसका प्रचलित अर्थ है शक्तिका अन्यतम विशिष्ट स्वरूप और व्यापार। तत्त्वसमुदायके सम्पिण्डितरूप ये प्रधान कलाएँ पाँच हैं—१—शान्त्यतीता, २—शान्ति, ३—विद्या, ४—प्रतिष्ठा और ५—निवृत्ति।

'तत्त्व' प्रथम शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धाशुद्ध-भेदसे तीन प्रकारके हैं और उनकी कुल संख्या ३६ हैं। इन तत्त्वोंका 'सिद्धान्त-सारावलि' आदिके अनुसार अन्य तीन प्रकारसे विभाजन किया गया है। यथा—१—शिवतत्त्व, २—विद्यातत्त्व और ३—आत्मतत्त्व। पहले वर्गमें शिव-तत्त्व और शक्तितत्त्व सम्मिलित हैं। दूसरे वर्गमें सदाशिवसे लेकर शुद्धविद्यातककी गणना है और तीसरे वर्गमें मायासे लेकर पृथ्वीतत्त्वतक अन्तर्भूत हैं।

'भुवन'का अर्थ है—लोक। **'अस्माद् भवतीति भुवनम्'**—अर्थात् इससे जो उत्पन्न होता है, वह 'भुवन' कहा जाता है। ये भुवन भी शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धा-शुद्ध भेदसे तीन प्रकारके होते हैं और इनकी कुल संख्या २२४ है। इनमें १५ भुवन शिव और शक्तिरूप २ शुद्ध तत्त्वोंके साथ शान्त्यतीता कलामें रहते हैं। तीन शुद्ध तत्त्व और सात शुद्धाशुद्ध तत्त्वों (कुल दस तत्त्वों) के साथ ४५ भुवन शान्तिकला और विद्याकलामें रहते हैं। २३ अशुद्ध तत्त्वोंके साथ ५६ भुवन प्रतिष्ठाकलामें रहते हैं और अशुद्ध तत्त्व पृथ्वीके साथ १०८ भुवन निवृत्तिकलामें रहते हैं।

इस प्रकार कुल २२४ भुवन ३६ तत्त्वोंके साथ ५ कलाओमें रहते हैं और यही षडध्वके द्वितीय 'अर्थ-मार्ग'का संक्षेप है।

(सर जान वुडरफके लेखके आधारपर)

श्रीसीता-स्तुति

जय हो श्रीआदिशक्ति ! गति है अपार तेरी, तू ही मूलकारन श्रीसीता महारानी है।
तेरो ही बनाव व्याप्त सकल चराचरमें, तू ही मम मातु साँची तू ही स्रुत बानी है॥
जग-प्रगटावनी औ पालन-प्रलयकारी, तू ही भुक्ति, मुक्ति पराभक्तिहूकी खानी है।
तू ही जगजानी रानी रामकी परम प्यारी, 'मोहन'के सर्व-शक्ति ! तू ही मम-मानी है॥

—साह मोहनराज

परात्परब्रह्मरूपा शक्ति

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके उत्पादन, पालन तथा संहार करनेकी शक्तिसे सम्पन्न तत्त्वको ही सभी शास्त्र परात्पर-ब्रह्म नामसे कहते हैं। शक्तिसे रहित भगवान् कभी शक्तिमान् नहीं हो सकते एवं शक्तिमान् भगवान्से रहित शक्ति भी नहीं हो सकती। इसीलिये इन्हें सर्वथा स्वतन्त्र दो तत्त्व नहीं माना जा सकता। जब पुरुषवाच्य शब्दसे उस परात्परब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं, तब उसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, राम, कृष्ण आदिके रूपमें मानते हैं, जैसा कि विष्णुपुराणादिमें वर्णन किया गया है। जब स्त्रीवाचक शब्दसे उस परात्परब्रह्मका प्रतिपादन मानते हैं, तब उसे देवी, भगवती, शक्ति आदिके रूपमें मानते हैं, जैसा कि देवीभागवतादिमें वर्णन किया गया है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा शक्ति—ये सभी एक परात्परब्रह्मके ही नामभेदमात्र हैं, तत्त्वतः भिन्न नहीं हैं। इसलिये भगवान् विष्णु आदिकी उपासनासे जो लौकिक-अलौकिक लाभ होते हैं, वे ही लाभ भगवती शक्तिकी उपासनासे भी होते हैं।

ऐसा होनेपर भी कोई विष्णुको, कोई शिवको, कोई शक्तिको ही सर्वोपरि मानकर उपासना करते हैं, दूसरोंको सर्वोपरि नहीं मानते। इसका कारण यह है कि शास्त्रोंमें विष्णु, शिव, शक्ति आदिका पर और अपर दो रूपोंमें वर्णन किया गया है—

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।
त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥
त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।

(श्रीमद्भा० ८ । ७ । २१—२४)

'हे देवोंके देव! हे महादेव! हे भूतात्मन्! हे भूतभावन! आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के तथा बन्धन-मोक्षके ईश्वर हैं। हे स्वयंप्रकाश भूमन्! जब आप अपनी गुणमयी शक्तिद्वारा इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं, तब आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम धारण करते हैं। आप ही सत्-असत्-भावसे भावित परम गुह्य ब्रह्म हैं।'

यहाँ 'परम गुह्य ब्रह्म' शब्दोंद्वारा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके उत्पादन, पालन तथा संहार करनेकी शक्तिसे सम्पन्न प्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण परशिवका वर्णन किया गया है। अपने द्वारा अपनी प्रकृति तमोगुणी शक्तिसे एक ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाले अपरशिवका **'गुणमय्या स्वशक्त्या……शिवाभिधाम्'**—शब्दोंद्वारा वर्णन किया गया है। इस प्रकार शिवका पर और अपर दो रूपसे यहाँ स्पष्ट वर्णन है।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

(विष्णुपु० १ । २ । ६६)

'वह एक ही जनार्दन भगवान् (विष्णु) सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेवाले ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप नामोंको प्राप्त होते हैं।'

यहाँ 'भगवान् एक एव जनार्दनः' शब्दोंद्वारा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके उत्पादन, पालन और संहार करनेकी शक्तिसे सम्पन्न, प्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण परविष्णुका वर्णन किया गया है। **'स्थितिकरणीं विष्णु-संज्ञां याति'** शब्दोंसे प्राकृत सत्त्वगुणयुक्त एक-एक ब्रह्माण्डका पालन करनेवाले अपरविष्णुका वर्णन किया गया है। इस प्रकार विष्णुका पर और अपर दो रूपसे यहाँ स्पष्ट वर्णन है।

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाविकृता शिवा।
योगगम्याखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीसरस्वत्यौ महाकालीति ताः स्त्रियः॥
(देवीभाग० १। २। १९-२०)

'जो निर्गुण, सदा रहनेवाली, नित्य, व्यापक, विकार-रहित, कल्याणरूप, योगगम्य, सबका आधार तथा तुरीयरूपसे स्थित है, उसकी सात्त्विकी शक्ति महालक्ष्मी, राजसी सरस्वती तथा तामसी महाकाली—ये तीन स्त्रियाँ हैं।'

यहाँ प्रथम श्लोकमें—'**निर्गुणा**......**तुरीया**' आदि शब्दोंद्वारा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका उत्पादन, पालन और संहार करनेवाली प्राकृत तीन गुणोंसे रहित चतुर्थी (तुरीया) परात्परब्रह्मरूपा पराशक्तिका वर्णन किया गया है। द्वितीय श्लोकमें 'सात्त्विकी'आदि शब्दोंसे प्राकृत गुणोंसे युक्त एक-एक ब्रह्माण्डका पालन आदि करनेवाली अपराशक्तिका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यहाँ शक्तिका पर और अपर दो रूपसे स्पष्ट वर्णन है।

इस प्रकार विष्णु-शिव-शक्तिके पर-अपर रूपोंके रहस्यको न जाननेके कारण ही विष्णु आदिके उपासक अपने इष्टको ही सर्वोपरि मानते हैं। उनकी यह मान्यता तब फीकी पड़ जाती है, जब वे शिवादिसे विष्णु आदिकी उत्पत्तिका वर्णन शास्त्रोंमें पढ़ते है। देखिये—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च॥
(महाभा० अनुशासनपर्व १। ३)

'मैं महादेवजीके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। वे ब्रह्मा, विष्णु तथा सुरेशको उत्पन्न करनेवाले और उनके स्वामी हैं।'

योऽसृजद् दक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम्।
वामपार्श्वात् तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः॥
(महाभा० अनुशासनपर्व १। ३। ७)

'महेश्वरने अपने दाहिने अङ्गसे लोकस्रष्टा ब्रह्माकी तथा लोककी रक्षा करनेके लिये बायें भागसे विष्णुकी सृष्टि की है।'

हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता॥
(देवीभा० १। २। २२)

'विष्णु, ब्रह्मा और रुद्रकी उत्पत्ति उस (देवी)से हुई है।'. शास्त्रोंमें ऐसे वचनोंको पढ़कर कुछ लोगोंको यह शङ्का हो जाती है कि किससे किसकी उत्पत्ति हुई है, इसका निर्णय कैसे हो? इस शङ्काका समाधान करते हुए शिवपुराणमें कहा गया है कि किसी कल्पमें रुद्र (शिव) ब्रह्मा और नारायण (विष्णु)को उत्पन्न करते हैं और किसी कल्पमें ब्रह्मा रुद्र और विष्णुको उत्पन्न करते हैं, तो किसी कल्पमें भगवान् विष्णु रुद्र और ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं—

ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्।
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः।
विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणमसृजत् पुनः॥
(शिवपुराण ७। १३। १७-१८)

इन शास्त्र-वचनोंका तात्पर्य यह है कि जब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा शक्तिका वर्णन सबके उत्पादकरूपमें किया जाता है, तब वे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके उत्पादन, पालन तथा संहार करनेकी शक्तिसे सम्पन्न परात्परब्रह्म-रूप ही होते हैं और जिन ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा शक्तिको उत्पन्न करते हैं, वे एक-एक ब्रह्माण्डके उत्पादन, पालन तथा संहार करनेकी शक्तिसे सम्पन्न अपरब्रह्मरूप होते हैं। इस रहस्यको समझ लेनेपर शङ्काका समाधान हो जाता है तथा शास्त्र-वचनोंकी संगति समझमें आ जाती है।

शङ्का—यदि सबके उत्पादक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति आदि परात्परब्रह्मरूप होनेसे एक ही हैं, तो शास्त्रोंमें इन्हें एक जाननेवालोंकी निन्दा करते हुए उन्हें पाखंडी क्यों कहा गया? उन्हें नरककी प्राप्ति क्यों

बतायी गयी ? किसीको मोक्षदाता और किसीको मोक्ष-अदाता क्यों कहा गया ? किसीकी उपासनासे कल्याणकी प्राप्ति और किसीकी उपासनासे नरककी प्राप्ति क्यों कही गयी ? वे शास्त्रवचन इस प्रकार हैं—

विष्णुब्रह्मादिदेवानामैक्यं जानन्ति ये नराः।
ते यान्ति नरकं घोरं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥
(गरुडपुराण, ब्रह्मखण्ड ४ । ६)

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाखण्डी भवेद् ध्रुवम्॥
(पद्मपुराण)

'जो मनुष्य विष्णु, ब्रह्मा आदि देवोंकी एकता जानते हैं, वे मनुष्य घोर नरकको प्राप्त होते हैं। जो नारायणदेव-की ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओंके साथ समानता देखता है, वह निश्चय ही पाखण्डी होता है।'

मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः॥
(हरिवंश, भविष्यपर्व ८० । ३०)

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः॥
(श्रीमद्भा० १० । ५१ । २०)

एक एव हि विश्वेशो मुक्तिदो नान्य एव हि॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ९४ । ५४, ९५ । ९)

'मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाले मुझसे शंकरजीने कहा कि सभीको मुक्ति देनेवाले विष्णु ही हैं, इसमें संशय नहीं। मुझसे कैवल्य (मुक्ति)को छोड़कर वरदान माँग लो, एक भगवान् विष्णु ही उसके ईश्वर अर्थात् दाता हैं। एक विश्वेश (विष्णु) ही मुक्तिदाता हैं, दूसरा कोई नहीं।'

विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः।
शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा॥
(देवीभागवत १२ । ८ । ९१-९२)

'गायत्रीदेवीको सर्वथा छोड़कर जो ब्राह्मण केवल विष्णुकी या शिवकी उपासनामें रत होता है, वह नरकको जाता है।'

समाधान—ऐसे स्थलोंमें आये हुए निन्दा-प्रशंसावाले शास्त्रवचनोंका तात्पर्य जिसकी निन्दा की गयी है, उसकी निन्दामें नहीं होता, किंतु जिसका प्रसङ्ग चल रहा है, उसकी प्रशंसामें होता है, ऐसा शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् कहते हैं—

नहि निन्दा निन्द्यस्य निन्दार्थं प्रवृत्ता,
अपितु प्रकृतस्य प्रशंसार्थम्॥

इस दृष्टिसे देखा जाय तो अपने-अपने इष्टदेवतामें पूर्ण निष्ठा करानेके लिये ही दूसरेके इष्टदेवके साथ एकता, समानता, मुक्तिप्रदता आदिका निषेध किया गया है; क्योंकि जब साधक अपने इष्टदेवको ही सर्वोपरि, एक, अद्वितीय, मुक्तिदाता मानता है तभी पूरी निष्ठाके साथ उसकी उपासना कर पाता है।

दूसरा समाधान यह है कि परब्रह्म, परविष्णु, परशिव, परशक्ति ही कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक होनेसे सर्वोपरि, एक, अद्वितीय, मुक्तिदाता हैं। एक-एक ब्रह्माण्ड-नायक अपरब्रह्म, अपरविष्णु, अपरशिव, अपरशक्ति सर्वोपरि, एक, अद्वितीय, मुक्तिदाता नहीं हैं। अतः परविष्णु आदिके साथ अपरशिव आदिकी एकता, समानता, मुक्तिप्रदानता सम्भव न होनेसे उनको मानने-वालेकी निन्दा की गयी है, तो सर्वथा ठीक ही है।

शङ्का—यद्यपि ऊपर दिया गया समाधान बहुत ठीक है, तथापि पुनः यह शङ्का होती है कि यहाँ जो गायत्रीदेवीकी उपासना छोड़कर शिव या विष्णुकी उपासना करता है उसे नरककी प्राप्ति क्यों बतायी है; क्योंकि नरककी प्राप्ति तो शास्त्रनिषिद्ध कार्य करनेसे ही होती है ?

समाधान—आपकी शङ्का बहुत ठीक है; क्योंकि परशिव या परविष्णुकी तो बात ही क्या, अपर शिव या अपर विष्णुकी उपासना करनेवालोंको भी नरक नहीं मिलता। इतना ही नहीं, किंतु उनको लोक या स्वर्ग

ही मिलता है। ऐसी दशामें इस वचनका तात्पर्य जिसका प्रसंग चल रहा है, उस गायत्रीदेवीकी उपासनाकी प्रशंसा करनेमें ही है, विष्णु या शिवकी निन्दा करनेमें या उनकी उपासनासे नरक-प्राप्ति बतानेमें नहीं है। 'विप्र' शब्दका प्रयोग विशेषरूपसे करके यह बताया गया है कि ब्राह्मणको वेदमाता गायत्रीदेवीकी उपासना अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व वेदपर ही आधारित है।

जैसे शिवपुराणमें शिवको और विष्णुपुराणमें विष्णुको कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके उत्पादन, पालन तथा संहारकी शक्तिसे सम्पन्न और कोटि-कोटि अपर ब्रह्मा, विष्णु, शिवका उत्पादक बताकर परात्पर परब्रह्मरूपसे वर्णन किया गया है, उसी प्रकार देवीभागवतमें भगवती शक्तिका वर्णन किया गया है। इसलिये शक्ति भी परात्पर ब्रह्मरूपा ही है। अतः जो लौकिक-अलौकिक लाभ परात्पर-ब्रह्मरूप विष्णु-शिवकी उपासनासे होते हैं, वे ही लाभ परात्पर ब्रह्मरूपाशक्तिकी उपासनासे होते हैं।

नवरात्र और नवार्णमन्त्र—एक मनन

(वेददर्शनाचार्य स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी उदासीन)

आद्याशक्ति भगवती स्वयं कहती हैं—

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥

'शरद् ऋतुमें मेरी जो वार्षिक महापूजा अर्थात् नवरात्र-पूजन होता है*, उसमें श्रद्धा-भक्तिके साथ मेरे इस 'देवी-माहात्म्य' (सप्तशती)का पाठ या श्रवण करना चाहिये। ऐसा करनेपर निःसंदेह मेरे कृपा-प्रसादसे मानव सभी प्रकारकी बाधाओंसे मुक्त होता है और धन-धान्य, पशु-पुत्रादि सम्पत्तिसे सम्पन्न हो जाता है।'

शक्ति-दर्शनानुसार परब्रह्मसे अभिन्न आदिशक्ति पराम्बाकी उपासना इसीलिये की जाती है कि वह साधकको भुक्ति और मुक्ति दोनोंका अवदान दे और उपर्युक्त श्लोकोंमें भगवती श्रीमुखसे उसे भुक्ति—सर्वविध भोग प्रदान करनेका वचन दे रही हैं। परब्रह्माभिन्न परब्रह्ममहिषी होनेसे मुक्ति तो माता हमें घलुवेमें ही दे देगी।

उपर्युक्त श्लोकमें शरत्कालमें शारदीय नवरात्र एवं वर्षारम्भ चैत्रमें वार्षिक नवरात्र—इन दोनोंमें देवी-माहात्म्यके पाठके विषयमें जो दो बातें कही गयी हैं, वे विचारणीय हैं। 'देवी-माहात्म्य' को सप्तशतीके रूपमें सभी जानते हैं और यह भी जानते हैं कि सुमेधा ऋषिने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको ७०० श्लोकों, मन्त्रोंके उस ग्रन्थमें महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीके तीन चरित्र बताये हैं। शेष रह जाता है नवरात्र और इस सप्तशती-पाठका प्रागभूत पाठके पूर्व अनिवार्यतः किया जानेवाला नवार्ण-मन्त्रका जप। यहाँ इन्हीं दो विषयोंपर संक्षेपमें प्रकाश डालनेका उपक्रम है।

इनमें प्रथम 'नवरात्र' पर ही विचार करें। 'नवरात्र' में दो शब्द हैं। नव+रात्र। 'नव' शब्द संख्याका वाचक है और 'रात्र' का अर्थ है रात्रि-समूह—कालविशेष। इस 'नवरात्र' शब्दमें संख्या और कालका अद्भुत सम्मिश्रण है। यह 'नवरात्र' शब्द—**नवानां रात्रीणां समाहारः नवरात्रम्। रात्राह्नाहाः पुंसि** (पाणि० २।४।२९)

* इस श्लोकके पूर्वार्धका दूसरा अर्थ यह है कि वर्षारम्भ अर्थात् चैत्रके नवरात्रमें वार्षिकी वासन्ती नवरात्र एवं शरद्-ऋतु—आश्विनके नवरात्रमें जो मेरी महापूजा की जाती है, उसमें भी, यह 'च'कारसे व्यञ्जित है। शेष सब पूर्ववत् है। —(गुप्तवती दुर्गा ७ टीका)

तथा **संख्यापूर्वं रात्रम्** । (क्लीबम् लिं० सू० १३१)से बना है । यों ही **द्विरात्रं त्रिरात्रं पाञ्चरात्रं*** **गणरात्रम्** आदि द्विगु समासान्त शब्द हैं । इस प्रकार इस शब्दसे जगत्‌के सर्जन-पालनरूप अग्नीषोमात्मक द्वन्द्व (मिथुन) होनेकी पुष्टि होती है ।

नवरात्रमें अखण्ड दीप जलाकर हम अपनी इस 'नव' संख्यापर रात्रिका जो अन्धकार, आवरण छा गया है, अप्रत्यक्षतः उसे सर्वथा हटाकर 'विजया' के रूपमें आत्म-विजयका उत्सव मनाते हैं । ध्यान रहे कि यह 'नव' संख्या अखण्ड, अविकारी एकरस ब्रह्म ही है । आप 'नौ' का पहाड़ा पढ़िये और देखिये कि पूरे पहाड़ेमें नौ ही नौ अखण्ड ब्रह्मकी तरह चमकते रहेंगे—९, १८ (१+ ८=९), २७ (२+७=९), ३६ (३+६=९), ४५ (४+५=९) ५४ (५+४=९) ६३ (६+३=९), ७२ (७+२=९) और ८१ (८+१= ९) । अन्तमें यही ९ 'खं ब्रह्म' बन जाता है--९० ।

इसी प्रकार वर्षके सामान्यतः ३६० दिनोंको ९ की संख्यामें बाँट दें—भाग दें तो ४० नवरात्र हाथ लगेंगे । तान्त्रिकोंकी दृष्टिमें ४० संख्याका भी बड़ा महत्त्व है । ४० दिनोंका एक 'मण्डल' कहलाता है और कोई जप आदि करना हो तो ४० दिनोंतक बताया जाता है । कदाचित् हमारे ये नवरात्र वर्षभरके ४० नवरात्रोंकी एकांश उपासनार्थ कहे जा सकते हैं । वैसे देवीभागवतमें ४ नवरात्र ४० के दशमांशमें निर्दिष्ट हैं ही । दो तो अतिप्रसिद्ध ही हैं ।

जो कुछ हो, आप इन ४० नवरात्रोंमेंसे ० को अलग कर दें और केवल ४ को लें तो वर्षके ४ प्रधान नवरात्र बन जायँगे जो १—चैत्र, २—आषाढ़, ३—आश्विन, और ४—माघमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदूसे नवमीतक, जो हमारे चार 'पुरुषार्थों' (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के प्रतीक बन सकते हैं । इनमेंसे ४ को दोमें विलीन कर दें—विनियोगद्वारा अर्थको धर्ममें और कामको जिज्ञासारूप बनाकर मोक्षमें अन्तर्भूत कर दें तो पुरुषार्थोंके प्रतीक रूपमें दो ही सर्वमान्य नवरात्र हमें हाथ लगते हैं । १—वार्षिक या वासन्तिक नवरात्र (चैत्र शुक्ल प्रतिपदूसे नवमीतक) और २—शारदीय नवरात्र (आश्विन शुक्ल प्रतिपदूसे नवमीतक) ।

इन दोनों नवरात्रोंकी सर्वमान्यता और मुख्यता भी सकारण है । मानव-जीवनकी प्राणप्रद ऋतुएँ मूलतः ६ होनेपर भी मुख्यतः दो ही हैं—१. शीत ऋतु (सर्दी) और २. ग्रीष्म ऋतु (गर्मी) । आश्विनसे—शरद् ऋतुसे शीत तो चैत्रसे—वसन्तसे ग्रीष्म । यह भी विश्वके लिये एक वरद मिथुन (जोड़ा) बन जाता है । एकसे गेहूँ (अग्नि) तो दूसरेसे चावल (सोम)—इस प्रकार प्रकृतिमाता हमें इन दोनों नवरात्रोंमें जीवन-पोषक अग्नीषोम (अग्नि-सोम)के युगलका सादर उपहार देती है । यही कारण है कि ये दो नवरात्र—१. नवगौरी या परब्रह्म श्रीरामका नवरात्र और २. नवदुर्गा या सबकी आद्या महालक्ष्मीके नवरात्र सर्वमान्य हो गये । फिर भी शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेददृष्टिके उपासक इसी शारदीय नवरात्रपर निर्भर करते हैं और इसीलिये भगवतीने भी लेखारम्भके श्लोकोंमें इसी एक नवरात्रकी उपासनाकी फलश्रुति अपने वचनमें बतायी है ।

यहाँ एक शङ्का और हो सकती है कि शक्तिकी विशेष उपासनाके लिये नौ दिन ही क्यों नियत किये गये, इससे अधिक या कम क्यों नहीं ? एक तो यह कि दुर्गामाता नवविधा है, अतएव नौ दिन रखे गये । दूसरा, अभी नवरात्रको वर्षके दिनोंका ४०वाँ भाग बताया गया, वह भी हमें दुर्गापूजाके नौ ही दिन रखनेका समर्थन करता है ।

* पाञ्चरात्रादिमें विष्णुरात्र, हरिरात्र, ऋषिरात्र आदि पद तत्त्व-ज्ञानपरक अर्थमें भी प्रयुक्त हैं ।

तीसरा, शक्तिके गुण तीन हैं—सत्त्व, रजस, तम। इनको त्रिवृत् (तिगुना) करनेपर नौ ही हो जाते हैं। जैसे यज्ञोपवीतमें तीन बड़े धागे होते हैं और उन तीनोंमें प्रत्येक धागा तीन-तीनसे बना है, वैसे ही प्रकृति, योगमायाका त्रिवृत् गुणात्मक रूप नवविध ही होता है। महाशक्ति दुर्गाकी उपासनामें उसके समग्र रूपकी आराधना हो सके, इस अभिप्रायसे भी नवरात्रके नौ दिन रखे गये। ऐसी और भी युक्तियाँ हैं, पर लेख-गौरवके भयसे संयम ही ठीक होगा।

अब दूसरा विवेचनीय विषय 'नवार्ण' मन्त्र लें। भगवतीकी उपासनामें यह मन्त्र शक्त्युपासकोंका प्रधान आलम्बन है। इसका स्वरूप है—'ऐं ह्रीं क्लीं **चामुण्डायै विच्चे।'** मननसे त्राण करनेवाला मन्त्र अत्यन्त गोपनीय होता है, यह 'मन्त्र' शब्दका अर्थ ही बताता है। फिर भी साधकके लिये उसका इतना गोपनीय रहना भी उचित नहीं कि वह भी उसके अर्थसे अवगत न हो। यही कारण है कि योगदर्शनकार 'जप' शब्दका अर्थ करते हुए कहते हैं—**'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** (१।२८)। अर्थात् उस शब्दराशिके अर्थकी भावना ही उसका वास्तविक जप है। इसका फल भी उन्होंने आगे बताया है—**'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः'** अर्थात् अर्थ-भावनात्मक मन्त्र-जपसे इष्टदेवका साक्षात्कार होता है। तदनुसार नवार्ण मन्त्रके प्रारम्भिक तीन बीजोंका भाव देखें।

'ऐं' यह सरस्वती बीज है। इसमें दो ही अंश हैं **ऐ+विन्दु।** 'ऐ' का अर्थ सरस्वती है और **'विन्दु'** का अर्थ है दुःखनाशक। अर्थात् सरस्वती हमारे दुःखको दूर करें।

यहाँ भुवनेश्वरी बीजके व्याजसे महालक्ष्मी संस्तुत्य हैं—**'अत्र सद्रूपात्मकमहालक्ष्मीरूपस्य भुवनेश्वरीमन्त्रेण सम्बोधनमिति डामरव्याख्याभाष्यम्। अत्र कल्पित प्रपञ्चनिरासाधिष्ठानता प्रोक्ता।'**

'क्लीं' यह कृष्णबीज, कालीबीज एवं कामबीज माना गया है। इसमें क, ल, ई और विन्दु चार अंश हैं जिनके अर्थ हैं—कृष्ण या काम, सर्वश्रेष्ठ या इन्द्र या कमनीय, तुष्टि और सुखकर। अर्थात् कमनीय कृष्ण हमें सुख और तुष्टि-पुष्टि दें—**'अत्र आनन्दप्रधानमहाकाली-स्वरूपस्य कामबीजेन सम्बोधनम्।'**

(डामरतन्त्र० २०, नवार्णमन्त्र-भाष्य, पृष्ठ १७३ दुर्गा०स०)

ऐं ह्रीं क्लीं तीनों बीज मिलानेपर अर्थ होगा : महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती नामक तीन मूर्तियों-वाली। **'चामुण्डायै' 'चा'**=चित् **'मु'**=मूर्त सद्रूप **'ण्डा'** (न्दा) आनन्दरूप। **'चामुण्डायै'*** अर्थात् सत्-चित्-आनन्दरूपा चामुण्डादेवीको (यहाँ द्वितीयाके अर्थमें चतुर्थीका प्रयोग आर्ष है) **विच्चे—विद=विद्मः** अर्थात् जानते हैं, **च=चिन्तयामः**—अर्थात् चिन्तन करें, **'इ' (इमः)=गच्छामः**—जायँ, चेष्टा करें, व्यापृत हों, यागादि कर्म करें। क्रम बदलकर कहा जाय तो अर्थ होगा—पहले हम मनकी शुद्धिके लिये विविध पूजादि कर्म करें। तदनन्तर विक्षेपकी निवृत्ति और मनकी चञ्चलता मिटानेके लिये चिन्तन करें, ध्यान करें, उपासना करें। अधिक क्या कर्म, उपासना और ज्ञानरूप साधनोंसे ज्ञेय अपनी आत्मरूपा सच्चिदानन्दमयी मूर्ति आद्याशक्ति मायाको हम अविद्याका निरास करते हुए प्राप्त करें। डामरतन्त्र में कहा है—

निर्धूतनिखिलध्वान्ते नित्यमुक्ते परात्परे।
अखण्डब्रह्मविद्यायै चित्सदानन्दरूपिणीम्॥
अनुसंदध्महे नित्यं वयं त्वां हृदयाम्बुजे।
इत्थं विशदयत्येषा या कल्याणी नवाक्षरी।
अस्या महिमलेशोऽपि गदितुं केन शक्यते॥

विद+च+ई=अर्थात् नमस्कार करें और जानें। **'इ'** यह सम्बोधन है, अर्थात् हे **मातः!**।

* 'चामुण्डाशब्दो मोक्षकारणीभूतनिर्विकल्पवृत्ति निरूपपरः।' (नवार्णमन्त्रभाष्य)

भगवती मातङ्गी

ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लारावद्धमालां नियमितविलसच्चूलिकां रक्तवस्त्रां मातङ्गीं शङ्खपत्रां मधुमदविवशां [illegible]

किंवा 'ई' ऐसा पदच्छेद करें तो उसका अर्थ होगा— ईमहे=याञ्चामहे=अर्थात् हम तुमसे याचना करते हैं। ईमहे यह याच्ञा=अर्थक धातुमें पठित है (द्रष्टव्य—शुक्ल यजुर्वेद, महीधरभाष्य ३। २६। ४-५ और निघण्टु ३। ९। १)। भाव यह कि तुम मातासे तुम्हारे पुत्र हम लोग तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अटल भक्ति प्राप्त होनेकी प्रार्थना करते हैं।

पूरे मन्त्रका भावार्थ यह निकलता है कि 'हम महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती नामक तीन मूर्तियोंसे विशिष्ट तथा सत्-चित्-आनन्दात्मक ब्रह्मस्वरूप आद्या योगमायाको प्राप्त करनेके लिये पूजा एवं ध्यानद्वारा उसे जानते हैं।'[१] इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि यह शक्ति परब्रह्मात्मिका ही है। आप 'ब्रह्म' नामसे उसकी उपासना करें या 'शक्ति' नामसे, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा देवीचरणपद्मयोः।
अर्पिता तेन मे माता प्रीयतां पुत्रवत्सला॥

विजयावाहन

कड़क-कड़कके कृपाण करमें करके,
ले करके शोणित-चषक दौड़ती आ माँ!
मुख मोड़ती आ मानियोंका अभिमानियोंका,
छलबलियोंका छल-बल तोड़ती आ माँ!
जोड़ती आ अंबर लौं अंबरका ओर छोर,
क्रान्तिका रँगीला आग-राग छोड़ती आ माँ!
फोड़ती आ कपट-कटाह क्रूरों क्रोधियोंका,
जगमग जागृतिकी ज्योति जोड़ती आ माँ!

झाँस न तुझे है पाकशासनके शासनकी,
जब मृगशासन पै आसन जमाती तूँ!
धमक-धमकके धराधर अधीर होते,
तमक तमक ज्यों तमाम तन जाती तूँ!
बल-दल होता तब-तब दिग्गजोंका दल,
जब-जब कुंतल-कलाप लहराती तूँ!
कोर करती है जिस ओर तूँ कनीनिकाकी,
हहर-हहर हाहाकार है मचाती तूँ!

दीन हैं दरिद्र हैं दुखी हैं द्वन्द्वदुर्गमध्य,
वन्य आततायियोंके बीचमें बसे हैं मां!
दंभ-द्वेष-दावानलमें हैं दिन-रात दग्ध,
दलबंदियोंके दलदलमें फँसे हैं माँ!
डूबे पापपंकमें कलंकसे कृतघ्न हुए,
तेरी कृपाकोरको कलेजेसे कसे हैं माँ!
मंगलमयी! तुम्हारे सुतोंका अमंगल क्यों,
फिरसे जिला दे, कालसर्पसे डसे हैं माँ!

सूख उठा भक्ति-नद तेरा अंब! शक्तिभरा
फिर अनुरक्तिका सरस भर जल दे!
उछल उठा है फिर खलदल भूतलमें,
चण्डि! आज आकर सदलबल दल दे॥
मचल उठा है फिर दल महिषासुरका,
कालि! रिक्त रक्तपात्र निज, आज भर ले।
जय देवि! जय दे, कि हम जाग-जाग उठें,
बलदेवि! आज निज अविचल बल दे॥

भीषण भुजंगोंका वलय करमें हो कसा,
एक हाथ पात्र, दूजे हाथ खड्गवाली आ।
रुद्रमुद्रा-अंकित कुरक्तपंकपंकति-सी,
मेद-मज्जा-मोद-मत्त मुंडमालवाली आ!
शंकरी आ, जगकी लयंकरी भयंकरी आ,
करती कठोर अट्टहास मतवाली आ।
आ री, देवरंजिनी प्रभंजिनी अदेवनकी,
'श्रीश' सर्वमंगले! मनोज्ञे! महाकाली आ!!

—स्व० ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश'

महाविद्या-उपासना

विद्ययाऽमृतमश्नुते

जो विद्या और अविद्या—इन दोनोंको एक साथ जानता है, अर्थात् सही अनुष्ठान करता है, वह अविद्यासे मृत्युको पार करके विद्यासे अमृतत्व—देवात्मभाव—देवत्व प्राप्त कर लेता है। यहाँ अविद्याका अर्थ है—वैदिक काम्य-कर्म-ज्ञान। इसके द्वारा पाशविक काम्य-कर्म-ज्ञान (मृत्यु) को जीतना चाहिये। यही है अविद्यासे मृत्युको पार करना। वैदिक कर्म-काण्डसे जीवनमें उपासना आ जाती है। उपासनासे अमृतत्वकी प्राप्ति हो जाती है। यह उपासना ही विद्या* है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

(ईशावास्योपनिषद् ११)

ब्रह्मविद्या गायत्री और उनकी उपासना

संसारमें प्रत्येक जीवका लक्ष्य सुखप्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति ही देखा जाता है। देवता, दानव, मानव, यक्ष-गन्धर्व-किन्नर, भूत-प्रेत-पिशाच, कीट-पतंग और पशु-पक्षीतक यही चाहते हैं और तदर्थ निरन्तर विविध कर्म करते रहते हैं। एक कर्ममें अभीष्ट सुखलाभ और दुःखकी निवृत्ति न होनेपर वे दूसरे-तीसरे कर्ममें जुट जाते हैं। किंतु उन कर्मोंसे भी प्राप्त होनेवाले सुख चिरस्थायी नहीं होते और उनमें भी दुःखकी मात्रा संलग्न होनेसे अन्तर-में वे निरन्तर निरतिशय सुख तथा सर्वथा दुःख-निवृत्तिकी साध सँजोये रहते हैं एवं एक दिन वही साध लिये जीवन भी नामशेष कर बैठते हैं।

वस्तुतः दुःखका सर्वथा नाश और नित्य-महान् (भूमा) सुखकी प्राप्ति किस साधनसे होती है, इसका ज्ञान, तात्त्विक निर्णय जीवकी कामादिदोषदूषित बुद्धि कभी नहीं कर पाती। सच पूछें तो एकमात्र नित्यज्ञानके अखण्ड दीप वेदोंसे ही इसका ज्ञान, इसका निर्णय हो पाता है। वेदोंमें भी यद्यपि अनेक कर्मों एवं उपासनाओंका वर्णन पाया जाता है; तथापि द्विजातिके लिये नित्य-सुखकी प्राप्ति और सर्वथा दुःख-निवृत्तिरूप मोक्षका हेतु एकमात्र गायत्रीकी साधना ही मानी गयी है, जिसके करनेपर द्विज न केवल अपना, वरन् चारों वर्ण और चारों आश्रमोंका शाश्वत कल्याण कर पाता है। वैदिक गायत्री-मन्त्रका एक विशेष उत्स यह है कि वह मानसिक क्षेत्रपर प्रभाव डालता और सद्बुद्धि उत्पन्न करता है। शास्त्रोंमें लिखा है कि देवता पशु-पालककी तरह दण्ड लेकर किसीकी रक्षाके लिये पीछे नहीं चलते, वरन् जिसकी रक्षा करनी होती है, उसे सद्बुद्धि दे देते हैं।

गायत्रीमन्त्र सभी वेदोंका सार है। भगवत्पाद आद्य-शंकराचार्य अपने भाष्यमें लिखते हैं—'**तत्र गायत्रीं प्रणवादिसप्तव्याहृत्युपेतां शिरःसमेतां सर्ववेदसारमिति वदन्ति।**' अर्थात् 'प्रणव या ओङ्कारसहित सात व्याहृतिरूप शिरसे सम्पन्न गायत्रीको समस्त वेदोंका सार कहा जाता है।' महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जैसे पुष्पोंका सार मधु, दूधका सार घृत और रसका सार दूध है वैसे ही सर्व-वेदोंका सार गायत्री है—

यथा च मधु पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात् पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्रीसारमुच्यते॥

गायत्री-मन्त्रके प्रत्येक पद और अक्षर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यह मन्त्र प्रणवसहित तीन व्याहृतियोंके

* मुण्डकमें विद्याका अर्थ है ब्रह्म-साक्षात्कार और यहाँ विद्याका अर्थ है हिरण्यगर्भोपासना।

साथ जपा जाता है। (मन्त्रके प्रत्येक पदका अर्थ आगे दिया गया है) यहाँ प्रणवसहित तीन महाव्याहृतियों तथा प्रसङ्गतः शेष चार व्याहृतियोंपर ही प्रकाश डाला जा रहा है।

(ॐकार)-प्रणव-माहात्म्य—प्रणवका दूसरा नाम ॐकार है। 'अवतीति ओम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार सर्वरक्षक परमात्माका नाम 'ॐ' है। सम्पूर्ण वेद एकस्वरसे ओङ्कारकी महिमा गाते हैं, जैसा कि कठोपनिषद्में कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

अर्थात् धर्मराज नचिकेतासे कहते हैं कि नचिकेतः! सम्पूर्ण वेद जिस पदको कहते हैं, सम्पूर्ण तपके फलका जिसकी उपासनाके फलमें अन्तर्भाव है, जिसकी इच्छासे ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुझे संक्षेपमें कहता हूँ कि वह यह 'ॐ' पद है। अनेक उपनिषदों, स्मृतियों एवं पुराणोंके सैकड़ों पृष्ठ ओङ्कारकी महिमासे भरे पड़े हैं। यही कारण है कि सभी कर्मोंके आरम्भमें इसका प्रयोग बताया गया है। इस ओङ्कारके ऋषि ब्रह्मा और गायत्री छन्द बताये गये हैं। छान्दोग्य श्रुति (१। १। ९) कहती है— **'तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते। (तेन—ओंकारेण)!**

महाव्याहृति और व्याहृति—गायत्री-मन्त्रमें प्रथम तो 'भूः, भुवः, स्वः'—ये तीन व्याहृतियाँ लगायी जाती हैं, इनकी महिमाका भी वेदोंमें वर्णन है। एक बार प्रजापति लोकोंमें सार वस्तु जाननेकी इच्छासे तप (विश्वविषयक संयम) करने लगे। तपसे उन्होंने पृथिवीमें अग्नि-देवताको, अन्तरिक्षमें वायुदेवताको और स्वर्गमें आदित्यदेवताको सार देखा। पुनः तप (देवता-विषयक संयम) करनेपर अग्निमें ऋग्वेदको, वायुमें यजुर्वेदको और आदित्यमें सामवेदको सार देखा। फिर तप, (वेदविषयक संयम) करनेपर ऋग्वेदमें 'भूः' को, यजुर्वेदमें 'भुवः' को और सामवेदमें 'स्वः' व्याहृतिको देखा। इस प्रकार ये महाव्याहृतियाँ लोक, देव और वेदोंमें सारतम वस्तु हैं। 'भूः' का अर्थ है 'सत्' 'भुवः' का अर्थ है 'चित्' और 'स्वः' का अर्थ है 'आनन्द'। यही बात भगवत्पाद शंकराचार्य अपने भाष्यमें कहते हैं—

'भूरिति सन्मात्रमुच्यते। भुव इति सर्वं भावयति प्रकाशयति इति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते। सुव्रियते इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैर्व्रियमाणसुख-स्वरूपमुच्यते।'

इस प्रकार गायत्रीमन्त्रके प्रारम्भमें अनिवार्यतः लगाये जानेवाली प्रणवसहित तीन महाव्याहृतियोंकी महिमा सुस्पष्ट हो जाती है। अब प्राणायाममें प्रयुक्त इन तीनों महाव्याहृतियों-सहित शेष चार व्याहृतियोंके अर्थपर ध्यान दें, जिनका ऊपर प्रारम्भमें शांकरभाष्यमें **'सप्तव्याहृत्युपेताम्'** से उल्लेख किया गया है। चौथी व्याहृति **'महः'** है जो महत्तरका नाम है। पाँचवीं व्याहृति **'जनः'** है जो सर्वके कारणका नाम है। छठी व्याहृति **'तपः'** है जो सर्वतेजोमय परतेजका नाम है और सातवीं व्याहृति है **'सत्यम्'** जो सर्वबाधारहितको कहते हैं।

गायत्रीके स्थान—उपर्युक्त तीन महाव्याहृतियाँ गायत्रीके स्थान माने गये हैं और तन्त्र-ग्रन्थोंमें तीनोंको विभिन्न तीन-तीन रूपोंमें अभिहित किया गया है। यथा—

भूःकारश्च तु भूर्लोको भुवर्लोको भुवस्तथा।
स्वःकारः सुरलोकश्च गायत्र्याः स्थाननिर्णयः॥
इच्छाशक्तिश्च भूःकारः क्रियाशक्तिर्भुवस्तथा।
स्वःकारो ज्ञानशक्तिश्च भूर्भुवः स्वःस्वरूपकः॥

मूलपद्मश्च भूर्लोको विशुद्धश्च भुवस्तथा।
सुर्लोकः सहस्रारो गायत्रीस्थाननिर्णयः॥

गायत्री-मन्त्रस्थिति—(ॐसे अनिवार्यतः सम्पृक्त) भूःकार भूतत्त्व वा पृथ्वी है। साधनामार्गमें वह मूलाधार चक्र है। फिर जगन्माताके निम्नस्तरमें ब्राह्मी वा इच्छा-शक्ति-महायोनिपीठमें सृष्टितन्त्र है। 'भुवः' भुवर्लोक वा अन्तरिक्ष तत्त्व है। साधनामार्गमें विशुद्धचक्र है और महाशक्तिके मध्यस्तरमें पीनोन्नत पयोधरमें वैष्णवी वा क्रियाशक्ति-पालन वा सृष्टितत्त्व है। स्वःकार सुरलोकका स्वर्गतत्त्व है। साधनाके पथमें सहस्रार निर्दिष्ट चक्र एवं आद्याशक्तिके ऊर्ध्व वा उच्चस्तरमें या गौरी या ज्ञानशक्तिमें गौरी वा ज्ञानशक्ति संहार वा लयतत्त्व है। यही वेदमाता गायत्रीका स्वरूप तथा स्थान-रहस्य है।

यह गायत्रीमन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें पाया जाता है और अथर्ववेदमें पूरा गायत्र्युपनिषद् ही है।

शब्दब्रह्मरूपा आदिशक्ति—देवीभागवतने गायत्रीको भगवान् विष्णुकी आदिशक्ति कहा है—

आदिशक्तिमुपासीत गायत्रीं वेदमातरम्।
ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोः।

छान्दोग्योपनिषद् (३।१२।१) ने बताया है कि सभी स्थावर-जङ्गम पदार्थ वेदमाता गायत्रीकी बहिरङ्ग शक्तिके परिणाम हैं—**'गायत्र्या वा इदं सर्वं यदिदम्।** शतपथब्राह्मण (१४।६।२) और ऐतरेय ब्राह्मण (३।३।३४।३) तो गायत्रीको साक्षात् ब्रह्म ही बताते हैं—**'या गायत्री तद् ब्रह्मैव ब्रह्म वै गायत्री।'** इस प्रकार जब गायत्रीकी ब्रह्मरूपता श्रुति स्पष्ट बताती है तब उसकी महिमाके लिये अधिक लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं। ब्रह्मकी जितनी महिमा गायी गयी है, वह सारी गायत्रीको लागू होती है।

द्विजसे अविनाभावसम्बन्ध—द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके साथ तो गायत्रीका अविनाभाव, दूसरे शब्दोंमें चोली-दामनका सम्बन्ध है। शास्त्रोंद्वारा निर्धारित आयु-अवधिमें इन तीनोंको उपनयनपूर्वक गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा लेना अनिवार्य है। वह अवधि समाप्त होनेपर भी जो गायत्रीकी दीक्षा नहीं लेता, उसे 'व्रात्य'-जैसी बुरी गालीसे मनुने सम्बोधित किया है—**'सावित्रीपतिता व्रात्याः।'** अतएव प्रत्येक द्विजको विधिवत् दीक्षित हो नित्य गायत्री-मन्त्र जपना अनिवार्य है।

सबसे बढ़कर रक्षास्त्र—ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि बड़े-बड़े अस्त्र इसी गायत्री-मन्त्रके अनुलोम-विलोम-विधिसे तैयार किये जाते हैं जो स्थूल-सूक्ष्म सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको सफाया करके मानव-दानव—सबको पराजित कर देते हैं। सन्ध्यावन्दनके समय गायत्री-मन्त्रके उच्चारणके साथ दिया गया अर्घ्य ऐसे ही ब्रह्मास्त्रका रूप धारणकर सूर्यके सभी शत्रु राक्षसोंका सफाया करके उनको उदित होनेके लिए निष्कण्टक मार्ग बना देता है जैसा कि विश्वामित्र-स्मृति (१८) का वचन है—

असुराणां वधार्थाय अर्घ्यकाले द्विजन्मनाम्।
प्रोक्तं ब्रह्मास्त्रमेतद्धि सन्ध्यावन्दनकर्मसु॥

वाल्मीकि-रामायण (१।५५) के अनुसार जब विश्वामित्रने महर्षि वसिष्ठके वधार्थ शंकरके प्रसादसे प्राप्त ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्रादि पचासों दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया तब वसिष्ठने केवल ब्रह्मदण्डसे उन सब शस्त्रोंको व्यर्थ बना डाला। यह ब्रह्मदण्ड गायत्रीकी ही देन है। स्वयं विश्वामित्रने ही इस ब्रह्मदण्डके निर्माणार्थ चतुष्पदा गायत्री[1]-मन्त्रका प्रयोग बतलाया है—

ब्रह्मदण्डं तथा वक्ष्ये सर्वशस्त्रास्त्रनाशनम्।
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य परो रजसीति संयुतम्।
एतद्वै ब्रह्मदण्डं स्यात् सर्वशस्त्रास्त्रभक्षणम्॥
(विश्वा० स्मृ० १९-२०)

१. गायत्रीका चौथा पद 'परो रजसेऽसावदोम्' यह है, जिसे संन्यासी महात्मा लोग जपते हैं।

गायत्रीजपकी सर्वोत्कृष्टता—मनु (२ । ८३) ने बताया है कि जितने जप हैं, उनमें गायत्रीका जप सबसे बढ़-चढ़कर है। उससे बढ़कर कोई जप नहीं—'सावित्र्यास्तु परं नास्ति।' 'शंखसंहिता' ने भी इसी बातको दुहराया है—'न सावित्र्याः परं जाप्यम्।' महाभारत अनुशासन-पर्व (१५०—६९) में कहा है गायत्री-जप करनेवाले द्विजको कोई भय नहीं सताता। राजा, पिशाच, राक्षस, आग, पानी, हवा, साँप किसीका भय उसे नहीं होता—

न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसात्।
नाग्न्यम्बुपवनव्यालाद् भयं तस्योपजायते ॥

'अग्निपुराण' कहता है—'गायत्री-जपसे शीघ्र ही ऐहिक, आमुष्मिक उभयविध लाभ होता है—

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं गायत्रीजपतो भवेत्।

महाराज मनु (२ । ८२) तो स्पष्ट कहते हैं कि निरालस्य होकर निरन्तर तीन वर्षतक प्रतिदिन गायत्री-जप करनेवाला ब्रह्मरूप हो जाता है—

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥

जहाँ गायत्री-जप किया जाता है, उस घरमें (अकारण) काठको आग नहीं जलाती, वहाँ बच्चोंकी मृत्यु नहीं होती और न वहाँ साँप ही ठहरते हैं—

नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यत्र पठ्यते।
न तत्र बालो म्रियते न च तिष्ठन्ति पन्नगाः ॥
(महाभा० अनु० १५८ । ७०)

महाभारतमें ही यह भी कहा है कि गायत्रीका जप करनेवाला केवल अपना ही कल्याण नहीं करता, अपितु प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रममें वह सर्वविध शान्ति स्थापित करता है—

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः।
करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन् ॥

देवीभागवत (११ । २१ । ४) में तो यह भी कहा गया है कि जिस किसी भी मन्त्रका पुरश्चरण करना हो तो प्रथम १० हजार गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये—

यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत् ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि गायत्रीका जप मुक्तिके साथ सर्वविध भुक्ति—लौकिक भोग भी प्रदान करता है और साथ ही प्रत्येक प्रमुख धर्मकृत्यमें तथा द्विजकी दैनिक दिन-चर्याका वह अभिन्न, अनुपेक्ष्य अङ्ग है।

मन्त्रार्थ-ज्ञानकी आवश्यकता

अनिवार्य दैनिक गायत्री-मन्त्र-जपके अतिरिक्त कोई समय निकालकर गायत्रीकी उपासना कर अद्भुत रसा-स्वादनका आनन्द लेना चाहिये। अर्थज्ञानशून्य जप समग्र लाभ नहीं देता। रसास्वादनके लिये तथा पूर्णफल-की प्राप्तिके लिये मन्त्रके अर्थकी जानकारी नितान्त अपेक्षित है। अतः भिन्न-भिन्न रुचिके लिये गायत्री-मन्त्रके भिन्न-भिन्न अर्थ दिये जाते हैं। योगियाज्ञवल्क्यका गायत्रीभाष्य सर्वोत्तम है। शास्त्र बतलाता है कि अर्थका अनुसंधान करते हुए जप करना चाहिये—

प्रजपेद् ब्राह्मणो धीमांस्तदर्थस्यानुचिन्तया।
(कण्वस्मृति १८५)

गायत्रीके दो प्रकारके अर्थ—सायणने गायत्रीके आध्यात्मिक और आधिदैविक दो अर्थ किये हैं। आधिदैविक पक्षमें इस मन्त्रके शिव, शिव-शक्ति, सूर्य आदि देवतापरक अर्थ होते हैं। सायणने सूर्य-देवतापरक दो अर्थ किये हैं। मन्त्रमें इनका नाम सविता आया भी है। ये प्रत्यक्ष और जाग्रत् देवता हैं। (उपासनामें उपयोगी होनेसे सूर्यपरक दोनों अर्थ यहाँ दिये जाते हैं।)

(क) आधिदैविक अर्थ (सूर्यपरक)—(१) (ॐ) [वे], कार्यब्रह्म सूर्य, (भूः) पृथिवी-लोक, (भुवः) अन्तरिक्षलोक और (स्वः) स्वर्ग-

लोकमें कार्यकारी हैं, (यः) जो सूर्यदेव, (नः) हमारे (धियः) कर्मोंको [हमारे पास] (प्रचोदयात्) प्रेरित करे, (सवितुः) स्रष्टा और (देवस्य) प्रकाशस्वरूप सूर्यदेवके (तत् वरेण्यं भर्गः) प्रसिद्ध उपासनीय तेजका (धीमहि) हम ध्यान कर रहे हैं।

(२) (यः) जो सूर्यदेवता (नः) हमारे पास करनेके लिये (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) भेजते रहते हैं, उन (सवितुः देवस्य) सवितादेवके प्रसादसे (तत् वरेण्यं भर्गः) प्रसिद्ध वरणीय फल अन्न आदिको (धीमहि) हम धारण करते हैं।

(ख) आध्यात्मिक अर्थ (सामान्य अर्थ)—(ॐ) परमात्मा (भूः) 'सत्'-स्वरूप (भुवः) 'चित्'-स्वरूप (स्वः) 'आनन्द'-स्वरूप है, उस (सवितुः देवस्य) जगत्के स्रष्टा परमेश्वरके (तत् वरेण्यं भर्गः) उस उपासनीय प्रकाशका (धीमहि) हमलोग ध्यान कर रहे हैं। (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धिकी वृत्तियोंको (प्रचोदयात्) उत्तमताकी ओर प्रेरित करे।

(विशेष अर्थ) जिन लोगोंने भगवान्के साथ प्रेमका कोई-न-कोई सम्बन्ध जोड़ रखा है, उनके लिये भी कुछ अर्थ दिये जाते हैं। रुचिके अनुकूल होनेके कारण इन अर्थोंसे उनके हृदयको मधुर पदार्थ मिलेगा और साथ ही उनकी उपासनामें भी प्रगति होगी।

गायत्री-मन्त्रमें जो 'देव' शब्द आया है, वह 'दैवादिक 'दिवु' धातुसे बना है। 'दिवु' धातुके क्रीडा, विजिगीषा आदि बहुत-से अर्थ होते हैं। अग्निपुराण (२१६–१५) ने गायत्री-मन्त्रमें आये 'देव' शब्दका 'क्रीडा करनेवाला' अर्थ किया है—'स्वर्गाद्यैः क्रीडते यस्मात्।' योगी याज्ञवल्क्यने भी यहाँ 'देव' शब्दका यही अर्थ किया है—'दीव्यति-क्रीडते यस्मात्।'

'दीव्यति-क्रीडतीति देवः' यह देवशब्दकी व्युत्पत्ति है। इस तरह 'देवस्य' का अर्थ होता है 'क्रीडा करनेवाला'। वेदान्तमतसे सृष्टिकी रचनामें भगवान्का एकमात्र प्रयोजन है क्रीडा, खेल, लीला। कण्वस्मृति (२०४ । ६) का कथन है कि स्वयं ब्रह्मकी गायत्रीके रूपमें जो अभिव्यक्ति हुई है, उसके मूलमें भी यही लीला है—

> लीलिङ्गेन श्रुतौ नित्यं लीलया व्यवह्रीयते।
> लीलिङ्गव्यवहारोऽयं यथा भवति तत् तथा॥

खेलोंमें सबसे श्रेष्ठ खेल प्रेमका होता है। भगवान्में वैर-वैमनस्य करना भी खेल है, किंतु यह खेल असुरोंको सुहाता है जो अनुकरणीय नहीं है।

प्रेमपरक अर्थ—(सवितुः) लीलाके लिये सृष्टि रचनेवाले (देवस्य) लीला-विहारीके (तत् वरेण्यं भर्गः) स्वयंवरमें जैसा चुनकर वरण किया जाता है, वैसे वरणीय उस (लीलं महः)को (धीमहि) ध्यानमें लाते जा रहे हैं और उनको अङ्ग-अङ्गमें समेटते जा रहे हैं, (यः) जो लीलाविहारी (नः) हम प्रेम-पीड़ितोंकी (धियः) बुद्धिवृत्तियोंको अपनी ही लीलाके रसमें (प्रचोदयात्) लगाये रखे।

आदिशक्तिपर विश्वास कीजिये। आदिशक्तिने अपना नाम गायत्री इसलिये रखा है कि अपने उपासकोंको अपनी रक्षाका विश्वास हो जाय। 'गायन्तं त्रायत इति गायत्री' अर्थात् जो गायत्रीका जप करते हैं, माता गायत्री उनकी रक्षा करती है।

वेदोंद्वारा भी उपास्य—चिन्मयी गायत्रीसे वेदोंकी उत्पत्ति हुई है, अतः गायत्रीको 'वेदजननी' और 'वेदमाता' कहा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिदिन गायत्रीका ध्यान और जप करते ही रहते हैं। वेद भी गायत्रीकी उपासनामें सतत लगे ही रहते हैं,

१—'गायत्री वेदजननी' (याज्ञवल्क्यस्मृति) तथा 'गायत्री वेदमातरम्' (दे० भा० ११ । २६ । ६)

अतः गायत्रीको 'वेदोपास्या' (देवीभा० ११ । १६ । १२६) भी कहते हैं—

> ब्रह्माद्योऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ।
> वेदा जपन्ति तां नित्यं वेदोपास्यां ततः स्मृता ॥

जब तीनों देव और वेद भी गायत्रीके जपमें संलग्न हैं, तब मनुष्योंके लिये इसका जपना कितना आवश्यक है, यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है ।

गायत्रीमन्त्रका स्वरूप—गायत्रीमन्त्रमें तीन पाद होते हैं और प्रत्येक पादमें आठ अक्षर होते हैं ।

> त्रिपात्त्वं स्पष्टमेव स्यात् 'तस्य' 'भर्गो' धियादिभिः ॥
> (मार्कण्डेयस्मृति)

पहला पाद—तत्सवितुर्वरेण्यं । दूसरा पाद—भर्गो देवस्य धीमहि । तीसरा पाद—धियो यो नः प्रचोदयात् । दूसरे और तीसरे पादमें आठ-आठ अक्षर स्पष्ट हैं । किंतु पहले पादमें सात ही अक्षर दीखते हैं; फिर आठ अक्षर कैसे ? इस प्रश्नका समाधान मार्कण्डेय-स्मृतिमें बताया गया है कि सातवाँ वर्ण जो 'ण्य' है, उसे गिनते समय दो वर्ण गिनना चाहिये । अर्थात् 'ण्य' को 'णि+य' समझना चाहिये । इस तरह आठ अक्षर पूरे हो जाते हैं । किंतु उच्चारण 'ण्य' ही करना चाहिये । यथा—

> अत्र यः सप्तमो वर्णः स तु संयुक्ताक्षरः ।
> णिकारश्च यकारश्च द्वावित्येव प्रतीयते ॥
> ज्ञात्वा तु वैदिकैः सर्वैः जप्यो वेदे यथैव वा ॥
> (मा० स्मृ०)

उपर्युक्त तीनों पादोंसे युक्त गायत्री-मन्त्र यजुर्वेद (३६ । ३५), सामवेद (१४६२) तथा ऋग्वेद (३ । ६२ । १०) में उपलब्ध है । किंतु जप इतने ही मन्त्रका नहीं होता । शास्त्रोंने जपके समय तीन और प्राणायामके समय सात महाव्याहृतियोंको प्रारम्भमें जोड़नेका आदेश किया है । महाव्याहृतियोंके पूर्व 'ॐ'को जोड़ना भी आवश्यक है ।[1] अतः मन्त्रका स्वरूप यह है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

गायत्रीके तीन रूप

प्रातः, मध्याह्न और सायाह्नके भेदसे गायत्रीके तीन रूप बताये गये हैं । इन कालोंमें माताके ध्यान भी इसी प्रकार करने चाहिये ।

प्रातर्ध्यान—ॐ प्रातर्गायत्री रविमण्डलमध्यस्था, रक्तवर्णा, द्विभुजा, अक्षसूत्रकमण्डलुधरा, हंसासन-समारूढा, ब्रह्माणी, ब्रह्मदैवत्या, कुमारी ऋग्वेदो-दाहृता ध्येया ।

अर्थात् प्रातःकालमें गायत्रीका कुमारी, ऋग्वेदरूपिणी, ब्रह्मरूपा, हंसवाहना, द्विभुजा, रक्तवर्णा, अक्षसूत्रकमण्डलु-हस्ता तथा सूर्यमण्डलमध्यस्थाके रूपमें ध्यान करना चाहिये ।

मध्याह्न-ध्यान—ॐ मध्याह्ने सावित्री रविमण्डल-मध्यस्था, कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, शङ्खचक्र-गदापद्महस्ता, युवती, गरुडारूढा, वैष्णवी, विष्णु-दैवत्या यजुर्वेदोदाहृता ध्येया ।

अर्थात् मध्याह्नके समय गायत्रीका युवती, यजुर्वेद-स्वरूपिणी, विष्णुरूपा, गरुडासना, कृष्णवर्णा, त्रिनेत्रा, चतुर्भुजा, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी तथा सूर्यमण्डल-मध्यस्थाके रूपमें ध्यान करें ।

सायाह्न-ध्यान—ॐ सायाह्ने सरस्वती, रविमण्डल-मध्यस्था, शुक्लवर्णा, चतुर्भुजा, त्रिशूलडमरुपाश-पात्रकरा, वृषभारूढा, वृद्धा, रुद्राणी, रुद्रदैवत्या सामवेदोदाहृता ध्येया ।

अर्थात् सायाह्नमें गायत्रीका वृद्धा, सामवेदस्वरूपिणी, रुद्ररूपा, वृषभासना, शुक्लवर्णा, चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, डमरू, पाश और पात्रधारिणी तथा रविमण्डलमध्यस्थाके रूपमें ध्यान करें ।

संध्या और गायत्रीका गहरा सम्बन्ध

जप करनेसे पहले सन्ध्योपासन कर लेना आवश्यक

१—ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च । चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत् ततः ॥
(दे० भा० ११ । १६ । १०५)

होता है। बिना संध्योपासन किये गायत्रीका नित्य-जप नहीं होता। कण्वस्मृतिमें बतलाया गया है कि संध्या-पूर्वक ही सब कृत्य सिद्ध होते हैं—'सर्वकृत्यं संध्यैव सम्यगेव सुसाधितम्' (१९९)। यदि एक साथ सब लोग संध्या बंद कर दें तो सब लोकोंका नाश हो जायगा—

संध्याभावे सर्वलोकविनाशः स्यत एव हि।
(कण्वस्मृति २००)

समस्त लोकोंकी सुस्थितिके कारण संध्याको जो द्विज नहीं करता, वह सचमुच बहुत बड़ा पाप करता है। मनुने चेतावनी दी है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संध्योपासन नहीं करता, उसका बहिष्कार कर देना चाहिये—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥
(मनुस्मृति २। १०३)

संध्या किये बिना किसी सत्कर्मकी योग्यता ही नहीं आती, यहाँतक कि 'नाम'-जपकी भी योग्यता नहीं आती।

देवीभागवत (११। १७। १०)का कथन है कि संध्या ही गायत्री है और वह गायत्री तथा संध्या दो रूप लेकर हमारे समक्ष उपस्थित हुई है। संध्या और गायत्री दोनों सच्चिदानन्दरूपा हैं—

(क) या संध्या सैव गायत्री द्विधाभूता व्यवस्थिता।
(ख) या संध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी॥

नित्यजप-विधि

संध्योपासनका पूर्व अंश पूराकर गायत्री-मन्त्रसे सूर्यार्घ्य देकर सूर्योपासना कर लें। बादमें निम्नलिखित विधिसे षडङ्गन्यास करें[1]—

षडङ्गन्यास—सूर्योपस्थानके बाद निम्नलिखित एक-एक मन्त्र बोलते हुए दाहिने हाथसे उस-उस अङ्गका स्पर्श करते जायँ—

(१) ॐ हृदयाय नमः (हृदयमें हथेलीसे स्पर्श करें)।

(२) ॐ भूः शिरसे स्वाहा (सिरमें चारों अङ्गुलियोंके पोरसे स्पर्श करें)।

(३) ॐ भुवः शिखायै वषट् (शिखामें अँगूठसे स्पर्श करें)।

(४) ॐ स्वः कवचाय हुम् (हाथोंको मोड़कर पाँचों अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दायेंसे बाँयें कंधेका और बाँयेंसे दाँयें कंधेका स्पर्श करें)।

(५) ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्राभ्यां वौषट् (मध्यमा और तर्जनीसे नेत्रोंका स्पर्श करें)।

(६) ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् (बाँयी हथेलीपर दायें हाथकी मध्यमा एवं तर्जनीसे तीन ताली बजाकर बाँयी ओरसे प्रारम्भ कर अपनी चारों तरफ चुटकी बजायें)।

---

[1] १—सम्प्रदायान्तरमें प्रणव सहित समग्र गायत्रीमन्त्रसे भी षडङ्गन्यास किये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं—
ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों अँगूठोंका स्पर्श करें)।
वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः (दोनों तर्जनी अङ्गुलियोंका स्पर्श करें)।
भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः (दोनों मध्यमा अङ्गुलियोंका स्पर्श करें)।
धीमहि अनामिकाभ्यां नमः (दोनों अनामिका अङ्गुलियोंका स्पर्श करें)।
धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः (दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियोंका स्पर्श करें)।
प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (दोनों हथेलियोंका बाहर-भीतर स्पर्श करें)।
ॐ तत्सवितुः हृदयाय नमः (हृदयका स्पर्श करें)।
वरेण्यं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श करें)।
भर्गो देवस्य शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श करें)।
धीमहि कवचाय हुम् (पाँचों अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दायेंसे बाँयें कंधेका और बाँयेंसे दायें कंधेका स्पर्श करें।
धियो योनः नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अँगुलियोंसे दोनों नेत्रों और भौंहोंके मध्य स्पर्श करें)। प्रचोदयात् अस्त्राय फट् (बाँयीं हथेलीपर दायें हाथकी मध्यमा एवं तर्जनीसे तीन ताली बजायें)।
भूर्भुवः स्वः इति दिग्बन्धः (बाँयीं ओरसे प्रारम्भ कर सिरके चारों ओर चुटकी बजायें)।

गायत्रीका आवाहन—इसके बाद नीचे लिखा विनियोग पढ़ें—

तेजोऽसि धामनामासीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबुष्णिहौ छन्दसी, सविता देवता, गायत्र्यावाहने विनियोगः ।

अब निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर माता गायत्रीका नम्रताके साथ आवाहन करें—

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि । धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ।(यजु० १ । ३१)

गायत्रीका उपस्थान—नीचे लिखा विनियोग पढ़ें—

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता, गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ।

अब नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर गायत्री माताको प्रणाम करें—

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि, नहि पद्यसे, नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत् ॥

(बृहदारण्यक-उप० ५ । १४ । ७)

शाप-विमोचन

देवीभागवत (११ । १६ । ७२-७४)में लिखा है कि शापविमोचनके लिये अच्छी तरहसे यत्न करना चाहिये । यह भी लिखा है कि ब्रह्मा, विश्वामित्र और वसिष्ठके स्मरण-मात्रसे शापका विमोचन हो जाता है ।

ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत् ।
ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापाद् विमुच्यते ।
विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः ।
वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति ॥

गायत्री-पटलमें इसका विस्तार द्रष्टव्य है ।

तीनों शापोंके विमोचनके लिये तीनों ऋषियोंका स्मरण करते हुए निम्नलिखित वाक्य बोले—

ॐ देवि गायत्रि त्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव ।
ॐ देवि गायत्रि त्वं विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव।
ॐ देवि गायत्रि त्वं वसिष्ठशापाद्विमुक्ता भव।

माता गायत्रीका ध्यान

इसके बाद माता गायत्रीका ध्यान करना चाहिये—

भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम् ।
रक्ताम्बुजासनासीनां रक्तगन्धानुलेपनाम् ॥
रक्तमाल्याम्बरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम् ।
त्रिनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुण्डिकाञ्चैव बिभ्रतीम्॥
सर्वाभरणसंदीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम् ।
हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम् ॥
चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम् ।
अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत्॥
ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं साङ्ख्यायनं स्मृतम् ।
आदित्यमण्डलान्तःस्थां ध्यायेद् देवीं महेश्वरीम्॥

(दे० भा० ११ । १६ । ९४-९७)

चौबीस मुद्राएँ

अब जपके पूर्वमें चौबीस मुद्राएँ बनानी चाहिये । इससे देवी प्रसन्न होती हैं—

सम्मुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पञ्चकं तथा ॥
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सम्मुखोन्मुखम् ॥
विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥

(देवीभा० ११ । १६ । ९९-१०१)

गायत्रीजप—इसके बाद गायत्रीजपके लिये निम्नलिखित तीन विनियोग पढ़े—

'ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिः, दैवी गायत्री छन्दः, परमात्मा देवता, जपे विनियोगः ।' 'ॐ तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्या देवताः, जपे विनियोगः । ॐ तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिः, गायत्री छन्दः, सविता देवता, जपे विनियोगः ।'

अब अर्थका अनुसंधान करते हुए गायत्री-मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार जप अवश्य करें। विवशतामें १० बार। जपके लिये रुद्राक्षकी माला श्रेष्ठ होती है। करमालासे भी जप होता है।

शक्तिमन्त्रकी करमाला

दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंको एक समान सटाकर हथेलीकी ओर कुछ झुकायें और अँगूठा रखकर जप करें। अँगूठा पोरपर न रखकर बीचमें रखें। पोरकी कोरपर अँगूठा रखना निषिद्ध है। इसी तरह अङ्गुली-के अग्रभाग अर्थात् नखके पास भी अँगूठा रखना निषिद्ध है। मेरुका उल्लङ्घन भी निषिद्ध है। दाहिने हाथकी अनामिकाकी मध्य रेखाके नीचे अँगूठा रखकर जप प्रारम्भ करें। फिर कनिष्ठिकासे मध्यमाके ऊपर पहुँचे, इस ऊपरी रेखाके नीचेकी ओर होते हुए तर्जनी-के नीचेकी पहली रेखाके ऊपर अँगूठा रखें।

अनामिकामध्यरेखामारभ्यानुक्रमेण च।
तर्जन्यादिगतान्ते च अक्षमाला करे स्थिता॥

(संध्याभाष्य)

यह एक करमाला हुई। तर्जनीका मध्य तथा अग्र-पर्व सुमेरु है। इसका लङ्घन नहीं होना चाहिये। अँगूठेका नीचेकी ओरसे फिर अनामिकाके मध्यरेखासे दूसरी-तीसरी करमालाका जप करें। इस तरह दस करमाला करनेपर एक सौ संख्या पूरी होती है। एक सौ संख्यामें शेष ८ संख्या पूरी करनेके लिये नयी विधि अपनानी चाहिये—अनामिकाके मध्य पर्वपर अँगुली रखें और इसे एक गिनें। फिर पहलेकी तरह कनिष्ठिकाके नीचेकी ओरसे ऊपरको बढ़े, अनामिकाके अगले भागपर अँगूठा रखें। फिर मध्यमाके अग्रभागपर रखकर उसीके नीचे दो जगहोंपर रखें। इस तरह आठ संख्या होगी और कुल मिलाकर १०८ संख्या हुई।

मन्त्र जपनेकी विधि—अक्षर और अर्थका अनुसंधान करते हुए ध्यान लगाकर मनसे मन्त्रका उच्चारण करें। न जीभ हिले और न ओंठ। मस्तक, कण्ठका हिलना भी निषिद्ध है। दाँत भी न दीखें। यथा—

ध्यायेत् मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत्।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥

जिस हाथसे जप किया जाय उसे कपड़ेसे छिपा लेना चाहिये। गोमुखियोंमें हाथ डालकर जप करना प्रशस्त है। जप करते समय हिलना, ऊँघना, बोलना और मालाका गिराना निषिद्ध है। यदि बोलना पड़ जाय तो भगवान्-का स्मरणकर पुनः जप करना चाहिये। मालाको दाहिने हाथकी मध्यमापर रखें और तर्जनी बिल्कुल अलग रहे। अँगूठेसे दाना सरकावें। पैरपर पैर चढ़ा-कर जप न करें।

गायत्री-मन्त्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजु० ३६।३)

विनियोगके बाद इस मन्त्रका जप करें।

जपके बादकी आठ मुद्राएँ

सुरभिर्ज्ञानवैराग्ये योनिः शङ्खोऽथ पङ्कजम्।
लिङ्गनिर्वाणमुद्राश्च जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्॥

गायत्री-जपके बाद उपर्युक्त आठ मुद्राएँ दिखलायें। जपके बाद गायत्री-कवच और गायत्री-हृदयका पाठ करना एवं गायत्रीका तर्पण करना विशेष लाभप्रद है। पुरश्चरणमें तो इन्हें अवश्य करें।

प्रदक्षिणामन्त्र—इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बायीं ओरसे प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा करें—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतान्यपि।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥

क्षमा-प्रार्थना

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत् सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

अर्पण—क्षमा-प्रार्थना करनेके बाद नमस्कार कर नीचे लिखा वाक्य पढ़कर जप श्रीभगवान्‌को अर्पण कर दे—'अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपकर्मणा भगवान् प्रीयताम् न मम। ॐ तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु।'

विसर्जन—निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर गायत्रीमाताका विसर्जन करे—

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञातो गच्छ देवि यथासुखम्॥

ज्ञातव्य है कि इन चैतन्य शक्तियोंमेंसे किसी शक्तिकी अपनेमें कमीका अनुभव होता हो तो उस शक्तिकी देवताकी गायत्रीका जप भी मूल गायत्री-जपके साथ करनेसे लाभ होता है। वैसे सभी शक्तियोंके देवोंकी गायत्रियोंके साथ मूल गायत्रीमन्त्रका जप विशेष सिद्धिप्रद बताया गया है। सभी देवोंकी गायत्रियाँ होती हैं और वे गायत्री छन्दमें ग्रथित होनेसे उन्हें 'गायत्री' कहा जाता है। गायत्री छन्दमें आठ-आठ अक्षर और तीन पाद हुआ करते हैं।

गायत्रीके विभिन्न प्रयोग—धर्मशास्त्र एवं पुराणोंमें गायत्रीकी उपासनाके अनेक प्रकार वर्णित हैं—१. प्रणवसे सम्पुटित, २. छः ओङ्कारोंसे संयुक्त। ३. शास्त्रोंमें पाँच प्रणवोंसे संयुक्त भी गायत्रीजपका विधान पाया जाता है। जितना जप करना अभीष्ट हो, उसके अष्टमांश गायत्रीमन्त्रके चतुर्थपादका भी जप आवश्यक बताया गया है। गायत्रीका यह चतुर्थ पाद है—'परो रजसेऽसावदोम्।' इस पादके जपके समय ब्रह्मदेवका ध्यान विशेष फलप्रद होता है। इस चतुर्थ पादका जप प्रायः संन्यासी ही करते हैं, किंतु बालब्रह्मचारी और मोक्षकामीके लिये भी यह कहीं-कहीं विहित है। एक सम्पुटित और षडोङ्कारा दो गायत्रीमन्त्रोंका जप केवल बालब्रह्मचारीके लिये ही विहित है।

गायत्री-पुरश्चरण—किसी भी मन्त्रके अक्षरोंकी संख्यामें उतने लाख जप करनेपर साधारणतः पुरश्चरण होता है। गायत्रीके चौबीस अक्षर होनेसे चौबीस लाख जप करनेपर गायत्री-पुरश्चरण सम्पन्न होता है। इसके लिये स्थानशुद्धि प्रथम अपेक्षित है। देवालय या नदी-तीर प्रशस्त है। ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे शुभ मुहूर्तमें ही इसका प्रारम्भ करना चाहिये। पुरश्चरण शुक्लपक्षमें प्रारम्भ करना चाहिये। उसके प्रारम्भमें विधिपूर्वक वैदिक ब्राह्मणद्वारा गणेशाम्बिका-पूजन, स्वस्तिवाचन, नान्दीश्राद्धादि समस्त शुभ-कार्यारम्भके कृत्य करने चाहिये। पश्चिमाभिमुख होकर जप करना चाहिये। प्रारम्भके दिनसे समाप्तितक समान संख्यामें जप प्रशस्त है। जपके पश्चात् घृत, खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प, यव तथा मधुमिश्रित हविर्द्रव्यसे (साकल्से) जपका दशांश हवन अवश्य करना चाहिये। गायत्रीपुरश्चरण-पद्धतिके अनुसार गायत्रीका पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर उस मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है और भगवती गायत्री साधककी साधना, भक्ति और श्रद्धाके अनुपातमें उसे प्रत्यक्ष दर्शन देती और उसके सभी अभीष्ट पूर्ण करती है। सद्बुद्धिकी प्रेरणाकी अपेक्षासे भरे हुए गायत्री-मन्त्रसे साधकको सद्बुद्धि प्राप्त होकर उसका शाश्वत कल्याण होता है, यह पृथक् बतानेकी आवश्यकता ही नहीं। हम वेदमाता गायत्रीसे यही विनम्र प्रार्थना करते हैं कि वे दुर्बुद्धिको मिटाकर सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।

गायत्रीके अक्षरोंकी चैतन्य-शक्तियाँ और उनके कार्य*

शास्त्रोंमें गायत्रीमन्त्र-गत चौबीस अक्षरोंके चौबीस देव और उनकी चैतन्य शक्तियाँ तथा उनके कार्योंका उल्लेख पाया जाता है, जो क्रमशः निम्नलिखित हैं—

गायत्री-वर्ण	देवता	शक्ति	कार्य
१– तत्	गणेश	सफलता	विघ्नहरण, बुद्धिवृद्धि।
२– स	नरसिंह	पराक्रम	पुरुषार्थ, पराक्रम, वीरता, शत्रुनाश, आतंक, आक्रमणसे रक्षा।
३– वि	विष्णु	पालन	प्राणियोंका पालन, आश्रित-रक्षा।
४– तुः	शिव	निश्चलता	आत्मपरायणता, मुक्तिदान, अनासक्ति, आत्मनिष्ठा।
५– व	श्रीकृष्ण	योग	क्रियाशीलता, कर्मयोग, सौन्दर्य, सरलता।
६– रे	राधा	प्रेम	प्रेम-दृष्टि, द्वेषसमाप्ति।
७– णि	लक्ष्मी	धन	धन, पद, यश और योग्य पदार्थकी प्राप्ति।
८– यं	अग्नि	तेज	उष्णता, प्रकाश, सामर्थ्यवृद्धि, तेजस्विता।
९– भ	इन्द्र	रक्षा	भूत-प्रेतादि अनिष्टाक्रमणोंसे रक्षा, शत्रु-चोरसे रक्षा।
१०– र्गो	सरस्वती	बुद्धि	मेधावृद्धि, बुद्धिपावित्र्य, चातुर्य, दूरदर्शिता, विवेकशीलता।
११– दे	दुर्गा	दमन	विघ्नोंपर विजय, दुष्टदमन, शत्रुसंहरण।
१२– व	हनुमान्	निष्ठा	कर्तव्यपरायणता, निर्भयता, ब्रह्मचर्य-निष्ठा।
१३– स्य	पृथिवी	गम्भीरता	क्षमाशीलता, भारवहन-क्षमता, सहिष्णुता।
१४– धी	सूर्य	प्राण	प्रकाश, आरोग्य-वृद्धि।
१५– म	श्रीराम	मर्यादा	तितिक्षा, अविचलता, मर्यादापालन, मैत्री।
१६– हि	श्रीसीता	तप	निर्विकारता, पवित्रता, शील, मधुरता।
१७– धि	चन्द्र	शान्ति	क्षोभ, उद्विग्नतादिका शमन, प्रसाद।
१८– यो	यम	काल	मृत्युसे निर्भयता, समय-सदुपयोग, स्फूर्ति, जागरूकता।
१९– यो	ब्रह्मा	उत्पादन	उत्पादनवृद्धि, संतानवृद्धि।
२०– नः	वरुण	रस	भावुकता, आर्द्रता, माधुर्य।
२१– प्र	नारायण	आदर्श	महत्त्वाकाङ्क्षा-वृद्धि, दिव्यगुणस्वभाव-लाभ, उज्ज्वल चरित्र।
२२– चो	हयग्रीव	साहस	उत्साह, वीरता, निर्भयता, विपदाओंसे जूझनेकी वृत्ति।
२३– द	हंस	विवेक	उज्ज्वल कीर्ति, आत्मतुष्टि, दूरदर्शिता, सत्संगति।
२४– यात्	तुलसी	सेवा	सत्यनिष्ठा, पातिव्रत्यनिष्ठा, आत्मशान्ति, परकष्ट-निवारण।

* यहाँके अन्ततकके लेखांश पत्रकार श्रीसंतोष जोषीके लेखसे साभार।

भगवान् शंकरकी गायत्री-उपासना

(श्रीभैरूसिंह राजपुरोहित)

सर्वसमर्थ माँ गायत्रीकी साधना सार्वभौम और सार्वजनीन है। गायत्री-मन्त्रमें निहित प्रेरणाएँ प्रत्येक कल्याणकामी व्यक्तिके हितसम्पादनमें पूर्णतया सक्षम हैं। किसी भी धर्म-सम्प्रदायको माननेवाला व्यक्ति इस मन्त्रकी शिक्षाओंके प्रकाशमें अपना पथ प्रशस्त कर सकता है, अपने लक्ष्यतक पहुँच सकता है। आचार्य शंकरके अनुसार गायत्री-मन्त्रकी सर्वोत्कृष्टताके असंख्य प्रमाण हैं। किंतु 'गायत्री-मञ्जरी'में देवोंके देव महादेवको गायत्री-साधनासे सर्वज्ञता और सर्वेश्वरता पानेका शिव-पार्वती-संवादात्मक वर्णन गायत्रीके गौरवका स्पष्ट निदर्शन है।* वह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

एक बार कैलास पर्वतपर विराजमान भगवान् शिवसे पार्वतीजीने पूछा—'योगेश्वर! आपने किस साधनासे इतनी समग्र सिद्धियाँ प्राप्त कीं? वह कौन-सी उपासना है जिसने आपको लोकोत्तर सिद्ध बना दिया और सभी लोग 'सब कुछ तो भगवान् शंकर ही जानते हैं' ऐसा कहते हुए आपकी प्रभुताको स्वीकार करते हैं। इन विशिष्टताओंकी उपलब्धि किस योग-साधनाद्वारा हुई है? कृपया यह बतानेका कष्ट करें।'

भगवान् शंकरने कहा—'प्रिये! तुम्हारे प्रेमवश यह गोपनीय रहस्य बताता हूँ, ध्यान देकर सुनो। गायत्री वेदमाता है। वही आद्याशक्ति कही जाती है। विश्वकी वही जननी है। मैं उन्हीं गायत्रीकी उपासना करता हूँ। प्रिये! समस्त यौगिक साधनाओंका आधार गायत्रीको ही माना गया है। गायत्री-साधनाके माध्यमसे समस्त यौगिक साधनाएँ सहज ही सम्पन्न हो जाती हैं और सफलता या सिद्धि हस्तगत की जा सकती है। विद्वानोंने गायत्रीको भूलोककी कामधेनु कहा है। इसका आश्रय लेकर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।'

'पार्वती! यह तो तुम जानती ही हो कि कलियुगमें मनुष्योंके शरीर पृथ्वीतत्त्व-प्रधान होते हैं।'

'किंतु कलियुगके लोग भी गायत्री-पञ्चाङ्गयोगकी साधनाद्वारा अन्य युगोंकी सर्वश्रेष्ठ सिद्धियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं। अधिक क्या, गायत्री ही तप, योग एवं साधन है। इसे ही सिद्धियोंकी माता कहा गया है। गायत्रीसे बढ़कर कलियुगमें अन्य कोई ऐसी सिद्धिप्रद दूसरी वस्तु नहीं है।'

'परम पतिव्रता पार्वती! जो मैंने यह गुप्त रहस्य कहा है, लोग इसे समाहित होकर जानेंगे और गायत्री-साधनामें प्रवृत्त होंगे तो निश्चय ही वे परमसिद्धिको प्राप्त करेंगे।'

भगवान् शिव और पार्वतीके इस कथोपकथनसे यह निश्चित रूपसे समझमें आ जाता है कि गायत्री-साधना-द्वारा समस्त यौगिक साधनाएँ सुगम हो जाती हैं। वैसे तो योग-साधना सुयोग्य गुरुके मार्गदर्शनमें पर्याप्त समय-साध्य और श्रम-साध्य होती है। किंतु गायत्री-मन्त्रके सहयोगसे वह सरल और सुगम ही नहीं, निरापद भी हो जाती है।

---

* देखिये गायत्रीपुरश्चरणपद्धति।

ब्रह्ममयी श्रीविद्या

(स्व० महामहोपाध्याय पं० श्रीनारायण शास्त्री खिस्ते)

'श्रीविद्या'से श्रीत्रिपुरसुन्दरीका मन्त्र, उसकी अधिष्ठात्री देवता तथा ब्रह्मविद्याका बोध होता है। सामान्यतः 'श्री' शब्दका लक्ष्मी अर्थ ही प्रसिद्ध है, किंतु 'हारितायनसंहिता', ब्रह्माण्डपुराणका उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें वर्णित कथाओंके अनुसार 'श्री' शब्दका मुख्य अर्थ महात्रिपुरसुन्दरी ही है। श्रीमहालक्ष्मीने महात्रिपुरसुन्दरीकी चिरकाल आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उन्हींमें 'श्री' शब्दसे ख्याति पानेका वरदान भी उन्हें मिला और तभीसे 'श्री' शब्दका अर्थ महालक्ष्मी होने लगा। अतः 'श्री' शब्दका महालक्ष्मी अर्थ गौण है। इस प्रकार 'श्री' अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रतिपादिका विद्या-(मन्त्र) ही 'श्रीविद्या' है। वाच्य-वाचकका अभेद मानकर इस मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' कही जाती है। सामान्यतः 'श्री' शब्द श्रेष्ठताका बोधक है। श्रेष्ठ पुरुषोंके नामोंके पहले 'श्री', १००८ श्री, अनन्तश्री शब्दका प्रयोग किया जाता है। परब्रह्म सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मकलांश रहनेकी सूचना ही 'श्री' शब्दद्वारा होती है। जिनमें अंशतः ब्रह्मकला प्रकट होती है वे ही 'श्री' शब्दपूर्वक तत्तन्नामोंसे व्यवहृत होते हैं। जैसे—श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीकाली, श्रीदुर्गा, श्रीकृष्ण आदि। सर्वकारणभूता आत्मशक्ति त्रिपुरेश्वरी साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी होनेके कारण केवल 'श्री' शब्दसे ही व्यवहृत होती है। 'सा हि श्रीरमृता सताम्' आदि श्रुति भी इसी परब्रह्मस्वरूपिणी विद्याकी स्तुति करती है।

शास्त्रोंमें कहा है कि विभिन्न देवताओंकी आराधना करनेसे पशु, पुत्र, धन, धान्य, स्वर्ग आदि फल प्राप्त होते हैं, किंतु श्रीविद्याके उपासकोंको लौकिक फल तो मिलते ही हैं, 'तरति शोकमात्मवित्' इस फल-श्रुतिके अनुसार आत्मज्ञानीको प्राप्त होनेवाली शोकोत्तीर्णता-रूप फल भी निश्चितरूपसे प्राप्त होता है, जैसा कि आथर्वण देव्युपनिषद्में कहा है—

'पाशाङ्कुशधनुर्बाणा, य एनां वेद स शोकं तरति, स शोकं तरति।' इस प्रकार 'श्रीविद्या' और ब्रह्मविद्या दोनोंका फल एक होनेसे निर्विवाद सिद्ध है कि 'श्रीविद्या' ब्रह्मविद्या ही है।

यद्यपि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' आदि श्रुतिके अनुसार श्रवण-मनन आदि मार्गोंसे आत्मज्ञान प्राप्त करके भी शोकोत्तीर्णतारूप फल पा सकते हैं, तथापि वह मार्ग अत्यन्त कष्टसाध्य तथा प्रखर वैराग्यका है। उसके अधिकारी करोड़ोंमें भी दुर्लभ ही हैं। यदि सौभाग्यसे सद्गुरुसम्प्रदायसे 'श्रीविद्या'की क्रमिक उपासना प्राप्त हो जाय तो सामान्य मनुष्य भी क्रमशः उपासनाके परिपाकसे तथा श्रीमातासे अभिन्न गुरुकृपासे इसी जन्ममें आत्मज्ञानी हो सकता है। फिर श्रवण-मननात्मक मार्गमें पतनकी आशंका रहती है, किंतु श्रीविद्योपासनामार्गमें श्रीगुरुरूपिणी शक्तिके अनुग्रहका अवलम्ब होनेसे पतनका भय नहीं है। कहा भी है—

> यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
> यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
> श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
> भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

श्रीविद्या ही आत्मशक्ति

वास्तवमें 'श्रीविद्या' ही आत्मशक्ति है, आत्मशक्त्युपासना ही श्रीविद्योपासना है। हारितायनसंहिता, त्रिपुरा-रहस्य-माहात्म्यखण्डके चतुर्थ अध्यायमें महामुनि संवर्तने श्रीपरशुरामजीके संसार-भयसे पीड़ितोंके लिये शुभ मार्ग कौन-सा है?' इस प्रश्नका समाधान करते हुए कहा है—'परशुराम! गुरूपदिष्ट मार्गसे आत्मशक्ति महेश्वरी

त्रिपुराकी आराधना कर उसकी कृपाके लेशको प्राप्त करते हुए सर्वसाम्याश्रयात्मक स्वात्मभावको प्राप्त करो। दृश्यमान सब कुछ आभासमात्र स्वात्मशक्तिविलास ही है। यह समझकर जगद्गुरु-समापत्तिको प्राप्त होते हुए निर्भय तथा निःसंशय होकर तुम भी मेरे ही समान यथेच्छ संचार करो। सर्वभावोंमें आत्माको और आत्मामें सर्वभावोंको देखते हुए पिण्डात्मभावको छोड़कर वेतृभावके आसनपर स्थिर रहो। स्वदेहको वेद्य समझते हुए वेत्तापर सर्वदा दृष्टि रखनेवालेको इस संसार-मार्गमें कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता।'

'स्वतन्त्र-तन्त्र' में कहा है—'आत्मा ही चिदात्मिका ललितादेवी है। उसका विमर्श ही उसका रक्तवर्ण है और इस प्रकारकी भावना ही उसकी उपासना है।'

कामेश्वर, कामेश्वरी और उनके उपासकका स्वरूप

आत्मशक्ति श्रीविद्या ही ललिता-कामेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी है। वह महाकामेश्वरके अङ्कमें विराजमान है। उपाधिरहित शुद्ध आत्मा ही महाकामेश्वर है। सदानन्दरूप उपाधिपूर्ण आत्मा ही पर-देवता महात्रिपुरसुन्दरी कामेश्वरी ललिता है। निष्कर्ष यह है कि 'स्व' अर्थात् उपासककी आत्मा, अन्तर्यामी सदानन्द-उपाधिपूर्ण ही ललिता है। सत्त्व, चित्त्व, आनन्दस्वरूप धर्मत्रयनिर्मुक्त धर्मिमात्र वही आत्मा श्रीविद्या ललिताका आधारभूत महाकामेश्वर है। पर-देवता आत्मासे अभिन्न होनेपर भी अन्तःकरणोपाधिक आत्मा उपासक है और सदानन्दोपाधिपूर्ण आत्मा 'उपास्य' है, सर्वथा निरुपाधिक आत्मा महाकामेश्वर है।

कामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासना

श्रीकामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णका जो ध्यान किया जाता है, उसका रहस्य यह है कि 'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः' (भावनोपनिषद्, सूत्र २८) महाकामेश्वर, ललिता और स्वयम्—इन तीनोंका विमर्श अर्थात् स्वात्मामें अनुसंधान करना ही ललिताके रक्तवर्णकी भावना है।

कामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासनाका रहस्य गुरुमुखैकवेद्य ही है, शब्दोंद्वारा उसका ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी जहाँतक सम्भव है, वहाँतक विशद किया जा रहा है। निरुपाधिक कहनेसे 'केवलत्व' और सदानन्दपूर्ण कहनेसे 'धर्मविशिष्टत्व' की प्रतीति होती है। विशिष्ट और केवल अवयव-अवयवीके समान अयुतसिद्ध हैं। इनका परस्पर तादात्म्य-सम्बन्ध ही सम्भव है, भेदघटित संयोगादि सम्बन्ध नहीं। प्रकृतमें कामेश्वर-कामेश्वरीके विग्रहात्मक स्थूल दो रूपोंका सम्बन्ध कामेश्वरके अङ्कमें कामेश्वरीके विराजमान होनेमें पर्यवसित है। स्थूलदृष्टिमें तो भेद-सम्बन्ध ही प्रतीत होता है, परंतु रहस्य-दृष्टिमें यह शिव-शक्ति-सामरस्यात्मक है, जैसे लाक्षाद्रव और पटका सम्बन्ध होता है। इस प्रकारकी वासना ही रक्तवर्णकी भावना है।

शक्तिके बिना शिव शवमात्र

कामेश्वर शिवकी शिवता महाशक्तिके उल्लासरूप सांनिध्यसे ही स्फुरित होती है। स्कन्दपुराणमें कहा है—

जगत्कारणमापन्नः शिवो यो मुनिसत्तमाः।
तस्यापि साभवच्छक्तिस्तया हीनो निरर्थकः॥

सौन्दर्यलहरी-स्तोत्रमें भी कहा गया है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

पञ्च-प्रेतासन

श्रीविद्या राजराजेश्वरी पञ्च-प्रेतासनपर विराजमान है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्चमहाप्रेत हैं। इसका रहस्य यह है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्तिविलासद्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर वामादि स्वशक्तिके सांनिध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योंको सम्पादित करता

है। जब ब्रह्मादि अपनी-अपनी वामादि शक्तियोंसे रहित होकर कार्याक्षम हो जाते हैं, तब वे 'प्रेत' कहे जाते हैं। उनमें भी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर—ये चार पाद हैं और सदाशिव हैं फलक, उसपर महाकामेश्वरके अङ्कमें महाकामेश्वरी विराजमान हैं।

कामेश्वरीके आयुध

कामेश्वरीकी चार भुजाओंमें पाश, अङ्कुश, इक्षुधनु और पञ्च पुष्पबाणोंका ध्यान किया जाता है। उनका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है। पाश—छत्तीस तत्त्वोंमें राग अर्थात् प्रीति ही पाश है। बन्धकत्वधर्मके साथ साम्य होनेसे वही राग श्रीमाताने पाशरूपसे धारण किया है—'रागः पाशः' (भावनोप० २३)। अङ्कुश—द्वेष अर्थात् क्रोध ही अङ्कुश है—'द्वेषोऽङ्कुशः' (भाव० २४)। इक्षुधनु—सङ्कल्प-विकल्पात्मक क्रियारूप मन ही इक्षुधनु है—'मन इक्षुधनुः' (भाव० २२)। पञ्चबाण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धकी पञ्चतन्मात्राएँ ही पञ्च पुष्पबाण हैं—'शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः' (भाव० २१), उत्तर-चतुःशतीशास्त्रमें इन आयुधोंका यथार्थ स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

> इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम्।
> क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वलम्॥

'पाश' इच्छाशक्ति, 'अङ्कुश' ज्ञानशक्ति तथा 'बाण' और 'धनु' क्रियाशक्तिस्वरूप हैं।'

रहस्य-पूजा

पूर्वोक्त प्रकारसे श्रीमहाकामेश्वरके अङ्कमें विराजमान पाशाङ्कुश-इक्षुधनु-पञ्चबाणधारिणी, पञ्चप्रेतासनासीना महात्रिपुरसुन्दरीकी बाह्य पूजा (बहिर्याग) तो अनेक पद्धतियोंमें अनेक प्रकारसे विहित ही है। उसके विषयमें विशेष निरूपण अनावश्यक है। रहस्य-पूजाका दिग्दर्शन इस प्रकार है—पूर्ण सर्वव्यापक चिच्छक्तिकी अपनी महिमामें प्रतिष्ठाकी भावना ही 'आसन-प्रदान' है। विश्वादि स्थूल-प्रपञ्चरूप चिच्छक्तिके चरणोंके नाम-रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैकरूपत्व-भावनारूप जलसे क्षालन करना ही 'पाद्यार्पण' है। सूक्ष्म-प्रपञ्चरूप करोंके नाम-रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैकरूपत्व-भावनारूप जलसे क्षालन करना ही 'अर्घ्य-प्रदान' करना है। भावनारूपोंका भी जो कवलीकरण है वही 'आचमन-प्रदान' है। अखिलावयवावच्छेदेन सत्यचित्स्वानन्दत्वादि-भावना-जलसम्पर्क ही 'स्नान' है। उक्त अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्तिविषयताका सूक्ष्मविषयत्व-भावनारूप वस्त्रसे प्रोञ्छन (पोंछना) ही 'देह-प्रोञ्छन' है। निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्वादि अनेक धर्म-रूप आभरणोंमें धर्म्यभेदभावना करना ही 'आभरणार्पण' है। स्वशरीरघटक पार्थिव भागोंकी जडता हटाते हुए उनमें चिन्मात्रभावना करना ही 'गन्धविलेपन' है। इसी तरह स्वशरीरघटक आकाश-भागोंकी पूर्वोक्त भावना करना ही 'पुष्पार्पण' है। वायवीय भागोंकी उक्त भावना ही 'धूपार्पण' है। तैजस भागोंकी वैसी भावना करना ही 'दीपदर्शन' है। अमृत-भागोंकी वैसी भावना करना 'नैवेद्यनिवेदन' है। षोडशान्तेन्दुमण्डलकी चिन्मात्रता-भावना करना ही 'ताम्बूलार्पण' है। परा, पश्यन्त्यादि निखिल शब्दोंका नादद्वारा ब्रह्ममें उपसंहार करनेकी भावना ही 'स्तुति' करना है। विषयोंकी ओर दौड़नेवाली चित्तवृत्तियोंका विषयजडता-निरासपूर्वक ब्रह्ममें विलय करना ही 'प्रदक्षिणीकरण' है। चित्तवृत्तियोंको विषयोंसे परावर्तित कर ब्रह्मैकप्रवण करना ही 'प्रणाम' करना है। इस प्रकार गुरुमुखसे अन्तर्यागका पूर्ण रहस्य समझकर एकान्तमें प्रतिदिन उक्त प्रकारसे चिच्छक्तिकी पूजा करनेवाला साधक साक्षात् शिव ही हो जाता है।

आत्मशक्तिके चतुर्विध रूप

भक्तोंके उपासना-सौकर्यके लिये आत्मशक्ति 'श्रीविद्या' के स्थूल, सूक्ष्म और पर—ये तीन स्वरूप प्रकट हैं।

इनमें पहला अर्थात् स्थूलरूप कर-चरणादि अवयवोंसे भूषित निरतिशय-सौन्दर्यशालिरूप मन्त्र-सिद्धि-प्राप्त साधकोंके नेत्रों तथा करोंके प्रत्यक्षका विषय है। वे नेत्रोंसे उस लोकोत्तराह्लादक तेजोराशिका दर्शन करते हैं तथा हाथोंसे चरणस्पर्श करते हैं।

दूसरा मन्त्रात्मक रूप पुण्यवान् साधकोंके कर्णेन्द्रिय तथा वागिन्द्रियके प्रत्यक्षका विषय है, जैसा ललिता-सहस्रनाममें कहा है—

'श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा।'

'वाग्भवकूट—पञ्चदशी-मन्त्रके प्रथम पाँच वर्ण ही जिसका मुखकमल है' अर्थात् 'मन्त्रमयी देवता'के सिद्धान्तानुसार मन्त्रवर्णोंमें ही देवताके शरीरावयवोंकी कल्पना करनेसे वह मन्त्रात्मकस्वरूप मन्त्रध्वनि-श्रवण-रूपमें कर्णेन्द्रियसे तथा मन्त्रोच्चारणरूपमें वागिन्द्रियसे प्रत्यक्ष किया जाता है और सर्वमन्त्रोंका मूलभूत मातृका-सरस्वत्यात्मक रूप भी मन्त्रात्मक रूप है; क्योंकि कहा गया है—

पश्यन्त्यां वाग्विलासार्था तु विज्ञा वाक्यात्मका परा।

तीसरा वासनात्मक रूप महापुण्यवान् साधकोंके केवल मन-इन्द्रियसे ही गृहीत होता है, जैसा कि कहा गया है—'चैतन्यमात्मनो रूपम्' आत्मशक्ति जगदम्बिकाका चैतन्य ही स्वरूप है, आत्मचैतन्यका अनुभव मनसे ही हो सकता है। उत्तम, मध्यम और अधम अधिकारिभेदके अनुसार ये तीन रूप ही उत्तम, मध्यम, अधम साधकोंकी उपासनाके योग्य हैं।

इनसे अतिरिक्त तुरीय (चतुर्थ) रूप जो कि वाक्, मन आदि सब इन्द्रियोंसे अतीत है, केवल मुक्त लोग ही अखण्ड अहंतारूपमें अनुभव करते हैं और वह रूप भी अखण्ड है।

गुरु आदिमें अभेदभावनाका रहस्य

आत्मशक्तिरूपिणी देवता श्रीविद्या, उसका मन्त्र और उस मन्त्रके उपदेष्टा सिद्धगुरु—इन तीनोंमें अभेद-दार्ढ्यकी भावना करना ही मुख्य उपासना-पद्धति है। अभेददार्ढ्य-भावनाकी पूर्णता होना ही परमसिद्धि-लाभ है। गुरुके साथ अभेदभावनाके महत्त्वका कारण यह है कि आदिनाथादि गुरुक्रमसम्प्रदायके प्रभावसे जिसने श्रीविद्याके साथ पूर्ण अभेददार्ढ्यभावनाके द्वारा पूर्ण अभेद प्राप्त किया है, ऐसे गुरुके साथ शिष्य यदि अपनी (आत्मशक्तिकी) अभेद-भावना करे तो उस शिष्यको भी तत्क्षण श्रीविद्याके साथ पूर्ण अभेद प्राप्त हो जाता है। श्रीविद्याके साथ पूर्ण अभेद प्राप्त करनेके लिये गुरु-कृपाके सिवा दूसरा उपाय न होनेसे गुरुके साथ अभेद-भावनाकी नितान्त आवश्यकता है। सुन्दरी-तापनीयमें कहा है कि जैसे घट, कलश और कुम्भ ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही मन्त्र, देवता और गुरु—ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके वाचक हैं। अतः तीनोंमें कभी भी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये।

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः॥

द्वादश सम्प्रदाय तथा कामराज-विद्याका महत्त्व

'श्रीविद्या'के बारह उपासक प्रसिद्ध हैं—१—मनु, २—चन्द्र, ३—कुबेर, ४—लोपामुद्रा, ५—मन्मथ, (कामदेव), ६—अगस्ति, ७—अग्नि, ८—सूर्य, ९—इन्द्र, १०—स्कन्द (कुमार कार्तिकेय), ११—शिव और १२—क्रोधभट्टारक (दुर्वासामुनि)।

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः॥

इनमें प्रत्येकका पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था। चतुर्थ और पञ्चम अर्थात् लोपामुद्रा और मन्मथ—इन्हीं दोके सम्प्रदाय वर्तमानमें प्रचलित हैं। उनमें भी अधिकतर

मन्मथ-सम्प्रदाय अर्थात् कामराज-विद्याका ही सर्वतोमुख प्रचार है । त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्डमें वर्णित कथाओंके अनुसार कामदेवने अपनी निर्व्याज आराधनासे श्रीमाताको प्रसन्नकर उससे अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये और स्वोपासित कामराजविद्याके उपासकोंके लिये भी बहुत-सी सुविधाएँ सुलभ करा दीं । तभीसे ही कामराजविद्याका विशेष प्रचार होने लगा ।

कामराज-विद्याका स्वरूप

कामराज-विद्या ककारादि-पञ्चदशवर्णात्मक है । इसीको 'कादि-विद्या' भी कहते हैं । तन्त्रराजमें शिवजी देवीसे कहते हैं—'देवी पार्वति ! कादिविद्या तुम्हारा स्वरूप ही है और उससे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।' कादि-विद्याका उद्धार आथर्वणत्रिपुरोपनिषद्में इस प्रकार है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
गुहा ह सा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्या ॥

लोपामुद्रा ही 'हादिविद्या' है । यह भी पञ्चदशवर्णात्मिका ही है । कामेश्वराङ्कस्थित कामेश्वरीके पूजा-मन्त्रोंमें कादि, हादि दोनों विद्याओंसे युक्त विद्याएँ केवल आम्नाय-पाठमें ही उल्लिखित हैं । प्रचलित उपासना-पद्धतियोंमें उनका विशेष उपयोग नहीं है ।

श्रीविद्या ही त्रिपुरा

श्रीकामराज-विद्याकी अधिष्ठात्री 'श्रीविद्या' का ही नामान्तर त्रिपुरा है । त्रि=त्रिमूर्तियोंसे पुरा—पुरातन होनेसे 'त्रिपुरा' अर्थात् गुणत्रयातीता त्रिगुणनियन्त्री शक्ति । गौडपादीय सूत्रमें भी कहा है—'तत्त्वत्रयेण भिदा ।' 'त्रिपुरार्णवमें' 'त्रिपुरा' शब्दकी प्रकारान्तरसे निरुक्ति की है—तीन नाडियाँ—इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा ही त्रिपुरा है । वह मन, बुद्धि और चित्तरूपी तीन पुरोंमें निवास करनेवाली शक्ति है, अतः 'त्रिपुरा' कही जाती है ।

ग्रन्थान्तरमें और भी प्रकारान्तरोंसे 'त्रिपुरा' शब्दकी निरुक्ति कही है—त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की जननी होनेसे 'त्रयी' (ऋक्, यजुः, साम) -मयी होनेसे या महाप्रलयमें त्रिलोकीको अपनेमें लीन करनेसे जगदम्बा 'श्रीविद्या' का 'त्रिपुरा' यह नाम प्रसिद्ध हुआ ।

'संकेतपद्धति' तथा 'वामकेश्वर-तन्त्र'में त्रिपुराका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—ब्रह्मा, विष्णु, ईश-रूपिणी 'श्रीविद्या' के ही ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति—ये तीन स्वरूप हैं । इच्छाशक्ति उसका शिरोभाग है, ज्ञानशक्ति मध्यभाग तथा क्रियाशक्ति अधोभाग है । इस प्रकार उसका रूप शक्तित्रयात्मक होनेसे ही वह 'त्रिपुरा' कही जाती है ।

त्रिपुराम्बा ही आत्मशक्ति

'हारितायन-संहिता'में गुरु श्रीदत्तात्रेयने परशुरामजीसे त्रिपुराम्बाके स्वरूपका निरूपण करते हुए कहा है—'राम ! उस पराशक्तिके माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है ? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, लोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अभीतक उस शक्तिका न स्वरूप जानते हैं, न स्थान ही जानते हैं । वस्तुतः 'वह शक्ति ऐसी है' इस प्रकार कोई भी यथार्थतः वर्णन नहीं कर सकता । वेद, शास्त्र, तन्त्र भी उसके वर्णनमें असमर्थ हैं । प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेयमात्रको ही ग्रहण करते हैं, उस शक्तिके स्वरूपतक तो उसकी पहुँच ही नहीं है । जैसे अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित अङ्गार-समष्टियोंमें आविर्भूत होकर जब शान्त होती है तब वह कहाँ गयी अथवा किसमें अन्तर्भूत हुई—यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्तमातृ-मण्डलशक्तिसंवलितरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्रीका क्या स्वरूप है, वह कैसे आविर्भूत होती है और किसमें अन्तर्भूत होती है, यह ज्ञात नहीं होता । न तो वह

तर्कसे और न युक्तिसे ही ज्ञात होती है। 'अहमस्मि' (मैं हूँ) इस प्रतीतिके सिवा उसकी उपलब्धिका दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। 'मैं हूँ' यह प्रतीति होनी ही आत्मशक्तिका भान है। अन्तर, बहिः, सर्वदा, सर्वत्र—इस प्रकार आत्मशक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाला साधक गङ्गागर्भमें निमग्न गजके समान सर्वशीतलभावको प्राप्त हो जाता है।

'श्रीविद्या' ही चिच्छक्ति

वही आत्मशक्तिरूपिणी 'श्रीविद्या' जब लीलासे शरीर धारण करती है, तब वेद-शास्त्र उसका निरूपण करने लगते हैं। अखिल प्रमाणोंकी प्रमात्री वही शक्ति 'चिच्छक्ति' नामसे व्यवहृत होती है। उसके लीलाविग्रहोंका माहात्म्य भी अनन्त है।

ध्यानमें इतर देवताओंसे विशेषता

प्रायः सभी देवताओंके ध्यानमें वराभयमुद्राएँ होती हैं, जिनसे वे अपने भक्तोंको वर तथा अभय-दान देनेकी घोषणाएँ करती हैं। भक्त भी प्रायः ऐसे ही देवता खोजते हैं जिनसे उन्हें अभीष्ट वर प्राप्त हो तथा उनका भय निवृत्त हो। श्रीविद्या तो ब्रह्ममयी है, सारे जगत्‌के कल्याणके लिये आविर्भूत है। फिर उसे वराभय-प्रदानका नाटक करनेकी आवश्यकता ही क्या है?

शंकरभगवत्पादाचार्यने अपने 'सौन्दर्यलहरी'-स्तोत्रमें यही बात कही है—

> त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
> स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
> भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
> शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥

'शरणागतरक्षिके माँ! तुमसे अन्य प्रायः सभी देवतागण अपने करोंसे वर तथा अभयदान देनेवाले हैं। एक तुम ही ऐसी हो जिसने वर तथा अभयदानका अभिनय नहीं किया है। तब क्या तुम्हारे भक्तोंको वर तथा अभय नहीं मिलता? नहीं, सो बात नहीं। शरण्ये, माँ! भक्तोंका भयसे रक्षण करने तथा उन्हें अभीष्ट वर देनेके लिये तुम्हारे चरण ही समर्थ हैं। जब चरणोंके द्वारा ही वराभय-दान हो सकता है, तब हाथमें वराभय-मुद्रा धारण करना आपके लिये निरर्थक है। भाव यह कि अन्य देव-देवियाँ तो वस्तु हाथोंसे देते हैं, पर तुम उन्हें पैरोंसे देती हो; क्योंकि तुम ब्रह्ममयी राजराजेश्वरी हो।'

माँसे वर-याचना

यही बस वरदायिनि! अब वर दे!

सहज प्रकाशित हो कलुषित मन
मिटे मोह-तरु-तम प्रमाद-घन
हृदय-रात पर नव-प्रभात बन
दिव्य-ज्योति-घन भर दे।

भारति! भाव भरं तव मनमें
विमल-मूर्ति तव, उर-दर्पनमें
अपनी भक्ति-सुधा जीवनमें
अयि जीवनमयि! भर दे।

पुलकित हो गाऊँ पल-पलमें
"बस, तेरी विभूति जल-थलमें"
माँ! मेरे मानस-मरुथलमें
प्रेम प्रवाहित कर दे।

—पं० मदनगोपालजी गोस्वामी, बी० ए०, 'अरविन्द'

श्रीविद्या-साधना-सरणि

(कविराज पं० श्रीसीताराम शास्त्री, 'श्रीविद्या-भास्कर')

सर्वं शाक्तमजीजनत्—इस वेद-वाक्यके अनुसार समस्त विश्व ही शक्तिसे उत्पन्न है। शक्तिके द्वारा ही अनन्त ब्रह्माण्डोंका पालन, पोषण और संहारादि होता है। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देव भी उसी शक्तिसे सम्पन्न होकर स्व-स्वकार्य करनेमें सक्षम होते हैं। प्रत्यक्षरूपसे सब कार्योंकी कारणरूपा भगवती ही है—

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम् ।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम् ॥
न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः ।
न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन ॥
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः ।
कारणं सैव कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥
(देवीभागवत)

अतः समस्त साधनाओंका मूलभूत शक्ति-उपासनाका क्रम आदिकालसे चला आ रहा है। स्वर्गादिनिवासी देवगण एवं ब्रह्मविद्वरिष्ठ ऋषि-महर्षियोंने भी शक्ति-उपासनाके बलसे अनेक लोक-कल्याणकारी विलक्षण कार्य किये हैं। निगम-आगम, स्मृति-पुराण आदि भारतीय संस्कृत-वाङ्मयमें शक्ति-उपासनाकी विविध विधाएँ प्रचुर रूपसे उपलब्ध हैं। इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान है श्रीविद्या-साधनाका। भारतवर्षकी यह परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट साधना-प्रणाली मानी जाती है। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि समस्त साधना-प्रणालियोंका समुच्चय ही श्रीविद्या है। ईश्वरके निःश्वासभूत होनेसे वेदोंकी प्रामाणिकता है तो शिवप्रोक्त होनेसे आगमशास्त्र—'तन्त्र' की भी प्रामाणिकता है। अतः सूत्ररूपसे वेदोंमें एवं विशद रूपसे तन्त्र-शास्त्रोंमें श्रीविद्या-साधनाके क्रमका विवेचन है। शिवप्रोक्त चौंसठ वाममार्गीय तन्त्रोंमें ऐहिक सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये विविध साधनाओंका वर्णन है। श्रीविद्या धर्म, अर्थ, काम—इन तीन पुरुषार्थोंसहित परम पुरुषार्थ मोक्षको भी देनेवाली है।

श्रीविद्याका स्वरूप

सांसारिक सकल कामनाओंके साधक चतुःषष्टि-तन्त्रोंका प्रतिपादन कर देनेके बाद पराम्बा भगवती पार्वतीने भूतभावन विश्वनाथसे पूछा—'भगवन्! इन तन्त्रोंकी साधनासे जीवके आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता आदि क्लेश तो दूर हो जायँगे, किंतु गर्भवास और मरणके असह्य दुःखोंकी निवृत्ति तो इनसे नहीं होगी। कृपा करके इस दुःखकी निवृत्ति या मोक्षरूप परमपदकी प्राप्तिका भी कोई उपाय बताइये।' परम कल्याणमयी पुत्रवत्सला पराम्बाके साग्रह अनुरोधपर भगवान् शंकरने इस श्रीविद्यासाधना-प्रणालीका प्राकट्य किया। इसी प्रसंगको आचार्य शंकर भगवत्पाद 'सौन्दर्य-लहरी' में इन शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥

'पशुपति भगवान् शंकर वाममार्गके चौंसठ तन्त्रोंके द्वारा साधकोंकी जो-जो स्वाभिमत सिद्धि है, उन सबका वर्णन कर शान्त हो गये। फिर भी भगवती! आपके निर्बन्ध अर्थात् आग्रहपर उन्होंने सकल पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको प्रदान करनेवाले इन श्रीविद्या-साधना-तन्त्रका प्राकट्य किया।'

श्रीमद्-शंकराचार्य 'सौन्दर्य-लहरी'में मन्त्र, यन्त्र आदि साधना-प्रणालीका वर्णन करते हुए इस श्रीविद्या-साधनाकी फलश्रुति लिखते हैं—

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
　　रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
　　परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥
　　　　(सौन्दर्य-लहरी १०१)

'देवि ललिते ! आपका भजन करनेवाला साधक विद्याओंके ज्ञानसे विद्यापतित्व एवं धनाढ्यतासे लक्ष्मीपतित्वको प्राप्तकर ब्रह्मा एवं विष्णुके लिये 'सपत्न' अर्थात् अपरपति-प्रयुक्त असूयाका जनक हो जाता है। वह अपने सौन्दर्यशाली शरीरसे रतिपति कामको भी तिरस्कृत करता है एवं चिरंजीवी होकर पशु-पाशोंसे मुक्त जीवन्मुक्त-अवस्थाको प्राप्त होकर 'परानन्द' नामक रसका पान करता है।'

आचार्य शंकर भगवत्पादने सौन्दर्य-लहरीमें स्तुति-व्याजसे श्रीविद्या-साधनाका सार-सर्वस्व बता दिया है और श्रीविद्याके पञ्चदशाक्षरी मन्त्रके एक-एक अक्षरपर बीस नामोंवाले ब्रह्माण्डपुराणोक्त 'ललिता-त्रिशती'-स्तोत्रपर भाष्य लिखकर अपने चारों मठोंमें श्रीयन्त्रद्वारा श्रीविद्यासाधनाका परिष्कृत क्रम प्रारम्भ कर दिया है। जन्म-जन्मान्तरीय पुण्य-पुञ्जके उदय होनेसे यदि किसीको गुरुकृपासे इस साधनाका क्रम प्राप्त हो जाय और वह सम्प्रदायपुरस्सर साधना करे तो कृतकृत्य हो जाता है, उसके समस्त मनोरथपूर्ण हो जाते हैं और वह जीवन्मुक्त-अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। लोकमें इस विद्याके सामान्य ज्ञानवाले कुछ साधक तो सुलभ हैं, पर विशेष ज्ञाता अत्यन्त दुर्लभ हैं। कारण, यह अत्यन्त रहस्यमयी गुप्तविद्या है और शास्त्रोंने इसे सर्वथा गुप्त रखनेका निर्देश किया है। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ।

राज्य दिया जा सकता है, सिर भी समर्पित किया जा सकता है परंतु श्रीविद्याका षोडशाक्षरी मन्त्र कभी नहीं दिया जा सकता।'

तब प्रश्न होगा कि फिर यह संसारको कैसे प्राप्त हुआ ? तो 'नित्याषोडशिकार्णव' कहता है—

कर्णात् कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनीतले ।

'यह विद्या कर्णपरम्परासे अर्थात् गुरुपरम्परासे भूतलपर आयी।' उपनिषद्-वाक्योंका उपबृंहण करते हुए 'आत्मपुराण' में भी लिखा है—

ब्रह्मविद्यातिसंखिन्ना ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं ययौ ।
वाराङ्गनासमां मां हि मा कृथाः सर्वसेविताम् ॥
गोपाय मां सदैव त्वं कुलजामिव योषिताम् ।
शेवधिस्त्वक्षयस्तेऽहमिह लोके परत्र च ॥

अर्थात् 'ब्रह्मविद्या अतिखिन्न होकर ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मणके पास गयी और बोली कि 'तुम मुझे वेश्याकी तरह सर्वभोग्या मत बनाओ, अपितु कुलवधूकी तरह मेरी रक्षा करो। मैं इस लोक और परलोकके लिये तुम्हारा अक्षयकोश हूँ।'

इसके आगे यह विद्या किसे नहीं देनी चाहिये और किसे देनी चाहिये, यह भी बताया गया है—

निन्दा गुणवतां तद्वत् सर्वदार्जवशून्यता ।
इन्द्रियाधीनता नित्यं स्त्रीसङ्गश्चाविनीतता ॥
कर्मणा मनसा वाचा गुरौ भक्तिविवर्जनम् ।
एवमाद्या येषु दोषास्तेभ्यो वर्जय मां सदा ॥
एवं हि कुर्वतो नित्यं कामधेनुरिवास्मि ते ।
वन्ध्यान्यथा भविष्यामि लतेव फलवर्जिता ॥

अर्थात् 'गुणवानोंकी निरन्तर निन्दा करना, आर्जवशून्यता, इन्द्रियोंका दासत्व, नित्य स्त्रीप्रसङ्ग और उद्दण्डता तथा मन, वाणी, कर्मसे गुरुके प्रति भक्तिहीनता आदि ऐसे दोष जिनमें वर्तमान हों, उनसे सदा मेरी रक्षा करना। सावधानीसे ऐसा करते रहोगे तो मैं कामधेनु-की तरह तुम्हारे सर्वमनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होऊँगी। ऐसा न करनेपर फलोंसे रहित लताकी तरह मैं वन्ध्या हो जाऊँगी।'

'षोडशिकार्णव'में भी कहा गया है—

न देयं परशिष्येभ्यो नास्तिकानां न चेश्वरि ।
न शुश्रूषालसानां च नैवानर्थप्रदायिनाम् ॥

—'पराये गुरुके शिष्योंको, नास्तिकोंको, सुननेकी अनिच्छावालोंको एवं अनर्थ ढानेवालेको यह विद्या कभी

नहीं देना चाहिये ।' यही नहीं, यदि लोभ-मोहसे ऐसे व्यक्तिको कोई इसका उपदेश देता है तो वह उपदेष्टा गुरु उस शिष्यके पापोंसे लिप्त होता है—

तस्मादेवंविधं शिष्यं न गृह्णीयात् कदाचन ।
यदि गृह्णाति मोहेन तत्पापैर्व्याप्यते गुरुः ॥

उपर्युक्त दोषोंसे रहित और शम, दम, तितिक्षा आदि गुणोंसे युक्त साधकको ही श्रीविद्या प्रदान करनी चाहिये । ऐसे अधिकारीको भी एक वर्ष-तक परीक्षा करके ही श्रीविद्याका उपदेश देना चाहिये, जैसा कि कहा है—

परीक्षिताय दातव्यं वत्सरोर्ध्वोषिताय च ।
एतज्ज्ञात्वा वरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत् ॥

श्रीविद्याके तीन रूप हैं—१–स्थूल, २–सूक्ष्म और ३–पर । तीनोंका तो इस सीमित लेखमें आवश्यक विवेचन सम्भव नहीं है । अतः यहाँ विशेषरूपसे इसके स्थूलरूपके निरूपणका प्रयास किया जा रहा है । जहाँ स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन और सूक्ष्मरूप श्रीविद्या-मन्त्र है वहीं पर-विद्या देहमें श्रीचक्रकी भावनाकी विधि है । आचार्य शंकरके मतानुसार चौंसठ तन्त्रोंका व्याख्यान करनेके अनन्तर पराम्बाके निर्बन्धसे श्रीविद्याका व्याख्यान भगवान् सदाशिवने किया, अतः यह ६५वाँ तन्त्र है । आचार्योंने 'वामकेश्वर-तन्त्र'को—जिसमें 'नित्याषोडशिकार्णव', तथा 'योगिनीहृदय', दो चतुश्शती हैं—ही श्रीविद्याका पूर्णरूपसे विधान करनेवाला ६५वाँ (मतान्तरसे ७८वाँ) तन्त्र माना है । अतः उसीके अनुसार यहाँ सर्वसुलभ भाव-भाषामें इस विषयपर प्रकाश डाला जा रहा है ।

श्रीयन्त्रका स्वरूप

'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'—श्रीयन्त्र शिव-शिवाका विग्रह है । **'एका ज्योतिरभूद् द्विधा'**—सृष्टिके प्रारम्भमें अद्वैततत्त्व प्रकाशस्वरूप एक ज्योति ही दो रूपोंमें परिणत हुई । यह जगत् **'जनकजननीमज्जगदिदम्'**—माता-पिता शिव-शक्तिके रूपमें परिणत हुआ । फिर इस जगत्का स्वेच्छासे निर्माण करनेके लिये उस परम शक्तिमें स्फुरण हुआ और सर्वप्रथम श्रीयन्त्रका आविर्भाव हुआ—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥
(नित्याषोड०)

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः ॥

'बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार-बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय, भूपुर—इन नव-योन्यात्मक समस्त ब्रह्माण्डका नियामक रेखात्मक श्रीयन्त्रका प्रादुर्भाव हुआ ।

बैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत् ।
धर्माधर्मौ तथात्मानः मातृमेयौ तथा प्रमा ।
नवयोन्यात्मकमिदं चिदानन्दघनं महत् ॥
(नि० षो०)

सर्वप्रथम बिन्दुके तीन रूप हुए—धर्म-अधर्म, चार आत्मा-मातृ-मेय और प्रमा त्रिपुटी । धर्म और अधर्म दो, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा चार, मातृ, मेय, प्रमा—ये तीन इस प्रकार नौ हुए । त्रिकोण और अष्टकोण यही नवयोन्यात्मक श्रीचक्र है । शेष सब कोणों और दलोंका इसी नवयोनियोंमें समावेश हो जाता है । ब्रह्माण्ड-पुराणमें लिखा है—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके ॥
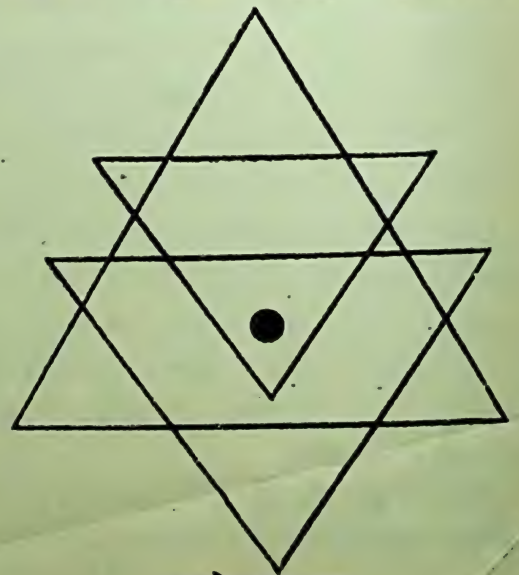
नवकोणात्मक-चक्र

श्रीयन्त्रम्
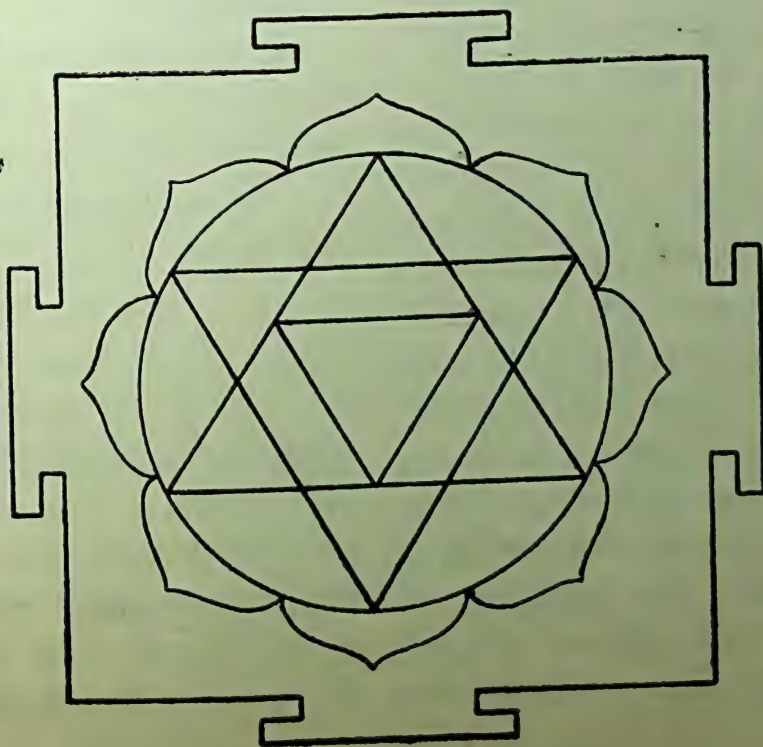
श्रीमहागणपति-यन्त्रम्

—'इस प्रकार नवयोन्यात्मक श्रीचक्र ४२ कोणों और ९ आवरणोंवाला बन जाता है।' इसके नौ आवरण एवं उनमें स्थित चक्रेश्वरियोंका विवरण इस प्रकार है—

पूज्य देवता	आवरण	नाम	चक्रेश्वरी
१	बिन्दु	सर्वानन्दमय	ललिता महात्रिपुरसुन्दरी
३	त्रिकोण	सर्वसिद्धि	त्रिपुराम्बा
८	अष्टकोण	सर्वरोगहर	त्रिपुरासिद्धा
१०	अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी
१०	बहिर्दशार	सर्वार्थसाधक	त्रिपुराश्री
१४	चतुर्दशार	सर्वसौभाग्यदायक	त्रिपुरवासिनी
८	अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुरसुन्दरी
१६	षोडशदल	सर्वाशापरिपूरक	त्रिपुरेशी
२८	भूपुर	त्रैलोक्य-मोहन	त्रिपुरा

रेखात्मक श्रीयन्त्र

श्रीविद्या-सिद्धिके लिये इसी श्रीयन्त्रकी साधना की जाती है। इसमें मुख्यरूपसे ९८ शक्तियोंका अर्चन होता है। ये शक्तियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको नियन्त्रित करती हैं। अतः श्रीयन्त्र और विश्वका तादात्म्य है। श्रीविद्याका साधक इन शक्तियोंका अर्चन कर पहले अपने शरीरमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और दसों इन्द्रियोंपर नियन्त्रण पाता है। फिर बाह्य-जगत्पर भी नियन्त्रण करनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार श्रीयन्त्र और देहकी भी एकता है। सिद्धिगत साधक अपने शरीरको ही श्रीयन्त्ररूपमें भावित कर लेता है। इससे शापानुग्रहशक्ति प्राप्त हो जाती है। आगमशास्त्रोंमें श्रीयन्त्रकी विलक्षण महिमा वर्णित है। यह महाचक्र श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीका साक्षात् विग्रह एवं पराशक्तिका अभिव्यक्ति-स्थान है। इसके पूजनसे अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा समस्त व्याधियाँ एवं दरिद्रता दूर होती है। शान्ति, पुष्टि, धन, आरोग्य, मन्त्रसिद्धि, भोग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। सब प्रकारकी रक्षा, समस्त आनन्द, सकल कार्योंमें सिद्धि प्राप्त होती है। 'नित्याषोडशिकार्णव'में अनेक अलौकिक विलक्षण चमत्कारोंसे परिपूर्ण इसके प्रभावका विस्तृत वर्णन है। विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा किये हुए एवं प्रतिदिन पूजित श्रीचक्रके दर्शनका फल महान् है—

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्॥

इसी प्रकार श्रीचक्रके पादोदक-पानसे भी सहस्र-कोटि तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त होता है—

तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम्।

ये सब महाफल श्रीयन्त्रके नित्य-नैमित्तिक विधिवत् अर्चनसे ही सम्भव है।

श्रीयन्त्रका अर्चन

जिसे परम्परासे साधना करनेवाले पारम्परीण गुरुके द्वारा श्रीयन्त्रकी दीक्षा प्राप्त हो एवं जो श्रीयन्त्रार्चन-पद्धतिका यथावत् ज्ञाता हो, वही श्रीयन्त्रके अर्चनका अधिकारी है। इस अर्चनाके लिये तन्त्र-शास्त्रोंमें वाम और दक्षिण—दो मार्ग बतलाये गये हैं। वाममार्गकी उपासना पुराकालमें सम्प्रदायविशेषमें प्रचलित थी, किंतु बौद्धकालमें उसका घोर दुरुपयोग हुआ और वह सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न होकर अस्तप्राय हो
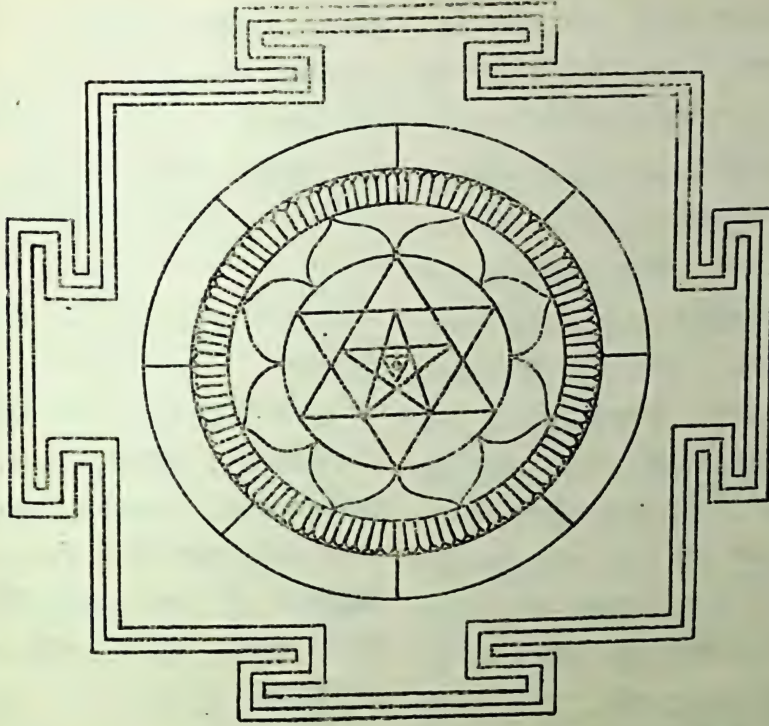
श्रीवार्ताली-यन्त्रम्
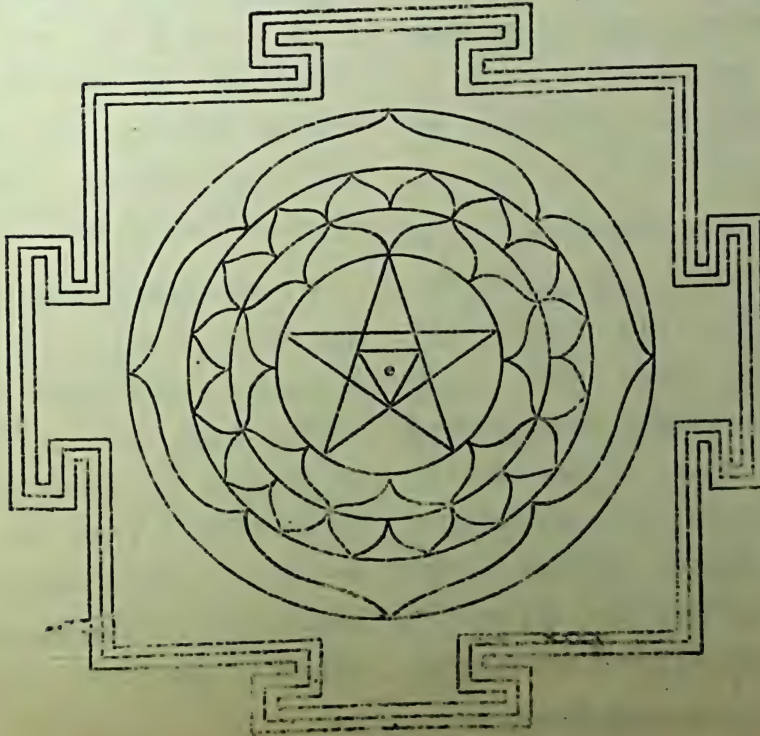
श्रीमातङ्गी-यन्त्रम्

गया । तदनन्तर आद्यशंकराचार्यने दक्षिणमार्गका एक परिष्कृत रूप लोकोपकारार्थ प्रस्तुत किया। आजतक अनवरत रूपसे वही परम्परा चली आ रही है ।

इस मार्गका प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीगौड़पादाचार्य-विरचित 'सुभगोदय-स्तुति' है । शंकरभगवत्पाद-विरचित 'सौन्दर्य-लहरी' में श्रीविद्यामन्त्र, यन्त्र आदिका साङ्गोपाङ्ग विवेचन है । इसकी अनेक आचार्योंद्वारा की हुई अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं । इसके सौ श्लोक सौ ग्रन्थोंके समान हैं । यह भगवतीकी साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति ही है । इसीके आधारपर विरचित पद्धतियाँ दक्षिण भारत और उत्तर भारतसे प्रकाशित हुई हैं । इन पद्धतियोंके अनुसार पूजा करनेमें कम-से-कम ढाई घंटेका समय लगता है । इसकी यह विशेषता है कि इतने समयमें मन इधर-उधर कहीं नहीं जा पाता । फलतः क्रमशः आणव, कार्मिक, मायिक मलोंकी शुद्धिसे उपास्यतत्त्वकी उपलब्धि हो जाती है। **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते'**—इस श्रुतिके अनुसार कर्मकाण्डद्वारा अन्तःकरण शुद्ध होनेपर तत्त्वज्ञानकी स्थिति बनती है । इस प्रकार इस साधनाकी यही विशेषता है कि इससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं ।

यह एक परमकल्याणकारी सरल सुगम साधना है । **'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'** के अनुसार ऐसे कल्याण-कारी कार्योंमें प्रायः विघ्नोंकी सम्भावना रहती है, इसलिये इसमें महागणपतिकी उपासना अनिवार्य है। जैसे राजासे मिलनेके लिये पहले मन्त्रीसे मिलना आवश्यक है वैसे ही मातङ्गीकी उपासना भी इसकी अङ्गभूत है । मातङ्गी पराम्बा राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरीकी मन्त्रिणी हैं । इनके 'श्यामला', 'राजमातङ्गी' आदि नाम हैं । ये भक्तके समस्त ऐहिक मनोरथ पूर्ण करती हैं । शिष्टानुग्रह और दुष्ट-निग्रहके लिये 'वार्ताली'का उपासना-क्रम भी अनुष्ठेय है । ये पराम्बाकी दण्डनायिका (सेनाध्यक्षा) हैं । इनके वाराही, वार्ताली, क्रोडमुखी आदि नाम हैं । ये साधककी सर्वप्रकारसे रक्षा करती और शत्रुओंका दलन करती हैं । इस प्रकार इसमें गणपति-क्रम, श्री-क्रम, श्यामला-क्रम, वार्तालि-क्रम, परा-क्रम—ये पाँच क्रम विहित हैं ।

प्रातःकाल गणपति-क्रम, पूर्वाह्णमें श्री-क्रम, अपराह्णमें श्यामला-क्रम, रात्रिमें वार्ताली-क्रम और उषाकालमें 'परा-क्रम'का विधान है । इन पाँच क्रमोंकी 'सपर्या-पद्धति' भी प्रकाशित है । 'श्रीविद्यारत्नाकर'*में इनके मन्त्र-यन्त्र, पूजाविधान, जप आदिका साङ्गोपाङ्ग विवरण है । इस छोटेसे लेखमें इनका विशद विवेचन सम्भव नहीं है । दीक्षाकालमें ही इनका गुरुद्वारा निर्देश होता है । इन क्रमोंके प्रभावसे ही यह श्रीविद्यासाधना भोग-मोक्ष-प्रदायिनी कही गयी है ।

इस प्रकार श्रीयन्त्रकी पूजामात्रसे ही जीव शिवभाव-को प्राप्त हो जाता है । योग एवं वेदान्त आदि साधन-पथ सर्वसाधारणके लिये सुलभ नहीं; क्योंकि ये अत्यन्त क्लिष्ट और चिरकालसाध्य हैं । इसके विपरीत तान्त्रिक विधिके साधन सरल, सर्वजनोपयोगी तथा शीघ्र ही अनुभूति प्रदान करनेवाले हैं ।

श्रीयन्त्रकी पूजामात्रसे आत्मज्ञान कैसे होता है, इसका संक्षिप्त परिचय देना हो तो कहा जायगा कि समस्त साधन-सरणियोंका चरम लक्ष्य है 'मनोनिग्रह'—मनकी एकाग्रता । यदि उत्तमोत्तम साधन-मार्ग भी अपनाया गया, किंतु मन एकाग्र नहीं हुआ तो सारा प्रयास विफल है । **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।'** सांसारिक व्यवहारसे लेकर निर्गुण ब्रह्मज्ञानतक मन ही कारण है । मनोयोग ही समस्त कार्य-कलापोंमें प्रधान है ।

* यह ग्रन्थ पूज्य श्रीकरपात्री स्वामीजीद्वारा संगृहीत है ।

श्रीसदाशिवप्रोक्त आगम-साधना-सरणिमें तो समस्त क्रियाएँ ही मनके एकाग्र करनेके लिये बतायी गयी हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम्॥

अर्थात् 'जो शीघ्र हृदयग्रन्थिका भेदन चाहता है, वह तान्त्रिक विधिसे केशवकी आराधना करे।' 'केशव' यह उपलक्षण है, किसी देवताकी साधना करे।

'श्रीविद्या-साधना' तन्त्र-शास्त्रोंमें सर्वोच्च मानी गयी है। इसे भगवती पराम्बाके निर्बन्धसे भगवान् विश्वनाथने प्रकट किया है। अतः इसमें मनको एकाग्र करनेकी विशिष्ट क्रियाएँ समवेत की गयी हैं। देखिये, श्रीयन्त्रकी पूजामें मनको किस प्रकार एकाग्र करनेकी विलक्षण प्रक्रिया है—

देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।

देवता बनकर ही देवताका पूजन करनेका शास्त्रका आदेश है। इस पूजामें सर्वप्रथम भूतशुद्धिका स्पष्ट विधान है। जिसमें प्राणायामद्वारा हृदयमें स्थित पापपुरुषका शोषण-दहनपूर्वक शाम्भव-शरीरका उत्पादन कर पञ्चदश-संस्कार, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकादि-न्यासोंसे मन्त्रमय शरीर बनाया जाता है, जिससे देव-भावकी उत्पत्ति होती है। तन्त्रोंमें महाषोढा न्यासादिका महाफल लिखा है—**'एवं न्यासकृते देवि साक्षात् परशिवो भवेत्'**। इस प्रकार स्वस्थ मन, स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धित वस्तुओंसे सुरभित वातावरणमें यह पूजा की जाती है।

श्रीयन्त्रकी पूजा करनेके लिये कलश, सामान्यार्घ्यपात्र, विशेषार्घ्य (श्रीपात्र), शुद्धिपात्र, गुरुपात्र, आत्मपात्र आदि पूजा-पात्रोंका आसादन होता है।

सामान्यार्घ्यकी स्थापनाको ही लीजिये तो पहले पात्राधारके लिये एक मण्डल बनाया जाता है। उसका मूल मन्त्रके षडङ्गसे अर्चन होता है। फिर उसपर आधारका स्थापन होता है। उसमें अग्नि-मन्त्रसे अग्निमण्डलकी भावना की जाती है एवं दस वह्निकलाओंका पूजन होता है। तदनन्तर आधारपर सामान्यार्घ्य-पात्रका स्थापन किया जाता है। फिर उसमें सूर्य-मन्त्रसे सूर्यमण्डलकी भावना कर द्वादश सूर्यकलाओंका अर्चन होता है। फिर कलाओंका पूजन होता है। फिर षडङ्ग अर्चन किया जाता है। इस प्रकार सामान्यार्घ्य-स्थापना करनेमें इतना क्रिया-कलाप है। विशेषार्घ्य-स्थापनमें इससे भी अत्यधिक प्रपञ्च है। इस तरह पात्रोंको स्थापन करनेकी क्रियामें ही मनको इतना समाहित किया जाता है। फिर अन्तर्याग, बहिर्याग, चतुःषष्टी उपचार, श्रीचक्रमें स्थित नवावरणमें शताधिक शक्तियोंका अर्चन, जिसमें तत्तत्-शक्तियोंका मन्त्रोच्चारण, श्रीयन्त्रके तत्तत् कोणमें स्थित तत्तत् शक्तिका ध्यान, पुष्पाक्षत-निक्षेप एवं श्रीपात्रामृतसे तर्पण—यह क्रिया एक शक्तिके अर्चनमें एक साथ होनी आवश्यक है। इसमें किंचित् भी मन विचलित हुआ तो पूजन-क्रममें व्याघात उत्पन्न हो जाता है। अतः इन क्रियाओंके सम्पादनमें साधकका मन बलात् एकाग्र हो जाता है।

इस प्रकार पूजाके अनवरत प्रयोगसे शनैः-शनैः मनका चाञ्चल्य दूर होकर वह समाहित होने लगता है। मनकी यही स्थिति ध्यान एवं समाधि-अवस्थाकी प्राप्तिमें सहायक सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार इसी जीवनमें क्रमशः श्रीयन्त्रकी यह पूजा जीवन्मुक्तावस्था एवं शिवत्वभावकी प्राप्तिका अनुपमेय अमोघ साधन है, जैसा कि कहा है—

एवमेव महाचक्रसंकेतः परमेश्वरि।
कथितस्त्रिपुरादेव्याः जीवन्मुक्तिप्रवर्तकः॥

श्रीविद्या-मन्त्र

श्रीविद्या-मन्त्र श्रीयन्त्रकी पूजाका अभिन्न अङ्ग है। मन्त्रके चार रूप हैं—बाला त्रिपुरसुन्दरी त्र्यक्षरी, पञ्चदशाक्षरी, षोडशी एवं महाषोडशी। फिर इनके अनेक अवान्तर भेद हैं। इनमें कादि और हादि दो मुख्य भेद प्रचलित हैं। कादि मन्त्रकी उपासना-परम्परा अत्यन्त विशाल है। आचार्य शंकरने भी 'त्रिशती'पर भाष्य लिखकर कादि मन्त्रको ही विशेष महत्त्व दिया है। इसे सत्तर करोड़ मन्त्रोंका सार माना जाता है।

वर्णमालाके पचास अक्षर हैं। इन्हीं पचास अक्षरोंसे समस्त वेदादि-शास्त्र एवं समस्त मन्त्रविद्या ओत-प्रोत हैं। इस वर्णमालाका नाम 'मातृका' है। यह समस्त वाङ्मय एवं विश्वकी प्रसवित्री है। 'नित्याषोडशिकार्णव'की मातृका-स्तुतिमें सर्वप्रथम मङ्गलाचरणके रूपमें इसीका उल्लेख है। कहा है कि जिसके अक्षररूप महासूत्रमें ये तीनों जगत्—स्थूल, सूक्ष्म, समस्त ब्रह्माण्ड अनुस्यूत है, उस सिद्ध मातृकाको हम प्रणाम करते हैं—

यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्॥

भगवान् सदाशिवने मातृकाके सारसर्वस्वसे अचिन्त्य, अनन्त, अप्रमेय, महाप्रभावशाली महामन्त्रका प्राकट्य किया है। 'योगिनीहृदय'ने इसे जगत्के माता-पिता—शिव-शक्तिके सामरस्यसे समुद्भूत माना है—

शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः।

वेदविद्याके मन्त्र प्रकट हैं, जब कि श्रीविद्या-मन्त्र गुप्त है। श्रीविद्याका मन्त्र सम्प्रदायपुरस्सर गुरुपरम्पराके द्वारा प्राप्त करनेसे ही इसके रहस्यका ज्ञान हो सकता है। इस मन्त्रके अनेक आकार-प्रकार हैं। इसके छः प्रकारके अर्थ हैं—भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगमार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ और महातत्त्वार्थ। यह सब गुरु-परम्पराके द्वारा ही लभ्य है। 'योगिनीहृदय'में यही कहा गया है—

मन्त्रसंकेतकस्तस्या नानाकारो व्यवस्थितः।
नानामन्त्रक्रमेणैव पारम्पर्येण लभ्यते॥

इस मन्त्रके गूढ़ रहस्योंका ज्ञान परम्परासे साधना करनेवालोंको ही होता है। यदि कोई पुस्तकमें पढ़कर या अन्य छल-छिद्रोंसे इस मन्त्रको प्राप्त करता और अपने ज्ञानके गर्वसे मनमाने ढंगसे जपता है तो लाभकी जगह हानि ही होती है, जैसा कि कहा है—

पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विताः।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचयः॥
(यो० हृ०)

अतः गुरुपरम्परासे प्राप्त इस विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेसे उत्तमोत्तम फल प्राप्त होते हैं। यह विद्या ज्ञानमात्रसे भवबन्धनसे छुटकारा, स्मरणसे पापपुञ्जका हरण, जपसे मृत्युनाश, पूजासे दुःख-दौर्भाग्य-व्याधि और दरिद्रताका विध्वंस, होमसे समस्त विघ्नोंका शमन, ध्यानसे समस्त कार्यसाधन करनेवाली है।

श्रीविद्यामन्त्रमें समस्त मन्त्रोंका समावेश है। 'योगिनीहृदय'में कहा है—

वागुरामूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः।
तथा मन्त्राः समस्ताश्च विद्यायामत्र संस्थिताः॥

'जैसे मत्स्य फँसानेके जालके सभी तन्तु लोहेके वलयमें पिरोये रहते हैं, वैसे ही इस श्रीविद्यामन्त्रमें समस्त मन्त्र ओत-प्रोत हैं।' इसके समान या इससे उत्तम दूसरा मन्त्र नहीं है।

कुण्डलिनी शक्तिसे इस मन्त्रका साक्षात् सम्बन्ध है। तन्त्रमार्गकी साधनाका कुण्डलिनी-जागरण ही प्रधान अङ्ग है। यह मन्त्रयोगसे ही सरलतासे यथाशीघ्र

सिद्ध होनासम्भव है। इसलिये शास्त्रोंमें इसकी महिमा और गरिमाका अत्यधिक वर्णन है। यही श्रीविद्याका सूक्ष्मरूप कहा जाता है। इसके उच्चारण और जपविधिमें ही रहस्य भरा हुआ है।

तन्त्रोंमें महाषोडशीके मन्त्रका एक बार भी उच्चारण महाफलप्रद लिखा है—

वाक्यकोटिसहस्रेषु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्योऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्॥
एकोच्चारणं देवेशि वाजपेयस्य कोटयः।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा॥
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः।
तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा॥

स्वयं भगवान् सदाशिव पार्वतीसे कहते हैं कि कोटि-कोटि वाक्योंसे एवं कोटि-कोटि जिह्वासे भी श्रीविद्या षोडशाक्षरीका मैं वर्णन नहीं कर सकता। एक बार उच्चारणमात्रसे कोटि वाजपेय यज्ञ, सहस्रों अश्वमेध यज्ञ, समस्त पृथिवीकी प्रदक्षिणा एवं काशी आदि तीर्थोंकी करोड़ों बार यात्रा इस श्रीविद्यामन्त्रके समान नहीं है। हे देवेशि! इसमें कोई संशय नहीं।

साधकका कर्तव्य है कि वह स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन, सूक्ष्मरूप श्रीमन्त्र और पररूप शरीरको ही श्रीचक्र-रूपमें भावित कर कृतकृत्य हो जाय।

श्रीविद्याके पररूपकी उपासनाका फल भावनोपनिषद्में लिखा है—**'एवं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स शिवयोगीति निगद्यते।'** इस प्रकार भावना करनेवाला जीवन्मुक्त होता है और वह शिवयोगी कहा जाता है। इस भावनोपनिषद्की प्रयोगविधि महायाग-क्रममें भास्करराय लिखते हैं—**'तस्य देवतात्मैक्यसिद्धिः तस्य चिन्तितकार्याणि अयत्नेन सिद्ध्यन्ति'** अर्थात् उस साधकका देवताके साथ तादात्म्यभाव हो जाता है और उसके चिन्तित कार्य बिना यत्नके ही सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट श्रीविद्याकी साधना-सरणिके यथार्थ रूपका उल्लेख सर्वथा असम्भव है। संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि इस श्रीविद्या-साधना-पद्धतिका अनुष्ठान और प्रचार चार भगवत्-अवतारों—भगवान् दत्तात्रेय, श्रीपरशुराम, भगवान् हयग्रीव एवं भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यने किया और इसे सर्वजनोपयोगी सरल बनानेमें उत्तरोत्तर श्लाघनीय कार्य किया। भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग आदि समस्त साधन-मार्गोंका यह समुच्चय है। जिस स्तरका साधक हो, उसके लिये तदनुकूल साधनाका उच्चतम एवं श्रेष्ठतम सुन्दर विधान परिलक्षित हो जाता है। अतः इसकी उपादेयता सर्वोत्तम मानी जाती है। यही साक्षात् ब्रह्मविद्या है।

भगवत्पाद आचार्य शंकर कहते हैं कि सरस्वती ब्रह्माकी गृहिणी हैं, विष्णुकी पत्नी पद्मा, शिवकी सहचरी पार्वती हैं। किंतु आप तो कोई अनिर्वचनीया तुरीया हैं, समस्त विश्वको विवर्त करनेवाली दुरधिगम-निस्सीम-महिमा महामाया परब्रह्मकी पट्टमहिषी—पटरानी हैं—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥
(सौ० ल० ९२)

श्रीविद्याके लीला-विग्रह—एक कथानक

यों तो श्रीविद्याके लीला-विग्रह अनन्त हैं, फिर भी त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्ड-पुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें मुख्य विग्रहोंका परिगणन किया गया है। उन्हीं दस विग्रहोंकी सेतिहास झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) **कुमारी**—सर्वप्रथम इन्द्रादि देवोंके गर्व-परिहारके लिये माता श्रीविद्या कुमारीरूपसे 'बालाम्बा'के रूपमें प्रकट हुईं।

(२) **त्रिरूपा**—कारणपुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिवको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति और संहारात्मक कार्योंमें सहायता करनेके लिये श्रीविद्या माताने वाणी, रमा तथा रुद्राणी शक्तियोंको अपने शरीरसे उत्पन्न किया और तीनों देवियोंका तीनों देवोंसे विवाह करा दिया।

(३) **गौरी** और (४) **रमा**—मर्त्यलोकमें मानवोंद्वारा यज्ञ-यागादि कर्मोंके न होनेसे इन्द्रादि देव चिन्तित हुए। फिर ब्रह्मदेवके आदेशानुसार उन लोगोंने श्रीमहालक्ष्मीकी आराधना की। श्रीमहालक्ष्मीने अपने पुत्र कामदेवको देवकार्यमें सहायता करनेके लिये भेजा। कामदेवका भूलोकाधिपति राजा वीरव्रतके सैनिकोंसे घोर युद्ध हुआ जिसमें कामदेवने सबको भगा दिया। राजा वीरव्रतने इस आपत्तिके निवारणार्थ भगवान् शंकरकी आराधना की। शंकरसे विजय-प्राप्तिका वरदान पाकर राजाने कामदेवसे पुनः युद्ध छेड़ दिया। उसने शंकरप्रेषित त्रिशूलात्मक बाण कामदेवपर चलाकर उसे धराशायी कर दिया।

लक्ष्मीजीके दूतोंने जब कामदेवका निश्चेष्ट शरीर लक्ष्मीजीके पास पहुँचाया, तब उन्होंने त्रिपुराम्बा-प्रसादसे अमृतद्वारा उसे पुनरुज्जीवित कर दिया। शंकरके प्रभावसे अपनी पराजय तथा मृत्युका वृत्तान्त सुननेके साथ ही कामदेवके मनमें शंकरके प्रति घोर द्वेषकी गाँठ पड़ गयी। उसने त्रिपुराम्बाकी आराधना-द्वारा बल-संचय कर शंकरको हरानेकी अपने मनमें प्रतिज्ञा की।

इतनेमें ही श्रीमहालक्ष्मीने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना की। तदनुसार त्रिपुराम्बाद्वारा प्रेषिता गौरी वहाँ प्रकट हुई। श्रीमहालक्ष्मीने कामदेवकी पराजय तथा उसकी प्रतिज्ञा आदिका वृत्तान्त गौरीको सुनाकर इस आपत्तिके निवारणका उपाय पूछा।

गौरीने लक्ष्मी तथा कामदेव दोनोंको समझाते हुए कहा कि 'शंकरजी सर्वश्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्धा करना उचित नहीं। उन्हींकी आराधना कर अपना अभीष्ट प्राप्त करना उचित होगा।' गौरीकी उक्ति सुनकर कामदेव रुष्ट हो गया और उसने शंकरको जीतनेकी अपनी प्रतिज्ञासे टस-से-मस न होनेकी बात कही। यह सुनकर गौरी भी क्रुद्ध हो उठीं और उन्होंने कामदेवको शाप दे डाला—'तुम शिवजीके द्वारा दग्ध हो जाओगे।'

प्रिय पुत्रको गौरीद्वारा शापित सुनकर महालक्ष्मीने भी गौरीको शाप दे डाला कि 'तुम भी पतिनिन्दा सुनकर दग्ध हो जाओगी।' महालक्ष्मीका यह शाप सुनकर गौरीने भी लक्ष्मीको शाप दिया—'तुम पतिविरहका दुःख तथा सपत्नियोंसे क्लेश पाओगी।' परिणामस्वरूप लक्ष्मी और गौरीमें युद्ध आरम्भ हो गया। परस्परके प्रहारसे दोनों मूर्च्छित होने लगीं। किसी तरह ब्रह्मा और सरस्वतीके बीच-बचावसे वह युद्ध शान्त हुआ।

शिवजीको जीतनेकी अभिलाषासे कामदेवने अपनी माता महालक्ष्मीसे त्रिपुराम्बाके सौभाग्याष्टोत्तरशतनाम-

स्तोत्रका उपदेश ग्रहण कर मन्दराचलकी गुफामें बैठ आराधना आरम्भ कर दी। कुछ दिन बाद त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर स्वप्नमें कामदेवको अत्यन्त गुप्त पञ्चदशी विद्याका उपदेश दिया। दिव्य वर्षत्रयतक कामदेवने एकाग्रभावसे श्रीमाताकी आराधना की। भगवतीने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और 'काम! आजसे तुम अजेय हुए'—यह कहते हुए अपने धनुष और शरोंसे धनुष और शर उत्पन्न कर कामदेवको सौंप दिये।

दक्षयज्ञमें पतिनिन्दा सुनकर भस्मीभूत सतीरूपा गौरी नभोरूपमें स्थित हो गयीं और कुछ समय बाद हिमाचलकी कठोर आराधनासे प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी कन्या बनना स्वीकार कर लिया। कालान्तरमें वे पर्वतराजपुत्री उमारूपमें प्रकट हुईं।

इधर तारकासुर-वधमें शिवपुत्रको सेनापति बनाना आवश्यक समझकर इन्द्रने शिवका तपोभङ्ग करनेके लिये कामको आज्ञा दी; किंतु गौरीके समक्ष ही शिवजीने अपने तृतीय नेत्रसे कामको दग्ध कर डाला।

(५) भारती—एक बार ब्रह्मदेवकी सभामें देवर्षिद्वारा सावित्रीकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेवने उसका उपहास किया। सावित्रीने इससे अपना अपमान समझकर ब्रह्मदेवको खूब फटकार सुनायी; तब ब्रह्माजी बिगड़कर बोले—'पतिका अपमान करनेवाली तुम पत्नीत्वके योग्य नहीं रही। आजसे यज्ञोंमें मेरे साथ न बैठ सकोगी।' सावित्रीने भी बिगड़कर कहा—'यदि मैं तुम्हारी पत्नी होने योग्य नहीं तो शूद्रकन्या तुम्हारी पत्नी होगी।'

दोनोंके क्रोधसे जगत्‌में व्याकुलता देखकर हरि और हरने दोनोंको आश्वस्त करते हुए कहा कि 'देहान्तरमें सावित्री ही शूद्रकन्या होगी।' फिर भी ब्रह्मा और सावित्री पूर्णतः शान्त नहीं हुए। ब्रह्माने सावित्रीको 'शूद्रकन्या-जन्ममें पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण न रहनेका शाप दिया तो प्रत्युत्तरमें सावित्रीने भी ब्रह्माजीको निन्द्य-स्त्रीमें कामुक होनेका शाप दिया।

एक बार ब्रह्माजीने यज्ञ करनेका विचार किया और सावित्रीको बुलाया, किंतु वह न आयी। मुहूर्तका अतिक्रमण होनेके भयसे विष्णुने भूतलसे एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्माका विवाह कर दिया और यज्ञ यथाविधि पूरा हो गया। इससे सावित्री अत्यन्त क्रुद्ध हुई, उसके क्रोधसे त्रैलोक्य जलने लगा। तब पार्वतीकी प्रार्थनापर त्रिपुराम्बाने आविर्भूत होकर सावित्रीको शान्त किया। यही भारती हुई।

(६) काली—एक बार आदिदैत्य मधु और कैटभके कुलमें उत्पन्न शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या कर ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त कर लिया। फिर क्या था? तीनों लोकोंपर उन दोनों असुरबन्धुओंने आक्रमण किया। सारे देवता स्वर्गसे निर्वासित कर दिये गये। ब्रह्मा, विष्णु, शिवसहित इन्द्रादि देवोंने जाह्नवी-तटपर **'नमो देव्यै'** इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बाकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीका रूप धारण किया और शुम्भ-निशुम्भद्वारा प्रेषित असुर-सेनापति चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंका वध किया।

(७) चण्डिका और (८) कात्यायनी—भगवती श्रीविद्याके छठे, सातवें, आठवें अवतारोंकी कथाएँ सप्तशतीस्तोत्रमें प्रसिद्ध तथा सर्वविदित हैं। अतएव यहाँ उसका विशेष उल्लेख अनावश्यक है।

(९) दुर्गा—महिषासुरको मारनेके लिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें श्रीमाता श्रीविद्याने अवतार ग्रहण किया। यह कथा भी सप्तशतीके मध्यम चरित्रमें प्रसिद्ध है।

(१०) ललिता—पूर्वकालमें भण्ड नामक एक असुरने श्रीशिवजीकी आराधना की और उनसे अभयरूप वर प्राप्तकर वह त्रिलोकीका अधिपति बन बैठा। उसने

देवताओंके हविर्भागका भी स्वयं ही भोग आरम्भ कर दिया। इन्द्राणीको भी वह हरनेकी बात सोचने लगा तो वे भयसे गौरीके निकट आश्रयार्थ पहुँचीं। इधर भण्डने 'विशुक्र' को पृथिवीका और 'विषङ्ग'को पातालका आधिपत्य सौंप दिया और स्वयं इन्द्रासनपर आरूढ़ होकर इन्द्रादि देवताओंको अपनी पालकी ढोनेमें नियुक्त किया। दयावश शुक्राचार्यजीने इन्द्रादिकोंको इस दुर्गतिसे मुक्त किया। भण्ड दैत्यने असुरोंकी मूल राजधानी 'शोणितपुर'-को मयासुरद्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवाकर उसका नया नाम 'शून्यकपुर' रखा और वहाँ वह राज्य करने लगा।

स्वर्गको तो दैत्यराज भण्डने नष्ट कर ही डाला, दिक्पालोंके स्थानोंपर भी अपने दैत्योंको बैठा दिया। इस प्रकार एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंपर भण्डने आक्रमण किये और उन सबको अपने अधिकारमें कर लिया।

इसके पश्चात् पुनः भण्ड दैत्यने घोर तपस्या कर शिवजीसे अमरत्वका वरदान प्राप्त कर लिया। 'इन्द्राणीने गौरीका आश्रय लिया है' यह जानकर वह कैलास पहुँचा और गणेशजीकी भर्त्सना कर उनसे इन्द्राणीको अपने लिये माँगने लगा।

गणेशजी बिगड़कर प्रमथादि गणोंको साथ लेकर उससे युद्ध करने लगे। पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त देखकर उसकी सहायताके लिये गौरी अपनी कोटि-कोटि शक्तियोंके साथ युद्धस्थलमें उतरीं और दैत्योंसे युद्ध करने लगीं। इधर गणेशजीकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होते ही भण्डासुरने उन्हें अंकुशके आघातसे मार गिराया। गौरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हुईं और हुँकारसे भण्डको बाँधकर ज्यों ही मारनेके लिये उद्यत हुईं त्यों ही ब्रह्माजीने गौरीको शंकरजीके अमरत्व-वरका स्मरण दिलाया। विवश होकर गौरीने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार भण्ड दैत्यसे त्रस्त हो उठनेपर इन्द्रादि देवोंने गुरुके आज्ञानुसार हिमाचलमें त्रिपुरादेवीके उद्देश्यसे 'तान्त्रिक महायाग' आरम्भ कर दिया। अन्तिम दिन याग समाप्तकर जब देवलोग माता श्रीविद्याकी स्तुति कर रहे थे, तब उसी क्षण यज्ञकुण्डकी ज्वालाके बीचसे महाशब्दपूर्वक अत्यन्त तेजस्विनी 'त्रिपुराम्बा' प्रादुर्भूत हुईं। उस महाशब्दको सुनकर तथा लोकोत्तर प्रकाश-पुञ्जको देखकर गुरु बृहस्पतिको छोड़ सभी देव अन्धे-बहरे होकर मूर्च्छित हो गये।

गुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माने हर्षगद्गद-स्वरसे श्री-विद्यामाताकी स्तुति की। श्रीमाताने प्रसन्न होकर उनका अभीष्ट पूछा। उन्होंने भी भण्डासुरकी कथा सुनाकर उसके नाशकी प्रार्थना की। माताने उसे मारना स्वीकार किया और मूर्च्छित इन्द्रादि देवोंको अपनी अमृतमय कृपा-दृष्टिसे चैतन्य प्रदान किया तथा अपने दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन्हें विशेषरूपसे तपस्या करनेकी आवश्यकता बतलायी। देव लोग भी माताके आज्ञानुसार तपस्यामें जुट गये।

इधर भण्डासुरने देवोंपर धावा बोल दिया। कोटि-कोटि सैनिकोंके साथ आते हुए भण्ड दैत्यको देखकर देवोंने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना करते हुए अपने शरीरोंको अग्नि-कुण्डमें होम दिये। त्रिपुराम्बाके आज्ञानुसार 'ज्वालामालिनी' शक्तिने देवगणोंके चारों ओर ज्वाला-मण्डल प्रकट कर दिया। देवोंको ज्वालामें भस्मीभूत समझकर भण्ड दैत्य सैन्यके साथ वापस चला गया।

दैत्यके जानेके बाद देवतागण अपने अवशिष्टाङ्गोंकी पूर्णाहुति करनेके लिये ज्यों ही उद्यत हुए त्यों ही ज्वालाके मध्यसे तडित्पुञ्जनिभा 'त्रिपुराम्बा' आविर्भूत हुईं। देवोंने जयघोषपूर्वक पूजनादिद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। देवोंको अपना दर्शन सुलभ हो, इसलिये श्रीमाताने विश्वकर्माके द्वारा सुमेरु-शृङ्गपर निर्मित श्रीनगरमें सर्वदा निवास करना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीचक्रात्मक रथपर आरूढ़ होकर भण्ड दैत्यको मारनेके लिये प्रस्थान किया। दोनोंके बीच महाभयानक युद्ध हुआ। श्रीमाताके कुमार श्रीमहागणपति तथा कुमारी बालाम्बाने भी युद्धमें अत्यधिक पराक्रम दिखाया। श्रीमाताकी मुख्य दो शक्तियों—१—मन्त्रिणी 'राजमातङ्गीश्वरी और २—दण्डिनी, 'वाराही' तथा अन्य अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमद्वारा दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी।

अन्तमें बड़ी कठिनाईसे जब श्रीमाताने महाकामेश्वरास्त्र चलाया, तब सपरिवार भण्ड दैत्य कथाशेष हो गया। देवोंका भय दूर हो गया और वे स्वर्गमें अपने-अपने पदोंपर पूर्ववत् अधिष्ठित हो गये। दैत्यद्वारा आक्रान्त एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंमें भी चैनकी वंशी बजने लगी।

श्रीयन्त्रकी साधना

(आचार्य श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री, पीताम्बरापीठ)

भारतवर्षमें तान्त्रिक धाराका प्रवाह अनादिकालसे प्रवाहित होता रहा है। वैदिक वाङ्मयमें स्थल-स्थलपर इसके उदाहरण स्पष्ट दिखायी देते हैं। तान्त्रिक विचार-धाराका प्रभाव सभी मतोंपर पड़ा है। जैन, बौद्ध, शैव एवं वैष्णव-साधनाओंमें भी इसको अङ्गीकृत किया गया है। भारतके बाहर अन्य देशोंमें भी जहाँ भारतीय साधनाका विस्तार हुआ है, वहाँ भी तान्त्रिक विचारधाराका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस सम्बन्धमें 'चीनाचार' का उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा। 'योगिनी-तन्त्र'के अनुसार गुरु और देव-पूजामें शुद्ध बुद्धि रखनेवाले सभी वर्णोंके लोगोंको इस साधनामें अधिकार प्राप्त है—

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा अर्चायां शुद्धबुद्धयः।
गुरुदेवद्विजार्चासु रताः स्युरधिकारिणः॥

इसी प्रकार श्रीविद्यार्णव-तन्त्र (पृ० ३०)में भी कहा गया है—

त्रिपुराद्याश्च ये मन्त्रा ये मन्त्रा वटुकादयः।
सर्ववर्णेषु दातव्याः पुरन्ध्रीणां विशेषतः॥

अर्थात् 'भगवती त्रिपुरा एवं भगवान् वटुकभैरवके मन्त्रोंको सभी वर्णों—विशेषतः स्त्रियोंको दिये जानेमें कोई आपत्ति नहीं है।' अस्तु! तान्त्रिक-साधनामें श्रीयन्त्रकी उपासनाका विशेष महत्त्व है। तान्त्रिक वाङ्मयमें इस उपासनाका विशद विवेचन प्राप्त होता है। दार्शनिक विवेचन भी प्रभूतमात्रामें उपलब्ध होता है। इस साधनामें पूरा जीवन समर्पित करना पड़ता है। यह साधना ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है।

ललिता, षोडशी, श्रीविद्या आदि नाम भगवती त्रिपुर-सुन्दरीके ही हैं। श्रीविद्याकी व्युत्पत्ति करते हुए व्याडि-कोशमें कहा गया है—

लक्ष्मीसरस्वतीधात्रीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु।
उपकरणवेषरचनाविद्यासु श्रीरिति प्रथिता॥

अर्थात् लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्माणी—तीनों लोकोंकी सम्पत्ति एवं शोभाका ही नाम श्री है।

'त्रिपुरा' शब्दका अर्थ बताते हुए **'शक्तिमहिम्नः-स्तोत्र'** (पृ० ४) में कहा गया है—**'तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा।'** अर्थात् जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—इन तीनोंसे पुरातन हो वही त्रिपुरा हैं। 'त्रिपुरार्णव' ग्रन्थमें कहा गया है—

नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गला त्विडा।
मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात् तु त्रिपुरा मता॥

अर्थात् 'सुषुम्ना, पिंगला और इडा—ये तीनों नाडियाँ हैं और मन, बुद्धि एवं चित्त—ये तीन पुर हैं। इनमें रहनेके कारण इनका नाम त्रिपुरा है।'

'ललिता' नामकी व्युत्पत्ति पद्मपुराणमें कही गयी है—'**लोकानतीत्य ललते ललिता तेन चोच्यते ।**' जो संसारसे अधिक शोभाशाली है, वही ललिता है । ललितासहस्रनाम-भाष्यमें भी कहा गया है—'**ललितं शृङ्गारभावजन्यः क्रियाविशेषः, तद्वती ललिता । तेन शृङ्गाररसप्रधानेयं मूर्तिरिति ध्वनितम् ।**' इसमें इन्हें शृङ्गाररसप्रधान बताया गया है ।

तन्त्रशास्त्रमें भगवती त्रिपुरसुन्दरीका महत्त्व सर्वोपरि बताया गया है । कहा गया है—

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शंकरोपमः ।
न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरापरा ॥

अन्यत्र इनके महत्त्वके सम्बन्धमें कहा गया है कि जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं, किंतु भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनेवालोंके लिये भोग और मोक्ष दोनों ही सहज हैं—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥
(मङ्गलस्तव)

ब्रह्माण्डपुराणमें कहा गया है—

येनान्यदेवतानाम कीर्तितं जन्मकोटिषु ।
तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने ॥

अर्थात् 'जिसने अनेक जन्मोंमें बहुत साधना की हो उसीको श्रीविद्याकी उपासनाका सौभाग्य प्राप्त होता है ।'

ललिताकी महिमाके सम्बन्धमें परशुरामकल्पसूत्रमें कहा गया है—

पञ्चदशीं षोडशीं च तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
चाण्डालेभ्योऽपि गृह्णीयाद् यदि भाग्येन लभ्यते ॥

श्रीविद्याकी साधनाके सम्बन्धमें नित्योत्सवमें कहा गया है—

'**इत्थं विदित्वा विधिवदनुतिष्ठन् कुलधर्मनिष्ठः सर्वथा कृतकृत्यो भवति । तस्य शरीरत्यागे श्वपचगृहे वा काश्यां वा न विशेषः । स तु जीवन्मुक्तो भवति ।**' अर्थात् जो श्रीविद्याकी साधनाको जान लेता है, वह धन्य हो जाता है, उसकी मृत्युके लिये चाण्डाल-गृह या काशीमें कोई अन्तर नहीं रह जाता । वह तो जीवन्मुक्त हो जाता है ।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीके चौदह (मतान्तरसे १३+१२=पचीस) उपासक प्रसिद्ध हैं । जैसे—मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामराज, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, दुर्वासा, दत्तात्रेय तथा दक्षिणामूर्ति । इन उपासकोंके भेदसे भगवतीकी साधना एवं मन्त्रोंमें भी भेद है । उदाहरणके लिये बाला-त्रिपुरसुन्दरीके मन्त्रका जो तृतीय बीज '**सौः**' है, वह आनन्दभैरवके मतसे 'बिन्दु'वाला है । दक्षिणामूर्तिके मतसे 'विसर्गयुक्त' है तथा हयग्रीवके मतसे 'बिन्दु-विसर्ग' दोनोंसे युक्त है ।

श्रीचक्रराजके निम्नलिखित नौ चक्र हैं । त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशापरिपूरक, सर्वसंक्षोभण, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थ-साधक, सर्वरक्षाकर, सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद और सर्वा-नन्दमय । इनकी अधिष्ठात्री नव चक्रेश्वरी हैं । श्रीचक्र-राजकी आवरण-पूजासे पूर्व लयाङ्गपूजा, षडङ्गार्चन, नित्यादेवी-पूजन और गुरुमण्डलार्चन होता है । बादमें नवावरणमयी पूजा होती है । नवावरणके पश्चात् पञ्चलक्ष्मी, पञ्च-कोशाम्बा, पञ्चकल्पलता, पञ्चकामदुघा और पञ्च रत्नाम्बाका पूजन होता है । बादमें षडदर्शन-विद्या, षडाधार-पूजा एवं आम्नाय-समष्टि-पूजा होती है । श्रीचक्रराजके विषयमें तीन मत प्रसिद्ध हैं । हयग्रीव-मत, आनन्दभैरव-मत और दक्षिणामूर्ति-मत । हयग्रीव और आनन्दभैरव-मतमें नौ चक्र माने जाते हैं, किंतु दक्षिणामूर्ति-मतमें वृत्तत्रयको भी एक चक्र मानते हैं जिसका नाम है 'त्रैवर्गसाधना-चक्र' ।

भगवतीके चार आयुध हैं—१—धनुष, २—बाण, ३—पाश और ४—अंकुश । मन ही धनुष है, राग पाश है,

द्वेष अङ्कुश है तथा पञ्चतन्मात्राएँ पुष्पबाण हैं। पाशको इच्छाशक्ति माना गया है, अंकुश ज्ञानरूप है तथा बाण एवं धनुष क्रियाशक्तिमय हैं। वामकेश्वर-तन्त्रमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भगवतीके पाँच बाण माने गये हैं और मनको धनुष बताया गया है। कादि-मतमें बाणोंके विषयमें लिखा है कि भगवतीके बाण स्थूल, सूक्ष्म और पर-भेदसे तीन प्रकारके हैं। स्थूल बाण फूलोंके हैं, सूक्ष्म मन्त्रमय हैं और पर वासनामय हैं। कालिकापुराणमें इन्हीं पाँच बाणोंको हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नामसे कहा गया है। ज्ञानार्णव-तन्त्रमें इन्हींको क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य और उन्माद नामसे कहा गया है।

इन आयुधोंके महत्त्वके विषयमें शक्तिमहिम्नःस्तोत्र (४५) में कहा गया है कि धनुषका ध्यान करनेसे संसारके महामोहका नाश होता है। बाणोंके ध्यानसे सुखकी प्राप्ति होती है। पाशके ध्यानसे मृत्यु वशमें हो जाती है तथा अंकुशके ध्यानसे मनुष्य मायासे पार हो जाता है।

श्रीचक्रके पूजनमें दो आचार प्रसिद्ध हैं—समयाचार तथा कौलाचार। इस सम्बन्धमें 'सौन्दर्यलहरी' (लक्ष्मीधरी टीका) में कहा गया है—'समयाचार आन्तरिक पूजा है तथा कुलाचार बाह्यपूजा। श्रीचक्रको 'आकाश-चक्र' भी कहा गया है। आकाशके दो भेद हैं, दहराकाश तथा बाह्याकाश। बाह्याकाशमें भूर्जपत्र, चाँदी-सुवर्णके पात्र आदिमें लिखकर श्रीचक्रका पूजन होता है। यही कौल-पूजा है। दहराकाशमें हृद्-व्योममें ही श्रीचक्रका पूजन होता है, यही समयाचार है।' समयाचारमें त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी होता है। कौल-चक्रमें त्रिकोणके मध्य बिन्दु होता है। कौल-चक्रमें नव त्रिकोण होते हैं। इसके बाद दोनों मतोंमें समानता है अर्थात् नव त्रिकोणके पश्चात् अष्टदल-पद्म, षोडशदल-पद्म तथा तीनमें रचनाओं और चतुर्द्वार-युक्त भूपुरत्रय होता है। यही श्रीचक्रका उद्धार है।

समयाचारमें सदाख्य-तत्त्वकी पूजा सहस्रदल-कमलमें ही होती है, बाह्य पीठादिमें नहीं। समयमतानुयायी योगीश्वर जीवन्मुक्त होकर आत्मलीन हो जाते हैं। उन्हें बाह्यपूजाकी आवश्यकता नहीं होती। समय-मतमें मन्त्रका पुरश्चरण, जप एवं होम आदिकी आवश्यकता नहीं होती।

श्रीविद्यार्णव (पृष्ठ १८६)के अनुसार श्रीचक्र-निर्माणके तीन प्रकार हैं—१–मेरुपृष्ठ, २–कैलासपृष्ठ तथा ३–भूपृष्ठ। मेरुपृष्ठ-चक्रमें संहार-क्रमसे पूजन नहीं होता, सृष्टिक्रमसे ही पूजन होता है। संहार-पूजन कैलास-पृष्ठमें उत्तम होता है। भूप्रस्तारमें स्थिति-पूजन कहा गया है। स्थिति-क्रम गृहस्थके लिये, संहारक्रम संन्यासियोंके लिये तथा सृष्टिक्रम ब्रह्मचारी एवं स्त्रियोंके लिये माना गया है। 'रत्न-सागर'में कहा गया है कि सुवर्णमें जीवनपर्यन्त, चाँदीमें बीस वर्ष तथा ताम्रमें बारह वर्ष एवं भूर्जपत्रमें छः वर्षतक पूजनका विधान है। 'श्रीविद्यार्णव'में कहा गया है कि स्फटिकमें सदैव पूजन हो सकता है। स्फटिकके श्रीयन्त्रको सर्वोत्तम माना गया है।

बिन्दुके अष्टकोणतक तीन चक्रोंका नाम 'संहार' है। दोनों 'दशार' तथा 'चतुर्दशार'—ये तीनों चक्र स्थिति-संज्ञात्मक हैं। उसके अपर तीन चक्र सृष्ट्यात्मक हैं। रुद्रयामल तथा त्रिपुरोपनिषद्में श्रीचक्रका उद्धार इस प्रकार बताया गया है—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः॥

अर्थात् बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, दशार-युग्म, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय तथा भूपुरत्रय-यही परदेवताका स्वरूप है। 'सुभगोदय' ग्रन्थमें स्थिति-

क्रमका उद्धार दिया गया है। 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थमें सृष्टि-क्रमका तथा तन्त्रराजमें संहार-क्रमका उद्धार दिया गया है।

'नित्योत्सव' (पृष्ठ ९)में श्रीविद्याके उपासकोंके धर्म बताये गये हैं। जैसे—'किसी भी दर्शनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। अपने इष्ट देवताके अतिरिक्त अन्यको श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये। योग्य शिष्यको ही रहस्य बताना चाहिये। सदैव अपने मन्त्रका चिन्तन करना चाहिये और 'शिवोऽहम्' की भावना करनी चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यको दूर रखना चाहिये। स्त्रियोंसे द्वेष नहीं करना चाहिये। सर्वज्ञ गुरुकी उपासना करनी चाहिये। गुरु-वचनों एवं शास्त्रों-पर संदेह नहीं करना चाहिये। भोगबुद्धिसे रहित होकर कर्म करना चाहिये। अपने वर्ण एवं आश्रमके अनुसार कर्म करना चाहिये। पञ्चमकारकी प्राप्ति न होनेपर भी कर्मलोप नहीं करना चाहिये। सदैव निर्भय रहना चाहिये। उन्हें ईख भी नहीं चूसना चाहिये, सिद्ध द्रव्योंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, स्त्रियोंको ताडित नहीं करना चाहिये। कुलभ्रष्टोंकी संगति नहीं करनी चाहिये। कुल-ग्रन्थोंकी रक्षा करनी चाहिये आदि।

इसी ग्रन्थमें पूर्णता-प्राप्त साधकोंके भी धर्म बताये गये हैं। उनके लिये सभी विषय हवि हैं। इन्द्रियाँ ही स्रुव हैं। परम शिवकी शक्तियाँ ही ज्वाला हैं। स्वात्म-शिव अग्नि है एवं स्वयं होता है। निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति ही फल है, अपने पारमार्थिक स्वरूपका लाभ ही लक्ष्य है।

इस साधनामें गुरु-शिष्यका सम्बन्ध सर्वोपरि है। इस सम्बन्धमें 'श्रीविद्यार्णव' (पृ० १६) में बताया गया है कि शिष्यको श्रद्धावान्, स्थिर-बुद्धि और जितेन्द्रिय होना चाहिये। उसे गुरुमन्त्र और देवतामें ऐक्य-भावना रखनी चाहिये और गुरुके वचनोंका पालन करना चाहिये। गुरुमें मनुष्यबुद्धि नहीं करनी चाहिये। उन्हें शिवस्वरूप ही समझना चाहिये। जो मनुष्य गुरुको मनुष्य समझता है, मन्त्रको अक्षरमात्र समझता है, प्रतिमाको शिला समझता है, उसे नरककी प्राप्ति होती है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर लेता है, किंतु गुरुके रुष्ट होने-पर कोई रक्षा नहीं कर सकता। गुरुके कठोर वचनोंको भी आशीर्वाद समझना चाहिये और उनकी ताड़नाको भी प्रसन्नता समझनी चाहिये।

साधकोंके कर्तव्योंका विवरण भी 'श्रीविद्यार्णव' (पृ० २३) में दिया गया है। जैसे—मन्त्रको गोपनीय रखना चाहिये। मन्त्रोंको गुरुमुखसे ही प्राप्त करना चाहिये। गुरुमुखसे प्राप्त मन्त्र ही सफलता देते हैं। कुल-धर्मका पालन करना चाहिये। गुरु-पत्नी, गुरु-पुत्र, वरिष्ठ साधक, कुल-शास्त्र, योगिनी, सिद्धपुरुष, कन्या तथा स्त्रीका सम्मान करना चाहिये, इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। कुल-वृक्षोंके नीचे सोना नहीं चाहिये, कुल-वृक्षोंको काटना नहीं चाहिये।

श्रीविद्याका दार्शनिक विवेचन भी प्रभूत मात्रामें उपलब्ध होता है। श्रीविद्याके साधकोंको भगवतीके दार्शनिक स्वरूपसे भी परिचित होना चाहिये। यह विषय दुरूह है। गुरुमुखसे एवं अभ्यासके द्वारा इस विषयको समझा जा सकता है। यहाँ लेखके अन्तमें महर्षि पुण्यानन्दनाथद्वारा विरचित 'कामकला-विलास' ग्रन्थके आधारपर दार्शनिक स्वरूपका विवरण दे रहे हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीका श्रीचक्रके साथ तादात्म्य है। शिवसे लेकर पृथ्वीपर्यन्त ३६ तत्त्वमय समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय पराम्बा भगवतीकी क्रीडा है। शक्ति 'विमर्श'-रूपिणी हैं तथा परम शिव 'प्रकाश'—स्वरूप हैं। आदिशक्ति परा भट्टारिका भगवती त्रिपुरसुन्दरी नित्यानन्दमय हैं, न तो कोई उनसे अधिक है और न समकक्ष। वे दृश्यमान चराचर विश्वकी

जन्मदात्री हैं । स्वयंप्रकाशस्वरूप शिव भी इस विमर्श-रूपी आदर्श (दर्पण)में अपने-आपके प्रतिबिम्बको देखकर स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करते हैं । उसी पराशक्तिमें शिव-शक्तिका ऐक्य है । शिव ज्ञानस्वरूप हैं । शक्ति क्रियास्वरूप है । 'अकार' विमर्श है और 'हकार' प्रकाश है । इन दोनोंके मिलनेसे 'अहं' पद ही इनका वाच्य है । महाबिन्दुमें परम शिव शक्तिस्वरूपी दर्पणमें प्रतिबिम्बित हो रहा है । श्वेत-बिन्दु शिवात्मक है । रक्त-बिन्दु शक्त्यात्मक है । रक्त और श्वेत बिन्दुके समागमसे तीसरे मिश्र 'बिन्दु'का आविर्भाव होता है । यही 'अहं' पद है । रक्त-बिन्दु अग्निकला है, श्वेत-बिन्दु चन्द्र-कला है तथा मिश्र-बिन्दु' 'सूर्य-कला' है । ये तीनों बिन्दु त्रिकोणात्मक हैं । इनसे तथा महाबिन्दुसे मिलकर कामकलाकी अभिव्यक्ति होती है । जो कामकलाकी श्रीचक्रके क्रमसे आराधना करते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है । रक्त बिन्दुसे नादकी उत्पत्ति होती है, उससे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा समस्त वर्णमालाकी उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार श्वेतबिन्दुसे भी उत्पत्ति होती है । दोनों बिन्दुओंमें अभेद है । जिस प्रकार दोनों बिन्दुओंमें अभेद है उसी प्रकार 'कादि' तथा 'हादि' दोनों विद्याओंमें भी अभेद है ।

वर्ण, पद एवं मन्त्र—ये शब्दाध्व हैं तथा कला, तत्त्व और भुवन——ये तीन अर्थाध्व हैं । इन्हींसे संसारकी सृष्टि होती है । जिस प्रकार शब्द और अर्थ अभिन्न हैं, उसी प्रकार शिव-शक्तिका ऐक्य है । **ऐं, क्लीं, सौः**-इन तीनों बीजोंद्वारा क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है । प्रमाता, मान तथा मेय अर्थात् परमशिव, पञ्चदशी विद्या एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी——ये तीनों समष्टि-रूपसे निर्वाणरूपी महाबिन्दुमें अवस्थित हैं । इसे ही 'अहं' कहते हैं । यही परब्रह्म-स्वरूप है ।

आकाशका गुण शब्द है । वायुमें आकाश और वायु दोनों हैं । तेजमें आकाश, वायु और तेज तीनों हैं। जलमें जलसहित चार हैं तथा पृथ्वीमें पाँचों हैं । ये कुल मिलाकर पंद्रह होते हैं । यही पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या है । पञ्चदशी-मन्त्र भगवतीका सूक्ष्म-शरीर है । इस महामन्त्रके हादि एवं कादि दो प्रधान भेद हैं । हादि-मतमें प्रथम कूटमें पाँच स्वर, सात व्यञ्जन हैं । द्वितीय कूटमें छः स्वर और आठ व्यञ्जन तथा तृतीय कूटमें चार स्वर और तीन व्यञ्जन हैं । यह हादि-विद्या लोपामुद्राद्वारा उपासित है । कादि-विद्याके प्रथम कूटमें सात स्वर एवं पाँच व्यञ्जन हैं । अन्य कूटोंमें कोई भेद नहीं है । यह विद्या कामराज-उपासित है ।

मूलाधारमें शक्तिका प्रथमावतार नादके रूपमें परा वाक् है। इस रूपका अनुभव अन्तःकरणमें ही होता है । यही परा वाक् नाभिचक्रमें 'पश्यन्ती', हृदयमें 'मध्यमा' एवं कण्ठमें 'वैखरी' बनकर 'अ' से 'अः' तक, 'क' से 'त' तक, 'थ' से 'क्ष' पर्यन्त तीन खण्डोंमें परिणत है । श्रीचक्रराज इनका स्थूलरूप है । जनक-योन्यात्मक श्रीचक्रका नवमावरण बिन्दुचक्रके मध्य स्थित है । यही समग्र विश्वके विकासका मूल है । परब्रह्म-स्वरूपिणी त्रिपुराका यही प्रथम सगुण स्थान है । इससे त्रिकोण बनता है । इसके आगे वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं पराशक्तिके पाँच त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं । इनकी स्थिति अधोमुखके रूपमें है । इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता—ये चार त्रिकोण शिवात्मक ऊर्ध्वमुख हैं । झल्लक, किंकिणि, घण्टा, शङ्ख, वीणा, वेणु, भेरी, मृदङ्ग और मेघ——ये नव नादमयी सूक्ष्मा हैं । इसी प्रकार अ, ॡ, क, च, ट, त, प, य, श—ये नव वर्णमयी स्थूल हैं ।

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिसे संक्षेपमें भगवती त्रिपुर-सुन्दरी एवं श्रीचक्रराजका वर्णन किया गया है । यह साधना केवल पुस्तकोंसे पढ़कर नहीं करनी चाहिये । योग्य गुरु-परम्परासे ही इसे प्राप्त कर साधना प्रारम्भ करनी चाहिये । इसीमें साधकका कल्याण निहित है ।

सोवियत विश्व-विद्यालयमें श्रीयन्त्रपर शोधकार्य

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररञ्जनजी चतुर्वेदी)

बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही श्रीयन्त्रकी ओर विश्वके अनेक दार्शनिकों तथा संस्कृति-शास्त्रियोंका ध्यान आकर्षित हो गया था। ब्रिटिश विद्वान् सर जॉन वुडरफने इस दिशामें जो कार्य किया है, वह सुप्रसिद्ध है। सर जॉन वुडरफके शोधपत्रों तथा पुस्तकोंसे जर्मनके भारतविदोंका ध्यान तन्त्रशास्त्रकी ओर गया। जर्मन-भारतविद् हेनरिक झिझेरका कार्य इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय है।

ब्रिटिश शोधकर्मी निकोलस जे० बोल्टन और डॉ० निकोल जे मैकिलयॉड—इन दो विद्वानोंने श्रीयन्त्रके संरचनात्मक पक्षका विश्लेषण करनेका प्रयास किया है; किंतु पिछले वर्षोंमें मास्को राज्यविश्वविद्यालयमें भौतिकशास्त्र और गणितके शोध-कर्मी अलेक्सेई कुलाइचेवने श्रीयन्त्रके सम्बन्धमें 'अलगरिद्‌य' तैयार किया है। वैज्ञानिक डॉ० कुलाइशेवने गहन शोधकार्य और कम्प्यूटरके प्रयोगसे जो निष्कर्ष निकाला हैं, उससे अनेक देशोंके इतिहासकारों, मानवशास्त्रियों और वैज्ञानिकोंको श्रीयन्त्रसम्बन्धी शोध-कार्यमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा मिली है। मास्को राज्यविश्वविद्यालयमें इतिहासकारों और गणितज्ञोंकी बैठकमें जो तथ्य डॉ० कुलाइशेवने प्रस्तुत किये, वे इस बातके प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतका

श्रीयन्त्रम्

*

गणितीय चिन्तन अबतक किये गये अनुमानसे अधिक गहन और जटिल था ।

विश्वके गणितज्ञोंके सामने यह समस्या है कि प्राचीन भारतमें श्रीयन्त्र-जैसी रेखाकृतिका उद्भव कैसे सम्भव हो सका ? लोग किस प्रकार जान सके कि नौ त्रिकोणोंको एक ऐसे व्यवस्थित ढंगसे रखा जा सकता है कि वे एक दूसरेको काट सकें और उनके अनेकानेक काटनेवाले बिन्दु एकरूप हों ?

डॉ० कुलाइशेवके शब्दोंमें—'श्रीयन्त्रका निर्माण परम्परागत विधियोंसे नहीं किया जा सकता । आधुनिक उच्चतर बीजगणित, आङ्किकी विश्लेषण और ज्यामितिके साथ ही वर्तमान गणितीय विधियाँ-जैसे सटीक विज्ञानके सर्वाङ्गीण ज्ञानसे सफलता सुनिश्चित हो सकती है; किंतु मैं लक्षित करना चाहूँगा कि वैज्ञानिकी और प्रौद्योगिकीके वर्तमान स्तरका ज्ञान कभी-कभी श्रीयन्त्रके उसी तारेकी संरचनाका विश्लेषण करने और उसकी सम्भावित आकृतियोंकी संख्या निर्धारित करनेके लिये अपर्याप्त है । उनके विश्लेषणके लिये बीजगणित-सम्बन्धी समीकरणकी पेंचीदा प्रणाली और संजटिल संगणनकी आवश्यकता है, जिसे कम्प्यूटरोंकी वर्तमान पीढ़ी पूरा करनेमें असमर्थ है ।'

डॉ० कुलाइशेवने सिद्ध किया है कि श्रीयन्त्रका प्रचार ईसासे एक हजार वर्ष पहले तक भारतवर्षमें था, इसे माननेके पर्याप्त कारण हैं । श्रीयन्त्रका प्रचार चीन, जापान, तिब्बत और नेपालमें भी हुआ था । उनके अनुसार इस दुर्लभ ज्यामितीय रेखाकृति (श्रीयन्त्र)का प्राचीन ज्यामितीय और दार्शनिक शिक्षासे गहन सम्बन्ध है। डॉ० कुलाइशेवके कथनानुसार श्रीयन्त्र आधुनिक प्राकृतिक विज्ञानके तथ्योंकी रहस्यमय समरूपता उजागर करता है । ब्रह्माण्डके सार्वभौतिक सिद्धान्त (जैसा कि सामान्यतया ब्रह्माण्डके विकासका सिद्धान्त कहा जाता है, अर्थात् ब्रह्माण्डमें अतीतमें तत्त्वका अत्यधिक घनत्व एवं ताप और विकिरण था) के साथ श्रीयन्त्रकी आश्चर्यजनक संनिकटता है ।

मास्को विश्वविद्यालयके एशियाई और अफ्रीकी देशोंके संस्थानके अग्रणी सोवियत प्राच्यविद् डॉ० देगा दे ओपिकका कथन है कि 'श्रीयन्त्रमें ऐसे कई पेंचीदे गुणधर्म हैं, जो आधुनिक विज्ञानके लिये भी समस्या प्रस्तुत करते हैं । विशेषरूपसे इसके उद्भव, तिथि-निर्धारण, संस्कृति-विज्ञान और मानवशास्त्रकी अवधारणाओंसे इसके सम्बन्धका विश्लेषण ऐसी पहेली है, जिसे सुलझानेके लिये इतिहासकारों, मानवशास्त्रियों और गणितज्ञोंके संयुक्त प्रयासकी आवश्यकता है ।'

अनुनय

(श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा')

काम-क्रोध, लोभ-मोह साधकके शत्रु सभी,
घेरि रहे अम्ब ! मुझे मारग दिखाइये ।
माता ममत्वमयी करुणामयी हैं आप,
कीन्हें असंख्य पाप बेगि ही नसाइये ॥
हौं तो सब भाँति हीन आयो हूँ शरण दीन,
'साँवर' अबोध पुत्र जानिकै बचाइये ।
जीवनमें राग-द्वेष दे रहे अनन्त क्लेश,
पादपद्मनि हमेश वृत्तिको लगाइये ॥

दस महाविद्याएँ और उनकी उपासना

विद्यास्वरूपा महाशक्ति

महाशक्ति विद्या और अविद्या दोनों ही रूपोंमें विद्यमान हैं। अविद्या-रूपमें वे प्राणियोंके मोहकी कारण हैं तो विद्या-रूपमें मुक्तिकी। शास्त्र और पुराण उन्हें विद्याके रूपमें और परम-पुरुषको विद्यापतिके रूपमें मानते हैं। वेद तथा अन्यान्य शास्त्रोंके रूपमें विद्याका प्रकट-रूप और आगमादिके रूपमें विद्वानों एवं साधकोंद्वारा गुप्तरूपमें संकेतित है। वैष्णवी और शाम्भवी-भेदसे दोनोंकी ही शरणागति परम लाभमें हेतु है। आगमशास्त्रोंमें यद्यपि गुह्य गुरुमुखगम्य अनेक विद्याओंके रूप, स्तव और मन्त्रादिकोंका विधान है, तथापि उनमें दस महाविद्याओंकी प्रधानता तो स्पष्ट प्रतिपादित है, जो जगन्माता भगवतीसे अभिन्न है—

साक्षाद् विद्यैव सा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः॥
(वरिवस्यारहस्यम् २। १०७)

महाविद्याओंका प्रादुर्भाव

दस महाविद्याओंका सम्बन्ध परम्परातः सती, शिवा और पार्वतीसे है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, शक्ति, चामुण्डा, विष्णुप्रिया आदि नामोंसे पूजित और अर्चित होती हैं। महाभागवतमें कथा आती है कि दक्ष प्रजापतिने अपने यज्ञमें शिवको आमन्त्रित नहीं किया। सतीने शिवसे उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी। शिवने अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, पर सती अपने निश्चयपर अटल रहीं। उन्होंने कहा—'मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी।'* यह कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। वे शिवको उग्र दृष्टिसे देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया। क्रोधाग्निसे दग्ध-शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। शरीर वृद्धावस्थाको सम्प्राप्त-सा, केशराशि बिखरी हुई, चार भुजाओंसे सुशोभित वे महादेवी पराक्रमकी वर्षा करती-सी प्रतीत हो रहीं थीं। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहने हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी। शीशपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा था। वे बार-बार विकट हुंकार कर रही थीं। देवीका यह स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नके सूर्योंके समान तेजःसम्पन्न था और वे बारंबार अट्टहास कर रही थीं। देवीके इस विकराल महाभयानक रूपको देखकर शिव भाग चले। भागते हुए रुद्रको दसों दिशाओंमें रोकनेके लिये देवीने अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट किया। देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं—काली, तारा, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, कमला, त्रिपुरभैरवी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी।

शिवने सतीसे इन महाविद्याओंका जब परिचय पूछा, तब सतीने स्वयं इसकी व्याख्या करके उन्हें बताया—

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी।
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी॥

*—ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा। प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥

दश महाविद्या (1)

काली

तारा

षोडशी

भुवनेश्वरी

छिन्नमस्ता

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
पञ्चमी छिन्नमस्ता च महाविद्याः प्रकीर्तिताः॥
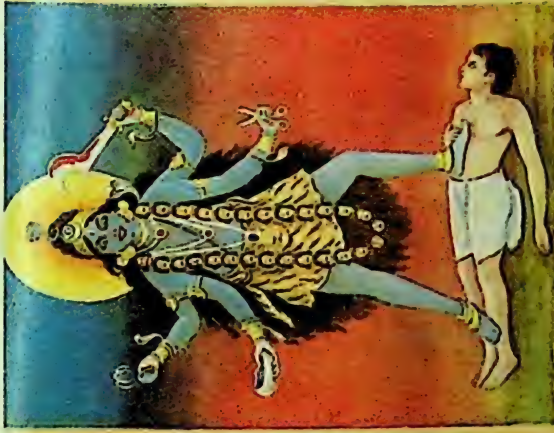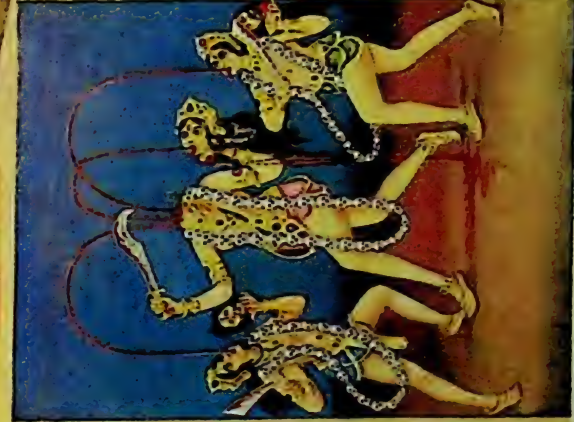
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदनी।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी॥
वायौ या ते महाविद्या सेयं मतंङ्गकन्यका।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी॥
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु॥
(महाभागवत ८। ६५-७१)

'शम्भो! आपके सम्मुख जो यह कृष्णवर्णा एवं भयंकर नेत्रोंवाली देवी स्थित है वह 'काली' है। जो श्याम वर्णवाली देवी स्वयं ऊर्ध्व भागमें स्थित है, यह महाकालस्वरूपिणी महाविद्या 'तारा' है। महामते! बायीं ओर जो यह अत्यन्त भयदायिनी मस्तकरहित देवी है, यह महाविद्या 'छिन्नमस्ता' है। शम्भो! आपके वामभागमें जो यह देवी है, वह 'भुवनेश्वरी' है। आपके पृष्ठभागमें जो देवी है, वह शत्रुसंहारिणी 'बगला' है। आपके अग्निकोणमें जो यह विधवाका रूप धारण करनेवाली देवी है, वह महेश्वरी-महाविद्या 'धूमावती' है। आपके नैर्ऋत्यकोणमें जो देवी है, वह 'त्रिपुरसुन्दरी' है। आपके वायव्यकोणमें जो देवी है, वह मतङ्गकन्या महाविद्या मातङ्गी है। आपके ईशानकोणमें महेश्वरी महाविद्या 'षोडशी' देवी हैं। शम्भो! मैं भयंकर रूपवाली 'भैरवी' हूँ। आप भय मत करें। ये सभी मूर्तियाँ बहुत-सी मूर्तियोंमें प्रकृष्ट हैं।'

महाभागवतके इस आख्यानसे प्रतीत होता है कि महाकाली ही मूलरूपा मुख्य हैं और उन्हींके उग्र और सौम्य दो रूपोंमें अनेक रूप धारण करनेवाली ये दस महाविद्याएँ हैं। दूसरे शब्दोंमें महाकालीके दशधा प्रधान रूपोंको ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्यापति शिवकी शक्तियाँ ये दस महाविद्याएँ लोक और शास्त्रमें अनेक रूपोंमें पूजित हुईं, पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। वे ही महाविद्याएँ साधकोंकी परम धन हैं जो सिद्ध होकर अनन्त सिद्धियाँ और अनन्तका साक्षात्कार करानेमें समर्थ हैं।

महाविद्याओंके क्रम-भेद तो प्राप्त होते हैं, पर कालीकी प्राथमिकता सर्वत्र देखी जाती है। यों भी दार्शनिक दृष्टिसे कालतत्त्वकी प्रधानता सर्वोपरि है। इसलिये मूलतः महाकाली या काली अनेक रूपोंमें विद्याओंकी आदि हैं और उनकी विद्यामय विभूतियाँ महाविद्याएँ हैं। ऐसा लगता है कि महाकालकी प्रियतमा काली अपने दक्षिण और वाम रूपोंमें दस महाविद्याओंके रूपमें विख्यात हुई और उसके विकराल तथा सौम्य रूप ही विभिन्न नाम-रूपोंके साथ दस महाविद्याओंके रूपमें अनादिकालसे अर्चित हो रहे हैं। ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओंके भेदसे अनेक होते हुए भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारिभेदसे अलग-अलग रूप और उपासना-स्वरूप प्रचलित हैं।

प्रकाश और विमर्श, शिवशक्त्यात्मक तत्त्वका अखिल विस्तार और लय सब कुछ शक्तिका ही लीला-विलास है। सृष्टिमें शक्ति और संहारमें शिवकी प्रधानता दृष्ट है। जैसे अमा और पूर्णिमा दोनों दो भासती हैं, पर दोनों दोनोंकी तत्त्वतः एकात्मता और एक-दूसरेकी कारण-परिणामी हैं, वैसे ही दस महाविद्याओंके रौद्र और सौम्य रूपोंको भी समझना चाहिये। काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवतीके प्रकट-कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओंके सौम्यरूप हैं। रौद्रके सम्यक् साक्षात्कारके विना माधुर्यको नहीं जाना जा सकता और माधुर्यके अभावमें रुद्रकी सम्यक् परिकल्पना नहीं की जा सकती।

स्वरूप-कथन—

यद्यपि दस महाविद्याओंका स्वरूप अचिन्त्य है, तथापि शाखाचन्द्रन्यायसे उपासक, स्मृतियाँ और पराम्बाके

चरणानुगामी इस विषयमें कुछ निर्वचन अवश्य कर लेते हैं। इस दृष्टिसे काली-तत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्रह्मकी पर्याय इस महाशक्तिको तान्त्रिक ग्रन्थोंमें विशेष प्रधानता दी गयी है। वास्तवमें इन्हींके दो रूपोंका विस्तार ही दस महाविद्याओंके स्वरूप हैं। महानिर्गुणकी अधिष्ठात्री शक्ति होनेके कारण ही इनकी उपमा अन्धकार-से दी जाती है। महासगुण होकर वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं तो महानिर्गुण होकर 'काली'। तत्त्वतः सब एक है, भेद केवल प्रतीतिमात्रका है। 'कादि' और 'हादि' विद्याओंके रूपमें भी एक ही श्रीविद्या क्रमशः कालीसे प्रारम्भ होकर उपास्या होती हैं। एकको 'संहार-क्रम' तो दूसरेको 'सृष्टि-क्रम' नाम दिया जाता है। देवीभागवत आदि शक्ति-ग्रन्थोंमें महालक्ष्मी या शक्तिबीजको मुख्य प्राधानिक बतानेका रहस्य यह है कि इसमें हादि विद्याकी क्रमयोजना स्वीकार की गयी है और तन्त्रों, विशेषकर अत्यन्त गोपनीय तन्त्रोंमें कालीको प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृष्टिसे यहाँ भी भेदबुद्धिकी सम्भावना नहीं है। **'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा'** का तर्क दोनोंको दोनोंसे अभिन्न सिद्ध करता है।

बृहन्नीलतन्त्रमें कहा गया है कि रक्त और कृष्णभेदसे काली ही दो रूपोंमें अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरी'—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ता-प्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

उपासनाके भेदसे दोनोंमें द्वैत है, पर तत्त्वदृष्टिसे अद्वैत है। वास्तवमें काली और भुवनेश्वरी दोनों मूल-प्रकृतिके अव्यक्त और व्यक्त रूप हैं। कालीसे कमला-तककी यात्रा दस सोपानोंमें अथवा दस स्तरोंमें पूर्ण होती है। दस महाविद्याओंका स्वरूप इसी रहस्यका परिणाम है।

दस महाविद्याओंकी उपासनामें सृष्टिक्रमकी उपासना लोकग्राह्य है। इसमें भुवनेश्वरीको प्रधान माना गया है। वही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति है। देवीभागवतके अनुसार सदाशिव फलक है तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्चके पाये हैं। इस श्रीमञ्चपर भुवनेश्वरी भुवनेश्वरके साथ विद्यमान हैं। सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधनामें लगे हुए हैं। विद्वानोंका कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर अपनी शक्तियोंके सान्निध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, संग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योंको सम्पादित करते हैं। वह निर्विशेष तत्त्व 'परमपुरुष' पद-वाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति ही है भुवनेश्वरी।

महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी अन्यान्य कथाएँ

काली—दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। कालिका-पुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओंने हिमालय-पर जाकर महामायाका स्तवन किया। पुराणकारके अनुसार यह स्थान मतङ्गमुनिका आश्रम था। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवतीने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि 'तुमलोग किसकी स्तुति कर रहे हो।' तत्काल उनके श्रीविग्रहसे काले पहाड़के समान वर्णवाली दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़ काजलके समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा 'दुर्गासप्तशती'में भी है। शुम्भ-निशुम्भके उपद्रवसे व्यथित देवताओंने हिमालयपर देवीसूक्तसे देवीको बार-बार जब प्रणाम निवेदित किया, तब गौरी-देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया। वे ही 'काली' नामसे विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥
(दुर्गासप्तशती ५। ८८)

वास्तवमें कालीको ही नीलरूपा होनेसे 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तरसे तारानामका रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देनेवाली—तारनेवाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियोंसे रक्षणकी कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे उग्रतारिणी या 'उग्रतारा' हैं।

नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार—एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ। यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारदजी प्रकट हो गये। शिवजीने नारदजीसे उनका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरुके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवकी प्रेरणापर नारदजी वहाँ गये और उन्होंने उनसे शिवजीसे विवाहका प्रस्ताव रखा। देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य विग्रह षोडशी सुन्दरीका प्रकट हुआ और उससे छायाविग्रह त्रिपुर-भैरवीका प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी स्तुतिमें 'महाविद्या' तथा देवताओंकी स्तुतिमें **'लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये'** सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकाएँ आधारपीठ हैं, इनके भीतर स्थित शक्तियोंका साक्षात्कार शक्ति-उपासना है। शक्तिसे शक्तिमान्‌का अभेद-दर्शन, जीवभावका लोप और शिवभावका उदय किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध शक्ति-उपासनाकी चरम उपलब्धि है।

तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं, बृहन्नील-तन्त्रादि ग्रन्थोंमें उनके विशेष रूपकी चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये देवीको नील-विग्रह प्राप्त हुआ। शव-रूप शिवपर प्रत्यालीढ मुद्रामें भगवती आरूढ हैं और उनकी नीले रंगकी आकृति नीलकमलोंकी भाँति तीन नेत्र तथा हाथोंमें कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्मसे विभूषिता उन देवीके कण्ठमें मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इस कारण वे महाकरुणा-मयी हैं।

छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता'के प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। वहाँ स्नान करनेपर क्षुधाग्निसे पीड़ित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे कुछ प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः याचना करनेपर देवीने पुनः प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। बादमें उन देवियोंने विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो शिशुओंको तुरंत भूख लगनेपर भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयीने अपने कराग्रसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बायें हाथमें आ गिरा और कबन्धसे तीन धाराएँ निकलीं। वे दो धाराओंको अपनी दोनों सहेलियोंकी ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपरकी ओर प्रवाहित थी उसे वे स्वयं पान करने लगीं। तभीसे ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

बगला—बगलाकी उत्पत्तिके विषयमें कथा आती है कि सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्‌को नष्ट करनेवाला तूफान आया। प्राणियोंके जीवनपर संकट आया देखकर महा-विष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा

सरोवरके समीप जाकर भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे निकलकर पीताम्बराके रूपमें उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पातका स्तम्भन किया। वास्तवमें दुष्ट वही है, जो जगत्के या धर्मके छन्दका अतिक्रमण करता है। बगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करनेवाली महाशक्ति हैं। वे परमेश्वरकी सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गतिको अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होनेका यही रहस्य है। **'ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ'** आदि वाक्योंमें बगला-शक्ति ही पर्याय-रूपमें संकेतित हैं। वे सर्वसिद्धि देनेमें समर्थ और उपासकोंकी वाञ्छाकल्पतरु हैं।

धूमावती—धूमावती देवीके विषयमें कथा आती है कि एक बार पार्वतीनें महादेवजीसे अपनी क्षुधाको निवारण करनेका निवेदन किया। महादेवजी चुप रह गये। कई बार निवेदन करनेपर भी जब देवाधिदेवने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेवजीको ही निगल लिया। उनके शरीरसे धूमराशि निकली। तब शिवजीने शिवासे कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्ति बगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्याससे व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी है। अभिचार कर्मोंमें इनकी उपासनाका विधान है।

त्रिपुरसुन्दरी—महाशक्ति 'त्रिपुरा' त्रिपुर महादेवकी स्वरूपा-शक्ति हैं। कालिकापुराणके अनुसार शिवजीकी भार्या त्रिपुरा श्रीचक्रकी परम नायिका है। परम शिव इन्हींके सहयोगसे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और स्थूल-से-स्थूल रूपोंमें भासते हैं। त्रिपुरभैरवी महात्रिपुरसुन्दरीकी रथ-वाहिनी है, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार अन्य देवियोंके विषयमें पुराणोंमें यथास्थान कथा मिलती है।

वास्तवमें काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगलामुखी, मातङ्गी, धूमावती—ये रूप और विग्रहमें कठोर तथा भुवनेश्वरी, षोडशी, कमला और भैरवी अपेक्षाकृत माधुर्य-मयी रूपोंकी अधिष्ठात्री विद्याएँ हैं। करुणा और भक्तानुग्रहाकाङ्क्षा तो सबमें समान हैं। दुष्टोंके दलन-हेतु एक ही महाशक्ति कभी रौद्र तो कभी सौम्य रूपोंमें विराजित होकर नाना प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। इच्छासे अधिक वितरण करनेमें समर्थ इन महा-विद्याओंका स्वरूप अचिन्त्य और शब्दातीत है, पर भक्तों और साधकोंके लिये इनकी कृपाका कोष नित्य-निरन्तर खुला रहता है।

१-कालीकी उपासना—पहले निवेदन किया जा चुका है कि तान्त्रिक विद्या-साधनामें कालीको विशेष प्रधानता प्राप्त है। भव-बन्धन-मोचनमें कालीकी उपासना सर्वोत्कृष्ट कही जा सकती है। शक्ति-साधनाके दो पीठोंमें कालीकी उपासना श्यामापीठपर करने योग्य है। भक्तिमार्गमें तो सर्वथा किसी भी रूपमें, किसी भी तरह उन महामायाकी उपासना फलप्रदा है, पर साधना या सिद्धिके लिये इनकी उपासना वीरभावसे की जाती है। वीर साधक दुर्लभ होता है। जिनके मनसे अहंता, माया, ममता और भेद-बुद्धिका नाश नहीं हुआ है, वे इनकी उपासनाको करनेमें पूर्ण सफल नहीं हो सकते। साधनाके द्वारा जब पूर्ण शिशुत्वका उदय हो जाता है, तब भगवतीका श्रीविग्रह साधकके सामने प्रकट हो जाता है, उस समय उनकी छवि अवर्णनीय होती है। कज्जलके पहाड़के समान, दिग्वसना, मुक्तकुन्तला, शवपर आरूढ़, मुण्डमालाधारिणी भगवतीका प्रत्यक्ष दर्शन साधकको कृतार्थ कर देता है। साधकके लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता। महाकालीकी उपासनाकी पद्धतियाँ, तत्सम्बन्धी मन्त्र और यन्त्र, साधना, विधान, अधिकारी-भेद और अन्य उपचारसम्बन्धी सामग्री महाकालसंहिता,

दश महाविद्या (2)

त्रिपुरभैरवी

धूमावती

बगला

मातङ्गी

कमला

त्रिपुरभैरवी धूमावती च बगलाम्बिका।
मातङ्गी कमला चैव सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः

कालीकुलक्रमार्चन, व्योमकेशसंहिता, कालीतन्त्र, कालिकार्णव, विश्वसारतन्त्र, कालीयामल, कामेश्वरीतन्त्र, शक्तिसंगम, शाक्तप्रमोद, दक्षिणकालीकल्प, श्यामारहस्य-जैसे ग्रन्थोंमें प्राप्त है। गुरुकृपा और जगदम्बाकी कृपा अथवा पूर्वजन्मकृत साधनाओंके फलस्वरूप कालीकी उपासनामें सफलता प्राप्त होती है।

कालीकी साधना यद्यपि दीक्षागम्य है, तथापि अनन्य-शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, यन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी आधारपर भक्तिभावसे मन्त्र-जप, पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे काली प्रसन्न हो जाती हैं। कालीकी प्रसन्नता सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति है।

ध्यान—

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम्॥
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्।
एवं संचिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम्॥
(शाक्त-प्रमोद कालीतन्त्र)

कालीकी उपासनामें भी सम्प्रदायगत भेद हैं। प्रायः दो रूपोंमें इनकी उपासनाका प्रचलन है। श्मशानकालीकी उपासना दीक्षागम्य है और इनकी साधना प्रायः किसी अनुभवीसे पूछकर ही करनी चाहिये। कालीके अनेक नाम—दक्षिण काली, भद्रकाली, कामकलाकाली, श्मशानकाली, गुह्यकाली आदि तन्त्रोंमें वर्णित हैं, पर इनमें सम्प्रदायगत भेदके रहते हुए भी तत्त्वतः एकता है। कालीकी उपासनाका रहस्य भी विरल है और यह साधना भी प्रायः दुर्लभ साधना है।

(२) **ताराकी उपासना**—शत्रुनाश वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है। कुछ विद्वानोंने तारा और कालीमें एकता भी प्रमाणित की है। रात्रिदेवी-स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाव और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं।

ध्यान—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासापरा
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालकर्तृजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥

(३) **छिन्नमस्ता**—छिन्नमस्ता भगवतीका स्वरूप अत्यन्त गोपनीय और साधकोंका प्रिय है। इसे अधिकारी ही प्राप्त कर सकता है। ऐसा विधान है कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ संध्याकालमें छिन्नमस्ताके मन्त्रकी साधनासे साधकको सरस्वती सिद्ध हो जाती हैं। शत्रु-विजय, समूह-स्तम्भन, राज्य-प्राप्ति और दुर्लभ मोक्ष-प्राप्तिके निमित्त छिन्नमस्ताकी उपासना अमोघ है। छिन्नमस्ताका आध्यात्मिक स्वरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यों तो सभी शक्तियाँ विशिष्ट आध्यात्मिक तत्त्व-चिन्तनोंकी संकेत हैं, पर छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोधकी प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञशीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खड़ी हैं। इनकी नाभिमें योनिचक्र है। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोंकी देवियाँ उनकी सहचरियाँ हैं। वे अपना शीश स्वयं काटकर भी जीवित हैं। जिससे उनमें अपनेमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका संकेत मिलता है।

ध्यान—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्त्रिकां
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जवासंनिभाम्॥

(४) **षोडशी**—षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। १६ अक्षरोंके

मन्त्रवाली उन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। उनके चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर विराजिता षोडशी देवीके चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता। वस्तुतः उनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तोंको वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुतः उनकी कृपाका एक कण भी अभीष्टसे अधिक प्रदान करनेमें समर्थ है।

ध्यान—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशांकुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे॥

(५) भुवनेश्वरी—देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रकी स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी और निखिल प्रपञ्चोंकी आदि-कारण, सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकारसे पोषण प्रदान करनेवाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्रोंमें इनकी अपार महिमा बतायी गयी है।

देवीका स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्रमें सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवतमें देवीका 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि इस बीजमन्त्रके जपका पुरश्चरण करनेवाला और यथाविधि होम, ब्राह्मण-भोजन करानेवाला भक्तिमान् साधक साक्षात् प्रभुके समान हो जाता है।

ध्यान—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

(६) त्रिपुरभैरवी—इन्द्रियोंपर विजय और सर्वतः उत्कर्षकी प्राप्ति-हेतु त्रिपुर-भैरवीकी उपासनाका विधान शास्त्रोंमें कहा गया है। त्रिपुरभैरवीकी महिमाका वर्णन करते हुए शास्त्र कहते हैं—

वारमेकं पठन्मर्त्यो मुच्यते सर्वसंकटात्।
किमन्यद् बहुना देवि सर्वाभीष्टफलं लभेत्॥

ध्यान—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां।
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे सुमन्दस्मिताम्॥

(७) धूमावती—पुत्र-लाभ, धन-रक्षा और शत्रु-विजयके लिये धूमावतीकी साधना-उपासनाका विधान है। विरूपा और भयानक आकृतिवाली होती हुई भी धूमावती शक्ति अपने भक्तोंके कल्याण-हेतु सदा तत्पर रहती हैं।

ध्यान—

विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विमुक्तकुन्तला रुक्षा विधवा विरलद्विजा॥
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा।
शूर्पहस्तातिरुक्षाक्षा धूतहस्ता वरानना॥
प्रवृद्धघोणा सा तु भृकुटिकुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा॥

(८) बगलामुखी—पीताम्बरा विद्याके नामसे विख्यात बगलामुखीकी साधना प्रायः शत्रुभयसे मुक्त

होने और वाक्‌सिद्धिके लिये की जाती हैं। बगलाका प्रयोग सावधानीकी अपेक्षा रखता है। स्तम्भन-शक्तिके रूपमें इनका विनियोग शास्त्रोंमें वर्णित है। बगला-स्तोत्र, बगलाहृदय, मन्त्र, यन्त्र आदि अनेक रूपोंमें इन महादेवीकी साधना लोकविश्रुत है। बगलाकी उपासनामें पीत वस्त्र, हरिद्रा-माला और पीत आसन, पीत पुष्पोंका विधान है। ध्यान इस प्रकार हैं।

ध्यान—

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन
पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥

(९) **मातङ्गी**—मातङ्गी मतङ्ग मुनिकी कन्या कही गयी है। वस्तुतः वाणी-विलासकी सिद्धि प्रदान करनेमें इनका कोई विकल्प नहीं। चाण्डालरूपको प्राप्त शिवकी प्रिया होनेके कारण इन्हें 'चाण्डाली' या 'उच्छिष्ट चाण्डाली' भी कहा गया है। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासमें पारङ्गत होनेके लिये मातङ्गी-साधना श्रेयस्करी है। इनका ध्यान-इस प्रकार है—

ध्यान—

माणिक्यवीणामुपलालयन्तीं
मदालसां मञ्जुलवाग्विलासाम्।
महेन्द्रनीलद्युतिकोमलाङ्गीं
मतङ्गकन्यां मनसा स्मरामि॥

(१०) **कमला**—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी कमलाकी उपासना वास्तवमें जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। इनकी कृपाके अभावमें जीवमें सम्पत्-शक्तिका अभाव हो जाता है। मानव, दानव और दैव—सभी इनकी कृपाके बिना पंगु हैं। विश्वभरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम दोनोंमें समान रूपसे प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याओंमें एक हैं। जो क्रम-परम्परा मिलती है, उसमें इनका स्थान दसवाँ है। (अर्थात् इनमें—इनकी महिमामें प्रवेश कर जीव पूर्ण और कृतार्थ हो जाता है।) सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व इनकी कृपाके प्रसादके लिये लालायित रहते हैं। ये परमवैष्णवी, सात्त्विक और शुद्धाचारा, विचार-धर्मचेतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमलपर है। इनका ध्यान इस प्रकार है—

ध्यान—

कान्त्या काञ्चनसंनिभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिगजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

महाविद्याओंका स्वरूप वास्तवमें एक ही आद्याशक्तिके विभिन्न स्वरूपोंका विस्तार है। भगवती अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य और माधुर्यमें विद्या और अविद्या दोनों हैं—**'विद्याहमविद्याहम्'** (देव्यथर्वशीर्ष)। पर विद्याओंके रूपमें उनकी उपासनाका तात्पर्य शुद्ध विद्याकी उपासना है। विद्या मुक्तिकी हेतु है। अतः पारमार्थिक स्तरपर विद्याओंकी उपासनाका आशय अन्ततः मोक्षकी साधना है। इससे विजय, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती हैं। सन्दर्भमें आये शत्रुनाश आदिका तात्पर्य आध्यात्मिक स्तरपर काम, क्रोधादिक शत्रुओंसे है और आत्मोत्कर्ष चाहने-वालेको यही अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

दस महाविद्याओंका अङ्कगणित वेद-शास्त्र दसके अङ्ककी प्रधानताकी ही ओर संकेत करता है। यजुर्वेदमें **'तेभ्यो दश प्राची दश उदीची'** आदि प्रयोग मिलते हैं। यों भी अङ्क ९ हैं, दसवाँ तो पूर्णता अर्थात् सबके

बाद शून्यका पर्याय है । शून्यका एक होना पुनः उसका शून्य हो जाना पूर्णसे पूर्ण और पुनः पूर्ण होनेकी आध्यात्मिक यात्रा है । इस विषयमें गुरुकी कृपा ही रहस्यको स्पष्ट कर सकती है । आदिगुरु भगवान् शंकरके चरणोंका आश्रय ग्रहण कर इन विद्याओंकी साधनामें अग्रसर होना चाहिये ।

दस महाविद्याओंका संक्षिप्त परिचय

महाकाली—दस महाविद्याओंमें प्रथम काली हैं जो प्रलयकालसे सम्बद्ध अतएव कृष्णवर्णा हैं । वे शवपर आरूढ इसीलिये हैं कि शक्तिविहीन विश्व मृत ही है । शत्रुसंहारक शक्ति भयावह होती है, इसीलिये कालीकी मूर्ति भयावह है । शत्रु-संहारके बाद विजयी योद्धाका अट्टहास भीषणताके लिये होता है, इसलिये महाकाली हँसती रहती हैं । निर्बलके आक्रमणको विफल कर उसकी दुर्बलतापर हँसा ही जाता है । इसी तरह शक्तिविहीन निर्बल विश्वका घमंड दूरकर भगवती हँसती हैं । पूर्णवस्तुको 'चतुरस्र' कहा जाता है, इसीलिये वे अपनी चार भुजाओंसे पूर्णतत्त्व—अपनी पूर्णता प्रकट करती हैं । स्वयं अभय हैं और अपना आश्रय लेनेवालेको निर्भय बनाती हैं, इसीलिये वे 'अभय' मुद्रा धारण किये हुए हैं । सांसारिक सुख क्षणभङ्गुर हैं, परम सुख तो भगवती ही हैं तथा जीवित और मृत विश्वकी आधार वे ही हैं, एवं मृत प्राणियोंका भी एकमात्र सहारा हैं, इसीलिये देवीने मुण्डमाला पहन रखी है । विश्व ही भगवती ब्रह्मरूपिणीका आवरण है । प्रलयमें सबके लीन होनेपर भगवती नग्न रहती हैं, इसीलिये उनका विग्रह नग्न है । सारे विश्वके श्मशानके तरनेपर उस तमोमयीका विकास होता है, इसीलिये वे श्मशानवासिनी कहलाती हैं ।

तारा—हिरण्यगर्भावस्थामें कुछ प्रकाश होता है । प्रलयरूपिणी कालरात्रिमें ताराओंके समान सूक्ष्म जगत्‌के ज्ञान एवं उनके साधन प्रकट होते हैं । उसी हिरण्यगर्भकी शक्ति 'तारा' हैं । हिरण्यगर्भ पहले क्षुधासे उग्र था । जब उसे अन्न मिला तब शान्त हुआ । उसी हिरण्यगर्भकी शक्ति 'उग्रतारा' हैं । क्षुधातुर हिरण्यगर्भके संहारक होनेसे उसकी यह शक्ति भी संहारिणी है । इनके चारों हाथोंमें जहरीले सर्प हैं और वे भी संहारके सूचक हैं । ये देवी भी शवपर आरूढ हैं और मुण्ड तथा खप्पर लिये हुए हैं, जो यह सूचित करते हैं कि भयानक बनकर ये खप्परद्वारा राक्षसादिका रक्तपान करती हैं । नागोंसे बँधा जटाजूट देवीकी रश्मियोंकी भयानकताको सूचित करता है ।

षोडशी—प्रशान्त हिरण्यगर्भ या सूर्य शिव हैं और उन्हींकी शक्ति है षोडशी, जब कि हिरण्यगर्भके दूसरे रूप रुद्रकी शक्ति अभी-अभी पीछे 'तारा' रूपमें वर्णित है । षोडशीका विग्रह या मूर्ति पञ्चवक्त्र अर्थात् पाँच मुखोंवाली है । चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपरकी ओर मुख होनेसे इन्हें 'पञ्चवक्त्रा' कहा जाता है । ये पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, अघोर और ईशान-शिवके इन पाँच रूपोंके प्रतीक हैं । पूर्वोक्त पाँच दिशाओंके रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होनेसे ये मुख भी इन्हीं रंगोंके हैं । देवीके दस हाथ हैं, जिनमें वे अभय, टङ्क, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अङ्कुश, घण्टा, नाग और अग्नि लिये हैं । ये बोधरूपा हैं । इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव ये 'षोडशी' कहलाती हैं ।

भुवनेश्वरी—वृद्धिगत विश्वका अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है । सोमात्मक

अमृतसे विश्वका आप्यायन (पोषण) हुआ करता है, इसीलिये भगवतीने अपने किरीटमें चन्द्रमा धारण कर रखा है । ये ही भगवती त्रिभुवनका भरण-पोषण करती रहती हैं, जिसका संकेत उनके हाथकी मुद्रा करती है । ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं । कृपादृष्टिकी सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर)से मिलती है । शासनशक्तिके सूचक अङ्कुश, पाश आदिको भी वे धारण करती हैं ।

छिन्नमस्ता—परिवर्तनशील जगत्का अधिपति चेतन कबन्ध है, उसकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' हैं । विश्वकी वृद्धि-ह्रास (उपचय-अपचय) तो सदैव होता ही रहता है, किंतु ह्रासकी मात्रा कम और विकासकी मात्रा अधिक होती है, तभी 'भुवनेश्वरी'का प्राकट्य होता है । इसके विपरीत जब निर्गम अधिक और आगम कम होता है, तब 'छिन्नमस्ता' का प्राधान्य होता है । छिन्नमस्ता भगवती छिन्नशीर्ष (कटा सिर) कर्तरी (कृपाण) एवं खप्पर लिये हुए स्वयं दिगम्बर रहती हैं । कबन्ध-शोणितकी धारा पीती रहती हैं । कटे हुए सिरमें नागबद्धमणि विराज रहा है, सफेद खुले केशोंवाली, नील-नयना और हृदयपर उत्पल (कमल)-की माला धारण किये हुए ये देवी रत्तासक्त मनोभावके ऊपर विराजमान रहती हैं ।

त्रिपुरभैरवी—क्षीयमान विश्वका अधिष्ठान दक्षिण-मूर्ति कालभैरव हैं । उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं । उनके ध्यानमें बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्योंके समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं । रक्तसे उनके पयोधर लिप्त हैं । वे तीन नेत्र एवं हिमांशु-मुकुट धारण किये, हाथमें जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं । ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं ।

धूमावती—विश्वकी अमाङ्गल्यपूर्ण-अवस्थाकी अधिष्ठात्री शक्ति 'धूमावती' हैं । ये विधवा समझी जाती हैं, अतएव इनके साथ पुरुषका वर्णन नहीं है । यहाँ पुरुष अव्यक्त है । चैतन्य, बोध आदि अत्यन्त तिरोहित होते हैं । इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये भगवती विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा एवं दीर्घ तथा गलित अम्बर (वसन) धारण करनेवाली, खुले केशोंवाली, विरल-दन्तवाली, विधवारूपमें रहनेवाली, काक-ध्वजवाले रथपर आरूढ, लंबे-लंबे पयोधरोंवाली, हाथमें शूर्प (सूप) लिये हुए, अत्यन्त रूक्ष नेत्रोंवाली, कम्पित-हस्ता, लंबी नासिका-वाली कुटिल-स्वभावा, कुटिल नेत्रोंसे युक्ता, क्षुधा-पिपासासे पीड़ित, सदैव भयप्रदा और कलहकी निवास-भूमि हैं ।

बगला—व्यष्टिरूपमें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाली और समष्टिरूपमें परमेश्वरकी संहारेच्छाकी अधिष्ठात्री शक्ति बगला हैं । इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये देवी सुधासमुद्रके मध्य स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नवेदीपर रत्नमय सिंहासनपर विराज रही हैं । स्वयं पीतवर्ण होती हुई पीतवर्णके ही वस्त्र, आभूषण एवं माला धारण किये हुए हैं । इनके एक हाथमें शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमें मुद्गर है ।

मातङ्गी—'मतङ्ग' शिवका नाम है, उनकी शक्ति 'मातङ्गी' है । उनके ध्यानमें बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं । चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं । त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, नीलकमलके समान कान्तिवाली और राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्मसात् करनेमें दावानलके समान हैं । ये देवी चार भुजाओंमें पाश, खड्ग, खेटक और अङ्कुश धारण किये हुए हैं तथा असुरोंको मोहित करनेवाली एवं भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली हैं ।

कमला—सदाशिव पुरुषकी शक्ति कमला हैं । इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये सुवर्णतुल्य कान्तिमती हैं ।

हिमालय-सदृश श्वेतवर्णके चार गजोंद्वारा शुण्डाओंसे गृहीत सुवर्ण-कलशोंसे स्नापित हो रही हैं। ये देवी चार भुजाओंमें वर, अभय और कमलद्वय धारण किये हुए तथा किरीट धारण किये हुए और क्षौम-वस्त्रका परिधान किये हुए हैं।

कामेश्वरी ललिताम्ब—स्वात्मा ही विश्वात्मिका ललिता हैं। विमर्श रक्तवर्ण है। उपाधिशून्य स्वात्मा महाकामेश्वर है। उसके अङ्कमें विराजमान सदानन्दरूप उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही महाशक्ति कामेश्वरी है। निर्गुण पुरुष-रूप शिव कामेश्वरीसे युक्त होकर विश्वनिर्माणादि कार्योंमें सफल हो सकता है। उसके बिना कूटस्थ देव टस-से-मस नहीं हो सकता। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव जब शक्तिरहित होते हैं, तब उन्हें 'महाप्रेत' कहा जाता है। इनमें प्रथम चार कामेशीके पर्यंकके चार पावोंके रूपमें कल्पित हैं जब कि पाँचवाँ पर्यंकका फलक माना गया है। निर्विशेष ब्रह्मके आश्रित श्रीकामेश्वरीके हाथोंमें अङ्कुश, इक्षु (ईख), धनुष और बाण हैं। राग ही पाश है और द्वेष ही अङ्कुश। मन ही उनका इक्षुमय धनुष है और शब्दादि पाँच विषय ही हैं पुष्पबाण। कहीं-कहीं इच्छाशक्तिको पाश, ज्ञानशक्तिको अङ्कुश और क्रियाशक्तिको धनुष-बाण बताया गया है। इस प्रकार इन्हीं कामेश्वर-कामेश्वरीके विषयमें हम महाकवि कालिदासके ही शब्दोंमें दुहराते हैं—

'जगतः पितरौ वन्दे !'

तारा-रहस्य

(१)

(पं० श्रीआद्याचरणजी झा)

'शक्ति-उपासना'के विशाल क्षेत्रके अन्तर्गत दस महाविद्याओंकी उपासनाका प्रमुख स्थान है। इन दसोंमें भगवती 'तारा' देवी द्वितीय स्थानपर प्रतिष्ठित हैं। भारतमें आदिविद्या कालीकी उपासनाका क्षेत्र बहुत व्यापक है, पर 'तारा' देवीकी उपासनाका क्षेत्र पर्याप्त संकुचित है और रहस्यमय भी है। ताराको उग्रतारा भी कहते हैं। इनके नामपर उग्रतारा कर्पूरस्तव, कवच, गीता, उग्रतारा-देवी-साधन (बौद्धतन्त्र वनरत्न पृ० १२१), उग्रतारा-धारिणी (बौद्ध), नीलसरस्वती, उग्रतारापञ्चाङ्ग, पटल, पद्धति, यन्त्र, मालामन्त्रधा, (बौद्ध) वज्रयोगिनी यन्त्र-धारिणी सहस्रनाम (अक्षोभ्यसंहिता), स्तोत्र*, हृदय आदि अनेक ग्रन्थ (वारेन्द्र रिसर्च सोसायटीसे) प्रकाशित है। फिर तारा-मङ्गलाष्टक, तारा-एकविंशतिस्तोत्र, तारा-कल्पतरु, ताराकुलस्त्रीकल्प, स्तोत्र, तारारहस्य, अक्षोभ्य-संवाद, तारातन्त्र (६ पटलोंमें), त्रैलोक्यविजय-मोहनकवच, दिव्यसहस्रनाम, तकारादिसहस्रनाम, तारादेवीस्तोत्र पुष्पमाला, मुक्तिकामाला, नित्यार्चन, पञ्चझटिका, पञ्जिका, पटल, पथप्रकाशिका, तारापारिजात, पूजा (साधना), ताराभक्तिसुधार्णव (२० तरंगोंमें), तारा भवानी-साधना, ताराभक्तितरंगिणी आदि हजारों ग्रन्थ हैं, कुछ शाक्तप्रमोद आदिमें भी संगृहीत हैं। इनके सहस्रनाम भी कई हैं। खेद है, आधुनिक समयमें इनका प्रचार बहुत कम हो गया है।

'तार' शब्दसे 'टाप' प्रत्यय करके **'तारयति अज्ञानान्धतमसः समुद्धरति भक्तान् या सा 'तारा'** निर्मित 'तारा' शब्दका अर्थ है—तारण करनेवाली और अज्ञानरूपी अन्धकारसे ज्ञानके प्रकाशमें लानेवाली। वैसे 'तारा' शब्दके नक्षत्र, आँखोंकी पुतली, मोती आदि अनेक अर्थ

* तारा-स्तोत्र तो सैकड़ों हैं (एन्-सी-सी- भाग ९, पृ० १६०-६१)

होते हैं, किंतु यहाँ 'तारा'-शब्दसे द्वितीया महाविद्याका ही ग्रहण है।

भगवती ताराके तीन रूप हैं— १—तारा, २—एकजटा, ३—नीलसरस्वती। तीनों रूपोंके रहस्य, कार्य-कलाप और ध्यान परस्पर भिन्न हैं। किंतु भिन्न होते हुए भी तीनोंकी सम्मिलित शक्ति समान और एक है। आगे इसका सप्रमाण दिग्दर्शन कराया जा रहा है। इन 'तारा' देवीकी उपासना-अर्चना 'मिथिला' और 'बंगाल' इन दो विशाल क्षेत्रोंमें विशेषरूपसे होती है* और आज भी किसी-न-किसी रूपमें हो रही है। ताराकी उपासना मुख्यतः तान्त्रिक पद्धतिसे होती है, जिसे 'आगमोक्त-पद्धति' कहते हैं। इस तान्त्रिक उपासनाका प्रचार आज भी मिथिला एवं बंगालमें तथा इसके इर्द-गिर्द क्षेत्रमें बहुतायतसे देखनेको मिलता है।

'तारा' शब्दका रहस्य और उसकी अखण्ड-शक्तिका दिग्दर्शन शास्त्रोंसे होता है। तन्त्रमें कहा गया है कि **'शून्ये ब्रह्माण्डगोलेऽस्मिन् पञ्चाशतशून्यमध्यमे। पञ्च शून्ये स्थिता तारा** तथा **'महाशून्या च तत् तारा तद्वैगुण्यक्रमेण च'** इत्यादि। इस तरह सभी देवी-देवताओंका तत्त्वशून्यरूपमें प्रतीत होता है, शून्यमें ही उद्भव तथा विनाश निहित है। यही शून्य 'निर्गुण ब्रह्म-रूप' है और शून्यरूपा 'तारा' ही विन्दुरूपमें 'ओंकारमयी' है। एक अतिप्राचीन 'तारा-स्तोत्र'में कहा गया है—

'तारामोंकारसारां सकलजनहितानन्दसंदोहदक्षाम्।'

अर्थात् सूर्यमण्डल-मध्यस्थिता 'तारा' ही शब्दब्रह्म-स्वरूपा, 'ओंकार'-नादरूपा है।

प्रसिद्ध 'ताराष्टक' स्तोत्रमें कहा गया है **'वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके'** आदि। इससे स्पष्ट होता है कि वाक्शक्ति-स्वरूपा, गद्यपद्यरूपा तारा ही कुण्डलिनी-तत्त्वसे उठती हुई 'परा, पश्यन्ती' मार्गसे होकर 'मध्यमा'-नादव्यङ्ग्य-स्फोटरूपा-नित्यशब्दशक्तिरूपा 'तारा' ही सूर्यमण्डलमें प्रतिक्षण प्रतिध्वनित होनेवाली वाक्शक्ति-स्वरूपा है। 'तारा'-स्तोत्रमें कहा गया है—

मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां
सिद्ध्यन्ति ते ते गुणाः।
कान्तिः कान्तिमनोभवस्य
भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः॥

—इससे स्पष्ट है कि 'तारा' की उपासनासे सामान्यजन भी बृहस्पतिके समान हो जाता है। इसीके आगे कहा गया है—

ताराष्टकमिदं पुण्यं भक्तिमान् यः पठेन्नरः।
लभते कवितां विद्यां सर्वशास्त्रार्थविद् भवेत्॥

'शाक्तप्रमोद'के 'तारा-सहस्रनामस्तोत्र'में कहा गया है—

गद्यपद्यमयी वाणी भूभोज्या च प्रवर्तते।
पाण्डित्यं सर्वशास्त्रेषु वादी त्रस्यति दर्शनात्॥

किसी प्राचीनतम पद्यमें भी कहा गया है—

यद्यनवेद्यगद्ये पद्ये शैथिल्यमावहसि।
तत् किं त्रिभुवनसारा तारा नाराधिता भवता॥

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि ताराशक्ति ही वाक्ब्रह्मस्वरूपा, सकलविद्याधिष्ठात्री हैं। यहाँ हम मध्यमा-नादाभिव्यञ्जित शब्द-ब्रह्मस्वरूप स्फोट-शक्तिके विस्तारमें न जाकर केवल 'वाक्यपदीय'की एकमात्र पंक्तिका उद्धरण देकर दूसरे प्रसङ्गमें जा रहा हूँ—

'इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।'

अर्थात् यही वाक्शक्ति मोक्ष चाहनेवालोंके लिये अकुटिल, सीधा-सरल राजमार्ग है।

---

*—कहते हैं चीनमें भी ताराकी उपासना होती है—
महाचीनक्रमाभिन्नषोढा न्यस्तकलेवरा। (तकारादितारासहस्रनाम २१०)
ये बौद्धोंकी परमाराध्या हैं।

यहाँतक 'तारा-शक्ति-रहस्य'का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। अब 'तारा'के ध्यान तथा उसके आधारपर दस महाविद्याओंके बीच द्वितीया महाविद्या 'तारा' की स्थितिका विश्लेषण किया जा रहा है। यथा—

'विष्वग्व्यापकवारिमध्यविलसत् श्वेताम्बुजे संस्थिताम्।' आदि।

अर्थात् 'सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त जलसे निकले एक श्वेत-कमलपर विराजमान, कैंची, खड्ग, कपाल और नीलकमलको हाथोंमें लिये हुए, कुण्डल, हार, कंगन आदिसे आभूषित, सर्पोंसे वेष्टित, एक पीलीजटावाली, सिरपर 'अक्षोभ्य'को धारण करनेवाली 'तारा'का ध्यान करे।' इस ध्यानसे ज्ञात होता है कि जलमें निकले हुए कमलपर स्थित ताराका जलभयसे निवारण करना और 'अक्षोभ्य' को मस्तकपर रखना बड़ा ही रहस्यपूर्ण है। 'तारा'-तन्त्रमें कहा गया है—

'समुद्रमथने देवि कालकूटमुपस्थितम्।'

अर्थात् समुद्रमन्थनके समय जब कालकूट विष निकला तो बिना किसी क्षोभके उस हलाहलको पीनेवाले 'शिव ही 'अक्षोभ्य' हैं और उनके साथ तारा विराजमान हैं। 'शिव-शक्ति-संगमतन्त्र'में 'अक्षोभ्य' शब्दका अर्थ 'महादेव' ही बताया गया है। 'अक्षोभ्य'को कहीं-कहीं द्रष्टा-ऋषि शिव कहा है।

'अक्षोभ्य' शिव ऋषिको मस्तकपर धारण करनेवाली ताराको तारिणी अर्थात् तारण करनेवाली कहा गया है। उनके मस्तकपर स्थित पिंगल-वर्ण उग्र जटाका रहस्य भी अद्भुत है। यह फैली हुई पीली जटाएँ सूर्य-किरणोंकी प्रतिरूपा हैं। यही 'एकजटा' है। ऊपर कहा जा चुका है कि तारा अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त सूर्यशक्तिका ही हिरण्मय रूप है। इस तरह 'अक्षोभ्य' एवं पिङ्गोग्रैकजटा-धारिणी 'उग्रतारा' और 'एकजटा'के रूपमें पूजित हुई। वही 'उग्रतारा' शवके हृदयपर चरण रखकर उस 'शव' को 'शिव' बना देनेवाली 'नीलसरस्वती' हो गयी। यथा—

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्यसम्पत्प्रदे।
प्रत्यालीढपदस्थिते शिवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे॥
—इत्यादि

फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम्।
मूढो भवति वागीशो गीष्पतिर्जायते नरः॥
(पुरश्चर्यार्णव भाग ३)

इस गम्भीर रहस्यमें छिपे तीन रूपोंवाली 'तारा', 'एकजटा' और 'नीलसरस्वती' एक ही ताराके त्रिशक्ति-रूप हैं। यथा—

नीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी॥
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता।
पिङ्गोग्रैकजटायुक्ता सूर्यशक्तिस्वरूपिणी॥
(शब्दकल्पद्रुम)

यह कौन नहीं जानता कि तीन तत्त्व, तीन शक्ति, तीन देव, तीन काल, तीन अवस्था और तीन लोकमें ही यह सृष्टि समाविष्ट है। इससे अधिक त्रिशक्तिका महत्त्व-वर्णन यहाँ अनावश्यक है।

भारतमें सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठने ताराकी उपासना की। इसलिये ताराको 'वसिष्ठाराधिता तारा' भी कहा जाता है। वसिष्ठने पहले वैदिक रीतिसे आराधना की, जो सफल न हो सकी। उन्हें अदृश्य शक्तिसे संकेत मिला कि ये तान्त्रिक पद्धतिके द्वारा जिसे 'चीनाचार' कहा गया है, उपासना करें। ऐसा करनेसे ही वसिष्ठको सिद्धि मिली। यह कथा 'आचार'-तन्त्रमें वसिष्ठ मुनिकी आराधनाके उपाख्यानमें वर्णित है। इससे सिद्ध होता है कि चीन, तिब्बत लद्दाख आदिमें ताराकी उपासना प्रचलित थी और आज भी वहाँ ताराकी उपासना प्रचलित है। यथा—

महाचीनक्रमेणैव तारा शीघ्रफलप्रदा।
ब्रह्मचीनो वीरचीनो दिव्यचीनस्तृतीयकः॥

महाचीनो निष्कलश्च चीनः पञ्चविधः स्मृतः ।
महाचीनक्रमश्चायं द्विविधः परिकीर्तितः ॥
सकलो निष्कलश्चेति सकलो बौद्धगो मतः ।
निष्कलो ब्राह्मणानां च द्वितीयः परिकीर्तितः ॥
(पुरश्चर्यार्णव, भाग ३)

ताराका प्रादुर्भाव मेरु-पर्वतके पश्चिम भागमें 'चोलना' नामकी नदीके या चोलत-सरोवरके तटपर हुआ था, जैसा स्वतन्त्र-तन्त्रमें वर्णित है—

मेरोः पश्चिमकूले तु चोलताख्यो ह्रदो महान् ।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती ॥

तन्त्रोक्त विधानसे दस महाविद्याओंकी उपासनामें जितनी सरलता और व्यापकता है, उतनी वैदिक-पद्धतिमें नहीं है । वैदिक पद्धति जहाँ स्थान, समय, व्यक्ति, जाति आदिके द्वारा उपासनाको सीमित और कठिन बनाती है, वहीं आगमोक्त-पद्धतिमें ये सभी बाधाएँ तथा सीमा-रेखाएँ नहीं हैं । तन्त्रशास्त्रके प्रसिद्ध महान् ग्रन्थ एवं 'महाकाल-संहिता'के गुह्य-काली-खण्डमें जिस तरह सभी महाविद्याओंकी उपासनाका विशाल वर्णन है, उसके अनुसार ताराका रहस्य बड़ा ही चमत्कारजनक है । वहाँ कहा गया है—

या देवानां प्रभवा चोद्भवा च
　　विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
　　सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
(महाकालसंहिता, गुह्यकालीखण्ड, ताराद्वितीयोपासना २३३-३४)

इसी तरह 'महाकाल-संहिता'के काम-कलाखण्डमें भी ताराका रहस्य वर्णित है । 'ताराचात्रि'में उपासनाका विशेष महत्त्व है । चैत्र शुक्ल नवमीकी रात्रि 'तारारात्रि' कहलाती है । यथा—

चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे तु भूपते ।
क्रोधरात्रिर्महेशानि तारारूपा भविष्यति ॥
(पुरश्चर्यार्णव भाग ३)

बिहारके सहरसा जिलेके प्रसिद्ध 'महिषी' ग्राममें उग्र-ताराका सिद्ध पीठ विद्यमान है । वहाँ तारा, एकजटा तथा नीलसरस्वतीकी तीनों मूर्तियाँ एक साथ हैं । मध्यमें बड़ी मूर्ति और दोनों बगलोंमें दो छोटी मूर्तियाँ हैं । कहा जाता है कि महर्षि वसिष्ठने मुख्यतः यहीं ताराकी उपासनासे सिद्धि प्राप्त की थी ।

इसी प्रकार पश्चिम बंगालके 'रामपुर-हाट' रेलवे स्टेशनसे पाँच किलोमीटर दूरीपर भी 'तारा'-पीठ नामका एक शक्ति-पीठ है । कहा जाता है कि वसिष्ठको आगमोक्त-पद्धतिसे उपासनाका संकेत यहीं प्राप्त हुआ था । यह तारापीठ प्राचीन उत्तर-वाहिनी 'द्वारका' नामक नदीके किनारे भयंकर श्मशानमें अवस्थित है । आज भी उस नदीके किनारे भयंकर श्मशान अवस्थित है और नदीकी तीव्र धारा दर्शनीय है । यद्यपि अब तो यहाँ क्रमशः बाजार फैलते जा रहे हैं, धर्मशालाएँ बनती जा रही हैं, भक्त यात्रियों और पर्यटकोंकी भीड़ बढ़ती जा रही है, फिर भी मन्दिरकी प्राचीनता अक्षुण्ण है और श्मशान विद्यमान है ।

यहाँकी 'तारा'की प्रतिमा सबसे महत्त्वपूर्ण चमत्कार-जनक है । मूलरूपसे इस प्रतिमामें दो हाथ हैं । भगवती बैठी हुई नग्नरूपमें अपनी गोदपर बाल-शिवको स्तनपान करा रही हैं । इस रूपके दर्शन प्रत्येक दिन रात्रिमें ९ से ९-३० बजेतक ही होते हैं, जिसमें दर्शनार्थी पङ्क्तिबद्ध होकर नौ-दसकी संख्यामें आते और तुरंत दर्शनकर निकलते जाते हैं । इस तरह इस अद्भुत रूपके दर्शनके पूर्व या बादमें ऊपरसे स्वर्ण-रजत आदिके आवरणोंसे मण्डित 'तारा'के रूप ही देखे जाते हैं, जो सामान्यतः 'तारा'के ध्यानमें वर्णित है । यह वही 'सिद्ध-पीठ' है, जहाँ भैरवस्वरूप बाबा वामदेवको सिद्धि प्राप्त हुई और भगवतीके साक्षात् दर्शन हुए थे । ये ही बाबा वामदेव पीछे 'वामाक्षेपा'के नामसे

प्रसिद्ध हुए। आज भी तारापीठमें ताराके अतिरिक्त वामाक्षेपाकी कहानी व्याप्त हैं। यहाँ भी तान्त्रिक उपासनाकी ही प्रधानता है।

प्रायः पूरे संसारमें, चीनमें तथा भारतमें 'तारापीठ'की तारा-प्रतिमा जिस 'अनादि सृष्टि-प्रक्रिया' को अभिव्यञ्जित करती है और मातृ-शक्तिको प्रतिष्ठापित करती है, उसकी व्याख्या इस छोटेसे निबन्धमें सम्भव नहीं है। यहाँ केवल रहस्यका ही दिग्दर्शनमात्र कराया गया है।

अन्तमें'काश्यां मरणान्मुक्तिः'—इस उक्तिके आधार-पर बताया जाता है कि भूत-भावन 'विश्वनाथ' काशीके मणिकर्णिकाघाटपर मरनेवालेंके कानमें 'तारक' मन्त्र देते हैं। यह तारक-मन्त्र—'राम' शब्द है—राम-नाम। उपनिषद् वाल्मीकि, व्यासादिसे लेकर तुलसीदासतक-'राम-नाम'को ही 'तारक'—तारण करनेवाला मन्त्र कहा है। शक्ति-उपासना-प्रधान इस देशमें 'सीता-राम'के नाम कण्ठ-कण्ठमें, जिह्वा-जिह्वापर विराजमान हैं। इस 'राम-नाम'को 'तारकमन्त्र' होनेमें गुह्य (गुप्त) रूपसे 'तारा' ही विद्यमान है। यथा—'सीता-राम' के बीच सीताका 'ता' और रामका 'रा'-में तारा' (तारिणी-शक्ति) विद्यमान है। इसीलिये किसी प्राचीन गाथा-कथामें कहा गया है कि 'अद्य मे तारिणी तारा रामरूपा भविष्यति।' शाक्त-प्रमोदग्रन्थमें ताराकवच, हृदय, पटल, शतनाम, सहस्रनाम, पञ्चाङ्गादि विस्तारसे निरूपित हैं। 'जिज्ञासुओंके लिये वे अनुसंधेय हैं।'

महाविद्या बगलामुखी और उनकी उपासना

(डॉ० श्रीसनत्कुमारजी शर्मा)

संसारके प्राचीनतम ग्रन्थ वैदिक संहिताओंके अनेक मन्त्रोंमें शक्तितत्त्वपर प्रकाश डाला गया है। शक्तिकी कृपासे सद्यःसिद्धि मिलती है। उपनिषदोंमें जिसे ब्रह्म कहा गया है, वह भी शक्तिसे अभिन्न है। अर्थात् ब्रह्मशक्ति तत्त्वसे युक्त होकर ही सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करनेमें समर्थ है, अन्यथा नहीं। अतः शक्तितत्त्वकी उपासना, अर्चना, वन्दना प्राणिमात्रके लिये परमावश्यक है। इसी शक्तितत्त्वके अन्तर्गत नवदुर्गा, दस महाविद्याएँ आदि हैं। महाविद्याओंमें 'श्रीवगलामुखी'* पञ्चमी हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
वगला छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
मातङ्गी त्रिपुरा चैव विद्या च कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः॥

वगलामुखीके आविर्भावके सम्बन्धमें तन्त्रग्रन्थोंमें कहा गया है—

अथ वक्ष्यामि देवेशि वगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि वातक्षोभ उपस्थिते॥
चराचरविनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यया च संतुष्टा महात्रिपुरसुन्दरी॥
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रवगलाम्बिका॥
श्रीविद्या सम्भवं तेजो विजृम्भति इतस्ततः।
चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता॥
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः प्रकीर्तिता।
तस्यामेवार्धरात्रौ तु पीतह्रदनिवासिनी॥
ब्रह्मास्त्रविद्या संजाता त्रैलोक्यस्य स्तम्भिनी।
तत् तेजो विष्णुजं तेजो विद्यानुविद्ययोर्गतम्॥

---

* वचो लाति—छिनत्ति, ददाति वेति 'वगला'—यह सभी कोशानुसारसे शुद्ध व्युत्पत्तियुक्त शब्दरूप है। बंगला भाषाके प्रभावसे प्रायः अधिकांश लोग आज इन्हें—बगला या बगुला—भूलसे ही कहते हैं। अर्थानुसंधान, भाव एवं तत्त्वपराङ्मुखता ही इसमें मूल हेतु है।

(भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं)—देवि ! मैं तुम्हें श्रीबगलाके आविर्भावकी कथा सुनाता हूँ। पहले कृतयुगमें सारे संसारको नाश करनेवाला वातक्षोभ (तूफान) उपस्थित हुआ। उसे देख जगत्‌की रक्षामें नियुक्त भगवान् श्रीविष्णु चिन्तापरायण हुए। उन्होंने सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा-सरोवरके समीप तपस्याकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीको प्रसन्न किया। श्रीविद्याने ही बगलारूपसे प्रकट होकर समस्त वातक्षोभ (तूफान) निवृत्त किया। त्रैलोक्यस्तम्भिनी ब्रह्मास्त्ररूपा श्रीविद्याका वैष्णवतेजसे युक्त मङ्गलवारयुक्त चतुर्दशीकी मकारकुल-नक्षत्रोंसे युक्त रात्रिको 'वीररात्रि' कहा जाता है। इसी रात्रिमें अर्धरात्रिके समय श्रीबगलामुखीके रूपमें आविर्भाव हुआ। कृष्ण यजुर्वेदकी काठकसंहितामें भी कहा गया है—

'विराड्दिशा विष्णुपत्न्यघोरास्येशाना ह सहसो या मानोता विश्वव्यचा धरन्ती सुभूता शिवा नो अस्तु अदितिरुपस्थे। विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना सहसो विष्णुपत्नी। बृहस्पतिर्मातारिश्वोत वायुः संध्वाना वाता अभितो गृणन्तु।'
(का० सं० २२ स्थानक १, २, अनु० ४९, ५०)

अर्थात् 'विराट् दिशा दसों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली सुन्दर स्वरूप-धारिणी 'विष्णुपत्नी' विष्णुकी रक्षा करनेवाली वैष्णवी महाशक्ति त्रिलोक जगत्‌की ईश्वरी महान् बलको धारण करनेवाली मानोता कही जाती है। स्तम्भनकारिणी शक्ति नामरूपसे व्यक्त एवं अव्यक्त सभी पदार्थोंकी स्थितिका आधार पृथ्वीरूपा शक्ति है और बगला उसी स्तम्भन शक्तिकी अधिष्ठात्री देवी है।' इसी अभिप्रायसे सप्तशतीमें कहा गया है—**'आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।'** यजुर्वेद (३२ । ६) में कहा गया है—**'येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।'** अर्थात् 'उस शक्तिरूपा बगलाकी परमतत्त्व स्तम्भन-शक्तिसे द्युलोकवृष्टि प्रदान करता है, उसीसे आदित्यमण्डल स्तम्भित है; उसीसे स्वर्गलोक भी ठहरा हुआ है।'

बृहदारण्यकके अक्षरब्राह्मणमें कहा है—**'एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः……द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः।'** (बृहदा० ४ । ८ । ८९)। 'हे गार्गि ! इसी अक्षर तत्त्व—स्तम्भक शक्तिसे सूर्य, चन्द्र, द्यौ, पृथ्वी आदि समस्त लोक अपनी-अपनी मर्यादामें ठहरे हुए हैं—स्तम्भित हैं।' वेदान्तके **'अक्षरमम्बरान्तधृतेः' 'सा च प्रशासनात्'** (वे० द० १ । ३ । १०-११) तथा—**'सर्वोपेता च तद्दर्शनात्'** इन तीनों सूत्रोंमें इसीकी मीमांसा की गयी है। स्त्रीलिङ्गका प्रयोग होनेसे यह परम तत्त्व शक्तिरूप ही है, यह सुस्पष्ट है। **'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।'** इस श्लोकमें 'विष्टभ्य' पदसे भगवान् श्रीकृष्णने उक्त तत्त्वका ही समर्थन किया है। इस प्रकार श्रुति-स्मृतिके प्रमाणोंद्वारा स्तम्भन-शक्तिका स्वरूप ज्ञात होता है। वही विष्णुपत्नी सारे जगत्‌का अधिष्ठान-ब्रह्मस्वरूपा हैं और तन्त्रमें उसीको श्रीबगलामुखी महाविद्या कहा गया है।

श्रीबगलामुखीको 'ब्रह्मास्त्र'के नामसे भी जाना जाता है, **'ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं न देयं यस्य कस्यचित्।'** ऐहिक या पारलौकिक देश अथवा समाजके दुःखद, दुरूह अरिष्टों एवं शत्रुओंके दमनके शमनमें इनके समकक्ष अन्य कोई भी नहीं है। ऐसा अवसर आनेपर चिरकालसे साधक इनका आश्रय लेता आ रहा है।

श्रीबगलाको 'त्रिशक्ति' भी कहा जाता है—

सत्ये काली च श्रीविद्या कमला भुवनेश्वरी।
सिद्धविद्या महेशानि त्रिशक्तिर्बगला शिवे॥

श्रीबगला पीताम्बराको तामसी मानना उचित नहीं, क्योंकि इनके आभिचारिक कृत्योंमें रक्षाकी ही प्रधानता

होती है और यह कार्य इसी शक्तिद्वारा होता है। शुक्ल-यजुर्वेदकी माध्यंदिनसंहिताके पाँचवें अध्यायकी २३, २४, २५ वीं कण्डिकाओंमें अभिचार-कर्मकी निवृत्तिमें श्रीवगला-मुखीको ही सर्वोत्तम बताया गया है। अर्थात् शत्रुके विनाशके लिये जो कृत्याविशेषको भूमिमें गाड़ देते हैं, उन्हें नष्ट करनेवाली वैष्णवी महाशक्ति श्रीवगलामुखी ही है।

श्रीवगलामुखीकी उपासना

वगला महाविद्या ऊर्ध्वाम्नायके अनुसार ही उपास्य है। इस आम्नायमें शक्ति केवल पूज्य मानी जाती है, भोग्य नहीं। श्रीकुलकी सभी महाविद्याओंकी उपासना गुरुके सान्निध्यमें रहकर सतर्कतासे, इन्द्रियनिग्रहपूर्वक सफलताकी प्राप्ति होनेतक प्रयत्नपूर्वक करते रहना चाहिये।

इस सम्प्रदायानुसार सर्वप्रथम साधकको गुरुसे वगला-मन्त्रका उपदेश ग्रहण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक देवीमन्दिरमें, पर्वतशिखरपर, शिवालयमें, गुरुके समीप या जैसी सुविधा हो पीताचारसे वगलामहामन्त्रका पुरश्चरण करना चाहिये। महाविद्या वगलामुखीका ३६ अक्षरोंका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्लीं वगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।**'*

मन्त्रके जपादिके विषयमें वगलापटल—(सिद्धेश्वर-तन्त्र) में विशेष विधान बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखः स्थितः।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः।
प्रियङ्गुकुसुमेनापि पीतपुष्पैश्च होमयेत्॥

वगलाके जपमें पीले रंगका विशेष महत्त्व है। जपकर्ताको पीला वस्त्र पहनकर हल्दीकी गाँठकी मालासे जप करना चाहिये। देवीकी पूजा और होममें पीले पुष्पों, प्रियङ्गु, कनेर, गेंदा आदिके पुष्पोंका प्रयोग करना चाहिये। शुचिर्भूत हो पीले कपड़े पहनकर साधक पूर्वाभिमुख बैठकर ही जप करे। उसे ब्रह्मचर्यका पालन अनिवार्यतः करना चाहिये और सदैव पवित्र रहकर भगवतीका ध्यान करना चाहिये। जपके पूर्व पूर्वाभिमुख आसनपर बैठकर आसनशुद्धि, भूशुद्धि, भूतशुद्धि, अङ्गन्यास, करन्यास आदि करना चाहिये। इससे पूर्व भगवतीका पीत पुष्पोंसे पूजन भी कर लेना चाहिये। जपकी संख्या एक लाख बतायी गयी है। विशेष बात यह बतायी है कि प्रतिदिन जपके अन्तमें दशांश होम पीले पुष्पोंसे अवश्य करना चाहिये। स्पष्ट है कि एक दिनमें एक लाख जप होना कठिन है; अतः जितनी जप-संख्या उस दिन हो जाय, उसका दशांश होम उसी दिन कर लेना चाहिये।

महाविद्या वगलामुखीका ध्यान निम्नलिखित है, जो जपसे पूर्व करणीय है—

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशवज्ररसनाः सम्बिभ्रतीं भूषणैः
व्याप्ताङ्गीं वगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत्॥

श्रीवगलाके साधक श्रीप्रजापतिने यह उपासना वैदिक रीतिसे की और वे सृष्टिकी संरचनामें सफल हुए। श्रीप्रजापतिने इस महाविद्याका उपदेश सनकादिक मुनियोंको किया। सनत्कुमारने श्रीनारदको तथा श्रीनारदने सांख्यायन नामक परमहंसको बताया तथा सांख्यायनने ३६ पटलोंमें उपनिबद्ध वगला-तन्त्रकी रचना की। दूसरे उपासक भगवान् श्रीविष्णु हुए, जिनका वर्णन 'स्वतन्त्र-तन्त्र'में मिलता है। तीसरे उपासक श्रीपरशुरामजी हुए तथा परशुरामजीने यह विद्या आचार्य द्रोणको बतायी।

महर्षि च्यवनने भी इसी विद्याके प्रभावसे इन्द्रके वज्रको स्तम्भित कर दिया था। श्रीमद्गोविन्दपादकी समाधिमें विघ्न डालनेवाली रेवा नदीका स्तम्भन श्रीशंकराचार्यने इसी विद्याके बलसे किया था। महामुनि श्रीनिम्बार्कने एक परिव्राजकको नीमवृक्षपर सूर्यका दर्शन इसी विद्याके प्रभावसे कराया था। अतः साधकोंको चाहिये कि श्रीवगलाकी विधिपूर्वक उपासना करें।

---

* स्वाहेति पदमन्ततः। षट्त्रिंशदक्षरी विद्या सर्वसम्पत्करी मता॥ (वगलातन्त्र)

शक्तिके स्वरूप

शक्तिके वेद-सम्मत स्वरूप

(१)

(डॉ० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामी)

शक्ति-साधनाकी ऐतिहासिक आलोचना करनेपर आदिमानवकी विश्वास-धारा शक्तिसाधनाके विराट् स्रोतके रूपमें प्रवाहित दीखती है। शक्तिसाधनाका प्रथम रूप देवी-पूजा है। विश्वके चतुर्दिक् किसी-न-किसी रूपमें देवी-पूजा प्रचलित है और वह मातृदेवताके उत्समें प्रतिष्ठित है। ऋग्वेदके मन्त्रोंमें अदितिकी कथा उपलब्ध है। शाक्तधाराकी आराध्या ब्रह्ममयी महाशक्तिका आदि श्रौतस्वरूप अखण्ड सत्तास्वरूपा विश्वमयी चेतना 'अदिति' है। यही काली, दुर्गा, सर्वदेवीस्वरूपिणी है—

'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।'
'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।'
'उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।'

अथर्ववेदमें तन्त्रमें वर्णित महाशक्तिकी धारणा, आराधनाके मूल आधारका वर्णन है। शक्त्याचारसमन्वित तन्त्राचार अथर्ववेदकी ही भूमिका है। वैदिक देवमण्डलमें काल-क्रमसे महान् परिवर्तन हुआ है। 'अदिति' और 'वाक्' अभिन्न हो जाती हैं और वे 'सरस्वती'के स्वरूपमें प्रतिष्ठा लाभ करती हैं। वैदिक 'सोम' केनोपनिषद्की 'हेमवती' 'उमा' हो जाता है और वह रणदेवीके रूपमें 'महादेवी' का स्वरूप धारण करता है।

शाक्तमतमें साधना ही मुख्य है और दार्शनिक चिन्तन गौण। साधनाके क्षेत्रमें प्रयोग ही दार्शनिक सिद्धान्तकी सार्थकता है। शक्तिसाधनाकी यह मुख्य विशेषता है कि साधनाका द्वार सभीके लिये उन्मुक्त है, शास्त्रोक्त अधिकारके परिप्रेक्ष्यमें स्त्री-पुरुष कोई भी साधनामें व्रती हो सकता है। यह साधना भोग और मोक्ष दोनोंका लाभ कराती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति उभयमार्गके लिये यह साधना विहित है और वह भी निग्रहमूलक नहीं, वरन् प्रकृतिके अनुसार शक्तिकी साधनाका विधान है। शक्तिकी साधना-में शरीरके गौरवकी उपेक्षा नहीं है, शरीरमें शक्ति-संचारका भी महत्त्व है। शाक्तसाधना ज्ञानमूलक होने-पर भी वहाँ कर्म और भक्तिका भी वैसा ही स्थान है। कहा जा सकता है कि इस साधनामें ज्ञान, कर्म और भक्तिका समन्वय है। वस्तुतः शक्ति-साधना गृहस्थकी साधना है। उत्तम नागरिकता और देशके गौरवकी रक्षाके लिये एक आदर्शका निर्देशमात्र तान्त्रिक और वैदिक शक्ति-साधना है। भारतीय सनातन संस्कृति—'गृहावधूत'

साधकके रूपमें परिलक्षित होती है। उपनिषद्का ऋषि भी गृही है। बौद्ध और जैनकी तरह गार्हस्थ्यसे पलायन-का यहाँ स्थान नहीं। सर्वश्रेष्ठ शक्ति-साधकको 'कुलावधूत' कहा जाता है, किंतु साक्षात्कारात्मक ब्रह्मलाभ होनेपर गृहस्थधर्म-पालनके साथ साधनाका विधान है। हंस या परमहंस यह कुलावधूतकी परम चरम स्थिति है।

शक्ति-साधनाकी तीन श्रेणियाँ हैं—पशु, वीर और दिव्य। पशु-भावसे साधनाका आरम्भ और दिव्य-भावमें परिसमाप्ति है। 'पशु' शब्द निन्दाका सूचक नहीं है। घृणा, लज्जा, भय, शङ्का, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति—इन आठ पाशोंसे आबद्ध जीव 'पशु' है। और पाशमुक्त जीव 'सदाशिव' है—

घृणा लज्जा भयं शङ्का जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः।
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तः सदाशिवः॥
(कुलार्णवतन्त्र २। ३४)

दिव्यभावकी प्राप्ति ही चरम परिणति है, द्वैतभावका अवसान होनेपर ही दिव्यताकी प्राप्ति होती है। सर्वदेवमयी परब्रह्मस्वरूपिणी महाशक्तिका साक्षात्कार दशमहाविद्याकी साधनाके क्रममें होता है।

वेदसंहिताओंमें अदिति, शची, उषा, पृथ्वी, वाक्, सरस्वती, रात्रि, धिषणा, इला, सिनीवाली, मही, भारती, अरण्यानी, निर्ऋति, मेधा, पृश्नि, सरण्यू, राका, सीता, श्री आदि देवियोंके नाम मिलते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदोंमें अम्बिका, इन्द्राणी, रुद्राणी, शर्वाणी, भवानी, कात्यायनी, कन्याकुमारी, उमा, हैमवती आदिका उल्लेख मिलता है। किंतु स्वातन्त्र्य एवं गौरवकी दृष्टिसे मातृ-प्रधाना शक्ति अदिति ही है। ऋग्वेदमें अदितिका ८० बार उल्लेख प्राप्त होता है। अखण्डित बन्धनरहित सर्वव्यापिनी, द्यौरन्तरिक्षरूपा जननात्मिका आद्याशक्तिका चिन्मय ज्योतिके रूपमें निर्देश मिलता है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष-
मदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्च जना
अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥
(ऋक् १। ८९। १०)

रात्रिसूक्त और देवीसूक्तमें वर्णित महाशक्तिकी भावमयी मूर्तिका यहाँ स्पष्ट निर्देश मिलता है। 'सोऽहं' और 'साऽहं'के रूपमें अद्वैतस्वरूप ही चिन्मयी भाव-मूर्तिका मूलाधार है। देववादमें अन्तःप्रकाशज्योति विराजमान है और वह मानव-हृदयकी मौलिक चित्तवृत्ति श्रद्धापर प्रतिष्ठित है। पूर्वोक्त मन्त्रके अनुसार सर्वदेवमयी सर्वेश्वरीके रूपमें इनका परिचय मिल रहा है, वैदिक ऋषिने ब्रह्ममयीके रूपमें ही इनका साक्षात्कार किया। इस मन्त्रमें द्यौः एवं अन्तरिक्षको चैतन्यका अपर पर्याय मानकर अदितिको चित्स्वरूपिणी माना है। इस प्रकार समस्त विश्व महादेवीका ही रूपविशेष है। पौराणिक देवजननी-भाव भी सुरक्षित है। महाभारतमें कालका वर्णन करते हुए लिखा गया है—'काल ही सभी प्राणियोंकी सृष्टि करता है और काल ही संहारकारी है, काल ही कालका दमन करता है, जगत्के शुभ और अशुभ भावका सृष्टिकर्ता काल ही है, प्रलयकालमें काल ही सभीका संहार करता है तथा सृष्टिमुखमें सृष्टि करता है—

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालो हि शमयेत् पुनः॥
कालो हि कुरुते भावान् सर्वान् लोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः॥
(महाभा० १। १। २०९-१०)

इस विश्लेषणके आधारपर काल और कालीका आदिरूप अदिति ही है। कठोपनिषद्में अदितिको

सर्वदेवस्वरूपिणी एवं ब्रह्मका अन्यतम रूप 'हिरण्यगर्भ' कहा गया है।

या प्राणेन सम्भवति अदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत॥
(क० उ० २।१।७)

ऋग्वेदमें वसिष्ठने मित्र और वरुणके साथ अदितिका आह्वान करते हुए इनको ज्योतिर्मयी अप्रतिहता कहा है—

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत् क्षितिं स्वर्वतीम्...।
(ऋ० १।१३६।३)

ज्योतिः शब्द चिद्रूपिणीका पर्याय है, मातृस्वरूपा होनेसे सहजमें आह्वान किया जाता है। आघात करनेकी शक्ति उनमें ही है, उनपर आघात नहीं किया जा सकता। अतः वसिष्ठके अनुसार महाशक्तिरूपिणी माँ अदिति ही है। कालिकापुराणमें वसिष्ठके साथ महाशक्तिका योगायोग इसीका विवरण है। ज्योतिष्मती एवं विश्वका धारण-पालन करनेवाली स्वर्गकी अधिष्ठात्रीके रूपका विवरण—'**दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्**' इस मन्त्रमें पल्लवित है।

'अदिति' शब्दकी व्युत्पत्तिसे ही स्थितिकारिणी, लयकारिणी या ध्वंसकारिणी स्वरूपका परिचय मिलता है। '**दो**' धातुसे अदिति शब्दकी निष्पत्ति कही गयी है। '**दो**'का अर्थ खण्डित या सीमित करना है, अतः खण्डित या सीमित 'दिति' हैं और '**न दितिः अदितिः**' है, अर्थात् अखण्डिता या असीमित शक्ति 'अदिति' है। इसीलिये यह अखण्डानन्दस्वरूपा है।

श्रीअरविन्दने भी अदितिकी व्युत्पत्ति भक्षणार्थक 'अद्' धातुसे सम्पन्नकर 'अदिति'का अर्थ—'जिसमें विश्व प्रलयकालमें लीन होता है—ऐसा किया है। अदितिकी व्यापकताका निरूपण करते हुए ऋषिने कहा है—'अदिति रुद्रकी माता है, वसुओंकी दुहिता है, आदित्योंकी भगिनी है, अमृतकी आवास-भूमि है, ज्योतिष्मती गौ निष्पापा है, इनकी कभी हिंसा न करे,—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥
(ऋ० ८।१०१।१५)

गौको मातृरूपमें माननेका मूलाधार ऋग्वेदका यही मन्त्र है। आचार्य सायणने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि इस मन्त्रमें गो-देवताकी स्तुति की गयी है। (सायणभा० पृ० २७–२८)

देवी अदितिकी असीम देश-कालकी अधिष्ठातृरूपमें वर्णना एवं देशकालातीत विश्वोत्तीर्णा चिदानन्दमयी सत्यसन्ध ऋषिके हृदयमें सत्य प्रतिमान ही शाक्ततत्त्वके अद्वैतदर्शनकी सूचना है। ऋग्वेदमें ही अदितिको दक्षकन्या कहा गया है—जलसे भू उत्पन्न हुई, भूसे दिशाएँ और अदितिने दक्षको उत्पन्न किया, अतः वह सर्वश्रेष्ठ है।

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि॥
(ऋ० १०।७२।४)

पौराणिक सतीकी दक्षकन्याके रूपमें जन्म होनेपर इस अदितिसे भद्र और अमृतबन्धु आदि देवोंकी उत्पत्ति हुई—

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥
(ऋ० १०।७२।५)

यह दक्ष-कन्याकी मातृरूपताकी अभिव्यक्ति दक्ष और रुद्रकी माताके रूपमें निर्दिष्ट है—इसीलिये यह मातृदेवता है। ऋग्वेदके ही मन्त्रमें इसे सुन्दर कर्मोंकी माता और ऋतकी पत्नी कहा गया है। इसकी चिरनवीना अनेक शक्तियोंको अनेक दिशाओंमें गमनसामर्थ्य, महत्त्वकी आश्रय और सुनेत्रा कहा गया है. इसकी रक्षाके लिये आह्वान किया जाता है—

महीमूषु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्॥
(वाजस० सं० २१ । ५, अ० वे० ७ । ६ । २)

सत्यकी पत्नीके रूपमें शक्तिका निरूपण ही उसके शिव-पत्नी होनेका हेतु है; क्योंकि सत्य शिवका अपर पर्याय है। वैदिक रुद्र ही पौराणिक शिव और महादेवी अदिति ही दुर्गा होती हैं। बृहद्देवतामें अदितिको वाक् और सरस्वती कहा गया है (महाभा० ७ । ७८ । ५५)। अदिति रुद्रोंकी माता है और 'मरुद्गण'को 'रुद्र' कहा गया है, जो रुद्रके पुत्र हैं। अतः अदिति रुद्रोंकी माता है, इसीलिये वह शिव-पत्नी है। 'वाक्' दुर्गाका नाम है और 'दुर्गा' रुद्रपत्नी है, अतः अखण्डात्मिका शक्ति ही आराध्या महादेवी है।

दुर्गाका मूलाधार यजुर्वेद और अथर्ववेदके मन्त्रोंमें मिलता है। अदितिका कल्याणकारिणी और रक्षाकारिणी देवीके रूपमें आह्वान किया गया है। ऋग्वेदमें भी इन्द्रादि देवोंद्वारा एक साथ विपत्तियोंसे रक्षाके लिये शक्तिके महामन्त्र मिलते हैं। (ऋ० ५ । ४६ । ३, ७ । ३५)।

समृद्धिकी प्राप्तिके लिये परमातृका अदितिका अन्तरिक्ष अर्थात् चिदात्मक रूपमें आह्वान किया गया है। वह देह, मन और प्राणकी कल्याणदायिनी है—

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं
नाम वचसा करामहे॥
(य० वे० १८ । ३०)

यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं
सा नः शर्म त्रिवरुथं नियच्छात्॥
(य० वे० ७ । ६ । ४)

वाजसनेयी संहिताके २१ । ५ मन्त्रकी प्रार्थनाएँ दुर्गासप्तशतीमें अविकल रूपमें परिगृहीत हैं जो अदितिके लिये कही गयी हैं। वहाँ नौका—तरणीके रूपमें निर्देश है। उसीकी आवृत्ति **'दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा'**—दुर्गासप्तशतीके ४ । १० में किया गया है। **दुर्गायै दुर्गपारायै**···**नमः** (५ । १०) दुर्गम भवसागरकी तरणी—आसक्तिरहित एवं दुस्तर भवसागरसे पार करनेवालीको प्रणाम है। अतः शाक्तधाराका मूलाधार ऋग्वेदके सूक्त हैं और महादेवियाँ अदिति हैं।

पराशक्ति सर्वदेवमयी है, देवता उसके रूपभेद मात्र हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें उमा, दुर्गा, सरस्वती, काली, तारा आदि अनेक देवियोंका विवरण मिलता है—'अनेक वर्णों और आन्तरोंमें तुम्हारा अनन्त रूप है, विभिन्न साधनाओंके द्वारा लभ्य इन रूपोंका वर्णन कौन कर सकता है?'

तव रूपाण्यनन्तानि नानावर्णाकृतीनि च।
नानाप्रयाससाध्यानि वर्णितुं केन शक्यते॥
(महा० निर्वाण त० ५ । २)

देवीपुराणद्वारा भी इसीका समर्थन उपलब्ध है—'परमार्थतः तुम शिवसे भिन्न नहीं हो, नाम और रूप ही भिन्न है।'

नामभेदाद् भवेदभिन्ना न भिन्ना परमार्थतः।
(दे० पु० ९८ । ४)

शाक्तानन्दतरङ्गिणीमें भी कहा गया है, पराशक्तिके ही उमा, शक्ति, लक्ष्मी, भारती, गिरिजा, अम्बिका, दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, ब्राह्मी, विद्या और अविद्या माया आदि नाम हैं—यही ऋषियोंके द्वारा 'अपरा' शब्दसे भी सम्बोधित की जाती हैं—

उमेति केचिदाहुस्तां शक्तिर्लक्ष्मीति चापरे।
भारतीत्यपरे चैनां गिरिजेत्यम्बिकेति च॥
दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरी तथा।
कौमारी वैष्णवी चैव वाराह्यैन्द्रीति चापरे॥
ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथापरे।
प्रकृतीत्यपरा चैव वदन्ति परमर्षयः॥
(शाक्ता० त० ३)

'इसी प्रकार महानिर्वाणतन्त्रमें कहा गया है कि देवि! आप उपासकोंके एवं जगत्के कल्याणके लिये तथा दानवी वृत्तिवालोंके विनाशके लिये अनेक देह धारण करती हैं, और अष्टभुजा, द्विभुजा आदि अनेक रूप धारण करतीं हैं, तथा आप ही विश्वकी रक्षाके लिये अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करती हैं।' इन रूपोंके उपयोगी मन्त्र-यन्त्रोंका भी निर्देश किया गया है। माँके अनन्त रूपोंका वर्णन सम्भव नहीं है। (महा० त० ४। ९३-९८)

पूर्वाम्नाय-सम्मत एवं दक्षिणाम्नाय-सम्मत अनेक देवियाँ हैं। पूर्वाम्नायसम्मत देवियाँ हैं—पूर्वेशी, भुवनेशानी, ललिता, अपराजिता, लक्ष्मी, सरस्वती, वाणी, पारिजात-पद्माङ्किता, अन्नपूर्णा, जया आदि। दक्षिणाम्नाय-सम्मत देवियाँ हैं—निशेशी, दक्षिणाकाली, बगला, छिन्नमस्ता, भद्रा, तारा, मातङ्गी आदि। पश्चिमाम्नाय-सम्मत देवियाँ हैं—कुब्जिका, कुलालिका, मातङ्गी, अमृतलक्ष्मी आदि। सिद्धिलक्ष्मी, गुह्यलक्ष्मी, महाभीमसरस्वती, धूम्रा, कामकलाकाली, महाकाली, कपालिनी, महाश्मशानकाली, कालसंकर्षिणी, प्रत्यङ्गिरा, महारात्रि, योगेशी, सिद्धिभैरवी—ये विद्याएँ उत्तमोत्तमा कही गयी हैं; क्योंकि ये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गोंको देनेवाली हैं। (पु०च० त०पृ० १२) कामेशी, ललिता, बाला, महात्रिपुरसुन्दरी, भैरवी—ये ऊर्ध्वाम्नायकी देवियाँ हैं। इस प्रसङ्गमें देवीके अनेक रूपोंमें दस महाविद्याका वर्णन आवश्यक है, क्योंकि महाभागवतमहापुराणमें भी इनको प्रकृष्ट माना गया है।

एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु।
(पृ० १७७)

चामुण्डातन्त्रके अनुसार महाविद्या, काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, विद्या, धूमावती, सिद्धिविद्या-बगला, मातङ्गी और कमला—ये सिद्ध दस महाविद्या ही सिद्धविद्या हैं। (क्रमशः)

(२)

(लेखक—डॉ० श्रीजगदीशदत्तजी दीक्षित, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, साहित्यदर्शनाचार्य)

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभि-
र्वाजिनीवती यज्ञं यष्टुं विभावसुः।
प्रचोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती
सुमतीनां यज्ञं दधे सरस्वती।
महो अर्णः सरस्वती प्रचेतवती
केतुनाधियो विश्वा विराजति॥

सृष्टिके उद्भव तथा विकासमें दिव्य शक्तिका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। शक्ति चिच्छक्ति होनेके कारण नारीरूपमें स्वीकृत की गयी है। वस्तुतः सृजनमें नारीका शीर्षस्थ स्थान है। वह सृजन तथा पालनमें मानवके लिये अभय-वरदानके रूपमें सुलभ है। वैदिक कालमें हमें विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदसे शक्तिकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उस समय माताके रूपमें पृथ्वी या प्रकृतिकी उपासनाका प्रचलन रहा है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके तीसरे सूक्तमें १०—१२ मन्त्रोंमें ही यह उपरिलिखित वाग्देवी सरस्वतीका स्तवन उपलब्ध होता है। सरस्वतीको अन्नप्रदात्री तथा यज्ञकी सफलता-हेतु स्तवन करते हुए उसे सत्यकर्मोंका प्रेरक, उत्तम बुद्धिको प्रदान करनेवाली तथा ज्ञानके विशाल सागरको प्रकट करनेवाली कहा गया है। वह मानवमें सद्बुद्धि एवं सत्कार्योंकी प्रेरणा-स्रोतके रूपमें आदृत हुई है। इसके दो रूप हैं—एक नदीरूपा और दूसरी विग्रहरूपा। इसी वाग्देवीका ऋग्वेदके अन्तिम काण्ड दशममें वागाम्भृणी-सूक्तमें विशद वर्णन किया गया है, जिसका विवेचन आगे किया जायगा।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके बाईसवें सूक्तमें स्तुति करनेवालोंके गुणोंका प्रकाश करनेवाली प्रशंसनीय बुद्धिसहित मधुर गुणयुक्त वाणीसे यज्ञके ज्ञान-हेतु प्रार्थना करनेका भी संकेत यहाँ मिलता है। यथा—

'या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती तया यज्ञं मिमिक्षतम्।'

इतना ही नहीं, अपितु यहाँ विशेष देवताओंकी विशिष्ट शक्तिके आवाहनका भी स्पष्ट संकेत है।

इन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये अग्नायीं सोमपीतये।

एक अन्य स्थल (ऋग्वेद २ । ३ । ८)में अग्निसे भारती वरुत्री और धिषणा देवियोंको रक्षण-हेतु लानेके लिये कहा गया है। वीरपत्नियों, द्रुतगामिनी देवियोंका आह्वान किया गया है—

सरस्वती साधयन्ती धियं न
इडा देवी भारती विश्वमूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं
पान्तु शरणं निषद्य॥
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ
भारती वरुत्रीं धिषणां वह।
(ऋ० २ । ३ । ८; १ । २२ । १०)

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके नवासीवें सूक्तमें आदिशक्ति अदितिका महनीय गुणोंके साथ स्तवन किया गया है। 'वह अदिति द्यौ, अन्तरिक्ष है, वही माता, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा भी अदिति ही है और यहाँतक कि जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, वह अदिति ही है तथा भविष्यमें भी जो कुछ होगा वह भी अदिति ही है।'

अदितिको देवों तथा असुरों—दोनोंकी माता कहा गया है। ऋग्वेदके १० । १२५ वें सूक्त वागाम्भृणी-सूक्तमें वागदेवीका सर्वोत्कर्षेण वर्णन किया गया है। उसे ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, विश्वेदेवा, मित्र और वरुण, इन्द्र तथा अग्नि सभीको धारण करनेवाली बतलाया गया है। वह स्वयं ही कहती है कि मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगदेवोंका धारण-पालन करती हूँ। त्रैलोक्यको आक्रान्त करनेके लिये मैं विष्णु, ब्रह्मा और प्रजापतिको धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी तथा उपासकोंको धनैश्वर्य देनेवाली हूँ और दैवी—सम्पत्ति वे मुझसे ही प्राप्त करते हैं।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

'मैं स्वयं ही जिसपर कृपा करती हूँ, उसीको उग्र स्वभाववाला तेजस्वी सुमेधावी ब्रह्माके तुल्य बना देती हूँ। मैं द्यावा-पृथ्वीको भी धारण करती हूँ।'

वस्तुतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका भरण-पोषण करनेवाली शक्ति यही है। यही '**राष्ट्री संगमनी वसूनाम्**'—राष्ट्रकी शक्ति एवं अखिल ब्रह्माण्डकी शक्तिपुञ्जका भी स्रोत है। यही वाक्-शक्ति है। इसमें सभी शक्तियोंको संगठित होकर ही विकसित होनेका संकेत किया गया है।

इसी सूक्तके सदृश कुछ मन्त्रोंसे युक्त अथर्ववेदमें अथर्वशीर्ष नामसे प्राप्त होता है। अथर्वशीर्षमें सभी देवोंने देवीके समीप जाकर उनसे पूछा—'हे महादेवि! तुम कौन हो?' उन्होंने कहा—'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप तथा असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। इसी सूक्तमें दुर्गादेवीके स्वरूपका विशद वर्णन किया गया है—

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥
देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥

'अग्निके समान वर्णवाली, ज्ञानसे दीप्तिमती, कर्मफल-प्राप्ति-हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं'—प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनु-तुल्य आनन्दप्रदात्री एवं अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप आयें।'

भगवती सरस्वती

B. K. Mitra

चतुर्भुजमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती॥

क्या शक्ति-उपासना अवैदिक है ?

(डॉ० श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी देवशर्मा, पी-एच्० डी०, विद्यार्णव)

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये
सुतरसि तरसे नमः सुतरसि तरसे नमः ॥
(अथर्ववेद, शाकल-संहिता १० । १२७ । १२)
रात्रीसूक्त

आदिसृष्टि तपस्यासे ही उत्पन्न हुई । तपस्या वैदिक सनातन धर्मका प्राण है । जगत्पिता भगवान् शंकर महातपस्वी योगेश्वरेश्वर कैलास-पर्वतवासी हैं । जगन्माता उमा हैमवती भी महातपस्विनी हैं । उनकी कृपाके बिना परम शिवको पाना असम्भव है । इसलिये शक्ति-उपासना ही सनातन धर्मका मुख्य कल्प है ।

आधुनिक मत—शक्तिपूजा वैदिक नहीं—पाश्चात्य गवेषकोंने शोधकर निश्चय किया है कि भारतीय धर्ममें शक्तिपूजा अर्वाचीनकालमें प्रविष्ट हुई । उनका कथन है कि वेदमें कहीं भी देवी या शक्ति-उपासनाका उल्लेख नहीं है । कोई कहता है कि यह आदिवासियोंसे आयी, तो किसी औरका कहना है कि यह द्रविड़ जातिसे आनुमानिक नवम शतक (खीष्टीय) में सनातन धर्ममें ली गयी । कलकत्ता संस्कृत-कालेजके प्रसिद्ध गवेषक डॉ० रमेशचन्द्र हाजराने लिखा है कि शक्ति-दर्शन नवम शतकके पूर्व स्वीकृति लाभ नहीं कर पाये । मेसों ओंसे (Mesion Oasel) नामक एक फ्रान्सिसी लेखकने सिद्ध किया कि 'दाक्षिणात्यके मन्दिरोंमें जिन वीभत्स राक्षसियोंकी पूजा आज भी होती है, जिनके नाममें 'आम्ता' शब्द युक्त रहता है, उन्हींके अनुकरणमें ही कृष्णवर्णा काली और गौरी दुर्गा देवीकी पूजा प्रारम्भ हुई । प्रख्यात पादरी डॉ० सुइट्जार (Swetzar) ने भी एतदनुरूप मतका पोषण किया ।

अन्य किसी धर्ममतमें शक्तिपूजा नहीं—पृथ्वीपर दो ही मुख्य धर्मदर्शन हैं–१—सनातन वैदिक-धर्म एवं तदीय उप-शाखाएँ-(क) बौद्ध (ख) जैन, (ग) सिक्ख आदि । २–सेमिटिक यहूदी मत तथा उसकी प्रशाखा–(क) क्रिस्तान-ईसाई एवं (ख) इस्लाम मत ।

सेमिटिक धर्ममत १—यहूदी—ये छोटी अर्धसभ्य जाति फिलिस्तिनकी मूल निवासी रहीं । पञ्चम शतक (खृ०पू०) के पूर्व ये अनपढ़ थे । इनके यहाँ कोई लिखित ग्रन्थ तबतक नहीं था । इनके मूल धर्म-शास्त्र, ओल्ड

---

1. "From the fact that the Śakta systems began to appear from a time not very much earlier than the sixth century A. D. (Cf. Farquhar, 'Outlines' 167 ff.). and from the dates of the Śakta Upanisads which began to appear not much earlier than the tenth century A. D. (Ibd, R. 256-57). It seems that the Śakta philosophy attained recognition not earlier than the ninth century A. D."
Dr. Hazra, puranic Records, 91

2. "The hideaous oggresses who still rule in the temples of the south-eastern coast of the Deccan, perpetuate this from of divinity. There is no doubt that Kali the Black, and Durga the Unapproachable, could never have been brought into the Brahmin pantheon, if Dravidian god desses with names encing in 'Amma' had not stood as prototypes."
(Masson-oursel & others, Ancient Indian Civilization 121).

3. "Probably Krishna the black god was originally a primeval Dravidian divinity. This was certainly the case with Siva and the goddess Kali the black one who plays so great a part in Hindustan."
(Dr. Albert Schwweitzer, 'Indian Thought And Its Development' P. 173)

टेस्टामेण्ट प्राचीन बाइबिल (Old estatment) प्रथम शतक (खृ० पू०) तक निर्मित हुआ ।) इस मतमें याभे (yahova) एकमात्र ईश्वर स्वर्गमें विराजते हैं, कोई देवीका अस्तित्व नहीं । इनकी वर्तमान संख्या लगभग एक करोड़ है और ये पृथ्वीपर सर्वत्र फैले हुए हैं ।

२–खृष्ट मत (३० खृ० पू० ३० खृ० ए०सी०)—इसके प्रतिष्ठाता यीशु (Christ) एक यहूदी थे । उनका असल नाम हिब्रु था । (येहेशुआ ।) यहूदी शास्त्र और यीशुके चार छोटी जीवनी-पुस्तक इनसे सम्बद्ध है। ३०० खृष्ट कालमें धर्मग्रन्थ बाइबिल (Bible) बना है । आज कृस्तानियोंकी संख्या मनुष्य समाजके प्रायः एक तिहाई है । इस मतमें ईश्वर (God) स्वर्ग पिता है, उनकी कोई देवी नहीं है ।

कैथोलिक और ग्रीक-चर्च-सम्प्रदायकी यीशु माता मेरी (Mary) को मानते हैं । उनकी उपासना पहले नहीं रही । पञ्चम शतकमें मिश्रकी आइसिस (Isis) तथा ग्रीककी दायाना आर्तिमिस (Diana Artimis) के अनुकरणमें मेरी-पूजा प्रारम्भ हुई । प्रोष्टाण्ट-सम्प्रदायमें इनकी कोई मान्यता नहीं है । परंतु मेरी ईश्वरकी अनुगृहीता एक नारीके रूपमें समाहित है, देवी रूपमें नहीं ।

यहूदियोंमें प्रवाद है कि यीशु प्यान्टेरा (Pantara) नामके रोमन सैनिकके जारज पुत्र थे । वे इनको (Yesubanpantes) नामसे पुकारते हैं ।

३–इस्लाम–(Islam) सम्प्रदाय–(७०० खृ०) अरब देशमें मुहम्मदद्वारा प्रतिष्ठित हुआ । इस मतमें अल्लाह एकमात्र ईश्वर स्वर्गमें विराजते हैं, कोई देवी नहीं है । मुसलिम जनसंख्या आज विश्वमें ५० करोड़से अधिक है ।

सेमिटिक दर्शनानुसार केवल नर (पुरुष) में ही आत्मा हैं । नारी (स्त्री) अचिन्तन पदार्थकी तरह जड़ हैं, इसमें आत्मा नहीं है । नारी मात्र भोग्या है । इसका कोई महत्त्व नहीं है । कयामतके दिन (At the time of Disorsolutien) आदि कालसे जितने पुरुष मरे हैं, सब पूर्व-देह लेकर खड़े होंगे । पापी लोग अनन्तकालतक नरकमें जलाये जायेंगे । पुण्यवान् लोग अनन्तकालतक स्वर्ग-भोग करेंगे । नारीको स्वर्गवास होगा, इसमें संदेह है । क्योंकि उनमें आत्मा नहीं है ।

मनीषिप्रवर डॉ० डुराण्ट (Durant) ने लिखा है[4] कि 'यहूदी, प्रोटेस्टेण्ट और इस्लाममें देवी-पूजनके असद्भाव लक्ष्यका विषय है'[5] ।

बौद्ध तथा जैन मत–ये ईश्वरको नहीं मानते हैं, तब देवीके लिये स्थान कहाँ ? अतएव महामाया वा प्रकृति यद्यपि इन मतोंमें नहीं है, फिर भी सनातनधर्मकी कुछ देवियाँ–लक्ष्मी, पद्मावती, सरस्वती आदि गौणभावसे पूजी जाती हैं । (देखिये–जैनधर्ममें शक्ति-पूजा) ऊपर जो स्वल्प निरीक्षण किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि

4. "The finest triumph of the tolerant spirit of adaptation was the submlibation of the pagan mother-goddess colt into the worship of Mary. In 431, Cyril, Archbishop of Alex-andria applied to Mary many of the terms fondly as-cribed by the pagans of Ephesus, to the great goddess Artemis-Diana; and in that year over the protests of Nes torius, the Council of Ephesus sanctioned for Mary the title, 'Mother of God'.

(Dr. Durant, 'The Age of Eaith' 745)

"Statues of Isis and Horus were renamed Mary and Jesus." (Ibid, 75)

'From that to tha identification of Mary with Isis, ando her elevation to a rank quasi. dine, was also a very natural step." (H. G. Wells, The Outline of History, 368-69)

5. "Worship of Mary is contined to Roman Catholics, only." 'Note the absence of mother Goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and protestant Christ-ianity."

(Dr. Durant, Life of Christ Page 178 f.)

सनातनधर्मके बाहर कहीं भी मूलप्रकृति या पराशक्तिकी उपासना नहीं है।

पाश्चात्त्य मत भ्रान्त है। वैदिक युगसे ही सनातन धर्ममें शक्तिपूजाका प्रधान वैशिष्ट्य है।

(अ) प्राचीन साहित्यमें शक्तिपूजाके प्रमाण— महाकवि बाणभट्ट (सप्तम शतक)ने कादम्बरी-उपन्यासमें चण्डिकामन्दिरका वर्णन किया है। उनका **'चण्डीशतक'** अत्यन्त प्रसिद्ध स्तोत्र है। उन्हींके सम-सामयिक मयूरकविके भी सूर्य एव शक्तिपरक स्तवादि हैं।

(आ) भगवान् श्रीशंकराचार्य—(४८८-५२०) और उनके परम (वा सप्तम परात्पर) गुरु श्रीगौड़पादाचार्य सत्सम्प्रदायके गम्भीर तान्त्रिकाचार्य थे। उनका 'सुभगोदेय' देवीस्तोत्र प्रसिद्ध है। शंकराचार्यकी **'सौन्दर्यलहरी'** आदि शक्तिपरक स्तोत्र सुप्रसिद्ध हैं। शक्ति-उपासना-सम्बन्धी **'प्रपञ्चसारतन्त्र'** उनका नामक ग्रन्थ भी विख्यात है।

गौड़पादाचार्यका सप्तशती-चण्डीपर भाष्य—(चिदानन्दकेलिविलास) ग्रन्थ मेरे पास है, वह खण्डित है। परंतु उसमें प्रसिद्ध तन्त्र **'रुद्रयामल'**से श्लोक उद्धृत हैं, जिसमें—सप्तशतीमें कितने श्लोक मेधा मुनिके, कितने राजा सुरथके और कितने समाधि वैश्यके हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख है। गौड़पादका काल ईसापूर्व पञ्चम शतक माना गया है। अतएव रुद्रयामल तथा चण्डी और मार्कण्डेय-पुराणका युग बहुत-बहुत पुरातन होना चाहिये।

(इ) सम्राट् हाल शालिवाहनप्रणीत प्राकृत काव्य-गाथा 'सप्तशती' **(प्रथम शतकखृष्ट)** में हरगौरी उपासनाके स्पष्ट उल्लेख हैं (१।१, १।६१, ५। ४८,५।५५)। **'अज्जा हरे वद्धम्'** (२।७२) आर्या (एकनंशा-हरिवंशमें इनका विस्तार देखिये)। देवीके मन्दिरमें घण्टा बाँधनेकी प्रथाका उल्लेख है। यह राजा हाल शकाब्द प्रवर्तक (७८ खृ०) थे, इस लेखकने प्रमाणित किया है।

(ई) महाकवि कालिदास—**(प्रथम शतक खृ० पू०)** ये सिद्ध तान्त्रिकाचार्य भी थे। उनकी 'चिद्गगन-चन्द्रिका', 'श्यामला दण्डक', 'सकलजननीस्तोत्र', 'चण्डी-स्तोत्र' शक्ति-उपासना-विषयक प्रसिद्ध हैं। उनके काव्योंमें सर्वत्र देवीपूजाके इङ्गित हैं।

(उ) कौटिल्यका अर्थशास्त्र **(चतुर्थ श० खृ० पू०)**में भी अपराजिता (दुर्गा), श्री,मदिरा (वारुणी) देवीके मन्दिरोंके उल्लेख हैं।

(ऊ) महाकवि भास **(पञ्चम श० खृ० पू०)**ने कात्यायनी,मातृका, यक्षिणी आदि देवियोंके उल्लेख किये हैं।

शास्त्रके प्रमाण—वेदाङ्ग—(१) पाणिनि-व्याकरणके इस—

'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुला-चार्याणामानुक।' (४।१।४९)

—सूत्रमें कम-से-कम नवम (खृ० पू० श०)में कई देव तथा उनकी शक्तिपूजाके प्रमाण हैं। यथा—भव-भवानी, शर्व-शर्वाणी, रुद्र-रुद्राणी, मृड-मृडानी—ये जगन्माताके नाम द्योतक हैं।

कल्पसूत्र-'बौधायन गृह्य-परिशिष्ट'में दुर्गा, उपशक्ति, श्री, सरस्वती तथा ज्येष्ठा और 'वैखानस-धर्मप्रश्न' में भद्रकाली पूजाका वर्णन है।

महाभारत—विराट (६) तथा भीष्म (२३) पर्वमें दुर्गा-स्तोत्र हैं। वासुदेव-भगिनी, सदाशिवा, कृष्णा, महिष-मर्दिनी, जया, विजया, काली, महाकाली, दुर्गा, कीर्ति, श्री-प्रभृति नामसे देवीकी स्तुति की गयी है। सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाको नैशयुद्धमें काली मा कालरात्रि देवीकी सहायता मिली थी। लेखके विस्तार-भयसे पुराणादिसे प्रमाण नहीं दिये गये हैं। किंतु उपर्युक्त संक्षिप्त समीक्षण निश्चित रूपसे सिद्ध करता है कि शक्ति-

पूजा नवम शतकमें सनातन-धर्ममें प्रथम प्रवर्तित हुई—यह नितान्त मिथ्या है, पागलके प्रलापसे भी वृथा वकवाद है।

वेदकी कथा—ऋग्वेदीय रात्रिसूक्तसे ऊपर मन्त्र उद्धृत किया गया है। यह सूक्त शाकलसंहिताके खिल भागमें धृत है। परंतु वाल्संहितामें यह मूलमें आम्नात है। रात्रि, कालरात्रि, महाकाली, योगनिद्रा, महामाया, दुर्गा—ये परा प्रकृतिके नाम हैं। आप ही चित्‌शक्ति 'भुवनेशी' या 'भुवनेश्वरी' हैं। पुरीधाममें सुभद्रा माताकी भुवनेश्वरी-मन्त्रद्वारा पूजा होती है। अन्यत्र इन्हींकी 'एकानंशा' नामसे पूजा की जाती है।

जीवरात्रि और ईश्वररात्रि—जैसा 'जीवरात्रि'में अखिल जीवकुलका व्यवहार लोप होता है, उसी प्रकार महाप्रलयकालमें 'ईश्वररात्रि'में केवल ब्रह्म-मायात्मिका सर्वकारणकारणा अव्यक्त-पदवाच्या देवी भुवनेशी ही रहती हैं। उस समय ईश्वरतक लुप्त हो जाते हैं।

ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका।
तदधिष्ठात्री देवी तु भुवनेशी प्रकीर्तिता॥
(देवीपुराण)

महामति नागोजिभट्ट तथा नीलकण्ठने अपनी षडङ्ग टीकामें इस विषयपर सुन्दर व्याख्या लिखी है।

'…सा रात्रिदेवता द्वेधा जीवरात्रिरीश्वररात्रिश्च।… द्वितीया तु यस्यामीश्वरव्यवहारलोपो भवति। महाप्रलयकाले तदा नियव्यवस्थाभावात् केवलं ब्रह्म-मायात्मकमेव वस्तु सर्वकारणमव्याकृतपदवाच्यं तिष्ठति सा द्वितीया रात्रिः।'

रात्रिसूक्तमें देवी दुर्गाके नाम कई बार आये हैं। रात्रि ही दुर्गादेवी हैं।

वेदमें रात्रिदेवीके कई मन्त्र मिलते हैं। यथा—

(१) ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।
(२) 'ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीम्॥
(१।३२।१)

महामायाके तीन रूप—यह चिच्छक्ति जगन्माता भुवनेशीकी सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणी तीन मूर्तियाँ हैं—महासरस्वती ब्रह्माणी, महालक्ष्मी वैष्णवी और महाकाली रुद्राणी। ये तीनों एक ही हैं, कोई प्रभेद नहीं।

वेदमें इन तीनोंके ही उल्लेख हैं। '**गौरीर्मिमाय**' (ऋ० १।१६४।४१) आदि मन्त्रमें गौरवर्ण सरस्वती देवीका जगत्सृष्टिका सुन्दर रूपमें वर्णन है। और ऋग्-वेदका श्रीसूक्त लक्ष्मीदेवीपरक है। बाहुल्यभयसे इङ्गित मात्र किया गया है। सप्तशती—श्रीश्रीचण्डी-देवीमाहात्म्यके प्रथम चरित्रमें महाकाली, मध्यम चरित्रमें महालक्ष्मी और उत्तर चरित्रकी देवी महासरस्वती हैं।

नवरात्र-शारदीया दुर्गापूजा—महालयके बाद प्रतिपदासे नवमीतक सारे भारतमें नव दिनोंतक जगन्माता दुर्गाकी विशेषरूपसे उपासना होती है। व्रत, उपवास, जप, कीर्तन, हवन आदि किये जाते है, कहीं तो छागादि बलिदान भी होता है। सर्वत्र विशेषतः बंगदेशमें विशाल मृन्मयी प्रतिमामें सप्तमी, अष्टमी और नवमीमें दुर्गापूजा होती है। दशमीको प्रतिमाएँ नदीमें या तालावमें विसर्जन कर दी जाती हैं। जगन्माताको यहाँ कन्यारूपसे अपनाया गया है, मानो विवाहिता कन्या पतिके घर कैलाससे पुत्र-सहित तीन दिनोंके लिये माता-पिताके पास आती है। माँ दशभुजाओंमें दशप्रहरण (आयुध) धारिणी, सिंहवाहिनी, महिषासुरके स्कंधपर एक चरण रखे शूलद्वारा उसका वध कर रही होती हैं। दोनों पार्श्वमें लक्ष्मी और सरस्वतीदेवी, जो उनकी कन्यारूपसे कल्पिता हैं। दोनों पुत्र—गणपति और कार्तिकेय स्व-स्व वाहनोंपर अधिष्ठित होते हैं। ऊपरमें भगवान् शिव हिमालयपर स्थित रहते हैं।

वस्तुतः भारतके अन्य भागोंमें तथा समग्र पृथ्वीभरमें इतना प्रकाण्ड उत्सव बंगदेशके बाहर कहीं नहीं होता।

देश-विभाजनके पहले सत्ताके समय प्रचुर समारोह होता था। गाँवभरके सर्व जातिके आबाल-वृद्ध लोग तीन दिन दुर्गा-मण्डपमें ही प्रसाद पाते थे। इस लेखकके घरमें प्रायः तीन सौ वर्षोंसे दुर्गापूजा होती है। ब्राह्मण, जमींदार होते हुए भी परिवारके लोग ही सबको प्रसाद परिवेषण करते थे। एक बार लेखकने बागदी, हाड़ी आदिको रातमें चार बजेतक प्रसाद—अन्न बाँटा था। उस कालमें सात गाँवके ब्राह्मण निमन्त्रित हुए थे। जन्मभूमिके पाकिस्तान बन जानेसे तथा जमींदारी लोप हो जानेपर बंगालके दो तिहाई भागमें अब दुर्गापूजा प्रायः बंद हो गयी है। अस्तु !

भगवत्-लीला-चिन्तन ही संसार-अर्णव उत्तरणका सहज लघु-उपाय है। जगन्माताको दुहिता-रूपकी भावनाद्वारा बंगवासी भक्तजनने मानो वात्सल्य-प्रेमसे उनको बाँध लेते हैं। सप्तमी, अष्टमी, नवमी एक-एक दिन जाता हूँ, तो हृदय भावविरहकी गुरु व्यथासे क्रमशः भाराक्रान्त होता जाता है। जब सुवर्णपुत्तलीको नदीमें विजयादशमी-के शामको विसर्जित करके शून्य मण्डपमें म्लान दीपको देखते हैं, तब हृदय विदीर्ण हो जाता है। फिर एक साल बाद माँ आयेगी इस आशासे कथंचित् प्रबोध होता है।

बंगवासियोंने दुर्गापूजाद्वारा जगन्माताको कन्यारूपसे बाँध लिये हैं, माँ उनके स्नेह-डोरको कैसे तोड़ सकती हैं ? ब्राह्मण नित्य त्रिसंध्यामें ब्रह्माणी, वैष्णवी, रुद्राणी-की उपासना करते हैं। शारदीया दुर्गा-प्रतिमा उसीका ही प्रतीक है। अतः सिद्ध है कि शक्ति-उपासना वैदिक सनातन-धर्मका प्राणस्वरूप है। अन्तमें हम भक्ति-भावसे हरगौरीको प्रणाम करते हैं—

जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय।

(शंकराचार्य, अर्धनारीश्वरस्तोत्र)

गायत्रीके चतुष्कोणोंकी छः शक्तियाँ

(पं० श्रीभवानीशंकरजी)

महेश्वर केवल पराशक्तिद्वारा ही प्रकाशित होते हैं। समाधिनिष्ठ महर्षि भी इस महाविद्या-शक्तिके प्रकाशके बिना न महेश्वरको देख सकते हैं और न पा सकते हैं। पराशक्ति ही महेश्वरकी दिव्यज्योति-स्वरूपा है। अतएव 'सौन्दर्यलहरी'में इस शक्तिको सम्बोधित करके ठीक ही कहा गया है—

'त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा-
शरीरार्धं शम्भो रपरमपि मन्ये हृतमभूत्।'

इसी शक्तिको 'गायत्री' कहते हैं। अर्थात् 'गायन्तं **त्रायते इति गायत्री।**' इसका अर्थ है, वह गान करने-वालोंका त्राण करती है। गायत्री त्रिपाद है और प्रत्येक पादमें आठ अक्षर हैं। यह आठ 'दो'का घनफल है। इन दो-का भाव है—(१) ज्योति (रूप) और (२) नाम। यह **'ज्योतिषां ज्योतिः'** और परमा विद्या तथा जीव और चिच्छक्तिका मूल है और इसके भीतर नाम अर्थात् शब्द-ब्रह्म है, जो अनादि और अव्यय है एवं जिसका बाह्यरूप प्रणव है। घन व्यक्त किये जानेपर चतुष्कोण होता है। इस कारण दोके तीन घन व्यक्त होनेपर छः चतुष्कोण हुए अर्थात् त्रिपादसे चतुष्पाद हुआ। प्रत्येक पादमें चार अक्षर होनेसे गायत्रीमें चौबीस अक्षर हुए। ये छः चतुष्कोण छः शक्तियाँ हैं, जिनके नाम हैं—(१) पराशक्ति, (२) ज्ञानशक्ति, (३) इच्छाशक्ति, (४) क्रियाशक्ति, (५) कुण्डलिनीशक्ति और (६) मातृकाशक्ति।

(१) **पराशक्ति**—यह सब शक्तियोंका मूल और आधार है तथा परम ज्योतिरूपा है।

(२) **ज्ञानशक्ति**—यह यथार्थमें विज्ञानमूलक होनेके कारण सब विद्याओंका आधार है। इसके दो रूप हैं—

(क) पाञ्चभौतिक उपाधिसे संयुक्त होनेपर यह मन, चित्त, बुद्धि और अहङ्कारका रूप धारण कर लेती है, जो मनुष्यका मनुष्यत्व है और क्रियामात्रका कारण है।

(ख) पाञ्चभौतिक उपाधिके रज-तम-भावसे मुक्त होनेपर इसके द्वारा दूरदर्शन, अन्तर्ज्ञान, अन्तर्दृष्टि आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(३) **इच्छाशक्ति**—इसके द्वारा शरीरके स्नायु-मण्डलमें लहरें उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्मेन्द्रियाँ इच्छित कार्य करनेके निमित्त संचालित होती हैं। उच्च कक्षामें सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर इस शक्तिके द्वारा बाह्य और अन्तरमें समान भाव उत्पन्न होकर सुख और शान्तिकी वृद्धि होती है और इसके द्वारा उपयोगी तथा लोकहितैषी कार्य होते हैं।

(४) **क्रियाशक्ति**-यह आभ्यन्तरिक विज्ञानशक्ति है। इसके द्वारा सात्त्विक इच्छाशक्ति कार्यरूपमें परिणत होकर व्यक्त फल उत्पन्न करती है। एकाग्रताकी शक्ति प्राप्त होनेपर इस शक्तिके द्वारा इच्छित—विशेष मनोरथ भी सफल हो जाता है। योगियोंकी सिद्धियाँ इन्हीं सात्त्विक और आध्यात्मिक इच्छा एवं क्रियाशक्तिद्वारा व्यक्त होती हैं।

(५) **कुण्डलिनीशक्ति**—इसके समष्टि और व्यष्टि दो रूप हैं। सृष्टिमें यह प्राण अर्थात् जीवनी-शक्ति है, जो समष्टिरूपमें सर्वत्र नाना रूपोंमें वर्तमान है। आकर्षण और विश्लेषण दोनों इसके रूप हैं। विद्युत् और आन्तरिक तेज भी इसीके रूपान्तर हैं। प्रारब्ध-कर्मानुसार यही शक्ति बाह्याभ्यन्तरमें समानता सम्पादन करती है और इसीके कारण पुनर्जन्म भी होता है।

यह व्यष्टिरूपमें मनुष्यके शरीरके भीतर तेजोमयी शक्ति है। यही पञ्चप्राण अर्थात् जीवनी-शक्तिका मूल है, इन प्राणोंद्वारा ही इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। इसी शक्तिके द्वारा मन भी संचालित होता है। इस शक्तिके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेसे अर्थात् इसे अपनी सात्त्विक इच्छाके अनुसार शिवोन्मुख संचालित करनेसे ही मायाके बन्धनसे मुक्ति मिलती है। साधारण मनुष्यके लिये, जिसने इस शक्तिके साथ साक्षात् सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है, यह शक्ति प्रसुप्तकी भाँति है। हृदयचक्रकी साधनासे यह शक्ति जाग्रत् होती है। यह सर्पाकार शक्ति है। जो मनुष्य हृदयके विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदिको दूर किये बिना और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान आदिसे हृदयको परिप्लुत किये बिना ही केवल बाह्य क्रिया (जैसे हठयोगकी साधना) द्वारा इस शक्तिको जाग्रत् करना चाहता है, वह किंचित् चमत्कारिक सिद्धियाँ भले ही प्राप्त कर ले, किंतु अध्यात्मदृष्टिसे उसका अधःपतन ही होता है। उसके दुर्गुण और विकार उसी तरह बढ़ जाते हैं, जिस तरह पवित्र हृदयवाले साधकके सद्गुण इस शक्तिकी जागृतिसे वृद्धि-गत हो जाते हैं। ऐसे अपवित्र हठी साधक हृदयमें अष्टदल कमल देखते हैं, जहाँ महाविद्याका यथार्थ वास-स्थान नहीं है; किंतु राजयोगी, पवित्रात्मा उपासक साधक श्रीसद्गुरुकी कृपासे हृदयमें अष्टदल कमलके चक्रको देखता है जो विद्याशक्तिका ठीक वासस्थान है और उनकी कृपा प्राप्तकर तथा अविद्यान्धकारको पारकर वह शिवमें संयोजित होता है।

(६) **मातृकाशक्ति**—यह अक्षर, बीजाक्षर, शब्द, वाक्य तथा यथार्थ गानविद्याकी भी शक्ति है। मन्त्र-शास्त्रके मन्त्रोंका प्रभाव इसी शक्तिपर निर्भर करता है। इसी शक्तिकी सहायतासे इच्छाशक्ति अथवा क्रियाशक्ति फलप्रदा होती है। कुण्डलिनीशक्तिका आध्यात्मिक भाव भी न तो इस शक्तिकी सहायताके बिना जाग्रत् होता है और न लाभदायक ही। जब सात्त्विक साधकके

निरन्तर सात्त्विक मन्त्रका जप करने और ध्यानका अभ्यास करनेसे मन्त्रकी सिद्धि होती है, तब उसकी इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और कुण्डलिनीशक्ति भी स्वयं अनुसरण करती हैं। अतएव यह मन्त्रशक्ति ही समस्त शक्तियोंका मूल है; क्योंकि शब्द ही सृष्टिका कारण है। सृष्टिके सब नाम इसी शक्तिके रूपान्तर हैं और रूप भी इसीके अधीन हैं। बीजमन्त्र भूलोकमें इसी शक्तिका व्यक्त रूप है। मन्त्र सिद्ध हो जानेपर वह पवित्रात्माका उद्धार माताकी भाँति करता है, किंतु अपवित्रात्मा और कामासक्त व्यक्तिको अधोगति ही प्रदान करता है।

अचिन्त्यभेदाभेद-(चैतन्य) मतमें शक्ति

(लेखक—श्रीश्यामलालजी हकीम)

शक्ति शब्द कहते-सुनते ही कई प्रश्न-चिह्न उभर आते हैं—किसकी शक्ति ? कैसी शक्ति ? शक्तिके प्रकार-भेद, उसकी कार्यक्षमता आदि। वस्तुतः शक्तिमान्‌के स्वरूप-ज्ञानके बिना शक्तिका विवेचन या उसकी आलोचना पङ्गु ही नहीं, नितान्त असम्भव है, जैसे अग्निके ज्ञानके बिना उसकी दाहिका शक्तिकी आलोचना। अतः प्रस्तावित शक्तिके मूलाधिष्ठान शक्तिमान्‌के भी अति संक्षिप्त परिचयका यहाँ उल्लेख असंगत न होगा।

शक्तिमान्‌का स्वरूप

अपौरुषेय वेद-उपनिषदादि शास्त्रोंका स्पष्ट उद्घोष है कि सर्वविध अनन्तासंख्य शक्तियोंका मूलकारणभूत एकमात्र अखण्ड केन्द्र है ब्रह्म। ब्रह्म-शब्दकी बृंह-धातुसे निष्पन्नता ही उसमें बृहद् शक्तिका परिचय दे रही है। **'बृंहयति इति ब्रह्म।'** ब्रह्म सबसे बड़ा है और उसमें बड़ा करनेकी शक्ति है। श्वेताश्वतरश्रुति (६ । ८) का कथन है—**'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।'** ब्रह्ममें अनेकविध पराशक्तियाँ हैं, जैसे ज्ञानशक्ति, बलशक्ति एवं क्रियाशक्ति। वेदान्तसूत्र (१ । १ । २) **'जन्माद्यस्य यतः'**में ब्रह्ममें अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करनेकी शक्तियोंका स्पष्ट उल्लेख है। श्रीपाद शंकराचार्यने वेदान्तसूत्र (१ । १ । १) **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** के भाष्यमें ब्रह्मको सर्वज्ञ-सर्वशक्तिसमन्वित कहकर निरूपण किया है—**'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितं ब्रह्म।'**

ब्रह्म स्वरूपमें सर्वापेक्षा सर्वविषयोंमें समधिकरूपसे बड़ा है—**'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'**—(श्वेताश्वतर ६ । ८)। अतः वह शक्तिमें भी बड़ा है, शक्तिके कार्यमें, शक्तिकी संख्यामें तथा प्रत्येक शक्तिके परिमाणमें भी वह सर्वापेक्षा समधिकरूपसे बड़ा है, तभी तो उसे श्रुतियाँ—**'अनन्त ब्रह्म'** कहती हैं। अनेक श्रुतियाँ उस अनन्त ब्रह्मको **'आनन्दं ब्रह्म'** कहती हैं। वह 'सत्' चित् आनन्द[1] है, वह आनन्द सत् अर्थात् नित्य है, वह चित् है, अर्थात् ज्ञानस्वरूप एवं स्वयम्प्रकाश है। तैत्तिरीयश्रुति (आनन्दवल्ली २ । ७)का उल्लेख है—**'रसो वै सः'**—इत्यादि। वह अनन्त ब्रह्म रसस्वरूप है, रसस्वरूप होनेसे वह आस्वाद्य तथा आस्वादक भी है—**'रस्यते रसयते च इति रसः'**। अतः अशेष-विशेषविध रसवैचित्रीका आस्वादन करनेके लिये वह **'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।'** (गोपालतापनी पू० २०) एक—अद्वयतत्त्व भी अनेक स्वरूपोंमें अपनेको प्रकट करता है। जिस स्वरूपमें शक्तिका एवं रसत्वका चरमतम पूर्ण विकास है, उसे श्रुतियाँ 'परं ब्रह्म'आख्या देती हैं। **'योऽसौ परं ब्रह्म गोपालः'**

१—वेदान्त मतमें विशुद्ध ब्रह्म आनन्द स्वरूप भी नहीं है,किंचित् सगुणतामें ही उसमें चिदानन्दादि गुण आते हैं।

(गोपालतापनी उ० ता० ९०) **'तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते'** (गोपालतापनी १ । १)। उसी **'परं ब्रह्म'**की समस्त शक्तियाँ दो प्रकारसे अवस्थान करती हैं—अमूर्त-शक्ति एवं मूर्त-शक्ति।

१–अमूर्त-शक्ति—अमूर्तरूपमें शक्ति अवस्थान करती है—भगवद्विग्रहादिके साथ एकात्मताप्राप्त-भावमें। २–मूर्तशक्ति अधिष्ठात्री-रूपमें अवस्थान करती है—भगवद्-आवरणरूपमें[1]। केनोपनिषद् (३ । १२ एवं ४ । १) में हैमवती उमाको मूर्ता—मायाशक्ति कहा गया है। परब्रह्मकी चेतनामयी शक्तिरो शक्तिमती होकर वह माया-शक्तिकी अधिष्ठात्री देवीरूपमें कार्य करती है। आधुनिक जड-विज्ञान भी शक्तिका मूर्तरूप स्वीकार करता है। परिदृश्यमान जगत्को वह शक्तिकी परिणति मानता है।

शक्तिके प्रभेद

परब्रह्मकी अनन्त शक्तियाँ उसकी प्रधान तीन शक्तियोंकी वैचित्री रूपा हैं। वे तीन प्रधान शक्तियाँ हैं—१–पराशक्ति, २–जीव-शक्ति एवं ३–माया-शक्ति।

१–परा-शक्ति—परब्रह्मके स्वरूपमें अवस्थित रहनेसे इसे **'स्वरूपशक्ति'** एवं 'अन्तरङ्गा-शक्ति' कहते हैं। चेतनामयी होनेसे 'चित्-शक्ति' भी कहा जाता है। अन्य दोनों शक्तियोंसे श्रेष्ठा होनेके कारण यह 'परा-शक्ति' कहलाती है। इस स्वरूप-शक्तिकी तीन वृत्तियोंमें अभिव्यक्ति है—

'ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।'
(विष्णुपुराण १ । १२ । ६९)

(क) संधिनी-शक्ति—यह सच्चिदानन्द परब्रह्मके सत्-अंशकी शक्ति है। इसके द्वारा परब्रह्म निजकी एवं अन्य समस्तकी सत्ताको धारण करते हैं एवं सत्त्व प्रदान करते हैं। इसके द्वारा भगवद्धाम प्रकाशित होते हैं। इसे 'आधार-शक्ति' भी कहा जाता है।[2] भगवद्धाम इसके मूर्तरूप हैं।

(ख) संवित्-शक्ति—परब्रह्म स्वयं ज्ञानस्वरूप होकर भी इसके द्वारा अपनेको जानते हैं, दूसरोंको जनाते हैं। इसे ज्ञान-शक्ति भी कहा जाता है। कारण, इसके द्वारा उपासकोंको परब्रह्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है।

(ग) ह्लादिनी-शक्ति—स्वयं आनन्दस्वरूप परब्रह्म इसके द्वारा आनन्दका आस्वादन करते हैं और भक्तोंको भी आनन्दका आस्वादन कराते हैं। रसस्वरूप परब्रह्म मधुररस अर्थात् कान्ताभावमय रसका आस्वादन करते हैं इस ह्लादिनीके द्वारा। यही शक्ति मूर्त-विग्रह धारण कर कृष्णकान्ता-शिरोमणि श्रीराधारूपमें परब्रह्म श्रीकृष्णको मधुररसकी अशेष–विशेष वैचित्रीका आस्वादन कराती है। यह मूलकान्ताशक्ति परब्रह्मके विभिन्न भगवत्स्वरूपोंकी कान्तारूपमें उनकी मधुररसमयी सेवा सम्पादन करती है। जैसा कि श्रीमहादेवजीने श्रीनारदजीके प्रति कहा है—

राधा वामांशसम्भूता महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता।
ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवीश्वरस्यैव हि नारद॥
तदंशा सिन्धुकन्या च क्षीरोदमथनोद्भता।
मर्त्यलक्ष्मीश्च सा देवी पत्नी क्षीरोदशायिनः॥

× × × ×

रासाधिष्ठात्री देवी च स्वयं रासेश्वरी परा।
वृन्दावने च सा देवी परिपूर्णतमा सती॥
(नारदपाञ्चरात्र २ । ३ । ६०–६५)

१–तासां केवलशक्तिमात्रत्वेन अमूर्तानां भगवद्विग्रहाद्यैकात्म्येन स्थितः। तदधिष्ठात्रीरूपत्वेन मूर्तानां तु तदावरणतयेति द्विरूपत्वमपि ज्ञेयमिति दिक्॥ (भगवत्संदर्भ १८८)

२–इयमेव सन्धिन्यंशप्रधाना चेत् आधार-शक्तिः॥ (श्रीश्रीधर स्वामी)

चित्-शक्तिरूपा श्रीदुर्गा

शास्त्रोंमें श्रीदुर्गादेवीके भी अनेक स्वरूपोंका उल्लेख मिलता है। उनमें जो स्वरूप चिच्छक्ति या ह्लादिनी प्रधाना स्वरूपशक्तिरूपा हैं, उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है तथा जो त्रिगुणात्मिका सम्भूतस्वरूपा हैं, उनका विवरण माया-शक्ति-विवरणान्तर्गत देनेकी चेष्टा की गयी है।

१-वैकुण्ठवासिनी श्रीदुर्गा—वैकुण्ठके आवरण देवताओंमें चौथे आवरणमें श्रीदुर्गा विराजमान हैं। वे गुणातीत हैं एवं अष्टादशाक्षर आदि मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवता हैं।

२-परव्योमवासिनी श्रीदुर्गा—मायातीत परव्योममें श्रीसदाशिवके लोकमें उनकी कान्ता-शक्ति जो श्रीदुर्गा देवी हैं, वे शुद्ध चिच्छक्तिस्वरूपा हैं।

३-गोकुलेश्वरी श्रीदुर्गा—श्रीदुर्गाके इस स्वरूपका वर्णन है, नारद-पाञ्चरात्रके श्रुति-विद्या-संवादमें मिलता—

जानात्येकापरा कान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका।
या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी॥
यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः।
मुहूर्तादेव देवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा॥
एकेयं प्रेमसर्वस्वस्वभावा गोकुलेश्वरी।
अनया सुलभो ज्ञेयो ह्यादिदेवोऽखिलेश्वरः॥

(श्रीमद्भा० १०। १। २५, विश्वनाथचक्रवर्तिपादकृत टीका)

यह दुर्गा-स्वरूप भगवान्‌की परमाशक्ति, महाविष्णु-स्वरूपिणी स्वरूपभूता शक्ति है। इसका तत्त्व या उपासना जान लेनेसे परात्पर देवाधिदेव श्रीकृष्णकी चरण-प्राप्ति सुलभ हो जाती है। प्रेमसर्वस्वस्वभावा है यह और गोकुलकी अधिष्ठात्री-देवी होनेसे इसे 'गोकुलेश्वरी' कहा गया है।

४-शिवलोकवासिनी श्रीदुर्गा—श्रीदुर्गादेवीका यह स्वरूप श्रीमहादेवकी कान्तारूपमें अवस्थान करता है मायातीत शिवलोकमें, जो ब्रह्माण्ड-कटाहके पृथिवी आदि सात आवरणोंके बहिर्भाग अर्थात् प्रकृतिरूप आठवें आवरणमें विद्यमान है। वायुपुराणमें कहा गया है—

श्रीमहादेवलोकस्तु सप्तावरणतो बहिः।
नित्यः सुखमयः सत्यो लभ्यस्तत् सेवकोत्तमैः।
सम्मानमहिमश्रीमत् परिवारागउद्भमावृतः॥

(श्रीबृहद्भागवतामृत १। २। ९६–९७में उद्धृत)

५-कैलासवासिनी दुर्गा—श्रीदुर्गादेवी श्रीउमारूपसे शिवलोकमें कैलासपर श्रीउमापतिकी कान्ता-रूपमें विराजमान हैं। कुबेरकी आराधनासे प्रसन्न होकर ईशान-कोणके दिक्पालरूपमें परिवारसहित श्रीशिव यहाँ विराजमान हैं। (श्रीबृहद्भागवतामृत १। २। ९३-९४)

उपर्युक्त पाँचों स्वरूपोंमें जो श्रीदुर्गादेवी अवस्थान करती हैं, वे सब स्वरूपशक्ति-आत्मिका मूलकान्ता-शक्तिके अन्तरङ्ग अंश हैं—**'यस्या अंशे लक्ष्मी-दुर्गादिकाशक्तिः।'** (पुरुषबोधिनी श्रुति) श्रीदुर्गादेवीके स्वरूप गुणातीत हैं, उन्हें साधारण भावसे 'लक्ष्मी' भी कहा जाता है।

२-जीवशक्ति—परब्रह्मकी दूसरी प्रधान-शक्ति है जीव-शक्ति। यह चिद्रूपाशक्ति है, किंतु परब्रह्मके स्वरूपमें इसकी अवस्थिति नहीं है। इसे **'तटस्था-शक्ति'** भी कहा जाता है। अनन्तकोटि जीव इसी शक्तिके अंश हैं। (लेख-विस्तारभयसे इतना ही उल्लेख यहाँ पर्याप्त है)।

३-माया-शक्ति—परब्रह्मकी प्रधान शक्तियोंमें तीसरी है—माया-शक्ति, किंतु यह जड़रूपा है। इसे योग-मायाकी विभूति माना गया है। जड़ माया-शक्तिकी

१–श्रीकृष्णस्वरूपभूते श्रीमदष्टादशाक्षरादिमन्त्रगणेऽपि दुर्गानाम्नो भगवद्भक्तात्मक-स्वरूपभूतशक्तिवृत्तिविशेषस्या-धिष्ठातृत्वं श्रुतितन्त्रादिष्वपि दृश्यते॥ (भक्तिसंदर्भः २८५)

सत्याच्युतानन्तदुर्गाविष्वक्सेनो गजाननः—इत्यादि। (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

आलोचनासे पूर्व उक्त योगमाया-शक्तिका भी संक्षिप्त परिचय यहाँ देना अप्रासङ्गिक न होगा—

(क) **योग-माया**—मुग्धत्वकी दृष्टिसे समानधर्मा होते हुए भी यह परा नामक चिच्छक्ति ही है—**'योगमाया पराख्याचिन्त्यशक्तिः।'** इसका कार्यक्षेत्र भगवद्धाम है। यह भगवान्‌के परिकरोंको भगवल्लीलामें सेवा-सौष्ठव-विधान करनेके लिये मुग्ध करती है और प्रयोजनानुसार स्वयं परब्रह्म भगवान्‌तकको भी लीला-रस-वैचित्री-आस्वादन-निमित्त मुग्ध करती है। इसे लीला-शक्ति भी कहते हैं।

(ख) **बहिरङ्गा-शक्ति**—यह जड़रूपा शक्ति है, जो परब्रह्मको स्पर्श नहीं कर सकती। उसके बाहर ही यह अवस्थान करती है। इसलिये इसे बहिरङ्गा-शक्ति कहा जाता है; किंतु यह स्वरूप-शक्ति-योगमाया-के द्वारा नियन्त्रित या संचालित होती है। इस शक्तिकी दो वृत्तियाँ हैं—१—जीव-माया एवं २—गुण-माया।

(ग) **जीव-मायाशक्ति**—बहिरङ्गा-माया अपनी जीव-माया-वृत्तिद्वारा—आवरणात्मिका-वृत्तिद्वारा जीवके स्वाभाविक ज्ञानको आवृत करती है और दूसरी विक्षेपात्मिका-वृत्तिद्वारा जीवमें विपरीत ज्ञान उत्पन्न करती है। मायाकी सृष्टि, स्थिति एवं संहारकारिणी वृत्ति ही जीवमाया है, जो जगत्‌का गौण-निमित्त-कारण कही जाती है।

(घ) **गुण-मायाशक्ति**—इसीके सम्बन्धमें श्रीभगवान्‌ने—**'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया'** (गीता ७। १४) कहा है। सत्त्व, रजः एवं तमः—इन तीनों गुणोंसे गठित होनेसे इसे त्रिगुणात्मिका या गुणमयी कहा जाता है। प्राकृत ब्रह्माण्ड ही इसका कार्यक्षेत्र है और भगवद्‌बहिर्मुख जीवोंको यह मुग्ध करती है। प्राकृत जगत्‌का गौण उपादान-कारण इसे माना गया है।

गुणमयी मायांश श्रीदुर्गादेवीके स्वरूप

१—ब्रह्मसंहिता (५। ४४)में गुणमयी मायांश श्रीदुर्गाका उल्लेख मिलता है—

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं नमामि॥

इस श्रीदुर्गास्वरूपको सृष्टि-स्थिति-प्रलय-साधिका-शक्ति कहा गया है। अतः यह गुणमयी है; क्योंकि मायिक गुणोंकी सहायतासे ही सृष्टि आदि कार्य साधित होते हैं। यह प्रकृत ब्रह्माण्डमें मन्त्ररक्षण-सेवाके निमित्त विराजती हैं और चिच्छक्तिरूपा दुर्गाकी दासीरूपा हैं।

२—शास्त्रोंमें गुणमयी मायांश श्रीदुर्गाके अन्य स्वरूपोंका भी परिचय मिलता है। श्रीमद्भागवतमें आता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने आविर्भावसे पहले मायाको नन्दगोकुलमें जाकर यशोदासे आविर्भूत होनेका आदेश दिया। वह उनके आदेशानुसार यशोदाकी कन्यारूपमें आविर्भूत हुई। उसे मथुरासे आकर श्रीवसुदेवजी ले गये। कंसने आकर उसे देवकीकी गोदसे खींचकर पत्थरपर दे मारा। वह कंसके हाथसे छूटकर अष्टभुजा-धारिणीरूपसे आकाशमें चली गयी।

भगवान् श्रीकृष्णने आदेश देते हुए मायासे कहा—

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥
नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च॥
(श्रीमद्भा० १०। २। १०—१२)

यही मुख्य दुर्गा स्वरूपा है और भद्रकाली, विजया आदि उसके कई एक नाम कहे गये हैं। यह श्रीदुर्गा भी गुणमयी मायांशरूपा है—चिच्छक्तिरूपा नहीं है।

भगवद्-विद्वेषी बहिर्मुख कंस या अन्यान्य जीवोंका मोहन या संहार गुणमयी मायाका कार्य है—योगमायाका नहीं। इसके **'सर्वकामवरेश्वरी'** तथा **'सर्वकामवरप्रदा'** नामोंसे भी स्पष्ट है कि यह अनन्तनामधारिणी श्रीदुर्गा सकाम लोगोंद्वारा उपासित होकर उन्हें सर्वकाम प्रदान करती है। सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति करती है।

मार्कण्डेयपुराण (११। ४१-४२)में देवी कहती हैं **'वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे'** इत्यादि। वैवस्वत मन्वन्तरकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें मैं नन्द-गृहमें जन्म लेकर शुम्भ-निशुम्भ आदि उत्पातकारी असुरोंका विनाश करूँगी।'

श्रीमद्भागवतमें एवं अन्य शास्त्रोंमें इसी श्रीदुर्गाके अनेक नामोंका उल्लेख मिलता है—जैसे भगवती भद्रा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, भीमादेवी, भ्रामरी, चण्डिका, चण्डमुण्डिका, महाकाली, नारायणी, शिवा, महादेवी, गौरी, महामाया, ईश्वरी एवं कात्यायनी आदि।

ये समस्त स्वरूप त्रिगुणात्मिका-शक्ति श्रीदुर्गाके हैं एवं मूलशक्ति श्रीराधाकी कलाके कोटि-कोटि अंशोंके अंशस्वरूप हैं—

तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड ५०। ५४)

इन समस्त स्वरूपोंकी उपासना-विधि शास्त्र-पुराणोंमें विस्तृत रूपसे वर्णित है। उस उपासनाद्वारा जीव अपने मनोऽभीष्ट सहजरूपमें प्राप्त कर सकता है। आजके युगमें जब नृशंस नर-संहारलीलाका ताण्डव हो रहा है, संहारकारिणी श्रीदुर्गा-शक्तिकी उपासना एवं उसकी प्रसन्नताके लिये सश्रद्ध प्रार्थना-ज्ञापन प्रत्येक मानवका कर्तव्य है।

श्रीमन्नारायणकी शक्ति श्रीलक्ष्मीदेवी

(लेखक—श्रीराष्ट्रपतिसम्मानित पद्मश्री डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

महर्षि पराशरने मैत्रेयसे श्रीविष्णु भगवान् और श्रीलक्ष्मीदेवीके माहात्म्यका वर्णन करते हुए कहा था कि विष्णुभगवान् विश्वके आधार हैं और लक्ष्मीजी उनकी शक्ति हैं—

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम।
(विष्णुपुराण १। ८। २९)

भगवान् विष्णु आदिपुरुष हैं, अतएव लक्ष्मीजी आद्याशक्ति हैं—

आद्यन्तरहिते देवि आद्याशक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥
(इन्द्रप्रोक्त महालक्ष्म्यष्टक ५)

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम्।
बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मं दधानां
आद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम्॥
(शाक्त प्रमोदीय-कमलात्मिकातन्त्रस्थलक्ष्मीहृदय०)

शं नो दिशतु श्रीर्देवी महामाया वैष्णवी शक्तिराद्या।
(वही कमलात्मिकातन्त्रान्तर्गत कमलात्मिकोपनिषद्)

लक्ष्मीजी नारायणकी अनपायिनी शक्ति हैं, अतएव नारायण-विग्रहके साथ लक्ष्मी-विग्रहका ध्यान कर्तव्य है। यदि दो शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान अभीष्ट हो तो श्री और लक्ष्मीके साथ करना चाहिये। उस दशामें चिच्छक्ति श्री हैं और आनन्द-शक्ति लक्ष्मी हैं—

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।
(यजुर्वेद ३१। २२)

यदि तीन शक्तियोंके साथ भगवान्‌का ध्यान करना है, तो श्री, भू और लीलाके साथ करना चाहिये। भू सच्छक्ति हैं, 'भू सत्तायाम्' और लीलाशब्द आनन्दका

सूचक है। इस प्रकार सत्, चित् और आनन्द नामकी तीन शक्तियोंके साथ भगवान्का ध्यान सम्पन्न होता है—

चतुर्भुजमुदाराङ्गं श्यामं पद्मनिभेक्षणम्।
श्रीभूमिलीलासहितं चिन्तयेच्च सदा हृदि॥
(भारद्वाज-संहिता ३।४८)

शक्ति और शक्तिमान्का परस्पर अभेद है। अतएव श्री और विष्णु एक ही हैं। विष्णु सर्वव्यापक हैं और उनकी शक्ति जगन्माता श्री भी सर्वव्यापिका हैं—

नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥
(विष्णुपुराण)

त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्।
(अग्निपुराण २३७।१०)

अवतार-रूपमें भी लक्ष्मीजी भगवान्की सहायिका होती हैं। श्रीरामरूपमें वे ही सीताजी हैं और श्रीकृष्ण-रूपमें वे ही रुक्मिणी हैं—

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
(विष्णुपुराण १।९।१४४)

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः।
(वा० रामायण ६।११७।२७)

रुक्मिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः।
(हरिवंश, हरिवंशपर्व १४१।१२९)

रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी।
(हरिवंश, विष्णुपर्व ५१।१३१)

श्री और श्रीमान् अभिन्न और एकतत्त्व होनेपर भी भक्तानुग्रहविग्रहरूपमें भिन्नवत् प्रतीत होते हैं। लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि रूप परतत्त्वके ही लीला-निमित्तक दो-दो रूप हैं, किंतु युगलरूपमें अनन्यता है—

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।
(वा० रामायण ६।११८।१९)

प्रभा एवं सूर्य जिस प्रकार अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार लक्ष्मी और नारायण अनन्य और अभिन्न हैं। जिस प्रकार तरङ्ग-राशि समुद्रसे अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीजी नारायण भगवान्से अनन्य और अभिन्न हैं——

सूर्यस्य रश्मयो यद्वदूर्मयश्चाम्बुधेरिव।
सर्वैश्वर्यप्रभावेण कमला श्रीपतेस्तथा॥
(जयाख्यसंहिता ६।७८)

ज्योत्स्नाका निवास जिस प्रकार राकेशमें है, उसी प्रकार श्रीका निवास योगियोंके ध्यानास्पद भगवद्वपुमें है—

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥
(अग्निपुराण २३७।६)

भगवान्के दिव्य वपुमें भी उनका वक्षःस्थल ही श्रीकी आवासभूमि है—

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत् परमं विभूतेः॥
(श्रीमद्भा० ८।८।२५)

'श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रियास्व'
(श्रीमद्भा० ३।१५।३९)

जब श्री और विष्णु विभिन्न रूपोंमें व्यक्त होते हैं, तब श्री वात्सल्यमूर्ति अम्बा हैं और विष्णु जगत्-पिता हैं—

त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता॥
(अग्निपुराण २३७।१०)

लक्ष्मीजी सुवर्ण-वर्णा, परमकान्तिमती, स्मितवदना, कमलानना, कमल-दल-नयन-युगला और अतिशय सुन्दरी हैं। नारायणका-सा पीताम्बर उन्हें प्रिय है। वे चतुर्भुजा हैं। प्रथम कर-युगलमें युगल-कमल लिये हुए हैं। द्वितीय दक्षिण पाणिसे अभय और वाम पाणिसे वर दे रही हैं। किरीट, कुण्डल, केयूर, कङ्कण, ग्रैवेय, हेम-हार, वैजयन्ती, काञ्ची और नूपुर आदि विभूषणोंसे विभूषिता हैं। कमलासनपर विराजमान हैं। स्यन्दन उनका प्रिय यान है। श्रीभगवान्के साथ विनतानन्दनकी सेवा भी स्वीकार करती हैं। चार गजराज अपने शुण्डामत्रोंके माध्यमसे उनका अभिषेक किया करते हैं।

वे दयामयी, उदार, यशस्विनी, देव-जुष्टा, सर्वलोकेश्वरी, दुराधर्षा और त्रिभुवन-वैभव-कारिणी हैं। माधवी, माधव-प्रिया, हरिवल्लभा, विष्णु-पत्नी, विष्णु-प्रियसखी, रमा, इन्दिरा आदि श्रीलक्ष्मीदेवीके नामान्तर हैं। धन-धान्य, गाय-घोड़े, पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, दास-दासी, आरोग्य और शतायुष्य-प्रभृति सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हैं, साथ ही अपने वात्सल्यमय, पतित-पावन अवलोकनसे चरणाश्रितोंको श्रीमन्नारायणके पद-पद्मोंकी आराधनामें अग्रसर करनेवाली हैं। ये ही श्री-सम्प्रदायकी आद्य-प्रवर्तिका हैं।

लक्ष्मी-कान्त विष्णु भगवान्‌की शक्तिसे ही यह समग्र विश्व-प्रपञ्च यथास्थान अवस्थित है। अतएव भगवान् गदापाणिको वेदोंमें अवष्टम्भ[1] कहा गया है।

जगदाधार प्रभुके इस अवष्टम्भन-नामक गुणकी चर्चा जगत्‌के प्रत्नतम ग्रन्थ-रत्न ऋग्वेदके समयसे ही होती आ रही है। महर्षि दीर्घतमा औतथ्यने विष्णु-सूक्तमें कहा है—

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम्। (१।१५४।१)

और मित्रावरुण-नन्दन महर्षि वसिष्ठने कहा है—

उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तम्। (७।९९।२)
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते। (७।९९।३)

इसी प्रकार महर्षि अथर्वाकी उक्ति है—

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे
स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः
स्कम्भ इह विश्वं भुवनमाविवेश॥
(अथर्ववेद १०।७।३५)

एवं महर्षि कुत्सका वचन है—

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
(अथर्ववेद १०।८।२)

इन वैदिक सूक्तियोंका भाव यही है कि श्रीविष्णु भगवान् इस समग्र विश्वके परमाधार हैं। श्रीविष्णु-सहस्रनामस्तोत्रमें यह तथ्य इस रूपमें प्रस्तुत हुआ है—

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्राः खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः॥

अर्थात् 'भूमि, महासागर, दिशाएँ, अन्तरिक्ष एवं सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंसे युक्त आकाश श्रीवासुदेव भगवान्‌की शक्तिसे यथास्थान अवस्थित हैं।'

सम्प्रति श्रीभगवान्‌की शक्तिस्वरूपा भगवती लक्ष्मीजीके चरण-नलिन-युगलमें पद्य-द्वयके ये दो प्रसून समर्पित हैं—

ईशाना याखिलानां धृतकमल-
युगा पालयित्री जनानां
क्षान्त्वा भक्तापराधान्
विहसितवदना श्रेयसां या सवित्री।
या लक्ष्मीर्लोकमाता सरसिज-
नयना माधवीति प्रसिद्धा
तस्या विष्णुप्रियायाः प्रभवति
सततं माधुरी मङ्गलाय॥

अर्थात् 'जो देवी समस्त लोकोंकी ईश्वरी हैं, अपने करकमलोंमें कमल-युगल लिये हुए हैं, स्वजनोंका पालन करनेवाली हैं, जो भक्त-जनोंके अपराधोंको क्षमा करके (उनकी बालिशताका कुछ भी विचार न करके) मुस्कराती रहती हैं, सर्वाङ्गीण कल्याणका विधान करती हैं, जगज्जननी हैं, माधवीके नामसे प्रसिद्ध हैं और जिनके नेत्र कमलके अमल दलोंके समान सुन्दर हैं, उन विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीके श्रीविग्रहकी माधुरी (ध्यान करनेवालोंके लिये) निरन्तर मङ्गलमयी है।

वात्सल्यमूर्तिमतुलप्रथितप्रभावां
नारायणस्य दयितां जगतां पराम्बाम्।
पद्माननां सरसिजायतपत्रनेत्रां
पद्माश्रियं भगवतीं श्रियमाश्रयामः॥

१—अव+स्तम्भ+अच्=अवष्टम्भ। 'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः' (अष्टाध्यायी ८।३।६८) अर्थात् 'अव' उपसर्गसे परे स्तम्भके सकारको षकार हो जाता है, यदि इस प्रकार व्युत्पन्न शब्दका अर्थ आश्रय और सामीप्य हो। भगवान् जगत्‌के सर्वसमर्थ आश्रय तो हैं ही और उनकी अपेक्षा हमारे निकट और कौन हो सकता है।

अर्थात् 'जो वात्सल्य-भावकी साकार प्रतिमा हैं, जिनका अतुलित प्रभाव विश्व-विदित है, जो नारायण भगवान्‌की प्रिय पत्नी हैं, जगदम्बा हैं, पद्मानना और कमलोपम नयन-युगला हैं, हम उन पद्मश्री भगवती लक्ष्मीजीकी शरण ग्रहण कर रहे हैं।'

और अब शक्ति एवं शक्तिमान्, दिव्य दम्पति श्रीलक्ष्मी-नारायणकी आराधनामें नम्र निवेदन है—

लक्ष्मीनारायणौ वन्दे दिव्यकैशोरसुन्दरौ।
प्रसन्नौ वरदौ नित्यं भृत्यरक्षाविचक्षणौ॥

अर्थात् 'मैं लक्ष्मीजी एवं नारायण भगवान्‌को प्रणाम कर रहा हूँ। ये दोनों अप्राकृत कैशोरके कारण अतीव कमनीय हैं। इनके वदनारविन्दोंसे प्रसादका प्रसार हो रहा है। ये उपासकोंको अभीष्ट वर देते रहते हैं और स्वजनोंके सतत परित्राणमें परम प्रवीण हैं।'

साहित्य और कलामें भगवान् विष्णुकी शक्ति श्रीदेवी

(लेखक—प्रोफेसर श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

श्रीदेवी या देवी लक्ष्मी सृष्टिव्यवस्थापक भगवान् विष्णुकी शक्ति हैं। उन्हें प्राचीन साहित्य और कलामें विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया तथा सौभाग्य और समृद्धिकी अधिष्ठात्री देवी माना गया। भारत और उसके बाहर कई देशोंमें अति प्राचीनकालसे ही प्रचलित रहा हैं। विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें 'लक्ष्मी' शब्द आता है। प्रसिद्ध 'श्रीसूक्त' उसीका खिलभाग है और लक्ष्मीके नाम साथ-साथ भी मिलते हैं। श्रीसूक्तमें भी दोनों नाम विष्णुपत्नी सूचक ही हैं।* उन्हें कमलके ऊपर बैठी कहा गया है।

वैदिक साहित्यमें श्रीलक्ष्मीके जो उल्लेख प्राप्त हैं, उनसे विष्णुके साथ देवीके सम्बन्धकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। कृष्णयजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता ७। ५। १४)में अदितिको भी लक्ष्मी कहा गया है। अन्यत्र अदितिको कश्यपकी पत्नी एवं आदित्य, मित्र, वरुण आदिकी माता बताया गया है। उनकी प्रियसखी 'भूदेवी' भी है। विष्णुकी अनेक प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें उनके एक ओर लक्ष्मी और दूसरी ओर भूदेवी प्रदर्शित हैं।

वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पुराण आदि परा प्राचीनतम संस्कृत-साहित्यमें विष्णु-पत्नीके रूपमें लक्ष्मीका स्थान प्रमुख है। उनकी उत्पत्तिके विषयमें कहा है कि देवासुरोंद्वारा समुद्र-मन्थन करते समय अनेक रत्नोंके साथ लक्ष्मीका भी प्रादुर्भाव हुआ। वे भगवान् विष्णुकी पत्नी बनीं और उनकी शक्तिके रूपमें आदृत हुईं। समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण लक्ष्मीका नाम 'समुद्रकन्या' प्रसिद्ध हुआ। वायुपुराण (९। ७९। ९८)में श्री या लक्ष्मीकी उत्पत्ति इस प्रकार दी है—'हिरण्यगर्भसे पुरुष तथा प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई। पुरुष ग्यारह भागोंमें विभक्त हुआ। प्रकृतिके दो भाग—प्रज्ञा या सरस्वती तथा श्रीलक्ष्मी हुए। वे दोनों अंश अनेक रूपोंमें संसारमें व्याप्त हुए।'

लक्ष्मी और कमल

पद्मके साथ लक्ष्मीका सम्बन्ध बहुत व्यापक है। देवीकी संज्ञाएँ 'पद्मा', 'पद्म-हस्ता', 'पद्मवासा' 'कमलालया', आदि प्रसिद्ध हैं। प्राचीन लक्षण-ग्रन्थोंमें लक्ष्मीके साथ कमलका अनेक प्रकारसे सम्बन्ध दिखाया गया है। उदाहरणार्थ, 'पूर्वकारणागम' नामक ग्रन्थ (पटल १२)-में लक्ष्मीको 'पद्मपत्रासनासीना', 'पद्मा', 'पद्महस्तिनी'

---

* 'श्रीश्च' या 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' (तैत्ति०, वाज०) आदिमें प्रथमपद भूदेवीका वाचक है।

(अर्थात् पद्मपत्रके आसनपर बैठी हुई कमलके-से रंगवाली तथा हाथमें कमलधारिणी) कहा गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें लक्ष्मीका वर्णन करते हुए उन्हें **'पद्मस्था पद्महस्ता च गजोत्क्षिप्तघटप्लुता'** (कमलपर स्थित, कमलधारिणी तथा हाथियोंद्वारा उठाये हुए घड़ोंसे अभिषिक्त) कहा गया है। कमलका फूल सुकुमारता, उज्ज्वलता और शान्तिका अभिव्यञ्जक होता है। साहित्य और कलामें हाथमें लीला-कमल धारण किये हुए सुन्दरियोंके आलेखन मिलते हैं। कालिदासने मेघदूतमें अलकापुरीकी महिलाओंका वर्णन करते हुए लिखा है कि वे हाथोंमें लीलाकमल लिये हुए रहती हैं और उनकी अलकोंमें कुन्दके पुष्प शोभित होते हैं---

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्।
(उत्तरमेघ० २)

बाणभट्टने कादम्बरी (पृ० ९२) में उत्फुल्ल कमलको हाथमें धारण किये हुए लक्ष्मीका उल्लेख किया है---

उत्फुल्लारविन्दहस्तयालिङ्गितो लक्ष्म्या।

अन्य अनेक कवियोंने लक्ष्मीके मनोरम वर्णन किये हैं।

आगम तथा अन्य लक्षण-ग्रन्थोंमें लक्ष्मीकी प्रतिमाका विधान मिलता है। **'अंशुमद्भेदागम'** के ४०वें पटलके अनुसार लक्ष्मीकी मूर्तिको कमलपुष्पपर बैठी हुई, दो भुजाधारिणी तथा सोनेके-से रंगवाली दिखाना चाहिये। उसके कानोंमें सोने और रत्नसे जटित मकराकृतिवाले उज्ज्वल कुण्डल सुशोभित होने चाहिये---

लक्ष्मीः पद्मसमासीना द्विभुजा काञ्चनप्रभा।
हेमरत्नोज्ज्वलैर्हेममकुण्डलैः कर्णमण्डिता॥

लक्ष्मीको चारुशीला युवतीके रूपमें चित्रित करनेका विधान मिलता है। उसके अनुसार देवीके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान और भौंहें कुंचित होनी चाहिये। एक हाथमें वे श्रीफल या बिजौरा नीबू तथा दूसरेमें पद्म धारण करें। सुन्दर वस्त्र तथा विविध आभूषणोंसे लक्ष्मी-प्रतिमाको सज्जित दिखाना चाहिये। कुछ प्राचीन लक्षण-ग्रन्थोंमें लक्ष्मीके चार हाथ दिखानेका विधान है और लिखा है कि उनके अतिरिक्त दोनों हाथोंमें अमृतघट और शङ्ख होने चाहिये।

लक्ष्मीकी प्रतिमाएँ

कमलालया लक्ष्मीका चित्रण भारतीय कलामें सामान्य बात है। भारहुत, साँची, बोधगया, मथुरा, अमरावती, तंजोर, मदुरै आदिकी कलामें पद्मस्थिता लक्ष्मीकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। कहीं लक्ष्मीको प्रफुल्ल कमलवनके मध्य स्थित दिखाया गया है तो कहीं त्रिभङ्ग भावमें खड़ी हुई वे लीलाकमल धारण किये हुए हैं। कुछ कलाकृतियोंमें कमलारूढ़ा लक्ष्मीका अभिषेक हाथियों-द्वारा दिखाया गया है। मथुराकी कुषाणकालीन एक मूर्तिमें लक्ष्मी अन्नकी बाली लिये हुए हैं, जो यह प्रदर्शित कर रही हैं कि माताके दूधसे और अन्नसे प्राणियोंका भरण-पोषण होता है। इस मूर्तिका पृष्ठभाग अत्यन्त कलात्मक ढंगसे दिखाया गया है। उसपर कमल-पुष्प, पत्ते, मयूरका जोड़ा आदि अलंकरण-वास्तुसे उकेरे गये हैं।

गुप्तकालकी एक मूर्तिपर कमलालया लक्ष्मीका हाथियोंके द्वारा अभिषेक चित्रित है। कर्नाटकके बीजापुर नगरके समीप पट्टदकल नामक स्थानमें लक्ष्मीको एक कलाकृतिपर जलके बीच कमल-शय्यापर लेटी हुई दिखाया गया है। ऐसी ही कमलशय्यापर आकर्षक मुद्रामें विराजमान देवीकी एक सुन्दर प्रतिमा उत्तर प्रदेशके फर्रुखाबाद जिलेके कम्पिल नामक स्थानमें सुरक्षित है।

कमल और लक्ष्मीका सम्बन्ध भारतीय कला एवं साहित्यमें अमर हो गया है। सुकुमार कमल शुभ्रता और शान्तिका प्रतीक है तथा लक्ष्मी सौन्दर्य और समृद्धि-

की। जहाँ इन दोनों वस्तुओंका समन्वय है, वहाँ सोनेमें सुगन्ध है।

ईसवी शतीके प्रथम महाकवि अश्वघोषने कमलालया लक्ष्मीका एक आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। सौन्दरनन्दके एक श्लोकमें गौतम बुद्धके चचेरे भाई नन्दकी लावण्यमयी पत्नी 'सुन्दरी'का वर्णन इसप्रकार मिलता है—

सा पद्मरागं वसने वसाना पद्मानना पद्मदलायताक्षी।
पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः शुशोष पद्मस्त्रगिवातपेन॥

'वह सुन्दरी पद्मके रंगवाला कपड़ा पहने हुए थी, उसका मुख कमल-जैसा था और बड़े-बड़े नेत्र कमलदलके सदृश थे। परंतु कुछ समय वियुक्त रहनेके कारण वह ऐसी लग रही थी मानो कमलालया लक्ष्मी अपने स्थानसे च्युत हो गयी हो। वियोग-जनित तापसे वह कमलकी मालाकी तरह म्लान हो रही थी।'

भारतमें देवी लक्ष्मीका महत्त्व इतना था कि उनकी पूजा सभी वर्गोंके लोगोंमें होने लगी। प्रसिद्ध गुप्त-वंशी शासक वैष्णव थे। उनके द्वारा बनवाये गये मन्दिरोंमें लक्ष्मी तथा कमलपुष्पको विशेष महत्त्व मिला है। गुप्त-सम्राटोंके सिक्कोंपर कमलपर बैठी या खड़ी हुई लक्ष्मीके अत्यन्त रोचक आलेखन मिले हैं। गुप्त-वंशके बाद अन्य कई राजवंशोंने लक्ष्मीको वैशिष्ट्य प्रदान किया। उत्तर भारतमें कलचुरि, चंदेल तथा गाहडवाल वंशोंके राजाओं, बंगाल और काश्मीरके शासकों तथा दक्षिण भारतके पांड्य आदि वंशोंके राजाओंने अपनी मुद्राओंपर लक्ष्मीकी छवि अङ्कित करायी।

भगवान् विष्णुके साथ देवी लक्ष्मीका ध्यान अनेक प्राचीन ग्रन्थों तथा अभिलेखोंके प्रारम्भिक मङ्गलाचरणमें मिलता है। देशके विभिन्न भागोंमें तथा हिंदचीन और हिंदेशियाके अनेक देशोंमें लक्ष्मीको अकेले या विष्णुके साथ बैठे हुए बहुसंख्यक कलाकृतियोंपर अङ्कित किया गया। सप्तमातृकाओंमें एक प्रतिमा लक्ष्मीकी होती थी। उनका वाहन विष्णुका गरुड़ पक्षी था तथा उनके हाथोंमें विष्णुके आयुध—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मिलते हैं।

प्रकाश और समृद्धिकी देवीके रूपमें विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीका सम्बन्ध दीपावली-उत्सवके साथ जोड़ा गया। लक्ष्मीकी एक संज्ञा 'दीपलक्ष्मी' भी प्रसिद्ध हुई। उनके एक या दो हाथोंमें दीपक रहता है। शरद् ऋतुका स्वागत प्राचीन भारतके अनेक क्षेत्रोंमें 'कौमुदी-महोत्सव' मनाकर किया जाता था। कालान्तरमें इस उत्सवने दीपमालिका-उत्सवका रूप ग्रहण कर लिया। बादमें अधिकांश ज्योतिर्लिङ्गीय सामासिक शुभ लक्ष्मी शब्दोंके उत्तरपदवर्ती शब्दमें 'लक्ष्मी' पद जुड़ने लगा और लक्ष्मीके कई सहस्रनाम स्तोत्र-बनाये गये।

महालक्ष्मीकी दयालुता

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित् कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्यः स्वजनयसि माता तदसि नः॥

'हे माता महालक्ष्मी! आपके पति (महाविष्णु) जब कभी पूर्णापराधी जीवके ऊपर पिताके समान हितकी दृष्टिसे क्रोधित हो जाते हैं, उस समय आप ही—'यह क्या! इस जगत्में निर्दोष है ही कौन!' इत्यादि रूपसे उपदेश कर उनके क्रोधको शान्त करवाके दयाको जाग्रत् कर उसे अपनाती हैं, तभी तो आप हमारी (हम सबकी) माता हैं।'

(पराशरभट्टारक)

आद्याशक्ति श्रीसीताजी

(लेखक—मानसमराल पं० श्रीजगेशनारायणजी शर्मा, एम्०ए०, डिप०इन०एड०)

श्रीरामचरितमानसमें जगदम्बा सीताजीको शक्तिका मूल स्रोत माना गया है। वे पराशक्ति परमेश्वरी हैं। उनके लीला-कटाक्षसे जगत्का निर्माण, पालन और संहार होता है। उन परम चिदात्मिका शक्तिकी वन्दना गोस्वामीजी मूलतः तीन रूपोंमें करते हैं—(१) उद्भवकारिणी, (२) स्थितिकारिणी और (३) संहारकारिणी—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
(रा० च० मा० १।१।५)

रामतापनीयोपनिषद्में भी सीताजीको उद्भव, पालन और संहारकारिणी कहा गया है[1]। उद्भव, स्थिति और संहार त्रिदेवके कर्म हैं। सीताजीमें त्रिदेवोंके कर्मोंका एकत्र संकलन है, अतः सीताजी मूलप्रकृति हैं; किंतु मूलप्रकृति होकर भी वे क्लेशहारिणी और सर्वश्रेयस्करी हैं। मूलप्रकृतिके सहयोगके बिना पुरुष (परमात्मा) सृष्टिकी रचना नहीं कर सकता।

रामचरितमानसके बालकाण्डमें सीताजीका उद्भवकारिणी-रूप देखा जा सकता है। बालकाण्डकी प्रमुख घटनाओं-के केन्द्रमें सीताजी ही हैं। बालकाण्डकी क्रियाओंकी सृष्टि सीताजीके परिपार्श्वमें होती है। फुलवारीसे लेकर विवाह-मण्डपतकका सारा आकर्षण सीताजीमें समाविष्ट है। यदि बालकाण्डके घटनाक्रमसे सीताजीको निकाल दिया जाय तो सारी क्रियाओंकी सृष्टि अवरुद्ध हो जायगी। बालकाण्डकी सीताजी समग्र ऐश्वर्यशालिनीके साथ-साथ अद्वितीय सौन्दर्य-शालिनी भी हैं। ऐश्वर्यके साथ-साथ सौन्दर्यका अद्भुत संयोग सीताजीके चरित्रमें औदात्यकी सृष्टि करता है। उनके लोकोत्तर सौन्दर्यका चित्रण गोस्वामीजीने अत्यन्त मर्यादाके साथ प्रस्तुत किया है। सीताजीका सौन्दर्य अनुपमेय है। संसारमें ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है, जिसके साथ सीताजीके सौन्दर्यकी उपमा दी जा सके।[2] सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी भी किसी-न-किसी दोषसे ग्रस्त हैं। कविके समक्ष एक विकट प्रश्न है कि अन्ततः सीताजीकी उपमा किससे दी जाय? कविद्वारा लगायी गयी शर्तके अनुसार यदि लक्ष्मीकी उत्पत्ति नये ढंगसे हो तो भी सीताजीसे समता देनेमें उसे संकोच होगा—

जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥
(रा० च० मा० १।२४७।४–८)

सीताजीका सौन्दर्य ऐश्वर्यमूलक है। यही शक्तिकी महिमा भी है। इस अनिन्द्य सौन्दर्यमें मोहकी वासनाकी गंधतक नहीं है। जहाँ सामान्य सौन्दर्यके ध्यान करनेसे मोह और वासनाकी उत्पत्ति होती है, वहाँ जगदम्बा सीताजीका ध्यान 'निर्मलमति'-प्रदायक है——

जनक सुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥
(रा० च० मा० १।१८।४)

१–श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्वदेहिनाम्॥ (३।३)

२–सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥ सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥
(रा०च०मा० १।२३०।७-८)

अयोध्याकाण्डसे अरण्यकाण्डतक सीताजी 'स्थिति-कारिणी' अर्थात् पालनकर्त्री हैं। इन काण्डोंमें सीताजी करुणाकी साकार प्रतिमा हैं। इन काण्डोंमें घटनेवाली सारी घटनाओंको वे साक्षी-भावसे देखती हैं। उनमें उन घटनाओंके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं है। वे यदि चाहतीं तो पलमात्रमें देवताओं, कैकेयी और मंथराके सम्मिलित षडयन्त्रको ध्वस्त कर देतीं; क्योंकि सीताजी चराचरकी समस्त क्रियाओंकी मूल प्रेरणा हैं। वे आदि-शक्ति और जगत्‌की मूलाधार चेतना हैं। उनके भृकुटि-विलाससे सृष्टिका सृजन और प्रलय होता है। मनु-शतरूपा-प्रकरणमें सीताजीको आद्याशक्तिके रूपमें महाकविने चित्रित किया है—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
(रा० च० मा० १। १४८। १-२)

उपर्युक्त समस्त वैभव-विभूषित होनेपर भी सीताजी चूँकि अयोध्यासे अरण्यकाण्डतक 'पालनकारिणी'की भूमिकामें हैं, अतः वे साक्षीमात्र या क्षमास्वरूपा हैं। जयन्त उनपर चञ्चु-प्रहार करता है, फिर भी वे करुणामयी बनी रहती हैं। यहाँतक कि रावणद्वारा अपहृत होनेके पश्चात् भी वे अपनी करुणाका परित्याग नहीं करतीं। किंतु लङ्काकाण्डकी सीताजी 'संहारकारिणी' हैं। यहाँ सीताजीकी विलग भूमिका है। वे निशिचर-कुलके नाश-हेतु 'कालरात्रि' बनकर लङ्कामें प्रवेश करती हैं—

कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥
(रा० च० मा० ५। ४०। ४)

यहाँ 'कालरात्रि' शब्द संहारकारिणी सीताजीका परिचायक है। दुर्गासप्तशतीमें जहाँ देवीके 'अष्टोत्तर-शतनाम' की चर्चा है, वहाँ भी 'कालरात्रि' शब्द सांकेतिक अर्थमें प्रयुक्त हुआ है—

अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी॥
(दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र १४)

वस्तुतः लङ्कामें सीताजीका प्रवेश 'कालरात्रि'के रूपमें हुआ है। नारायणी रौद्रमुखी बनकर अग्निज्वालात्मक रूपसे लङ्कामें निवास कर रही हैं। उन्हें उचित अवसरकी प्रतीक्षा है, जिसमें भद्रकाली कराली बनकर पापपुरी लङ्काका संहार कर सके। विभीषण इस तत्त्वसे परिचित हैं, अतः वे रावणको समझाकर कहते हैं कि 'शक्तिस्वरूपा सीताजीको लाकर मानो तुमने कालरात्रि (मृत्युदेवी)को निमन्त्रण दे दिया है।' कहनेका तात्पर्य यह है कि अब लङ्कामें कोई भी जीवित नहीं बचेगा। महारानी मंदोदरी भी रावणसे कहती हैं कि 'सीता शीतनिशा' (कालरात्रि)के रूपमें लङ्कामें आयी हैं। जबतक इन्हें श्रीरामको लौटा नहीं दोगे तबतक ब्रह्मा, शिव भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते—

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥
(रा० च० मा० ५। ३६। ४५)

जैसे तुषारापातसे कमल-वन विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार निशिचरकुलके संहार-हेतु सीताजीका आगमन लङ्कामें हुआ है।

मानसकी सीताजी षडैश्वर्यसंयुक्ता हैं। वे मात्र मूल प्रकृति न होकर अनेक दिव्य गुणोंसे अलंकृत हैं। उद्भव, स्थिति और संहार मूलप्रकृतिके कार्य हैं। मूलप्रकृति-को दुष्टा और दुःखरूपा भी कहा गया है—

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
(रा० च० मा० ३। १५। ३)

अतः गोस्वामीजीने मूलप्रकृतिसे भिन्न बताते हुए सीताजीको **'क्लेशहारिणीम्'** **'सर्वश्रेयस्करीम्'** और **'रामवल्लभाम्'** पदोंसे विभूषित कर इन्हें षड-ऐश्वर्य-संयुक्त सिद्ध किया है। जिनके हृदयमें अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश आदि पञ्च क्लेशोंका निवास रहता

है, उनके हृदयमें वैराग्य आदि उत्पन्न करके सीताजी उनमें ज्ञान तथा भक्ति अवस्थित करती हैं और कामादि विकारों-का संहार करती हैं। अतः उद्भव, स्थिति और संहारके कार्यमें उनकी मुख्य भूमिका पञ्च क्लेशोंको विनष्ट करनेके कारण सीताजीका 'क्लेशहारिणी' विशेषण अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रत्येक परिस्थितिमें वे श्रीरामसे सम्पृक्त हैं। अतः 'रामवल्लभाम्' विशेषण देकर महाकविने शक्तिस्वरूपाकी कल्याणकारिणी शक्तिकी ओर संकेत किया है। 'उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता' होनेपर भी सीताजीका भगवान् रामके चरण-कमलोंमें अखण्ड अनुराग है। शक्ति और सेवाका अभूतपूर्व मणिकाञ्चन-संयोग पतिपरायणा सीताजीके चरित्रमें द्रष्टव्य है—

निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥

(रा० च० मा० ७। २४। ३-४)

सेवापरायणा सीताजीका यह लोक-मङ्गलकारी रूप युग-युगतक नारीवर्गके लिये अनुकरणीय रहेगा।

इस प्रकार रामचरितमानसकी सीताजी मुख्यतः तीन रूपोंमें चित्रित हैं। यद्यपि उनके तीनों रूप उदात्त और प्रसङ्गानुरूप हैं, किंतु गोस्वामीजीको जगज्जननीका करुणार्द्र-रूप विशेष प्रिय है। इसी रूपमें भक्तवत्सला माँ अपने लाडले पुत्रोंपर कृपा करके अपने करुणाकोषसे आशीर्वादों-के मोती लुटाने लगती हैं—

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

(रा० च० मा० ५। १७। १-२)

श्रीरामकी शक्ति सीताजी

(१)

(लेखक—डॉ० श्रीशुकदेवराय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

श्रीसीताजीको मूलप्रकृति या आदिशक्ति माना गया है। शक्तिस्वरूपा सीताजी शाश्वत एवं सनातन हैं। ये सदा हैं और सदा रहेंगी। श्रीरामके साथ इनका नित्य सांनिध्य है—ऐसा अनेक आर्षग्रन्थोंमें उल्लेख है—

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥
सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामया भवेत्।
विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते॥

(सीतोपनिषद्)

इस प्रसङ्गमें अध्यात्मरामायणकी अधोलिखित पङ्क्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है—

'एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया।
योगमायापि सीतेति।'

एकमात्र सत्य वस्तु श्रीराम ही बहुरूपिणी मायाको स्वीकार कर विश्वरूपमें भासित हो रहे हैं और श्रीसीताजी ही वह योगमाया हैं।'

श्रीसीताजी आदिशक्ति हैं। ऐसी शक्तियोंकी संख्या तैंतीस बतायी गयी है। वे सभी शक्तियाँ इसी महा-शक्तिकी अंशभूता हैं। महारामायणमें इसका उल्लेख इस प्रकार है—

श्रीर्भूर्लीला तथोत्कृष्टा कृपायोगोन्नती तथा।
पश्यन्ति भ्रूकुटी तस्या जानक्या नित्यमेव च॥

सीता शब्दका अर्थानुक्रममें भी विशेष महत्त्व है। इस शब्दकी व्युत्पत्तिपर विचार करनेपर व्याकरण-सम्मत अनेक गूढार्थ बोधगम्य होते हैं, जिनसे श्रीरामकी इस शक्तिकी महिमा व्यञ्जित होती है।

१—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। (पा० यो० द० २।३)

१–सूयते इति सीता। अर्थात् जो जगत्को उत्पन्न करती हैं। यह सीता शब्द **'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'** धातुसे बना है।

२–सवति इति सीता। अर्थात् जो ऐश्वर्ययुक्त है। इसका सम्बन्ध **'षु प्रसवैश्वर्ययोः'** धातुसे है।

३–स्यति इति सीता। अर्थात् जो संहार करती हैं अथवा क्लेशोंको दूर करती हैं। यह **'षोऽन्तकर्मणि'** धातुसे बना है।

४–सुवति इति सीता। अर्थात् सत्प्रेरणा देनेवाली। यह सीता शब्द **'षू प्रेरणे'** धातुसे बना है।

५–सिनोति इति सीता। अर्थात् बाँधनेवाली, वशमें करनेवाली। इसका सम्बन्ध **'षिञ् बन्धने'** धातुसे है।

६–कुछ पण्डित सीता शब्दको तालव्यादि—शीता मानते हैं। यथा—

'शीता नमः सरिति लांगलपद्धतौ च। शीता दशाननरिपोः सहधर्मिणी च॥ इति तालव्यादौ धरणिः। (अमरकोश, भानुदीक्षितकृत टीका)

इसके अनुसार—**श्यायते इति शीता।** अर्थात् सर्वत्रगामिनी। यह शीता शब्द **'श्यैङ् गतौ'** धातुसे बना है।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त सब शब्दोंकी सिद्धि **'पृषोदरादित्व'** से ही होती है। प्रथमके अनुसार सीतामें उत्पत्ति-गुण 'दूसरेके अनुसार ऐश्वर्य-गुण।' तीसरेके अनुसार संहार-गुण चौथेके अनुसार सत्प्रेरणा-दायक-गुण और पाँचवेंके अनुसार बाँधनेका गुण है। निर्गुण ब्रह्ममें इन्हीं सीताजीकी उत्तमा शक्ति बाँधती है और इसी कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण साकार हो पाता है। इस प्रकार श्रीसीताजी ही ब्रह्मके सगुण अवतरणकी कारण हैं।

सीता नामके और भी कारण अनेक ग्रन्थोंमें उल्लिखित हैं। विष्णुपुराणके अनुसार—

तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना। (४। ५। २८)

सीतोपनिषद्में—भूतले **हलाग्रेसमुत्पन्ना।**

वाल्मीकिके अनुसार—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयतः लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥
(वाल्मी० १। ६६)

आनन्दरामायणके अनुसार—

सीराग्रान्निर्गता यस्मात् सीतेत्यत्र प्रगीयते। (७४)

अवतारानुक्रममें सीताजीके ही ये अनेक नाम उपलब्ध हैं और उनका सम्बन्ध किसी-न-किसी कथानकसे है, जिसकी चर्चा विस्तारभयसे यहाँ नहीं की जा रही है। नामावलि इस प्रकार है—

१–फलसे निकलनेके कारण—मातुलुङ्गी।

२–अग्निमें वास करनेसे—अग्निगर्भा।

३–रत्नोंमें निवास करनेसे—रत्नावली।

४–धरणीसे उत्पन्न होनेके कारण—धरणिजा, भूमिसुता।

५–श्रीजनकद्वारा पालित होनेसे—जानकी, वैदेही।

६–हलके फालसे निकलनेके कारण—सीता।

७–राजा पद्माक्षकी कन्या होनेके कारण—पद्मा।

८—मिथिलामें जन्म लेनेके कारण—मैथिली।

९–अमानवीय होनेके कारण—अयोनिजा।

१०–श्रीराम-पत्नी होनेके कारण—रामवल्लभा।

श्रीसीताजीका प्राकट्य अंशतः होता ही रहता है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इसकी बृहत् चर्चा है—

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी॥

कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती।
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती॥
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती।
रावणेन हृता त्वं च त्वं हि रामस्य कामिनी॥
(ब्रह्मवै० पुरा० कृष्णज० अ० १२६। १६-९९)

संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि संसारमें जहाँ-कहीं दया है, क्षमा है, शौर्य है, ममता है, शोभा है, शूरता है, मातृत्व है, वहीं इस शक्ति सीताका निवास है—

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
(दुर्गासप्तशती)

(२)

(पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, एम्० कॉम्०, एम्० ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

जिस प्रकार गिरा एवं अर्थ सतत सम्पृक्त हैं तथा बीचि जलका ही विशेष रूप हैं, वे कहनेमात्रको भिन्न हैं, वास्तवमें अभिन्न हैं। इसी तरह श्रीरामजीसे सीताजी सदा सम्पृक्त हैं, उनसे कभी पृथक् नहीं होतीं। यथा—

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

'सीताजी सर्वलोकमयी, सर्वधर्ममयी, सर्ववेदमयी, सर्वाधार, सर्वकार्यकारणमयी, महालक्ष्मी, देवेशकी भिन्नाभिन्नरूपा, चेतनाचेतनात्मिका, ब्रह्मस्थावरात्मा, तद्गुणकर्मविभाग-भेदसे शरीर रूपा, असुर, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, बेताल, भूतादि-भूतशरीररूपा, देवर्षि, मनुष्य, गन्धर्वरूपा एवं भूतेन्द्रिय-मनःप्राणरूपा हैं।'

पद्मपुराणमें सीताजीको जगन्माता और श्रीरामको जगत्-पिता, सीताजीको प्रपञ्चरूपिणी और श्रीरामको निष्प्रपञ्च, सीताजीको ध्यानस्वरूपिणी और श्रीरामको योगियोंकी ध्येयात्ममूर्ति और दोनोंको परिणामापरिणामसे रहित बताया गया है—

जगन्मातापितृभ्यां च जनन्यै राघवाय च।
नमः प्रपञ्चरूपिण्यै निष्प्रपञ्चस्वरूपिणे॥
नमो ध्यानस्वरूपिण्यै योगिध्येयात्ममूर्तये।
परिणामापरिमाभ्यां रिक्ताभ्यां च नमो नमः॥
(पद्मपुराण)

'अद्भुतरामायण'में कहा गया है कि 'सीताजी सृष्टिकी प्रकृतिरूपा, आदिभूता, महागुणसुसम्पन्ना हैं। सीताजी तपःसिद्धि तथा स्वर्गसिद्धि हैं। सीताजी ऐश्वर्यरूपा और मूर्तिमती सती हैं। ब्रह्मादिदेवगण इन जगन्माताकी 'महती विद्या' तथा 'अविद्या'—इन दोनों रूपोंसे स्तुति किया करते हैं। वही ऋद्धि और सिद्धि हैं। सीताजी गुणमयी हैं, फिर भी गुणातीता हैं। सीताजीसे ही ब्रह्म तथा ब्रह्माण्डका सम्भव होता है। सीताजी ही सभी कारणोंकी कारण और प्रकृति-विकृति-स्वरूपिणी हैं। सीताजी ही चिन्मयी और चिद्विलासिनी हैं। ये ही महाकुण्डलिनी हैं। चराचर जगत् इन्हीं सीतादेवीका विलास है। तत्त्वदर्शी योगी लोग इन्हींको हृदयमें धारण करके हृदयकी अज्ञान-ग्रन्थिका भेदन किया करते हैं।'

जब लङ्का-विजय करके श्रीरामजी लौटे और अयोध्यामें उनका अभिषेक हुआ, सरकार सिंहासनारूढ हुए, पासमें माता सीताजी बैठी थीं, उस समय वे वसिष्ठादि महात्माओंसे घिरे हुए थे। उन्होंने देखा कि सामने बुद्धिमान् हनुमान्‌जी अञ्जलि बाँधे खड़े हैं। उन्हें तत्त्वज्ञानके अतिरिक्त और किसी पदार्थकी चाह नहीं है। तब भगवान् श्रीरामने सीताजीसे कहा कि 'तुम हनुमान्‌जीको तत्त्वोपदेश करो। इनमें कल्मष नहीं है और वे हम दोनोंके परम भक्त हैं।'

'बहुत अच्छा'—कहकर सीताजीने हनुमान्‌जीसे कहा—

'हनुमान्! तुम मुझे मूलप्रकृति समझो। मैं सृष्टि, स्थिति और लय करती हूँ। इनके (श्रीराम)के सन्निधानमात्रसे निरन्तर इस जगत्‌की रचना किया करती हूँ। अनभिज्ञ लोग इनके सान्निध्यसे मेरी रचनाका आरोप इनपर किया करते हैं। अयोध्यामें अतिनिर्मल रघुवंशमें जन्म-ग्रहण, विश्वामित्रकी सहायता, यज्ञकी रक्षा, अहल्योद्धार, शिवजीका धनुष-भङ्ग, मेरा पाणिग्रहण, परशुरामका मदभङ्ग, बारह वर्ष अयोध्या-निवास, दण्डकारण्यगमन, विराधका वध, माया-मारीचका वध, माया-सीताहरण, जटायुको मोक्ष-प्रदान, कबन्धको गतिदान, शबरी-सत्कारग्रहण, सुग्रीवसे समागम, बालि-वध, सीताका अन्वेषण, समुद्रमें सेतुबन्धन, लंकापर चढ़ाई, दुष्ट रावणका सपुत्र-वध, विभीषणको राज्य-दान, पुष्पकद्वारा मेरे साथ अयोध्या-आगमन, राज्य-में श्रीरामजीका अभिषेक—ये सभी कार्य मैंने किये हैं।' (अध्यात्म-रामायण)।

वस्तुतः श्रीरामजी न चलते हैं, न बैठते हैं, न सोचते हैं, न कुछ चाहते हैं। ये तो आनन्दमूर्ति, अचल और परिणामहीन होकर मायाके गुणोंका अनुगमन करते हुए मालूम पड़ते हैं। वाल्मीकिका भी यही मत है, वे कहते हैं कि रामायण तो सीताजीका एक महान् शक्ति-चरित्र है।

सीता ही इच्छा-शक्ति हैं जो लोकरक्षणार्थ श्रीरूपसे प्रवृत्त होती हैं। वे ही योगमाया हैं। प्रलयावस्थामें श्रीवत्सरूपसे भगवान्‌के दक्षिण वक्षःस्थलमें निवास करती हैं।

महाशक्ति सीताजी और सर्वशक्तिमान् श्रीराम एक ही ब्रह्मके दो रूप हैं। लीला-हेतु ये दोनों पति-पत्नीके रूपमें पृथक् हुए। सूर्यका अपनी प्रभासे, चन्द्रमाका अपनी चाँदनीसे, शरीरका अपनी छायासे और शक्तिमान्-का अपनी शक्तिसे जैसे अविच्छेद सम्बन्ध होता है, वैसे ही अभेद सम्बन्ध श्रीरामका सीताजीसे है। भगवती सीता स्वयं कहती हैं—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।
(वा० रा० ५।२१।१५)

भगवान् श्रीरामने भी सीताजीकी अभिन्नताकी स्वीकृति दी है—

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।
(वा० रा० ६।११८।१८)

अर्थात् 'सीताजीका मेरे साथ उसी प्रकार अभिन्न सम्बन्ध है, जिस प्रकार सूर्यका अपनी प्रभासे होता है।' वे ही साक्षात् शक्ति हैं, भगवान्‌के संकल्पमात्रसे जगत्‌के रूपोंको प्रकट करती हैं तथा दृश्य जगत्‌में स्वयं व्यक्त होती हैं।

साधकोंको 'सीता-गायत्री'की उपासना करनी चाहिये, जो प्रत्यक्ष तपश्चर्या है। इससे तुरंत आत्मबलमें वृद्धि होती है। कम-से-कम एक सौ आठ बार सीता-गायत्रीका जप करना चाहिये। स्त्रियोंको भी सीता-गायत्रीका जप करना चाहिये। सीता-गायत्री एक तपः-शक्ति है। इससे निर्विकारता, पातिव्रत्य, मधुरता, सात्त्विकता, शीलता एवं नम्रता आदि सद्गुणोंकी प्राप्ति होती है। यह सीता-गायत्री इस प्रकार है—

'ॐ जनकनन्दिन्यै विद्महे रामवल्लभायै धीमहि। तन्नः सीता प्रचोदयात्।'

निष्कर्ष यह कि सीताजी ही लक्ष्मी हैं, जो ब्रह्मादि सभी देवताओंसे वन्दित हैं। अणिमादिक सिद्धियाँ सदैव इनकी सेवामें उपस्थित रहती हैं, कामधेनु स्तुति करती रहती है, वेदादि शास्त्र गुणगान किया करते हैं, जयादि अप्सराएँ टहल बजाती हैं, जहाँ सूर्य और चन्द्र-रूपी दीपक जलते हैं। नारदादि जिनका यशोगान करते हैं, राका और तारिकाएँ जिनके ऊपर छत्र लगाये रहती हैं, ह्लादिनी और माया चँवर डुलाती हैं, स्वाहा और स्वधा

पंखे झलती हैं तथा भृगु आदि महर्षि सदा पूजनमें रत रहते हैं, ऐसी हैं, हमारे भगवान् श्रीरामकी शक्ति भगवती सीता। भगवती सीताके विस्तृत चरित्र एवं उपासना-पद्धतिकी जानकारीके लिये 'श्रीजानकी-चरितामृतम्-महाकाव्य'—'अगस्त्यसंहिता' एवं सीतोपासनास्थ 'जानकी-स्तवराजादि सत्रास्थ—व्याख्यान देखना चाहिये।

(३)

(डॉ० श्रीमिथिलाप्रसादजी त्रिपाठी, वैष्णवभूषण, साहित्याचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आयुर्वेदरत्न)

श्रीराम अखिलब्रह्माण्डनायक, वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्म और सर्वभूतस्थित परमात्मतत्त्व हैं। फिर भी वे शक्तिके बिना अधूरे ही हैं। सीताजीके बिना श्रीरामका रामत्व अप्रकाशित ही रहता है। जन्म लेनेके बाद श्रीराम-कथा अवरुद्ध रहती है। महर्षि विश्वामित्रद्वारा राजा दशरथसे श्रीराम-लक्ष्मणकी याचना ही श्रीरामके शक्ति-सम्मुखी-करणका आद्य उपक्रम है।

धनुष-यज्ञ-प्रसङ्गमें लक्ष्मणका नाम लेकर श्रीरामने नगर-दर्शन किया, परंतु उन्हें पहली बार शक्तिका साक्षात्कार नहीं हो पाया। गुरुका आदेश लेकर दूसरी बार पुनः पूजाके लिये पुष्पचयन-हेतु श्रीराम-लक्ष्मण मिथिलाकी वाटिकामें पहुँचते हैं, शक्तिका पहला दर्शन ही शक्तिमान्में विश्व-जयका उपक्रम प्रस्तुत कर देता है। कामको श्रीरामपर अधिकार जहाँ सीताजीके आश्रयसे मिलता है और वह विश्वविजयी बनता है, वहीं सीताजीकी प्राप्ति भी श्रीरामके लिये त्रिभुवन-जयका प्रमाण है। तुलसीदासजीका विवरण सुनिये—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

इसी प्रकार 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' लिखकर अवतारका रहस्य संकेतित कर दिया गया है। अयोध्याके संख्यरसोपासक संत कहते हैं कि कामदेवने विश्व-विजयके लिये सीताजीके चरणोंकी शरण ली और नूपुरकी धुनिके माध्यमसे मुखरित हो गया। परिणाम था—त्रिभुवन-विजयी श्रीरामकी पराजय, शक्तिके सामने शक्तिमान्की हार।

धनुष-यज्ञमें सबने अपने-अपने इष्टदेवोंको मनाया था, सबने यही सोचा था—

जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥

धनुषके पास गुरुकी आज्ञासे आनेपर भी श्रीरामको शक्ति सीताजीसे ही मिलती है—'**चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि।**' सीता या शक्तिके लिये उन्हें धनुषको तोड़ना ही पड़ा—

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

कामदेवने 'विश्वविजय'का अभियान प्रारम्भ किया था, वह धनुर्भङ्गसे पूरा हुआ। आचार्य शतानन्दने सीताजीको श्रीरामके गलेमें जयमाल डालनेका आदेश दिया। यही विश्व-विजयी श्रीरामका स्वागत-हार था।

कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥

सामान्यतः ब्रह्मा सृष्टिके कर्ता माने गये हैं, परंतु सीतापुरमें वे अचम्भित रह गये; क्योंकि यहाँकी सजावट उनकी कृतिसे परे थी—

बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

यह सब सिय-महिमा थी। इतनी सुन्दर सजावट थी कि देवोंकी '**निज निज लोक सबहिं लघु लागे।**' वाली स्थिति थी। रामविवाहकी बारात जनकपुर आ

गयी—सीताजीको पता चला,त्यों ही उन्होंने सभी सिद्धियों-को स्मरणकर अपनी महिमाका निदर्शन प्रस्तुत कर दिया—

सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥
निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

सविधि विवाहके बाद शक्ति-शक्तिमान्‌की एकता हो गयी।

दशरथद्वारा कैकेयीके लिये दिये जानेवाले दो वरदान श्रीरामके रामत्वको उजागर करनेमें समर्थ थे। श्रीरामकी वनयात्रामें सीताजी और लक्ष्मण साथी बन गये।

वनवासी श्रीरामकी शक्ति सीताजीकी परखका प्रसङ्ग भी तुलसीदासने उपस्थित किया है। वे इतनी तेजोमयी हैं कि वे आगमें रह सकती हैं, उसमें वे नहीं जलती हैं, परंतु यह चरित्र लक्ष्मणकी जानकारीमें नहीं था। वे कंद-मूल-फलका चयन करने वनमें गये थे और श्रीरामने अपनी शक्तिको अग्निदेवता (गृहदेवता)के पास धरोहर रख दिया—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जब लगि करउँ निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

साहित्यशास्त्रका मत है कि **'न बिना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।'** संयोगकी क्षमताको शाश्वत करने-के लिये वियोग होना आवश्यक है। प्रकृति (सीता)-का पुरुष (श्रीराम)से पार्थक्य असह्य होता है। शक्ति और शक्तिमान् दोनों परस्पर आश्रय-आश्रयी भावसे युक्त हैं। प्रकृतिभूता शक्तिकी झाँकी श्रीरामकी प्राकृतिक उपादानोंमें होने लगती है। ये जिज्ञासा करने लगते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

क्या द्रव्य और गुण परस्पर पृथक् रह सकते हैं? यदि नहीं तो श्रीराम और सीताजी भी कैसे पृथक् हो सकेंगे। संकेत मिलता है सीताजीके लिये हनुमान्‌द्वारा कहे गये श्रीरामके संदेशमें—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

श्रीरामका अयन (रामायण) महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके लिये प्रारम्भ हुआ, जो सीता-विवाह या शक्तिवरणमें समाप्त हुआ। अब वनगमनमें अयोध्यासे शक्तिके साथ किया गया प्रयाण उस समय रामायणको मोड़ देता है, जब उनकी शक्ति वनवासिनी होकर भी समुद्रपार चली गयी। श्रीरामने शक्तिके लिये शिवधनुष तो तोड़ा ही था—वे दुनियाके सभी काम कर सकते थे। उनके उद्गार देखिये—

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
एक बार कैसेहु सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥

समुद्र-यात्रा करके अजेय एवं दुर्दान्त राक्षसोंके मध्य घिरी सीताशक्तिको श्रीरामने निरन्तर संघर्षसे प्राप्त कर लिया। श्रीरामकी इस शक्ति-समाराधनामें वानर, भालु, पक्षी सभी सहभागी हैं। समुद्र, वन, पर्वत सभीने श्रीरामका पक्ष लिया।

संतोंके मतमें सीताजीकी सेवा-उपासना करनेसे श्रीराम सुलभ हो जाते हैं। श्रीरामके मिलनेपर भी सीताजीको पानेके लिये हनुमान् बनकर भव-समुद्र पार करना पड़ता है और प्राणोंकी बाजी लगानी पड़ती है, परंतु सीताजीके कारण जनकपुरवासियोंको श्रीरामके अनायास दर्शन लाभ हो गये—लंकापुरवासियोंको मोक्ष मिल गया। इसीसे संतोंमें एक दोहा प्रसिद्ध है—

जनकनंदिनी पदकमल जब लगि हृदय न वास।
राम भ्रमर आवत नहीं तब तक ताके पास॥

जो शक्तिमान्‌को अपने गुणोंसे बाँध दे, आक्रान्त कर दे वही शक्ति तो सीता है—

सीनोत्यतिगुणैः कान्तं सीयते तद्‌गुणैस्तु या।
माधुर्यादिगुणैः पूर्णा तां सीतां प्रणमाम्यहम्॥

(४)

(श्रीनरेशजी पाण्डेय 'चकोर' एम्० ए०, बी० एल्०, विद्यासागर)

जगज्जननी सीताजी शक्तिस्वरूपा हैं। अखिल ब्रह्माण्ड-के नायक श्रीरामकी आह्लादिनी-शक्ति हैं, प्रेरणाकी स्रोतस्विनी हैं। महाकवि तुलसीदासने अपनी उपासनाके केन्द्र श्रीरामजीसे श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें कहलवाया है

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
... ...
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

यहाँ श्रीरामजी कहते हैं कि 'हे देवगण! तुम्हारी रक्षाके लिये मैं परमशक्ति (सीता)सहित अवतार लूँगा।'

शक्तिस्वरूपा सीताजीका ऐश्वर्य, शक्ति एवं श्रीरामजीके प्रति पुरातन प्रेम धनुष-यज्ञके समय स्पष्ट हो जाता है। बचपनमें किशोरीजीने जिस धनुषको खेल-खेलमें हाथसे उठाकर उस स्थानको साफ-सुथरा कर पुनः धनुषको उसी स्थानपर रख दिया था, वही धनुष आज संसारके किसी राजासे उठाया नहीं जा रहा है। उठाना तो दूर, तिलभर हिल-डुल भी नहीं रहा है---

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

रावण और बाण-जैसे शक्तिशाली राजाओंने धनुषको छुआतक नहीं—'**रावन बान छुआ नहिं चापा।**' इससे जनकनन्दिनीकी अपार शक्तिका पता चल जाता है। तभी तो कुछ राजा कहते हैं---

सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥

कविकुलगुरु तुलसीदासजी कहते हैं----

सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

इस तरह सीताजी जगज्जननी और शक्तिस्वरूपा हैं। श्रीरामजीके धनुष तोड़नेमें जगदम्बा सीताजीकी अदृश्य शक्ति लगी थी। जब श्रीरामजी धनुष उठाने हेतु चलते हैं, तब किशोरीजी मन-ही-मन देवी-देवताओंकी प्रार्थना करती हैं और कहती हैं कि धनुषको फूलसे भी अधिक हल्का कर दें, जिससे प्राणवल्लभ श्रीराम-जीको तनिक भी कष्ट न हो—

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

पुनः किशोरीजीकी महिमा उनके विवाहके समय दिखायी पड़ती है। बारातके आगमनपर जनकपुरमें अपने पिताकी लज्जा रखने-हेतु और श्रीरघुनन्दनकी मर्यादाके अनुकूल कुछ कार्य उन्होंने परोक्षरूपसे किया---

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बुलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥

—सब सिद्धियोंको बुलाकर राजा दशरथके स्वागतके लिये भेजती हैं। श्रीरघुवर सियाजीकी महिमा जानकर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं—

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

सुखके साथी तो अनेक होते हैं, किंतु दुःखके बहुत कम। श्रीरामचरितमानसकी आराध्या सीताजी जन्म-जन्मान्तरसे सृष्टि-स्थिति-प्रलयके समय सदा श्रीराम-जीको सुख-शान्ति और प्रेरणा देने-हेतु उनके साथ रहती हैं। यही कारण है कि वनगमनके समय श्रीरामजीके वनकी विभीषिकाका वर्णन करते हुए सीताजीको श्रीअवधमें ही रहनेके लिये बार-बार उत्प्रेरित करनेपर भी सीताजी वनमें जाती हैं। सीताजीको श्रीरामके बिना स्वर्गका सुख भी व्यर्थ प्रतीत होता है —

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

पतिव्रता नारीके लिये पतिकी सेवा ही सब सुखसार है। इसीलिये सतीशिरोमणि सीताजी कहती हैं—

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

श्रीसीताजी सदा श्रीरामकी सेवासे संतुष्ट होना चाहती हैं। पातिव्रत्यधर्मका यह अनन्य उदाहरण है—

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

—इस तरह श्रीरामजी श्रीसीताजीका अपने प्रति प्रगाढ़ प्रेम देखकर उन्हें वन ले जानेके लिये तैयार हो जाते हैं।

सीताजी वनमें हर समय श्रीरामजीको स्नेह-शक्ति प्रदान करती हैं। वे पतिदेवके हृदयकी बात जानती हैं। वन जाते समय सुरसरिको पार करके केवटको कुछ मजदूरी न दे सकनेके कारण श्रीरामजी सकुचाते हैं तो सीताजी उनके मनकी बात समझ जाती हैं और अपनी मणि-मुद्रिका उतारकर केवटको देने-हेतु प्राणवल्लभ श्रीरामजीको देती हैं—

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

वनमें सीताजी सुखपूर्वक रहती हैं—

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥

वे अपने ही प्रसन्न नहीं रहती हैं, अपितु अपनी सेवा और अपने प्यारसे श्रीरामजीको भी प्रसन्न रखती हैं। श्रीरामजीको दुःखी देखकर श्रीसीताजी दुःखी हो जाती हैं और सीताजीको दुःखी देखकर श्रीरामजी धैर्य धारणकर अनेक कथा कहने लगते हैं—

लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं।
जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥
प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत हित चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं लखनु अरु सीता॥

अपनी पुत्री किशोरीजीके निर्मल यशका वर्णन स्वयं श्रीजनकजी वनमें करते हैं—

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥

वनमें ही अनुसूयाजी सीताजीसे कहती हैं कि तुम्हें श्रीरामजी प्राणोंसे प्रिय हैं और तुम्हारे नाम-कीर्तनसे स्त्रियाँ पातिव्रत्यधर्मका पालन करेंगी—

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

भगवती सीताजीको नमन

सकलकुशलदात्रीं भुक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम्।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहर्त्रीं
हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तिभर्त्रीम्॥

'जो सबको सुमङ्गल प्रदान करनेवाली, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी, तीनों लोकोंकी निर्मात्री, दुष्टोंकी बुद्धिका विनाश करनेवाली, अहंकारियोंके दर्पको विचूर्ण करनेवाली, ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी भी जननी तथा सद्भक्तोंका भरण-पोषण करनेवाली हैं, उन जनक-नन्दिनी, भूमिपुत्री श्रीसीताजीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

जगज्जननी श्रीसीता

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम् । मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम् ॥

नतोऽहं रामवल्लभाम्

(डॉ० श्रीगदाधरजी त्रिपाठी 'शास्त्री', मानस-वक्ता, एम्० ए०, आचार्य, साहित्यरत्न, पी-एच्० डी०)

भारतीय परम्पराके महान् मनीषी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा माँ मैथिलीके अनन्य उपासक गोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय-के आदिसूत्रके रहस्यकी जाँच की तथा उन्होंने यह पाया कि शक्तिके बिना कौन ऐसा है जो इस सृष्टिके उद्भव, स्थिति और प्रलयके सूत्रको अकेला सम्हाल सके। इसलिये वे कहते हैं कि माँ मैथिली ही इस जीव-जगत्की आदिकारण हैं। वे ही इस जीव-जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी एकमात्र सूत्रधार हैं। उनकी यह क्षमता है, जिससे वे एक साथ ही बिना किसी सहारेके सृष्टिका उद्भव, पालन और विनाश कर सकती हैं तथा अकेले ही इस क्रमको संचालित रख सकती हैं। यह विचारकर गोस्वामीजी लिखते हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

पर धन्य है माँकी वह ममता जिससे वे केवल उद्भव, स्थिति और संहारकी कारणरूपा मात्र ही नहीं हैं, अपितु वे जीवको उद्भव, स्थिति और प्रलयके क्लेशसे भी बचाती हैं। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी स्थितियाँ ऐसी हैं जो प्रत्यक्षरूपमें किसी अंशतक सुरक्षात्मक होती हुई जीवके लिये भयानक कष्टकी हेतु हैं। जन्म लेना बहुत अधिक कष्टकारक है। न जाने कितनी पीड़ा भोगकर जीव नौ महीनेतक माँके गर्भमें रहता है और तब उसे शरीर मिलता है। उस कष्टकी कल्पना ही बड़ी पीड़ाजनक है। इसी तरह स्थिति अर्थात् अपने पूरे जीवनमें किसी भी जीवका जीवित रहना भी कम कष्टका विषय नहीं है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और अहंकार-जैसे विकारोंकी प्रवृत्तियोंके बीच फँसा हुआ यह जीव निरन्तर अपने जीवनभर तरह-तरहसे छटपटाता रहता है। पत्नी, पुत्र, परिवार और समाजसे न जाने कैसी-कैसी जानी-अनजानी पीड़ा भोगता रहता है। इस तरह जीवको जीनेका जितना सुख नहीं होता, उससे अधिक मात्रामें वह जीवन-धारणके फलरूप दुःखकी पीड़ा पाता रहता है। इसी तरह संहार या मृत्यु तो इतनी भयानक होती है कि उसकी पीड़ाके स्मरणमात्रसे ही जीव काँप जाता है। फिर भला जिसे संहारका, मरणका दुःख भोगना पड़ता है उस जीवकी पीड़ाका क्या कहना है! इसलिये उद्भव, स्थिति और संहारकी स्थितियाँ बड़ी ही दुःखकारक और वेदनासे भरी हैं। इनमें फँसा जीव बड़ा ही दीन एवं व्यथित है और चाहता है कि उसे इस क्लेशसे मुक्ति मिले।

गोस्वामीजीका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जो वस्तुतः माँ मैथिलीकी शक्तिसे ही सृष्टि-की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके सूत्रधार होते हैं, वे केवल इतनी ही क्षमता रखते हैं कि इस त्रि-आयामी सृष्टिका स्वरूप प्रकट कर सकते हैं, स्थिति दे सकते हैं और संहार कर सकते हैं। पर इनमें यह शक्ति नहीं कि वे जीवके उद्भव, स्थिति और प्रलयके कष्टका निराकरण कर सकें। माँ मैथिलीकी यही विशेष कृपा है कि वे सृष्टिके उद्भव, स्थिति और संहारकी परम कारण होती हुई भी श्रीरामकी प्राणवल्लभा होकर संसारके क्लेशका हरण करनेके लिये ही मानवीके रूपमें इस धराधामपर अवतीर्ण होती हैं। वे यदि कष्टकी अवस्थावाली उत्पत्तिमें हेतु बनती हैं तो उसके क्लेशसे सहजमें ही जीवको बचा भी लेती हैं, यदि वे

जीवको जीनेके लिये स्थिति प्रदान करती हैं तो भी उसके जीवनके सभी कष्टोंका हरण कर उसे सुखमय बना देती हैं और यदि वे सृष्टिके नियमका अनुपालन करनेके लिये इसके संहारमें कारण बनती हैं तो उस भयानक प्रलयकी वेदनाका हरण करनेकी क्षमता भी उनमें हैं; क्योंकि वे माँ हैं, जगत्-जननी हैं और त्रिदेवोंकी भी देवी हैं । वे आद्याशक्ति हैं और सृष्टिकी संरक्षिका भी हैं ।

इतना ही नहीं, माँ मैथिलीकी अकारण-करुणाकी यह भी विशेषता है कि वे इस सृष्टिके जीवोंके लिये सभी प्रकारके श्रेयको भी देनेवाली हैं । उनके द्वारा दिया गया श्रेय जीवका वह श्रेय है जो लौकिक और पारलौकिक जीवनमें उसे परिपूर्ण बनाता है । उन माँकी कृपासे जीव भौतिक सुख और साधन पाकर इस संसारमें सभी प्रकारकी समृद्धियोंका उपभोग करता है तथा लौकिक आनन्दकी पूर्णतासे आह्लादित होता है । यही माँका महत्त्व है, यही श्रीरामकी प्राणवल्लभाकी अहैतुक कृपा है, जिसे पाकर जीव धन्य होता है और परमानन्दरूप परब्रह्मके पुरुषोत्तमरूप श्रीरामकी कृपाका भी अधिकारी बनता है ।

श्रीकृष्णकी शक्ति—राधा

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्-सी०, साहित्यायुर्वेदरत्न, विद्याभास्कर, आयुर्वेदबृहस्पति)

परमपुरुष नारायण जब कभी किसी रूपमें अवतार लेते हैं, तब शक्तिके साथ ही लेते हैं । श्रीमद्भगवद्गीतामें उन्होंने कहा भी है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।

'मैं अपनी प्रकृतिके आश्रयसे प्रकट होता हूँ ।' यहाँ अपनी माया और अपनी प्रकृतिसे अभिप्रेत हैं परा और अपरा दोनों प्रकारकी शक्तियाँ । शास्त्रोंमें कहा गया है—

'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा ह्यपरा च'

वेदादि (शुक्ल यजुर्वेद ३१ । १६ कृष्ण यजुः)के अनुसार भगवान्की दो—ह्री (श्री) लक्ष्मी, अथवा भू दिव्यलक्ष्मी पत्नियाँ दो शक्तियाँ मानी गयी हैं—

'ह्रीश्च (श्रीश्च) ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ।'

भगवान् श्रीकृष्णको पूर्ण ब्रह्म माना गया है—**'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** और राधाको उनकी शक्ति । यद्यपि श्रीमद्भागवतमें स्पष्टरूपमें राधाका उल्लेख नहीं है । किंतु भागवतानुसारी वर्णन करनेवाले भक्तप्रवर सूरदासजीने अपने 'सूरसागर'में राधाका विस्तृत चित्रण किया है । चैतन्य और निम्बार्क-सम्प्रदायमें तो 'राधाकृष्ण' युगल-स्वरूपका विशेष महत्त्व प्रतिपादित है । चैतन्य-सम्प्रदायमें राधा श्रीकृष्णकी आह्लादिनी-शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं ।[1] जीव गोस्वामीने स्वकृत 'भागवत-सन्दर्भ' एवं 'प्रीति-सन्दर्भ'ग्रन्थोंमें राधाको भगवान्की 'स्वरूपशक्ति' माना है । श्रीमद्भागवतके मङ्गलाचरणके व्याख्याकारोंने राधा और कृष्ण दोनोंको ही परमतत्त्व माना है । गौतमी-तन्त्रमें राधाको स्वतन्त्र 'अपरशक्ति' कहा गया है । पुष्टिमार्ग-प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्यजीने श्रीमद्भागवतपरक होनेके कारण राधाका उल्लेख श्रीमद्भागवतकी ही भाँति अतीव गूढरूपमें किया है ।[2] अन्यत्र महाप्रभुजीने राधाको प्रकृतिरूपा माया स्वीकार करते हुए उन्हें 'आह्लादिनी' संज्ञासे मण्डित किया है ।

१–'कृष्णके आह्लादे, ताते नाम आह्लादिनी ।'—चैतन्यचरितामृत, पृ० ३०९ ।

२–द्रष्टव्य–महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकृत 'परिवृढाष्टक' श्लोक-१ ।

गोपाल-सहस्रनामके पं० दुर्गादत्तकृत 'दौर्गिक-भाष्य'में राधाको सृष्टिकार्यकी सम्पादिका प्रकृति स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि 'उपादान रूपसे सृष्टिकार्योंके सम्पादन करनेवाली होनेके कारण श्रीराधा प्रकृतिरूपा हैं।'[1]

अथर्ववेदमें श्रीराधाका उल्लेख 'सुखदायिनी आह्लादिनीशक्ति'के रूपमें ही हुआ है। उसमें कहा गया है—'हे राधे ! हे विशाखे ! श्रीराधाजी हमारे लिये सुख-दायिनी हों।'[2]

गर्गसंहितामें श्रीराधाको भगवान्‌की तटस्थ प्रकृति-प्रधान माया अथवा सगुणमाया प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि ब्रह्मपद-प्राप्तिके लिये श्रीकृष्ण और श्रीराधामें अभेद दृष्टि रखना अनिवार्य है। दूध और उसकी धवलताकी भाँति **'भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।'**[3] जो मुझ कृष्ण और श्रीराधामें अभेद-दृष्टि रखते हैं वे ही ज्ञानी ब्रह्मपदको प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय १२५ में भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाको अपना देहार्ध तथा परम शक्तिरूप प्रतिपादित करते हुए कहा है—'हे राधे ! गोलोककी भाँति ही तुम गोकुलकी भी राधा हो। तुम्हीं वैकुण्ठकी महालक्ष्मी और महासरस्वती हो।' क्षीराब्धिशायीकी प्रियतमा मर्त्यलक्ष्मी तुम्हीं हो। धर्मकी पुत्रवधू शान्तिके रूपमें तुम्हीं प्राणिमात्रकी काम्य हो। भारतमें कपिलभार्या भारतीके रूपमें तुम्हीं प्रतिष्ठित हो। सती द्रौपदी तुम्हारी ही छाया है। द्वारकामें श्रीकी अंशभूता रुक्मिणीके रूपमें तुम्हीं निवास करती हो। तुम्हीं रामपत्नी सीता हो आदि।

इस कथनसे यह स्पष्ट है कि श्रीराधा श्रीकृष्णकी अविच्छिन्न शक्ति हैं। वे किसी भी रूपमें कहीं भी अवतरित हों, यह शक्ति उनके साथ ही रहती है। धर्म, कपिलमुनि (सांख्य-तत्त्वके उपदेष्टा) श्रीराम, अर्जुनादि पाण्डव सभी भगवान्‌के अंशभूत हैं, अतः अपने श्रीमुखसे उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि तुम सभी रूपों और क्षेत्रोंमें मेरे साथ रहती हो। वस्तुतः श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनों अभिन्न हैं, अतः भक्त दोनोंके समन्वित अनुग्रहकी कामना करते हैं।

'साम-रहस्य'[4] में श्रीराधा-कृष्णके अभेदका दिग्दर्शन करते हुए लिखा है—'वह अनादि पुरुष वस्तुतः एक ही है। वही अपने रूपको भिन्नरूपमें प्रकट करके सब रसोंको ग्रहण करता है। वह स्वयं ही नायिकारूप धारण कर समाराधनमें तत्पर होता है। इसीलिये वेदज्ञ विद्वान् उसे रसिकोंको आनन्द देनेवाली 'राधा' कहते हैं और उसीके कारण यह लोक आनन्दमय प्रतीत होता है।'

वस्तुतः अपनी आराधनाद्वारा हरिको वशीभूत करनेवाली शक्ति ही राधा है। इसी भावको हृदयङ्गमकर महारासके अवसरपर एक गोपिका (राधा)सहित अन्तर्धान होनेवाले श्रीकृष्णको परिलक्षित कर गोपियोंने कहा था—**अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।**[5] अर्थात् इसने निश्चय ही भगवान्‌की प्रेमपूर्वक आराधना की होगी।

१—राधयति—साधयति-उपादानरूपेण सृष्टिकार्याणीति राधा—प्रकृतिः।

२—'राधे विशाखे सहवानु राधा।' अथर्व० १९। ७। ३। ३—गर्गसंहिता वृ० १२। ३२।

४—सामरहस्य, लक्ष्मीनारायण-संवाद पृ० १२७।

—'अनाद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति। तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति, स्वयमेव नायिकारूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति। तस्मादानन्दमयोऽयं लोक इति।'

५—श्रीमद्भागवत १०। ३०। २८।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने और श्रीराधाके अभेदका प्रतिपादन करते हुए कहा है कि श्रीराधाके कृपाकटाक्षके बिना श्रीकृष्ण-प्रेमकी उपलब्धि हो ही नहीं सकती—

त्वं मे प्राणाधिका राधे त्वं परा प्रेयसी वरा।
यथा त्वं च तथाहं च भेदो नास्त्यावयोर्ध्रुवम्॥
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि सन्ततः॥
यदा तेजस्विरूपोऽहं तेजोरूपासि त्वं तदा।
सशरीरो यदाहं च तदा त्वं हि शरीरिणी॥
ममार्धांशस्वरूपा त्वं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥

अर्थात् 'हे राधे ! तुम मेरी प्राणाधिका प्रेयसी हो। तुममें और मुझमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहकत्व तथा पृथ्वीमें गन्धका निवास है वैसे ही मैं सदा तुम्हींमें निवास करता हूँ। जब मैं तेजस्वी रूप धारण करता हूँ, तब तुम तेजोरूपाके रूपमें प्रकट होती हो अर्थात् तेजस्वीके तेजरूपमें तुम्हारा ही प्राकट्य होता है। जब मैं शरीर धारण करता हूँ तब तुम भी शरीरधारिणी होती हो। वस्तुतः तुम और कुछ नहीं, मेरा अर्धांश ही हो और भोग, मोक्ष देनेकी क्षमता केवल तुम्हींमें है।'

यही नहीं, इससे भी आगे बढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्।
न किंचिदावयोर्भिन्नमेकावयवयोरिव॥

अर्थात् 'हे राधे ! तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो और उसी प्रकार मैं तुम्हारे लिये प्राणाधिक हूँ। एक ही शरीरके विभिन्न अवयवोंकी भाँति हममें किसी प्रकारकी भिन्नता नहीं है, हम समष्टि रूपमें एक ही हैं।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान्‌के इसी कथनका समर्थन करते हुए कहा गया है—

त्वं कृष्णार्धाङ्गसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः।
श्रीकृष्णस्त्वन्मयो राधा त्वं राधे त्वं हरिः स्वयम्॥
न हि वेदेषु मे दृष्टो भेदः केन निरूपितः।
अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केन निरूप्यते॥

अर्थात् 'हे राधे ! तुम श्रीकृष्णके अर्धाङ्गसे प्रकट होनेके कारण सर्वात्मना श्रीकृष्णके ही तुल्य हो। श्रीकृष्ण राधामय हैं और तुम श्रीकृष्णमय हो। किसी भी वेदमें मैंने किसीके द्वारा निरूपित (तुम दोनोंमें) भेद नहीं देखा है। इनकी अंश तुम अथवा तुम्हारे अंश ये हैं, यह कौन प्रतिपादित कर सकता है ?'

स्कन्दपुराणमें श्रीराधाको श्रीकृष्णकी आत्मा प्रतिपादित करते हुए दोनोंके अभेदका इस प्रकार निरूपण किया गया है—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामस्तया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥
......................सा स एवास्ति सैव सः॥

श्रीकृष्ण और श्रीराधामें भेद-दृष्टि रखना न केवल असमीचीन, अपितु पापमूलक है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान्‌ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—'हम दोनोंमें जो नराधम भेदबुद्धि रखता है उसे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं तबतक कालसूत्र-नरकमें निवास करना पड़ता है'—

आवयोर्बुद्धिभेदं च यः करोति नराधमः।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

राधातापिन्युपनिषद्‌में इनके अभेदका निरूपण करते हुए लिखा गया है—

रससागर ये राधा-कृष्ण वस्तुतः एक ही देह हैं, परंतु क्रीडाके लिये दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं। जैसे छायासे देह शोभायमान होती है उसी प्रकार ये दोनों एक दूसरेसे सुशोभित होते हैं। इनके नामोंके श्रवण तथा जापसे मानव उस शुद्ध धामको प्राप्त करता

है, जिसके सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

'ब्रह्माण्डपुराण' में राधा-कृष्णको एक दूसरेकी आत्मा तथा एक ही ज्योतिका दो रूपोंमें विभक्त रूप प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया॥
यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः।
एकं ज्योतिर्द्विधा भिन्नं राधामाधवरूपकम्॥

नारद-पाञ्चरात्रमें भगवान् शंकरने नारदजीको बताया है कि श्रीराधा भगवान्के प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। यहाँ व्याजरूपमें यह निर्दिष्ट कर दिया गया है कि प्रकृतिमें तथा प्रकृतिद्वारा समुत्पन्न प्राणियोंमें जो स्पन्दन दिखायी देता है, उसकी अधिष्ठात्री अथवा कारणरूपा श्रीराधा ही हैं—

प्राणाधिष्ठात्री या देवी राधारूपा च सा मुने।
(२। ३। ५५)

पद्मपुराण, पातालखण्डमें परमानन्द रसको ही श्रीराधा-कृष्ण दो रूपोंमें अविभक्त प्रतिपादित करते हुए लिखा है—

रसो यः परमानन्द एक एव द्विधा सदा।
श्रीराधाकृष्णरूपाभ्यां तस्यै तस्मै नमो नमः॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीराधाको जगज्जननी, श्रीविष्णुकी सनातन माया, श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री तथा उनकी प्रेममयी शक्ति एवं श्रीकृष्ण-सौभाग्यरूपिणीके रूपमें प्रतिपादित करते हुए उन्हें भावभीनी प्रणति समर्पित की गयी है—

त्वं देवी जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी।
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे॥
(प्रकृति ख०, ५५। ४४–४५)

'राधा' शक्तिका केन्द्र ही नहीं, भुक्ति-मुक्ति देनेकी क्षमता रखनेवाली ऐसी विभूति हैं जो अनायास हरिपदकी प्राप्ति करा देती हैं—

'रा' शब्दोच्चारणाद् भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः।
'धा' शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम्॥
(नारदपाञ्चरात्र २। ३। ३८)

भगवान् प्रसन्न होते हैं तो मोक्ष तो दे देते हैं, किंतु 'भक्ति'का वरदान कभी नहीं देते। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवतमें स्पष्टतः इस रूपमें उपलब्ध होता है—

मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्।
(५। ६। १८)

इसे परिलक्षित कर गोपालसहस्रनाममें लिखा है—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे॥

अर्थात् 'हे शिवे! गौर-तेज अर्थात् श्रीराधाजीके बिना जो श्याम-तेज अर्थात् श्रीकृष्णकी अर्चना करता है, उनका जाप अथवा ध्यान करता है वह पातकी होता है।'

श्रीकृष्णकी प्राप्ति और मोक्षोपलब्धि दोनों ही राधाजीकी कृपादृष्टिपर निर्भर हैं। नारदपाञ्चरात्र (२। ३। ५०–५१) में श्रीराधाकी अपूर्व महत्ताका प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

अपूर्वं राधिकाख्यानं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
सद्योमुक्तिप्रदं शुद्धं वेदसारं सुपुण्यदम्॥
यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥

भवसागरसे पार करानेकी शक्ति श्रीकृष्णसे बढ़कर श्रीराधामें है। इसे कविवर बिहारीलालने इन दोहोंसे इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तनकी झाँईं परैं स्याम हरित दुति होइ॥
तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रजकेलि निकुंज मग पग पग होत प्रयागु॥

श्रीराधाको कुछ लोग तान्त्रिक परालक्ष्मी तथा कुछ लोग लीला-शक्ति बताते हैं, परंतु श्रुतियाँ उन्हें आनन्दिनी शक्तिके नामसे अभिहित करती हैं—

केचित् परामेव वदन्ति लक्ष्मीं
लीलेति केचित् किल तत् त्रिकायाम्।
आह्लादिनी शक्तिरिति श्रुतिः सा
श्रीराधिकाख्या व्रजचन्द्रकान्ता॥

श्रीराधा श्रीकृष्णकी समस्त शक्तियों, लीलाओं और गुणोंकी अधीश्वरी हैं—

यस्या वशे तस्य तु सर्वशक्तिः
सर्वैव लीला सकला गुणाश्च।
सौन्दर्यमाधुर्यविदग्धताद्याः
सा राधिका राजति कृष्णकान्ता॥

इन्हीं विशेषताओंके कारण श्रीकृष्ण श्रीराधा नामकी महत्ताका गान करते हुए कहते हैं—'जिस समय मैं किसीके मुखसे 'रा' सुन लेता हूँ, उसी समय उसे अपनी उत्तम भक्ति दे देता हूँ और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेपर तो मैं श्रीराधा-नाम-श्रवण करनेके लोभसे उस उच्चारण-कर्ताके पीछे-पीछे ही चलने लगता हूँ'—

'रा' शब्दं कुर्वतस्तस्मै ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
'धा' शब्दं कुर्वतः पश्चाद् यामि श्रवणलोभतः॥

भगवान् श्रीकृष्ण भवसे पार करानेमें तो समर्थ हैं ही, (**कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निवृत्तिवाचकः**) साथ ही आकर्षण-क्षमतासे सम्पन्न होनेके कारण वे मोहन नामके अन्वर्थक-धारक भी हैं। यह आकर्षण-शक्ति **'क्लीं'** बीजमन्त्रकी साधनासे प्राप्तकर वे गोपाङ्गनाओंको ही नहीं, चर-अचर सभीको इच्छानुसार प्रवर्तित करनेमें सफल हुए थे। श्रीमद्भागवतमें भागवत-कारने इस सम्बन्धमें लिखा है—**'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।'** यह **'कलं'** क्लीं बीजका ही रूपान्तर है। इस **'क्लीं'**रूपी कामबीजसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए इसका स्वरूप इस प्रकार दर्शाया है—'क्लीं' बीजमें ककार सच्चिदानन्दविग्रह, नायक श्रीकृष्ण हैं। 'ई' कार महाभावस्वरूपिणी प्रकृति राधा हैं। 'ल' कार आनन्दात्मक और बिन्दु इन दोनोंके सम्मिलन-सुखका निर्देशक है—

ककारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारः प्रकृती राधा महाभावस्वरूपिणी॥
लश्चानन्दात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बनाश्लेषमाधुर्यं बिन्दुनादं समीरितम्॥

श्रीराधाके इस स्वरूपका परिज्ञान हो जानेपर यह निर्विवादरूपमें समझमें आ जाता है कि श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी अचिन्त्य दिव्य शक्ति हैं जिनके बिना श्रीकृष्ण **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** की कसौटीपर खरे नहीं उतर सकते। अपनी उसी शक्तिका आश्रय लेकर ही वे विभिन्न लीलाएँ करने, जनमनको मथित करने, अपने प्रभावका चमत्कार जनमानसमें स्थापित करनेमें समर्थ हुए।

'राधा' शब्दको यदि उलटा कर दिया जाय तो उसका रूप बनेगा 'धारा'। धारा जहाँ सतत गति-शीलताका परिचय देकर मानवको अविश्रान्तरूपसे कर्म-पथपर अग्रसर होनेकी प्रेरणा देती है, वहीं विद्युत्-उत्पादनकी क्षमतासे सम्पन्न होनेके कारण जीवनकी गतिविधिके संचालनकी क्षमताका भी दिग्दर्शन कराती है। श्रीराधा भी परमपुरुषकी प्रेरणा, माया और प्रकृति-शक्ति होनेके कारण सृष्टि, स्थिति, विनाशरूप कार्योंमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, अतः हम भी जगज्जननी पराशक्ति श्रीराधाके चरणोंमें प्रणति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमें उस शक्तिका एक कण प्रदान करें, जो प्रेमाभक्तिको प्राप्त करानेमें सहायक बन हमारे जीवनको धन्य बना दे।

महाशक्ति श्रीराधा

(बालव्यास पं० श्रीमनोजमोहनजी शास्त्री)

वन्दे वृन्दावनानन्दां राधिकां परमेश्वरीम्।
गोपिकां परमां श्रेष्ठां ह्लादिनीं शक्तिरूपिणीम्॥

भगवान् श्रीकृष्णकी परमाह्लादिनी, पराशक्तिरूपा भगवती श्रीराधाकी महिमा अनन्त है। उन्हें तत्त्वतः जाननेमें बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, सिद्ध, योगी और परमहंस तक समर्थ नहीं हैं। श्रीराधाजीके अनिर्वचनीय तत्त्व-रहस्यको जबतक कोई जान न ले तबतक ये पहेली ही बनी रहेंगी; क्योंकि ये साधन-राज्यकी सर्वोच्च सीमाका साधन तथा सिद्धराज्यमें समस्त पुरुषार्थोंमें परम और चरम पुरुषार्थ हैं। परात्पर श्रीकृष्णकी अभिन्नरूपा होनेके साथ ही वे उनकी आराध्या और आराधिका भी हैं। श्रीकृष्णाराधिका होनेके कारण ही उनका नाम 'राधिका' पड़ा है।

कृष्णेन आराध्यत इति राधा, कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका। (राधोपनिषद्)

'श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं, इसलिये ये राधा हैं और ये सदा श्रीकृष्णकी समाराधना करती हैं, इसलिये 'राधिका' कहलाती हैं।' श्रीकृष्णमयी होनेसे ही ये परादेवता हैं, पूर्णतया लक्ष्मीस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णके आह्लादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'आह्लादिनीशक्ति' कहते हैं। श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण। श्रीराधा दुर्गा हैं तो श्रीकृष्ण रुद्र। राधा सावित्री हैं तो श्रीकृष्ण साक्षात् ब्रह्मा। अधिक क्या कहा जाय, इन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। जड-चेतनमय सारा संसार श्रीराधा-कृष्णका ही स्वरूप है।

सामरहस्योपनिषद्में कहा गया है—

अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेवं रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति॥

'वह अनादि पुरुष एक ही है, पर अनादिकालसे ही वह अपनेको दो रूपोंमें बनाकर अपनी ही आराधनाके लिये तत्पर है। इसलिये वेदज्ञ पुरुष श्रीराधाको रसिकानन्दरूपा बतलाते हैं।'

राधातापनी-उपनिषद्में आता है—

'येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्।

'जो ये राधा और जो ये कृष्ण रसके सागर हैं, वे एक ही हैं, पर लीलाके लिये दो रूप बने हुए हैं।'

ब्रह्माण्डपुराणमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वचन हैं—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया॥

'राधाकी आत्मा सदा मैं श्रीकृष्ण हूँ और मेरी (श्रीकृष्णकी) आत्मा निश्चय ही राधा हैं। श्रीराधा वृन्दावनकी ईश्वरी हैं, इस कारण मैं राधाकी ही आराधना करता हूँ।'

जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीराधा हैं और जो राधा हैं, वही श्रीकृष्ण हैं, श्रीराधा-कृष्णके रूपमें एक ही ज्योति दो स्वरूपोंमें प्रकट है—

यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः।
एकं ज्योतिर्द्विधा भिन्नं राधामाधवरूपकम्॥

स्वरूपतः श्रीराधा-माधव सदा एक होनेपर भी एक दूसरेकी आराधना करते हैं—

राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥

भगवती श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधाकी। वे दोनों ही परस्पर आराध्य-

आराधक हैं। संत कहते हैं कि उनमें सभी दृष्टियोंसे पूर्ण समता है।

स्वरूप-तत्त्व तथा महिमा—

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं, वैसे ही श्रीराधा भी ब्रह्मस्वरूपा, मायाके प्रभावसे निर्लिप्त तथा प्रकृतिसे परे हैं। श्रीकृष्णके प्राणोंकी जो अधिष्ठातृदेवी हैं, वे ही श्रीराधा हैं। यथा—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या राधारूपा च सा मुने।
(नारद-पाञ्चरात्र)

यही बात देवीभागवतमें कही गयी है—'श्रीराधा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी हैं। कारण, परमात्मा श्रीकृष्ण उनके अधीन हैं। वे रासेश्वरी सदा उनके समीप रहती हैं। वे न रहें तो श्रीकृष्णकी स्थिति ही न रहे'—

कृष्णप्राणाधिका देवी तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
(देवीभागवत)

वस्तुतः भगवान्‌के दिव्यलीलाविग्रहोंका प्राकट्य ही आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे है। श्रीभगवान् अपने निजानन्दको प्रकाशित करनेके लिये अथवा नवीन रूपमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपने आनन्दको प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करते हैं और स्वयं ही उससे आनन्दका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के इस आनन्दकी प्रतिमूर्ति ही प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधारानी हैं और यह प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमोंका एकीभूत समूह है। अतएव श्रीराधा प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहाँ प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दरससारका घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधारानी हैं। अतएव श्रीराधा और श्रीकृष्णका नित्य संयोग है। न तो श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण कभी रह सकते हैं और न श्रीकृष्णके बिना श्रीराधाजी। श्रीकृष्णके दिव्य आनन्द विग्रहकी स्थिति ही दिव्य प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधाजीके निमित्तसे है। श्रीराधारानी श्रीकृष्णकी जीवनरूपा हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधाके जीवन हैं। कभी श्रीकृष्ण राधा बन जाते हैं, कभी राधा श्रीकृष्ण बन जाती हैं और कभी युगल स्वरूपमें लीलाविहार करते हैं। वे एक होकर ही नित्य दो हैं, दो रहते हुए भी नित्य एक हैं।

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः॥
(स्कन्दपुराण)

'श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, उनके साथ सदा रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं।'

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।

'आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णकी 'आत्मा' निश्चय ही श्रीराधिकाजी हैं।'

श्रीकृष्ण अपनी ही ह्लादिनी-शक्तिसे आप ही आह्लादित होते हैं और अपने आह्लादसे नित्य श्रीराधाको आह्लादित करते रहते हैं। यह आनन्द चिन्मय रसकी नित्य रसमयी रासलीला है।

राधातत्त्वके विषयमें शास्त्रोंमें अनेकानेक प्रमाण और उक्तियाँ मिलती हैं। पर वास्तवमें वे भी अपर्याप्त हैं; क्योंकि इस अनिर्वचनीय तत्त्वके स्वरूप और महिमाका यथार्थतः वर्णन करनेमें आजतक कोई समर्थ ही न हो सका। फिर भी परमात्माकी इस अभिन्न-स्वरूपा महाशक्तिके विषयमें शास्त्रों और पुराणोंमें यत्र-तत्र जो कुछ भी वर्णित है, वह श्रीराधाके विराटत्वको उजागर करनेमें पथ-प्रदर्शकके रूपमें वरेण्य है।

शक्तिस्वरूपा गोमाता

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥
(अग्निपुराण, गोमती विद्या)

भूमण्डलपर मातृशक्तिका प्रत्यक्ष रूप गोमाता हैं। वेदों और पुराणोंके असंख्य पृष्ठ गोमाहात्म्यसे परिपूर्ण हैं। भगवान्‌ने विश्वके परिपालनार्थ यज्ञपुरुषकी प्रधान सहायिकाके रूपमें गोशक्तिका सृजन किया है। सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ ही यज्ञकी प्रक्रिया प्रस्तुत करते हुए विधाताकी यही कल्याणमयी कामना थी कि यज्ञ और सृष्टि अर्थात् सृष्टिस्थित मानव परस्पर मिलकर एक-दूसरेका उन्नयन करें। महाराज मनुका कथन है कि यज्ञीय अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यनारायणको प्राप्त होती है और सूर्य वृष्टि करते हैं। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है, जिससे प्रजाका पालन सम्भव होता है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु०)

इस प्रकार सृष्टिके उपकारक सूर्यादि देवोंको भी भूमण्डल-सुलभ्य भक्ष्य-भोज्यादिकी आहुतियोंसे फल-दानार्थ तृप्त करानेका माध्यम भी यज्ञ ही है। इस यज्ञकी प्रक्रियाको सशक्त बनानेवाली रसदात्री गोमाता हैं। कारण, यज्ञकी सम्पूर्ण क्रियाओंमें गोप्रसूत दुग्ध, दधि, घृत, आमिक्षा, वाजिनम्[1] आदि द्रव्योंका संयोजन प्राथमिक और अनिवार्य होता है। हविष्यको धारण करनेकी अग्नि-शक्तिका उपकारक गोप्रसूत घृत ही है।

इसके अतिरिक्त गोवंश हमारे अनेक दैनन्दिन व्यवहारका भी साधन है। गो-वंशकी श्रम-शक्तिसे पृथ्वी सरलतासे जोती जा सकती है, जिससे अन्नादिकी विपुल उत्पत्ति होती है। गोमयसे यज्ञभूमि और गृहस्थोंका आँगन अथवा वानप्रस्थियोंकी कुटिया पवित्र होती है। गोमय, गोमूत्र और गोदुग्ध तथा गोघृतकी उपयोगिता तो है ही, सवत्सा गायके दानसे वैतरणी नदीको पार करनेका अवसर प्राप्त होता है। गोदान करके मनुष्य अनेक प्रकारके बद्धमूल पापोंसे मुक्त होता है और गो-वंशका संवर्धन करके सृष्टिके विस्तारका पुण्यलाभ करता हुआ पितृलोक तथा देवलोकको संतुष्ट करता है।

गायके लिये भगवती श्रुति कहती है कि निरपराध अदितिरूपा गायको कभी मारा न जाय—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥
(ऋ० ८। १०१। १५)

यज्ञके उपादान गोदुग्धादिके लिये जैसे गाय अनुपेक्ष्य है वैसे ही यज्ञ-क्रियाके सम्पादन-हेतु ब्राह्मणका अस्तित्व भी अनिवार्य है। कहा भी है—

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति॥

अर्थात् यज्ञके दो अनिवार्य साधन 'मन्त्र' (जिन्हें बोलकर ही यज्ञ होता है और 'हवि' (दूध, घृतादि)— इन दोनोंपर निर्भर है, इसलिये एक ही कुलके गाय और ब्राह्मण दो शाखाएँ बनायी गयी हैं। यही कारण है कि भगवान्‌को गाय और ब्राह्मण दोनोंके हित-साधनार्थ अर्थात् उनकी सहभागितासे सम्पन्न होनेवाले धर्म-चक्र-प्रवर्तन-हेतु विपरीत परिस्थितियोंमें बार-बार अवतार ग्रहण करना पड़ता है। गो-ब्राह्मण दोनोंको—

१—गरम दूधमें दही मिलानेपर बने घनीभूत पदार्थको 'आमिक्षा' और तरल पदार्थको 'वाजिनम्' कहते हैं। यज्ञमें इनसे होम होता है। (अथर्व वेद संहिता-भाष्य)

सृष्टिको प्रत्यक्ष देवी-देवताके रूपमें देखनेवाली भारतीय मनीषा आवश्यक होनेपर इनके संदर्भमें अनृतके आश्रयणकी भी छूट देती है

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥

महाभारतके अनुशासनपर्वमें गायको धरित्रीकी महिमासे मण्डित किया गया है। शक्तिरूपा पृथ्वीकी भाँति धेनुशक्ति प्रजाका परिपालन करती है। धरती प्राणिमात्रको धारण करती है, जिन्हें यज्ञसे सम्पोषित देवलोग आप्यायित करते हैं और यज्ञस्वरूप कर्म गो-प्रसूत द्रव्योंके बिना सम्पादित नहीं हो पाता। इस प्रकार पृथ्वीमाताकी तरह मातृशक्ति गो-माता भी सर्वथा अनुपेक्ष्या हैं, जैसा कि कहा है—

धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा।
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च।
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः॥

यही कारण है कि महाकवि कालिदास दिलीपकी गो-सेवाके संदर्भमें—**'जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम्'** ऐसी उपमाका प्रयोग करते हैं। इसीलिये शास्त्र गो-देवीको भगवती-स्वरूपा बताते हैं, उनकी आराधना और उनके ध्यान-मन्त्रका भी उल्लेख करते हैं, उनकी पञ्चोपचार और षोडशोपचारसे पूजा करनेकी आवश्यकतापर बल देते हैं। देवमाता अदितिके समान उनकी स्तुति करते हुए शास्त्र निवेदित करते हैं कि सभी देवोंकी तुम कारण हो, तुममें सभी देव निवास करते हैं—

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे॥
शशिसूर्यारुणोर्यस्या ललाटे वृषभध्वजः।
सरस्वती च हुङ्कारे सर्वे नागाश्च कम्बले॥
खुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च।
मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च॥

वास्तवमें गाय और पृथ्वी दोनों तत्त्वतः एक हैं। गायकी प्रदक्षिणासे पृथ्वी-प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है, ऐसा गणपति और कार्तिकेयकी कथासे स्पष्ट है। एक बार पार्वतीने कहा कि 'दोनों पुत्रोंमेंसे जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा पहले कर आयेगा, उसका विवाह सिद्धि-बुद्धिके साथ कर दिया जायगा।' मयूर-वाहन, सूक्ष्मकाय कार्तिकेय पृथ्वी-परिक्रमाके लिये दौड़े, पर स्थूलकाय और मूषकवाहन, किंतु बुद्धिमान् गणपतिने मर्म समझकर पहले ही गायकी प्रदक्षिणा पूरी कर ली और सिद्धि-बुद्धिके स्वामी बन गये। शास्त्र भी यही कहते हैं—

गवां दृष्ट्वा नमस्कृत्य कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकाङ्क्षतां नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः॥

अर्थात् गायको देखकर उसे नमस्कार कर जो उसकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सप्तद्वीपवती पृथिवीकी प्रदक्षिणाका फल मिलता है। सभी प्राणियोंकी मातृरूपा गायें सर्वविध सुख देनेवाली हैं। अतः अपनी वृद्धिके इच्छुकोंको उनकी नित्य प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

गोदानकी महिमा अवर्णनीय है। विशेषकर कपिला गौ, 'उभयमुखी गौ'*का दान पृथ्वीदानके समान है; क्योंकि शास्त्रोंमें उभयमुखी गौ पृथ्वी कही गयी है। यथा—

यावद् वत्सो योनिगतो यावद् गर्भो न मुच्यते।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना॥

परात्पर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामें गोचारणका महत्त्व सर्वविदित है। भगवान्‌ने स्वयं गोपूजन किया है, युगों-युगोंमें उनके अंशभूतोंने गौको मातृशक्तिके रूपमें अपनी आराधनाका आलम्बन बनाया है, इनके उदाहरण पुराणादि शास्त्रोंमें बिखरे पड़े हैं। श्रीकृष्णके

* प्रसवावस्थामें वत्सको बहिर्मुखी करती हुई गौ 'उभय-मुखी गौ' कही गयी है।

लीलावतारोंमें तो गो-शक्तिका संदर्भ नित्य और अखण्ड ही है।

भक्तप्रवर सूरदासने श्रीकृष्णकी गोभक्तिका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। समूचा सूर-सागर गौ, गोपी और श्रीकृष्णके अटूट सम्बन्धोंकी सरस चर्चासे भरा पड़ा है। यहाँ एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा——

दे मैया री दोहनी, दुहि लाऊँ गैया।
माखन खाय बल भयो, तोहि नंद दुहैया॥
सेंदुर काजरि धुमरी धौरि मेरी गैया।
दुहि लाऊँ तुरतहि तब, मोहि कर दे धैया॥
ग्वालन के संग दुहत हौं, बूझौ बल मैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तब लेत बलैया॥

इस सृष्टिका अमृतमय स्पंदन करनेवाली शक्ति पयस्विनी गोमाता भी हैं। समुद्र-मंथनसे उत्पन्न चौदह रत्नोंमें कामधेनुकी चर्चा पुराणोंमें विद्यमान है। पुराणोंमें ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं, जिनमें गो-सेवासे कामनाओंकी सिद्धि मिलनेका उपदेश ऋषियोंने किया है। वसिष्ठ, गौतम आदि अनेक महर्षियोंके आश्रमोंमें परम आदरणीया धेनुकी उपस्थितिकी कथाएँ इस बातके प्रमाण हैं कि हमारी प्राचीन धर्म-संस्कृतिमें गौकी महिमा कितनी व्यापक है। वहाँ की गयी गोमाताकी स्तुतियोंमें इसकी झलक देखी जा सकती है। यथा—

सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमो नमः।
या त्वं रसमयैर्भावैराप्याययसि भूतलम्॥
देवानां च तथा संघान् पितॄणामपि वै गणान्।
सर्वं ज्ञात्वा रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनी॥
त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसमन्वितम्।
त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा॥
आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा।
त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा॥
ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः।
कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी॥

उपर्युक्त स्तुतिमें गौको सम्पूर्ण शक्तिके रूपमें बताया गया है। भगवतीके ऐश्वर्य और महिमाका निरूपण गोशक्तिके रूपमें किया गया है। यह स्तुति भगवान् शिवने सुरभिके लिये किया है। कथा आती है कि भगवान् शंकरसे एक बार ऋषियोंका कुछ अपराध हो गया, ऋषियोंने उन्हें घोर शाप दे डाला। महेश्वर गोलोकमें सुरभिकी शरणमें गये और उन्होंने स्तुति करते हुए कहा—'माँ सुरभि! तुम सृष्टि, स्थिति, विनाश करनेवाली, रससे भूतलको आप्यायित करनेवाली, विश्व-हेतु और सबको बल-पोषण प्रदान करनेवाली, रुद्रोंकी माँ, आदित्योंकी बहन, वसुओंकी पुत्री हो। यज्ञ-भाग वहन करनेवाली शक्ति 'स्वाहा' और पितरोंके लिये पिण्डोदक वहन करनेवाली 'स्वधा' भी तुम्हीं हो।'

वैदिक धर्म और वाङ्मय गौकी महान् महिमाका अनेकधा वर्णन करते हैं। ब्रह्माण्डपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण आदि अनेक पुराणोंमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष-रूपसे गोमाताको शक्ति-रूपमें निरूपित किया गया है। भारतीय मनुष्य मुख्यतः कृषिजीवी हैं। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था कृषिपर निर्भर होनेके कारण गोमाताका महत्त्व विवादसे परे होना चाहिये, पर आजके समाजमें इस ओर ध्यान न जाना या इस शक्तिपर कम ध्यान जाना आत्मशक्तिसे पराङ्मुखता ही है। गीता, गङ्गा, गाय, गायत्री सनातनधर्मके आधारभूत तत्त्व हैं। यज्ञ-कर्मकी पुष्टिकर्त्री गोमाताको उसके शक्तिरूपमें देखनेसे ही भारत और विश्वका कल्याण सम्भव है।

गायकी अन्य पशुओंसे उसी प्रकार समानता नहीं की जा सकती, जिस प्रकार गङ्गाकी समानता अन्य नदियोंसे नहीं की जा सकती। रामचरितमानसमें

अङ्गद-रावण-संवादके अन्तर्गत महात्मा अंगदने ऐसे लोगोंको 'मूढ़' कहा है जो गङ्गा और धेनुको क्रमशः सामान्य नदी और पशु कहते हैं—

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कलपतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥

शास्त्र-वचन गायको प्रत्यक्ष देवी मानते हैं। उनके रोम-रोममें देवताओंका वास है। आस्तिकजनोंका परम कर्तव्य है कि वे उनकी उसी रूपमें अवधारणा करें और उनके प्रति अपनी श्रद्धा तथा लोक-वेदसम्मत सेवाका विनियोग भी करें।

मूर्त शक्ति गङ्गा माता

(डॉ० श्रीअनन्तजी मिश्र)

सुधांशुकृतशेखरां स्मितमुखीं तुषारप्रभां
सकुम्भवरवारिजाभयकरां वलक्षाम्बराम्।
नदीनदनिषेवितां मकरवाहनारोहिणीं
भये महति सोदरे नतिमुपेत्य गङ्गां श्रये॥

पण्डितराज जगन्नाथ लिखते हैं कि 'हमने एक अद्भुत चमत्कारभरा दृश्य देखा कि यमराजका नगर सूना-सूना पड़ गया है, कहीं कोई कोलाहल, चीत्कार सुनायी नहीं देता। यमराजके दूत इधर-उधर खोजते हुए दौड़ रहे हैं कि कहीं कोई मृतक हाथ लगे। दूसरी ओर स्वर्गलोकका मार्ग विमानोंकी रेल-पेल और भीड़से भरकर सँकरा हो गया है। आखिर यह अनहोनी बात कैसे हो रही है! हो न हो, माँ गङ्गे! जबसे तुम्हारी कल्याणकारिणी महिमा पतित-पावनी कथा भूमण्डलपर फैली है, तभीसे ऐसा अद्भुत होने लगा है।'

पण्डितराज यह बतलाना चाहते हैं कि जब महिमामयी गङ्गाका नाम और प्रभाव ही एक भी मृतकको यमलोक नहीं जाने देता; विमानोंमें बैठाकर सीधे स्वर्गका टिकट कटवा रहा है। साक्षात् मूर्तिमती गङ्गाका सान्निध्य, स्पर्श, पवित्र जलमें उन्मज्जन-निमज्जन, जलका प्राशन, प्रणाम और पूजनका जिनको सौभाग्य प्राप्त होता हो, उनके पुण्य और स्वर्गलाभकी तो फिर बात ही क्या है! सचमुच ही भगवती गङ्गाकी महिमा अपार है। जिन्हें किसी प्रकारसे भी मुक्ति सुलभ नहीं, उन निराश, पामर, कुपात्र, घोर पापीजनोंके समस्त कलुषको धोनेकी अपार शक्ति यदि किसीमें है तो वह प्रत्यक्ष मूर्त शक्ति भगवती गङ्गामें ही है।

पृथ्वीलोक, भरतखण्डमें गङ्गा दो प्रवाहोंमें प्रवाहित हो रही हैं। एक—विंध्य-पर्वतके उस पारकी गङ्गा जिसे 'गोदावरी' कहा जाता है। इन्हें कुछ लोग 'गौतमी-गङ्गा' भी कहते हैं; क्योंकि गौतम ऋषिने भगवान् शंकरसे प्रार्थना करके इन्हें पृथ्वीपर आनेका अनुरोध किया था। दूसरी—विंध्यपर्वतके इस पार हिमालय-समुद्भूता भागीरथी गङ्गा, जिनकी स्थिति उत्तर भारतमें है। महाराज सगरके पुत्र भगीरथकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर संसारके दीनों, कुपात्रों, घोर पापियोंके परम हित और कल्याणकी दृष्टिसे भगीरथद्वारा अपने पिता सगरके साठ हजार पुत्रों—अपने बन्धुओंके उद्धार-हेतु इनका अवतरण धराधामपर हुआ। दोनों ही गङ्गाओंको, दो तपस्वियों—गौतम और भगीरथके तपसे संतुष्ट-प्रसन्न होकर चन्द्रचूड भगवान् शिवने उन्हें अपने जटाजूटमें चिर-आश्रय प्रदान कर धन्य किया।

गङ्गा भगवान् विष्णुका चरणोदक हैं। वे श्रीहरिके चरणकमलोंसे आविर्भूत होकर आशुतोष शंकरकी जटाजूटमें अवस्थित हैं। पश्चात् वहाँसे निकलकर स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल—तीनों लोकोंमें तीन धाराओंमें प्रवाहित होती हुई देव, दानव, मानव और नाग-किन्नर

आदि सभीका कल्याण करनेके लिये सदावर्त खोले हुए सतत संनद्ध हैं। वास्तवमें विचार करके देखा जाय तो भगवत्-चरणारविन्दोंकी उत्पत्तिमूलकता ही भगवतीको भेद-भावोंसे मुक्त, निरपेक्ष रखते हुए समान रूपसे सबके कल्याणका महान् हेतु सिद्ध करती है। गङ्गाकी कथा, गङ्गाकी महिमा, भक्ति-शक्तिकी ही कथा और महिमा है।

गङ्गादेवीके यहाँ कोई पूर्वाग्रह या शर्त नहीं है। किसी भी प्रकारसे, किसी भी अवस्थामें, किसी भी तरहका पापी-से-पापी व्यक्ति या जीव उनका दर्शन, स्पर्श और परम पावन जलमें स्नान तथा पान करके पवित्र और शुद्ध होता है, इसमें संदेह नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ भगवती गङ्गाकी स्तुति करते हुए एक स्थानपर लिखते हैं—

प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी-
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः।
मृगास्तावद् वैमानिकशतसहस्रैः परिवृता
विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम्॥

'माँ गङ्गे! प्रातःस्नान करते समय नृप-रमणियोंके वक्षपर अङ्कित मृग-मद (कस्तूरी)का ज्यों ही तुम्हारे जलसे संस्पर्श होता है, त्यों ही उस कस्तूरीके आकर मृग हजारों विमानवाहकोंके साथ दिव्य-देह धारणकर नन्दनवनमें प्रवेशकर जाते हैं।' क्या मृगोंकी यह मुक्ति कविके मुक्त चिन्तनमें गङ्गाकी अमोघ मुक्तिदात्री-शक्तिका प्रमाण नहीं है? गङ्गाका उद्गम वस्तुतः भगवान्‌की विगलित करुणाका ही अवतरण है। प्रतीत होता है मानो भगवती महाशक्तिमें निहित वात्सल्यस्नेहसम्पृक्त अजस्र करुणा-जलधारा ही गङ्गाके रूपमें साकार हुई है जो मानवमात्रके लिये अमूल्य वरदान है।

भगवती गङ्गा शक्तिरूपा हैं। शक्तिमें उत्पत्ति, स्थिति, (पालन) और संहार करनेकी शक्ति होती हैं। ये लोकोत्तर शक्तियाँ इनमें भी हैं। स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) में गङ्गाकी स्तुतिमें 'उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी, उपरिचारिणी' आदि विशेषण दिये गये हैं। अन्यत्र भी गङ्गाकी महिमा, शक्ति-देवीकी महिमाका पर्याय बताया गया है। इससे प्रमाणित है कि गङ्गा और शक्तिरूपा अन्य देवियोंमें तत्त्वतः भेद नहीं है। ब्रह्मकान्ता भगवती गङ्गाका शक्तित्व उनकी भुक्ति-मुक्ति-भक्तिप्रदायिनी परमाशक्तिमें सदैव जीवंत और जाग्रत् है। श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दोंका अतुलित परम प्रेममय प्रताप त्रैलोक्यको पवित्र करनेके लिये पवित्रतम जलधाराओंके रूपोंमें प्रकट हुआ है। यह वास्तवमें भगवान्‌की दिव्य भक्ति-शक्तिका ही प्राकट्य है।

देवीभागवतके अनुसार गङ्गा विष्णुपदी, विष्णुस्वरूपा हैं। भारत-भू-खण्डमें उनके पदार्पणका हेतु सरस्वतीका शाप है। नारदजीके प्रश्न करनेपर भगवान् नारायण सगरके पुत्रोंकी चर्चा करते हैं और कपिलके शापसे राख हो जानेके बाद उनकी मुक्तिहेतु गङ्गाके अवतरणके संदर्भमें भगीरथके प्रयत्नका उल्लेख करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे ही गङ्गाको भारतवर्षमें आना पड़ा, इसका उल्लेख भी वहाँ किया गया है। स्वयं श्रीभगवान्‌ने व्यवस्था दी है कि 'भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मोंके पाप गङ्गाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जायँगे। इतना ही नहीं, गङ्गाकी धारामें यदि किसीकी अस्थिका एक टुकड़ा भी पड़ जायगा तो जबतक उसके जलमें अस्थिका अधिवास रहेगा, उतने कालतक उससे सम्बन्धित जीव वैकुण्ठपदका अधिकारी बना रहेगा।'

गङ्गाके स्वरूपका जो वर्णन श्रीमद्भागवतमें प्राप्त होता है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शास्त्र गङ्गाको 'शक्ति'का ही पर्याय मानते हैं। उनकी उत्पत्ति-कथाका उल्लेख इस रूपमें हुआ है—एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कार्तिककी पूर्णिमाके अवसरपर रास-महोत्सव

मना रहे थे। रासमण्डलमें श्रीकृष्ण विराजमान थे। इस अवसरपर श्रीहरिकी प्रसन्नता-प्राप्ति-हेतु भगवती सरस्वती प्रकट हुईं और उन्होंने अपनी दिव्य वीणासे समस्त वातावरणको झंकृत कर रस-विभोर कर दिया। प्रसन्न होकर सभी प्रधान देवी-देवताओंने उन्हें पुरस्कृत किया। उसी समय ब्रह्माकी प्रेरणासे भगवान् शंकरने श्रीकृष्ण-विषयक काव्य रचकर सुनाना आरम्भ किया। उस काव्यके अद्भुत प्रभावसे सभी देवता मूर्च्छित-से हो गये। वहाँ देखा गया कि रास-मण्डलका सम्पूर्ण स्थल जलसे आप्लावित हो गया है और श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण अदृश्य हैं। ब्रह्माजीने ध्यान किया तो भविष्यवाणी हुई—'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी निज स्वरूपाशक्ति राधा—दोनोंने ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह जलमय विग्रह धारण कर लिया है।' इस प्रकार गङ्गा श्रीभगवान् और उनकी अभिन्न स्वरूपा शक्तिका द्रव्यमय (जलमय) स्वरूप हैं। इस प्रकार वे शक्ति और शक्तिमान्‌की मिश्रित मूर्त-शक्ति हैं।

इसीलिये गङ्गाको भगवान्‌की जलमयी शक्ति और पृथ्वीको क्षमामयी शक्ति कहा जा सकता है। गङ्गा भी भगवान्‌की प्रकृतियोंमेंसे एक हैं, उनका प्राकट्य साक्षात् श्रीहरिके श्रीविग्रहसे ही हुआ है, अतः उनमें तथा भगवान्‌में भेद-बुद्धि रखना सर्वथा अनुचित और निन्दनीय है।

देवीभागवतके अनुसार प्रकृतिकी मूलशक्ति गणेश-जननी आदि प्रमुख पञ्च शक्तियोंकी अंशभूता शक्तियोंके प्रधान अंशसे गङ्गाका आविर्भाव वर्णित है। इस प्रकार माता गङ्गा एक 'शक्ति'-स्वरूपा सिद्ध होती हैं। कारण, दर्शनकारोंका सिद्धान्त है कि उपादान-कारणके गुण कार्यमें आते हैं। अतएव निर्विकार आदिकी अंशभूता गङ्गाकी शक्तिरूपता सुप्रमाणित है।

गङ्गाकी महिमाका तो कहना ही क्या, वाल्मीकि, व्यास प्रभृति भारतके महामनीषी कवियोंकी सुपरम्परासे लेकर आजतक गङ्गाके विषयमें सहस्रों सुललित पवित्र स्तोत्र रचे गये हैं और सर्वत्र गङ्गाकी अतुलनीय महिमा और करुणाका निर्मल सुयश (स्तवन) प्राप्त होता है। गङ्गाके किनारेके महान् तीर्थ, उसके तटोंपर स्थित महान् ऋषियोंके आश्रम तथा उसके जलमें निहित अपार गुणवत्ताएँ गङ्गाको विशिष्ट नदी ही नहीं, पवित्रतम कल्याणदात्री देवीके रूपमें मान्यता प्रदान करती हैं। सनातन हिंदू-मनीषा तो यही मानती है कि गङ्गा हमारी और सबकी माँ है, जो गो-माताकी भाँति हमारे परम कल्याणके उद्देश्यसे ही हरि-प्रेरणावश भूमण्डलपर अवतरण लेकर सर्व-सुलभ हुई हैं।

वास्तवमें गङ्गा गोलोक या विष्णुलोकमें भगवान् श्रीहरिकी ही एक स्वरूपा शक्ति हैं। पृथ्वीपर उनके अवतरणके अनेक कारण पुराणोंमें कथित हैं। प्रायः वे सब कारण पुराणोंके कथा-प्रसङ्गोंसे पूर्णतया तादात्म्य-युक्त हैं। उनमें परस्परमें अन्तरावल है, पर वे चाहे भगीरथजीके कारण हों या देवताओंके अथवा सरस्वतीके—सभी एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। **'यः कल्पः स कल्पपूर्वः'**—इस सूत्रमें सबका सामञ्जस्य हो जाता है। उसकी यहाँ विशेष चर्चा करनेका न तो उद्देश्य है और न प्रासङ्गिक आवश्यकता। शास्त्रोंसे प्रमाणित सत्य यह है कि जैसे अन्य देवियाँ शक्तिस्वरूपा हैं, उसी प्रकार माता गङ्गा भी साक्षात् श्री-शक्तिस्वरूपा हैं और उनकी आराधना, उपासनाका फल भी वही है जो भगवती शक्तिके अन्य स्वरूपोंकी आराधना और उपासनासे प्राप्त होता है। गङ्गाके साथ एक विशेषता अधिक है कि इस देवीका स्वरूप इस कलिकालमें भी पूर्णतया प्रत्यक्ष और सर्वसुलभ है।

हिंदू-सनातनपरम्परामें गङ्गाकी महिमा सर्वविदित है। आस्तिकजन इन्हें अशरण-शरण्या, मुक्तिदायिनी, परम-कारुण्यमयी और तीर्थोंकी जननीके रूपमें जानते और मानते हैं। भारतवर्षमें गङ्गाकी उपस्थिति कोटि-कोटि भारतीय

की धन्यताका प्रतीक है। गङ्गा, गीता, गायत्री, गणपति, गौरी और गोपालके पुण्य-स्मरणमात्रसे हिंदू-मन सर्वथा पवित्र, मङ्गलमय और कल्याणकारी भावोंसे भर जाता है। कहा जाता है कि जो मानव इनका प्रातः स्मरण करते हैं, वे संसारके समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं। लोकमें ऐसी उक्ति प्रचलित है—

गङ्गा, गीता, गायत्री, गणपति गौरि गुपाल।
प्रातकाल जो नर भजैं, ते न परैं भव-जाल॥

देवीभागवतमें श्रीगङ्गाका जो ध्यान वर्णित है वह इस प्रकार है—भगवान् नारायण कहते हैं—'नारद! इनका ध्यान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। गङ्गाका वर्ण श्वेत कमलके समान स्वच्छ है। वे समस्त पापोंका उच्छेद कर देती हैं। पूर्णतम परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे इनका प्राकट्य हुआ है। ये परम साध्वी उन्हींके समान सुयोग्य हैं। चिन्मय वस्त्र इनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नाभूषणोंसे विभूषित एवं शरत्पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान शीतल प्रकाशवाली इन देवीके तरुण मुखपर मुस्कान खेलती रहती है। तारुण्यकी साक्षात् देवी भगवती गङ्गाके शीशपर अलकावलि सुशोभित है। मालतीके पुष्पोंसे इनकी शोभा निरन्तर बढ़ती रहती है। इनके ललाटपर अर्धचन्द्राकार चन्दन लगा है और ऊपर सिन्दूरकी बेंदी है। दोनों मनोहर अधरोष्ठ पक्व बिम्बफलकी भाँति अरुण हैं। मनोरम दन्तपङ्क्तियोंके कारण इनकी शोभा अतुलनीय है। श्रीफलके समान स्तनोंसे विभूषित, भूपद्मके समान चरणोंवाली, मकरवाहिनी भगवती गङ्गाका सौन्दर्य अतीव दिव्य है। उनका यह ध्यान भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेमें सर्वथा समर्थ है। भगवती गङ्गाकी मूर्तिका विधिवत् षोडशोपचार पूजन करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह इस जीवनमें सुख पाकर बादमें हरि-चरणोंकी भक्ति और मुक्ति प्राप्त कर लेता है।'

गङ्गा, गायत्री, गौ—ये तीन शक्तियाँ आर्य-धर्मकी आधार-भित्तियाँ हैं। इनके बिना भागवत-धर्मका पूर्ण निर्वाह सम्भव नहीं। गङ्गा तुलसीकी भाँति वैष्णवोंके लिये मातृस्वरूपा हैं और सबके लिये परम-पावनी मुक्तिदात्री महाशक्ति। गङ्गाके किनारे किये गये यज्ञ, जप, तप, दान, होम आदिका अनन्तगुना फल होता है—ऐसा शास्त्र स्वीकार करते हैं। गङ्गा भारतवर्षके लिये मात्र एक पवित्र नदी ही नहीं, अपितु वे सब प्रकारसे प्राणोंसे बढ़कर हैं। भक्ति और मुक्तिकी योग्यता उत्पन्न करनेमें गङ्गाके प्रभावका कोई विकल्प नहीं है। भगवती गङ्गाका माहात्म्य और प्रताप महान् है। वे दुर्लभ-से-दुर्लभ गति प्रदान करनेमें सहज ही समर्थ हैं। तभी तो पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं—

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधविधानैरपि च यत्
न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि।
अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः॥

'महान् दान, ध्यान, अनेक प्रकारके साधन, अनेक प्रकारके कष्टकारक तप आदिसे भी जो विष्णुपद दुर्लभ है, उसे जो गङ्गा साधारण-से-साधारण जनको भी अपनी कृपाशक्तिसे प्रदान करती हैं, उनकी तुलना भला, अन्य किसीसे कैसे की जा सकती है?' लोक-परलोक-निर्मात्री ऐसी गङ्गा माताको सश्रद्ध शत-शत बार नमन!

गीतामें शक्ति-तत्त्व

(श्री के० एस्० रामस्वामी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्०)

वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र तथा अन्य शक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थों (तन्त्र और आगम) की पारिभाषिक शब्दावलीमें अन्तर होनेपर भी एक सर्वसम्मत एवं समञ्जस सिद्धान्त ऐसा है, जो आजकलके हिंदुओंकी विचार-धाराके साथ-ही-साथ अर्वाचीन-से-अर्वाचीन विज्ञानके सिद्धान्तोंसे भी मेल खाता है। उसका विस्तारपूर्वक विवेचन करना यहाँ सम्भव नहीं, परंतु श्रीमद्भगवद्गीतामें शक्ति-तत्त्वका जो वर्णन मिलता है, केवल उसीके संक्षिप्त अध्ययनसे उपर्युक्त सिद्धान्तके समर्थनमें हमें सबल प्रमाण मिल सकते हैं।

'शक्ति' शब्द प्रत्यक्षरूपसे गीतामें नहीं आया है, परंतु शक्तितत्त्वका स्पष्टतः उल्लेख और निरूपण गीतामें 'प्रकृति', 'माया' और 'गुण' आदि शब्दोंके द्वारा हुआ है, जो उतने ही ओजपूर्ण और व्यञ्जक हैं। तीसरे अध्यायके पाँचवें श्लोकमें भगवान्ने कहा है—

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

'निःसंदेह सभी प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणोंद्वारा परवश हुए कर्म करते हैं।'

इसी प्रकार अठारहवें अध्यायका चालीसवाँ श्लोक देखिये—

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

'पृथिवीमें अथवा स्वर्गके देवताओंमें ऐसा कोई भी जीव नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए इन तीनों गुणोंसे रहित हो; क्योंकि यावन्मात्र जगत् त्रिगुणमयी मायाका ही विकार है।'

इस प्रकार 'प्रकृति'से 'गुण' उत्पन्न होते हैं और उनसे हमारी क्रियाएँ होती हैं। गीताके तेरहवें अध्यायमें प्रकृति और पुरुषका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। उसमें यह स्पष्टतया अङ्कित है कि पुरुष अथवा जीव इस शरीरमें स्थित सुख-दुःखके रूपमें गुणोंका उपभोग करता है। स्वामी शंकराचार्यजीने तेरहवें अध्यायके बीसवें श्लोकके ऊपर अपने भाष्यमें लिखा है—'**पुरुषो जीवः क्षेत्रज्ञो भोक्तेति पर्यायः।**'

गीताके तेरहवें अध्यायके उन्नीसवेंसे इक्कीसवें श्लोकतक कहा गया है कि 'पुरुष और प्रकृति दोनों सनातन हैं, अनादि हैं। शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि विकार तथा (सुख-दुःख) आदि गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं और 'पुरुष' इन सबका 'भोक्ता' है, आनन्द लेनेवाला है और वह शरीर एवं इन्द्रियोंके रूपमें व्यक्त हुई प्रकृतिमें स्थित रहकर प्रकृतिसे उत्पन्न हुए सुख-दुःख आदि गुणोंको भोगता है। उसका यह भोग 'गुण-सङ्ग'—गुणोंमें आसक्तिके ही कारण है। चौदहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें श्रीभगवान्ने कहा है कि प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण देही (जीव)को शरीरमें बाँध लेते हैं। पंद्रहवें अध्यायके सातवें, आठवें और नवें श्लोकोंमें भगवान्के ये वचन हैं कि जीव इन्द्रिय और मनके द्वारा विषयोंको भोगता है और वह एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रवेश करते समय इन्हें अपने साथ वैसे ही लेता जाता है जैसे वायु पुष्पोंकी गन्धको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है।

इस प्रकार इस विवेचनमें हम शाक्त-सिद्धान्तको सांख्यके रूपमें ढला हुआ देखते हैं। यहाँ पुरुष और प्रकृतिको स्वतन्त्र एवं अनादि कहा गया है और पुरुषके प्रकृतिके गुणोंमें उलझे रहनेका एकमात्र कारण 'गुण-सङ्ग'

(गुणोंमें आसक्ति) बताया गया है। कर्मोंकी विभिन्नता भी प्रकृतिजन्य है। पुरुष तो उनसे निर्लिप्त और अलग है ही। संक्षेपमें हम यों कह सकते हैं कि पुरुष 'अभिमान' और 'सङ्ग' के कारण ही अपनेको 'कर्ता' मानता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥
प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
(गीता ३। २७—२९)

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति॥
(गीता १३। २९)

'सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा होते हैं, तो भी अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा मान लेता है। परंतु गुण-विभाग और कर्म-विभागके (त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पञ्चमहाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय—इन सबके समुदायका नाम 'गुण-विभाग' है और इनकी परस्परकी चेष्टाओंका नाम 'कर्मविभाग' है।) तत्त्वको जाननेवाला ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण गुण गुणोंमें वर्तते हैं, ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता। प्रकृतिके गुणोंसे मोहित हुए पुरुष गुण और कर्मोंमें आसक्त होते हैं। जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके ही द्वारा किये हुए देखता है तथा आत्माको अकर्ता देखता है वही वास्तवमें देखता है।'

इस निरूपणसे आगे बढ़नेपर हम इसी निर्णयपर पहुँचते हैं कि पूर्वजन्मके कर्मोंकी वासनाओंके द्वारा प्रकृति 'पुरुष'—को आगे बढ़ाती है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥
(गीता ३। ३३)

'सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावसे परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा?'

मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥
(गीता १८। ५९)

'तेरा निश्चय मिथ्या है; क्योंकि प्रकृति तुझे बलात् युद्धमें लगा देगी।'

प्रकृतिकी नियमशक्तिका उल्लेख गीताके सातवें अध्यायके बीसवें श्लोकमें भी किया गया है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

'अपनी प्रकृतिसे प्रेरित हुए तथा उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा ज्ञानसे भ्रष्ट हुए उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं।'

यहाँतक गीतामें वर्णित सांख्यमतानुमोदित शक्ति-तत्त्वकी मीमांसा हुई। उपनिषदोंका, विशेषतः गीताका, जो उपनिषदोंका सार है, महत्त्व इस बातमें है कि वे शक्ति-सिद्धान्तको अधिक उदात्त बना देते हैं। भगवान्‌ने गीताजीमें कहा है कि प्रकृति और पुरुष (जिन्हें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं, देखिये गीता अ० १३) दोनों प्रभुकी ही 'प्रकृतियाँ' हैं। पहली 'अपरा' प्रकृति है और दूसरी 'परा'।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७। ४-५)

'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार—ऐसे यह आठ प्रकारसे विभक्त हुई मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो 'अपरा' है, अर्थात् इसे चेतन-प्रकृति जानो, जिससे यह

सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है।' इस प्रकार सांख्य-प्रतिपादित 'प्रकृति' परमेश्वरकी 'शक्ति'के रूपमें दिखलायी गयी है। प्रकृतिके द्वारा कार्य करता हुआ जीव ईश्वरकी 'परा' प्रकृति कहलाता है। गीताके पंद्रहवें अध्यायके सातवें श्लोकमें जीवको परमेश्वरका अंश कहा गया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

नवें अध्यायके चौथेसे दसवें श्लोकतक इस बातका बड़ी ही उत्तम रीतिसे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार प्रभुकी सत्तासे सृष्टिकी रचना होती है। वे प्रकृतिको अपने अधीन करके सृष्टिको उत्पन्न करते हैं—**प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य**। इसी प्रकार चौदहवें अध्यायका चौथा श्लोक देखिये—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

'नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ।' परमात्मा प्रकृतिके 'अध्यक्ष' (स्वामी और शासक) भी हैं और उदासीन भी हैं (गीता अ० ९ श्लोक ९-१०)। (जिसके सम्पूर्ण कार्य कर्तृत्वभावके बिना ही अपने-आप सत्तामात्रसे ही होते हैं, उसका नाम 'उदासीन' है) वह 'निर्लिप्त' है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥
(गीता १३। ३१)

'अनादि और गुणातीत होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित हुआ भी वास्तवमें न करता है, न लिपायमान होता है।' वह सृष्टिकी रचना करता है और उसका पालन करता है, परंतु फिर भी वह अपनी सृष्टिमें आबद्ध नहीं है। वह इससे परे है, पर सदैव पूर्ण और अपरिच्छिन्न है, अकल और अनीह है—

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥
(गीता ९। ५)

'सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं, किंतु मेरी योगमाया और प्रभावको देखो। भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है।' यही बात प्रकारान्तरसे गीताजीके दसवें अध्यायके इकतालीसवें और बयालीसवें श्लोकोंमें तथा सातवें अध्यायके तेरहवें श्लोकमें कही गयी है।

इस प्रकार गीतामें शक्ति-सिद्धान्तका ऊँचे-से-ऊँचा रूप हमारे सामने उपस्थित किया गया है। परमात्माका 'योग' ऐसा ही है, **'पश्य मे योगमैश्वरम्'** (देखिये गीता अ० ९, श्लोक ५ तथा अ० ११, श्लोक ८)। गीताके विश्वविश्रुत चौथे अध्यायके छठेसे नवेंतकके श्लोकोंमें जो अवतारवादका निरूपण हुआ है, उसमें हमें शक्ति-सिद्धान्तका और भी उदात्त रूप मिलता है। वहाँ हमें **'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय'**—ये पद मिलते हैं। नवें अध्यायके आठवें श्लोकमें वही शब्द कुछ परिवर्तित रूपमें प्रयुक्त हुए हैं। नवें अध्यायमें भगवान्‌के द्वारा जीवोंके शरीरकी रचनाका वर्णन किया गया है और चौथे अध्यायके छठेसे नवेंतकके श्लोकोंमें तो प्रभुने अपने ही दिव्य जन्मका वर्णन किया है, जिसे वे दया-परवश होकर ग्रहण करते हैं और जो (**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**) सामान्य लोगोंके जन्मसे सर्वथा विलक्षण होता है; क्योंकि सामान्य लोगोंका जन्म तो अपने कर्मोंका अपरिहार्य फल है।

चौथे अध्यायके छठे श्लोकके अन्तिम पदमें हमें एक और समुचित शब्द मिलता है, वह है 'माया'। गीताके अनुसार इस मायाने सभी जीवोंको मोहित कर रखा है

और इस मायारूप महासरिताके पार जानेका उपाय भगवच्छरणागतिके सिवा दूसरा नहीं है (देखिये गीता ७ । १४-१५) । गीता कहती है कि यह माया उस ईश्वरकी चेरी है, जो हम सभीके हृदयमें निवास करता हुआ यन्त्रकी भाँति सबको नचा रहा है । इस योगमायाने ही 'उसे' हमलोगोंसे छिपा रखा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता ।' यही 'योगमाया' उसकी 'आत्ममाया' है, जिसका उल्लेख चौथे अध्यायके छठे श्लोकमें **'सम्भवाम्यात्ममायया'** के रूपमें आता है और इसीकी सहायतासे वह दया-परवश होकर अवतीर्ण होता है ।

गीता यहीं रुक नहीं जाती । वह शक्ति-सिद्धान्तके और भी ऊँचे स्वरूपका वर्णन करती है । एक ऐसी भी स्थिति होती है, ऐसी दृष्टि होती है, ऐसा भी अनुभव होता है, जिसमें शक्ति ब्रह्मसे अभिन्न रहती है और इसी रूपमें हम उसका अनुभव करते हैं । उसी समय इस जड-प्रकृति और इसके समस्त विकारोंकी ब्रह्मके साथ एकात्मकताका अनुभव होता है ।

इतना ही नहीं, जीवको भी ब्रह्म-स्वरूपताकी प्रतीति होने लगती है । पहले प्रकारकी अनुभूतिकी चर्चा गीताके नवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें आती है, जिसका भाव यह है—

'भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है ।'

दूसरे प्रकारकी अनुभूतिका उल्लेख गीताके तेरहवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें आया है, जो इस प्रकार है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

'हे अर्जुन ! सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा मुझको ही जान ।'

इस प्रकार शक्तिकी पहले स्वतन्त्र सत्ता दिखलायी गयी, फिर उसे ईश्वरके अधीनवर्ती बताया गया और अन्तमें उसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मसे अभिन्नरूपमें व्यक्त किया गया । गीताके शक्तिवादमें शक्ति-तत्त्वका पद क्रमशः अधिकाधिक ऊँचा होता गया है । इस प्रकार गीतामें शक्तिका वह स्वरूप बताया है जो वेदोंके भी अनुकूल है, विज्ञानके भी अनुकूल है और हिंदू-धर्मके आधुनिक रूपके भी अनुकूल है, तथा जो आत्मदर्शी संत-महात्माओं और ऋषि-मुनियोंकी अनुभूतिसे सदा मेल खाता है ।

पराशक्ति सर्वपूज्य और आराधनीय है

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः ।
नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः ।
पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाथवा ॥

(श्रीमद्देवीभागवत १ । ९ । ८६-८७)

"सभी देवता और दानवोंके लिये ये चिन्मयी परमाशक्ति ही आराधना करने योग्य हैं । तीनों लोकोंमें भगवतीसे बढ़कर अन्य कोई भी नहीं है । यह बात सत्य है, सत्य है । वेद और शास्त्रोंका भी यही सच्चा तात्पर्य-निर्णय है कि निर्गुण अथवा सगुणारूपा चिन्मयी पराशक्ति ही पूज्यनीय हैं ।"

योगवासिष्ठमें शक्तिका स्वरूप

(श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०)

योगवासिष्ठ महारामायणमें, जो भारतीय अध्यात्म-शास्त्रोंमें एक उच्च कोटिका ग्रन्थ है । जिस तत्त्वसे विश्वकी प्रवृत्ति होती है, यह भूतसमुदाय पालित एवं संचालित होता है, उसका नाम 'ब्रह्म' और उसके नाना रूपमें प्रकट होनेका नाम 'बृंहण' कहा है । इसी ग्रन्थमें कुछ स्थानोंपर जगत्के इन दो स्वरूपोंका नाम 'शिव' और 'शक्ति' भी दिया है । परम तत्त्व 'शिव' है और नाना रूपवाले जगत्की क्रियाशक्तिका अनन्त रूपोंमें नृत्य करनेका नाम 'शक्ति' है ।

योगवासिष्ठके अनुसार 'ब्रह्म' और 'माया' अथवा 'शिव' और 'शक्ति' दो तत्त्व नहीं हैं । 'शिव-शक्ति' अथवा 'चिच्छक्ति' उस एक ही परम तत्त्वका नाम है जो जगत्में दो रूपोंमें प्रकट हो रहा है । एक वह रूप, जो हमारा तथा संसारके समस्त पदार्थोंका 'आत्मा' है । वह सदा एकरस, निर्विकार और अखण्ड रहता हुआ सब विकारोंका साक्षी है । दूसरा वह रूप है जो दृश्यमान है, जिसमें नानारूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं । क्षण-क्षणमें रूप बदलनेवाले संसारके जितने दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्त्वके इस रूपके रूपान्तर हैं । इसी रूपका नाम 'शक्ति' है । दूसरे रूपका नाम 'शिव' है । एक रूप क्रियात्मक है, दूसरा शान्त्यात्मक । एकका दर्शन बाह्य पदार्थोंमें होता है, दूसरेका हृद्गुहामें । एककी उपासना करनेसे अभ्युदयकी सिद्धि होती है, दूसरेके ध्यानसे निःश्रेयसकी । सदासे कुछ मनुष्योंकी रुचि एककी ओर रही है और दूसरोंकी दूसरी ओर । पहली श्रेणीके मनुष्योंको हिंदू-शास्त्रोंमें प्रवृत्तिमार्गके पथिक और दूसरी श्रेणीके मनुष्योंको निवृत्तिमार्गके पथिक कहा गया है । इनसे उच्च कोटिके वे सौभाग्यशाली महात्मा हैं जिनके जीवनमें दोनों रूपोंकी उपासनाका अविरोधात्मक समन्वय है । उन लोगोंके लिये एक रूप बिना दूसरेके अधूरा है । उनके लिये तो—

'चित्सत्तैव जगत्सत्ता जगत्सत्तैव चिद्वपुः ।'
(यो०वा० ३ । १४ । ७५)

जो कुछ भी जगत्में दिखायी दे रहा है वह सब यदि ब्रह्मसे ही प्रादुर्भूत हुआ है, तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्ममें यह सब कुछ पैदा करनेकी शक्ति है । अन्यथा अभावसे भावकी उत्पत्ति माननेका दोष उपस्थित हो जायगा । इसीलिये योगवासिष्ठमें ब्रह्मको सर्वशक्तिमय माना गया है ।

सर्वशक्तिपरं ब्रह्म नित्यमापूर्णमव्ययम् ।
न तदस्ति न तस्मिन् यद्विद्यते विततात्मनि ॥
(३ । १०० । ५)

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताकर्तृतापि च ।
इत्यादिकानां शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मनः ॥
(६१ । ३७ । १६)

चिच्छक्तिर्ब्रह्मणो राम शरीरेष्वभिदृश्यते ।
स्पन्दशक्तिश्च वातेषु जडशक्तिस्तथोपले ॥
द्रवशक्तिस्तथाम्भःसु तेजःशक्तिस्तथानले ।
शून्यशक्तिस्तथाऽऽकाशे भावशक्तिर्भवस्थितौ ॥
ब्रह्मणः सर्वशक्तिर्हि दृश्यते दशदिग्गता ।
नाशशक्तिर्विनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु ॥
आनन्दशक्तिर्मुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भटे ।
सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिता ॥
(३ । १०० । ७–१०)

अर्थात् नित्य, सर्वथा पूर्ण, अव्यय परम ब्रह्म सर्वशक्तिमय है । ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उस विस्तृत स्वरूपमें न हो । ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्व और अकर्तृत्व आदि शक्तियोंका उस शिवात्मामें कोई अन्त नहीं है । चेतन शरीरोंमें उस ब्रह्मकी 'चित्-शक्ति', वायुमें

'स्पन्द-शक्ति', पत्थरमें 'जड-शक्ति', जलमें 'द्रव शक्ति', अग्निमें 'तेजःशक्ति', या 'दाहिका-प्रकाशिका शक्ति', आकाशमें 'शब्द-शक्ति', जगत्‌की स्थितिमें 'भाव-शक्ति', दस दिशाओंमें 'सर्वसाधारण-शक्ति', नाशोंमें 'नाश-शक्ति', शोक करनेवालोंमें 'शोक-शक्ति', प्रसन्न रहनेवालोंमें 'आनन्द-शक्ति', योद्धाओंमें 'वीर्य शक्ति', सृष्टिमें 'सर्जन-शक्ति' और कल्पके अन्तमें सब शक्तियाँ उसीमें दिखायी देती हैं।

ब्रह्मकी अनन्त शक्तियोंमेंसे 'स्पन्द-शक्ति' एक विशेष शक्ति है। इस स्पन्द-शक्तिके द्वारा ही संसारकी रचना होती है—

स्पन्दशक्तिस्तथेच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम्॥
(६ (२) ८४। ६८,)

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा॥
(६ (२) ८५। १४)

प्रकृतित्वेन सर्गस्य स्वयं प्रकृतितां गता।
दृश्याभासानुभूतानां कारणात् सोच्यते क्रिया॥

'भगवान्‌की 'स्पन्द-शक्तिरूपी' इच्छा उसी प्रकार इस दृश्य जगत्‌का प्रसार करती है जैसे कि मनुष्यकी इच्छा कल्पनानगरीका निर्माण कर लेती है। सृष्टिका कारण होनेसे वह 'प्रकृति' और अनुभूत दृश्य पदार्थोंके उत्पादन करनेसे वह 'क्रिया' कहलाती है। हे राम! वह अनादि स्पन्दशक्ति 'प्रकृति' 'परमेश्वरी' 'शिवकी इच्छा' 'जगत् माता' आदि नामोंसे भी विख्यात है।

इसी महाशक्तिके दूसरे नाम शुष्का, चण्डिका, उत्पला, जया, सिद्धा, जयन्ती, विजया, अपराजिता, दुर्गा, उमा, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, गौरी, भवानी और काली आदि भी हैं। (६ (२) ८४। ९–१४) वह क्रिया-शक्ति ही इस समस्त जगत्‌को उत्पादन करके अपने भीतर अवयवरूपसे धारण करती है—

सा हि क्रिया भगवती परिस्पन्दैकरूपिणी।
चितिशक्तिरनाद्यन्ता तथा भात्यात्मनाऽऽत्मनि॥
देव्यास्तस्या हि याः काल्या नानाभिनयनर्तनाः।
ता इमा ब्रह्मणः सर्गजरामरणरीतयः॥
क्रियासौ ग्रामनगरद्वीपमण्डलमालिकाः।
स्पन्दान् करोति धत्तेऽन्तः कल्पितावयवात्मिका॥
काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका।
धत्ते स्वावयवीभूतां दृश्यलक्ष्मीमिमां हृदि॥
(६ (२) ८४। १७–२२)

'वह भगवती-क्रिया' ही स्पन्दनका स्वरूप है, अनादि और अनन्त चिति-शक्ति, जगत्-रूपसे अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है। उस देवीके सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्मकी सृष्टि, वृद्धि और लयके नियम हैं। यही कल्पित अवयववाली क्रियादेवी ग्राम, नगर, द्वीप, मण्डल आदि स्पन्दनोंकी मालाको रचती है और अपने भीतर धारण करती है। वह ब्रह्माण्डरूपसे स्पन्दित होनेवाली काली क्रिया अपने अवयवरूप इस जगत्‌को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कि कमलिनी अपने भीतर पुष्प-लक्ष्मीको।'

शक्ति स्वयं अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त जगत्‌को अपने भीतर प्रकट करती है—

चित्स्पन्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनैव पुरं हृदि।
सैव वा जगदित्येव कल्पनैव यथा पुरम्॥
पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छा शिवस्य सा।
यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्तः प्रशान्तेच्छस्तथा शिवः॥
अमूर्तो मूर्तमाकारो शब्दाडम्बरमानिलः।
यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरुते जगत्॥
(६ (२) ८५। ४–६)

'वह चित्स्पन्दरूपी शक्ति जगत्‌को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है, जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगरको, अथवा यों कहना चाहिये कि जैसे कल्पना स्वयं ही कल्पित नगर है, वैसे ही वह शक्ति ही स्वयं जगत् है। वह शक्ति शिवकी इच्छा है और वायुके स्पन्दनकी तरह शिवका ही स्पन्दन है। जैसे

स्पन्दनके भीतर भी केन्द्रपर शान्ति रहती है उसी प्रकार महाशक्तिरूप स्पन्दनके भीतर भी केन्द्रमें शान्त इच्छावाला शिव वर्तमान है। यह शिवकी इच्छा अव्यक्त शिवमें इस प्रकार जगत्को प्रकट कर देती है जैसे कि अमूर्त आकाशमें वायुका स्पन्दन मूर्त शब्दको प्रकट कर देता है।' प्रकृतिरूपी शक्ति ब्रह्मसे अतिरिक्त कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। वह तो ब्रह्मका ही एक रूप है—

यदैव खलु शुद्धाया मनागपि हि संविदः।
जडेव शक्तिरुदिता तदा वैचित्र्यमागतम्॥
(३।९६।७०)

भावदार्ढ्यात्मकं मिथ्या ब्रह्मानन्दो विभाव्यते।
आत्मैव कोशकारेण लालदार्ढ्यात्मकं यथा॥
(३।६७।७३)

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जडः।
नित्यात्प्रबुद्धात्पुरुषाद्ब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा॥
(३।९६।७१)

सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेति सा कल्प्यते त्रिधा।
सत्त्वं रजस्तम इति ह्येषैव प्रकृतिः स्मृता॥
(६(१)९।५)

'यह जगत्‌रूपी विचित्रता तभी उदय होती है जब कि शुद्ध संवित्‌में जडरूप शक्तिका उदय होता है। जैसे कोश बनानेवाला कीड़ा अपने ही भीतरसे राल निकालकर उससे दृढ़ कोशका निर्माण करता है उसी प्रकार ब्रह्मानन्द ही सब भावोंके रूपमें दृढ़ हो रहा है। जैसे चेतन मकड़ीसे जड जालेकी उत्पत्ति होती है वैसे ही नित्य, प्रबुद्ध पुरुष ब्रह्मसे प्रकृतिकी उत्पत्ति होती है। उस प्रकृतिके तीन रूप हैं—सूक्ष्म, मध्यम और स्थूल। इन्हींको सत्त्व, रजस् और तमस् कहते हैं।'

शक्ति और शिव सदा ही अनन्यभावसे रहते हैं। एक दूसरेसे कभी भी पृथक् नहीं हैं—

यथैकं पवनः स्पन्दमेकमौष्ण्यानलौ यथा।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा॥
(६(२)८४।३)

चितिशक्तेः क्रियादेव्याः प्रतिस्थानं यदात्मनि।
(६(२)८४।२६)

तथाभूतस्थितेरेव तदेव शिव उच्यते॥
(६(२)८४।२७)

अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीम्।
(६(२)८४।२)

कथमास्तां वद प्राज्ञ मरिचं तिक्ततां विना॥
(६(२)८४।७)

'जैसे पवन और उसका स्पन्दन, अग्नि और उसकी उष्णता एक ही वस्तु हैं, वैसे ही चिन्मात्र शिव और उसकी स्पन्द-शक्ति सदा ही एकात्म हैं। क्रियादेवी चितिशक्तिके भीतर उसका सदा एकरूप रहनेवाला प्रतिस्थान शिव कहलाता है। मनोमयी स्पन्द-शक्ति उससे भिन्न अन्य वस्तु नहीं है। जैसे मिर्च तिक्तता विना नहीं होती, वैसे ही शिव विना शक्तिके नहीं होता।' शिवरूप प्रतिस्थानका दर्शन या स्पर्श करनेमात्रसे ही शक्तिका स्पन्दन शान्त हो जाता है और संसारकी गति एकदम रुक जाती है—

भ्रमति प्रकृतिस्तावत् संसारे भ्रमरूपिणी।
यावन्न पश्यति शिवं नित्यतृप्तमनामयम्॥
संविन्मात्रैकधर्मित्वात्काकतालीययोगतः।
संविद्देवशिवं स्पृष्ट्वा तन्मय्येव भवत्यलम्॥
प्रकृतिः पुरुषं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्झति।
तदन्तस्त्वेकतां गत्वा नदीरूपमिवार्णवे॥
(६(२)८५।१६–१८)

'भ्रमणशालिनी, स्पन्दात्मिका, परमेश्वरकी चिच्छक्ति प्रकृति इच्छापूर्वक तबतक संसारमें भ्रमण करती है जबतक कि वह नित्य, तृप्त, अनामय शिवको नहीं देखती। स्वयं भी संवित्‌रूप होनेके कारण यदि वह अकस्मात् कभी शिवको स्पर्श कर लेती है तो तुरंत ही उसके साथ तन्मय हो जाती है। तब वह शिवके साथ एकताको प्राप्त करके अपने प्रकृतिरूपको इस प्रकार खो देती है, जैसे समुद्रमें गिरकर नदी अपने नदीरूपको।' प्रकृतिके इस ब्रह्ममें लय हो जानेका ही नाम निर्वाण पद है—

चितिनिर्वाणरूपं यत्तत्प्रकृतेः परमं पदम्।
प्राप्य तत्तामवाप्नोति सरिदब्धाविवाब्धिताम्॥
(६ (२) ८५। २६)

'प्रकृतिकी परमगति संवित्‌में निर्वाण प्राप्त कर लेना ही है। उसको प्राप्त करके वह वही हो जाती है, जैसे नदी समुद्रमें पड़कर समुद्ररूप हो जाती है।'

वह पद परमानन्दरूप है और उसका वर्णन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता—

न सन्नासन्न मध्यान्तं न सर्वं सर्वमेव च।
मनोवचोभिरग्राह्यं शून्याच्छून्यं सुखात्सुखम्॥
(३। ११९। २३)

'वह न सत् है, न असत् और न इन दोनोंका मध्य अथवा अन्त है। वह कुछ भी नहीं है और सब कुछ है। मन और वचनसे उसका ग्रहण नहीं हो सकता। वह शून्यसे भी शून्य है और आनन्दसे भी अधिक आनन्दरूप है।'

श्रीमद्भागवतमें शक्ति-उपासना

(आचार्य पं० श्रीवृन्दावनविहारीजी मिश्र, भागवतभूषण)

श्रीमद्भागवत सभी पुराण-संदोहमें मूर्धन्य है—

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनम्।
(श्रीमद्भा० मा० ६। ८२)

श्रीमद्भागवत महापुराण संस्कृत-वाङ्मय-विग्रहके शीर्षस्थानीय पुराण-पुरुषके मस्तकपर तिलकके समान सुशोभित हो महिमान्वित है। भक्तिरससिन्धुका यह रत्नशीर्ष पुराणोत्तम ग्रन्थ अकिञ्चन वैष्णव भक्तजनोंका तो परम धन ही है। 'श्रीमद्भागवत विष्णु-भक्तसे ही सुना जाय और विष्णु-भक्तोंको ही सुनाया जाय'—ऐसा निर्देश श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें उल्लिखित है—**'विष्णुदीक्षा-विहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे।'** इस फलश्रुतिमें किसी परम वैष्णव भक्तजनको ही कथा सुनानेको सुस्पष्ट संकेतके साथ ही भक्तिपूर्वक सुनने और वैष्णवजनोंको ही सुनानेका विधि-निर्देश भी है—

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या
यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे।
तौ सम्यग्विधिकरणात् फलं लभेते
याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम्॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। १०३)

अनेकानेक पुराणोंकी रचना करनेके पश्चात् खिन्न-चित्त बैठे वासवीसुत भगवान् वेदव्यासजीसे एक बार देवर्षि नारदजीने पूछा—'भगवन्! आपने अभीतक अच्युतप्रिय परमहंसों (परम वैष्णवों)के मनको परम आनन्द प्रदान करनेवाले भागवतधर्म या रसमयी भगवल्लीलाका वर्णन नहीं किया है, कहीं आपकी अशान्तिका कारण यही तो नहीं है?—

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः॥
(श्रीमद्भा० १। ४। ३१)

ऐसे ही अन्यान्य स्थलोंपर भी भक्त, भक्ति और भागवत-धर्मकी सृष्टि करनेवाले अनेक भावोंका इसमें वर्णन है। वस्तुतः श्रीमद्भागवत स्वयं भगवान् श्रीहरिका ही प्रत्यक्ष वाङ्मय-विग्रह है—

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी॥
(श्रीमद्भा० ३। ६७)

—इत्यादि वर्णनोंसे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-कथारस-सिन्धु है, इसीलिये इसे 'श्रीकृष्णपुराण' भी कहा जाता है। यद्यपि इसमें परब्रह्म श्रीकृष्णकी रसमयी विभिन्न लीलाओं और भक्तोंके सुमधुर भावग्राही चरित्रोंकी ही प्रधानता है, तथापि प्रसङ्गानुसार यत्र-तत्र अनेक स्थलोंपर शक्ति-उपासनाका भी रोचक वर्णन मिलता है।

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें श्रीकृष्ण-विग्रहके हृदय-समान एवं पञ्चप्राण-स्वरूप 'श्रीरासपञ्चाध्यायी'के आरम्भमें ही जगत्पूज्य परात्पर परमात्मा 'भगवान्' नामधारी परमाराध्य स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रने भी शक्तिकी उपासना की है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

यह महामाया, महाशक्ति अथवा योगमाया कौन हैं ? यह भी श्रीकृष्णकी कृपाशक्तिका ही नाम है। **'माया दम्भे कृपायां च' (अमरकोष)** अथवा—**'योगाय माया इति योगमाया'** अर्थात्—**योगाय भगवत्सम्बन्धाय माया कृपा यस्याः तां श्रीभगवतीं कात्यानीमुपाश्रितः।**

दुःख-संतप्त जीवका श्रीकृष्णसे अटूट सम्बन्ध करानेमें जिनकी कृपा-शक्ति परम सहायक है, उन्हीं माँ श्रीकात्यायनीका आश्रय लेकर ही जीव परमात्मा श्रीकृष्णसे ऐकात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक जन्मोंके दुष्कर कर्मजालोंके चक्रव्यूहमें फँसे जीवका श्रीकृष्णसे सम्बन्ध जुड़ना अति कठिन कार्य है। कथन है—

सम्पादनात्मकयोगाय या माया सा योगमाया तां श्रीमहामायास्वरूपिणीं श्रीश्रीकात्यायनीमुपाश्रितः।

अर्थात् असम्भावित घटनाओंका भी सम्पूर्ण सम्पादन करके उद्घाटित करनेवाली परब्रह्मकी माया-शक्ति ही योगमाया है। वही भगवती शक्ति हैं, उसीकी उपासना सर्वश्रेयस्कर है। यह योगमाया शक्ति वही है, जिसे परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने व्रजमें स्वयं अवतरित होनेसे पूर्व ही अपनी लीलाके सम्पादनार्थ भेज दिया था।— **योगमायां समादिशत्।** (श्रीमद्भा० १०। २। ६) और, श्रीकृष्णने अपनी लीलाओंके सृजन और विस्तारका रंगमञ्च तैयार करानेका उन्हें आदेश भी दिया—

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम्।
(श्रीमद्भा० १०। २। ७)

साक्षात् स्वयं भगवान्की आज्ञा पाते ही भगवती योगमाया जब व्रजमण्डलमें पधारीं, तब श्रीकृष्णने उन्हें पूर्वादेश-रूपमें यह वरदान दिया कि 'हे योगमाये! तुम व्रजभूमिमें दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका आदि रूपों और नामोंसे प्रत्यक्ष प्रकट होओगी और व्रजवासीजन तुम्हारा विविध प्रकारसे पूजन करके अभीष्ट फल प्राप्त करेंगे।'—

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥
(श्रीमद्भा० १०। २। १०)

अतः वे ही पराशक्ति भगवती योगमाया व्रजमें आज भी इन्हीं नाम-रूपोंसे विराजमान हैं। व्रजमें ही नहीं, अपितु वे इस देववाञ्छित, परम पवित्रतम भारतभूमिमें अनेक नाम-रूपोंसे चतुर्दिक् निवास करने लगीं। जैसे-उत्तरमें वैष्णवी (वैष्णोदेवी) जम्मू-कश्मीरमें, पूर्वमें सर्वकामवरप्रदा कामाख्यादेवी (असममें), दक्षिणमें कन्यका (कन्याकुमारी) और पश्चिममें अम्बिका (अम्बामाता) गुजरात इत्यादि सुप्रसिद्ध सिद्ध शक्तिपीठोंके रूपमें आज भी चारों दिशाओंमें विद्यमान हैं। इससे यह भाव निश्चय होता है कि परात्पर परब्रह्मकी पराशक्ति भगवती जगदम्बा आज कलियुगमें भी भारत-भूखण्डकी चारों दिशाओंमें तथा अन्यान्य शक्तिपीठोंके रूपमें भी विराजमान होकर कोटि-कोटि श्रद्धालु भक्तजनोंको आकर्षित कर रही हैं। स्वकल्याणकामी भक्तजन इन सुप्रसिद्ध शक्तिपीठोंके दर्शनार्थ जाकर विविध भाँति पूजा-अर्चना करके सत्पुण्यफलभागी हो रहे हैं।

श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि श्रीबलदेवजी जब तीर्थयात्रा करने गये, तब उन्होंने दक्षिणमें जाकर

अभीष्ट-सिद्धि-हेतु भक्तिपूर्वक भगवती कन्याकुमारीका दर्शन-पूजन किया था । भागवतकार कहते हैं—

दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ।
(श्रीमद्भा० १० । ७९ । १७)

श्रीमद्भागवतके अनुसार एक बार व्रजमें नन्दबाबा-सहित श्रीकृष्ण-बलरामने गोपबाल-गोपालोंको साथमें लेकर समस्त व्रज और व्रजरक्षकोंके कल्याणार्थ अम्बिका-वनमें जाकर भगवती दुर्गाशक्तिका पूजन किया । जहाँ व्रजराज नन्दने श्रीकृष्ण-बलरामके साथ सरस्वती नदीमें स्नान करके पहले भूतेश्वर भगवान् शिवका पूजन किया, तदुपरान्त सबने मिलकर परम उपासनीया भगवती शक्ति अम्बिका देवीका पूजन, अर्चन और आराधन किया—

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । ३४ । २)

ऐसे ही नृपति भीष्मकसुता देवी रुक्मिणीने तो भगवती अम्बिकाकी पूजा-उपासनाके फलस्वरूप श्रीकृष्ण-चन्द्रको पति-रूपमें प्राप्त करने-हेतु भगवतीसे वरदान माँगा है—

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् ।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । ५३ । ४६)

यही नहीं, नन्द-व्रजकी समस्त सुकुमारी कुमारियाँ तो प्रतिवर्ष सम्पूर्ण मार्गशीर्ष मासमें भगवती कात्यायनी-शक्तिकी उपासना किया करती थीं । श्रीमद्भागवतका यह प्रसङ्ग शक्तिस्वरूपा कात्यायनीकी उपासनाका अनूठा उदाहरण है । व्रज-गोप-कन्याएँ प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर अपने अलग-अलग समूहोंमें बँटकर, टोली बनाकर श्रीकृष्ण-लीलाके पदोंको गाती हुई पवित्र कालिन्दी-तटपर जाकर श्रीयमुनाके पुनीत शीतल जलमें स्नान करतीं, पश्चात् देवी कात्यायनीकी मृण्मयी प्रतिमा बनाकर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया करती थीं । देवी कात्यायनीकी उपासनाके साथ वे गोपकन्याएँ भगवतीके नाम-मन्त्रका जप भगवान् श्यामसुन्दरको अपने पतिरूपमें प्राप्त करने-हेतु किया करतीं थीं । इस संदर्भमें श्रीमद्भागवतका यह कथन साक्षी है—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ।
(श्रीमद्भा० १० । २२ । ४)

गोपबालाएँ भगवती शक्तिकी उपासना इसलिये करतीं कि व्रजराज नन्दगोपकुमार श्रीकृष्ण किसी तरह उन्हें पति (स्वामी)-रूपमें प्राप्त हो जायँ । यही परमोपलब्धिस्वरूप वरदान माँ कात्यायनीसे वे नित्य-प्रति मौनभावसे माँगतीं ।

श्रीमद्भागवतमें जडभरतके प्रसङ्गमें भी दस्युनायक वृषलराजद्वारा भी चण्डिकादेवीकी उपासनाका प्रत्यक्ष दिग्दर्शन होता है । जिसमें वे महाशक्ति कालीकी उपासना-हेतु जडभरतका बलिदान करनेपर तुल गये थे (श्रीमद्भा० ५ । ९ । १५) ।

श्रीमद्भागवतके प्रख्यात टीकाकार उद्भट विद्वान् श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादका तो यहाँतक कथन है कि आगमानुसार समस्त श्रीकृष्णमन्त्रोंकी अधिष्ठात्री दुर्गादेवी ही हैं । यथा—**'सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु दुर्गाधिष्ठात्री देवता इति आगमे'** (भागवत-सारार्थदर्शिनी टीका १० । २२ । ४) ।' इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी लिखा है कि जो श्रीकृष्णकी सहज प्राप्ति करानेवाली शक्तिकी उपासना नहीं करते, वे श्रीकृष्ण-प्रेमगन्ध-सम्बन्धी पवनका स्पर्श-लाभतक भी नहीं कर पाते ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवतके अनेक प्रसङ्गोंमें भगवती शक्तिकी उपासनाका यथेष्ट वर्णन विविध प्रकारसे सुस्पष्ट है । श्रीमद्भागवतके सुप्रसिद्ध टीकाकार और प्रकाण्डपण्डित श्रीवंशीधर शर्माने भी

अपने ग्रन्थ **'श्रीमद्भागवताद्यपद्यस्व व्याख्या शतकम्'** में **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतः'** प्रथम श्लोकका चालीसवाँ अर्थ दुर्गापरक ही किया है। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराणका उदाहरण देकर वे लिखते हैं—

'अनाराध्य महेशानीं नैवाप्नोति हरिं नरः।'

अर्थात्-महेश्वरी देवीशक्तिकी उपासनाके बिना मनुष्य निश्चय ही भगवान् श्रीहरिको प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि स्वकल्याणार्थ (मोक्ष) अथवा भगवत्प्राप्ति-हेतु किंवा श्रीभगवान्की प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये निसंदेह भगवती शक्ति नित्य उपासनीय हैं।

वीरशैव-दर्शनमें शक्तिका महत्त्व

(डॉ० श्रीचन्द्रशेखर शर्मा हिरेमठ)

धर्म-दर्शनके केन्द्रभूत हमारे भारतदेशमें **'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्'**—महाभारतके इस वचनके अनुसार वेद,आगम आदि शास्त्रसम्मत बहुतसे धर्मदर्शन हैं। इस प्रकार इन दर्शनोंमें वीरशैवधर्मका भी एक विशिष्ट स्थान है। इस धर्मके मूल संस्थापक रेवणाराध्य, मरुलाराध्य, एकोरामाराध्य, पंडिताराध्य तथा विश्वाराध्य नामके कलियुगमें पाँच आचार्य हो गये हैं। धर्म-प्रचारके लिये इनके द्वारा संस्थापित पाँच पीठ-बालेहोन्नूर (कर्नाटक), उज्जयिनी (कर्नाटक), केदार (उत्तरप्रदेश), श्रीशैल (आन्ध्र-प्रदेश) और काशी (उत्तरप्रदेश), में आज भी विराज-मान हैं। काशीमें विश्वाराध्यका वह ज्ञानसिंहासन जंगमबाड़ी मठके नामसे सुप्रसिद्ध है।

वीरशैवधर्मका* दार्शनिक सिद्धान्त शिवाद्वैत, द्वैताद्वैत, विशेषाद्वैत और शक्तिविशिष्टाद्वैत आदि नामोंसे जाना जाता है। इनमें 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' शब्द ही अधिक प्रचलित है। इसीसे स्पष्ट है कि इस वीरशैव-दर्शनमें शक्तिका कितना महत्त्व है। अग्रिम पङ्क्तियोंमें संक्षेपसे इसीको प्रस्तुत किया जा रहा है।

'शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती, ताभ्यां विशिष्टौ ईश-जीवौ, तयोरद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्।' इस व्युत्पत्तिके अनुसार शक्तिविशिष्ट शिव और शक्तिविशिष्ट जीव—इन दोनोंका अभेद ही **'शक्तिविशिष्टाद्वैत'** है। यहाँपर **'सूक्ष्मचिदचिद्रूपाशक्ति'** और **स्थूलचिदचिद्रूपा शक्ति** के नामसे शक्तिके दो भेद हैं। सूक्ष्म चिच्छक्तिका अर्थ है—सर्वज्ञत्व और सूक्ष्म, अचिच्छक्तिका अर्थ सर्वकर्तृत्व है। इस तरह सर्वज्ञत्व और सर्वकर्तृत्व शक्तिको सूक्ष्म चिदचिद्रूपा शक्ति कहते हैं। इस शक्तिसे युक्त चेतन ही ईश्वर कहलाता है। इसी प्रकार स्थूलचिच्छक्तिका अर्थ है किंचिज्ज्ञत्व और स्थूल अचिच्छक्तिका अर्थ है किंचित्-कर्तृत्व इस तरह किंचिज्ज्ञत्व और किंचित्कर्तृत्व रूप शक्तिको स्थूलचिदचिद्रूपा शक्ति कहते हैं। इस प्रकार शक्तिविशिष्ट शिव और शक्तिविशिष्ट जीव—इन दोनोंके अद्वैतके प्रतिपादक इस सिद्धान्तको **'शक्तिविशिष्टाद्वैत'** कहते हैं।

भ्रमर-कीट-न्यायसे सिद्धान्तकी उपपत्ति की जाती है। जैसे भ्रमरसे अत्यन्त भिन्न स्वभाववाला कीट भ्रमरके निरन्तर ध्यानसे भ्रमर बन जाता है, वैसे ही शिवसे अत्यन्त भिन्न स्वभाववाला जीव भी शिवका ही निरन्तर ध्यान करते-करते अपनी संकुचित शक्तियोंका विकास कर शिवस्वरूप हो जाता है।

'शिवजीव शक्तय इति त्रयः पदार्थाः'—शिवाद्वैत परिभाषाके इस वचनके अनुसार इस सिद्धान्तमें शिव, जीव और शक्ति—ये तीन ही पदार्थ माने गये हैं। इन तीनोंके बारेमें अलग-अलग विचार प्रस्तुत कर अन्तमें

* इनके शिवतत्त्वरत्नाकर, सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थ परम श्रेष्ठ और बड़े उपयोगी हैं।

हम शक्तिविशिष्ट शिव और जीवोंके अभेदको बतानेवाली प्रक्रियाके स्वरूपपर विचार करेंगे।

शिवका स्वरूप—

यत्रादौ स्थीयते विश्वं प्राकृतं पौरुषं यतः।
लीयते पुनरन्ते च स्थलं तन् प्रोच्यते ततः॥
लयगत्यर्थयोर्हेतुभूतत्वात् सर्वदेहिनाम्।
लिङ्गमित्युच्यते साक्षाच्छिवः सकलनिष्कलः॥

(अनुभवसूत्र २। ४, ३। ४)

इन प्रमाणोंके आधारपर इस सिद्धान्तमें परम तत्त्वको स्थल, लिङ्ग आदि सार्थक नामोंसे अभिहित करते हैं। सगुण तथा निर्गुण होनेके कारण उसे सकल एवं निष्कल भी कहते हैं। परशिव अपनी शक्तिके संकोचसे निर्गुण तथा शक्तिके विकाससे सगुण हो जाता है। अद्वैत-वेदान्तमें निर्गुण परब्रह्मको निर्विशेष भी माना गया है, किंतु यहाँपर निर्गुण होनेपर भी उसमें सूक्ष्मरूपसे शक्तितत्त्वके विद्यमान रहनेसे वह सविशेष ही होता है। यही अद्वैतवेदान्तसे इस सिद्धान्तकी विलक्षणता है—

औष्ण्यं हुताश इव शीतलिमानमिन्दौ
पुष्पेषु मार्दवमिवाश्मसु कर्कशत्वम्।
बाह्येषु मोह इव योगिषु च प्रबोधः
स्वातन्त्र्यमस्ति हि नियन्त्रयितुर्महत्तः॥

इस अभियुक्तोक्तिके अनुसार आकाशमें व्यापन-शक्ति, वायुमें स्पन्दन-शक्ति और अग्निमें दहन-शक्तिके समान सभी पदार्थोंमें कोई-न-कोई शक्ति अवश्य रहती है। जब प्रपञ्चके सभी पदार्थोंमें शक्ति रहती है, तब उसे उत्पन्न करनेवाला भी शक्तिविशिष्ट ही होगा, इसमें कोई संदेह नहीं रहना चाहिये।

शक्तिका स्वरूप

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

(श्वेताश्वतर० ६। ८)

—इस श्रुतिने घोषित किया है कि शक्ति परशिव ब्रह्ममें स्वाभाविक रीतिसे रहकर ज्ञान-क्रियादि रूपसे नाना प्रकारकी हो जाती है। यहाँ 'स्वाभाविकी' पद शक्तिका नित्यत्व सिद्ध करता है और उसी उपनिषद्में विद्यमान—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

(श्वेताश्वतर० ४। १०)

यं शिवं परमं ब्रह्म प्राप्नोतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी॥

—इस प्रकार समर्थित किया है।

शिव-शक्तिका सम्बन्ध

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
पुष्पगन्धवदन्योन्यं मारुताम्बरयोरिव॥

(वीरशैवानन्दचन्द्रिका, पृ० ७)

इस उपबृंहण वचनमें शिव और शक्तिका अविनाभाव सम्बन्ध बताया गया है। इसी विषयको श्रीमद्० रेणुक भगवत्पादाचार्यजीने—

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा॥

(सिद्धान्तशिखामणि २०। ४ पृ० २०२)

—इस वचनसे समझाया है। अर्थात् जैसे चन्द्रमें समस्त वस्तु-प्रकाशिका चन्द्रिका स्थिर रहती है, वैसे ही विमर्शनामक परा शक्ति अपने प्रकाशक परशिवमें स्थिर रहती है। सूर्यमें प्रभा, चन्द्रमें चन्द्रिका, अग्निमें दाह, पुष्पमें गन्ध, शर्करामें मिठास जैसे अविनाभाव सम्बन्धसे रहते हैं, वैसे शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें शक्ति शिवमें अविनाभाव सम्बन्धसे रहती है। इस सम्बन्धको नित्य-सम्बन्ध भी कहते हैं। इस तरह परशिवमें शक्ति नित्य-सम्बन्धसे रहनेके कारण वह सविशेष ही है, निर्विशेष नहीं।

सविशेष रहनेके कारण ही वह परशिव जगत्की उत्पत्तिमें कारण बनता है। निर्विशेष ब्रह्मसे सृष्टि नहीं हो सकती। शक्तिविशिष्ट परशिवसे उत्पन्न होनेके कारण ही प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति यत्किंचित् शक्ति-

विशिष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है, जैसे कि पृथ्वीमें धारणा-शक्ति, जलमें आप्यायन-शक्ति, अग्निमें ज्वलन-शक्ति, वायुमें स्पन्दन-शक्ति, आकाशमें व्यापन-शक्ति, आत्मामें बुद्धि-शक्ति, वृक्षादिमें जलाद्याकर्षण-शक्ति, चुम्बकमें सूच्याद्याकर्षण-शक्ति, वनस्पतियोंमें रोग-निवारण-शक्ति, वज्रमें शिलाभेदन-शक्ति, मणि-मन्त्रादिमें विघ्नबाधा-और भूत-प्रेत-बाधाको दूर करनेकी शक्ति, ध्वन्याकर्षक यन्त्रमें ध्वनिको खींचकर विस्तार करनेकी शक्ति, विद्युत्में नाना प्रकारके यन्त्रको चलानेकी शक्ति। इस प्रकार सभी वस्तुओंमें शक्ति दिखायी पड़ती है।

शास्त्र परशिवको सत्-चित् और आनन्द-स्वरूप मानते हैं अर्थात् **'अस्मि, प्रकाशे, नन्दामि** (मैं हूँ, प्रकाशमान हूँ, सुखी हूँ) इस अनुभवसे युक्त है। इस प्रकारका यह अनुभव ही उस परशिवकी विमर्श-शक्ति कहलाती है। परशिवमें इस अनुभवको न माननेपर वह स्फटिकादिके समान जड़ हो जायगा। सौन्दर्य-विशिष्ट अन्धेको अपने सौन्दर्यका ज्ञान न होनेके कारण जैसे वह सौन्दर्य व्यर्थ हो जाता है, वैसे ही अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका विमर्श परशिवको न होनेपर उसे व्यर्थ मानना पड़ेगा, जो इष्ट नहीं है। अतः परशिव सच्चिदानन्दरूप विमर्श-शक्तिसे विशिष्ट ही रहता है।

शक्तिके भेद

परशिवमें रहनेवाली यह शक्ति वस्तुतः एक होनेपर भी सृष्टिके समय स्व-स्वातन्त्र्य-बलसे चिच्छक्ति, पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्तिके नामसे छः प्रकारकी हो जाती है।

(क) चिच्छक्ति—सूक्ष्म-कार्य-कारणरूप प्रपञ्चकी उपादानकारणीभूत शक्ति ही चिच्छक्ति कहलाती है। इसीको विमर्श-शक्ति और परामर्श-शक्ति भी कहा जाता है।

पराहंतासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान्।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः॥
(सिद्धान्तशिखामणि २०। २७)

इस प्रमाणके अनुसार विमर्श-शक्ति-विशिष्ट होनेके कारण ही परशिव सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वव्यापक तथा सर्वकर्मोंका साक्षी बन जाता है। यह विमर्श-शक्ति ही शिवतत्त्वसे पृथिवीतत्त्वपर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंकी तथा अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लयकी प्रक्रियाको चलाती रहती है।

(ख) पराशक्ति—चिच्छक्तियुक्त परशिवके सहस्रांशसे पराशक्तिका प्रादुर्भाव होता है। यह आनन्द-स्वरूप है। इसे ही परशिवकी अनुग्रह-शक्ति कहा जाता है। इसी शक्तिसे युक्त होकर वह योगियोंके ऊपर अनुग्रह करता है।

(ग) आदिशक्ति—पराशक्तिके सहस्रांशसे आदि-शक्तिका उदय होता है। प्रपञ्चकी कारणीभूत इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्तिके पहले इसकी स्थिति है, अर्थात् आदिशक्तिसे ही इनकी उत्पत्ति होती है। अतएव इसे आदिशक्ति कहा जाता है। इस आदिशक्तिसे युक्त होकर परशिव प्राणियोंका निग्रह करते हैं, अर्थात् प्राणियोंको क्रिया करनेका सामर्थ्य इस आदिशक्तिसे ही प्राप्त है।

(घ) इच्छाशक्ति—आदिशक्तिके सहस्रांशसे इच्छाशक्तिका उदय होता है। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति-इन दोनों शक्तियोंकी साम्यावस्थाको ही इच्छाशक्ति कहते हैं। यह इच्छाशक्ति ही अपनेमें विद्यमान ज्ञान और क्रियाशक्तियोंके माध्यमसे इस विश्वको उत्पन्न करती है। संहारके समय यह शिव पुनः इच्छाशक्तिमें ही विलीन होकर रहता है, अतः इस इच्छाशक्तिको संहारशक्ति भी कहा जाता है। इसीसे युक्त होकर परशिव प्रपञ्चका संहार करता है।

(ङ) ज्ञान-शक्ति—इच्छाशक्तिके सहस्रांशसे ज्ञानशक्तिकी उत्पत्ति होती है। इस ज्ञानशक्तिके कारण

शिव सर्वज्ञ कहलाता है और उसे अपनेमें विद्यमान प्रपञ्चका इदम् (यह) इत्याकारक बोध होता है। अतएव इस ज्ञानशक्तिको बहिर्मुखशक्ति भी कहते हैं। इस शक्तिसे युक्त होकर शिव प्रपञ्चकी उत्पत्तिमें निमित्तकारण बनता है और उत्पत्तिके अनन्तर उसका पालन भी करता है।

(च) क्रियाशक्ति——ज्ञानशक्तिके सहस्रांशसे क्रियाशक्तिका प्रादुर्भाव होता है। यह क्रियाशक्ति इस प्रपञ्चका उपादानकारण है। इस शक्तिसे युक्त होनेसे शिव सर्वकर्ता बन जाता है। यही शिवकी कर्तृत्व-शक्ति है। इस शक्तिको स्थूल-प्रयत्नरूपा भी कहते हैं।

सृष्टि-रचनाके समय शक्ति-विशिष्टपर शिव ही शिवतत्त्वसे पृथिवीतत्त्वपर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंके रूपमें उसी तरहसे परिणत हो जाता है, जैसे स्वर्ण विविध आभूषणोंके रूपमें परिणत हो जाता है। इस परिणामको अविकृत परिणाम कहा जाता है। अनारोपित रूपको तत्त्व कहते हैं। अतः छत्तीस तत्त्वात्मक यह सृष्टि सोनेके आभूषणोंकी तरह परशिवका ही परिणाम है, अतः यह प्रपञ्च परमात्मस्वरूप ही है। 'सर्वं शिवशक्तिमयं जगत्'।

जीवात्मा

सच्चिदानन्दस्वरूप यह परशिव अपने विनोदके लिये स्वयं जीव और जगत्‌के रूपमें भी परिणत हो जाता है। अग्निकी चिनगारियोंकी तरह सभी जीवात्मा उसीके अंश हैं।

शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें शिवके अंशभूत जीवात्मा एवं शिवमें न अत्यन्त भेद माना जाता है और न अत्यन्त अभेद, किंतु यहाँ भेदाभेद-सम्बन्ध स्वीकार्य है। अर्थात् बुद्धावस्थामें उससे भेद एवं मुक्तावस्थामें अभेद मान्य है। जब शिव अपने विनोदके लिये स्वयं जीवात्मा बन जाता है, तब शिवमें रहनेवाली वह शक्ति भी अपने स्वरूपको संकुचित करके उस जीवात्मामें भक्तिके रूपमें प्रवेश करती है। जीवात्माकी यह षड्विधा भक्ति ही क्रमशः जीवात्माकी संकुचित शक्तिको विकसित करती हुई पुनः इसे उस परशिवके साथ समरस कर देती है।

माँ दो मुझे सहारा

(श्रीदेवेन्द्रकुमार पाठक 'अचल')

(१)

मेरे साथ नहीं है कोई जगमें कोई न अपना।
मेरे अपनोंने ठुकराया समझ पड़ा जग सपना॥
घरमें भरा हुआ है कचरा कैसे जाय बुहारा।
माँ दो मुझे सहारा !

(२)

धनपति देखे, जनपति देखे, बलपति नित्य निहारे।
शान्ति किसीके द्वार न पायी, त्रस्त स्वयं हैं सारे॥
माँ मुझको अपने नूपुरका देकर मात्र इशारा।
माँ दो मुझे सहारा !

(३)

इष्ट नहीं है वैभवका सर्वोच्च शिखर पा जाऊँ।
चाह नहीं है भक्तोंमें भी सर्वोपरि बन जाऊँ॥
इच्छा है बस सदा दृष्टि-पथपर हो द्वार तुम्हारा।
माँ दो मुझे सहारा !

(४)

मैं हूँ साधन-हीन अकिंचन औगुनका भण्डार।
मद-मत्सर-कामादिक साथी क्रोधरूप अङ्गार॥
पुनि भटके को आज सँवारो, जैसे सदा सँवारा।
माँ दो मुझे सहारा !

अद्भुत-रामायणमें शक्तिकी प्रधानता

(श्रीमती रामादेवी मिश्रा)

परमपिता परमेश्वरकी एक ही शक्ति व्यवहार-रूपसे पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होती है—पुरुषार्थके समय विष्णुरूपसे, दुर्गति दूर करनेमें दुर्गारूपसे समय-समयपर प्रकट होती हैं। श्रीरामकथाका शतकोटि विस्तार है, जिनमें बहुत-सी देवलोकमें हैं, शेष मृत्युलोकमें। महर्षि वाल्मीकिद्वारा रचित पचीस हजार रामायण पृथ्वीपर हैं; जिनमें 'अद्भुत-रामायण' अद्भुत है। उसमें मूलप्रकृति जानकीका चरित्र, जो ब्रह्मलोकमें गुप्त है, विशेषरूपसे वर्णित है। जिस प्रकार प्रकृति-पुरुषसे जगत् सम्भव है, उसी प्रकार श्रीराम-सीताद्वारा पृथ्वीका भार उतारना इस ग्रन्थकी विषय-वस्तु है। वस्तुतः श्रीराम-सीता एक ही हैं, इनमें कुछ भेद नहीं है, इस कारण जानकीका माहात्म्य भी श्रीरामका ही माहात्म्य है। सम्पूर्ण कथा अध्यात्मपरक है, इसमें श्रीरामको ब्रह्म तथा सीताको शक्तिरूपसे वर्णित किया गया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी स्थान-स्थानपर कहा है—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
भृकुटि बिलासु जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

अद्भुत-रामायणकी कथा अन्य रामायणोंसे प्रायः भिन्न है। **'यथा नाम तथा गुणः'** होना भी चाहिये। आदिकवि वाल्मीकिजीने इस ग्रन्थकी भूमिकारूप प्रथम सर्गमें ही मुनि भरद्वाजद्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि श्रीराम अचिन्त्य, चित्स्वरूप, सबके साक्षी, सबके अन्तःकरणमें स्थित, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता, भर्ता, हर्ता, आनन्द-मूर्ति भूमा हैं, जिनका चिन्तन सीताके साथ होता है। वे विश्वको जानते हैं, किंतु उन्हें जाननेवाला कोई नहीं है। उन्हें पुराण-पुरुष कहते हैं। उन अरूपीका देह धारण करनेका निमित्त केवल मनुष्योंके हितके लिये ही है। श्रीराम और सीताके जन्मके कारणोंको इङ्गित कर राजा अम्बरीषको नारायण-वरप्रदान, नारद और पर्वत दोनों ऋषियोंका मोह, हरिमित्रोपाख्यान, कौशिकादिका वैकुण्ठ-गमन, नारदजीको गान-विद्या-प्राप्ति आदि छः-सात सर्गोंका वर्णन मनोहारी है। महाराज जनकको भूमि-पुत्री सीताका प्राप्त होना अत्यन्त आश्चर्य-जनक और मननीय है।

विश्वविजेता रावण जब त्रिलोकीका अधिपति, अजर तथा अमर होनेकी इच्छासे वर्षोंतक घोर तप करने लगा तब स्वयं ब्रह्माजीने उसे वरप्राप्ति-हेतु प्रेरित किया और लङ्केश रावणने माँगा—

आत्मनो दुहिता मोहादत्यर्थं प्रार्थिता भवेत्।
तदा मृत्युर्मम भवेद्यदि कन्या न काङ्क्षति॥
(अ० रा० ८। १२)

'जब मैं अज्ञानसे अपनी कन्याके ही स्वीकारकी इच्छा करूँ तब मेरी मृत्यु हो।'

रावणने ऋषियों, मुनियों और ब्राह्मणोंके रक्तको एक घड़ेमें रखकर लङ्कामें जाकर मन्दोदरीके हाथमें सौंपा और बताया कि यह रुधिर विष-तुल्य है, इसे किसीको मत देना, सुरक्षित रखना। कामी रावण देव-दानव-गन्धर्वोंकी कन्याओंका अपहरण कर उनके साथ मन्दरपर्वत, सह्यपर्वत, हिमालय तथा विंध्याचलमें विहार करने लगा। एक रात मन्दोदरीको तीव्र प्यास लगी, उसने जल समझकर उसका पान कर लिया। उसे पीते ही मन्दोदरीको गर्भकी प्राप्ति हो गयी; क्योंकि उस घड़ेमें भगवान्से कन्या-प्राप्ति-हेतु ऋषि-मुनियोंका रुधिर था। भयभीत मन्दोदरीने तीर्थयात्राके

*

बहाने नेपालकी तराईमें जाकर गर्भमोचन किया और घड़ेमें रखकर पृथ्वीमें गाड़ दिया। कुछ समय पश्चात् राजा जनकने सोनेके हलसे उसी जगह (सीतामढ़ीमें) यज्ञ-हेतु भूमि जोती, तब वहीं एक कन्या प्राप्त हुई। आगे कथा वही चलती है जो अन्य रामायणोंमें प्राप्त है।

अद्भुत-रामायणके सत्रहवें सर्गमें रावणको मारकर जब श्रीराम अयोध्याके राजसिंहासनको सुशोभित करते हैं, तब उनके अभिनन्दन-हेतु पूर्वसे विश्वामित्र आदि, दक्षिणसे आत्रेय आदि, पश्चिमसे उषंगु आदि और उत्तर दिशासे वसिष्ठ आदि महर्षि आये। सब ऋषि-मुनि श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करते हुए 'धन्य हो', 'धन्य हो' कहने लगे। उनका कथन था—'आपने कृपा करके सपरिवार राक्षसोंका संहार कर जगत्की रक्षा की है। आपके प्रसादसे हम वनमें निर्भय तपस्या करते हैं। सीतादेवीने महान् दुःख प्राप्त किया है, यही स्मरण कर हमारा चित्त उद्वेजित है।' तब जनकनन्दिनी सीता हँस पड़ीं और कहने लगीं—'हे मुनियो! आपने रावणके वधके प्रति जो कहा है, यह प्रशंसा 'परिहास' कहलाती है। यद्यपि रावण निःसंदेह दुराचारी था, किंतु रावणका वध कुछ प्रशंसाके योग्य नहीं।' यहाँ आदिकविने पूर्व-वृत्तान्तकी ओर इशारा किया है कि उसकी मृत्युका कारण सीता थीं।

जानकीद्वारा सहस्रमुख रावणका वृत्तान्त सुनकर महाबली मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने अपने बन्धुओं, सुग्रीव आदि वानर-भालुओं, विभीषण आदि राक्षसोंसहित पुष्पक-विमानमें बैठकर उसे जीतनेके लिये प्रस्थान किया। पुष्पक-विमानका शब्द और आकाशवाणी सुनकर सहस्रमुख रावण अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करता है कि मैं आकाश-पातालको एक करनेमें समर्थ हूँ, फिर भी क्या कोई मेरा शत्रु है? आगे उसके सेनापतियों तथा पुत्रोंका युद्धके लिये प्रस्थान एवं तुमुल युद्ध, रावणद्वारा श्रीरामकी सेनाको विक्षेप करनेके अत्यन्त रुचिकर प्रसङ्ग हैं। वानर-भालुओंकी एवं राक्षसी-मानुषी-सेनाको देखकर रावण मनमें विचार करने लगा—'ये छोटे-छोटे जीव अपने प्राण और धन छोड़कर यहाँ आये हैं, द्वीपान्तरमें प्राप्त हुए मुझसे युद्धकी इच्छा करते हैं, इन क्षुद्र जीवोंको मारनेसे मुझे क्या प्राप्त होगा? ये जिस-जिस देशसे यहाँ आये हैं वहीं इन्हें भेज देता हूँ; क्योंकि क्षुद्रोंमें शराघात करनेकी पण्डितजन प्रशंसा नहीं करते।'

इति संचिन्त्य धनुषा वायव्यास्त्रं युयोज ह।
तेनास्त्रेण नरा ऋक्षा वानरा राक्षसा हि ते॥
यस्माद्यस्मात् समायातास्तं तं देशं प्रयापिताः।
गलहस्तिकया विप्र चोरान् राजभटा इव॥
(२। ६–७)

'यह सोचकर वायव्यास्त्रपर राक्षस-वानर जितने भी वीर थे सबको चढ़ाया और उन्हें अपने-अपने घर पहुँचा दिया, जैसे राजाके सिपाही चोरोंको जबरदस्ती निकाल देते हैं।'

लक्ष्मण, भरत, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण आदि समस्त वीर अपने-अपने स्थानपर पहुँचकर आश्चर्य करने लगे। रणक्षेत्रमें केवल सीतासहित श्रीराम पुष्पक-विमानमें स्थित रहे। उन्हें चलायमान करनेमें वह अस्त्र समर्थ नहीं हुआ।

श्रीराम और सहस्रमुख रावणका संग्राम कितने ही दिन चलता रहा, किंतु दोनोंमेंसे किसीकी भी हार-जीत नहीं हो रही थी। अन्ततः श्रीरामने लङ्कामें दशमुख रावण-वधके निमित्त जो बाण चलाया था, उसी बाणको श्वास लेते सर्पके समान प्रभुने ग्रहण किया, वह ब्रह्माद्वारा निर्मित अगस्त्य ऋषिद्वारा दिया हुआ बाण था। वह अत्यन्त तेजसे सम्पन्न गरुड़के समान तीव्र गतिसे चलता हुआ सहस्रमुख रावणके समीप ज्यों ही पहुँचा त्यों ही उसने 'हुं' शब्द करके वाम हाथमें उसे ग्रहण कर लिया और जाँघसे खींचकर तोड़ डाला—

हुंकृत्य किल जग्राह बाणं वामेन पाणिना।
ततस्तं जानुनाकृष्य बभञ्ज राक्षसाधिपः॥

उस बाणके नष्ट होते ही श्रीराम उदास हो गये; क्योंकि यह अमोघ अस्त्र था। अब बारी थी सहस्रमुख रावणकी, उसने भी बाण छोड़ा, वह श्रीरामकी छातीका भेदन कर पृथ्वी फाड़कर पातालमें प्रवेश कर गया और महाबाहु श्रीराम मूर्च्छित होकर पुष्पक विमानमें गिर पड़े। उनके निश्चल और अचेतन होते ही सारी सृष्टि हाहाकार करने लगी। सहस्रमुख रावण रणमें नृत्य करने लगा, आकाशसे उल्कापात होने लगा। समस्त प्राणियोंने समझा कि अब प्रलय हो जायगा।

सभी ऋषि-मुनि भयसे व्याकुल हो शान्ति-पाठ करने लगे, तभी जानकीजीको हास्यमुख देखकर वसिष्ठ आदि महर्षियोंने प्रार्थना की। रावणको रणमें नृत्य करते हुए देखकर सीताजीने श्रीरामका आलिङ्गन किया और वे ऊँचे स्वरसे अट्टहास करने लगीं। उन्होंने अपना पूर्वरूप छोड़ा और वे महाविकट रूपधारिणी बन गयीं। उस समय उनका रूप महाकालीके समान भयंकर प्रतीत हो रहा था—

ललज्जिह्वा जटाजूटैर्मण्डिता चण्डरोमिका।
प्रलयाम्भोदकालाभा घण्टापाशविधारिणी॥
अवस्कन्द्य रथात् तूर्णं खड्गखर्परधारिणी।
श्येनीव रावणरथे पपात निमिषान्तरे॥
शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमात्रतः।
खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्राणीह लीलया॥
(२३। ११—१३)

'चलायमान जीभवाली, जटाजूटोंसे मण्डित, चण्डरोमवाली, प्रलय-कालीन मेघतुल्य वर्णवाली, घंटा-पाश धारण करनेवाली, चतुर्भुजा प्रत्यक्ष महाकाली जानकी पुष्पक-विमानसे शीघ्रतापूर्वक उतरकर खड्ग-खर्पर धारण किये श्येनीके समान रावणके रथपर टूट पड़ीं और उन्होंने एक निमेषमात्रमें ही लीलासे रावणके सहस्र सिर खड्गसे काट डाले।'

उन्होंने रणभूमिमें प्राप्त और भी वीर योद्धाओंका क्षणभरमें संहार कर दिया, उनके सिरोंकी माला बनाकर धारण कर लिया और रावणके सिरोंको लेकर ज्यों ही गेंदका खेल करनेकी इच्छा की त्यों ही उन महाकाली-रूपा सीताके रोमकूपसे अनेक विकृत आकृति-वाली शक्तियाँ निकलीं और कन्दुक-क्रीड़ामें उनका साथ देने लगीं। उनके नृत्य और अट्टहाससे पृथ्वी काँप उठी और पातालमें समाने लगी। तब देवताओंने महादेव शिवसे जाकर प्रार्थना की। देवताओंका करुण-क्रन्दन सुनकर स्वयं विश्वनाथ संग्राम-स्थलमें उपस्थित हुए और—

जानक्याः पादविन्यासे शवरूपधरो हरः।
आत्मानं स्तम्भयामास धरणीधृतिहेतवे॥
सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थितः।
शवरूपो विरूपाक्षः स्थिताभूच्च धरा तदा॥
(२३। ६९-७०)

'जब शव-तुल्य हो पृथ्वीको रोकनेके लिये सदाशिवने जानकीके पादतलके नीचे लेटकर वे महादेव सम्पूर्ण भार सहन करने लगे, तब पृथ्वी स्तम्भित हुई।' फिर भी सीताके सिरके हुंकार तथा निःश्वासके पवनसे 'भूर्भुवः' आदि सप्त लोक स्थिर न हो सके। शिवके नीचे आनेसे ही वे स्वस्थ हो गये।

सीताके क्रोधकी चरम सीमा देखकर लोकपालोंसहित ब्रह्माजीने पुनः प्रार्थना की—'हे देवि! आप ही एक वैष्णवी शक्ति हैं, जो एक रूपसे रणमें अत्यन्त क्रोधित हो रही हैं और अन्य रूपसे श्रीरामके साथ क्रीड़ा करती हैं। आप स्वयं ही माहेश्वरी-शक्ति ज्ञानरूपा हैं। सारे संसारकी उत्पत्ति कर अपना कार्य करके विचरती हैं। आपसे ही मायावी पुरुषोत्तम भ्रमण कराये जाते हैं। आपने ही ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और प्राणशक्ति निर्मित किया है। वास्तवमें एक ही शक्ति और एक ही शक्तिमान् शिव हैं। तत्त्वदर्शी योगी इनमें भेद नहीं मानते। 'मन्ता' श्रीराम हैं और 'मति' सीता हैं।'

ब्रह्मदेवकी स्तुति सुनकर जानकीजी प्रसन्न हुईं और ब्रह्मादिक देवताओंसे कहने लगीं—'देवताओ ! मेरे पति अचेतन अवस्थामें पुष्पकविमानपर तीक्ष्ण बाणसे बिंधे पड़े हैं, उनकी इस मूर्च्छित अवस्थामें मैं जगत्-हितकी इच्छा नहीं कर सकती। मेरे लिये इस चराचर जगत्का एक ही ग्रास करना सम्भव है।'

देवतालोग देवीका यह वचन सुनकर हाहाकार करने लगे और पृथ्वी चलायमान हो गयी, तभी ब्रह्माने देवगणोंसहित श्रीरामका हाथसे स्पर्श कर उन्हें स्मृति करायी। तत्काल महाबाहु श्रीराम उठ बैठे। उन्होंने रावण-वध-हेतु धनुष धारण किया। देवताओंको अपने सामने खड़ा देखा, किंतु पासमें जनकनन्दिनी नहीं थीं। युद्धस्थलमें नृत्य करती महाकालीको देखकर श्रीराम कम्पित हो उठे। उनके हाथसे धनुष गिर पड़ा। भयभीत श्रीरामने अपने कमलनयन बंद कर लिये। तब विस्मित हुए श्रीरामसे ब्रह्माजीने कहा—

त्वां दृष्ट्वा विह्वलं सीता क्रुध्यन्तं चापि रावणम्।
रथादवस्कन्द्य सती पपात रणमूर्धनि॥
भीमां च मूर्तिमालम्ब्य रोमकूपाच्च मातृकाः।
निर्माय ताभिः सहिता हत्वा रावणमग्रतः॥

'जानकीजी आपको विह्वल और रावणको क्रुद्ध देखकर तत्काल युद्धस्थलमें विमानसे कूद पड़ीं और उन्होंने भयंकर महाकालीका रूप धारण कर अपने रोम-कूपसे मातृकाओंको उत्पन्न कर खेल-खेलमें रावणका वध किया है।' अब ये राक्षसोंकी समाप्तिपर हर्षसे नृत्यमग्न हैं। श्रीराम! आप इनके (जानकीजीके) बिना कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं, इनके साथ ही आप सृष्टि उत्पन्न कर नष्ट कर देते हैं, यही दिखाने-हेतु इन्होंने यह कार्य किया है। अद्भुत-रामायणका साररूप यह श्लोक आप भी गुनगुनाइये—

नानया रहितो रामः किंचित् कर्तुमपि क्षमः।
इति बोधयितुं सीता चकार तदनिन्दिता॥

श्रीरामद्वारा सहस्रनामसे जानकीकी स्तुति और जानकीद्वारा पुनः शान्त सौम्यरूपका दर्शन—दोनों ही बातें अत्यन्त अद्भुत हैं। तब भय त्यागकर रघुनाथजी प्रसन्नतापूर्वक परमेश्वरीसे बोले—'आज मेरा जन्म और तप सफल है; क्योंकि तुम अव्यक्ता साक्षात् मेरी दृष्टिके सम्मुख होकर प्रसन्न हो। तुमने ही जगत्की रचना की है और लयका कारण भी तुम्हीं हो। तुम्हारी संगतिसे ही देव अपने आनन्दको प्राप्त होते हैं। तुम्हीं देवोंमें इन्द्र, ब्रह्मज्ञानियोंमें ब्रह्मा, सांख्याचार्योंमें कपिल और रुद्रोंमें शंकर हो। आदित्योंमें उपेन्द्र, वसुओंमें पावक, वेदोंमें सामवेद और छन्दोंमें गायत्री तुम्हीं हो। चराचरमें जो कुछ भी देखने अथवा सुननेको मिलता है, वह तुम्हारी लीलामात्र है।'

जानकी देवी जगत्पतिके वचन सुनकर स्वामीसे बोलीं—'मैंने जो रावण-वधके निमित्त यह रूप धारण किया है, इस रूपसे मैं मानसके उत्तर भागमें निवास करूँगी। स्वामिन्! आप प्रकृतिसे नीलरूप हैं, रावणसे अर्दित होनेपर लोहित वर्ण हुए, अतएव नील-लोहित-रूपसे मैं आपके साथ निवास करूँगी।'

अन्तमें जानकीने श्रीरामसे वर माँगनेकी इच्छा प्रकट करायी, तब श्रीरामने दो वर माँगे—'एक तुम्हारा ईश्वर-सम्बन्धी यह रूप मेरे हृदयमें सदा ही निवास करता रहे और दूसरा हे कल्याणि! मेरे भाई-बन्धु, वानर-भालु, विभीषण आदि मित्र तथा सेनाके लोग, जो रावणद्वारा अर्दित हो गये हैं, वे सब मुझे फिर मिल जायँ।' सीताने 'ऐसा ही होगा' कहा। तब देवताओंने पुष्प-वृष्टि की। रघुनाथजी ब्रह्मादि देवोंको विदा कर सीतासहित पुष्पकमें बैठकर पुनः अयोध्या पधारे।

अन्तमें स्वयं वाल्मीकिजीने भरद्वाज मुनिको बताया है कि इस अद्भुत चरित्रको ब्रह्माजीने गुप्त कर रखा था;

क्योंकि इसके पारगामी केवल तीन ही हैं—ब्रह्मा, नारद और मैं।

पञ्चविंशतिसाहस्रं रामायणमधीत्य यत्।
फलमाप्नोति पुरुषस्तदस्य श्लोकमात्रतः॥
(२७।१५)

भजेत यो राममचिन्त्यरूप-
मेकेन भावेन च भूमिपुत्रीम्।
एतत् सुपुण्यं शृणुयात् पठेद् वा
भूयो भवेन्नो जठरे जनन्याः॥
(२७।३२)

'पचीस हजार रामायणोंको पढ़कर जो पुण्य प्राप्त होता है वह इसके एक श्लोकमात्रसे मिलता है।' शक्ति-शक्तिमान् (राम-सीता) को एक मानकर भजन करता हुआ इस ग्रन्थका पाठक निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है।

शक्ति एवं तन्त्र

(आचार्य श्रीतारिणीशजी झा)

तन्त्रशास्त्रमें शक्ति ही सब कुछ है अर्थात् शक्तिकी महिमा सर्वोपरि प्रतिष्ठित है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेशको शक्त्याश्रित तथा सम्पूर्ण चराचर जगत्को शक्तिमय माना जाता है, जैसा कि निर्वाणतन्त्रके चतुर्थ पटलमें कहा गया है—

सूक्ष्मयोनेरुद्‌भवभूवुर्विष्णुर्ब्रह्मा शिवस्तथा।
तस्यामेव विलीनाश्च भवन्त्येव न संशयः॥
तस्माद्विष्णुश्च ब्रह्मा च शिवश्चैव महेश्वरि।
शक्तेरेवोद्‌गताः सर्वे शाक्तास्तस्मात् प्रकीर्तिताः॥
तस्माच्छक्तिमयं सर्वं जगदेतद्विचिन्तयेत्।

'सूक्ष्मयोनि (महाशक्ति)से विष्णु, ब्रह्मा तथा शिवका उद्भव हुआ। उसीमें निःसंदेह ये तीनों विलीन हो जाते हैं। इसलिये पार्वति! विष्णु, ब्रह्मा और शिव शक्तिसे ही उद्‌गत होनेके कारण शाक्त कहे गये हैं। अतः सम्पूर्ण जगत्को शक्तिमय समझना चाहिये।'

और भी—

यतः शक्तिमयं देवि जगदेतच्चराचरम्।
स्त्रियः स्वशक्तयः ख्याता यतस्त्रिविधसर्गकम्॥
अत एव महेशानि न स्त्रियं निन्दयेत् क्वचित्।
शुनीदेहे स्थितां योनिं कालीबुद्ध्या नमेत् सदा॥
एवं यः प्रणमेद् देवि योनिं सर्वत्र सुन्दरि।
मातुर्गर्भे विशेन्नैव सत्यं सत्यं महेश्वरि॥

देवि! चूँकि यह चराचर जगत् शक्तिमय है और स्त्री-जाति उस महाशक्तिकी अपनी शक्ति कही गयी है, इसलिये महेशानि! स्त्रीकी निन्दा कहीं नहीं करनी चाहिये। कुतियाके शरीरमें स्थित शक्तिको भी काली समझकर सदा प्रणाम करना चाहिये। सुन्दरि! इस प्रकार जो व्यक्ति महाशक्तिको सर्वत्र प्रणाम करता है, वह पुनः माताके गर्भमें प्रवेश नहीं करता अर्थात् मुक्त हो जाता है। महेश्वरि! यह बिल्कुल सत्य है।'

इसी तन्त्रके सत्रहवें पटलमें महादेवने पार्वतीसे एक अद्भुत, शिक्षाप्रद तथा रोचक आख्यान कहा है। उसे यहाँ उद्‌धृत करना अनुपादेय नहीं होगा—

'प्रिये! पूर्वकालमें राजयोग जाननेके लिये चिन्तित भीमसेन युधिष्ठिरके पास गये, किंतु युधिष्ठिर ज्ञानयोगके प्रभावसे पहले ही यह बात जानकर अपनी देहपर प्राणवल्लभा द्रौपदीको स्थापित करके स्वयं पलँगपर शवके समान सो गये। भीमसेनको यह देखकर परम विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि 'जो इतना स्त्रैण और कामकिंकर है, वह मुझे क्या शिक्षा देगा? अतः ज्ञानसागर महादेवके पास मुझे चलना चाहिये।' ऐसा विचारकर भीमसेन कैलासपर शिव-मन्दिरमें पहुँचे, किंतु शिवजी भी ध्यानसे सब जानकर व्याघ्रचर्मपर लेट गये और अपने वक्षःस्थलपर प्रिया पार्वतीको लिटा लिया। भीमसेनने उस प्रकार

शय्यास्थित शिवजीको देखकर उनसे ज्ञान तो नहीं प्राप्त किया, अपितु महेश्वरकी निन्दा की। तत्पश्चात् वे राजयोगका चिन्तन करते हुए योगिराज श्रीकृष्णके पास जानेको सोचने लगे। उधर भीमसेनकी जड़ताको समझकर शिवजीने मनोहर माया रची। भीमसेनने मार्गमें वटवृक्षके समीप उत्तम भवन देखा। भवनके सामने सुवर्णका उत्तम सिंहासन था। उस सिंहासनपर द्रौपदी विराजमान थी। उसके आगे श्रेष्ठ योद्धा खड़े थे। द्रौपदीने श्रेष्ठ योद्धाओंको आज्ञा दी कि 'वीरो! शीघ्र भीमसेनका रुधिर ले आओ, मैं उसका पान करूँगी।' आज्ञा पाते ही भीमसेनके पीछे वीरगण दौड़ पड़े। भयपीडित भीमसेन भी भागते-भागते श्रीकृष्णकी शरणमें पहुँचे। उस समय श्रीकृष्ण यमुना-जलमें सोलह हजार रानियोंके साथ जलक्रीडा कर रहे थे। भीमसेनने उनसे कहा—'बचाइये-बचाइये।' भगवान्ने भीमसेनका आर्तनाद सुनकर कहा—'भीम! तुम्हें क्या भय उपस्थित हुआ? डरनेकी कोई बात नहीं है। तुम जिस मार्गसे आये हो, उधर ही लौट जाओ। तुम्हारे साथ दो वैष्णव वीर जायँगे। द्रौपदी ही तुम्हें राजयोग-का उपदेश करेगी। इस समय वहाँ न कोई वीर है और न द्रौपदी है। जिसे तुमने देखा वह द्रौपदी नहीं थी। वह तो मूलरूपा शक्ति आद्यादेवी थीं। जिन्होंने तुम्हें मारनेकी आज्ञा दी, वह तुम्हारा भ्रम ही है, इसमें संदेह नहीं।'

श्रीकृष्णका कथन सुनकर भीमसेन भयसे मुक्त हो गये। मार्गमें जाते हुए भीमसेनने दो मुसलधारी वीरोंको देखा, जो उनके बायें-दायें चल रहे थे। इसलिये वे निर्भय होकर वहाँ पहुँचे जहाँ मायाको देखा था। उस समय वहाँ न तो कोई भवन ही था और न कोई वीर ही। भीम सोचने लगे—'वीर लोग कहाँ गये? द्रौपदी कहाँ गयी?' इस प्रकार चिन्ताकुल होकर वे शीघ्र अपने महलकी ओर प्रस्थित हो गये। भीमको आते हुए देखकर द्रौपदी जल लेकर शीघ्र उनके पास पहुँची और उनका पैर धोना चाहा, किंतु भीमके मनमें जो प्राक्कालिक भय था, उससे उद्विग्न होकर वे सोचने लगे कि कहीं यह मेरा शोणित न पी ले। अतएव वे पुनः भागने लगे। द्रौपदी पातिव्रत्यके प्रभावसे सब जान गयी। तब उस साध्वीने कहा—'प्रिय! भय त्याग दीजिये। स्वामिन्! आप मुझे द्रुपद-पुत्री मानुषी जानते हैं। मेरा अनुपम मनोहर काली-रूप देखिये।' यह कहकर वह साध्वी महाभयंकरी काली बन गयी, जिसका शरीर पर्वताकार था, रंग काला था और लपलपाती हुई भयंकर जिह्वाके कारण वह भयानक दीख रही थी। उसकी चार भुजाएँ थीं। एक हाथमें खड्ग, दूसरेमें मुण्ड, तीसरेमें अभयास्त्र और चौथेमें वरास्त्र था। उसका शरीर काजलका मेरुपर्वत प्रतीत होता था। ऐसा रूप देखकर भयभीत भीमसेन कालीकी स्तुति करने लगे और बोले—'देवि! इस परम विस्मयप्रद देहको त्याग दो।'

तब आधे ही क्षणमें द्रौपदीने कालीका रूप त्याग दिया और वह अपने द्रौपदी-रूपमें परिवर्तित हो गयी। फिर वह भीमसेनसे बोली—'महामते! मोह त्यागिये। मुझे आत्मरूप समझिये और शरीरको शव। चित्तमें दो प्रकारकी वृत्तियाँ कही गयी हैं—एक कार्यगत और दूसरी गुरुचरणमें स्थित हो तपोलोकगत। पहली वृत्तिसे मनुष्य लौकिक कार्य करता है और दूसरीसे मुक्तिलाभ। लौकिक कार्यसे दूसरी वृत्ति बाधित नहीं होती। जैसे खेल दिखानेवाली नटी बाँसपर स्थित होकर एक वृत्तिसे बार-बार बोलती है और दूसरी वृत्तिसे बाँसपर आश्रित रहती है। उसकी एक वृत्तिसे दूसरी वृत्ति बाधित नहीं होती। जैसे मणीश्वर सर्प मणि धारण करके चरता भी है। उसके मणिधारण और भक्षणमें दो वृत्तियाँ काम करती हैं, पर एक दूसरीकी बाधिका नहीं

हैं। जैसे पनिहारिन एक घटको मस्तकपर, दूसरेको कटिपर और तीसरे लघु घटको हाथमें रखकर मार्गमें किसीसे बात भी करती हुई निःशङ्क चलती है। इस प्रकार उसकी दो वृत्तियाँ एक दूसरीकी बाधिका नहीं होतीं। वैसे आप भी एक वृत्तिसे मुझे ललाटमें स्थित कालीरूप समझिये और दूसरी वृत्तिसे पत्नीरूप द्रौपदी जानिये। आप पाँचों मेरे पति शिव हैं। मैंने शिवका मुखारविन्द देखकर उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की थी कि 'स्वामिन्! आप अपने शरीरके पाँच रूप बनाकर मेरे पति बनें।' इसलिये शिव अपनेको पाँच रूपोंमें विभक्त करके कुन्तीके पुत्र हुए। मैं भी अग्निकुण्डसे उत्पन्न होकर राजा द्रुपदकी द्रौपदी नामकी पुत्री बनी। अतः आप पाँचों मेरे पति हैं। अब आपका जो कर्तव्य है, वह निःशङ्क होकर करें और अपने रूपको ललाटस्थित कालीरूपमें ध्यान करें। स्वामिन्! शक्ति ज्योतिःस्वरूप है, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम है, उसीको महायोनि कहते हैं। वही अर्धमात्रा (अर्थात् नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा) है। उसीका ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ध्यान करते हैं। यही राजयोग है।'

यह सुनकर भीमसेन भ्रममुक्त हो गये। उसी समय उन्हें ज्ञान उत्पन्न हो गया। द्रौपदीको आत्मरूपिणी समझकर वे संशयरहित एवं जीवन्मुक्त हो संसारमें विचरण करने लगे।

तन्त्रशास्त्र—एक विहंगम दृष्टि

(श्रीविनयानन्दजी झा)

वैसे वेदोंके देवीसूक्तादिमें शक्ति-उपासनाका वास्तविक मूल प्राप्त है। फिर भी उसका पूर्ण विकास तन्त्रशास्त्रके रूपमें हुआ है। कालान्तरमें इसने बौद्ध एवं जैन दर्शनको भी प्रभावित किया। हिंदू-तन्त्रके अंदर भी यह मात्र शक्ति-पूजा और शाक्त-सिद्धान्तोंसे ही सम्बद्ध न रहकर सौर, वैष्णव, शैव एवं गाणपत्य तन्त्रके रूपमें विकसित हुआ। इस प्रकार तन्त्रका प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय आचार-विचारपर पड़ा एवं पुराणादिमें भी इसके महत्त्वको स्वीकार करते हुए इसकी व्याख्या की गयी और यह वैदिक-पौराणिक धर्ममें समादृत हो गया। इसने उपासना-पद्धति विशेषकर शक्ति-पूजाको इस हद-तक प्रभावित किया कि आज हम किसी भी पूजामें कई तान्त्रिक प्रक्रियाओंको अवश्य पाते हैं।

तन्त्र शब्द **'तनु—विस्तारे'** (फैलाना) धातु एवं ष्ट्रन् प्रत्ययसे बना है। जिसका तात्पर्य है कई विषयों (मन्त्र, यन्त्र आदि) को विस्तृत करना। तन्त्र शब्दका प्रयोग अमरकोषमें मुख्य विषय—सिद्धान्त अथवा शास्त्रके रूपमें हुआ है। आरम्भमें इस शब्दका व्यवहार भी आज जिसे हम तन्त्रशास्त्रके रूपमें जानते हैं, उस अर्थमें नहीं होता था। जैमिनिके पूर्वमीमांसा-सूत्रके शाबरभाष्यपर कुमारिलके एक वार्तिकका नाम है—तन्त्रवार्तिक। प्राचीन एवं मध्यकालमें लोगोंको सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्रकी उपाधि दी जाती थी, जिसका तात्पर्य सभी शास्त्रोंका ज्ञाता होता था। ऋग्वेदमें तन्त्र शब्दका प्रयोग करघाके रूपमें किया गया है।

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥

(ऋ० १०। ७१। ९)।

पाणिनिने तन्त्र शब्दका प्रयोग करघेसे तुरंत तैयार वस्त्रके अर्थमें किया है (पा० ५। २। ७०)।

अथर्ववेद एवं कई ब्राह्मणग्रन्थोंमें 'तन्त्र' शब्दका प्रयोग ऋग्वेदकी तरह ही हुआ है आपस्तम्ब (१ । १५ । १) । श्रौतसूत्रमें इसका प्रयोग विधिके रूपमें हुआ है तो सांख्यायन (१ । १६ । ६) में ऐसे कर्मके रूपमें जिससे अन्य कर्मोंकी उपयोगिता सिद्ध हो जाय । महाभाष्यने (पाणिनि ४ । २ । ६० पर) सर्वतन्त्र शब्दका प्रयोग सिद्धान्त अथवा शास्त्रके रूपमें किया है । इसी प्रकार याज्ञ० (१ । २२८), कौटिल्य (१५वाँ अधिकरण) एवं शंकराचार्य (ब्रह्मसूत्रभाष्य)ने 'तन्त्र' का प्रयोग सिद्धान्त, शास्त्र आदिके रूपमें किया है।

कुलार्णवादि तन्त्रों या आगमोंको अनादि शिवप्रोक्त ही कहा गया है । आधुनिक जॉन वुड्रफ आदि पाश्चात्य विद्वान् इसीलिये इसका मूल स्थान कैलास या तिब्बतमें मानते हैं (ए० एन० चौधरी) । कुछ लोग तन्त्रशास्त्रके विदेशी उद्भवका सिद्धान्त सम्भवतः इस श्लोकसे मानते हैं कि—

गच्छ त्वं भारते वर्षे अधिकाराय सर्वतः ।
पीठोपपीठक्षेत्रेषु कुरु सृष्टिमनेकधा ॥

'भारतवर्षमें सभी जगहोंपर अधिकार प्राप्त करने जाओ और पीठों, उपपीठों तथा क्षेत्रोंमें अनेक प्रकारसे इसकी सृष्टि करो ।' इस श्लोकमें कहींसे भारत आनेकी बात है । वस्तुतः यह विवरण दिव्यलोकसे आनेका है, जैसा कि भागवत (१० । २) में देवीके प्रति विष्णुका भी आदेश है । परंतु इस श्लोकके आधारपर तन्त्रशास्त्रके विदेशी उद्भवके सिद्धान्तको प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है । वैसे भी तान्त्रिक सिद्धान्तोंकी जो विभिन्न विशेषताएँ हैं उनकी जड़ हम किसी-न-किसी रूपमें अत्यन्त प्राचीनकालसे ही भारतमें पाते हैं ।

आगम ग्रन्थके तन्त्रोंको हम दो भागोंमें बाँट सकते हैं—प्रथम दार्शनिक पक्ष और दूसरा व्यावहारिक पक्ष । तन्त्रोंकी संख्या बहुत अधिक है । कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ तन्त्रको तीन दलोंमें विभक्त कर प्रत्येकके ६४ भेद बताते हैं । शक्ति-तन्त्रोंमें देवीको माँ एवं संहार करनेवालीके रूपमें देखा गया है । देवी परमात्माकी परम प्रकृतिके रूपमें वर्णित होती हैं, जिनके विभिन्न नाम हैं—काली, भुवनेश्वरी, बगला, छिन्नमस्ता, दुर्गा आदि । राक्षसोंके विनाश और भक्तोंकी कामना-सिद्धिके लिये वे विभिन्न रूप धारण करती हैं । वे परमशक्ति हैं एवं शिवसहित सभी देव उनसे अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं ।

शिव सगुण और निर्गुण दोनों हैं । सगुण ईश्वरसे शक्तिका उद्भव होता है । जिससे नाद (पर) की उत्पत्ति होती है एवं नादसे बिन्दु (पर) की । बिन्दु तीन हिस्सोंमें बँटा है—बिन्दु (पर), नाद (अपर) एवं बीज । प्रथमसे शिव एवं अन्तिमसे शक्तिका तादात्म्य है तथा नाद दोनोंका सम्मिलन है । शक्तिसे विभिन्न सृष्टि होती है ।

शक्ति मानव-शरीरमें कुण्डलिनी (सर्प) का रूप ग्रहण कर आधारचक्रमें बिजली-सदृश चमकती है । मानव-शरीरमें तान्त्रिक ग्रन्थोंके अनुसार निम्नलिखित छः चक्र होते हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा । इनके अतिरिक्त मस्तकमें ब्रह्मरन्ध्र बीजकोशके रूपमें विद्यमान है । कुण्डलिनी-शक्ति सर्परूपमें विद्यमान है । यह सर्प-सदृश मूलाधारमें कुण्डली लगाकर सुषुप्तावस्थामें अवस्थित रहती है । गहन साधना एवं ध्यान आदिसे उसे जाग्रत् करना होता है, जो जागनेपर धीरे-धीरे प्रत्येक चक्रको पार करके ब्रह्मरन्ध्रके सहस्रदलमें मिल जाती है एवं अमृतपान कर पुनः वापस लौट जाती है ।

तान्त्रिक साधनाद्वारा अलौकिक सिद्धि मुक्ति आदिकी प्राप्ति अति शीघ्रतासे मिलती है । मन्त्र व्यक्तिको ज्ञानी गुरुसे प्राप्त करना चाहिये । तान्त्रिक पूजाओंमें वैदिक मन्त्रोंका भी प्रयोग होता है, परंतु तन्त्रशास्त्रने स्वतन्त्र-

रूपसे भी असंख्य मन्त्रोंका प्रणयन किया है। इसमें प्रत्येक देवता-हेतु बीज-मन्त्रोंका प्रावधान है, बीजके अतिरिक्त कवच, हृदय, न्यास आदिके रूपमें भी अनेकानेक मन्त्र हैं। मन्त्रोंकी सिद्धि-हेतु स्थान, समय एवं मालाओंका भी विशिष्ट महत्त्व है।

मन्त्रोंके साथ-साथ तान्त्रिक उपासनामें न्यास, मुद्रा, यन्त्र एवं मण्डलका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। न्यासका अर्थ है—शरीरके अङ्गोंपर देवताका आवाहन करना, जिससे वह पवित्र होकर पूजा-अर्चनाके लिये उपयुक्त हो जायँ। न्यासके कई प्रकार हैं, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—हंसन्यास, प्रणवन्यास, वर्णमातृकान्यास, बाह्य-मातृकान्यास, अन्तर्मातृकान्यास, संहारमातृकान्यास, कलामातृकान्यास, श्रीकण्ठादिन्यास, ऋष्यादिन्यास, बीज-न्यास, जीवन्यास। षोढान्यासके अन्तर्गत गणेशन्यास, ग्रहन्यास, नक्षत्रन्यास, योगिनीन्यास, राशिन्यास और पीठस्थानन्यास आते हैं।

मुद्राका तात्पर्य तान्त्रिक पूजामें अंगुलियों और हाथोंको एक विशेष प्रकारसे अवस्थित करना होता है। मुद्रा पञ्चमकारोंमें भी एक है, परंतु वहाँ उसका अर्थ घृतमिश्रित अथवा भूना हुआ अन्न होता है। मुद्राओंकी संख्या बहुत अधिक है, जिनमें नौ मुद्राएँ अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध हैं। ये हैं—आवाहिनी, स्थापिनी, संनिधापिनी, संनिरोधिनी, सम्मुखीकरणी, सकलीकृति, अवगुण्ठनी, धेनु एवं महामुद्रा। कुछ अन्य प्रसिद्ध मुद्राएँ ये भी हैं—खेचरी, योनि, वज्रोली, त्रिखण्डा, सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, आकर्षिणी, सर्ववशंकरी, उन्मादिनी, महाङ्कुशा एवं बीज-मुद्राओंसे सभी प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती हैं।

तान्त्रिक आराधनाका एक अन्य प्रधान अङ्ग है—यन्त्र, जिसे भोजपत्र, कागज, विभिन्न धातु आदिपर चित्रित किया जाता है। तान्त्रिक पूजामें इसका प्रयोग विभिन्न प्रकारसे किया जाता है। भिन्न देवताके भिन्न यन्त्र होते हैं। साधक यन्त्रपर देवता-विशेषकी पूजा करता है, विशेष अनुष्ठान आदि किये जाते हैं तथा कभी-कभी विशेष प्रकारकी शान्ति आदिके निमित्तसे इसे भोजपत्रादिपर लिखकर लोग गले अथवा बाँहपर धारण करते हैं। यन्त्रका तन्त्रशास्त्रमें अत्यधिक महत्त्व है और यन्त्रके बिना पूजाको निष्फल माना जाता है।

यन्त्रोंके निर्माणकी प्रक्रिया एवं उनके पूजा-विधानोंपर शास्त्रोंमें विस्तृत विवरण पाया जाता है। यन्त्र त्रिभुजाकारमें एक वृत्तके अंदर खींचा जाता है। त्रिभुजोंकी संख्या विभिन्न देवताओंके लिये भिन्न-भिन्न हैं। एकसे अधिक त्रिभुजकी संख्या जिस यन्त्रमें होती है उसे सीधे एवं उल्टे रूपसे भी बनाया जाता है। त्रिभुजके ऊपर आठ दलवाले कमल बनाये जाते हैं। किसी-किसी यन्त्रमें अष्टदल कमलके ऊपर सोलह दलवाले कमल भी बनाये जाते हैं। इसके ऊपर चार द्वारोंवाली सीमा-रेखाएँ खींची जाती हैं। किसी-किसी यन्त्रमें इस सीमा-रेखाके अंदर एवं कमलदलके ऊपर भी वृत्त बनाया जाता है। सीमा-रेखाके भीतरी चक्रभागको भूपुर कहा जाता है।

तान्त्रिक पूजाका एक अन्य प्रधान अङ्ग है—मण्डल, जिसका तात्पर्य विभिन्न रंगोंके चूर्णसे मण्डप, वेदी एवं अन्य पूजा-स्थलपर रेखाचित्र बनानेसे है। मुख्यरूपसे इसका आलेखन अथवा चावलके चूर्णमें विभिन्न रंग मिलाकर अथवा बिना रंगोंके भी किया जाता है। मण्डलके अंदर देवताओंकी पूजा की जाती है। विभिन्न अवसरों और पूजाओंके हेतु विभिन्न प्रकारके मण्डल बनाये जाते हैं। मण्डलोंका आलेखन मिथिलामें अबतक बहुत व्यापक स्तरपर विभिन्न धार्मिक अवसरोंमें किया जाता है एवं वहाँ इसे अरिपन (आलिम्पन) कहा जाता है।

शक्ति —एक वैज्ञानिक व्याख्या

(श्रीराजेन्द्रबिहारीलालजी)

शक्तिके बिना जीवन असम्भव है। भोजन पचाने, चलने-फिरने, सोचने-विचारने—कोई भी काम करने—यहाँतक कि दिलकी धड़कनतकके लिये शक्ति चाहिये। एक ओर सारी सृष्टि भगवान्‌की अनन्त शक्तिका चमत्कार है तो दूसरी ओर मनुष्य भी अपनी अल्प शक्तिका प्रयोग करके दुनियामें बड़े-बड़े काम कर सकता है और परमात्मातकको प्राप्त कर सकता है। हिंदूधर्म शक्तिका उपासक है और दुर्बलताको दूर करना ही उसका आदर्श है।

प्राचीनकालसे ही मनुष्य शक्तिकी खोजमें लगा है। भाँति-भाँतिकी शक्तियोंका अध्ययन भौतिक विज्ञानका विशेष विषय है। वैज्ञानिकोंने कई प्रकारकी ऊर्जाका अनुसंधान किया है। जैसे ताप, प्रकाश, बिजली, गति, चुम्बकत्व, गुरुत्वाकर्षण, जीवनी-शक्ति और चेतना आदि। इस सम्बन्धमें एक उल्लेखनीय बात यह है कि विद्युत् तथा गुरुत्वाकर्षणकी शक्तियाँ सर्वव्यापी हैं। वे कहीं प्रकट हैं तो कहीं अदृश्य, कहीं क्रियाशील हैं तो कहीं सुषुप्त-रूपमें। उदाहरणके लिये समस्त अन्तरिक्षमें और प्रत्येक जीवित प्राणीके शरीरमें बिजली विद्यमान रहती है।

दूसरी अद्भुत बात यह है कि सभी शक्तियाँ अनन्त हैं। कोई नहीं जानता कि सारे संसार-में कुल मिलाकर कितनी बिजली, कितना ताप और कितनी गतिकी शक्ति है। ये शक्तियाँ सदासे चली आ रही हैं और सदा चलती रहेंगी। भौतिक शक्तियोंमें भी सर्वव्यापिता और सर्वसमर्थताके ईश्वरीय गुण हैं।

तीसरा विचित्र तथ्य यह है कि विभिन्न प्रकारकी शक्तियाँ अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरेमें परिवर्तित की जा सकती हैं। तापसे बिजली तथा गति और बिजलीसे ताप, प्रकाश, गति तथा चुम्बकत्व पैदा किया जा सकता है। वैज्ञानिकोंने प्रयोगद्वारा यह भी सिद्ध कर दिया है कि शक्तिको द्रव्यमें और द्रव्यको शक्तिमें बदला जा सकता है। इससे यह क्रान्तिकारी निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्माण्डमें जड़ या चेतन जो कुछ भी है—द्रव्य, ऊर्जा, पत्थर, पेड़, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवी, देवता, बुद्धि, भावना और विचार—सबका उद्भव एक ही स्रोतसे हुआ है, सब विभिन्न रूपान्तर हैं एक ही चिन्मय शक्तिके, जिसे परमात्मा कहते हैं। चर-अचर सभी भूत परमात्माके ही छोटे-बड़े प्रतीक हैं, परमात्मामें ही ओत-प्रोत हैं, परमात्माकी ही झलक दिखाते हैं, परमात्मामेंसे निकले हैं और अन्तमें उसीमें विलीन हो जाते हैं। यही वेदान्तका मूल सिद्धान्त है, जिसे हमारे ऋषियोंने हजारों वर्ष पहले खोज निकाला था, जिसका समर्थन आजका विज्ञान पूरी तरह करता है।

एकका अनेकमें परिवर्तन कुछ अजीब-सा लगता है, किंतु इसका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण हमारे शरीरमें ही मिल जाता है। मनुष्य जिस भोजन, पानी और हवाका सेवन करता है, वह पेटमें पचकर रस या रक्त बन जाता है। वही रक्त शरीरमें जगह-जगह पहुँचकर अनेक अङ्गों और शक्तियोंका रूप धारण कर लेता है, जैसे हड्डी, मांस, बाल, नाखून, सूँघने, सुनने, बोलने और विचारनेकी शक्ति।

हिंदूधर्मकी यह विशेषता है कि इसने भगवान्‌की सत्ताको कई विभागोंमें बाँट दिया है और हर विभागका एक अलग अध्यक्ष नियुक्त किया है। इसके लिये अनेक देवी-देवताओंकी रचना की गयी है, जैसे ब्रह्मा, विष्णु

महेश, यमराज, कुबेर, इन्द्र तथा सूर्य । देवियोंमें प्रमुख महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई विभिन्न रूप और गुणवाली देवियाँ प्रसिद्ध हैं । जैसे—वैष्णवी देवी, मीनाक्षीदेवी, चामुण्डादेवी तथा कामाख्यादेवी ।

मनुष्यके पास कई प्रकारकी शक्तियाँ होती हैं, जैसे शरीरकी, बुद्धिकी, विद्याकी और तपस्याकी ।

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥
कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥

इतनी अद्भुत शक्ति पाकर भी रावण अपनी दुर्बुद्धिके कारण राक्षससे महाराक्षस बन गया । यह शक्तिका दुरुपयोग था, जैसे जिस अग्निसे खाना पकता है और रेलगाड़ियाँ तथा जहाज चलते हैं, वही अग्नि घरों और अन्य सम्पत्तिको भस्म कर सकती है । विज्ञानकी शक्तिने आज एक ओर अनेक सुख-साधन जुटाये हैं, तो दूसरी ओर मनुष्यके विनाशके लिये भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और मादक पदार्थ भी तैयार कर दिये हैं ।

किसी व्यक्तिकी शक्ति अच्छी है या बुरी—यह इस बातपर निर्भर है कि वह उस शक्तिका कैसे प्रयोग करता है । शक्ति स्वयं नैतिक दृष्टिसे तटस्थ या उदासीन है । गहरे चिन्तन और मननके बाद हमारे शास्त्रकार इस निष्कर्षपर पहुँचे कि भगवान्‌की शक्ति, जिसे प्रकृति कहते हैं, तीन गुणोंवाली होती है—सत्त्व, रजस् और तमस् । गीताने यह भी बताया है कि सृष्टिकी सभी वस्तुएँ इन्हीं तीनों गुणोंसे रँगी हुई हैं (१८ । ४०) । सत्त्वगुणी पुरुष उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणी मध्यमें ही रहते हैं और तामसी पुरुष अधोगतिको प्राप्त होते हैं । (१४ । १८)

मनुष्यकी शक्ति जो भगवान्‌की शक्तिका अल्पांश है, इन्हीं तीनों गुणोंसे प्रभावित रहती है और वही गुण धारण कर लेती है जिसका अनुसरण वह व्यक्ति अपने कार्योंमें करता है । सात्त्विक कार्योंमें लगायी हुई शक्ति सात्त्विक, राजस कार्योंमें उपयोग की हुई राजस और तामस कार्योंमें लगायी हुई शक्ति तामस होती है । भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यके सारे कामोंको तीन श्रेणियोंमें बाँटा है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक । भागवतमें उनकी उद्घोषणा है—'जो भी काम मेरे लिये फलेच्छा छोड़कर (अथवा दूसरोंकी भलाईके लिये) किये जाते हैं, वे सात्त्विक होते हैं । जो काम फलेच्छा रखकर (अथवा अपने स्वार्थके लिये) किये जाते हैं, वे तामस होते हैं ।

कहीं यह भ्रम न पैदा हो जाय कि पूजा, ध्यान, जप आदि धार्मिक क्रियाएँ सदा पावन और सात्त्विक होती हैं, इसलिये श्रीकृष्णने सारे धार्मिक कार्योंको तीन कोटियोंमें विभाजित किया है (गीता १७ । १७—१९) और यह स्पष्ट कर दिया है कि धार्मिक कार्य कल्याण-कारी होते हैं जब वे दूसरों या समाजकी भलाईके लिये किये जायँ । इस विषयमें किसी प्रकारकी कोई शङ्का न रह जाय इसलिये उन्होंने गीतामें और भी प्रबल शब्दोंमें कहा है—अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है । ध्यानसे तत्काल परमशान्तिकी प्राप्ति हो जाती है (१२ । १२) । इसका यह अर्थ नहीं कि ध्यान या जप न किया जाय । भली-भाँति पूजा कीजिये, जितना हो सके ध्यान, जप और कीर्तन कीजिये, किंतु उन सबके फलको त्यागकर उन्हें सात्त्विक बनाइये । कर्म-फलत्याग समस्त साधना-क्रमका अन्तिम चरण और पूरक तथा साधनाको सात्त्विक बनानेके लिये अनिवार्य है । तात्पर्य यह कि उपासना तथा अन्य सत्कार्योंके फल-स्वरूप धन, बल, बुद्धि, ज्ञान, पद, प्रतिष्ठा, मान, बड़ाई जो कुछ भी मिले उसे बड़ी विनम्रता, उदारता

और प्रेमके साथ जनता-जनार्दनकी सेवा अथवा परोपकारमें लगाना चाहिये ।

वैकुण्ठनिवासी भगवान्‌की आराधना तभी परिपूर्ण और सार्थक हो सकती है जब उसके साथ घट-घटवासी भगवान् अर्थात् विश्वरूपी श्रीकृष्णकी सेवाको जोड़ दिया जाय ।

शक्तिकी उपासना सभीके लिये आवश्यक है, किंतु शक्तिका उपयोग केवल अपने ही लाभके लिये नहीं, वरन् कुल, समाज और राष्ट्रके हितके लिये होना चाहिये । हम भारतीयों—विशेषकर हिंदुओंका कल्याण इसीमें है कि हम सब मिलकर तन, मन और धनसे अपने देश और धर्मकी सेवा करें और एक महान् भारतके निर्माणके लिये सदा प्रयत्नशील रहें ।

शक्ति-स्रोत स्वयं आप ही हैं

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अनादिकालसे शक्तिके विविध रूपोंकी उपासनाको विशेष महत्त्व दिया जाता रहा है । महाकालीकी आराधना इसीलिये की जाती है कि उनमें पशु-राक्षसोंको परास्त करनेकी शारीरिक शक्तिका केन्द्र देखा गया है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी अनन्त शक्तियोंसे युक्त, सम्पूर्ण विश्वको चलानेवाले परमेश्वरके स्वरूप-अंश, सर्वथा परिपूर्ण तथा सामर्थ्यवान् हैं । वे सभी दिव्य शक्तियोंको देनेवाले माने गये हैं ।

वास्तवमें ये सभी देवी-देवता हमारे गुप्त मनमें विराजमान शक्तिपुञ्ज हैं । इन दिव्य शक्तियोंको हमारे संस्कारों, आदतों, विचार करनेके तरीकोंमें भर दिया गया है । जब कभी हम निराश होकर अपने-आपको निर्बल अनुभव करते हैं, तब ये गुप्त शक्तियाँ ऊपर उठकर हमारी सहायता करती हैं । बाहरकी शक्ति सम्भव है एक बार धोखा भी दे जाय, किंतु अंदरसे मिलनेवाली दैवी शक्ति सदा-सर्वदा हमारे साथ रहती है ।

आप थोड़ी-सी कठिनाई आनेपर दूसरोंकी सहायताके लिये हाथ पसार सकते हैं, किंतु आन्तरिक शक्ति (मनोबलकी दिव्य शक्ति)में आत्मविश्वास रखनेवाला पुरुषार्थी निरन्तर अविराम गतिसे गुप्त शक्ति पाता रहता है, जो उसके उत्साह और स्फूर्तिको बनाये रखती है । अतः ऐसा कहा गया है—**'आत्मैवास्य ज्योतिः'** (बृह० उप० ४ । ३ । २) । अपने अंदरके दिव्य प्रकाशसे जीवनमार्गको देखिये । आपकी आत्मा ईश्वरकी आवाज है । ईश्वर आत्माके रूपमें आपके मनमें वर्तमान हैं । अतः वहीं ध्यान लगाइये और अपना रास्ता चुनिये ।

आत्मिक शक्ति ही हमारी आध्यात्मिकताको बढ़ानेवाली दिव्य शक्ति है । मनुष्य स्वयं ही आत्मस्वरूप है । उसमें आत्माके माध्यमसे ईश्वरका निवास है । यह आत्मा ही देखने, सुनने, छूने, विचार करने, जानने, क्रिया करनेवाला विज्ञानयुक्त है—

'एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ।' (प्रश्नोपनिषद् ४ । ९)

आत्मशक्ति ही मनुष्यका गुप्त शक्ति-स्रोत है । जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश पुष्पोंको विकसित करता है, फलोंको परिपक्व करता है, उसी प्रकार अन्तरात्माका प्रेरक प्रकाश जीवन-शक्तिके सुरभित पुष्पोंको विकसित करता है । जो मनुष्य शङ्काशील, उद्देश्यरहित, हताश, उदास और सब ओरसे निराश हो जाता है, उसका जीवन समाजके लिये निरुपयोगी और संकुचित हो जाता है और वह कुछ भी महान् कार्य नहीं कर

पाता। आत्मसत्तामें विश्वास किये विना मनुष्य मन और शरीरपर काबू नहीं पा सकता।

भगवान्ने स्वयं कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
(गीता २। ३८)

'सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयको समान समझकर युद्ध करो (कर्तव्य-पालन करो)। इससे तुम्हें पाप नहीं लगेगा।'

आप अपना मन इतना सुदृढ़ बनाइये कि कोई सांसारिक प्रलोभन, क्षुद्र वासना, छोटी इच्छा, अल्पकाल रहनेवाली कामना आपको कर्तव्य-मार्गसे विचलित न कर सके। स्थिर-बुद्धि और अनासक्ति-भावसे कर्तव्यका पालन कीजिये। आपका अधिकार तो सत्कर्म करना है, कर्मफलपर अधिकार नहीं। फल मुख्य नहीं, कर्म ही मुख्य है। कर्म ही लक्ष्य और अनवरत कर्म करना ही सही मार्ग है।

यदि आप किसी महान् उपयोगी योजनाको पूर्ण करना चाहते हैं तो आपको अपनी आध्यात्मिक शक्ति विकसित करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णका पहला निर्देश यह है कि हमें सब कुछ शुद्ध-बुद्धि एवं ईश्वरार्पण-के सद्भावपूर्वक समर्पित करना चाहिये।

'भक्ति-भावसे अर्पण किये गये थोड़ेसे भी पत्र, पुष्प, फल और जलको मैं बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ। अर्जुन! तुम जो कुछ भी करो, जो कुछ भी खाओ, पीओ, हवन करो, दान दो, तप करो—वह सब मुझे अर्पण करो।' भगवान्के इन शब्दोंका अभिप्राय यह है कि ईश्वरार्पणभाव इतना व्यापक होना चाहिये कि वह हमारे कर्मका एक अविभाज्य अङ्ग (हमारी आदत) बन जाय।

'मैं ईश्वरका अंश हूँ। ईश्वरकी दिव्यशक्ति मुझमें निवास करती है। ईश्वरकी विपुल सहायता सदा-सर्वदा मेरे साथ है। मैं ईश्वरकी ओरसे ही यह सत्कार्य कर रहा हूँ'—ऐसा समर्पण-भाव रखकर कार्य करनेसे आध्यात्मिक बल बढ़ता है।

आत्मिक शक्तिकी वृद्धिका अभ्यास करनेके लिये मनको शान्त एवं संतुलित कर ब्रह्म-विचारमें रमण करना चाहिये। बार-बार ब्रह्म-विचारको पूरे विश्वाससे दुहराना, उच्चारण करना, उन्हें अपने गुप्त मनमें जमाना चाहिये।

बाहरकी शक्तिकी सहायताका मार्ग देखनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी आन्तरिक आत्मशक्तिको जाग्रत्कर निरन्तर विकसित कीजिये। आप भगवान्के रूप हैं।

भोली भवानी!

विभवेच्छुकनि[1]-भौन भरती विभवभूरि,
भिच्छुक भयौ है भरतार सो भुलानी तू।
भक्तकी अभक्तकी सुभाजन-अभाजनकी[2],
भिन्नता भुलाइ भीति भंजति मृडानी[3]! तू॥
भव-भारजौ[4] है भव-भावर्दा[5] भनै 'कुमार',
भव-भारिकौ[6] है भव-भच्छिका अयानी! तू।
भोरी भामिनी ह्वै भोरेनाथ भंग-भच्छककी,
भाँवती[7] भई है भव्य भावती[8] भवानी! तू॥

—'कुमार'

१—वैभवकी इच्छा रखनेवाले, २—सुपात्र-अपात्रकी, ३—शिवपत्नी, ४—जन्मदात्री, ५—संसारका भार वहन करनेवाली, ६—संसारका भक्षण करनेवाली, ७—प्रिय, ८—भव्य प्रभाववाली।

'शक्ति-क्रीडा जगत्सर्वम्'

(पं० श्रीभालचन्द्र विनायक मुले शास्त्री, काव्यतीर्थ, विद्याभूषण)

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डजननी अनन्त कल्याणमयी पराम्बा ही इस विश्वका उपादान एवं अधिष्ठान हैं। उन्हींसे यह विश्व संजीवित एवं परिव्याप्त है। **'देव्या यया ततमिदम्'** इस वाक्यांशका अर्थ यही है। **'गिरा अरथ जल बीचि सम'** परस्पर सम्पृक्त शिवशक्तियुत गुण विश्वका बीज है। इस प्रकार परस्पर-प्राप्तिके लिये तप करके उसी तपका स्वयं ही फल बननेवाले उन अनादि दम्पतिको प्रणाम करनेवाले कवि भी यही कहते हैं—

देवस्य देवनं देवी । भगो भगवतो बीजम् । भगः शक्तिः स्वतन्त्रता । शक्तिहीने देवशब्दः कुत्रापि न प्रयुज्यते ।

भगवान् शब्दका बीज भग (शक्ति) है। भगका अर्थ है शक्ति—स्वतन्त्रता। देवकी क्रीडा है—शक्ति, उसीका क्रीडाकन्दुक है—यह विश्व—**'शक्तिक्रीडा जगत्सर्वम्'**

'यथा यथा स्फुटा शक्तिर्देवत्वं च तथा तथा'

जैसे-जैसे शक्तिका प्राकट्य होता है, देवत्व भी वैसे-ही-वैसे प्रकट होता है।

'शक्त्यैवैकं द्विधाभूतं शक्त्यैवैकं पुनर्द्विधा ।

शक्तिसे ही परब्रह्म सद्वितीय हो जाता है और बन्धमोचक ज्ञानशक्तिसे वही फिर कैवल्यरूपको, एकत्वको प्राप्त होता है।

शिव और शक्ति एक हैं अथवा दो ? संत ज्ञानेश्वरजी महाराजने 'अमृतानुभव'में बहुत ही सुन्दर लिखा है—

'प्रियुचि प्राणेश्वरी'

एक ही सत्ता है दोनोंकी, प्रिय (परमप्रेमास्पद) शिव ही प्राणेश्वरी शिवा बन गये। वे दोनों मिलकर ही विश्वका निर्माण करते हैं। वे दीखते तो हैं दो, परंतु तत्त्वतः हैं एक ही।

फूल दो हैं, परंतु सुगन्ध एक है।
दीप दो हैं, परंतु प्रकाश एक है॥
ओष्ठ दो हैं, परंतु शब्द एक है।
नेत्र दो हैं, परंतु दृष्टि एक है॥

क्या सूर्यसे सूर्य-प्रभा अलग है ? क्या अग्निसे उष्णता अलग है ? क्या शर्करासे मधुरिमा अलग है ? क्या कर्पूरसे सुगन्ध अलग है ? दोनोंका रूप समझनेके लिये वैखरी परा-पर्यङ्कपर जा पहुँची और स्वयं मौन बन गयी।

'स्वतरंगाची मुकुले तुरंबू कान पाणी ॥'
(अमृतानुभव)

जलको अपने तरंग-कलिकाओंका सुगन्ध लेनेमें क्या हानि है ?

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने आगे लिखा है—मैं उन अनादि दम्पतिको प्रणाम करने गया तो नमक जैसे सिंधुमें घुल जाता है वैसे ही मैं भी अहंको भूलकर शिव बन गया। तत्पदलक्ष्यार्था चिति ही आदि-शक्ति हैं। शक्तिकी उपसना मायाकी उपासना नहीं है—

नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रवे क्वचित् ।
मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्तितम् ॥

मायाका अधिष्ठान चैतन्य ही उपास्य है, माया-शबल ब्रह्म ही बुद्धिप्रेरक है। मायाके साथ अधिष्ठान-चैतन्यका अव्यवहित सम्बन्ध है, जब कि गुणोंके साथ व्यवहित सम्बन्ध है। उसी सर्वचैतन्यरूपा आद्याविद्याको प्रणाम करके देवीभागवतका प्रारम्भ हुआ है।

'धर्मी' परब्रह्म है और उस परब्रह्मकी ज्ञान-इच्छा-क्रियाशक्तियाँ 'धर्म' हैं। इच्छा ही बल है और वही

शक्ति है। उसीसे विश्वोत्पत्ति, स्थिति और संहारके कार्य चलते हैं। वही शक्ति 'शिवा' है, उसीसे भगवान् 'शिव' कहलाते हैं। आद्य शंकराचार्यके शब्दोंमें—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥
इत्यादि।

श्रीदुर्गासप्तशतीमें वही 'चण्डी' है। श्रीमहाकाली, श्रीमहालक्ष्मी, श्रीमहासरस्वतीरूपा त्रिगुणात्मिका श्रीदुर्गाम्बाके रूपमें उसी विश्वमाताका चरित्रविस्तार वहाँ है। महिषासुरका संहार करनेके लिये वे ही महालक्ष्मी बनती हैं।

'महिषो यदि राज्येशो हन्यते योषितैव सः।'

महिष यदि शासक बनता है तो वह स्त्रीसे ही मारा जाता है।

'बुद्धीनामेकसम्भावो महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता।'

सद्बुद्धियोंके केन्द्रीभूत होनेसे महालक्ष्मी प्रकट हो जाती हैं। सुरथ और समाधि जब शोक-मोहाविष्ट होकर सुमेधाजीके आश्रमपर पहुँचे, तब ऋषिने उन दोनोंको महाशक्तिकी ही आराधनाका उपदेश दिया। सुरथ (क्षत्रिय) और समाधि (वैश्य) जब ब्राह्मीशक्ति (ऋषि) से मिलते हैं तभी विश्वमें मङ्गल होता है।

आचार्यस्य बलं ज्ञानं आज्ञा सिंहासनेशितुः।
ज्ञानमाज्ञायुगीभूय कालं सम्परिवर्तयेत्॥

आचार्यका ज्ञान और शासककी आज्ञा मिलकर विश्वका अभ्युदय होता है और यही युग-परिवर्तनकी युक्ति है।

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्।
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥

सुरथ और समाधि वैश्य भगवतीकी आराधना करके कृतार्थ हो गये। अन्य दर्शनोंमें यही शब्दान्तरसे कहा गया है—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः॥
(कामकलाविलास)

शक्ति शिवरूप विमर्शका दर्पण है

शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किंचित् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥

चन्द्र-चन्द्रिकाकी तरह शिव और भगवती परस्पर अभिन्न हैं। श्रीराजराजेश्वरी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी भी वे ही हैं। उन्हींका एक महामहिमामय श्रीमञ्चक है। उनके चरणारविन्दोंके पास ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँच विराजते हैं। सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह करनेवाले ये पाँच पुरुष हैं।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और उन्मनी—ये इनकी अवस्थाएँ हैं। सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरुष—ये श्रीमञ्चकके चार पाद हैं। ईशानरूप फलक है। उसपर जगज्जननी श्रीजगन्माता विराजमान हैं।

श्रीमञ्चकका 'कर्मकाण्ड' पूर्वपाद है, उपासना दक्षिणपाद है, योगकाण्ड पश्चिम पाद है और ज्ञानकाण्ड उत्तरपाद है। 'समाधिकाण्ड' मञ्चकका ऊर्ध्वफलक है। वहींपर वे श्रीमहाराजराजेश्वरी विराजमान हैं। तीन पुर तीन शरीर हैं तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ हैं। उन तीन पुरोंकी अवस्थाओंकी साक्षिणी वे महात्रिपुरसुन्दरी हैं और सर्वमन्त्रोंकी वे जननी हैं।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥
(सौन्दर्यलहरी ९)

शास्त्रवेत्ता वाग्देवताको ब्रह्माजीकी गृहिणी कहते हैं, लक्ष्मीजीको भगवान् श्रीहरिकी पत्नी बतलाते हैं, पार्वतीजीको भगवान् शंकरजीकी अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं; किंतु आप तो उन सबसे परे तुरीयारूपसे अवस्थित

दिव्य महिमामयी महामायारूपिणी परब्रह्ममहिषी, पटरानी हैं। आपकी जय हो।

नास्मिन् रविस्तपति नात्र विभाति वातो
नास्य प्रवृत्तिमपि वेद जगत्समग्रम्।
अन्तःपुरं तदिदमीदृशमन्धकारे
अस्मादृशास्तु सुखमत्र चरन्ति बालाः ॥
(नीलकंठ कवि)

यह जगन्माता पार्वतीका गूढ़ भगवान् शिवका अन्तःपुर है। यहाँ न सूर्यकी किरणें जाती हैं न हवा ही पहुँच पाती है। यहाँकी कोई भी सूचना विश्वको नहीं मिलती। ऐसे अद्भुत और परमगूढ भगवान् शिवके अन्तःपुरमें हम बालक सुखसे विचरते हैं। यह हमारा अहोभाग्य है।

राष्ट्रीय एकताके लिये शक्तिकी सक्रियता

(डॉ० श्रीरञ्जन सूरिदेवजी)

ईश्वरभक्त भारतीयोंमें यह पारम्परिक विश्वास सत्य होकर बद्धमूल है कि इस विश्वमें किसी एक ईश्वरीय शक्तिकी सत्ता अवश्य है, जो अलक्ष्य होकर भी इस विराट् जगत्‌की नियामिका है। सम्पूर्ण जगत्‌की गति-विधियाँ उसी शक्तिसे नियन्त्रित और संचालित हैं। विभिन्न आगमोंमें यही महाशक्ति, पराशक्ति, चित्-शक्ति, चैतन्यशक्ति आदि विविध नामोंसे विवेचित हुई है।

शक्ति सक्रियताका प्रतीक है। शाक्तागममें तो यहाँ-तक कहा गया है कि 'शिवमें जो इकार है, वह शक्तिका संकेतक है। इस शक्तिके बिना 'शिव' भी 'शव' अर्थात् निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः शिव-शक्तिका साम्य या समभाव ही अद्वैत है और वैषम्य द्वैत। इससे स्पष्ट है कि किसी भी शिव या कल्याण-कार्यके लिये शक्ति अनिवार्य है। इसीलिये शिव और शक्तिको अभिन्न माना गया है—

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव पश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥
(शाक्तागम, स्कन्द-कारिका)

अर्थात् 'चाँद और चाँदनीमें जिस प्रकार अविनाभाव-सम्बन्ध है, उसी प्रकार शिव और शक्तिमें भी।'

शक्तिका चाहे वह भौतिक (प्राकृतिक, आणविक, यान्त्रिक और शारीरिक) हो या आध्यात्मिक या दैविक, कल्याण-कार्यमें प्रयोग होनेसे ही समताकी स्थापना हो सकती है, जो आजकी राष्ट्रिय एकता और अखण्डताके लिये परमावश्यक है। इसके विपरीत वैषम्य या द्वैधकी स्थितिमें सम्पूर्ण विश्व या समग्र मानवताका विनाश सुनिश्चित है। प्रलय या ध्वंसकी यह अवस्था शक्तिके दुरुपयोगसे उत्पन्न उसकी निष्क्रियताका ही नामान्तर है। शक्तिका दुरुपयोग प्रायः वैषम्यकी स्थितिमें ही किया जाता है।

शक्ति नष्ट होनेवाली वस्तु नहीं है, पर वह दुरुपयोग करनेवालेके हाथोंसे निकलकर विराट् सत्तामें केन्द्रित हो निष्क्रिय हो जाती है। इसे ही पाञ्चरात्रागमकी वचोभङ्गीमें कहा है कि पराशक्ति या लक्ष्मी जब परमेश्वर या विष्णुमें विलीन रहती हैं, तब प्रलयकी अवस्था होती है। यह शक्तिकी निष्क्रिय दशा है। अतः शक्तिकी सक्रियताके लिये उसका विकेन्द्रण या अधिकाधिक सम्प्रसारण आवश्यक है। यही अन्तः-शक्तिका बहिः-शक्तिमें रूपान्तरण है, जिसका मुख्य लक्ष्य शिवेतरका क्षय और शिवकी वृद्धि है।

भौतिक स्वार्थमें लिप्त मनुष्य शक्तिके विशुद्ध और निर्मल शिव-स्वरूपको ठीक-ठीक नहीं जानता। फलतः वह कभी-कभी ईश्वरीय सत्ताके प्रति अविश्वस्त हो उठता है। बादमें जीव और जगत् अर्थात् जीवन और उसके

उपादानोंके पारस्परिक सम्बन्धको ठीकसे न समझनेके कारण वह अपनी आस्था ही खो बैठता है, परिणामतः अकर्मण्य और निष्करुण बन जाता है और तभी उसके भावहीन हृदयमें हिंसाकी भावना जड़ जमाने लगती है। ऐसी स्थितिमें वह शिवपक्षको सोचनेकी शक्तिसे रहित और भीरु हो जाता है तथा इस अशक्तताके कारण उसका प्रत्येक कार्य शक्तित्यागमूलक होता है। अर्थात् हिंसात्मक या मनोवाक्कायक्लेशमूलक कार्योंमें दुरुपयोगके कारण शक्ति उसके हाथसे जाती रहती है।

मनुष्यका जीवन शक्तित्यागमूलक नहीं, अपितु शक्ति-ग्रहणमूलक होना चाहिये। समता-बोधके निमित्त शक्तिका शक्तिमान्के साथ समन्वय और स्वातन्त्र्य-बोधके लिये महाशक्तिका जागरण आवश्यक है, तभी राष्ट्रिय एकता और अखण्डताके लिये मानव कृतप्रयत्न हो सकेगा। प्रयत्नशीलता या सक्रियताकी स्थितिमें ही अव्यक्त शक्ति अभिव्यक्त होती है और तभी क्रियात्मक चेतनाका उदय होता है। आगमों, विशेषतया शैव, वैष्णव और शाक्त आगमोंमें त्रिरत्नके अन्तर्गत क्रियाशक्तिकी महत्ताको बहुत अधिक मूल्य दिया गया है। महायान बौद्धसम्प्रदायमें भी 'प्रज्ञापारमिता'की सत्ताको अस्वीकार कर बोधिसत्त्ववादको महत्त्व दिया गया है। क्रियाशक्ति मेघाच्छन्न आकाशमें बिजलीकी कौंधकी भाँति महाशक्तिसे उन्मेष-लाभ करती है। यह क्रियाशक्ति प्राणात्मक तथा अनेक प्रकारकी होती है। क्रियाशक्ति ही समग्र विश्व-व्यापार या समस्त निर्माणकार्यको क्रिया-सापेक्ष बनाती है। 'भारतीय साधनाकी धारा' नामक ग्रन्थके 'वैष्णव साधना और साहित्य' प्रकरणमें म० म० पं० गोपीनाथ कविराजने क्रियाशक्तिकी महत्ताके विवेचन-प्रसङ्गमें कहा है—'यह क्रियाशक्ति ही सृष्टिके समय मूलप्रकृतिमें परिणाम-सामर्थ्य, कालमें कलन-सामर्थ्य और आत्मामें भोग-सामर्थ्यका संचार करती है और संहार-कालमें उन सामर्थ्योंका प्रत्याकर्षण करती है।'

इससे स्पष्ट है कि क्रियाशक्ति निर्माण और ध्वंस, विकास तथा संकोच, दोनों कार्योंमें समान भावसे समर्थ है। निर्माण या सृष्टि भी तीन प्रकारकी कही गयी है—शुद्ध, मिश्र और अशुद्ध। शुद्ध निर्माण या सृष्टि सत्यश्रमसे संवलित होती है। उससे राष्ट्रमें ज्ञानका विस्तार होता है, निर्धनताका क्षय और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है तथा जनजीवनमें शक्ति, बल, वीर्य और तेजका समष्ट्यात्मक विनिवेश होता है। मिश्र सृष्टि या रचनासे उक्त गुणोंका मिश्रित विकास होता है और अशुद्ध सृष्टिसे राष्ट्रमें दुष्ट तत्त्वोंका प्रावल्य होता है। यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि आज मानवकी क्रियाशक्ति अशुद्ध सृष्टिमें निरत है, इसीलिये गुणोन्मेषका ह्रास या अभाव होता जा रहा है। परिणामतः हमारी राष्ट्रिय एकता और अखण्डता बाधित हो उठी है। ध्यातव्य है कि शुद्ध सृष्टि गुणोन्मेष-दशाका ही अपर नाम है, पङ्कका पङ्कजमें रूपान्तरण है।

अधुना दिग्भ्रान्त या लक्ष्यभ्रष्ट क्रियाशक्तिके कारण मनुष्यकी इच्छाशक्ति बाधित है। इच्छाशक्ति ऐश्वर्यका पर्याय है, किंतु आज मनुष्य जिस भौतिक समृद्धिको ऐश्वर्य मानता है, वस्तुतः वह ऐश्वर्य नहीं है, अपितु निरन्तर क्रियाशक्तिको जगानेवाली या सही दिशा देनेवाली अबाधित इच्छाशक्ति ही ऐश्वर्य है। जहाँ इच्छाशक्ति है, वहाँ कोई वस्तु दुरभिगम्य नहीं है। कहा भी गया है—'जहाँ चाह, वहाँ राह।' किंतु यह इच्छाशक्ति भगवदिच्छाके अधीन है। इसीलिये वह ऐश्वर्य या ईश्वरीय विभूति कही जाती है। यही कारण है कि जो भागवती-सत्तामें विश्वास करते हैं या आत्मामें विश्वास—आत्मविश्वास रखते हैं, वे कभी निराश होना नहीं जानते। उनकी इच्छाशक्ति भगवत्कृपासे निरन्तर जागरित रहती है, फलतः उनमें क्रियाशक्तिका सतत उन्मेष होता रहता है और जो क्रियावान् होते हैं, वे ही लोक-कल्याण तथा समता-भावका विस्तार करते

B. K. Mitra

देवीशक्तियोंका असुरोंपर सामूहिक आक्रमण

हैं। कहना न होगा कि साम्प्रतिक भूतचैतन्यवादी या जडवादी संसारमें लोक-कल्याणवाचक इच्छाशक्ति एवं प्रभावद्योतक क्रिया-शक्तिका नितान्त अभाव हो गया है।

सिद्धोंकी साधना-पद्धतिमें कुण्डलिनी-शक्तिकी चर्चा है। कुण्डलिनी पिण्ड अर्थात् देहकी आधारभूत शक्ति है। यह साधारणतया प्रसुप्त अवस्थामें रहती है। योगबल अर्थात् क्रियाकौशलसे उसे प्रबुद्ध या चेतन करना पड़ता है। इस चैतन्य-सम्पादनके फलस्वरूप ही महाशक्तिका विकास एवं क्रमशः देहसिद्धि घटित होती है। देह या पिण्डकी आधारशक्ति—कुण्डलिनीका ज्ञान प्राप्त किये बिना तत्त्व-बोध अपूर्ण रहता है। इसीलिये ब्रह्माण्ड-ज्ञानके पहले पिण्डज्ञान आवश्यक है; क्योंकि जो पिण्डमें है, वही ब्रह्माण्डमें—**'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।'** सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, मोक्ष-बन्धन, सब देहाश्रित हैं। पिण्डसिद्धि योगमार्गकी साधनागत असाधारणता और वैशिष्ट्य है। योगद्वारा देहके परिपक्व होनेपर ही ज्ञान-मार्गकी यात्रा सफल होती है। इसीलिये कहा गया है—**'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'** किंतु आज स्थिति यह है कि मनुष्य दूरदर्शनपर या अन्य किसी तथाकथित योगकेन्द्रमें प्रदर्शित योग और स्वास्थ्य-विषयक कार्य-क्रमको प्रमाण मानते हुए अपनी कुण्डलिनी-शक्तिको जगाकर देहसिद्धि प्राप्त करनेकी बालचेष्टा करता है। अतः उसकी दैहिक शक्तिके साथ ही मानसिक शक्ति भी दुर्बल पड़ जाती है; फलतः वह साधनामूलक, व्यापक ज्ञानदृष्टिके अभावमें राष्ट्रिय अभ्युदयमूलक एकताकी बात सही ढंगसे नहीं सोच पाता।

इस यौगिक प्रसङ्गसे एक बात स्पष्ट है कि शक्ति मनुष्य-देहमें ही प्रतिष्ठित है। सिद्धोंने देहस्थिता षट्चक्रको शक्तिका अधिष्ठान या केन्द्र कहा है। इसलिये शक्तिको कहीं बाहरसे आयातित करनेकी आवश्यकता नहीं है, अपितु अपनी देहके ही भीतर निष्क्रिय-रूपमें अवस्थित शक्तिको पहचानकर उसे सक्रिय करने और फिर कल्याण-मार्गकी ओर उन्मुख करनेकी आवश्यकता है।

किंतु यह नहीं भूलना चाहिये कि ईश्वरीय शक्ति या चित्-शक्ति या चिन्मयी परमाशक्तिके बिना केवल मनुष्य-शक्ति जीवनको पूर्णता नहीं प्रदान कर सकती। जीवनकी पूर्णताके लिये दोनों शक्तियोंका समाहार अपेक्षित है। आग जलानेसे जैसे हवा अपने-आप बहने लगती है, वैसे ही मनुष्य-शक्तिके सक्रिय होनेपर करुणामय ईश्वरकी शक्ति या कृपाका संचार स्वतः होने लगता है। इसलिये मूलशक्ति भगवत्-शक्ति है, जो अखण्डता, एकता और समताकी साम्यमयी अनन्तशक्तिके रूपमें अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रियाकी साम्यमयी चैतन्यशक्तिके रूपमें सम्पूर्ण सृष्टिमें विराजमान रहती है। अधुना राष्ट्रके सर्वतोमुख अभ्युत्थान तथा एकताके लिये प्रत्येक मनुष्यमें इसी अनन्तशक्ति या चैतन्यशक्तिका उन्मेष या सक्रियता आकाङ्क्षित है।

रणचण्डी

तू ही आदिशक्ति ! चराचरमें समानी एक, तू ही सर्व नित्य पूरन अखंडी है।
तू ही जन पोषक जगमातु सुखदाई औ, तू ही प्राणिधात्री सब पालक ब्रह्मंडी है॥
'विश्वनाथ' तू ही मुक्तिदाई भक्तिरूपा है, तू ही रिद्धि-सिद्धि शक्ति परम अखंडी है।
तू ही राष्ट्र-रक्षण हित अरिदल नासिबेको, कैटभ विमर्दनि प्रचंड रणचंडी है॥

—कुँअर विश्वनाथसिंह

मातृ-शक्ति

प्रातःकाल सुन्दर-सुन्दर चिड़ियाँ चहचहाती हैं, नन्हीं-नन्हीं कलियाँ अपना हँसीभरा मुँह खोले अठखेलियाँ करती हैं और नन्हे-मुन्ने हँसते-खेलते दिखायी पड़ते हैं। आमकी मञ्जरीसे लदी डालियोंपर कोयलके संगीतकी मधुर कूक कानोंमें आनन्द उड़ेलती है। विशाल पादप झूम-झूमकर जगदीशके चरणोंमें नत होते दीख पड़ते हैं। यह उनमें चहल-पहल, यह स्फूर्ति, यह सौन्दर्य किस शक्तिका अवदान है?

एक वृक्षका छोटा-सा बीज है और दूसरा उससे उत्पन्न हुआ विशाल वृक्ष। फिर भी दोनोंमें जितना अन्तर है, उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध भी। अन्ततः यह विशाल वृक्ष कहाँसे उत्पन्न हुआ? इसे जन्म दिया है एक छोटे-से बीजने।

सभी जड़-चेतन उत्पन्न होते, बढ़ते, हँसते-खेलते और अन्तमें मृत्युको प्राप्त होते हैं। वह कौन है, जो इन सबका पालन-पोषण करता है? ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो संसारके सभी कष्ट सहकर, उसे जन्म देकर उसकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेती है। वही जन्मदात्री और पालयित्री शक्ति ही मातृ-शक्ति है, जो जड़-चेतन, पशु-पक्षी, दानव-मानव सभीके लिये अनुपेक्ष्य है।

माता ही दूध पिलाकर बालकका लालन-पालन करती है। माता ही उसके खाने-पीने, खेलने-कूदने और नहाने-धोनेकी चिन्ता करती है। माता ही ऐसी शक्ति है जो संतानपर जरा-सा कष्ट पड़नेपर, थोड़ी-सी विपत्ति आनेपर अपने सभी कष्टोंको भूलकर उसे कष्टसे, विपत्तिसे मुक्त करनेके लिये दौड़ पड़ती है। यही नहीं, संतानके दुःखमें सहानुभूतिपूर्वक आवश्यक हुआ तो अपना जीवनतक त्यागकी बलिवेदीपर न्यौछावर कर देती है। संतानके प्राण-संकटमें अपने प्राणोंका भी मोह त्याग देती है। जिस समय सारा संसार सोता है, माता अपने बालकका रोना सुनकर चौंक उठती है और रोते हुए बच्चेको गोदमें लेकर बार-बार उसका मुख चूमती, पुचकारती और आवश्यक हुआ तो अपना अमृत पिलाकर आप्यायित करती है। यही है स्नेहमयी मातृ-शक्ति!

माताकी शिक्षा आजन्म बच्चेके पास रहती है। माताके कारण ही संतानको शारीरिक शक्ति, बुद्धिशक्ति और ज्ञानशक्ति मिल पाती है। एक चिड़ियाका साधारण बच्चा भी पंख निकलते ही अपनी माँके सिखाये बिना उड़ नहीं पाता। मातामें ही ऐसी शक्ति है जो अपने बच्चेके मानवीय ज्ञानके छिपे अङ्कुरोंपरसे अज्ञानका पटल हटाकर उनकी शक्तियोंको प्रकाशोन्मुख करती है।

अभिमन्युने चक्रव्यूह-भेदनकी शिक्षा कहाँसे सीखी? माता सुभद्राने ही अर्जुनके मुखसे वह युक्ति सुनकर अपने गर्भस्थित बालकके मस्तिष्कमें वह ज्ञान उड़ेल दिया। उसी वीराङ्गना सुभद्राने जन्म दिया था वीर बालक अभिमन्युको। यवनोंसे देशकी रक्षा करनेवाले, ब्राह्मणों और गौकी रक्षा करनेवाले, बड़े-बड़े विशाल दुर्गोंको सरलतासे जीतनेवाले, मातृभूमिकी विजय-वैजयन्ती फहरानेवाले और संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अपना नाम लिखानेवाले 'शिवाजी' अपनी माताके कारण ही 'छत्रपति' बने। वीर शिवाजीने वह शक्ति, धैर्य, बल और साहस अपनी माता जीजाबाईकी ही शिक्षाद्वारा पाया था और अपनी माताके कारण ही वह 'छत्रपति' बने। रानी दुर्गावती यद्यपि असहाय, अबला स्त्री थीं, किंतु वीर माताके दूधके साथ वीरताका भी पान करके ही उन्होंने दो बार युद्धमें यवनोंको पराजित किया और अन्तमें लड़ते-लड़ते ही प्राण त्याग दिये।

आदर्श माता ही आदर्श संतान उत्पन्न कर सकती है। वीर माताओंने ही वीर संतानोंको जन्म दिया और उनका ही दूध पीकर वे वीर बने। माताओंमें वह शक्ति है, जो युद्धके घोर संकटके समय अपने हँसते-खेलते हुए बालकके गलेमें विजयकी माला पहनाकर, उसके मस्तकपर विजयतिलक लगाकर रणक्षेत्रके लिये विदा कर देती है और यह कहकर आशीर्वाद देती है कि 'यदि वीर हो तो अपनी माताकी कोखकी लाज रखना!'

भारतकी नारी-शक्ति

विश्वके रङ्गमञ्चपर कई जातियाँ आयीं और उत्थानकी एक क्षणिक आभा विकीर्ण कर सदाके लिये अस्त हो गयीं। आज उनका अस्तित्व केवल इतिहासके पृष्ठोंमें ही रह गया है; परंतु आर्य-जातिका महामहिम गौरव, इसकी अमर संस्कृति और लोकमङ्गलविधायक पावन चरित्र मानव-जातिके आदर्श-पथके उज्ज्वल प्रदीप हैं। मानवताके चरम लक्ष्यको आत्मदर्शी आर्य ऋषियोंने जितनी सुन्दरता और सरलतासे समझा, उसे अन्य देश-वासियों अथवा अन्य धर्मावलम्बियोंके लिये समझ सकना कठिन ही नहीं, वरं असम्भव था। संसारकी अन्य जातियाँ ऐहिक वैभवके क्षणिक प्रलोभनमें ही उलझ गयीं, परंतु भारतके क्रान्तदर्शी महर्षियोंने संसारके 'उस पार' को समझा ही नहीं, उसे देखा भी। गौरव-प्राप्तिकी भूखी ग्रीक और रोमन जाति अपने अल्पकालीन उद्भवसे संसारको चकित तो कर सकी, परंतु उसके प्रकाशमें स्थायित्व कहाँ? बरसाती नालेके समान उसके उफान और निर्वाणमें कुछ ही दिनोंका अन्तर था। परंतु आर्य-संस्कृति, आर्य गौरवका इतिहास स्वतः अनादि और अनन्त है। आर्य-जातिका इतिहास ईसापूर्व (B. C.) और ईस्वी (A. D.) आदि सनोंमें नहीं आँका जा सकता, वह तो गङ्गा और यमुनाके समान अनादिकालसे संसारके वक्षःस्थलपर संसारको पावन करनेके लिये बह रहा है।

हमारी संस्कृतिकी आधारस्तम्भ हैं—आर्यनारियाँ। हिंदू-नारीने ही अपने प्राणोंकी ऊर्जासे हिंदू-संस्कृतिके लोक-पावन प्रवाहको अमर और अक्षुण्ण बनाये रखा है। सच पूछा जाय तो आर्य-जातिके उज्ज्वल अस्तित्व-को स्थायित्व प्रदान करनेमें हिंदू-सतीका बहुत अधिक हाथ है। संस्कृतिके पौधेको हिंदू-सतियोंने अपने प्राणोंके रससे सींचा और समय आनेपर उन्होंने इसके थाल्हेमें अपने प्राण भी चढ़ा दिये। आज भारतका मस्तक उसकी सतियोंके कारण ही संसारमें ऊँचा है। यही कारण है कि प्रातःकाल गीता, गङ्गा और गायत्रीके साथ ही सहसा सीता और सावित्रीके नाम भी स्मरण हो आते हैं। उनके प्रति हृदय सहसा आदर, श्रद्धा तथा पूजाके भावसे भर जाता है। गीता और गायत्रीका सत्य प्रतीक तो सीता और सावित्री हैं। गीता, गङ्गा और गायत्री तथा सीता और सावित्री हमारी संस्कृतिकी प्राणस्वरूप हैं, मूलस्रोत हैं। आज भी भारत सीता और सावित्रीके कारण विश्ववरेण्य है, जगद्वन्द्य है।

यों तो आर्यजातिका समग्र इतिहास सतियोंके गौरवसे उद्भासित है, परंतु हम यहाँ स्थानसंकोचसे कुछ विश्ववन्द्य प्रातःस्मरणीया सतियोंका ही संक्षिप्त परिचय देते हैं।

महासती सीता—मिथिलेश विदेहकी लाड़ली कन्या, चक्रवर्ती नरेश दशरथकी पुत्रवधू, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी प्राणप्रिया सीता पतिके वन जानेकी बात सुनती हैं और मनमें दृढ़ निश्चय कर लेती हैं कि मैं भी अपने प्राणवल्लभके साथ अवश्य ही जाऊँगी। पत्नी पतिसे अलग कैसे रह सकती है? चन्द्रिका चन्द्रमाको, प्रभा भानुको और छाया वस्तुको छोड़कर अलग कहाँ रह

सकती है ! जिन्होंने आजतक पृथ्वीपर पैर नहीं रखे, वे ही जनकदुलारी कँटीले वनमें जानेके लिये दृढ संकल्प कर लेती हैं। वे घरसे दो डग भी आगे नहीं बढ़तीं कि पसीने-पसीने हो जाती हैं और लक्ष्मणसे पूछती हैं—'अभी कितनी दूर और चलना है ?'

सोनेके हिरनके पीछे श्रीरामने अपनी प्राणप्रिया सीताको खो दी। दुष्ट रावण छद्मवेशमें आकर सीताको हर ले जाता है और नाना प्रकारका प्रलोभन दिखाकर उन्हें धर्मसे डिगाना चाहता है; परंतु सीताके मनमें —'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं'की दृढ धारणा बनी हुई थी। सीताके प्राण अहर्निश 'हा राम ! हा राम' की रटमें घुले जा रहे थे। आदिकविने अशोकके नीचे बैठी हुई रोती-बिलखती सीताका बड़ा ही करुण तथा हृदय-द्रावक चित्र खींचा है—उनकी आँखें आँसुओंसे भरी हुई थीं, भोजन न करनेसे वे अत्यन्त दीन और कृश मालूम होती थीं। निरन्तर शोक और ध्यानमें मग्न रहकर वे दुःख सह रही थीं और अपने प्राणाराध्यके दर्शनसे वञ्चित चारों ओर राक्षसियोंको देखती थीं। राक्षसियोंसे घिरी हुई वे ऐसी भयग्रस्त मालूम होती थीं, मानो अपने झुंडसे छूटकर कोई मृगी कुत्तोंसे घिरी हुई हो। रावणके आ जानेपर तो वैदेही उसे देख केलेके पत्तेके समान काँपने लग जातीं। उस समय सीता पूर्णमासीकी उस निस्तेज रातकी तरह मालूम होती थीं, जिसका चन्द्रमा राहुने ग्रस लिया हो। पतिके शोकसे व्याकुल वे उस सूखी नदीकी तरह मालूम होती थीं जिसका जल दूसरी ओर फेर दिया गया हो। रावण अपने साम्राज्य, प्रताप, प्रभाव आदि भिन्न-भिन्न प्रकारका प्रलोभन देकर सीताको 'अपनी' बनाना चाहता है, परंतु उन महासतीके हृदयमें, प्राणमें, आँखोंमें, रोम-रोममें राम-ही-राम छाये हुए हैं। सीताने जिस निर्भीकतासे रावणको उत्तर दिया, वह सर्वथा सीता-जैसी पतिव्रताके ही अनुकूल था—

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि॥

'मुझे तुम ऐश्वर्य या धनके लोभसे वशमें नहीं कर सकते। मैं श्रीरामचन्द्रसे उसी प्रकार अलग नहीं हो सकती, जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा सूर्यसे। लोकके स्वामी श्रीरामकी भुजाके सहारे शयन करके अब मैं किसी दूसरेकी भुजापर क्यों सोऊँ ? सबको विदित है कि श्रीरामचन्द्रजी सब धर्मोंके ज्ञाता हैं और शरणमें आये हुएपर कृपा करते हैं। यदि तुम जीना चाहते हो तो उनके साथ मैत्री कर लो।'

रावण इतनेपर भी न रुका। तब सीताने क्रोधभरे तीखे शब्दोंमें कहा—'मुझे बुरे भावसे देखते हुए ये तेरे क्रूर, खोटे और लाल-लाल नेत्र पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़ते। मुझसे ऐसी घृणित बातें करते हुए तेरी जीभ कटकर गिर क्यों नहीं जाती ? रावण ! तू भस्म कर दिये जाने योग्य है, किंतु श्रीरामकी आज्ञा न होनेसे तथा अपना व्रत पालन करनेके लिये मैं तुझे अपने तेजसे भस्मीभूत नहीं करती। इस राक्षस रावणको प्यार करना तो दूर रहा उसे मैं बाँयें पैरसे छू भी नहीं सकती।' सीताकी आँखोंसे क्रोधके स्फुलिङ्ग निकलने लगे और ऐसा मालूम हुआ मानो वे रावणको भस्म कर देंगी। यह है भारतीय सतीत्वका महामहिम गौरव।

सती सावित्री—नारदने जब यह कहा कि सत्यवान्की आयु बस एक वर्षकी है, तब सावित्रीने निष्ठा तथा आत्मविश्वासपूर्वक कहा—'जो कुछ होनेको था सो हो चुका। हृदय तो बस एक ही बार चढ़ाया जाता है। जो हृदय निर्माल्य हो चुका उसे लौटाया

कैसे जाय ? सती तो बस, एक ही बार अपना हृदय अपने प्राणधनके चरणोंमें चढ़ाती है।'

वह दिन आ पहुँचा, जब सत्यवान्के प्राण प्रयाण करनेको थे। सत्यवान्ने कुल्हाड़ी उठायी और वे जंगलमें लकड़ी काटने चले। सावित्रीने कहा—'मैं भी साथ चलूँगी।' वे वनमें साथ जाती हैं। सत्यवान् लकड़ी काटने वृक्षपर चढ़ते हैं, सिरमें चक्कर आने लगता है और कुल्हाड़ी नीचे फेंककर वृक्षसे उतर पड़ते हैं। सावित्री पतिका सिर अपनी गोदमें रखकर पृथ्वीपर बैठ जाती हैं।

घड़ीभरमें उन्होंने लाल कपड़ा पहने, मुकुट बाँधे सूर्यके समान तेजस्वी, काले रंगके सुन्दर अङ्गोंवाले, लाल-लाल आँखोंवाले, हाथमें फाँसीकी डोरी लिये भैंसेपर सवार एक भयानक पुरुषको देखा, जो सत्यवान्के पास खड़ा था और उसीको देख रहा था। उसे देखकर सावित्री खड़ी हो गयीं और हाथ जोड़कर आर्तस्वरमें बोलीं—'देवेश! आप कौन हैं? आप कोई देव प्रतीत होते हैं।'

यमने करुणाभरे शब्दोंमें कहा—'तुम पतिव्रता और तपस्विनी हो, इसीलिये मैं कहता हूँ कि मैं यम हूँ। सत्यवान्की आयु क्षीण हो गयी है, अतएव मैं उसे बाँधकर ले जाऊँगा।'

यमने फाँसीकी डोरीमें बँधे हुए अँगूठेके बराबर पुरुषको बलपूर्वक खींच लिया और उसे लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। पतिव्रता सावित्री भी पीछे-पीछे उसी दिशाको चली। यमने मना किया, परंतु सावित्रीने कहा—

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥

'जहाँ मेरे पति स्वयं जा रहे हैं या दूसरा कोई उन्हें ले जा रहा हो—मैं भी वहीं जाऊँगी—यही सनातन-धर्म है।' यम मना करते रहे, किंतु सावित्री पीछे-पीछे चलती गयीं। उनकी इस दृढ़ निष्ठा और अटल पातिव्रत्यने यमको पिघला दिया और यमने एक-एक करके वररूपमें सावित्रीके अन्धे श्वसुरको आँखें दे दीं, साम्राज्य दिया, उनके पिताको सौ पुत्र दिये और सावित्रीसे लौट जानेके लिये कहा।

सावित्रीने अन्तिम वरके रूपमें सत्यवान्से सौ पुत्र माँगे और अन्तमें 'सत्यवान् जीवित हो जाय' यह वर भी उन्होंने प्राप्त कर लिया। उनके ये शब्द थे—

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्॥

'मैं पतिके बिना सुख नहीं चाहती, बिना पतिके स्वर्ग नहीं चाहती, बिना पतिके धन नहीं चाहती, बिना पतिके जीना भी नहीं चाहती।'

यमराज वचन हार चुके थे। उन्होंने सत्यवान्के सूक्ष्म शरीरको पाशमुक्त करके सावित्रीको लौटा दिया। यह है मृत्युपर विजय स्थापित करनेवाली भारतीय नारीकी अप्रतिम सतीत्व-शक्ति।

सती अनसूया—श्रीमार्कण्डेयपुराणके सोलहवें अध्यायमें उल्लेख है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्।
भर्तुः शुश्रूषयैवैता लोकानिष्टाञ्जयन्ति हि॥

अर्थात् स्त्रियोंके लिये न अलग यज्ञ है, न अलग श्राद्ध है और न अलग व्रत-उपवास है। पतिकी सेवासे ही वे इच्छित लोकोंको प्राप्त करती हैं। इसके बादवाला श्लोक यों है—

पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी।
नारी सुखमवाप्नोति नार्या भर्ता हि दैवतम्॥

'पतिके प्रसन्न होनेसे ही स्त्री इहलोक और परलोक दोनों जगह सुख पाती है; क्योंकि पति ही स्त्रीका देवता

है ।' पतिव्रता देवियोंमें सती अनसूयाका बहुत ऊँचा स्थान है । वे अत्रि ऋषिकी परम पतिव्रता पत्नी थीं । उनके सम्बन्धमें बहुत-से लोकोत्तर चरित्रोंका विवरण आया है । पाठकोंको यह स्मरण होगा कि जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महारानी सीताके साथ वनवास कर रहे थे तो अनसूयाने ही सीताजीको पातिव्रतकी शिक्षा विस्तारके साथ दी थी । वहाँकी यह अमर चौपाई प्रत्येक हिंदू-ललनाका कण्ठहार बनी हुई है—

उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

सती अनसूयाके सम्बन्धमें एक और बड़ी रोचक कथा है । एक बार ब्रह्माणी, लक्ष्मी और गौरीमें परस्पर विवाद छिड़ा कि पतिव्रता कौन है ? जब उन्हें यह बताया गया कि अनसूया ही सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता हैं, तब परीक्षार्थ ब्रह्मा, विष्णु और शिवको अनसूयाके पास साग्रह भेजा गया । अनसूयाने अतिथियोंका प्रेमपूर्वक स्वागत किया । अत्रि ऋषि कहीं बाहर गये हुए थे । ब्रह्मा, विष्णु और महेशने अनसूयासे कहा कि वे तभी यहाँ अन्न ग्रहण करेंगे जब वह निर्वस्त्र होकर भोजन करायेंगी । अनसूया बड़े असमञ्जसमें पड़ीं; परंतु तुरंत ही उन्होंने भगवान्‌का स्मरण करते हुए कहा—'यदि मैंने अपने पतिके सिवा किसी पुरुषको नहीं जाना है तो ये तीनों देव बच्चे हो जायँ ।' उनका कहना था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों ही छोटे-छोटे शिशुओंके रूपमें हो गये ।

सती दमयन्ती—जूएमें सब कुछ हारकर नल दमयन्तीसहित वन-वनमें मारे-मारे फिरते हैं । नलके शरीरपर केवल एक ही वस्त्र है और दमयन्तीके शरीरपर भी एक ही वस्त्र है । बहुत दिनोंतक भूखे रहनेके बाद भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर नलने वनमें सोनेके समान पंखवाले कुछ पक्षियोंको देखा । उन्हें पकड़नेके लिये उनके पास जो एक वस्त्र था उसे फेंका । दुर्दैववश उस वस्त्रको लेकर वे पक्षी आकाशमें उड़ गये ।

दमयन्ती थकानसे चूर जमीनपर सो रही है । इसी बीच नल उसका आधा वस्त्र लेकर चल देते हैं ।

पतिको समीप न पाकर दमयन्ती पगली-सी बनी इधर-उधर खोज रही है कि एक भारी अजगर उसे काटनेके लिये दौड़ता है । इसी बीच एक व्याध आता है और तेज बाणसे उस सर्पके मुखको काट देता है; परंतु दमयन्तीके रूप-लावण्यपर मुग्ध होकर वह उससे प्रेमकी भीख माँगता है ।

पति और राज्यसे वञ्चित दमयन्ती उस दुष्टके भावको समझकर क्रोधमें भर जाती है और बड़े तीखे स्वरोंमें पुकारकर कहती है—

यद्यहं नैषधादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथायं पततां क्षुद्रो परासुर्मृगजीवनः ॥

'यदि मेरे मनमें नलके सिवा किसी अन्यका ध्यान न आता हो तो यह नीच व्याध प्राणरहित होकर यहीं गिर पड़े ।'

इतना कहते ही वह व्याध अग्निसे जले हुए पेड़की तरह पृथ्वीपर निर्जीव होकर गिर पड़ा ।

सती शाण्डिली—अत्यन्त प्राचीनकालमें कौशिक नामका एक अत्यन्त क्रोधी, निष्ठुर और कोढ़ी ब्राह्मण था, जिसकी पत्नी पतिव्रता और शिलवती थी । वह सुशीला भी अपने बीभत्स रूपवाले पतिको ही सर्वश्रेष्ठ और देवताके समान समझती थी । एक बार रातके समय वह अपने पतिको कंधेपर बैठाकर कहीं ले जा रही थी, रास्तेमें उसके पैरका धक्का लग जानेपर माण्डव्य ऋषिने शाप दे दिया कि उसे 'यह पुरुष सूर्य उगते ही मर जायगा ।' पतिव्रताने कहा—'अच्छा, यदि ऐसी बात है तो जबतक मैं नहीं कहूँगी तबतक सूर्य उदय

ही नहीं होगा ।' ऐसा ही हुआ । पतिव्रताके वचन कभी असत्य नहीं हो सकते । सूर्यदेवकी गति रुक गयी । सूर्य दस दिनोंतक नहीं उगे । इससे समस्त ब्रह्माण्डमें हलचल मच गयी । तब सब देवताओंने जाकर सती-शिरोमणि अत्रि-पत्नी अनसूयाको प्रसन्न किया । अनसूया शाण्डिलीके पास गयीं और उसको सूर्योदय न होनेसे होनेवाले दारुण विश्व-संतापकी बात कहकर सूर्योदय होने देनेके लिये यह कहकर राजी किया कि 'तुम्हारे पतिके प्राण-त्याग करते ही मैं अपने पातिव्रतसे उन्हें जीवित और स्वस्थ कर दूँगी ।' आधी रातको अर्घ्य उठाकर सूर्यका उपस्थान किया गया । पतिव्रतासे आज्ञा पाकर खिले हुए रक्तिम कमलकी तरह सूर्यका लाल-लाल विशाल मण्डल हिमालयकी चोटीपर उदय होनेके लिये उपस्थित हुआ । इसीके साथ पतिव्रता शाण्डिलीका पति कौशिक प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय अनसूयाने जो वचन कहे वे चिरस्मरणीय हैं—

यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् ।
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ॥
प्राप्नोतु जीवितं भार्यासहायः शरदां शतम् ।
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् ॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ।
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति ॥
यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवताद् द्विजः ॥

'यदि पतिके समान दूसरे पुरुषको मैंने कभी न देखा हो तो मेरे इस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो जाय । यह फिर युवा हो जाय और पत्नीसहित सौ वर्ष जिये । यदि पतिके समान और किसी देवताको मैं नहीं मानती तो इस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगरहित होकर जी जाय । यदि मैं सदा मन, वचन और कर्मसे पतिकी आराधनामें ही लगी रहती हूँ तो मेरी इस पति-भक्तिके प्रभावसे यह ब्राह्मण पुनः जीवित हो जाय ।'

ब्राह्मण रोगरहित और युवा होकर उठ खड़ा हुआ और अपनी प्रभासे अजर और अमर देवताकी तरह स्वगृहको प्रकाशमान करने लगा ।

रावण-सरीखे महायोद्धाको अपने तेजसे कँपा देना, यमराजको जीत कर पतिके सूक्ष्म शरीरको लौटा लाना, ब्रह्मा, विष्णु, महेशको अपने सतीत्वकी लीलासे ही बच्चे बना लेना, अपने सत्यके तेजसे ही पापी व्याधको भस्म कर डालना और सूर्यको उदय होनेसे रोक देना-जैसे लोकोत्तर कार्य भारतीय पतिव्रतधर्मपरायणा देवियोंके लिये ही सम्भव था । हाय ! आज नारी-शक्ति इसी पतिव्रतधर्मको भूलकर श्रीहत हो रही है और इसीमें उन्नति मानी जाती है । यह अपनी संस्कृतिसे विमुखताका परिणाम है आज, जो नारी-समाजके सच्चे उत्थानमें बाधक है । भारतीय नारीके लिये हमारी संस्कृति-मूलक आदर्श देवियोंके चरित्र ही अनुप्रेरक बनें—ऐसा संकल्पित प्रयास और जागृति आवश्यक है ।

आरत पुकार सुनि कबहूँ न धारे मौन

सुबरन शुद्ध सम काय कमनीय वारी, यक्ष-सुर-चारन-वधूटी रूप ध्यावैं जौन ।
सोहै प्रातकालिक दिवाकर-किरन-सम, तम टारि मेरो हिय उज्ज्वल बनावै भौन ॥
जय होय, जय होय मातु जनरंजनीकी, जाके वारवार सदा येई शब्द आवैं श्रौन ।
सोई देवि देवैंगी कृपाकरावलम्ब मोहि, आरत पुकार सुनि कबहूँ न धारे मौन ॥

—पं० —द्वारकाप्रसादजी शुक्ल, 'शंकर'

आत्म-शक्तिकी उपासना

(पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी)

संसारके सब पदार्थ दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं—जड़ और चेतन। जड़ पदार्थोंके अनन्त रूप हैं। चेतन-तत्त्व भी दो प्रकारका है—पहला जीव या प्रत्यक्-आत्मा, जो अल्पशक्ति, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न और प्रतिशरीर भिन्न है। संख्यामें यह अनन्त है। चेतनका दूसरा स्वरूप है—सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्, जो समस्त जड और चेतन-समुदायमें व्यापक है, सबका नियन्त्रण करता है और जिसे ब्रह्म, परमात्मा आदि शब्दोंसे अभिहित किया जाता है।

प्रत्येक पदार्थमें कुछ-न-कुछ शक्ति होती है। किसी भी शक्तिमें भलाई या बुराई स्वभावतः नहीं होती। उसके सदुपयोग या दुरुपयोगसे भलाई-बुराईका सम्बन्ध है। यदि किसी शक्तिका सदुपयोग किया गया, तो परिणाम भला देखकर लोग उसे प्रशस्य ठहरा देते हैं और यदि अज्ञान या प्रमादवश उसका दुरुपयोग हुआ, तो फिर भयंकर परिणाम देखकर उस शक्ति या तदाधार पदार्थकी ही लोग निन्दा करने लगते हैं।

संसारका प्रत्येक कण अपनी शक्ति रखता है। शक्तिके बिना कुछ है ही नहीं। यह और बात है कि हमें किसी शक्तिका ज्ञान न हो। जो लोग नहीं जानते कि जल तथा अग्नि आदि पदार्थोंमें क्या शक्ति है, वे उसका उपयोग भी क्या कर सकते हैं? जिनको जितना ज्ञान है, वे उतनी शक्तिका सम्पादन करके यशस्वी और कृतकार्य होते हैं। साधारणजन अपने साधारण ज्ञानसे अग्निद्वारा भोजन आदि पकानेका काम ले लेते हैं, किंतु जिनको सुदृढ अध्यवसायसे विशेष ज्ञान प्राप्त है, जो विज्ञानमें निष्णात हैं, उन्होंने अग्नि और जल आदि पदार्थोंमें अपरिमित शक्ति देख रेल-तार आदिका आविष्कार कर संसारको चकित कर दिया है।

आज पाश्चात्त्य देश प्राकृतिक शक्तिकी उपासनामें मग्न हैं। वे जल, अग्नि, वायु आदि पदार्थोंका विश्लेषण करके दुनियाको दंग कर रहे हैं। जब प्रकृतिमें इतनी शक्ति है, तब आत्मामें कितनी होगी? प्रकृति-निरीक्षण भलीभाँति करनेपर भी जिनकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती तथा जिन्हें शान्ति नहीं मिलती, वे फिर चेतनकी ओर मुड़ते हैं—चेतनाभिमुख होते हैं—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' चेतनका अनुसंधान करते हुए उसे अपना तथा अपने नियामकका स्वरूप ज्ञात होता है और उपासनासे शक्ति-सम्पादन होती है। प्राचीन भारतने अबसे बहुत पहले प्रकृतिके ये खेल खेलकर आत्म-चिन्तन किया था और इस दिशामें भी इतनी इति कर दी थी कि आजकलके अनुभवशून्य जन उसपर अविश्वास करके मजाक उड़ाते हैं।

भारतवर्षने प्राकृतिक शक्तिकी पूर्ण उपासना करके आध्यात्मिक शक्तिका जो चमत्कार दिखाया था, उसकी झलक हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है। संसारमें एकमात्र भारतने ही वैसी आध्यात्मिक शक्तिका सम्पादन किया था और अब वह भी उसे प्रायः बिल्कुल खोता जा रहा है। हजारों वर्षोंसे प्रकृतिवादी देशोंके संसर्गसे इसकी आध्यात्मिक शक्ति जाती रही है। बाहरवालोंको तो अभीतक वैसी आध्यात्मिकताका कभी अनुभव हुआ ही नहीं है और न उन्होंने ऐसी बातें ही सुनी हैं, तब वे हमारे ग्रन्थोंकी आध्यात्मिक शक्तिकी बातोंपर कैसे विश्वास करें?

सारांश यह कि आत्मामें जो शक्ति है, अन्तर्जगत्में जो विद्युत् है, उससे हम आज एकदम अपरिचित हैं। सामने उदाहरण भी प्रायः नजर नहीं आते। इसीलिये साधारण लोगोंकी बुद्धिमें वैसी बातें नहीं आतीं और फलतः देश आध्यात्मिकतासे दूर हटता जा रहा है।

जब विश्वास ही नहीं तो फिर उसके साधनमें प्रवृत्ति कैसी ? यह हमारे दुर्भाग्यकी बात है ।

जलमें विद्युत् है और सदा रहेगी; परंतु जो उसे समझे और उसकी प्राप्तिके लिये साधना करे, उसे वह सुलभ हो जायगी । फिर तो यन्त्रद्वारा प्रकट करके उसके स्वरूपसे वह संसारकी आँखें खोल देगा और सब मान जायँगे । यदि साधना न की जाय, यन्त्रादिका निर्माण करके उसके द्वारा उसे प्रत्यक्ष सिद्ध न किया जाय तो फिर केवल ज्ञान कुछ काम न देगा । ज्ञानकी सफलता कर्म और उपासनासे है ।

पहले तो आत्माका विवेक हो, फिर उपासना और कर्मकी साधनासे उसकी शक्तिका विकास किया जाय । साधन हमारे ग्रन्थोंमें लिखे हैं । साधक चाहिये । विश्वास साधकको उत्पन्न करता है । यदि हमें अपने पूर्वजोंकी बातोंमें विश्वास और धर्मग्रन्थोंमें श्रद्धा हो, तो अवश्य हम अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर लेंगे । फिर भी पाश्चात्त्य जडवादके संसर्गसे हममें जो दोष आ गये हैं, उनका दूर होना जरा कठिन है फिर भी, जो साधक विश्वासपूर्वक इधर झुकते हैं, वे स्पष्ट देखते हैं कि आध्यात्मिक शक्ति क्या वस्तु है और कैसी है ? वे फिर इसपर मुग्ध होकर समस्त संसारको तुच्छ समझ लेते हैं । आध्यात्मिक शक्ति क्या वस्तु है, यह अनुभवसे जाना जा सकता है । हमें उसीकी उपासनासे कल्याण मिलेगा ।

राष्ट्र-शक्ति

(स्व० पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०,डी० लिट्, भूतपूर्व कुलपति, जबलपुर विश्वविद्यालय)

विश्व चेतन-शक्तिकी सृष्टि है, इसलिये यह एक निश्चित लक्ष्यकी ओर गमन कर रहा है । ध्यान देनेपर इसकी सारी क्रियाओंमें एक ही उद्देश्य दिखलायी पड़ता है । वह है—जगत्की बाह्य विषमताओंकी तहमें अटूट समताकी धाराका प्रवाह । जिस प्रकार नदीमें बाहरसे बुदबुद, तरङ्ग, लहर और विभिन्न धाराएँ अलग-अलग गतिसे बहती हुई दिखलायी देती हैं, परंतु ये सब-की-सब अनन्त जलराशिकी गम्भीरतामें विराम लेती हैं, उसी प्रकार संसारमें रुचि-वैभिन्य, मतवैषम्य, विभिन्न स्वार्थ, द्वेष, कलह और युद्ध दृष्टिगोचर होते हैं, किंतु इन सबका अवसान विश्व-कल्याणकी चिन्तामें हो रहा है ।

हम इस विचित्र संगतिको संगीतके उदाहरणसे और स्पष्ट रीतिसे समझ सकते हैं । यह संसार एक ऐसा अद्भुत मधुर संगीत है, जिसे सब लोग अपने-अपने ढंगसे गाते हैं । इसके गानेमें कई प्रकारके स्वरोंका आरोह-अवरोह होता है, व्यक्तिगत लय और तान भी पृथक्-पृथक् होते हैं; परंतु इसका ध्रुव अपनेको कभी नहीं भूलने देता । वह बीच-बीचमें गायकके मुखसे गूँज उठता है और गानेके सम्पूर्ण अर्थको अपने साथ लेता हुआ अन्तिम उद्देश्यकी ओर खींचता ही जाता है । इस विश्व-गायनका ध्रुव इसकी मौलिक एकता है । यही सबका गम्य स्थान है । कुछ लोग जानते हुए और अधिकांश लोग न जानते हुए भी इसी ओर चल रहे हैं । इसी यात्रामें राष्ट्रका निर्माण एक आश्रय है । यह सामाजिक इच्छा-शक्तिके अद्यतन विकासकी चरम सीमा है । इसीमें मानव-समाज अपनी आकाङ्क्षाओंकी पूर्ति, आदर्शोंका कार्यान्वित होना और सार्वजनिक हितोंका समन्वय देखना चाहता है ।

राष्ट्र-शक्ति विश्वके मूलमें रहनेवाली चिच्छक्तिका बाह्य रूप है, जो विश्वके प्रसारके लिये अनेक चित्तोंमें क्रियमाण हो रही है । संस्कारवश अन्तःकरणोंके विभिन्न-होनेसे प्रक्रियामें भिन्नता आ जाती है । इसीलिये एकतामें अनेकता और समतामें विषमताका आभास होता है, जिसके कारण विभिन्न माँगों और हितोंकी उत्पत्ति होती

है और संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है; परंतु इन अन्तः-करणोंसे राग-द्वेषकी मलिनता जब रगड़से दूर हो जाती है, तब सबसे एक ही प्रोज्ज्वल प्रकाश निकलने लगता है। उजालेमें भटके हुए मनुष्य अपने केन्द्रीय प्रकाशका दर्शन और सार्वजनीन एकता तथा समतामें अपने कल्याणका अनुभव करते हैं। मनुष्य-जातिके विकासका सम्पूर्ण इतिहास इस सत्यकी रक्षाके द्वारा सार्वजनिक हितका इतिहास है।

लोक-तन्त्रमें सब लोग मिलकर प्रायः एक मुखिया अथवा नेता चुनते हैं और उसकी इच्छाशक्तिमें अपनी व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियोंका अन्तर्भाव कर देते हैं। यह गणमुख्य व्यक्ति अपने संघकी इच्छाशक्तिका प्रतिनिधि बन जाता है। इसको हम प्रारम्भिक संयत एकाधिकार कह सकते हैं, किंतु इसमें बिल्कुल अनियन्त्रित शासककी निरङ्कुशता नहीं रहती। जब कई झुंडोंकी एक जाति बनती है, तब एक मुखियासे काम नहीं चलता। इसलिये शासकोंका एक दल बन जाता है, जो संयुक्त शासन करते हैं। इसको अल्प-जनाधिकार कहा जा सकता है। इसमें जो विशेष महत्त्वाकाङ्क्षी होता है, वह दूसरोंकी शक्तिको आत्मसात् करके एकतन्त्रराज्य और फिर साम्राज्यकी स्थापना करता है। इस अवस्थामें एक व्यक्ति सारे राष्ट्रका प्रतिनिधि बन जाता है।

जबतक वह जनतामें लोकप्रिय होता है तबतक सम्पूर्ण राष्ट्रकी सहानुभूति उसके साथ रहती है; परंतु जब एकाधिकारके मदमें प्रजाकी व्यक्तिगत इच्छाशक्तिकी अवहेलना करता है, तब उसका विरोध प्रारम्भ हो जाता है और समाज अपनी सौंपी हुई इच्छाशक्तिको वापस लेनेका प्रयत्न करता है। इस प्रयासमें प्रजातन्त्रकी उत्पत्ति होती है। राष्ट्रिय शक्ति एक व्यक्तिके हाथसे निकलकर प्रजाके हाथमें आ जाती है। प्रजातन्त्र-प्रणालीमें राष्ट्रशक्तिके प्रकृत विकासके लिये सबसे अधिक अवसर होता है, किंतु यहाँ अराजकता और फिर निरङ्कुश शासन आ जाता है, यह चक्र चलता रहता है, परंतु राष्ट्रशक्ति अपनी प्रकृत अवस्थामें आनेके लिये सदा राजनीतिक वायुमण्डलको आन्दोलित करती रहती है। अब राष्ट्रशक्तिके बाह्य स्वरूपकी ओर आइये। राजनीतिज्ञोंने प्रायः इसको तीन भागोंमें विभक्त किया है। ये अङ्ग हैं भूमिशक्ति, जनशक्ति और संघटनशक्ति।

राष्ट्रकी स्थापनाके लिये एक निश्चित भूखण्डकी आवश्यकता होती है। भूमि अपने अन्तर्हित धातुओं और वनस्पतियोंसे प्रजाका पालन करती है। इसलिये उसपर बसनेवाली जनता उस भूखण्डपर ममता रखती है और उसपर अपना अधिकार समझती है। यह भूखण्ड अथवा देश प्रायः भौगोलिक सीमाओंसे बद्ध होता है, परंतु राष्ट्र कभी-कभी इनका उल्लङ्घन करके आगे भी बढ़ता है। देशकी परिस्थिति, उसका जलवायु और उपज—ये सब राष्ट्र-शक्तिको निर्धारित करते हैं।

जो भूमिके सम्पर्कमें रहकर उसको उपजाऊ बनाती है और उसकी उपजका उपभोग करती है वह सत्ता है जनशक्ति। राष्ट्रशक्तिका यह जङ्गम अङ्ग है। इसीके चालू होनेसे राष्ट्रका शरीर सजीव रहता है। संघटनशक्ति वह शक्ति है, जिसके द्वारा जनशक्तिका नियन्त्रण होता है और एकताकी वृद्धि होती है। इसके द्वारा मनुष्योंमें एक भाषा, एक आचार, एक सभ्यता और एक उद्देश्यकी उत्पत्ति होती है। राष्ट्रका प्रबन्ध भी इसी अङ्गके द्वारा होता है। शासक, कानूनविधायक, न्यायाधीश आदि अधिकारिवर्ग, सेना और कोषका विधान भी यही शक्ति करती है। यद्यपि ये अङ्ग बाहरसे पृथक्-पृथक् दिखलायी पड़ते हैं, परंतु वास्तवमें वे एक ही शक्तिके स्फुरण हैं। जिस प्रकार जीवाणु परिस्थितिविशेषमें अपनी विभिन्न

चेष्टाओं और व्यापारोंसे एक सेन्द्रिय पिण्डका रूप धारण करता है, उसी प्रकार राष्ट्र भी एक ही सामाजिक इच्छाशक्तिका सेन्द्रिय पिण्ड है। इसकी उत्पत्ति किसी एक व्यक्ति अथवा शासककी इच्छासे नहीं, किंतु एक गतिशील सार्वभौम शक्तिकी प्रक्रियासे होती है।

यह तो सामाजिक इच्छाशक्तिसे पिण्डराष्ट्रकी उत्पत्ति हुई; परंतु जिस प्रकार एक पिण्डमें स्थित जीवात्माको अपनी पूर्ण आत्मानुभूतिके लिये पिण्डसे संतोष नहीं होता और वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके रहस्य और उससे अपना सम्बन्ध जाननेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार आदर्श राष्ट्र भी अपनी वास्तविक उन्नतिके लिये अपने व्यक्तित्वको अपनी भौगोलिक सीमाओंके भीतर संकीर्ण नहीं बनाता। वह और आगे बढ़नेका प्रयत्न करता है। यहींसे अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध प्रारम्भ होता है। जो सम्बन्ध पहले संदेह, भय, कलह और युद्धके आधारपर होता है वह पीछे सात्त्विक सहयोग और विश्वकल्याणका रूप धारण करता है। सब राष्ट्र यह अनुभव करते हैं कि वे एक ही विश्वराष्ट्रके अन्तर्गत और उसीके नियमोंसे बद्ध हैं। अतः उनके हितों और आदर्शोंमें सामञ्जस्य, समन्वय और एकता होनी चाहिये। विश्वधात्री शक्तिके कार्यमें अधिकारलोलुप महत्त्वाकाङ्क्षियोंद्वारा बाधाएँ भी उपस्थित होती हैं, किंतु जिस प्रकार पर्वतीय नदीका वेग छोटे-छोटे बाँधोंसे नहीं रोका जा सकता, उसी प्रकार इस शक्तिका वेग व्यक्ति-विशेषसे नहीं रुक सकता। वह अपने उद्देश्यको सम्पादित करके ही रहेगी। राष्ट्रशक्ति अपने आदर्शरूपमें विश्वराष्ट्रका निर्माण करती है, जिसकी छत्रच्छायामें संसार निर्भय, शान्त और सुखी रहता है।

राष्ट्रशक्तिकी कलात्मक व्यञ्जना 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूपमें होती है। वह राष्ट्रमें सत्यका बोध, शिवका अनुभव और सुन्दरकी सृष्टि करती है। राष्ट्रको केवल राजनीतिसे सीमित समझना भूल है। हम राष्ट्रिय जीवनको अलग-अलग विभागोंमें नहीं बाँट सकते, वह सम्पूर्ण जीवनको ढक लेता है। जिस भावके स्पन्दनसे राष्ट्रकी हृत्तन्त्री बज उठे वह राष्ट्रिय भाव है। सत्यके बोधमें राष्ट्र संसारके पदार्थोंका वास्तविक रहस्य और व्यक्तियोंके आदर्श सम्बन्ध जाननेका प्रयत्न करता है। इससे विज्ञान, दर्शन आदि अनेक शास्त्रोंका जन्म होता है। शिवके अनुभवमें राष्ट्रशक्ति प्रजाको कल्याणमार्गपर ले चलती है। उच्च आदर्श और तदनुकूल जीवन शिवके अनुभवसे ही सम्भव हो सकता है। सुन्दरकी सृष्टि कर राष्ट्र आनन्द उठाता है। कलाओंका प्रसव इस सुन्दरके गर्भसे होता है। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकलादि अनेक ललित कलाओंका समावेश राष्ट्रशक्तिके सुन्दर रूपमें हो सकता है। सत्य, शिव और सुन्दरकी वृद्धि करना राष्ट्रशक्तिका मुख्य कार्य है। उसका चरम लक्ष्य इन्हींका पूर्णतया विकास करना है।

राष्ट्रकी शक्तिके रूपमें कल्पना नयी नहीं है। बहुत प्राचीन समयसे मनुष्यने अपनी जन्मभूमिमें शक्तिका अनुभव किया है। माता शिशुको जन्म देकर दिव्य प्रेमसे उसका लालन-पालन करती है। मनुष्य इसी क्रियाको एक लम्बे पैमानेपर अपने देशमें देखता है। इसीलिये जन्मभूमिको मातृभूमिकी उपाधि दी गयी है। मातृशक्तिके अतिरिक्त वह रक्षक शक्ति भी है। भारतमाता अथवा भारतशक्ति इसी शक्तिका अवतार है। इसमें प्रेम और शक्ति दोनों मिले हुए हैं। पाश्चात्य देशोंमें भी राष्ट्रको शक्ति (Mother Power) कहते हैं और जन्मभूमिको पितृदेश (Father land) कहा जाता है। जिस प्रकार जन्म देनेवाली माता हमारी श्रद्धा, प्रेम और भक्तिकी भाजन है, उसी प्रकार हमारी मातृभूमि और उसका शक्तिमय स्वरूप राष्ट्रशक्ति भी है।

कादि और हादि विद्याओंका स्वरूप

कादि, हादि (एवं सादि, कहादि) विद्याओंका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। ऋग्वेदीय 'बह्वृचोपनिषद्' में कहा गया है कि एकमात्र देवी ही सृष्टिके पूर्व थीं। उन्होंने ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि की। ये 'कामकला' नामसे विख्यात हैं। ये ही 'शृङ्गारकला' कहलाती हैं। इन्हींसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रादुर्भूत हुए हैं। ये ही अपरा शक्ति हैं और ये ही शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या कहलाती हैं। ये ही रहस्यरूपा हैं। ये ही प्रणववाच्य अक्षरतत्त्व हैं।

शाक्त-साधनोंमें मन्त्र प्रधान साधन माना जाता है। मन्त्रकी वाचकशक्ति और विमर्शशक्ति ही शक्तिका मूलरूप है। मन्त्रकी वाचकशक्ति वाच्य देवताको प्रकाशित करती है और यही है शाक्त-साधनाका प्रयोजन। वाचक मन्त्र जब वाच्य देवताको प्रकट करता है, तब वह 'विद्या' नाम धारण करता है। कहा भी है—'विद्या शरीरवत्ता मन्त्ररहस्यम्।' अर्थात् विद्यामय शरीरयुक्त होना ही मन्त्रका रहस्य है।

तान्त्रिक, मीमांसक, वैयाकरण और योगी शब्द और अर्थके बीच प्रकाश-प्रकाशक-सम्बन्ध मानते हैं। तान्त्रिक-सम्प्रदायानुसार देवताका शरीर बीजमेंसे अर्थात् बीजाक्षरोंमेंसे प्रकट होता है तथा परदेवता अर्थात् परशिव-का शक्तिमय स्वरूप परब्रह्म या नादब्रह्मका आश्रय लेकर साधकके चित्तमें प्रकट होता है। साधकेच्छित परिणाम इसी प्रकटीकरणका साध्य है।

शाक्त बीजोंमेंसे जिन-जिन मन्त्रोंकी प्राप्तियाँ उदयके क्रमके अनुसार अनुभवी उपासकोंको हुई हैं, उन्हींको तन्त्रशास्त्रमें 'दस महाविद्या' कहते हैं। इन्हीं दसकी रचना-व्यवस्था पुनः दो कुलोंमें की जाती है—कालीकुल और श्रीकुल। अतएव शाक्त-सम्प्रदायकी दृष्टिसे 'श्रीयन्त्र'के दो प्रकार हैं—१–कादि विद्यानुसार और २–हादि विद्यानुसार। एक तृतीय प्रकार भी है जो 'कहादि' विद्या कहा जाता है (जिसकी योजना पीछेसे की गयी है)। 'कादि' विद्याके महामन्त्रका प्रारम्भ 'क'कारसे होता है और 'हादि'का 'ह'कारसे। दोनों विद्याओंके स्वरूप क्रमशः इस प्रकार हैं।

कादि-विद्याका महामन्त्र है—'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं श्रीं।'

हादि-विद्याका महामन्त्र है—'ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं (श्रीं)।'

कादि-विद्याके उपासक अगस्त्य ऋषि हैं और हादि-विद्याकी उपासिका हैं अगस्त्य मुनिकी पत्नी लोपामुद्रा। तान्त्रिक आगमोंमें 'काम' ही परशिवका नाम माना गया है। कादि-विद्याके प्रति श्रद्धान्वित होनेवाले प्रथम आचार्य हैं—परमशिव, दुर्वासा, हयग्रीव, (विष्णु) और अगस्त्य। कादि-विद्या मुख्य है और हादि-विद्या गौण। अतएव ब्रह्माण्ड-पुराणान्तर्गत 'ललितासहस्रनाम'की उपोद्घाताख्य प्रथमा कला (श्लोक १७)में कहा गया है—

> तन्त्रेषु ललितादेव्यास्तेषु मुख्यमिदं मुने।
> श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा॥

प्रस्तुत श्लोकपर तान्त्रिकप्रवर श्रीभास्करराायका भाष्य द्रष्टव्य है। ('शक्तिसङ्गमतन्त्र', षष्ठ पटल, श्लोक १२५–२५में) कादि और हादि विद्या-भेदोंके विषयमें कहा है—

> सर्वव्यापकरूपं च शक्तिज्ञानं महेश्वरि।
> परात्परात् परं देवि तच्च देवि त्रिधा मतम्॥
> काद्यं हाद्यं महेशानि काद्यं कालीगतं भवेत्।
> हाद्यं श्रीत्रिपुराख्यं च कहाख्यं तारिणीमतम्॥

अर्थात् यहाँ 'काद्य'को कालीमत, 'हाद्य'को त्रिपुरा-मत और 'कहाद्य'को तारिणीमत कहा गया है।

शक्तिपीठ

शक्तिपीठ-रहस्य

(पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्त श्रीस्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

पौराणिक कथा है कि दक्षके यज्ञमें शिवका निमन्त्रण न होनेसे उनका अपमान जानकर सतीने उस देहको योगबलसे त्याग दिया और हिमवत्पुत्री पार्वतीके रूपमें शिवपत्नी होनेका निश्चय किया। समाचार विदित होनेपर शिवजीको बड़ा क्षोभ और मोह हुआ। वे दक्षयज्ञको नष्ट करके सतीके शवको लेकर घूमते रहे। सम्पूर्ण देवताओंने या सर्वदेवमय विष्णुने शिवके मोहकी शान्ति एवं साधकोंकी सिद्धि आदि कल्याणके लिये शवके भिन्न-भिन्न अङ्गोंको भिन्न-भिन्न स्थलोंमें गिरा दिया, वे ही ५१ पीठ हुए। ज्ञातव्य है कि योगिनी-हृदय एवं ज्ञानार्णवके अनुसार ऊर्ध्वभागके अङ्ग जहाँ गिरे वहाँ वैदिक एवं दक्षिणमार्गकी और हृदयसे निम्न भागके अङ्गोंके पतनस्थलोंमें वाममार्गकी सिद्धि होती है। सतीके विभिन्न अङ्ग कहाँ-कहाँ गिरे और वहाँ कौन-कौनसे पीठ बने, निम्नलिखित हैं।

१—सतीकी योनिका जहाँ पात हुआ, वहाँ कामरूप नामक पीठ हुआ, वह 'अ'कारका उत्पत्तिस्थान एवं श्रीविद्यासे अधिष्ठित है। यहाँ कौलशास्त्रानुसार अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। लोमसे उत्पन्न इसके 'वंश' नामक दो उपपीठ हैं, जहाँ शाबर-मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। २—स्तनोंके पतनस्थलमें काशिकापीठ हुआ और वहाँसे 'आ'कार उत्पन्न हुआ। वहाँ देहत्याग करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। सतीके स्तनोंसे दो धाराएँ निकलीं, वे ही असी और वरणा नदी हुईं। असीके तीरपर 'दक्षिण सारनाथ' एवं वरणाके उत्तरमें 'उत्तर सारनाथ' उपपीठ है। वहाँ क्रमशः दक्षिण एवं उत्तरमार्गके मन्त्रों-की सिद्धि होती है।

३—गुह्यभाग जहाँ पतित हुआ, वहाँ नैपालपीठ हुआ। वहाँसे 'इ'कारकी उत्पत्ति हुई। वह पीठ वाम-मार्गका मूलस्थान है। वहाँ ५६ लाख भैरव-भैरवी, २ हजार शक्तियाँ, ३ सौ पीठ एवं १४ श्मशान संनिहित हैं। वहाँ चार पीठ दक्षिणमार्गके सिद्धिदायक हैं। उनमेंसे भी चारमें वैदिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। नैपालसे पूर्वमें मलका पतन हुआ, अतः वहाँ किरातोंका निवास है। वहाँ ३० हजार देवयोनियोंका निवास है।

४—वामनेत्रका पतनस्थान रौद्र पर्वत है, वह महत्पीठ हुआ, वहाँसे 'ई'कारकी उत्पत्ति हुई। वामाचारसे वहाँ मन्त्र-सिद्धि होकर देवताका दर्शन होता है। ५—वामकर्णके पतनस्थानमें काश्मीरपीठ हुआ, वह 'उ'कारका उत्पत्तिस्थान है। वहाँ सर्वविध मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। वहाँ अनेक अद्भुत तीर्थ हैं, किंतु कलिमें सब म्लेच्छोंद्वारा आवृत कर दिये गये। ६—दक्षिणकर्णके पतनस्थलमें कान्यकुब्जपीठ हुआ, वहाँ 'ऊ'कारकी उत्पत्ति हुई। गङ्गा-यमुनाके मध्य 'अन्तर्वेदी' नामक पवित्र स्थलमें ब्रह्मादि देवोंने अपने-अपने तीर्थोंका निर्माण किया। वहाँ वैदिक मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। कर्णके मलके पतनस्थानमें यमुनातटपर इन्द्रप्रस्थ नामक उपपीठ हुआ, उसके प्रभावसे विस्मृत वेद ब्रह्माको पुनः उपलब्ध हुए।

७—नासिकाके पतनस्थानमें पूर्णगिरिपीठ है, वह 'ऋ'कारका उत्पत्तिस्थल है। वहाँ योगसिद्धि होती है और मन्त्राधिष्ठातृदेव प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। ८—वाम-गण्डस्थलकी पतनभूमिपर अर्बुदाचलपीठ हुआ, वहाँ 'ॠ'कारका प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ अम्बिका नामकी

शक्ति है तथा वाममार्गकी सिद्धि होती है। दक्षिणमार्गमें यहाँ विघ्न होते हैं। ९—दक्षिण गण्डस्थलके पतनस्थानमें आम्रातकेश्वरपीठ हुआ तथा 'ऌ'कारकी उत्पत्ति हुई। वह धनदादि यक्षिणियोंका निवासस्थान है। १०—नखोंके निपतन-स्थलमें एकाम्रपीठ हुआ तथा 'ॡ'कार की उत्पत्ति हुई। वह पीठ विद्याप्रदायक है। ११—त्रिवलिके पतनस्थलमें त्रिस्रोतपीठ हुआ और वहाँ 'ए'कारका जन्म हुआ। उसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें वस्त्रके तीन खण्ड गिरे, वे तीन उपपीठ हुए। गृहस्थ द्विजको पौष्टिक मन्त्रोंकी सिद्धि वहाँ होती है। १२—नाभिके पतनस्थलमें कामकोटिपीठ और वहाँ 'ऐ'कारका प्रादुर्भाव हुआ। समस्त काममन्त्रोंकी सिद्धि वहाँ होती है। उसकी चारों दिशाओंमें चार उपपीठ हैं, जहाँ अप्सराएँ निवास करती हैं। १३—अङ्गुलियोंके पतनस्थल हिमालयपर्वतपर कैलासपीठ तथा 'ओ'कारका प्राकट्य हुआ। अङ्गुलियाँ ही लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठित हुईं। वहाँ करमालासे मन्त्रजप करनेपर तत्क्षण सिद्धि होती है।

१४—दन्तोंके पतनस्थलमें भृगुपीठ और 'औ'कारका प्रादुर्भाव हुआ। वैदिकादि मन्त्र वहाँ सिद्ध होते हैं। १५—दक्षिण करतलके पतनस्थानमें केदारपीठ हुआ। वहाँ 'अं' की उत्पत्ति हुई। उसके दक्षिणमें कङ्कणके पतनस्थानमें अगस्त्याश्रम नामक सिद्ध उपपीठ हुआ और उसके पश्चिममें मुद्रिकाके पतनस्थलमें इन्द्राक्षी उपपीठ हुआ। उसके पश्चिममें वलयके पतनस्थानमें रेवती-तटपर राजराजेश्वरी उपपीठ हुआ। १६—वामगण्डकी निपात-भूमिपर चन्द्रपुरपीठ हुआ तथा 'अः' की उत्पत्ति हुई। सभी मन्त्र वहाँ सिद्ध होते हैं।

१७—जहाँ मस्तकका पतन हुआ, वहाँ 'श्रीपीठ' हुआ तथा 'क'कारका प्रादुर्भाव हुआ। कलिमें पापी जीवोंका वहाँ पहुँचना दुर्लभ है। उसके पूर्वमें कर्णा-भरणके पतनसे उपपीठ हुआ, जहाँ ब्रह्मविद्या-प्रकाशिका ब्राह्मी शक्तिका निवास है। उससे अग्निकोणमें कर्णाधा-भरणके पतनसे दूसरा उपपीठ हुआ, जहाँ मुखशुद्धिकरी माहेश्वरी शक्ति है। दक्षिणमें पत्रवल्लीकी पातभूमिमें कौमारीशक्तियुक्त तीसरा उपपीठ हुआ। नैर्ऋत्यमें कण्ठ-मालके निपातस्थलमें ऐन्द्रजालविद्या-सिद्धिप्रदवैष्णवी-शक्तिसमन्वित चौथा उपपीठ हुआ। पश्चिममें नासा-मौक्तिकके पतनस्थानमें वाराही-शक्त्यधिष्ठित पाँचवाँ उपपीठ हुआ। वायुकोणमें मस्तकाभरणके पतनस्थानमें चामुण्डा-शक्तियुक्त क्षुद्रदेवता-सिद्धिकर छठा उपपीठ हुआ और ईशानमें केशाभरणके पतनसे महालक्ष्मीद्वारा अधिष्ठित सातवाँ उपपीठ हुआ। १८—उसके ऊपरमें कञ्चुकीकी पतनभूमिमें एक और पीठ हुआ, जो ज्योतिर्मन्त्रप्रकाशक एवं ज्योतिष्मतीद्वारा अधिष्ठित है। वहाँ 'ख'कारका प्रादुर्भाव हुआ। वह पीठ नर्मदाद्वारा अधिष्ठित है, वहाँ तप करनेवाले महर्षि जीवन्मुक्त हो गये।

१९—वक्षःस्थलके पातस्थलमें एक पीठ और 'ग'कार की उत्पत्ति हुई। अग्निने वहाँ तपस्या की और देवमुखत्वको प्राप्त होकर ज्वालामुखीसंज्ञक उपपीठमें स्थित हुए। २०—वामस्कन्धके पतनस्थानमें मालवपीठ हुआ, वहाँ 'घ'कारकी उत्पत्ति हुई। गन्धर्वोंने राग-ज्ञानके लिये तपस्या कर वहाँ सिद्धि पायी। २१—दक्षिण-कक्षका जहाँ पात हुआ, वहाँ कुलान्तक पीठ हुआ एवं 'ङ'कारकी उत्पत्ति हुई। विद्वेषण, उच्चाटन, मारणके प्रयोग वहाँ सिद्ध होते हैं। २२—जहाँ वामकक्षका पतन हुआ, वहाँ कोट्टकपीठ हुआ और 'च'कारका प्राकट्य हुआ। वहाँ राक्षसोंने सिद्धि प्राप्त की है। २३—जठरदेशके पतनस्थलमें गोकर्णपीठ हुआ तथा 'छ'कारकी उत्पत्ति हुई। २४—त्रिवलियोंमेंसे जहाँ प्रथम वलिका निपात हुआ, वहाँ मातुरेश्वरपीठ होकर 'जकार'की उत्पत्ति
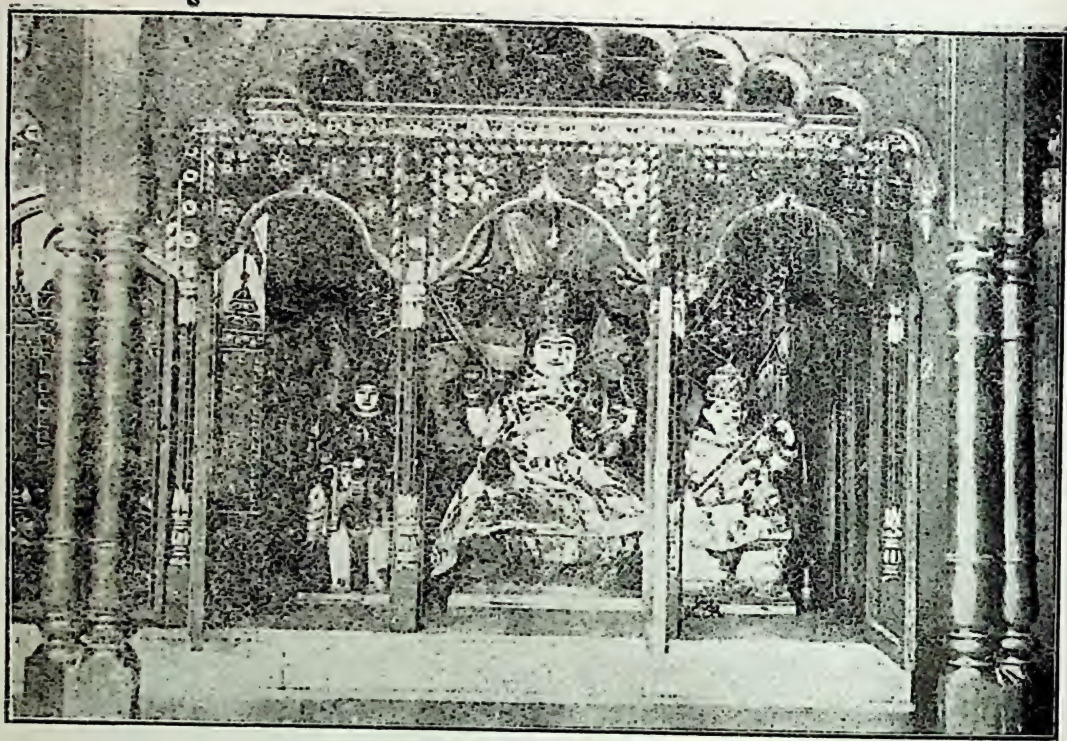
श्रीअन्नपूर्णाजी (अन्नपूर्णा-मन्दिर), काशी
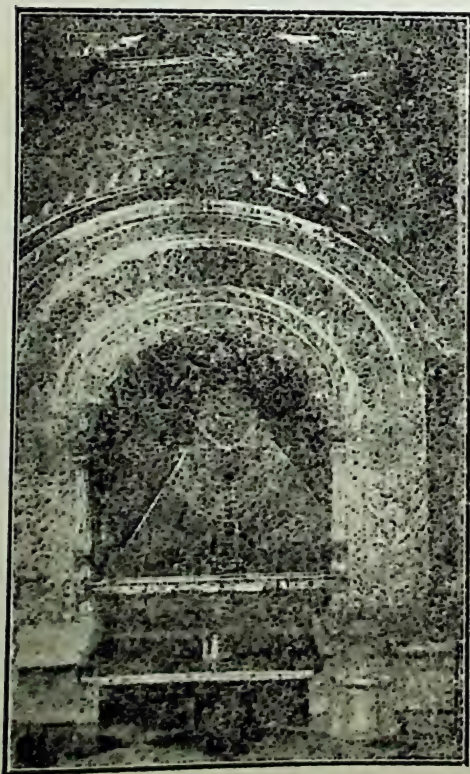
श्रीदुर्गाजी, काशी (पृष्ठ-सं० ३८२)
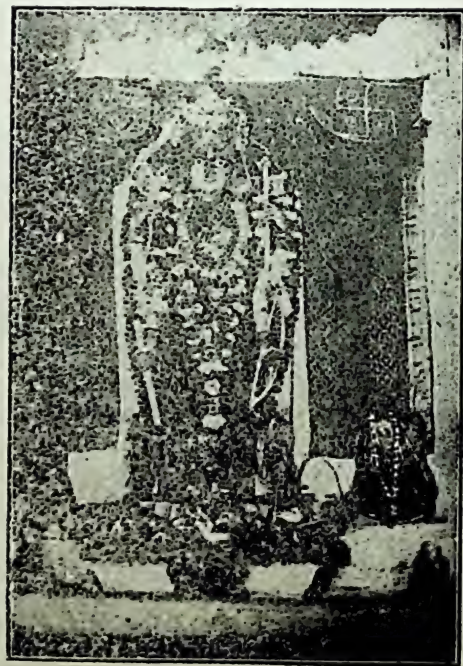
श्रीराजराजेश्वरी, ललिताघाट, काशी
(पृष्ठ-सं० ३८४)
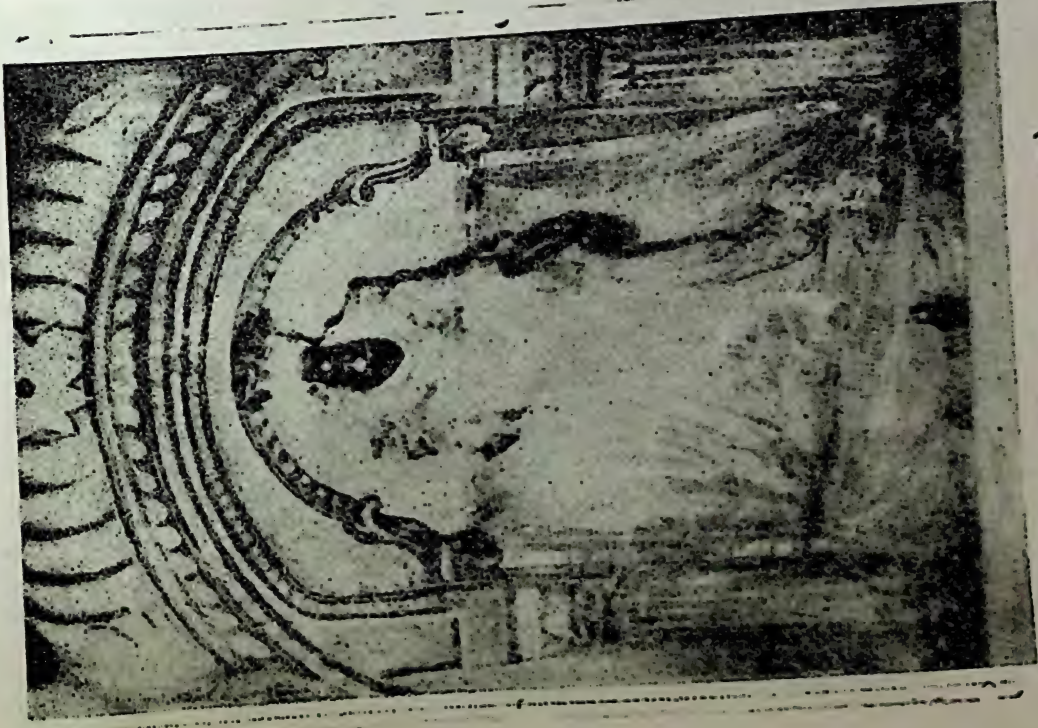
श्रीविशालाक्षीदेवी, काशी (पृष्ठ-सं० ३८३)
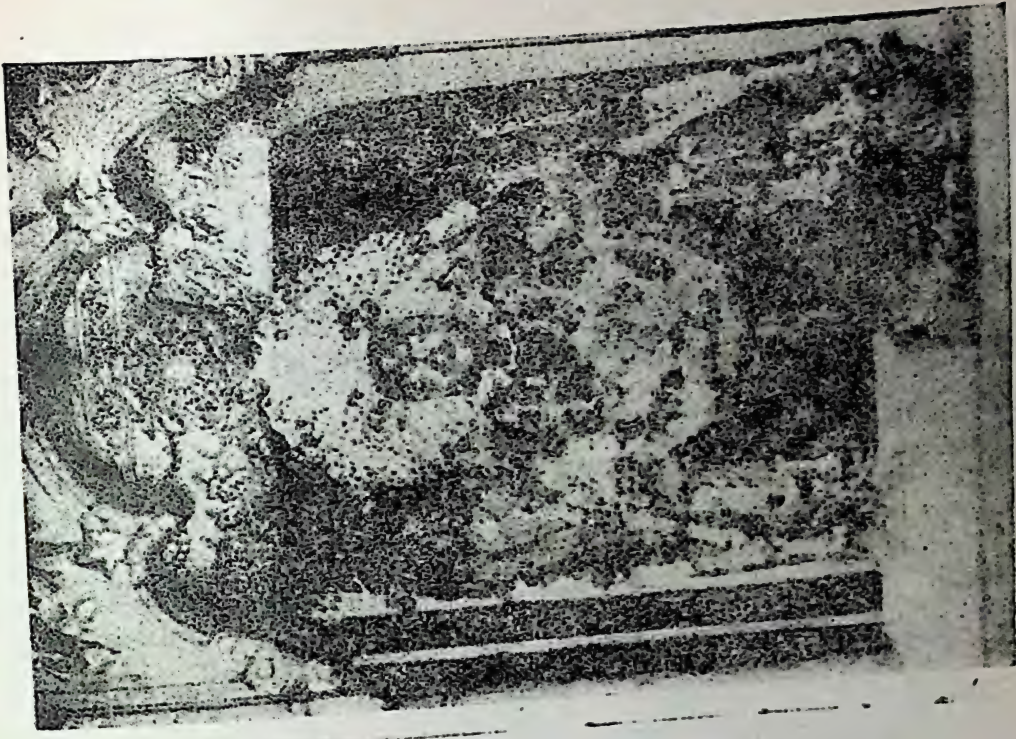
श्रीसंकटादेवी (महागौरी) काशी (पृष्ठ-सं० ३८५)
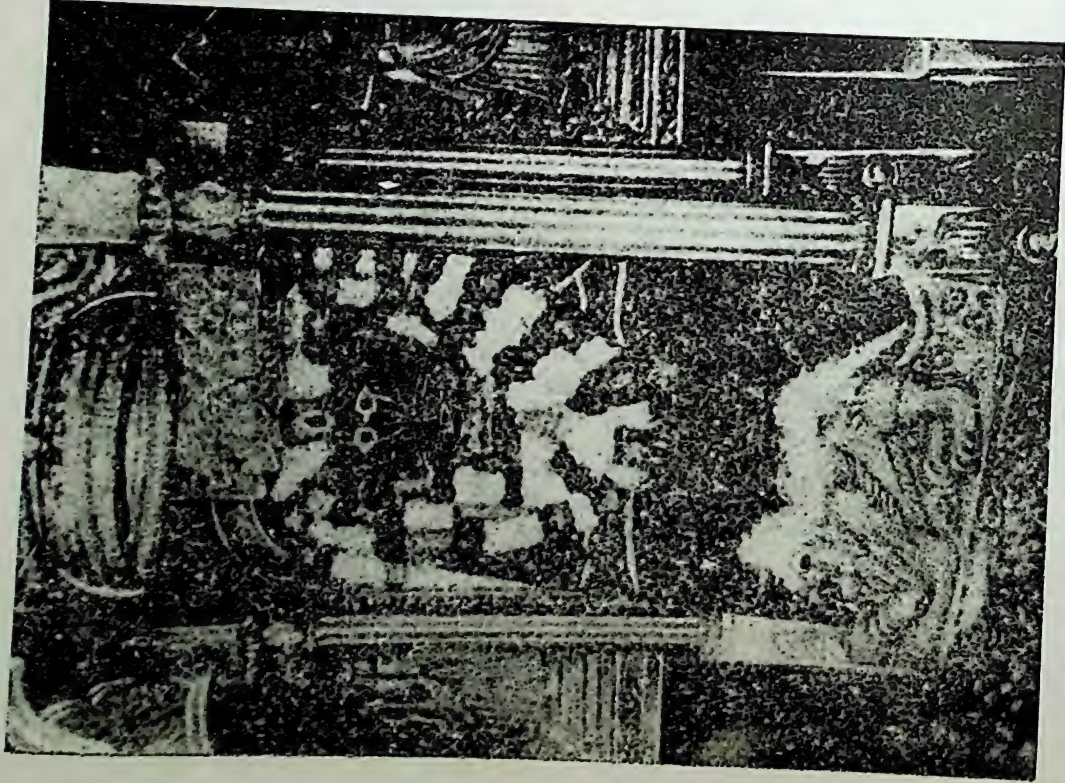
श्रीविन्ध्यवासिनीदेवी, विन्ध्याचल (पृष्ठ-सं० ३७९)

महाकाली (कालीखोह), विन्ध्याचल (पृष्ठ-सं० ३८१)
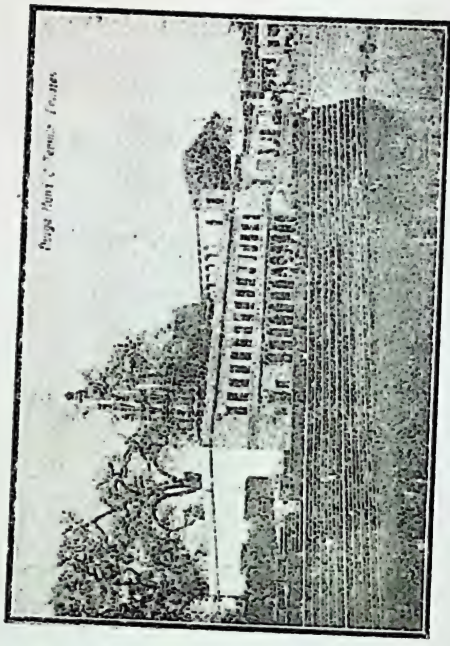
श्रीदुर्गाकुण्ड, काशी (वाराणसी) (पृष्ठ-सं० ३८२)

श्रीगणेश-जननी (पार्वती-गौरी), काशी
(पृष्ठ-सं० ३८४)

श्रीदसभुजा-दुर्गा (अम्बिका-गौरी), काशी (पृष्ठ-सं० ३८४)

श्रीराधिका (प्राचीन) मन्दिर, बरसाना (मथुरा) (पृष्ठ-सं० ३९०)

श्रीकृष्णकाली (पृष्ठ-सं० ३८९)
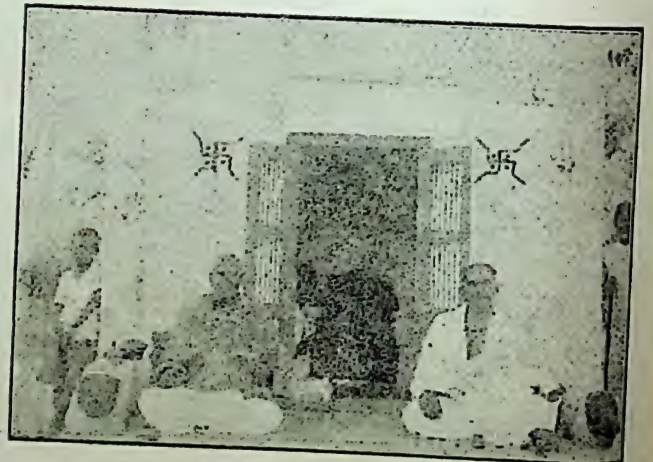
श्रीकंकालीदेवी, मथुरा
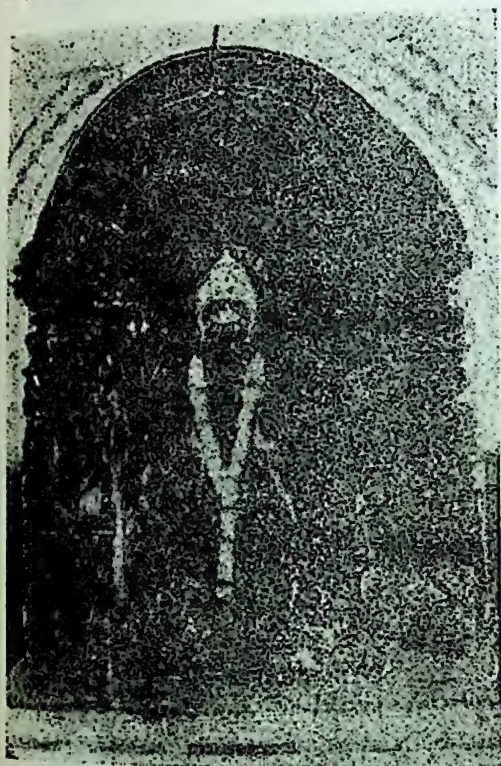
श्रीदधिमथीदेवी, अजमेर (पृष्ठ-सं० ४१०)

श्रीत्रिपुरसुन्दरीदेवी, उमराई (बाँसवाड़ा) (पृष्ठ-सं० ४०८)
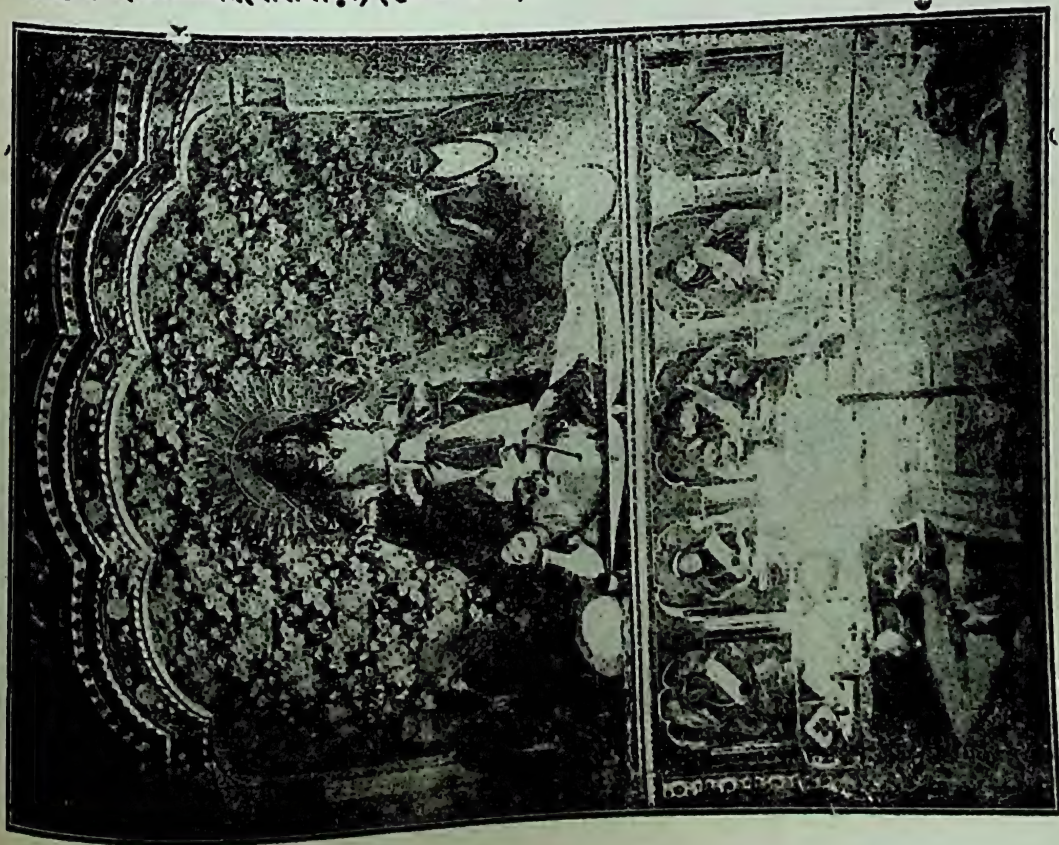
श्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्या, बाँगरमऊ (उत्तर प्रदेश) (पृष्ठ-सं० ३८७)
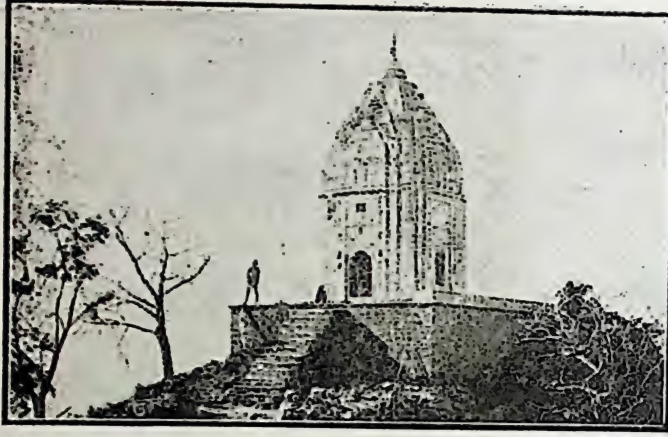
श्रीचण्डीदेवी, हरिद्वार (पृष्ठ-सं० ३९२)
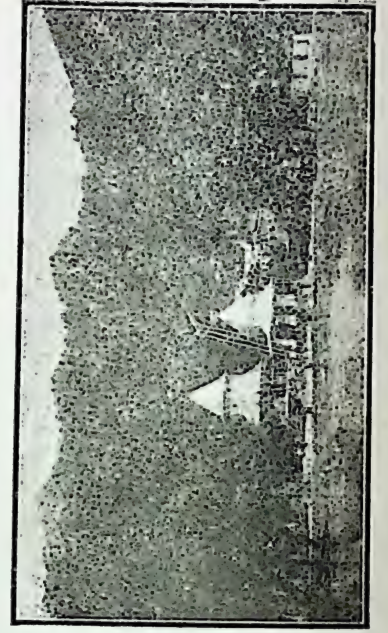
श्रीनैनादेवी-मन्दिर, नैनीताल

श्रीपूर्णागिरिपीठ, कुमाऊँ

श्रीपार्वती-पीठ (सतीमन्दिर), कनखल

हुई, वहाँ शैवमन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं। २५—अपर वलिके पतनस्थानमें अट्टहासपीठ हुआ तथा 'झ'कारका प्रादुर्भाव हुआ, वहाँ गणेश-मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। २६—तीसरी वलिका जहाँ पतन हुआ, वहाँ विरजपीठ हुआ और 'ञ'कारकी उत्पत्ति हुई। यह पीठ विष्णु-मन्त्रोंके लिये विशेष सिद्धिप्रदायक है। २७—जहाँ वस्तिका पात हुआ, वहाँ राजगृहपीठ हुआ तथा 'ट'कारकी उत्पत्ति हुई। नीचे क्षुद्रघण्टिकाके पतन-स्थलमें घण्टिका नामक उपपीठ हुआ, वहाँ ऐन्द्रजालिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। राजगृहमें वेदार्थज्ञानकी प्राप्ति होती है।

२८. नितम्बके पतनस्थलमें महापथपीठ हुआ तथा 'ठ'कारकी उत्पत्ति हुई। जातिदुष्ट ब्राह्मणोंने वहाँ शरीर अर्पित किया और दूसरे जन्ममें कलियुगमें देहसौख्यदायक वेदमार्ग-प्रलुम्पक अघोरादि मार्गको चलाया। २९—जहाँ जघनका पात हुआ, वहाँ कौलगिरि-पीठ हुआ और 'ड'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ वन-देवताओंके मन्त्रोंकी सिद्धि शीघ्र होती है। ३०—दक्षिण ऊरुके पतनस्थलमें एलापुरपीठ हुआ तथा 'ढकार'का प्रादुर्भाव हुआ।

३१—वाम ऊरुके पतनस्थानमें महाकालेश्वरपीठ हुआ तथा 'ण'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ आयुवृद्धिकारक मृत्युञ्जयादि मन्त्र सिद्ध होते हैं। ३२—दक्षिण जानुके पतनस्थानमें जयन्तीपीठ हुआ तथा 'त'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ धनुर्वेदकी सिद्धि अवश्य होती है। ३३—वाम-जानु जहाँ पतित हुआ, वहाँ उज्जयिनीपीठ हुआ तथा 'थ'कार प्रकट हुआ, वहाँ कवचमन्त्रोंकी सिद्धि होकर रक्षण होता है। अतः उसका नाम 'अवन्ती' है। ३४—दक्षिण जङ्घाके पतनस्थानमें योगिनीपीठ हुआ तथा 'द'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ कौलिक मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। ३५—वामजङ्घाकी पतनभूमिपर क्षीरिकापीठ हुआ तथा 'ध'कारका प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ वैतालिक एवं शावर मन्त्र सिद्ध होते हैं। ३६—दक्षिण गुल्फके पतनस्थानमें हस्तिनापुरपीठ हुआ तथा 'न'कारकी उत्पत्ति हुई। वहीं नूपुरका पतन होनेसे नूपुरार्णवसंज्ञक उपपीठ हुआ, वहाँ सूर्यमन्त्रोंकी सिद्धि होती है

३७—वामगुल्फके पतनस्थलमें उड्डीशपीठ हुआ तथा 'प'कारका प्रादुर्भाव हुआ। उड्डीशाख्य महातन्त्र वहाँ सिद्ध होता है। जहाँ दूसरे नूपुरका पतन हुआ, वहाँ डामर उपपीठ हुआ। ३८—देह-रसके पतन-स्थानमें प्रयागपीठ हुआ तथा 'फ'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँकी मृत्तिका श्वेतवर्णकी दृष्टिगोचर होती है। वहाँ अन्यान्य अस्थियोंका पतन होनेसे अनेक उपपीठोंका प्रादुर्भाव हुआ। गङ्गाके पूर्वमें वगला-उपपीठ एवं उत्तरमें चामुण्डादि उपपीठ, गङ्गा-यमुनाके मध्य राजराजेश्वरी-संज्ञक तथा यमुनाके दक्षिण तटपर भुवनेशी नामक उपपीठ हुए। इसीलिये प्रयाग 'तीर्थराज' एवं 'पीठराज' कहा गया है।

३९—दक्षिण पृष्णिके पतनस्थानमें षष्ठीशपीठ हुआ एवं वहाँ 'ब'कारका प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ पादुका-मन्त्रकी सिद्धि होती है। ४०—वामपृष्णिका जहाँ पात हुआ, वहाँ मायापुरपीठ हुआ तथा 'भ'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ समस्त मायाओंकी सिद्धि होती है। ४१—रक्तके पतनस्थानमें मलयपीठ हुआ एवं 'म'कारकी उत्पत्ति हुई। रक्ताम्बरादिक बौद्धोंके मन्त्र यहाँ सिद्ध होते हैं। ४२—पित्तकी पतनभूमिपर श्रीशैलपीठ हुआ तथा 'य'कारका प्रादुर्भाव हुआ। विशेषतः वैष्णवमन्त्र यहाँ सिद्ध होते है। ४३—मेदके पतनस्थानमें हिमालयपर मेरुपीठ हुआ एवं 'र'कारकी उत्पत्ति हुई। यहाँ स्वर्णाकर्षण भैरवकी सिद्धि होती है। ४४—जहाँ जिह्वाग्रका पतन हुआ, वहाँ गिरिपीठ हुआ तथा 'ल'कारकी उत्पत्ति हुई। यहाँ जप करनेसे वाक्सिद्धि होती है।

४५—मज्जाके पतनस्थानमें माहेन्द्रपीठ हुआ, वह 'व'कारके प्रादुर्भावका स्थान है। यहाँ शाक्तमन्त्रोंके जपसे

सिद्धि अवश्य होती है। ४६—दक्षिण अङ्गुष्ठके पातस्थलमें वामनपीठ हुआ एवं 'श'कारकी उत्पत्ति हुई। यहाँ समस्त मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। ४७—वामाङ्गुष्ठके निपतनस्थानमें हिरण्यपुरपीठ हुआ तथा 'ष'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ वाममार्गसे सिद्धि-लाभ होता है। ४८—रुचि (शोभा)-के पतनस्थानमें महालक्ष्मीपीठ हुआ एवं 'स'कारका प्राकट्य हुआ। यहाँ सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ४९—धमनीके पतनस्थलमें अत्रिपीठ हुआ तथा 'ह'कारकी उत्पत्ति हुई। वहाँ यावत् सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ५०—छायाके सम्पात-स्थानमें छायापीठ हुआ एवं 'ळ'कारकी उत्पत्ति हुई। ५१—केशपाशके पतनस्थलमें क्षत्रपीठका प्रादुर्भाव हुआ, यहीं 'क्ष'कारका उद्गम हुआ। यहाँ समस्त सिद्धियाँ शीघ्रतापूर्वक उपलब्ध होती हैं।

वर्णमालाएँ

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। क, ख, ग, घ, ङ। च, छ, ज, झ, ञ। ट, ठ, ड, ढ, ण। त, थ, द, ध, न। प, फ, ब, भ, म। य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष—यही ५१ अक्षरकी वर्णमाला है। यहाँ अन्तिम अक्षर 'क्ष' अक्ष-मालाका सुमेरु है। इसी मालाके आधारपर सतीके भिन्न-भिन्न अङ्गोंका पात हुआ है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि इतनी भूमि वर्ण-समाम्नायस्वरूप ही है। भिन्न-भिन्न वर्णोंकी शक्तियाँ और देवता भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिये उन-उन वर्णों, पीठों, शक्तियों एवं देवताओंका परस्पर सम्बन्ध है, जिसके ज्ञान और अनुष्ठानसे साधकको शीघ्र ही सिद्धि होती है। (शारदातिलक)

मायाद्वारा ही परब्रह्मसे विश्वकी सृष्टि होती है। सृष्टि हो जानेपर भी उसके विस्तारकी आशा तबतक नहीं होती, जबतक चेतन पुरुषकी उसमें आसक्ति न हो। अतएव सृष्टि-विस्तारके लिये कामकी उत्पत्ति हुई। रजः-सत्त्वके सम्बन्धसे द्वैतसृष्टिका विस्तार होता है, किंतु तमस् कारणरूप है, वहाँ द्वैतदर्शनकी कमीसे मोहकी कमी होती है। सत्त्वमय सूक्ष्मकार्यरूप विष्णु एवं रजोमय स्थूलकार्यरूप ब्रह्माके मोहित हो जानेपर भी कारणात्मा शिव मोहित नहीं होते, किंतु जबतक कारणमें मोह नहीं, तबतक सृष्टिकी पूर्ण स्थिति भी सम्भव नहीं होती। इसीलिये स्थूल-सूक्ष्म कार्य-चैतन्योंकी ऐसी रुचि हुई कि कारण-चैतन्य भी मोहित हो, किंतु वह अघटित-घटना-पटीयसी महामायाके ही वशकी बात है। इसीलिये सबने उसीकी आराधना की। देवी प्रसन्न हुईं, वे अपने पतिको स्वाधीन करना चाहती थीं। स्वाधीनभर्तृका ही स्त्री परम-सौभाग्यशालिनी होती है। वही हुआ। महामायाने शिवको स्वाधीन कर लिया, फिर भी पिताद्वारा पतिका अपमान होनेपर उन्होंने उस पितासे सम्बद्ध शरीरको त्याग देना ही उचित समझा। महाशक्तिका शरीर उनका लीला-विग्रह ही है। जैसे निर्विकार चैतन्य शक्तिके योगसे साकार विग्रह धारण करता है, वैसे ही शक्ति भी अधिष्ठान-चैतन्ययुक्त साकार विग्रह धारण करती है। इसीलिये शिव-पार्वती दोनों मिलकर अर्धनारीश्वरके रूपमें व्यक्त होते हैं। अधिष्ठान-चैतन्यसहित महाशक्तिका उस लीला-विग्रह—सती-शरीरसे तिरोहित हो जाना ही सतीका मरना है।

प्राणीकी तपस्या एवं आराधनासे ही शक्तिको जन्म देनेका एवं उसे परमेश्वरसे सम्बन्धित कर अपनेको कृतकृत्य करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। किंतु यदि बीचमें प्रमादसे अहंकार उत्पन्न हो जाता है तो शक्ति उससे सम्बन्ध तोड़ लेती है और फिर उसकी वही स्थिति होती है, जो दक्षकी हुई। सतीका शरीर यद्यपि मृत हो गया, तथापि वह महाशक्तिका निवास-स्थान था। श्रीशंकर उसीके द्वारा उस महाशक्तिमें रत थे, अतः मोहित होनेके कारण भी फिर उसको छोड़

न सके। यद्यपि परमेश्वर सदा स्वरूपमें ही प्रतिष्ठित होते हैं, फिर भी प्राणियोंके अदृष्टवश उनके कल्याणके लिये सृष्टि, पालन, संहरण आदि कार्योंमें प्रवृत्त-से प्रतीत होते हैं। उन्हींके अनुरूप महामायामें उनकी आसक्ति और मोहकी भी प्रतीति होती है। इसी मोहवश शंकर महाशक्तिके अधिष्ठानभूत उस प्रिय देहको लेकर घूमने लगे।

देवताओं और विष्णुने मोह मिटानेके लिये उस देहको शिवसे वियुक्त करना चाहा। साथ ही अनन्त शक्तियोंकी केन्द्रभूता महाशक्तिके अधिष्ठानभूत उस देहके अवयवोंसे लोकका कल्याण हो, यह भी सोचकर भिन्न-भिन्न शक्तियोंके अधिष्ठानभूत भिन्न-भिन्न अङ्ग जिन-जिन स्थानोंमें पड़े, वहाँ उन-उन शक्तियोंकी सिद्धि सरलतासे होती है। जैसे कपोत और सिंहके मांस आदिकोंमें भी उनकी भिन्न विशेषता प्रकट होती है, वैसे ही सतीके भिन्न-भिन्न अवयवोंमें भी उनकी विशेषता प्रकट होती है। इसीलिये जैसे हिङ्गुके निकल जानेपर भी उसके अधिष्ठानमें उसकी गन्ध या वासना रहती है, वैसे ही सतीकी महाशक्तियोंके अन्तर्हित होनेपर भी उन अधिष्ठानोंमें वह प्रभाव रह गया है। जैसे सूर्यकान्त-मणिपर सूर्यकी रश्मियोंका सुन्दर प्राकट्य होता है, वैसे ही उन शक्तियोंके अधिष्ठानभूत अङ्गोंमें उनका प्राकट्य बहुत सुन्दर होता है। यहाँतक कि जहाँ-जहाँ उन अङ्गोंका पात हुआ, वे स्थान भी दिव्य शक्तियोंके अधिष्ठान माने जाते हैं। वहाँ भी शक्तितत्त्वका प्राकट्य अधिक है। अतएव उन पीठोंपर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है। अङ्गसम्बन्धी कोई अंश या भूषण-वसनादिका जहाँ पात हुआ, वहीं उपपीठ है। उनमें भी उन-उन विशेष शक्तितत्त्वोंका आविर्भाव होता है। अनन्त शक्तियोंकी केन्द्रभूता महाशक्तिका जो अधिष्ठान हो चुका है, उसमें एवं तत्सम्बन्धी समस्त वस्तुओंमें शक्ति-तत्त्वका बाहुल्य होना ही चाहिये। वैसे तो जहाँ भी, जिस-किसी भी वस्तुमें जो भी शक्ति है, उन सभीका अन्तर्भाव महामायामें ही है—

यच्च किंचित् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥
(दु० सप्तशती)

अपनी-अपनी योग्यता और अधिकारके अनुसार इष्ट देवता, मन्त्र, पीठ, उपपीठके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे सिद्धिमें शीघ्रता होती है। तथा च —

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दरूपं यदक्षरम्।
प्रवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥
(वाक्यपदीय)

—आदि वचनोंके अनुसार प्रणवात्मक ब्रह्म ही निखिल विश्वका उपादान है। वही शक्तिमय सती-शरीररूपमें और निखिल वाङ्मय प्रपञ्चके मूलभूत एकपञ्चाशत वर्णरूपमें व्यक्त होता है। जैसे निखिल विश्वका शक्ति-रूपमें ही पर्यवसान होता है, वैसे ही वर्णोंमें ही सकल वाङ्मय प्रपञ्चका अन्तर्भाव होता है; क्योंकि सभी शक्तियाँ वर्णोंकी आनुपूर्वीविशेष मात्र हैं। शब्द-अर्थका, वाच्य-वाचकका, असाधारण सम्बन्ध किंबहुना अभेद ही है, अतएव एकपञ्चाशत वर्णोंके कार्यभूत सकल वाङ्मय प्रपञ्चका जैसे एकपञ्चाशत वर्णोंमें अन्तर्भाव किया है, वैसे ही वाङ्मय प्रपञ्चके वाच्यभूत सकल अर्थमय प्रपञ्चका उसके मूलभूत एक पञ्चाशत शक्तियोंमें अन्तर्भाव करके वाच्य-वाचकका अभेद प्रदर्शित किया गया है। यही ५१ पीठोंका रहस्य है।

शक्ति-पीठोंका प्रादुर्भाव

(पं० श्रीआद्यानाथजी झा 'निरङ्कुश')

'शक्ति' शब्दकी प्रकृति है संस्कृतका 'शक्' धातु— जिसका अर्थ है—सामर्थ्ययुक्त होना (स्वादिगणीय— **'शक्ल'–शक्तौ)**। इसी **'शक्'** धातुसे भाव अर्थमें **'क्तिन्'** प्रत्यय करनेपर 'शक्ति' शब्द बनता है। यह शक्ति तीन प्रकारकी होती है—प्रभावसे उत्पन्न, उत्साहसे उत्पन्न और मन्त्रसे उत्पन्न। अमरकोशकार कहते हैं—**'शक्तयस्तिस्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः।'** इन समस्त शक्तियोंकी केन्द्रभूत सत्ता अर्थात् सर्वोच्च शक्तिको वेदमें अव्याकृता प्रकृति आदि संज्ञा दी गयी है। पुराणोंमें यह योगेश्वरी, योगनिद्रा, योगमाया, महामाया, महानिद्रा, पराशक्ति, प्रकृति आदि नामोंसे अभिहित है। 'पीठ' शब्दसे पीढ़ा, तीर्थ, आधार-स्थल आदिका बोध होता है। शक्ति-पीठ, देवीपीठ, सिद्धपीठसे मुख्यतः उन स्थानोंका ज्ञान होता है, जहाँ-जहाँ शक्तिरूपा भगवतीका अधिष्ठान है।

सतीसे सम्बद्ध कथा सृष्टिके प्रारम्भकी है। 'श्रीमद्भागवत'में कहा गया है कि भगवान् विष्णु मांस-पिण्डकी भाँति निश्चेष्ट पड़े थे। पराशक्तिद्वारा उनमें चेतना जगी। तब उनके मानसमें सिसृक्षा (सृष्टि करनेकी इच्छा) उत्पन्न हुई। अनन्तर उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने प्रजावृद्धिकी कामनासे दस पुत्रोंको जन्म दिया, वे थे—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद। धर्मशास्त्र पुराण कहते हैं—

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥
(श्रीमद्भा० ३। १२। २२)

मरीचि आदि नौ ऋषि पिताके आदेशानुसार प्रजा-विस्तार करनेमें जुट गये; किंतु नारद सबको विरक्तिका उपदेश दिया करते थे, जिससे कोई पारिवारिक मायामें नहीं फँसता था। फलतः दक्षके नेतृत्वमें ब्रह्मलोकमें जाकर नौ प्रजापतियोंने नारदकी निन्दा की। ब्रह्माजीने ध्यानस्थ होकर इसका रहस्य जान लिया और उन्होंने प्रजापतियोंसे कहा—'नारदकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। वे तो नारायणका भजन करते-करते स्वयं नारायणस्वरूप हो गये हैं। इसका मूलकारण यह है कि अबतक महामायाका अवतार नहीं हुआ है। अतः मेरा आदेश है कि आप लोगोंमेंसे दक्ष प्रजापति महामायाको प्रसन्न करें।'

वहाँसे लौटनेपर दक्षने घोर तपस्या की। फलतः महामाया प्रकट हुई और उसने दक्षसे वरदान माँगनेको कहा। दक्षने प्रजाविस्तारका वर माँग लिया। ज्योतिःपुञ्ज-स्वरूपा महाशक्तिने कहा कि 'मैं तेरी 'असिक्नी' (प्रसूति) नामक पत्नीके गर्भसे विष्णुके सत्यांशसे सतीके रूपमें जन्म लूँगी। तुम मेरा विवाह शिवसे करा दो। तभी नारदके उपदेशका प्रभाव संसारपर नहीं पड़ेगा।' आगे महामायाने कहा—

वधूनां विग्रहे शक्तिर्यदा मे सम्भविष्यति।
कोऽपि त्यक्तुं न शक्नोति कामिनीमुखपङ्कजम्॥

अर्थात् 'स्त्रियोंके शरीरमें जब मेरी शक्ति उत्पन्न होगी, तब कोई उसके मुखकमलका त्याग नहीं कर सकेगा।'

देवीभागवतके ७वें स्कन्धके ३०वें अध्यायमें आया है कि पराशक्तिके वरदानस्वरूप दक्षके घरमें दाक्षायणीका जन्म हुआ और उस कन्याका नाम सती पड़ा। समयानुकूल उसका विवाह शिवके साथ कराया गया।

एक बार दुर्वासाने भी पराशक्तिकी आराधना की। वरदानके रूपमें उसने ऋषिको अपना दिव्य हार दे

दिया। उसकी असाधारण सुगन्ध जानकर दक्षने उनसे वह हार माँग लिया। उन्होंने उसे अपने पर्यङ्क (पलंग) पर रख दिया, जहाँ रातमें पत्नीके साथ शयन किया। फलतः दिव्य माल्यके तिरस्कारके कारण दक्षके मनमें शिवके प्रति दुर्भाव जगा। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने यज्ञमें सब देवोंको तो निमन्त्रित किया, किंतु शिवको नहीं।

सती इस मानसिक पीड़ाके कारण पिताको उचित सलाह देना चाहती थीं; किंतु अनिमन्त्रित रहनेके कारण उन्हें पितृगृह जानेका आदेश शिव नहीं देते थे। किसी तरह पतिको मनाकर वे यज्ञस्थलमें पहुँचीं। वहाँ सतीने अपने पिताको उचित सलाह दी, किंतु दक्ष न माने।

'दक्षने उन्हें दो टूक उत्तर दिया कि 'शिव' अमङ्गल-स्वरूप हैं। उनके सान्निध्यसे तुम भी अमङ्गला हो गयी हो।' फिर क्या था, तिरस्कारजन्य क्रोधके आवेगमें सतीने अपने चिन्मय स्वरूपको यज्ञकी प्रखर ज्वालामें दग्ध कर दिया।

इधर अपने गणोंके द्वारा यह हृदयविदारक वृत्तान्त जानकर शिव अत्यन्त कुपित हुए। उनके क्रोधसे भद्रकालीके साथ वीरभद्र प्रकट हुए। उनके द्वारा यज्ञका विध्वंस कर दिया गया। अन्य कोई उपाय न देखकर सारे देवता शिवके पास पहुँचे। देवोंसे संस्तुत होनेपर औढरदानी आशुतोष संतुष्ट हुए। वे स्वयं यज्ञस्थल (कनखल—हरिद्वार) पहुँचे। सारे अमङ्गलोंको दूरकर शिवने महायज्ञको तो सम्पन्न करवा दिया, किंतु सतीका पार्थिव शरीर देखकर वे उसके मोहमें पड़ गये। फिर तो वे सतीकी लाशको अपने कंधेपर लेकर विक्षिप्तकी भाँति नाचने लगे।

देवीभागवतके अनुसार संसारका चक्का जाम जानकर जनार्दनने अपने शार्ङ्गधनुषके द्वारा और 'पीठ-रहस्य'कारके अनुसार सुदर्शनचक्रद्वारा सतीके शरीरके खण्ड-खण्ड कर दिये। जिन स्थलोंमें सतीके ये अङ्ग गिरे, वे शक्तिपीठके नामसे प्रथित हुए।

देवीभागवतमें जनमेजयके द्वारा प्रश्न पूछे जानेपर व्यासजी कहते हैं—

वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी।
क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिङ्गधारिणी॥
(७। ३०। ५५)

अर्थात् काशीमें सतीका मुख गिरा और वहाँ विशालाक्षी-शक्ति उत्पन्न हुई और नैमिषारण्यमें लिङ्ग-धारिणी शक्ति प्रकट हुई। आगे प्रयाग, गन्धमादन, मानस आदि पीठोंकी चर्चा है। इसी क्रममें व्यासजी कहते हैं—'जनमेजय! पीठोंकी कुल संख्या १०८ है।' इसी तरह तत्तत्-पीठोंमें उतने ही शिव एवं उतनी ही शक्तियाँ कही गयी हैं, जिनमें निम्नलिखित पीठ प्रमुख हैं—

पीठ	अङ्ग	शक्ति
देवपुर	दोनों चरण	महाभागा
ओड्यान	नितम्बद्वय	कात्यायनी
कामशैल	योनि	कामाख्या
पूर्णशैल या (पूर्णगिरि)	गुह्य	पूर्णेश्वरी
जलंधरगिरि	स्तन	चण्डी
गङ्गा-तट	दोनों हाथ	वागीश्वरी

इस तरह सतीके जो विभिन्न अङ्ग विभिन्न स्थलोंमें गिरे वे शक्तिपीठके नामसे विख्यात हैं।

इक्यावन शक्तिपीठ—जहाँ सतीके अङ्ग गिरे !

(डॉ० श्रीकपिलदेवसिंहजी ए० ए०, एम्० एड्०, पी-एच्० डी०)

पुराणोंका साक्ष्य है कि दक्ष-पुत्री सतीने अपने पिताके यज्ञ जब अपने पति भगवान् शंकरके अपमानसे स्वयंको यज्ञ-कुण्डमें होम दिया, तब उनके शवको भगवान् शंकर अपने कंधेपर रखकर उद्भ्रान्त-भावसे नाचने-घूमने लगे। सर्वत्र प्रलय-सा हाहाकार मच गया। तब देवोंके अनुनय-विनयपर अन्तर्हित भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्रद्वारा उस शवके खण्ड-खण्ड करने लगे। 'तन्त्र-चूडामणि' एवं 'ज्ञानार्णव'के अनुसार इस प्रकार सतीके मृत शरीरके विभिन्न अङ्ग और उनमें पहने आभूषण ५१ स्थलोंपर गिरे, जिससे वे स्थल शक्तिपीठोंके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। यहाँ उनका परिचय अत्यन्त संक्षेपमें दिया जा रहा है।

ज्ञातव्य है कि इन ५१ शक्तिपीठोंमें भारत-विभाजनके पश्चात् ५ और भी कम हो गये हैं और अब आजके भारतमें ४२ शक्तिपीठ रह गये हैं। एक पीठ पाकिस्तानमें चला गया और चार बंगलादेशमें। ५१ में शेष ४ पीठोंमें १ श्रीलंकामें, १ तिब्बतमें तथा २ नेपालमें हैं। सर्वप्रथम भारतके वर्तमान ४२ पीठोंका परिचय देनेके पश्चात् शेष ९ (५+४) पीठोंका भी संक्षिप्त परिचय दिया जायगा।

१—किरीट—यहाँ सतीका 'किरीट' नामक शिरोभूषण गिरा था। यहाँकी शक्ति 'विमला' या 'भुवनेशी' नामसे जानी जाती है और भैरव (शिव) 'संवर्त' नामसे विख्यात हैं। यह शक्तिपीठ हवड़ा-बरहरवा लाइनपर हवड़ासे ढाई कि० मी० दूर 'लालबाग कोर्ट' स्टेशनसे लगभग ५ कि० मी०पर बतनगरके पास गङ्गातटपर स्थित है।

२—वृन्दावन—यहाँ सतीके 'केश' गिरे थे। यहाँ सती 'उमा' तथा शंकर 'भूतेश'के नामसे जाने जाते हैं। मथुरा-वृन्दावनके बीच 'भूतेश्वर' नामक रेलवे स्टेशनके समीप भूतेश्वर-मन्दिरके प्राङ्गणमें यह शक्तिपीठ अवस्थित है।

३—करवीर—यहाँ सतीके 'त्रिनेत्र' गिरे थे। यहाँ सती 'महिषमर्दिनी' और शिव 'क्रोधीश' कहे जाते हैं। कोल्हापुरस्थित महालक्ष्मी अथवा अम्बाईका मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है।

४—श्रीपर्वत—यहाँ सतीका 'दक्षिण तल्प(कनपटी)' गिरा था। यहाँ सती 'श्रीसुन्दरी' तथा शिव 'सुन्दरानन्द' कहलाते हैं। यह स्थान लद्दाख (कश्मीर) में है। कुछ लोग असममें सिलहटसे ४ कि० मी० दूर नैर्ऋत्य कोणमें जैनपुर नामक स्थानपर 'श्रीपर्वत'को शक्तिपीठ मानते हैं।

५—वाराणसी—यहाँ सतीका 'कर्णमणि (कानकी मणि) गिरा था। यहाँ सतीको 'विशालाक्षी' तथा शिवको 'कालभैरव' कहते हैं। वाराणसीमें विश्वेश्वरके निकट मीरघाटपर विशालाक्षीका मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है।

६—गोदावरी-तट—यहाँ सतीका 'वामगण्ड' (बाँया गाल) गिरा था। यहाँ सतीको 'विश्वेशी' (रुक्मिणी, विश्वमातृका) तथा शिवको 'दण्डपाणि' (वत्सनाभ) कहा जाता है। आन्ध्रप्रदेशमें गोदावरी स्टेशनके पास कोटि तीर्थ है। यह शक्तिपीठ वहीं स्थित है।

७—शुचि—यहाँ सतीके 'ऊर्ध्वदन्त' (ऊपरके दाँत) गिरे थे। यहाँ सती 'नारायणी' और शंकरको 'संहार' या 'संकूर' कहते हैं। तमिलनाडुमें तीन महासागरके संगम-स्थल कन्याकुमारीसे १३ कि० मी० दूर 'शुचीन्द्रम्'में स्थाणु शिवका मन्दिर है। उसी मन्दिरमें यह शक्तिपीठ है।

८—**पञ्चसागर**—यहाँ सतीके 'अधोदन्त' (नीचेके दाँत) गिरे थे। इस पीठके स्थानका निश्चित पता नहीं है। यहाँ सती 'वाराही' और शिव 'महारुद्र' नामसे जाने जाते हैं।

९—**ज्वालामुखी**—हिमाचलप्रदेशके कांगड़ा जनपदके अन्तर्गत ज्वालामुखीका मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है, जो ज्वालामुखी रोड रेलवे स्टेशनसे लगभग २१ कि० मी० दूर बस-मार्गपर स्थित है। यहाँ सतीकी 'जिह्वा' गिरी थी। यहाँ शक्ति सती 'सिद्धिदा' अम्बिका और शिव 'उन्मत्त' रूपमें विराजित हैं। मन्दिरमें आगके रूपमें ज्वाला धधकती रहती है।

१०—**भैरवपर्वत**—यहाँ शक्तिका 'ऊर्ध्व ओष्ठ' (ऊपरी होठ) गिरा था। यहाँ सती 'अवन्ती' और शिव 'लम्बकर्ण' कहलाते हैं। मध्यप्रदेशमें उज्जैनके निकट शिप्रा नदीके तटपर भैरव पर्वत है। गुजरातमें गिरनारके निकट भी एक भैरव पर्वत है। दोनों ही स्थलोंको शक्तिपीठ मानकर श्रद्धापूर्वक यात्रा करनी चाहिये।

११—**अट्टहास**—यहाँ सतीका 'अधरोष्ठ' (नीचेका होठ) गिरा था। यहाँ सती 'फुल्लरादेवी' और शिव 'विश्वेश' कहलाते हैं। यह शक्तिपीठ वर्धमान (बर्दवान) से ९३ कि० मी० दूर कटवा-अहमदपुर लाइनपर लाबपुर स्टेशनके निकट है।

१२—**जनस्थान**—यहाँ सतीकी 'ठुडडी' गिरी थी। यहाँ सती 'भ्रामरी' और शिव 'विकृताक्ष' कहलाते हैं। नासिकके पास पञ्चवटीमें भद्रकालीका मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है।

१३—**कश्मीर**—कश्मीरमें अमरनाथ गुफाके भीतर 'हिम' शक्तिपीठ है। यहाँ शक्तिका 'कण्ठ' गिरा था। यहाँ सती 'महामाया' तथा शिव 'त्रिसंध्येश्वर' कहलाते हैं। श्रावणपूर्णिमाको अमरनाथके दर्शनके साथ यह शक्तिपीठ भी दीखता है।

१४—**नन्दीपुर**—यहाँ सतीका 'कण्ठहार' गिरा था। यहाँ सती 'नन्दिनी' और शिव 'नन्दिकेश्वर' कहलाते हैं। बोलपुर (शान्ति-निकेतन) से ३३ कि० मी० दूर सैन्थिया रेलवे जंक्शनसे अग्निकोणमें थोड़ी दूरपर रेलवे लाइनके निकट ही एक वटवृक्षके नीचे यह शक्तिपीठ है।

१५—**श्रीशैल**—आन्ध्रप्रदेशमें श्रीशैलम (मल्लिकार्जुन) द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक है। मन्दिरके विशाल प्राङ्गणमें श्री'भ्रमराम्बा' देवीका मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ सतीकी 'ग्रीवा' गिरी थी। यहाँ सतीको 'महालक्ष्मी' तथा शिवको 'संवरानन्द' या 'ईश्वरानन्द' कहा जाता है।

१६—**नलहटी**—नलहटीमें सतीकी 'उदरनली' गिरी थी। यहाँ शक्ति 'कालिका' तथा शिव 'योगीश' कहे जाते हैं। यह शक्तिपीठ बोलपुर (शान्तिनिकेतन)'से ७५ कि० मी० तथा सैन्थिया जंक्शनसे मात्र ४२कि० मी० दूर नलहटी जंक्शनसे ३ कि०मी० दूर नैर्ऋत्य कोणमें एक टीलेपर स्थित है। नन्दीपुर शक्तिपीठ आनेवाले भक्तगण सुविधापूर्वक इस शक्तिपीठके दर्शन कर सकते हैं।

१७—**मिथिला**—यहाँ सतीका 'वाम स्कन्ध' गिरा था। यहाँ शक्ति 'उमा' या 'महादेवी' और शिव 'महोदर' कहलाते हैं। इस शक्तिपीठका निश्चित स्थान बताना कुछ कठिन है। मिथिलामें कई ऐसे देवी-मन्दिर हैं, जिन्हें लोग शक्तिपीठ बताते हैं। एक जनकपुर (नेपाल) से इक्यावन कि०मी० दूर पूर्व दिशामें 'उच्चैठ' नामक स्थानपर वनदुर्गाका मन्दिर है। दूसरा सहरसा स्टेशनके पास 'उग्रतारा'का मन्दिर है। तीसरा समस्तीपुरसे पूर्व ६१ कि०मी० दूर सलौना रेलवे-स्टेशनसे नौ कि० मी० दूर 'जयमङ्गला' देवीका मन्दिर है। उक्त तीनों मन्दिरोंको विद्वज्जन शक्तिपीठ मानते हैं।

१८-रत्नावली—यहाँ सतीका 'दक्षिण स्कन्ध' (दायाँ कंधा) गिरा था। यह शक्तिपीठ बंगाल-पञ्जिकाके अनुसार कदाचित् मद्रासमें है। यहाँ शक्ति 'कुमारी' तथा भगवान् शंकर 'शिव' कहलाते हैं।

१९-प्रभास—यहाँ सतीका 'उदर' गिरा था। गुजरातमें गिरनार पर्वतपर अम्बाजीका मन्दिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ सती 'चन्द्रभागा' और शिव 'वक्रतुण्ड' के नामसे जाने जाते हैं।

२०-जालंधर—यहाँ सतीका 'बायाँ स्तन' गिरा था। यहाँ सती 'त्रिपुरमालिनी' और शिवका 'भीषण' रूप है। यह शक्तिपीठ जालंधर (पंजाब) में है।

२१-रामगिरि—यहाँ सतीका दायाँ स्तन गिरा था। यहाँ सती 'शिवानी' और शिवका रूप 'चण्ड' है। चित्रकूटका शारदा-मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है। कुछ विद्वान् मैहरके शारदा-मन्दिरको शक्तिपीठ मानते हैं।

२२-वैद्यनाथ—यहाँ सतीका 'हृदय' गिरा था। यहाँ सतीकी संज्ञा 'जयदुर्गा' और शिवकी 'वैद्यनाथ' है। बिहारमें वैद्यनाथधाममें वैद्यनाथ-मन्दिरके प्राङ्गणमें मुख्य मन्दिरके सम्मुख यह शक्तिपीठ है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि शिवने सतीका यहीं दाह-संस्कार किया था। अतः इस चिताभूमिकी एक अपनी महत्ता है।

२३-वक्त्रेश्वर—यहाँ सतीका 'मन' गिरा था। यहाँ सतीको 'महिष-मर्दिनी' और शिवको 'वक्त्रनाथ' कहा जाता है। नन्दीपुर तथा नलहटी शक्तिपीठका उल्लेख हो चुका है। उसी क्रममें सैन्थिया जंक्शनसे १२ कि० मी० दूर श्मशानभूमिमें यह शक्तिपीठ है।

२४-कन्यकाश्रम—यहाँ सतीकी 'पीठ' गिरी थी। सतीको यहाँ 'शर्वाणी' तथा शिवको 'निमिष' कहा जाता है। तमिलनाडुमें तीन सागरोंके संगम-स्थलपर कन्याकुमारीका मन्दिर है। उस मन्दिरमें ही भद्रकालीका मन्दिर शक्तिपीठ है।

२५-बहुला—यहाँ सतीका बायाँ हाथ गिरा था। यहाँ सतीको 'बहुला' तथा शिवको 'भीरुक' कहा जाता है। यह शक्तिपीठ हावड़ासे १४४ कि०मी० दूर कटवा जंक्शनसे पश्चिम केतु ब्रह्मग्राममें है।

२६-उज्जयिनी—यहाँ सतीकी 'कुहनी' गिरी थी। यहाँ सतीका नाम 'माङ्गल्यचण्डिका' और शिवका 'कपिलाम्बर' है। उज्जैनमें रुद्रसागरके निकट हरसिद्धि-मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ देवीकी कुहनीकी पूजा होती है।

२७-मणिवेदिक—यहाँ सतीकी दोनों 'कलाइयाँ' गिरी थीं। राजस्थानमें पुष्करके पास गायत्री-मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँपर शक्ति 'गायत्री' एवं शिव 'सर्वानन्द' कहलाते हैं।

२८-प्रयाग—तीर्थराज प्रयागमें सतीके हाथकी उँगली गिरी थी। यहाँ सतीको 'ललिता' देवी एवं शिवको 'भव' कहा जाता है। अक्षयवटके निकट ललितादेवीका मन्दिर है। कुछ विद्वान् इसे ही शक्तिपीठ मानते हैं। यों शहरमें एक और (अलोपी माता) ललितादेवीका मन्दिर है। इसे भी शक्तिपीठ माना जाता है। निश्चित निष्कर्षपर पहुँचना कठिन है।

२९-उत्कल—उत्कल (उड़ीसा) में सतीकी 'नाभि' गिरी थी। यहाँ देवी 'विमला' और शिवका 'जगत्' रूप है। पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरके प्राङ्गणमें ही विमला देवीका मन्दिर है। यही मन्दिर शक्तिपीठ है।

३०-काञ्ची—यहाँ सतीका 'कंकाल' गिरा था। देवी यहाँ 'देवगर्भा' और शिवका 'रुरु' रूप है। तमिलनाडुमें सप्तपुरियोंमें एक काञ्ची है। वहाँका कालीमन्दिर शक्तिपीठ है।

३१-कालमाधव—यहाँ सतीका वाम 'नितम्ब' गिरा था। यहाँ सतीको 'काली' तथा शिवको 'असिताङ्ग' कहा जाता है। इस शक्तिपीठके विषयमें विशेष रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता कि यह कहाँ है।

३२--शोण--यहाँ सतीका 'दक्षिण नितम्ब' गिरा था। देवी यहाँ 'नर्मदा' अथवा 'शोणाक्षी' कहलाती हैं और शिव 'भद्रसेन'। कुछ लोग सासारामकी ताराचण्डी देवीको ही शोणतटस्था शक्ति मानते हैं। यद्यपि शोण अब कुछ दूर अलग चला गया है।

३३--कामगिरि--यहाँ सतीकी 'योनि' गिरी थी। असमके कामरूप जनपदमें असमके प्रमुख नगर गुवाहाटी (गौहाटी) के पश्चिमी भागमें नीलाचल पर्वतपर यह शक्तिपीठ 'कामाख्या' शक्तिपीठके नामसे सुविख्यात है। यहाँ देवी 'कामाख्या' के नामसे प्रसिद्ध हैं और शिव 'उमानन्द' हैं, जिनका मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदीके मध्य उमानन्द-द्वीपपर स्थित है।

३४--जयन्ती--सम्पूर्ण मेघालय पर्वतोंका प्रान्त है। गारो, खासी और जयन्तिया—ये तीन प्रमुख पर्वत-प्रान्त हैं। जयन्तिया पर्वतपर सतीकी 'वामजंघा' गिरी थी। यहाँ देवी 'जयन्ती' तथा शिव 'क्रमदीश्वरी' कहे जाते हैं। शिलांगसे ५३ कि० मी० दूर जयन्तिया पर्वतपर बाउरभाग ग्राममें यह शक्तिपीठ है।

३५--मगध--यहाँ सतीकी 'दक्षिण जंघा' गिरी थी। यहाँ देवी 'सर्वानन्दकरी कहलाती हैं और शिव 'व्योमकेश'। बिहारकी राजधानी पटनामें बड़ी पटनेश्वरी देवीका मन्दिर ही शक्तिपीठ है।

३६--त्रिस्रोता--यहाँ सतीका 'वाम पद' गिरा था। यहाँ सतीका नाम 'भ्रमरी' एवं शिवका नाम 'ईश्वर' है। बंगालके जलपाइगुड़ी जनपदके बोदा इलाकेके 'शालबाड़ी' ग्राममें तिस्ता नदीके तटपर यह शक्तिपीठ है।

३७--त्रिपुरा--त्रिपुरामें 'दक्षिण पाद' गिरा था। यहाँ देवी 'त्रिपुरसुन्दरी' और शिव 'त्रिपुरेश' कहे जाते हैं। त्रिपुरा राज्यके राधाकिशोरपुर ग्रामसे २॥ कि० मी० दूर पूर्व-दक्षिणके कोणपर पर्वतके ऊपर यह शक्तिपीठ स्थित है।

३८--विभाष--यहाँ सतीका 'बायाँ टखना' (एड़ीके ऊपरकी हड्डीकी गाँठ) गिरा था। सती यहाँ 'कपालिनी' अर्थात् 'भीमरूपा' और शिव 'सर्वानन्द' कपाली हैं। दक्षिण-पूरब रेलवेके पासकुड़ा स्टेशनसे २४ कि० मी० दूर तमलूक स्टेशन है। वहाँका काली-मन्दिर यह शक्ति-पीठ है।

३९--कुरुक्षेत्र--यहाँ सतीका दक्षिण गुल्फ (दायाँ टखना) गिरा था। यहाँ सतीकी संज्ञा 'सावित्री' है और शिवकी 'स्थाणु' महादेव। हरियाणा राज्यके कुरुक्षेत्र नगरमें द्वैपायन सरोवरके पास यह शक्तिपीठ है।

४०--युगाद्या--यहाँ सतीके 'दायें पैरका अँगूठा' गिरा था। देवी यहाँ 'भूतधात्री' और शिव 'क्षीरकण्टक' अथवा 'युगाद्य' कहलाते हैं। यह शक्तिपीठ बंगालके बर्धमान रेलवे स्टेशनसे ३२ कि० मी० दूर उत्तर दिशामें क्षीरग्राममें स्थित है।

४१--विराट्--यहाँ सतीके दायें पाँवकी उँगलियाँ गिरी थीं। यहाँ सतीको 'अम्बिका' तथा शिवको 'अमृत' की संज्ञा दी गयी है। यह शक्तिपीठ राजस्थानकी राजधानी जयपुरसे उत्तरकी ओर ६४ कि० मी० दूर बैराट ग्राममें है।

४२--कालीपीठ--सतीकी 'शेष उँगलियाँ' यहाँ गिरी थीं। सती यहाँ 'कालिका' और शिव 'नकुलीश' कहे जाते हैं। कलकत्तामें कालीका सुविख्यात मन्दिर ही शक्तिपीठ है।

सम्प्रति ये ४२ शक्तिपीठ भारतके पवित्र भूभागमें हैं। शेष नौ विभिन्न देशों—तिब्बत, श्रीलंका, नेपाल, पाकिस्तान तथा बंगलादेशमें हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१--मानस--यहाँ सतीकी 'दायीं हथेली' गिरी थी। यहाँ सती 'दाक्षायणी' कही जाती हैं और शिव 'अमर' रूप हैं। यह शक्तिपीठ तिब्बतमें मानसरोवरके तटपर है।

२—लंका—यहाँ सतीका 'नूपुर' गिरा था। सती यहाँ 'इन्द्राक्षी' कहलाती हैं और शिव 'राक्षसेश्वर'। यह शक्ति-पीठ श्रीलंकामें है।

३—गण्डकी—यहाँ सतीका 'दक्षिण गण्ड' (दाहिना गाल) गिरा था। यहाँ सती 'गण्डकी' तथा शिव 'चक्रपाणि' कहलाते हैं। यह शक्तिपीठ नेपालमें गण्डकी नदीके उद्गमस्थलपर स्थित है।

४—नेपाल—यहाँ सतीके 'दोनों जानु' (घुटने) गिरे थे। यहाँ सतीको 'महामाया' तथा शिवको 'कपाल' कहा जाता है। यह शक्तिपीठ नेपालमें है। सुप्रसिद्ध पशुपतिनाथके मन्दिरके पास ही वागमती नदीके तटपर गुह्येश्वरी देवीका मन्दिर है। यह 'गुह्येश्वरी'-मन्दिर ही शक्ति-पीठ है।

५—हिंगुला—यहाँ सतीका 'ब्रह्मरन्ध्र' गिरा था। यहाँ सती 'भैरवी' कहलाती हैं और शिव 'भीमलोचन'। यह शक्तिपीठ पाकिस्तानके बलूचिस्तान प्रान्तके हिंगलाजमें है। हिंगलाज कराँचीसे १४४ कि० मी० दूर उत्तर-पश्चिम दिशामें हिंगोस नदीके तटपर है। यहाँ एक गुफाके भीतर जानेपर शक्तिरूप ज्योतिके दर्शन होते हैं।

६—सुगन्धा—यहाँ सतीकी 'नासिका (नाक) गिरी थी। यहाँ देवी 'सुनन्दा' तथा शंकर 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं। यह शक्तिपीठ बंगलादेशमें है। बारीसालसे २१ कि० मी० दूर उत्तरकी ओर शिकारपुर गाँवमें सुनन्दा नदीके तटपर सुनन्दा देवी (उग्रतारा) का मन्दिर है। यही मन्दिर शक्तिपीठ है।

७—करतोयातट—यहाँ सतीका 'वाम तल्प' गिरा था। सती यहाँ 'अपर्णा' कहलाती हैं तथा शिवका 'वामन' रूप है। यह स्थल बंगलादेशमें है। बोगड़ा स्टेशनसे ३२ कि० मी० दूर दक्षिण-पश्चिम कोणमें भवानीपुर ग्राममें यह शक्तिपीठ स्थित है।

८—चट्टल—चट्टलमें सतीका दक्षिण बाहु (दायीं भुजा) गिरा था। यहाँ सतीका 'भवानी' रूप और शिव 'चन्द्रशेखर' हैं। बंगलादेशमें चटगाँवसे ३८ कि० मी० दूर सीताकुण्ड स्टेशनके पास चन्द्रशेखर पर्वतपर भवानी-मन्दिर है। यही भवानी-मन्दिर शक्तिपीठ है।

९—यशोर—यहाँ सतीकी 'बायीं हथेली' गिरी थी। यहाँ सतीको 'यशोरेश्वरी' तथा शिवको 'चन्द्र' कहते हैं। यह शक्तिपीठ बंगलादेशके खुलना जिलाके जैशोर शहरमें है।

इन शक्तिपीठोंके अतिरिक्त एक और शक्तिपीठ कर्णाटकमें है। यहाँ सतीके दोनों कर्ण गिरे थे। यहाँ सतीको 'जयदुर्गा' और शिवको 'अभीरु' कहा जाता है। यह शक्तिपीठ कर्णाटक राज्यमें है। शक्तिपीठोंकी बड़ी महिमा है। स्कन्द-पद्म-मत्स्यादिपुराणों तथा देवी-भागवतादिमें ७० एवं १०८ शक्तिपीठका भी वर्णन है। उनके दर्शनसे मानवका परम कल्याण होता है।

महामाया पराविद्या

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥

(दुर्गासप्तशती १। ५५-५६)

'जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भगवान् विष्णुकी महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक आकर्षित कर मोहमें डाल देती है। उसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है।

भारत के प्रमुख शक्तिपीठ

[भूमण्डलकी देवभूमि—विशाल भारतके अनेकानेक स्थानोंपर अनेक शक्तिपीठ, भगवतीके विग्रह-मन्दिर विद्यमान हैं, जिनका विभिन्न पुराणोंमें विस्तारके साथ वर्णन पाया जाता है। कहीं सर्वाङ्गपूर्ण विग्रह, कहीं अङ्गविशेष तो कहीं यन्त्रादि प्रतीकरूपमें दीखते हैं। साधक संत-महात्माओंने इन्हें अपनी साधना, उपासनासे जाग्रत् बनाये रखा है और भक्तगण भक्ति करके अपना अभीष्ट प्राप्त करते आ रहे हैं। यहाँ हम ऐसे ही प्रमुख शक्तिपीठोंका संकलन प्रदेश-स्तरपर साधकोंके लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक]

उत्तरप्रदेश

माता विन्ध्यवासिनी और त्रिकोण शक्तिपीठ

(श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश')

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां सौदामिनीसंनिभां
शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम्।
ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां
ध्यायेद् विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननाम्॥

'सुनहले कमलोंके आसनपर विराजमान, तीन नेत्रोंवाली, विद्युत्के समान कान्तिवाली, चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, वर और अभयमुद्रा धारण करनेवाली, पूर्णचन्द्रकी षोडश कलाओंसे परिपूर्ण, गलेमें वैजयन्ती माला, बाँहोंमें बाजूबंद और कानोंमें मकराकृति कुण्डलोंको धारण करनेवाली, इन्द्रादि देवगणोंद्वारा संस्तुत शशिमुखी पराम्बा विन्ध्यवासिनीका ध्यान करें, जिनके सिंहासनके बगलमें वाहनके रूपमें महासिंह उपस्थित है।'

सहस्रों वर्षोंसे भारतीय धर्म-कर्म और सभ्यता-संस्कृतिकी अमूल्य निधि और पतितपावनी भागीरथीके दक्षिण तटपर स्थित विन्ध्याचल, जो अनेकानेक देव, गन्धर्व, किन्नर एवं बड़े-बड़े महर्षि तथा सिद्ध-संतोंकी तपोभूमि रहा है, अपनी मधुमय प्राकृतिक सुषमासे भ्रमणार्थियोंको भी बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता आ रहा है। इसीके अञ्चलमें अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका सर्वपूजित मन्दिर, जाग्रत् शक्तिपीठ है। इस पीठकी विशेषता यह है कि यहाँ पराम्बा अपने समग्र रूपसे सर्वाङ्गपूर्ण आविर्भूत हैं। यही नहीं, ये **'सर्वस्याद्या महालक्ष्मी'** अपने तीन रूपोंमें (महाकाली और महासरस्वती तथा स्वयंके स्वरूपोंके साथ) आविर्भूत होकर इस पर्वतराजपर इस प्रकार अधिष्ठित हुई हैं कि महामायाने तान्त्रिक उपासकोंके

लिये सहजसिद्ध त्रिकोण-यन्त्रोंका भी आविर्भाव कर दिया है। ये त्रिकोण 'लघुत्रिकोण' और 'बृहत्-त्रिकोण' दो रूपोंमें बने हैं, जिनकी यात्रा और दर्शन-पूजन कर विन्ध्यवासिनीके यात्री यात्राकी साङ्गता प्राप्त करते हैं।

लघु-त्रिकोणमें—पूर्वमें भगवती विन्ध्यवासिनीका विग्रह मुख्य मन्दिरमें पश्चिमाभिमुख है और उन्हींके सामने विन्दुरूपमें भगवान् शंकर भी अधिष्ठित हैं। भगवतीके वामभागमें—दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख ऊर्ध्वमुखी भगवती काली हैं और उत्तर-पश्चिममें पूर्वाभिमुख भगवती सरस्वती हैं। इस प्रकार यह लघुत्रिकोण बनता है, जो विन्ध्यवासिनीके मूलपीठका त्रिकोण है।

विन्ध्यक्षेत्रके त्रिकोणका केन्द्र-विन्दु श्रीरामेश्वर महादेव-मन्दिरके सदाशिव हैं, जो पूर्वाभिमुख हैं। उनके एक नेत्रसे पश्चिमाभिमुख भगवती लक्ष्मी विन्ध्यवासिनी नामसे प्रसिद्ध हैं। दूसरे नेत्रसे उत्तराभिमुख महाकाली काली-खोहमें स्थित हैं और तीसरे नेत्रसे विन्ध्यपर्वतपर महासरस्वती अष्टभुजा नामसे उत्तराभिमुख स्थित हैं। इस त्रिकोणके अन्तर्गत कई देवी-देवता आते हैं।

विन्ध्यक्षेत्रका यह त्रिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतके किसी भी क्षेत्रमें इस प्रकारके त्रिकोण नहीं बनते। विशेषकर भगवतीके तीनों स्वरूपोंके विग्रह कहीं भी एक स्थानपर इस प्रकार नहीं पाये जाते। यह परम सौभाग्यका विषय है कि यहाँ तीनों महाशक्तियाँ—महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती त्रिकोण बनाकर विराज रही हैं।

तान्त्रिकगण इसके अतिरिक्त एक बृहत्-त्रिकोण-की भी कल्पना करते हैं, जो पूरे भारतदेशको व्याप्त कर लेता है। इसके अनुसार इस त्रिकोणके एक कोणपर पूर्वमें भगवती कामाक्षी (कामाख्या) अधिष्ठित हैं, दूसरे कोणपर दक्षिणमें कन्याकुमारी या मैहरकी शारदादेवी या विन्ध्यवासिनी प्रतिष्ठित हैं तो तीसरे कोणपर उत्तरमें जम्मूकी भगवती वैष्णवी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं।

विन्ध्यवासिनीका आविर्भाव

स्तोत्र-संग्रहोंमें भगवती विन्ध्यवासिनीपर ७–८ श्रेष्ठ स्तोत्र हैं। उनके तथा मार्कण्डेयपुराणके देवी-माहात्म्य या 'सप्तशती' दुर्गा (अ० ११, श्लो० ४१-४२)के अनुसार भगवती श्रीमुखसे कहती हैं कि वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ-निशुम्भ नामक महादैत्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोपके घर यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण होकर विन्ध्याचलपर्वतपर रहूँगी और दोनों असुरोंका वध करूँगी। भागवतके दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णजन्माख्यानके संदर्भमें वसुदेवजी कंसके भयसे देवकीके अष्टम गर्भ भगवान् श्रीकृष्णको नन्दगोपके घरमें पहुँचाकर यशोदाके निकट सुला देते हैं तथा उसी समय यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें आते हैं और उसे पूर्वप्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप देते हैं। कंस उसे पत्थरपर पटकने जाता है कि वह कन्या उसके हाथसे छटककर आकाशगामिनी हो कंसके वधकी जड़ जम जानेकी बात कहती हुई स्वयं विन्ध्याचल-पर आकर विन्ध्यवासिनीके रूपमें विराजती है।

कल्पभेदसे कथा-भेदके सिद्धान्तानुसार देवीभागवतके दशम स्कन्ध (अध्याय १)में कथा आती है कि स्वायम्भुव मनुने क्षीरसमुद्रके तटपर देवीकी आराधना करते हुए घोर तपस्या की। जब सौ वर्ष बीत गये, तब भगवती उनके सामने आविर्भूत हुईं और 'वरं ब्रूहि' कहा। मनुने अत्यन्त स्तुतिके साथ अनेक वर माँगे और देवीने भी **'तथास्तु'** कहते हुए उन्हें निष्कण्टक राज्यका वर प्रदान किया तथा स्वयं विन्ध्याचलपर चली गयीं और विन्ध्यवासिनी कहलायीं, जैसा कि कहा है—

पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विन्ध्यपर्वतम्।
... ...
लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति च शौनक॥

विन्ध्यवासिनीका मन्दिर नगरके मध्य एक ऊँचे स्थानपर है। मन्दिरमें सिंहारूढ ढाई हाथका देवीका विग्रह है। मन्दिरके पश्चिममें स्थित एक आँगनके पश्चिम भागमें बारहभुजा देवी हैं, दूसरे भागमें खर्परेश्वर शिव हैं। दक्षिण-की ओर महाकालीकी मूर्ति और उत्तरकी ओर धर्मध्वजा देवी हैं। मन्दिरसे थोड़ी दूर श्रीविन्ध्येश्वर महादेवका मन्दिर है। दोनों नवरात्रोंमें यहाँकी भीड़ अपार और अवर्णनीय होती है।

महाकाली (कालीखोह)

ऊपर वर्णित विन्ध्यक्षेत्रके त्रिकोणके एक कोणको महाकालीने अधिष्ठित किया है। वस्तुतः ये 'चामुण्डा' देवी हैं। यह स्थान 'कालीखोह' कहा जाता है, जो विन्ध्याचल नगरसे ३ कि० मी० दूरीपर है। विन्ध्यवासिनी-मन्दिरसे थोड़ी दूरपर विन्ध्याचलकी श्रेणी प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ पहाड़ीपर एक ओरसे चढ़कर दूसरी ओर उतरना पड़ता है। जाते समय पहले यहाँ महाकाली-मन्दिर मिलता है। मन्दिरमें देवीका विग्रह छोटा है, किंतु मुख विशाल है। कालीखोहके पास ही भैरवजीका स्थान है। इसी मार्गमें गेरुवाकुण्ड, सीताकुण्ड आदि कुण्ड और मन्दिर हैं।

अष्टभुजा शक्तिपीठ

कालीखोहसे अष्टभुजा भगवतीका स्थान लगभग एक मील है। इन अष्टभुजा देवीको बहुत-से लोग महासरस्वती भी मानते हैं। अष्टभुजा-मन्दिरके पास एक गुफामें कालीदेवीका दूसरा भी मन्दिर है। वहाँसे चलनेपर भैरवी-कुण्ड और भैरवनाथका स्थान मिलता है। अष्टभुजासे दक्षिण आध मील आगे जंगलमें मङ्गला देवीका भी शक्तिपीठ है।

वैसे अष्टभुजाको कई लोग कृष्णानुजा एकानंशा रूपमें मानते हैं, जो कंसके हाथसे छूटकर विन्ध्यपर्वतपर आ बसी थीं। इसी प्रकार कालीखोहकी महाकालीको 'चामुण्डा' बतलाते हैं और विन्ध्यवासिनी भगवतीके मुख्य विग्रहको 'कौशिकी' मानते हैं; जिन्होंने शुम्भ-निशुम्भका वध किया था। इस प्रकार भक्तगण अपनी-अपनी भावनाओंके अनुसार इन तीनों प्रमुख देवीविग्रहोंको अनेक रूपोंमें मानते हैं। फिर भी विन्ध्यवासिनी देवीको महालक्ष्मी, कालीखोहकी देवीको महाकाली और अष्टभुजा देवीको महासरस्वतीके रूपमें मानकर इस त्रिकोणकी पूजा-उपासना, आराधना करनेवाले बहुसंख्यक साधक भक्त पाये जाते हैं और शक्तित्रयकी सपर्या कर अपने-अपने अभीष्ट पूर्ण करते हैं।

पराम्बासे याचना

उमेश्वरे उमामयी, रमेश्वरे रमामयी,
गिरीश्वरे प्रमामयी, क्षमामयी क्षमावताम्।
सुधाकरे सुधामयी, चराचरे विधामयी,
क्रियासु संविधामयी, स्वधामयी स्वधावताम्॥
जगत्सु चेतनामयी, मनःसु वासनामयी,
कवीन्द्रभावनामयी, प्रभामयी प्रभावताम्।
धनेषु चञ्चलामयी, कलावतां कलामयी,
शरीरिणामिलामयी, 'शिलामयी' सदावताम्॥

काशीके छियासी शक्तिपीठ

(डॉ० श्रीबदनसिंहजी वर्मा, एम्० ए० (हिन्दी-संस्कृत) बी० एड्०, पी०-एच्० डी०)

यों तो काशी 'देवपुरी' कहलाती है। कहा जाता है कि काशीके सभी कंकड़ शंकर हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्ड और काशीरहस्यको देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ असंख्य देवी और देवता विराजते हैं। 'शक्ति-उपासना-अङ्क'के संदर्भमें हम इन पुराणोंके आधारपर काशीके प्रमुख शक्तिपीठोंका यथासुलभ स्थान-निर्देशके साथ परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। इन पीठोंके दर्शन-पूजनकी फलश्रुतिका मोह लेख-गौरवके भयसे साभिप्राय संवरण किया जा रहा है।

'काशीखण्ड' और 'कृत्यकल्पतरु' में उद्धृत लिङ्गपुराणके वचनानुसार काशीमें ८६ शक्तिपीठ हैं, जिनमेंसे कुछका स्थान ज्ञात होता है तो कुछ आज भी अज्ञात हैं। कुछ पीठोंका स्थान-परिवर्तन हो गया है तो कुछ लुप्त भी हो गये हैं। ये ८६ शक्तिपीठ इस प्रकार वर्गीकृत किये जा सकते हैं—चण्डी १०, शक्ति ११, दुर्गा ९, गौरी १६, मातृका १२ और अन्य देवी-पीठ २८; प्राप्त सामग्रीके अनुसार इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

नौ चण्डी

१—**दुर्गा**—दुर्गा-कुण्डपर प्रसिद्ध, २—**उत्तरेश्वरी**—अज्ञात, ३—**अङ्गारेशी**—प्राचीन स्थान—कामाक्षामन्दिरके समीप। वर्तमान स्थान-नवाबगंजमें गोवाबाईके कुण्डपर 'पाँचकौड़ी' माताके नामसे प्रसिद्ध हैं।

४—**भद्रकाली**—मध्यमेश्वरके दक्षिण तथा मंदाकिनी (मैंदागिन) तालाबके उत्तर थीं। इस समय ये मध्यमेश्वर मुहल्लेमें एक मकानके अन्तर्गत स्थित हैं।

५—**भीष्मचण्डी**—लुप्त। सदर बाजारमें 'चण्डीदेवी' नामसे पुनः प्रतिष्ठित हैं।

६—**महामुण्डा**—ऋणमोचनके दक्षिण विश्वकर्मेश्वरके समीप वागीश्वरीमें इनका स्थान माना जाता है।

७—**शांकरी**—वरुणासंगमपर संगमेश्वरके पूर्व काशीखण्डमें इनका नाम 'शान्तिकरी गौरी' कहा गया है। वर्तमान मन्दिर ककरहाघाटके निकट वरुणातटपर है। राजघाटकोटमें खर्वविनायकके समीप भी इनकी मूर्ति है।

८—**अधःकेशी**—अज्ञात। ९.—**चित्रघण्टा**—रानीकुआँके समीप चन्दूनाईकी गलीमें प्रसिद्ध हैं।

इन नौ चण्डीपीठोंके अतिरिक्त काशीखण्डमें एक अन्य चण्डीका नामोल्लेख है, जिनका स्थान महालक्ष्मीके वायव्यकोणमें बतलाया गया है। इनकी वर्तमान मूर्ति भी महालक्ष्मीके समीप ही है, सम्प्रति ये 'शिखीकण्ठी' कही जाती हैं।

नव शक्ति

काशीखण्डमें नव शक्तियोंके नाम तो दिये गये हैं, परंतु उनका स्थान-निर्देश नहीं मिलता। सम्भवतः प्राचीनकालमें इनके स्थान इतने प्रसिद्ध थे कि उनका पता-ठिकाना बतलाना आवश्यक नहीं समझा गया। वहाँ क्रमशः पूर्वसे प्रारम्भ करके उत्तर होते हुए क्रमसे आग्नेय कोणतक इनकी स्थिति कही गयी है और सौभाग्यगौरीको मध्यमें बतलाया है। नव शक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—(१) शतनेत्रा, (२) सहस्रास्या, (३) अयुतभुजा, (४) अश्वारूढा, (५) गजास्या, (६) त्वरिता, (७) शववाहिनी, (८) विश्वा और (९) सौभाग्यगौरी।

काशीखण्डमें इनके अतिरिक्त दो अन्य शक्तियोंका भी उल्लेख मिलता है—(१०) कौमीशक्ति और (११) दीप्ताशक्ति।

दुर्गापीठ

शारदीय नवरात्रमें नव दुर्गाओंकी अनिवार्य यात्राके विषयमें कहा गया है—

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां भौमवारे विशेषतः।
नवरात्रं प्रयत्नेन प्रत्यहं सा समर्चिता॥

नाशयिष्यति विघ्नौघान् सुमतिं च प्रयच्छति।
शारदं नवरात्रं च सकुटुम्बैः शुभार्थिभिः॥
यो न सांवत्सरीं यात्रां दुर्गायाः कुरुते कुधीः।
काश्यां विघ्नसहस्राणि तस्य स्युश्च पदे पदे॥
(काशीखण्ड ७२ । ८२–८६)

दुर्गाकवचमें दुर्गाके जो नौ नाम निर्दिष्ट हैं, उनके साथ देवीके नौ पीठोंका सम्बन्ध स्थापित हो गया है और नवरात्रके नौ दिनोंमें प्रतिपदसे नवमी-पर्यन्त क्रमसे उनकी आराधना होती है। ये नौ दुर्गाएँ इस प्रकार हैं—

१–**शैलपुत्री**–शैलेश्वरी देवी। मढ़ियाघाट, वरुणा-तटपर स्थित हैं।

२–**ब्रह्मचारिणी**–दुर्गाघाटकी दुर्गा, जो जनसाधारणमें 'छोटी दुर्गाजी' (ब्रह्मचारिणी) के नामसे प्रसिद्ध हैं।

३–**चन्द्रघण्टा**–चित्रघण्टा, चौकके पास चन्दू-नाईकी गलीमें हैं।

४–**कूष्माण्डा**–दुर्गाकुण्डकी दुर्गा, जो 'बड़ी दुर्गा-जी' कहलाती हैं।

५–**स्कन्दमाता**–वागीश्वरीदेवीके मन्दिरमें, जैतपुरा मुहल्लेमें है।

६–**कात्यायनी**–सिंधियाघाटके ऊपर आत्मावीरेश्वरके मन्दिरमें हैं।

७–**कालरात्रि**––कालिका-गलीकी कालीजी हैं।

८–**महागौरी**—अन्नपूर्णाजी। विश्वनाथजीके निकट हैं।

प्राचीनकालमें अन्नपूर्णा-मन्दिरके पीछे 'भवानी'की पूजा होती थी और वे ही 'प्राचीन अन्नपूर्णा' हैं। इस समय भवानीकी मूर्ति अन्नपूर्णाजीके पासके राम-मन्दिरमें आ गयी है। कुछ लोग 'संकटाजी'को ही महागौरी मानते हैं।

९–**सिद्धिदात्री**––सिद्ध योगेश्वरी, जिनका वर्तमान नाम 'सिद्धेश्वरी' हो गया है, जो सिद्धेश्वरी महल्लेमें हैं। बहुत-से लोग सिद्धिमाताको सिद्धिदात्री मानते हैं और अधिकांश यहीं यात्रा होती है। यह पीठ टाउनहालके पास 'सिद्धिमाताकी गली' नामसे प्रसिद्ध है।

लिङ्गपुराणमें एक अन्य दुर्गापीठका उल्लेख है, जो भैरवेश्वरके समीप है। यहाँ दुर्गाजीकी नृत्यपरायणा मूर्ति थी। कालभैरव-मन्दिरके पश्चिममें गृहान्तर्गत 'शीतलाजी'के नामसे इस समय इनकी आराधना होती है, जैसा कि कहा गया है—

तत्र दुर्गा स्थिता भद्रे ममापि हि भयंकरा।
नृत्यमाना तु सा देवी लिङ्गस्यैव समीपतः॥
(कृत्यकल्पतरुसे पृष्ठ ८५९, लिङ्गपुराणका वचन)

गौरी-पीठ

काशीखण्ड (१०० । ६८–७२)के वचनानुसार काशी तथा वाराणसीमें नवगौरी-यात्राका वर्णन है। तदनुसार गोप्रेक्ष तीर्थमें स्नान करके मुख-निर्मालिका गौरीका, ज्येष्ठा-वापीमें स्नान करके ज्येष्ठा गौरीका, सौभाग्य-गौरी तथा शृङ्गारगौरीका, विशालाक्षीके समीप गङ्गामें स्नान करके विशालाक्षीका, ललितातीर्थ (ललिताघाट)में स्नान करके ललितागौरीका, भवानी-तीर्थ-में स्नान करके भवानीगौरीका, बिन्दुतीर्थ (पञ्चगङ्गाघाट)-में स्नान करके मङ्गलागौरीका और लक्ष्मीकुण्डमें स्नान करके महालक्ष्मीगौरीका दर्शन-पूजन करनेका विधान इस यात्रामें है। ये गौरीपीठ इस प्रकार हैं—

१–**मुखनिर्मालिकागौरी**—यह पीठ अपने प्राचीन स्थानपर नहीं है। इनकी वर्तमान मूर्ति गायघाटपर हनुमानजीके मन्दिरमें है।

२–**ज्येष्ठागौरी**––ज्येष्ठा-वापी अब लुप्त हो गयी हैं। इनकी मूर्ति भूतभैरव मुहल्लेमें है।

३–**सौभाग्यगौरी**––आदिविश्वेश्वरके घेरेमें अब इनकी मूर्ति है।

४–**शृङ्गारगौरी**—विश्वनाथजीके मन्दिरमें ईशानकोण-में जो देवीकी मूर्ति है, वही आज 'शृङ्गारगौरी'पीठ माना जाता है।

५–**विशालाक्षीगौरी**–मीरघाटपर धर्मेश्वरके समीप प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् विश्वनाथ विश्राम करते हैं और सांसारिक कष्टोंसे खिन्न मनुष्योंको विश्रान्ति देते हैं। देवी-भागवतमें काशीमें केवल इसी देवीपीठका उल्लेख है।

विशालाक्ष्या महासौधे मम विश्रामभूमिका ।
तत्र संसृतिखिन्नानां विश्रामं श्रावयाम्यहम् ॥
(काशीखण्ड ७९ । ७७)

६–**ललितागौरी**–ललिताघाटपर प्रसिद्ध है ।

७–**भवानीगौरी**–काशीका प्रधान देवीपीठ है । काशी-निवासियोंके योगक्षेमकी व्यवस्था 'भवानी' ही करती हैं । ये विश्वेश्वरकी पटरानी हैं । इन्हें 'महागौरी' भी कहा जाता है । अतः इनका नवदुर्गामें भी स्थान है । यथा—

योगक्षेमं सदा कुर्याद् भवानी काशिवासिनाम् ।
(काशीखण्ड ६१ । ३०)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके 'काशीरहस्य' (२० । १०२) के अनुसार भवानी ही अन्नपूर्णा हैं । भवानीके सम्बन्धमें जो स्तुति 'काशीरहस्य'में है, उससे भी यही भाव निकलता है, जैसा कि कहा है—

मातर्विशालाक्षि भवानि सुन्दरि
त्वामन्नपूर्णे शरणं प्रपद्ये ।

आजकल अन्नपूर्णाजीको ही 'भवानीगौरी'के नामसे पूजते हैं ।

८–**मङ्गलागौरी**–ये 'ललितागौरी'के नामसे प्रसिद्ध हैं । प्राचीन स्थान लुप्त है । वैसे सिन्धियाके बालाघाटके ऊपर मंगलागौरीका प्रसिद्ध पीठ है ।

९.–**महालक्ष्मीगौरी**–महालक्ष्मीगौरीकी वार्षिक यात्रा–भाद्रपद शुक्ल ८ से प्रारम्भ होकर आश्विनकृष्ण ८ तक (सोरही) सोलह दिनोंकी होती है । इस यात्रासे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, ऐसा काशीखण्डमें कहा गया है—

लक्ष्मीक्षेत्रं महापीठं साधकस्यैव सिद्धिदम् ।
साधकस्तत्र मन्त्रांश्च नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
सन्ति पीठान्यनेकानि काश्यां सिद्धिकराण्यपि ।
महालक्ष्मीपीठसमं नान्यल्लक्ष्मीकरं परम् ॥
(काशीखण्ड ७० । ६५–६७)

मिसिरपोखरा मुहल्लेमें महालक्ष्मीजीका मन्दिर है । वहीं लक्ष्मीकुण्ड और 'महालक्ष्मीश्वर' शिव भी हैं, जो अब सोरहियानाथ महादेव कहे जाते हैं । इन प्रसिद्ध तथा विशिष्ट गौरीपीठोंके अतिरिक्त वाराणसीमें अन्य गौरीपीठोंका भी उल्लेख मिलता है—

१०–**विश्वभुजागौरी**–धर्मेश्वरके घेरेमें, दिवोदासेश्वरके मन्दिरमें उनका स्थान है ।

११–**शान्तिकरीगौरी**–ये नौ चण्डियोंमेंसे एक हैं । इनका नाम 'शांकरी' भी है ।

१२–**अम्बिकागौरी**–अम्बिकागौरी अब लुप्त हैं, किंतु सतीश्वरकी पार्वतीकी पूजा उनके स्थानपर होती है ।

१३–**पार्वतीगौरी**–इनका स्थान 'पार्वतीश्वर' लिङ्गके समीप आदिमहादेव (आदिमहेश्वर) के घेरेमें है ।

१४–**विरमाक्षीगौरी**–विश्वनाथजीके मन्दिरके नैर्ऋत्य कोणमें जो देवीकी मूर्ति है, वही 'विरमाक्षीगौरी' हैं ।

१५–**विजयभैरवीगौरी**–इनका प्राचीन स्थान लुप्त है । भूतभैरवपर व्याघ्रेश्वरके समीप मकानान्तर्गत जो देवीपीठ है, उसमें इनकी पुनः स्थापना मानी जाती है । धूपचण्डीके मन्दिरमें भी जो पार्वतीकी मूर्ति है, उसे भी कुछ लोग इनकी मूर्ति मानते हैं ।

१६–**त्रिलोकसुन्दरीगौरी**–पितामहेश्वर-मन्दिरके द्वारपर जो देवीकी मूर्ति इस समय 'शीतला' नामसे पूजी जाती है, वही त्रिलोकसुन्दरीगौरी हैं ।

मातृपीठ

लिङ्गपुराण तथा काशीखण्ड दोनोंके अनुसार काशीमें दशाश्वमेधके उत्तरमें एक (अष्ट) मातृकापीठ था, जिसमें अष्टमातृकाएँ प्रतिष्ठित थीं । पर अब यह लुप्त है ।

अष्टमातृका-पीठ

आठों मातृकाओंके वाराणसीमें अलग-अलग पीठ भी हैं, जिनका स्पष्ट स्थान-निर्देश पुराणोंमें मिलता है ।

१–**ब्राह्मी**–ब्रह्मेश्वरके पश्चिम इनका स्थान-निर्देश है और आज भी वहीं हैं ।

२–**माहेश्वरी**–विश्वेश्वरके दक्षिण ज्ञानवापीके नैर्ऋत्यकोणमें जो पीपलका वृक्ष है, वहीं महेश्वरका मन्दिर था । उनके दक्षिण माहेश्वरीका स्थान था ।

इस समय विश्वनाथकी कचहरीमें ज्ञानवापीसे जानेका जो गलियारा है, उसमें उत्तरकी दीवारमें देवीकी मूर्ति है।

३-ऐन्द्री--इनका मन्दिर इन्द्रेश्वरके दक्षिण तथा मणिकर्णिका घाटपर स्थित तारकेश्वरके पश्चिम था। इस समय इनका स्थान अज्ञात है।

४-वाराही--ऋतुवाराहके समीप इनकी मूर्ति थी। इस समय दाल्भ्येश्वरके समीप उत्तरकी ओर मकानमें इनका मन्दिर है। इनकी आराधनासे विपत्तियोंसे रक्षा होती है। वाराणसीमें वाराहीघाटपर वाराहीदेवीका भी जाग्रत्पीठ आज भी विद्यमान है, जिनका दर्शन भोरमें पूजाके समयसे प्रातःकाल सूर्योदयतक ही होता है। बादमें पट पूरे समयके लिये बंद हो जाता है।

५-वैष्णवी--नारायणी नामसे गोपीगोविन्दके पश्चिम इनका स्थान बतलाया गया है। राजमन्दिरके उत्तर जो 'शीतलाजी' हैं, सम्भवतः वे ही 'नारायणी' हैं।

६-कौमारी-महादेवके पश्चिम स्कन्देश्वरके समीप कौमारीका स्थान कहा गया है। आजकल यह स्थान अज्ञात है।

७-चामुण्डा-वर्तमानमें इनकी मूर्ति लोलार्कके समीप अर्क-विनायकके मन्दिरमें है। प्राचीन स्थान अज्ञात है।

८-चर्चिका-मङ्गलागौरीके उत्तरमें चर्चिकाका स्थान कहा जाता है। किंतु इनकी मूर्ति अब 'ब्रह्मचारिणी' दुर्गासे मङ्गलागौरी जानेके मार्गमें एक मकानके अन्तर्गत स्थित है।

९-विकटा-इसे 'पञ्चमुद्रा मातृका' भी कहा जाता है। ये उपर्युक्त अष्टमातृकाओंके अतिरिक्त हैं। काशीखण्डमें अष्टमातृकाओंके अतिरिक्त तीन अन्य मातृकापीठ और भी हैं।

१-विकटा, २-पञ्चमुद्रा और ३-नारसिंही।

इनमें विकटाका स्थान सर्वोपरि है। इस समय 'विकटा' मातृकाकी 'संकटादेवी'के नामसे आराधना की जाती है। संकटादेवीके दर्शन-पूजनसे सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

तत्रैव विकटा देवी सर्वदुःखौघमोचनी।
पञ्चमुद्रं महापीठं तज्ज्ञेयं सर्वसिद्धिदम्॥
तत्र जप्ता महामन्त्राः क्षिप्रं सिध्यन्ति नान्यथा॥
(काशीखण्ड ९७। ४०-४१)

पद्मपुराणमें श्रीसंकटादेवीका स्थान आत्मा-वीरेश्वरके उत्तर तथा चन्द्रेश्वरके पूर्व कहा गया है और संकटाजीका वर्तमान मन्दिर आज भी वहींपर है।

यथा---

आनन्दकानने देवि संकटा नाम विश्रुता।
वीरेश्वरोत्तरे भागे पूर्वे चन्द्रेश्वरस्य च॥
(पद्मपुराण)

अन्य प्रमुख देवी-पीठ

वाराणसीमें उपर्युक्त गौरी, चण्डी, दुर्गा, शक्ति तथा मातृकाओंके अतिरिक्त २८ देवीपीठ और भी हैं, जिनका नामोल्लेख पुराणोंमें मिलता है। इनमें १-अमृतेश्वरी (अमृतेश्वरके समीप), २-कुब्जा (कुब्जाम्बरेश्वरके निकट), ३-विधिदेवी (विधीश्वरके पास), ४-द्वारेश्वरी (द्वारेश्वरके निकट, वर्तमानसमयमें दुर्गाजीके मन्दिरमें), ५-पार्वतीके पीठ, ६-शिवदूती हैं, ७-चित्रग्रीवा (केदारेश्वरके समीप),८-हरसिद्धि (सिद्धि-विनायकके समीप), ९-सिद्धलक्ष्मी, १०-हयकण्ठी (लक्ष्मीकुण्डपर), ११-तालजंघेश्वरी, १२-यमदंष्ट्रा, १३-चर्ममुण्डा, १४-महारुण्डा, १५-स्वप्नेश्वरी, १६-आशापुरीदेवी, १७-देवयानी, १८-द्रौपदी, १९-भीषणा भैरवी, २०-शुष्कोदरी देवी, २१-कुण्डेश्वरी देवी (इनमें अधिकांशके स्थान लुप्त हैं), २२-भागीरथी देवी (ललिताघाटपर भागीरथी), २३-मणिकर्णी

(मणिकर्णिका-कुण्डमें मणिकर्णिका देवीकी मूर्ति), २४—वाराणसीदेवी (वर्तमान कालमें त्रिलोचन महादेवके घेरेमें इनका स्थान है), २५—काशीदेवी (ललिताघाटपर इनकी मूर्ति विद्यमान है । कर्णघण्टाके पासमें भी काशीपुरा मुहल्लेमें भी एक काशीदेवी हैं), २६—निगडभञ्जनी (इनका 'बन्दी देवी' नाम सर्व-प्रसिद्ध है । दशाश्वमेध घाटपर इनका स्थान है ।), २७—छाग-चक्रेश्वरी (कपिलधारा तालाबके ऊपर इनकी मूर्ति है) और २८—अघोरेशी (कामेश्वरके समीप इनका स्थान कहा गया है) ।

योगिनी-पीठ

काशी तथा वाराणसीमें ६४ योगिनियोंका वास माना जाता है । इनमेंसे ६० योगिनियोंका स्थान चौसट्टी घाटपर राणामहलमें हैं । शेष ४ योगिनियोंके स्थानोंका पता नहीं है । शास्त्रानुसार सभी ६४ योगिनियोंका स्थान राणामहलमें ही होना चाहिये । किंतु राणामहलमें भी अब केवल ५-६ मूर्तियाँ ही रह गयी हैं, शेष सब लुप्त हैं । वैसे ६४ योगिनियोंकी समष्टिरूपा चतुःषष्टीदेवी (चौसट्टी) न्यूनतापूरिका हैं, जिनका दर्शन धुरण्डी (चैत्र कृष्ण प्रतिपद्) के दिन हजारों भावुक प्रतिवर्ष किया करते हैं । नवरात्रमें इनकी आराधना विशेष फलदायिनी मानी गयी है । यथा—

आरभ्याश्वयुजः शुक्लां तिथिं प्रतिपदं शुभाम् ।
पूजयेन्नवम यावन्नरश्चिन्तितमाप्नुयात् ॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः ।
क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृज्जनैः ॥
(काशीखण्ड ४५ । ४८-५२)

मनियरकी स्वर्णमयी आद्याशक्ति

वाराणसी-मण्डलके बलिया जनपदमें सरयूतट-स्थित 'मनियर' स्थानपर देवीका मन्दिर है । इसमें आद्याशक्ति भगवतीकी स्वर्णमयी मूर्ति है । कमलपर विराजमान देवीकी चतुर्भुजी मूर्तिके हाथोंमें शूल, अमृत-कलश, खप्पर और अभयमुद्रा है । कहा जाता है कि इसके समीप ही सुमेधा ऋषिका आश्रम था । जहाँ राजा सुरथ और समाधि वैश्यने देवीकी कठोर उपासना कर उनका प्रसाद प्राप्त किया, जो 'दुर्गा सप्तशती'के मुख्यपात्र हैं । सरयूतटपर सुरथराजाकी मृण्मयी मूर्ति भी है ।

प्रयाग—क्षेत्रके शक्ति-पीठ

त्रिवेणी—को प्रयाग—'तीर्थराज' कहा जाता है । यहाँ सर्वप्रमुख प्रवाहमान मूर्त शक्तिपीठ 'त्रिवेणी' ही हैं, जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती—तीनों महाशक्तियाँ एक दूसरीसे गले मिलती हैं । भारतका कोई भी ऐसा आस्तिक भावुक न होगा, जो जीवनमें एकबार इस जाग्रत् महाशक्तिपीठमें पहुँचकर आचमन, स्नानसे स्वयम्को कृतार्थ करनेकी उत्कण्ठा न रखता हो ।

अलोपी देवी—इलाहाबाद चौकसे दारागंजकी ग्राण्टट्रंक सड़कपर दारागंजसे ४ फर्लांग पूर्व अलोपी देवीका पीठ-स्थान है । यहाँ प्रायः मेले लगे रहते हैं । अलोपी देवी वस्तुतः ललितादेवी हैं । माताका दर्शन पलनेमें झूलते हुए होता है ।

ललिता देवी—'तन्त्रचूडामणि' के अनुसार ५१ शक्तिपीठोंमेंसे प्रयाग-स्थित यह एक शक्तिपीठ है । कहा जाता है कि यहाँ सतीकी हस्ताङ्गुलि गिरी थी । यहाँकी शक्ति ललिता और देव भव-भैरव हैं । प्रयागमें ललिता देवीकी दो मूर्तियाँ मिलती हैं—एक अक्षयवट किलेके पास, दूसरी मीरपुरमें । किलेमें ललितादेवीके समीप ललितेश्वर महादेव हैं । परिनिष्ठित विद्वानोंके मतानुसार यहाँका शक्तिपीठ अलोपी देवी ही है ।

कड़ाकी देवी—इलाहाबाद जनपदमें कड़ा नामक एक स्थान है । यहाँ 'कड़ेकी देवी' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । संत मलूकदासकी आराध्या देवी होनेके कारण यह स्थान साधु-संतोंमें अत्यन्त आदरणीय माना जाता है ।

*

बाँगरमऊका राजराजेश्वरी-पीठ

कानपुर-सेन्ट्रल स्टेशनसे जो लाइन बालामउ जाती है, उसमें बाँगरमऊ स्टेशन पड़ता है। यहाँ एक अद्भुत मन्दिर बना है, जो तन्त्रशास्त्रकी रीतिसे बनाया गया है। यह मन्दिर राजराजेश्वरी श्रीविद्या-मन्दिर कहा जाता है। मुख्य मन्दिरके भीतर जगदम्बाकी अष्टधातुकी मनोहर मूर्ति है। आसनके नीचे चतुर्दल कमलपर ब्रह्माजी स्थित हैं। कमलदलोंपर—'वं' 'शं' 'षं' 'सं'—ये बीजाक्षर अङ्कित हैं। उसके बाद षटदलकमलपर विष्णु भगवान् स्थित हैं। इसके दलोंपर 'बं' 'भं' 'यं' 'रं' 'लं' ये—अक्षर उत्कीर्ण हैं। बीचमें षोडशदलकमलपर सदाशिव विराजमान हैं। दलोंपर 'अ' से 'अः' तक सोलह स्वर-वर्ण अङ्कित हैं। इसके बाँयी ओर नीलवर्ण दशदल पद्म-पर 'डं' से 'फं' तकके वर्णोंके साथ रुद्रकी मूर्ति है। आगे पार्श्वमें द्वादश कमल रक्तकमलपर 'कं' से 'ठं' पर्यन्त वर्ण तथा ईश्वरमूर्ति हैं। इन पञ्चदेवताओंके ऊपर श्वेत कमल है। उसमें 'हं' 'क्षं' बीजाक्षर हैं तथा सदाशिव लेटे हैं। सदाशिवकी नाभिसे निकले कमलपर जगदम्बाकी मूर्ति विराजमान है।

कुण्डलिनीयोगके आधारपर बना अपने ढंगका यह एक ही मन्दिर है।

महात्रिपुरसुन्दरीपीठ—कानपुर परिक्षेत्र मण्डलके अन्तर्गत फरूखाबाद जिलेके तिरवाँ नामक स्थानमें एक चबूतरेपर संगमरमर पत्थरपर बने एक विशाल श्रीयन्त्रपर भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सुन्दर मूर्ति बनी हुई है।

केन्द्रिय बिन्दुके ऊपर पाशाङ्कुश धनुर्बाणधरा चतुर्भुजा भगवतीकी बड़ी ही सुन्दर मूर्ति है। जन साधारण इसे अन्नपूर्णा-मन्दिर कहते हैं। फर्रूखाबादमें शक्तिपीठोंके रूपमें इसकी विशेष मान्यता है। जिले-के कान्यकुब्ज (कन्नौज) नगरमें भी अनेक प्राचीन शक्तिपीठ पाये जाते हैं। इस मन्दिरको एक साधक महात्माके आदेशानुसार लगभग सौ-डेढ़-सौ वर्ष पूर्व इसे तिरवाँ-नरेशने बनवाया है।

लिङ्गधारिणी (ललिता) शक्तिपीठ

(श्रीरामनरेश दीक्षित शास्त्री)

पुराणोंमें १०८ महाशक्तिपीठोंके नामोंमें एक नाम लिङ्गधारिणी देवीका भी आता है—

'प्रयागे ललितादेवी नैमिषे लिङ्गधारिणी।'

भगवती लिङ्गधारिणीका पीठ सुप्रसिद्ध ऋषिक्षेत्र नैमिषारण्य (नीमसार) में है। जहाँ लखनऊ-बालामऊ ब्राँच लाइनसे सीतापुर जाया जाता है। लिङ्ग धारण करनेवाली देवी 'लिङ्गधारिणी' कहलाती हैं और हैं भी ऐसा ही। माता लिङ्गधारिणीके मस्तकपर भगवान् शंकरका लिङ्ग विराज रहा है। सतीके मृत देहको विष्णुद्वारा सुदर्शन-चक्रसे खण्ड-खण्ड करनेपर जिन-जिन स्थानोंपर वे अङ्गखण्ड और सतीके आभूषणादि गिरे, वे शक्तिपीठोंके रूपोंमें प्रतिष्ठित हो गये। कहा जाता है कि ऐसे ही शक्तिपीठोंमें यह भी एक स्थान है, जहाँ सतीके नेत्र-पलक गिरे थे। यही कारण है कि मन्दिरके निकटके मालाकार पूजनके वस्त्र, माल्यादिके साथ अँखियाँ (नेत्र) भी देवीको चढ़ानेके लिये दिया करते हैं। यहाँ ये आँखें सोने-चाँदीकी भी बिकती हैं, जो देवीको चढ़ायी जाती हैं।

देवीके नेत्रोंमें विलक्षण सम्मोहन पाया जाता है। इसी कारण यहाँ ये देवी 'ललिता' नामसे विख्यात हैं।

दोनों नवरात्रोंमें साधकों एवं भक्तजनोंकी अपार भीड़ होती है और अनेक साधक दुर्गासप्तशती, देवीभागवत आदिके पाठकर माताको प्रसन्न करते हैं ।

श्रीचक्रतीर्थ

एक पौराणिक अनुश्रुति है कि जिस समय सभी देवगण तपस्या तथा भगवत्कथाके योग्य स्थान ढूँढ़ते हुए भगवान् विष्णुके चक्रके पीछे-पीछे यहाँ पहुँचे तो उस समय वह चक्र यहाँ गोमती नदीमें गिरकर बहुत नीचे चला गया । यह देख देवताओंमें हाहाकार मच गया । देवगण भगवती लिङ्गधारिणी ललिताम्बादेवीकी शरण गये और माताने कृपाकर चक्रको यहीं रोक लिया । यहाँ एक जलस्रोत उत्पन्न हो गया, जो 'श्रीचक्रतीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। प्रतिमास अमावास्या और सोमवतीके पर्वपर भारी संख्यामें तीर्थयात्री यहाँ स्नानकर पुण्य प्राप्त करते हैं । कहा जाता है कि यहींपर भण्डासुर दैत्यका देवीद्वारा वध हुआ था ।

योगिनीतन्त्र और शक्तियामल आदि ग्रन्थोंमें देवीके माहात्म्यका सुन्दर वर्णन मिलता है, जिसके स्वाध्यायसे भक्तोंका मन पवित्र होकर और तदनुसार अनुष्ठानसे मनोवाञ्छित पूर्ण होता है ।

गोरखपुरकी श्रीकुलकुल्या देवी

बौद्धोंके प्रधान तीर्थ कुशीनगर (कसया) से छः मील दूर अग्निकोणमें 'कुलकुल्या' एक स्थान है । यहाँ 'कुल्या' नामकी एक नदी बहती है, जो वनका मध्यभाग कहा जाता है । इसी नदीके तटपर एक महामहिम श्रीदुर्गाका मन्दिर है । कुल्यानदी तटपर प्रतिष्ठित होनेसे देवीका नाम 'कुलकुल्या' (कुलकुला) हो गया है । विज्ञजनोंके अनुसार शास्त्रोंमें भगवतीका एक नाम 'कुरुकुल्ला' आता है । सम्भव है, उसीका अपभ्रंश 'कुलकुल्या' (कुलकुला) चल पड़ा हो । इसी नामके आधारपर उक्त वनको भी 'कुलकुला' स्थान कहा जाता है ।

कहते हैं कि देवी मन्दिरमें रहना पसंद नहीं करतीं । इसी कारण एक छोटी चहारदीवारीके अन्दर एक चबूतरेपर इनका स्थान है ।

यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रके नवरात्र तथा रामनवमीपर सप्ताहों-तक बहुत बड़ा मेला लगता है । यह देवी अत्यन्त जाग्रत् हैं । यहाँ पशुबलि नहीं दी जाती । आज भी अनेक साधक देवीकी शरणमें रहकर जप-उपासना करते रहते हैं ।

देवीके स्थानसे दो-तीन बीघे दूर दक्षिणकी ओर कुलकुलेश्वरनाथका मन्दिर भी है ।

भगवती पाटेश्वरी—शक्तिपीठ

फैजाबाद मण्डलमें गोरखपुर–गोण्डा छोटी लाइनपर स्थित तुलसीपुर स्टेशनके पास देवीपाटन गाँवमें भगवती पाटेश्वरीका मन्दिर है । कहते हैं कि सतीके पट यहाँ गिरे थे । यह भी किंवदन्ती है कि महाभारतकालमें कर्णने पाटेश्वरीकी स्थापना की थी । वैसे नाथ-पंथी सम्प्रदायवाले इसे अपनी गद्दी मानते हैं । (इसी अङ्कमें पृष्ठ सं०९४पर श्रीगोरखनाथपीठके महन्त श्रीअवेद्यनाथ-जीका देवीके विषयमें विशेष लेख पठनीय है) ।

बाँदाका महेश्वरी-पीठ

झाँसी-मण्डलके अन्तर्गत बाँदाका महेश्वरी देवीका मन्दिर भी अत्यन्त प्राचीन शक्तिपीठ बताया जाता है। कहा जाता है कि इस स्थानपर बड़े-बड़े उपासकोंने तपस्या की है। इसीके समीप वामदेवेश्वर पर्वतपर जो अपूर्व शिवलिङ्ग है, उसीसे इस नगरका नाम 'बाँदा' पड़ा है।

महोबाका चण्डिका-पीठ

मानिकपुरसे ९५ और बदौसासे ५९ मील दूर महोबा-स्टेशन है। स्टेशनसे कुछ दूरीपर कीर्तिसागर नामक बड़ा सरोवर है। इसीके समीप मदनसागर है। इसके अग्निकोणपर कण्ठेश्वर महादेव और बड़ी चण्डिकादेवीका पीठ है। बड़ी चण्डिकादेवीका श्रीविग्रह १२ फुट ऊँचा है और भगवती अष्टभुजाके रूपमें विराजती हैं।

मदनसागरसे पश्चिम गोखार पर्वत है। पर्वतसे बस्तीकी ओर आते समय रावण-स्थानमें १२ फुट ऊँची हाथमें दण्ड लिये भैरवनाथकी मूर्ति है। मदन-सागरके तटपर एक और अष्टभुजादेवीका मन्दिर है, जिन्हें लोग 'छोटी भवानी' कहते हैं। बस्तीके प्रारम्भमें भी एक भैरवनाथकी मूर्ति है, जिसे लोग अब 'सिंह-भवानी' कहते हैं। दोनों चण्डिका-पीठोंपर दूर-दूरसे शक्तिके उपासक अनुष्ठानादिके लिये आते रहते हैं।

मथुरा-क्षेत्रके प्रमुख शक्तिपीठ

(श्रीकृष्णकुमार श्रोत्रिय, 'सुशान्त')

आगरा-मण्डलमें प्रमुख रूपसे व्रज—मथुरा-वृन्दावनके अन्तर्गत ही शक्तिपीठोंका उल्लेख है। यद्यपि मथुरा-वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णकी ही भक्तिधारा अजस्ररूपमें सर्वत्र प्रवाहित है, तथापि शक्ति-उपासनाकी परम्परा भी यहाँ विद्यमान है। देवीभागवतकी मान्यताके अनुसार आदिशक्ति, मूलप्रकृति स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी आह्लादिनी-शक्ति भगवती श्रीराधारानीने ही अपने अप्रतिम अस्तित्वसे समस्त व्रज-मण्डलको ही नहीं, अपितु पूरे प्रदेश और सम्पूर्ण देशको ही शक्ति-सम्पन्न बना दिया है। व्रजमें श्रीराधाकी कात्यायनी-स्वरूपमें भी उपासना होती है।

महाविद्या-शक्तिपीठ

मथुराके प्रधान शक्तिपीठोंमें महाविद्याका प्राचीन मन्दिर प्रमुख रूपसे उल्लेखनीय है। मथुरामें यह शक्ति-पीठ एक ऊँचे टीलेपर अवस्थित है। भगवतीकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है। विशेषतया उनके नेत्रोंकी ज्योति दर्शनीय है।

कंकाली (कंसकाली) पीठ

मथुरामें भूतेश्वर महादेवके पास कंकाली टीला है। टीलेके ऊपर भगवती कंकाली (कंसकाली) का मन्दिर है। टीलेकी खुदाईसे अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। बताया जाता है कि ये कंकाली वही देवी हैं, जिन्हें कंसने देवकीकी कन्या समझकर उठा करके पटक कर मारना चाहा था, किंतु वह उसके हाथसे छटक कर आकाशमें चली गयीं, और देवीरूपमें प्रकट होकर कंसको चमत्कृत कर दिया। इन्हें 'कृष्णकाली' भी कहते हैं। यह भी मथुराका प्रसिद्ध देवी-पीठ है। यहाँ श्रद्धालु भक्तजन पूजा-उपासना करते हैं।

चामुण्डा-शक्तिपीठ

मथुराका यह प्राचीन सुप्रसिद्ध शक्तिपीठ है। 'तन्त्र-चूडामणि'के अनुसार इक्यावन महापीठोंमें मथुरामें 'मौली'-शक्तिपीठ माना गया है। यहाँ सतीके केशपाशका पतन हुआ है। यह स्थान 'चामुण्डा' कहलाता है। इस स्थानपर महर्षि शाण्डिल्यने साधना की थी।

बरसानाका श्रीराधारानी-पीठ

बरसाना व्रज (मथुरा) का वह स्थान है, जहाँ भारतके सभी कृष्णभक्तों, विशेषतया युगलछविके भावुक भक्तोंका साधना-केन्द्र है। कारण, यहाँ उनके आराध्य-प्रभुकी सर्वस्व श्रीराधारानीका दिव्य पीठ है।

बरसानेको वरसानु, ब्रह्मसानु और वृषभानुपुर कहा भी जाता है। यह स्थान वृषभानु और कार्तिरानीकी राजधानी रहा है। यहीं एक पहाड़ीपर सीढ़ियाँ बनाकर दुर्गसदृश मनोरम भव्य मन्दिर बना है, जहाँ नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी आह्लादिनी-शक्ति भगवती राधारानीका श्रीविग्रह विराजमान है।

यह पहाड़ी ब्रह्माजीका रूप माना जाता है। जबकि नन्दगाँवकी पहाड़ी शिवके रूपमें और गोवर्धनपर्वत-विष्णुके रूपमें मान्य है। यहाँ मोरकुटी, मानगृह (गढ़) है; जहाँ मानवती राधारानीको भगवान् श्री-कृष्णचन्द्रने मनाया था। बरसानेके दूसरी ओर एक छोटी पहाड़ी है और इन दोनों पहाड़ियोंकी द्रोणी (खौ) में बरसाना बसा है।

भादों सुदी अष्टमीसे चतुर्दशीपर्यन्त यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। इसी प्रकार फाल्गुन सुदी अष्टमी, नवमी और दशमीको सुप्रसिद्ध 'होली-लीला' होती है। होलीके अवसरपर यहाँ जो माधुर्य बरसता है, वह अनिर्वचनीय है। इस उत्सवकी यह विचित्र लीला है कि व्रजवासिनी स्त्रियाँ पुरुषोंपर लठमार करती हैं और पुरुष उनके वारको बचाते रहते हैं।

वृन्दावनका कात्यायनी-पीठ

'व्रजे कात्यायनी परा'—अर्थात्—व्रज-वृन्दावनमें ब्रह्मशक्ति महामाया कात्यायनी विराजती हैं। भारतके १०८ शक्तिपीठोंमें यह भी एक प्रमुख पीठ है। भागवतके (२२वें अध्यायमें) उल्लेख है कि हेमन्तके प्रथम मासमें नन्दव्रजकी कुमारियोंने हविष्यान्न भक्षण कर भगवती कात्यायनीका विधिवत् व्रत इसीलिये किया था कि नन्दगोप-कुमार व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र पतिरूपमें उन्हें प्राप्त हों। और, भगवतीने भी उनकी यह साध पूरी करके उन्हें अपने प्रियतम प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके साथ रासरसके दिव्य आस्वादनका सुख दिया।

भगवती कात्यायनीका यह व्रत और पूजन गोपियोंने व्रज-वृन्दावनके 'राधाबाग'नामक इसी स्थानपर किया होगा। इतना महत्त्वपूर्ण पीठ कालके प्रभावसे लुप्त हो गया था, जिसका पुनरुद्धार परमयोगी महात्मा ब्रह्मलीन केशवा-नन्दजी महाराजने भगवतीकी प्रेरणासे किया। और, अष्टधातुनिर्मित भगवती कात्यायनीके सुन्दर श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा १ फरवरी सन् १९२३ ई० (माघपूर्णिमा)को काशी, बंगाल तथा अन्यान्य स्थानोंके चुने हुए वैदिक विद्वान ब्राह्मणोंद्वारा वैष्णवी-विधिके साथ सम्पन्न करायी। भगवतीके साथ पञ्चानन शिव, विष्णु, सूर्य और गणेशके श्रीविग्रह देवी-पञ्चायतनके रूपमें स्थापित कर इस पीठका उद्धार किया। योगिराज श्रीकेशवानन्दजीके द्वारा पीठकी प्रतिष्ठापनाके पश्चात् उनके उत्तराधिकारी सिद्ध महात्मा श्रीसत्यानन्दजी महाराजने पीठके विकास और विस्तारमें विशेष योग दिया। वर्तमानमें स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज भी उसी निष्ठासे पीठका गौरव बढ़ा रहे हैं।

शाकम्भरी (शताक्षी) शक्तिपीठ

(आचार्य श्रीरेवानन्दजी गौड़)

दुर्गासप्तशती (११ । ४७-४८) में बहुचर्चित शाकम्भरी भगवती या शताक्षीदेवीका पीठ मेरठमण्डलके सहारनपुर रेलवे-स्टेशनसे ४० कि मी० उत्तर शिवालिक पर्वतकी तलहटीमें स्थित है। सहारनपुरसे २४ कि०-मी० दूर 'बहेट' कस्बा इस पीठका प्रवेशद्वार है। पीठसे एक कि० मी० पूर्व 'भूरादेव' (बटुक भैरव) का विशाल मन्दिर है। यह शाकम्भरी-पीठ हरियाणा, हिमाञ्चल, देहरादून, चकरौताकी सीमासे आवृत है। मन्दिरमें उपलब्ध कुछ पाषाणखण्ड मराठाकालके प्रतीक बताये जाते हैं।

शाकम्भरीदेवीके आविर्भावके विषयमें अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उनमें बहुचर्चित जनश्रुतिके अनुसार कहा जाता है कि गुर्जर जातिका कोई जन्मान्ध ग्वाला यहाँ गायें चराया करता था, तब एक दिन उसे दिव्यवाणी सुनायी पड़ी—'यह हमारा पीठ है, इसका पूजन-अर्चन करो।' (भक्त) ग्वालेने पूछा—तुम कौन हो ?' समाधान मिला—'शक्तिरूपा देवी।' भक्तने पुनः कहा—'मुझ अन्धेको नेत्र दें, तभी तो आप कृपामयी शक्तिका मैं दर्शन कर सकूँगा।' 'तथास्तु' कहकर दिव्यवाणी शान्त हो गयी।

तत्काल ही अन्धे भक्तको सब कुछ दिखायी पड़ने लगा। उसने यत्र-तत्र सर्वत्र माताकी दिव्यताका प्रचार किया। अकस्मात् उसकी लौटी हुई दृष्टि देखकर लोग विश्वस्त हो गये और माताके दर्शन-पूजनकी परम्परा चल पड़ी। माताकी मूर्तिके सामने उस भक्तकी समाधि आज भी विद्यमान है। कहा जाता है, मन्दिरका इतिहास लगभग तीनसे पाँच शतक प्राचीन है। प्राचीन समयसे ही घनघोर बीहड़ जंगलमें स्थित इस पीठमें अब आजके युगकी सारी सुविधाएँ माताके भक्तोंने जुटा दी हैं। पक्का मार्ग, विद्युत्, जलनिगमकी सुविधा, धर्मशाला, टेण्टोंका छोटा-सा बाजार आदि सुविधाओंसे अब यात्रियों-को कोई कष्ट नहीं होता।

भगवती शाकम्भरीका मन्दिर भी बन गया है, जिसपर स्वर्णकलश शोभा दे रहा है। मन्दिरके भीतर संग-मरमरका चबूतरा है, जिसपर उत्तराभिमुख भीमादेवी और पूर्वाभिमुख भ्रामरी, शाकम्भरी, शताक्षीके श्रीविग्रह ३-४ फुटके हैं, जो घृत और सिन्दूरसे लिप्त हैं। भ्रामरी और शाकम्भरी देवीके मध्य छोटी-सी गणेशजीकी मूर्ति भी हैं। रंग-बिरंगी वेषभूषा, आभूषण, सोने-चाँदीके पात्र झिलमिलाते रहते हैं। माताके दोनों ओर घृतके अखण्ड-दीप जलते रहते हैं। शाकम्भरीपीठके चारों ओर, चारों दिशाओंमें कमलेश्वर, इन्द्रेश्वर, शाकेश्वर और वटेश्वर महादेवके मन्दिर हैं। पर्वतपर और भी कई मन्दिर हैं।

'देवी-माहात्म्य' या 'दुर्गासप्तशती' (११ । ४७-४८) के अनुसार प्राचीन कालमें सौ वर्षोंतक वर्षा न होनेके कारण जलाभावसे धन-धान्यका अत्यन्त अभाव हो गया और ऋषि-मुनियोंके नित्य-नियम भी संकटाकीर्ण हो गये। संसार संतप्त हो उठा। तब जगदम्बाने अवतरित होकर शत-नेत्रोंसे उस विषम स्थितिको दयार्द्र-दृष्टिसे देखा और अपने शरीरसे एक प्रकारका विशेष शाक उत्पन्न किया एवं उससे जगत्‌का भरण-पोषण किया। तभीसे माँके 'शाकम्भरी' और 'शताक्षी' नाम चल पड़े।

दुर्गासप्तशतीके मूर्ति-रहस्यमें बताया गया है कि शाकम्भरी देवीके शरीरका वर्ण नील है, नीलकमलके समान नेत्र हैं, नाभि बहुत गहरी है, उदरपर तीन वलियाँ सुशोभित हो रही हैं। जो भक्त इस शक्तिका स्तवन, ध्यान, जप, पूजन, नमन करता है, उसे शीघ्र ही अन्न-पान और अक्षय धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

देवबन्द-दुर्गापीठ—शाकम्भरी पीठसे कुछ मील दूरीपर प्रसिद्ध कस्बा—'देवबन्द' में भगवती दुर्गाका मन्दिर है। मुसलमानी साम्राज्यकालमें मूल नाम 'देवीवन' से 'देवबन्द' बन गया।

मन्दिरके चारों ओर प्रकृतिका विशाल प्राङ्गण है। सामने १८ बीघेका मनोहर तालाब (देवीकुण्ड) है जो वर्षमें एक बार गङ्गानहरके जलसे भर दिया जाता है। तालाबके दोनों किनारोंपर घाट बने हैं। यहाँ चैत्रशुक्ला चतुर्दशीको बड़ा मेला लगता है।

शाकम्भरीपीठ और दुर्गापीठके सम्बन्धमें जनश्रुति है कि दोनों देवियाँ सगी बहनें थीं। आज भी शाकम्भरी मेलेमें मन्दिरके ठीक सामने देवबन्दनिवासी ही ठहर पाते हैं। इससे दोनों देवियोंके आपसी सम्बन्धकी किंवदन्तीको पुष्टि मिलती है।

मायादेवी शक्तिपीठ

हरिद्वारमें विष्णुघाटसे थोड़ा दक्षिण भैरव-अखाड़ेके पास भैरवजी, अष्टभुजाजी, भगवान् शिव और त्रिमस्तकी दुर्गा देवीकी मूर्तियाँ हैं, जिनके एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें नरमुण्ड है। मायादेवीका यह प्राचीन शक्तिपीठ है। जहाँ अनेक साधक साधना करते रहते हैं।

चण्डीदेवी शक्तिपीठ—नीलपर्वतके शिखरपर चण्डीदेवीका मन्दिर है। चण्डीदेवीकी चढ़ाई कुछ कठिन है जो करीब २ मीलकी है। चढ़ाईके दो मार्ग हैं, पहला मार्ग गौरीशङ्कर महादेवके मन्दिरसे होकर जाता है जो कठिन है और दूसरा कामराजकी कालीके मन्दिरके पाससे होकर जो सुगम है। कहते हैं कि देवीके दर्शनके लिये रात्रिमें सिंह आता है, इसीलिये रात्रिमें पंडे-पुजारी कोई भी नहीं रहते। भगवतीका यह शक्तिपीठ अत्यन्त जाग्रत् माना जाता है।

पार्वती और मनसादेवी—हरिद्वारमें दक्षेश्वरके स्थानपर पार्वतीदेवीका पीठ है। बताया जाता है कि यहीं सती योगाग्निद्वारा भस्म हुई थीं, जिससे प्रधान शक्तिपीठोंकी उत्पत्ति हुई।

इसके अतिरिक्त यहाँ बिल्वपर्वतवासिनी मनसादेवीका भी शक्तिपीठ है। इस प्रकार इस पुण्यक्षेत्रमें एक शक्ति-त्रिकोण बन गया है। चण्डीदेवी, पार्वती और मनसादेवी—इन तीनों देवियोंके स्थानोंका प्राकृतिक सौन्दर्य अवर्णनीय है।

कुमाऊँ (कूर्माचल) क्षेत्रके शक्तिपीठ

नयनादेवी—उत्तरप्रदेशके कूर्माचल-मण्डलमें प्रसिद्ध नैनीताल नगरके मध्य एक अत्यन्त लम्बी-चौड़ी झील है। जिसके दोनों छोरोंकी 'तल्लीताल' और 'मल्लीताल' संज्ञाएँ हैं। स्कन्दपुराणके अनुसार इस ह्रदका नाम 'त्रिऋषि-सरोवर' है और इससे सम्बद्ध तीन ऋषि हैं—अत्रि, पुलस्त्य और पुलह। इसी ह्रदके मल्लीतालके तटपर नयनादेवीका प्राचीन मन्दिर शक्तिपीठ है। कुमाऊँ—प्रदेशमें इस देवीका अत्यन्त समादर है और उपासना की जाती है।

पूर्णागिरि पीठ—कुमाऊँ-प्रदेशके इस शक्तिपीठमें पहुँचनेके लिये पीलीभीत होकर रुहेलखण्ड-कुमाऊँ रेलवेकी ब्राँच लाइनसे टनकपुर मण्डी पहुँचना पड़ता है। वहाँसे ३-३॥ मील समतल भूमि पार करनेपर चढ़ाई शुरू होती है। तीन जलसम्पात पार करनेपर बाँसीकी चढ़ाई प्रारम्भ होती है और टुन्नासमें पहुँचकर यात्री विश्राम करते हैं जो मंडीसे १०—१२ मील पड़ता है। दूसरे दिन पुनः यात्रा प्रारम्भ करनी पड़ती है। डेढ़ फर्लांग चढ़ाईके बाद श्रीकालीके स्थानका दर्शन कर उतरनेपर प्रधान पीठकी पर्वतश्रेणी मिलती है, जिनमें एक पर्वत तो बिलकुल नंगा है। घास, वृक्ष, लता आदि कुछ भी नहीं होता। इधर कुछ वर्षोंसे रास्ता और सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं और पकड़कर चढ़नेके लिये जंजीरें भी लगा दी गयी हैं। इस

पहाड़के समाप्त होनेपर एक छोटा-सा चबूतरा मिलता है, जो थोड़ा नीचा-ऊँचा है। यहाँ कोई मन्दिर या मकान आदि नहीं हैं। केवल लिङ्ग और त्रिशूलादि दिखायी पड़ते हैं। यही पूर्णागिरिका प्रधान पीठ है जिसकी पूजा-अर्चा की जाती है। पीठके ठीक बगलमें एक वृक्ष है, जिसमें बहुत-से घण्टे लटक रहे हैं। यह वृक्ष अज्ञात कालसे यहाँ खड़ा है। इसकी डालें सूखकर गिर पड़ी हैं। इसमें फल, फूल, पत्ते भी कभी दिखायी नहीं पड़ते, फिर भी यह अटल भावसे माताकी सेवा कर रहा है।

कौशिकी देवी—अल्मोड़ा नगरमें स्थित कौशिकी देवीका स्थान भी शक्तिपीठोंमें अन्यतम माना जाता है। अल्मोड़ाकी पहाड़ी, भौगोलिक स्थितिका तालमेल स्कन्दपुराणके मानसखण्डमें वर्णित **'कौशिकी शाल्मलीमध्ये पुण्यः काषायपर्वतः'** के साथ होनेसे नगरसे ८ मील दूर स्थित कौशिकीका स्थान दुर्गासप्तशतीमें वर्णित कौशिकी देवीसे मिलता-जुलता है।

नन्दादेवी—जिला अल्मोड़ामें नन्दादेवीका प्राचीन और पौराणिक (केदारखण्ड, मा० पु०) शक्तिपीठ है। यहाँ सदैव यात्रियोंकी भीड़ रहती है। नवरात्रमें यहाँ विशेष महोत्सव मनाया जाता है।

कालिकादेवी—अल्मोड़ा-पिथौरागढ़में भगवती कालिका देवीका प्राचीनतम पीठ है जो यहाँके लोगोंका प्रमुख श्रद्धाकेन्द्र कहा जाता है। यहाँ दूर-दूरसे यात्री आते हैं। और अपनी-अपनी भावनानुसार कामनाकी पूर्ति पाते हैं। यह एक सिद्धपीठ है।

इनके अतिरिक्त इस मण्डलमें वाराहीदेवीका भी एक सिद्धपीठ है।

उत्तराखण्ड (गढ़वाल)के शक्तिपीठ

(संकलनकर्ता—स्वामी श्रीमाधवाश्रमजी, दण्डी स्वामी श्रीशुकदेवजी महाराज तथा श्रीगोविन्दरामजी शास्त्री)

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके अवतारोंके सम्बन्धमें 'हिमालय' शब्द कई स्थानोंपर आता है। जैसे—**'हिमाचलसुता', 'रूपं धृत्वा हिमाचले', 'हैमवती'** आदि। इससे ज्ञात होता है कि जहाँतक हिमालय फैला है, देवी विभिन्नरूपोंमें प्रकट हुई हैं। गंधमादन, कैलाश, अलका, हिमालय, केदार, बद्री आदि पर्वतोंसे आच्छन्न प्रकृतिके मुक्त सुन्दर अञ्चलोंको यदि उस शक्तिने अपना स्थान चुना हो तो इसमें किसी संदेहका अवसर नहीं है। इसी परिप्रेक्ष्यमें उत्तराखण्ड बदरी-केदार-क्षेत्रान्तर्गत कतिपय प्रधान शक्तिपीठोंका परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

(१) भुवनेश्वरी पीठ—यह पीठ ऋषीकेशसे ६ कि० मी० गङ्गाके उस पार मणिकूट नामक पर्वतपर स्थित है। इसीके निकट निम्न प्रदेशकी एक सुन्दर उपत्यकामें एक सघन आम्र-वृक्षोंकी सान्द्र छायासे सेवित प्रसिद्ध नीलकण्ठेश्वर महादेवका मन्दिर है। भगवती भुवनेश्वरीका यह मन्दिर 'भौन' नामक गाँवके निकट स्थित है। अतः इसे 'भौनकी देवी' भी कहते हैं। यह मन्दिर जनपद पौड़ी-गढ़वालमें पड़ता है। (एक भुवनेश्वरी पीठ गोप्लमें है)

(२) कुञ्जादेवी पीठ—यह पीठ ऋषिकेशसे लगभग २५ कि० मी० ऊँचे गगनचुम्बी शैलके शिखरवर्ती प्रान्तमें सुशोभित है। जनपद टिहरीकी राजधानी नरेन्द्रनगरसे बसद्वारा भी यहाँ पहुँचा जा सकता है। यह पर्वत इतना ऊँचा है कि सैकड़ों शैल-मालाओंके पार चीनकी सीमावर्ती बदरी-केदारकी बर्फीली चोटियाँ चाँदनी-से किरणजालोंमें भक्तोंके नेत्रोंको उलझा देती हैं। इस मन्दिरमें हवा भी शान्त है। शीत अधिक

है । चारों ओर बाँस और महुआके घने वृक्षोंका जंगल फैला हुआ है । पश्चिमकी ओर पर्वतोंकी रानी 'मंसूरी'की नयनाभिराम हरियाली और नीचे घाटीमें बहती हुई गङ्गाका कलकल निनाद बरबस आकृष्ट कर लेता है । नवरात्रमें यहाँ भव्य मेला लगता है ।

(३) चन्द्रवदनी शक्तिपीठ—यह शक्तिपीठ टिहरी जनपदके देवप्रयाग नामक तीर्थके निकट ही अत्युच्च शिखरपर विराजमान है । इस पुण्यस्थलीको प्रामाणिक रूपसे शक्तिपीठके रूपमें पूजा जाता है । यहाँ देवीकी मूर्तिके स्थानपर श्रीयन्त्र है और भक्तजन उसीका दर्शन करते हैं ।

(४) कालीशिला—गुप्तकाशी (जि० चमोली) के निकट उत्तरकी तरफ कालीमठसे ३ कि० मी० ऊपर चोटीपर बहुत बड़ी एक चट्टान है, जिसमें कई यन्त्र हैं । आज भी दृष्टिगोचर होते हैं । पासमें माता कालीका मन्दिर है । कहा जाता है कि यहींपर शुम्भ-निशुम्भ आदि राक्षसोंसे तंग आकर देवोंने भगवती माँ पार्वतीकी सेवा-पूजा, तपस्या की थी । प्रकट होकर पार्वतीने जब देवोंसे राक्षसोंके आतङ्ककी बात सुनी तो क्रोधसे काली हो गयीं तथा अपने दोनों हाथोंको क्रोधसे शिलापर मारा और कहा कि राक्षसोंका नाश होगा । यही वह 'कालीशिला' है ।

(५) कालीमठ—गुप्तकाशीसे करीब ५ कि० मी० दूर उत्तर काली नदीके पास और मन्दाकिनीके एकदम निकट है । यहाँ महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती देवीके क्रमशः तीन मन्दिर हैं । कहा जाता है कि जब इन्द्रादि देवता राक्षसोंको महाशक्ति महाकालीकी सहायतासे पराजित कर सफल हुए तो इसी स्थानपर देवताओंने भगवतीकी पूजा-अर्चना तथा स्थापना की । यहाँ अनन्तकालसे 'अग्नि-धूनी' जलती है । प्रतिमास अष्टमीको विशेषकर वासन्तीय एवं शारदीय नवरात्रोंमें यहाँ प्रायः मेला-सा लगा रहता है ।

६-कोटिमाया—कालीमठसे करीब ५ कि०मी० उत्तरमें करोड़ों प्रकारकी माया रचनेवाली कोटिमाया देवीका प्राचीन मन्दिर है (केदारखण्ड ८९ । ९०) । प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध जब बाणासुरकी पुत्री उषाके कारण बाणासुरके बन्धनमें थे तो नारदजीकी प्रेरणासे कोटिमाया देवीकी उपासना करनेसे भगवान् कृष्णकी कृपासे वे बन्धनसे मुक्ति पा गये थे । निकट ही कोटिमाहेश्वरीदेवीके कारण 'कोटिमा' गाँव है ।

७-ललितादेवी—गुप्तकाशीसे २ कि० मी० दूर उत्तरमें मोटररोडपर ही नाला गाँवमें माता ललितादेवीका मन्दिर है (के० खं० अ० २००) । कहा जाता है कि राजा नल (दमयन्ती)ने यहीं देवीकी उपासना की । शिव (आज भी नलेश्वर शिव हैं) की पूजाका यह भी सिद्धपीठ है ।

८-रामेश्वरीदेवी (राकेश्वरी)—कालीमठसे ९ कि० मी० उत्तरमें रामेश्वरीदेवीका प्राचीन मन्दिर है (के० ख० ९१ । ९२) । जब चन्द्रमाको गुरु बृहस्पतिने पत्नीके साथ समागम करनेके कारण क्षयरोग होनेका शाप दिया तो उन्हींकी प्रेरणासे चन्द्रमाने हिमालयमें इन्हीं माता रामेश्वरीकी उपासना की और वे नीरोग हो गये । चन्द्रमा (राकेश)के कारण देवीका नाम (राकेश+ ईश्वरी=) 'राकेश्वरी' पड़ा । किंतु शब्द-सुगमताके कारण लगता है 'रामेश्वरी' ही कहा जाता है ।

९-महिषमर्दिनी—केदारनाथ मार्गपर गुप्तकाशीसे करीब १० कि० मी० उत्तर मैखण्डा थाती नामक स्थानमें भगवती महिषमर्दिनी माँका प्राचीन मन्दिर है । यहीं माँने महिषासुर राक्षसको मारा था (के० खं० अ० २०१) ।

१०-दुर्गादेवी—गुप्तकाशीसे दक्षिण १० कि० मी० दूर फेत्कारिणी नदीके तटपर वर्तमान पेगू गाँवमें माँ दुर्गाका अति प्राचीन मन्दिर है । (के० खं० अ० २००) दुर्ग नामके राक्षसको मारकर देवीने यहींपर देवताओंको

दुःख-मुक्त किया । नवरात्रोंमें तथा बैशाखीको मेला
लगता है । पुत्र-प्राप्ति एवं कार्यसिद्धिके लिये यह मन्दिर
सिद्धपीठ माना जाता है ।

११-अनसूयादेवी—बालखिल्य तीर्थ अर्थात् गोपेश्वर
(चमोली) के निकट उत्तरमें करीब १२ कि०मी०दूर
अति रमणीक अत्रि-आश्रममें माता अनसूयाका भव्य मन्दिर
है । इस स्थानका सम्बन्ध दत्तात्रेयजीसे भी है । यह
स्थान बाँझ स्त्रियोंके लिये वरदान-स्थली है ।

१२-धर्मेश्वरी (सोमेश्वरी)—गोपेश्वरके निकट
करीब ८ कि० मी० दूर उत्तरमें वर्तमान मण्डलके पास
(के० ख० अ० ११४) है । अष्टमी-नवमीको विशेष
पूजा होती है ।

१३-रेणुका—जमदग्नितीर्थ, गुप्तकाशीसे उत्तर
महिषमर्दिनी मन्दिरके निकट ही जामू गाँवमें रेणुका
(जमदग्नि) तीर्थ है । यहाँ प्राचीन मन्दिर, जलधाराएँ
हैं । यहाँ जमदग्नि ऋषिका आश्रम था । विद्या-प्राप्ति
तथा आत्मबल—मनोबल प्राप्त करनेके लिये यह तीर्थ
प्रसिद्ध है ।

१४-नन्दादेवी—नन्दप्रयाग (मन्दाकिनी नदी)
के निकट ही कुरुड़ गाँवमें प्राचीन पौराणिक (मा० पु०,
के०ख०) नन्दादेवीका भव्य मन्दिर है । वर्षभर मेला-सा
लगा रहता है । यह सिद्धपीठ है, ऊँची चोटीपर
बर्फके बीच माँका मूल स्थान है । मार्ग बहुत कठिन है ।

१५-राजराजेश्वरी—श्रीनगर (गढ़वाल) से उत्तर-
की ओर करीब १०-१२ कि०मी० दूर बुगाणी गाँवके
पास भगवती राजराजेश्वरीका प्राचीन पौराणिक (मा० पु०
तथा के० खं०) भव्य मन्दिर है । यह पुराने गढ़वालके
राजा-महाराजाओंकी आराध्यदेवी—इष्टदेवी थीं ।

१६-चण्डिकादेवी—गोपेश्वरमें ही नगरके एक
कोनेमें माता चण्डिकाका ऐतिहासिक मन्दिर है ।
इसकी बड़ी मान्यता है ।

१७-श्रीयन्त्रका सिद्धपीठ श्रीनगर (गढ़वाल)—
यह ऐतिहासिक एवं पौराणिक श्रीयन्त्रका सिद्धपीठ
स्थान है । गढ़वाल (टेहरी)की यह पुरानी राजधानी
थी । महाराजा टेहरी प्रतिदिन श्रीयन्त्रकी पूजा-अर्चना
करके ही दिनचर्या करते थे । आज भी अवशेष
(मन्दिर) यथावत् हैं ।

१८-शाकम्भरी देवी—केदारनाथ घाटीमें त्रियुगी-
नारायण तीर्थ-मार्गपर माँ शाकम्भरीदेवीका मन्दिर है ।

१९-संगमेश्वरी—गुप्तकाशी तथा जालाचट्टीके नीचे
मन्दाकिनी एवं माहेश्वरी नदी (पञ्चकेदारोंमें श्रीमहेश्वरसे
आनेवाली)के संगमस्थलपर संगमेश्वरी देवीका पुनीत स्थान
है । दूसरे शब्दोंमें अम्बिका (कौशिकी) देवीका स्थान है ।

२०-हेमवतीदेवी (मनणीदेवी)—केदारनाथसे
करीब ६ कि० मी० ठीक उत्तर चौखम्ब (चतुःशृंग)
पर्वतकी मध्य गोदमें ओषधिप्रस्थ मैदानमें माँ हेमवतीका
एक प्राचीन अधूरा मन्दिर है । माताकी अष्टधातुकी
एक छोटी-सी किशोरावस्थाकी सुन्दर मूर्ति है ।

२१-सुरकंठा (सुरकंडा) देवी—टेहरी-गढ़वालमें
टेहरी-नरेन्द्रनगरके निकट है । सतीका कण्ठ यहाँ गिरा था,
इसको 'सतीकण्ठ' भी कहते हैं । यह सिद्धपीठके साथ-साथ
प्रत्यक्षतः वरदान (मनोवाञ्छित) देनेवाला सिद्धपीठ है ।

२२-धारीदेवी—रुद्रप्रयाग-श्रीनगर (गढ़वाल) के
मध्य माँ धारीदेवीका प्रसिद्ध मन्दिर अलकनन्दा नदीके
तटपर है । स्थान और मन्दिर प्राचीन है, यह ऋषि-
मुनियोंकी तपःस्थली थी ।

२३-ज्वालपादेवी—पौड़ी-गढ़वाल-कोटद्वार मोटर-
मार्गपर सतपुलीके निकट ही यह सिद्धपीठ है । इस
प्राचीन तीर्थकी यह विशेषता प्रत्यक्ष है कि दर्शन करते
ही मनमें अलौकिक ढंगसे एक सात्त्विक शान्ति तत्काल
मिलती है । इस तीर्थका सम्बन्ध केदारखण्डके अनुसार
अति प्राचीन है । यहीं ऋषियोंकी तपस्थली थी ।

बिहार-प्रदेश

जनकनन्दिनी श्रीजानकी-शक्तिपीठ

जगज्जननी जानकीजीने जिस प्रदेशको अपने आविर्भाव-से अलंकृत किया, उस प्रदेशकी शक्ति-उपासनाके विषयमें कहना ही क्या है ? माता जानकीकी आविर्भावस्थली मिथिला—जहाँ शक्ति-उपासना वैष्णव-सम्प्रदायके लिये प्रसिद्ध है, वहीं शक्तिकी तान्त्रिक-उपासनाका भी यह बहुत बड़ा केन्द्र समझा जाता है। यहाँकी दोनों उपासना-ओंके पद्धतियों—प्रमुखतम पीठोंका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

बिहारराज्यमें—सीतामढ़ी या दरभंगासे जनकपुर-स्टेशन जाया जाता है। वहाँसे जनकपुर २४ मील है। जनकपुर प्राचीन मिथिलाकी राजधानी रहा है। पूर्वकालमें इस स्थानपर एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिर था, जहाँ महात्मा सूरकिशोरजीद्वारा सुवर्णमयी सीता तथा रामकी भव्य मूर्तियाँ स्थापित थीं। संवत् १८६७ टीकमगढ़की रानी स्व० वृषभानु कुँवरिजीने अतिविशाल मन्दिरका निर्माण कराया, जो आजकल नौलखा जानकी-महल या शीशमहलके नामसे विख्यात है। इसीके परिसरमें सुनयना एवं जनकजीके भी मन्दिर हैं। इसमें 'अंगराग' सरोवरसे उद्धृत सीता, राम और लक्ष्मणकी मूर्तियाँ हैं, फिर भी यह जानकी-मन्दिरके नामसे ही सुप्रसिद्ध है और अनेक उपासक दक्षिणमार्गसे भगवती जानकी (सीता) शक्तिकी उपासना करते रहते हैं।

मिथिलाके त्रिकोण शक्तिपीठ

(श्रीविजयानन्दजी झा)

आदिकालसे मिथिला शक्ति-उपासनामें अग्रणी रहा है। शक्ति-उपासनाहेतु यहाँ कई पीठ स्थापित हुए और पूजाकी विभिन्न विधियोंके विशद साहित्यका सृजन किया गया। यहाँके प्रमुख सिद्ध-पीठोंमें चार पीठ बहुजन-समाजद्वारा समादृत हैं। इनमें एक महिषीपीठ वर्तमान सहरसा जनपदमें स्थित है, जो तारासे सम्बद्ध है। शेष तीन पीठ मधुबनी जनपदमें स्थित हैं, जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये हैं—बूढ़ीमाई, राजराजेश्वरी और उच्चपीठ या उच्चैठ। इन पीठोंकी पहली विशेषता यह है कि प्रथम दोनों पीठ त्रिकोण रेखाके दो कोणोंपर और तीसरा पीठ त्रिकोण रेखाके तीसरे कोणपर अवस्थित है। इस प्रकार तीनों पीठ अपनी अवस्थितिसे तान्त्रिक यन्त्रके रूप बन जाते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि बिहारके अनेक साधक, विद्वान्, मनीषियोंद्वारा अतीतमें इन पीठोंकी सुदीर्घ कालतक उपासना की गयी और आज बिहारका प्रत्येक साधक इनकी ओर अत्यन्त आकृष्ट देखा जाता है।

१-बूढ़ीमाई-मधुबनी जनपदके मुख्यालयसे सटा लगभग २ कि०मी०पर यह शक्तिपीठ है, जो समस्त मिथिलामें 'बूढ़ीमाई' नामसे विख्यात है। यह स्थान मिथिलाके असंख्य साधक, सिद्ध एवं मनीषियोंकी जन्मभूमि—मंगरौली गाँवमें है। बूढ़ीमाईकी मुख्य प्रतिमा महाविद्या ताराका यन्त्र ही है। इस पीठकी अलौकिक शक्ति और असंख्य साधकोंके विवरण कई अनुश्रुतियों एवं साहित्यिक लेखोंमें प्राप्त होते हैं। यों तो तारासे सम्बद्ध अनेक मन्दिर सम्पूर्ण देशमें हैं, किंतु इस प्रकारका यन्त्रमय ताराविग्रह मात्र यहीं है। यन्त्र शक्ति-उपासनाकी आत्मा होती है, यह सभी जानते हैं। इनकी महिमामें मिथिलाके अनेक मनीषियोंने विभिन्न प्रकारके स्तोत्र एवं पूजा-विधान बनाये हैं। इनकी पूजा, ध्यान आदि ताराकी तरह ही होता है।

बूढ़ीमाई-यन्त्र-प्रतिमाकी संरचना पूर्णतः योनिस्वरूप है। प्रतिमाके दो निकटके कोण भूमिपर टिके हुए हैं और तृतीय संकुचित कोण ऊपरकी ओर है। शीर्षकोणके नीचे एक छिद्र भी है। अतएव ये 'अपर कामाख्या'के नामसे भी जानी जाती हैं।

इस मन्दिरमें एक अष्टादशभुजाकी देवी-प्रतिमा है जिसकी स्थापना १७ वीं शताब्दीके महान् सिद्ध तान्त्रिक श्रीमदन उपाध्यायद्वारा की हुई बतायी जाती है।

दूसरा शक्तिपीठ (डाकइर) मधुवनीके उत्तर ५-६ कि० मी०की दूरीपर है, जो अति प्राचीन राजराजेश्वरी पीठके नामसे जाना जाता है। इस पीठमें अर्धनारीश्वरकी एक अद्भुत प्रतिमा है, जिसमें शिव और पार्वती एक-दूसरेसे आबद्ध अवश्य हैं, किंतु दोनों अपने एक-एक पाँव अपने-अपने वाहनों (बैल और सिंह) पर अवस्थित किये हुये हैं और दूसरे पाँवोंसे सम्मिलित हैं; जो अन्य अर्धनारीश्वर प्रतिमाओंमें नहीं पाया जाता।

३—तीसरा शक्तिपीठ उच्चैठ (उच्चपीठ) मधुवनीके पश्चिम-उत्तरमें स्थित है जहाँ प्रतिमारूपमें माता दुर्गाकी पूजाकी जाती है, मिथिलावाले इस देवीको महाकवि कालिदासकी विद्यादात्री देवी मानते हैं।

मुँगेरका चण्डिका-स्थान

(श्रीजगदीशजी मिश्र)

मुद्गल ऋषिकी तपोमयी पावन पुण्यभूमि मुद्गलगिरि या 'मुंगेर' नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ गङ्गाके सुरम्य तटपर नगरके पूर्वमें सिद्ध शक्तिपीठ चण्डिका माताका विख्यात मन्दिर है। कहते हैं, जब दक्षप्रजापति यज्ञ कर रहे थे, उसी समय उनकी पुत्री सतीने हरिद्वारमें आत्म-उत्सर्ग कर दिया। शिव सतीके शवको लेकर चले, सभी देवगण उस दृश्यको देखकर भयभीत हो गये। सभीने विष्णुके पास जाकर रक्षाकी गुहार की। विष्णु भगवान्ने गुप्त होकर अपने चक्रसे सतीके अङ्ग-प्रत्यङ्गको काटना प्रारम्भ कर दिया। पौराणिक आधारपर सतीका नेत्र इसी चण्डिका—स्थानमें गिरा। आज भी यहाँ नेत्रकी ही पूजा होती है। यहाँका कर्पूरमिश्रित काजल नेत्रको ज्योति प्रदान करनेकी दिशामें सदा सफल है।

इस सिद्धपीठके सम्बन्धमें यहाँ एक कथानक प्रचलित है कि अंगदेशके राजा दानवीर कर्ण* (अथवा मतान्तरसे बलाह राजा) शक्ति-उपासक थे, वे नित्यप्रति रातमें बारह बजे उठकर यहाँ चण्डिकाकी भक्तिमें तल्लीन हो जाते थे। एक कड़ाहमें तेल खौलता रहता था, उसीमें वे कूद पड़ते और चौंसठ कोटि योगिनियाँ उन्हें चट कर जाती थीं। भगवती पुनः उन्हें अमृतसे सींचकर पूर्वरूपमें ला देतीं और वर माँगनेको कहती थीं।, राजा कर्ण सवा मन सोना माँग लेते और वह उन्हें दे देती थीं। राजा प्रातः उस सोनेको बाँट दिया करते थे। इसका प्रतीक 'कर्ण-चौरा' बना हुआ है।

राजा विक्रमादित्यको जब यह बात मालूम हुई तो वे उनके पास जाकर उनकी सेवा करने लगे और उनकी गतिविधिको जान लेनेके बाद एक दिन उनसे पहले ही चण्डिका-स्थानपर चले गये। कड़ाहमें तेल पूर्ववत् खौल ही रहा था! उसमें वे तीन बार कूदते गये, योगिनियाँ उन्हें भी चट कर जातीं। देवी उन्हें अमृतसिंचन कर पूर्ववत्-रूपमें लातीं और वर माँगनेको कहतीं। राजा विक्रमादित्यने कहा—'माताजी! आप हमें दो वरदान दीजिये। पहला वर यह कि आप जिस कोषसे सवा मन सोना देती हैं उसे ही हमें दे दीजिये। दूसरा यह कि इस कड़ाहको उलट दीजिये।' देवीने ऐसा ही किया।

जब कर्ण (बलाह) आये तो वह कड़ाह वहाँ नहीं था। भगवती चण्डी वहाँ अन्तर्धान हो गयीं थीं।

* कर्णका समय विक्रमसे तीन हजार वर्ष पूर्व है; अतः इसे पुरुष-परीक्षाके प्रमाणसे बलाह ही मानना चाहिये। शेष कथा भी विद्यापतिके ही अनुसार ठीक है।

यह तो उसका प्रसिद्ध कथानक है, किंतु यदि देखा जाय तो यह सिद्धपीठ आज भी सिद्धिप्रद है। नवरात्रमें पण्डितों, तान्त्रिकोंके पाठ, जप आदि चलते ही रहते हैं। दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है। मंगलवार और शनिवारको दर्शनार्थी नियमतः दर्शनार्थ आते हैं और दर्शन-पूजन करके सिद्धि पाते हैं।

प्राचीनतम शक्तिपीठ मुण्डेश्वरी

(चक्रवर्ती डॉ० श्रीरामाधीन चतुर्वेदी, व्याकरण-साहित्याचार्य)

बिहार प्रदेशके रोहतास जिलेमें चैनपुर-भभुआसे कुछ दूर दक्षिण तरफ पर्वतशिखरपर मुण्डेश्वरी भवानीका एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरका निर्माणकाल अब भी अज्ञात है। मन्दिरके विषयमें सरकारके पुरातत्त्व-विभागद्वारा यहाँ केवल इतना ही लिखा हुआ है कि यह बिहार प्रदेशका सबसे प्राचीन मन्दिर है, किंतु कब बना, इसका उल्लेख नहीं है। मन्दिरके दक्षिण द्वारपर अत्यन्त प्राचीन खरोस्ट्री लिपिमें दो पंक्तियोंका एक अभिलेख है, पर वह क्या है, यह तो उस लिपिके ज्ञाता ही बता सकते हैं। बड़े-बड़े काले पत्थरोंसे बना यह मन्दिर अष्टकोणके आकारका है। नीचेसे ऊपरतक मूर्तिकलायुक्त अष्टकोणमय इस मन्दिरको देखकर भारतीय प्राचीनकला तथा यन्त्रमय शक्ति-पीठका गौरव उभरकर सामने आता है। काशी तथा रामनगरके मूर्तिमय दुर्गामन्दिरके समान यह मन्दिर भी मूर्तिके रूपमें ही विद्यमान है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसके ऊपरका भाग शिखर कलशके बिना ही अष्टकोणके रूपमें समतल है। सम्भव है पहले इसपर भी शिखर-कलश रहा हो, किंतु बादमें मन्दिरोंपर पड़ी विदेशियों-की साढ़े-साती दृष्टिने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया हो। कुछ खण्डित मूर्तियाँ अब भी मन्दिरके चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। वहाँके निवासी सज्जन पुरुषोंसे ज्ञात हुआ है कि आजसे पन्द्रह साल पहले यहाँसे अनेक प्रकारकी बहुत-सी मूर्तियाँ पटनामें सुरक्षाके नामपर चली गयी हैं।

जिस पर्वतशिखरपर यह पीठ विद्यमान है, वह शिखर नीचेकी समतल भूमिसे एक मील ऊँचा है। जहाँसे ऊपर चढ़नेका रास्ता है, उसकी बायीं ओर थोड़ी दूरपर एक हाथीकी विशाल मूर्ति है। ऊपर चढ़नेपर बीच-मार्गमें ही एक विशाल शिवलिङ्ग अपने आपमें परिपूर्ण है और एक बड़ी चट्टानपर देवीका आकार भी लक्षित होता है। फिर थोड़ी दूरपर गणेशजीकी मूर्ति है जो खण्डित है। आगे दाहिनी ओर छोटा-सा निर्जन चतुष्कोण कुण्ड है। कुछ ऊपर चढ़नेपर मध्यमार्गमें अगल-बगल जगह-जगहपर तीन चौरस स्थान भी हैं; जिनपर कुछ प्राचीन ईंटें बिखरी पड़ी हैं। उन्हें देखकर अनुमान होता है कि पहले यहाँ वानप्रस्थ आश्रमको सफल बनानेके लिये उत्तम निवास-स्थान रहा होगा।

पर्वतके सबसे ऊपर जहाँ मन्दिर है, वहाँ तो बहुत विस्तृत चौरस स्थान है। जिसपर सैकड़ोंकी संख्यामें मनुष्य आरामसे विश्राम कर सकते हैं। मन्दिरके पश्चिम दरवाजेके सामने नन्दी भगवान्‌की विशाल मूर्ति है और उस दरवाजेके भीतर एक सीढ़ी-दार बड़ी गुफा भी है। लोगोंने इस गुफाके अन्तका पता लगानेके लिये अथक परिश्रम किया, किंतु जब पता नहीं चला तो ऊपरसे एक चट्टान रखकर उसे बन्द कर दिया गया जो आज भी प्रत्यक्ष है। इस प्रकार नीचेसे ऊपरतक इस कलापूर्ण शक्तिपीठकी छटा देखते ही बनती है।

मन्दिरके मध्य एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है, जो आजसे बारह वर्ष पहले पञ्चमुखकी आकृतिमें था, किंतु कोई मानवरूपधारी दानव मुख-भाग अलग करके ले भागा था। जो कुछ दिनों बाद भभुआ-न्यायालयके पास मन्दिरमें स्थापित है। मुखका निचला भाग जो मुण्डेश्वरी धाममें विराजमान है, उसमें भी एक विशेष आभा झलकती है। साथ ही मूर्तिके दक्षिण भागमें दीवारसे सटी महिषवाहिनी माँकी हँसती मूर्ति सुशोभित हो रही है, जिसके दर्शन और पूजनसे श्रद्धालु भक्तजनोंके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

यद्यपि एक चिन्मय आद्याशक्ति ही सर्वत्र चराचर-रूपमें नित्य व्याप्त है, फिर भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये वही एक शक्ति साकार रूपमें प्रकट होकर असुरोंका विनाश करती रहती है। जिसके कारण अनेक नाम और रूपोंमें उसकी स्तुति एवं पूजा होती है। दुर्गासप्तशतीके उत्तर चरित्रमें 'चण्ड-मुण्ड' नामक असुरोंका वध करनेसे वही शक्ति 'चामुण्डा' नामसे विख्यात हुईं। 'चामुण्डा'का ही संक्षिप्तरूप—'मुण्डेश्वरी' नामसे यहाँ प्रचलित हैं।

पुराणोंके १०८, ५१, ६८, ७१ आदि निर्दिष्ट शक्तिपीठोंमें शोणतटपर कई पीठ निर्दिष्ट हैं। इनमें सेतिताश्वकी कालीदेवी, सासारामकी ताराचण्डी, तिलौथूके पासके पर्वतपरकी तुलजाभवानी आदि उल्लेखनीय हैं। झील-झरना आदिकी शोभा परमाकर्षक है। लोग दर्शनार्थ यहाँ आते रहते हैं।

बंग-प्रदेश—

बंग-प्रदेशके शक्तिपीठ

पूरा बंगाल प्रदेश और वहाँके प्रायः प्रत्येक निवासी आद्याशक्तिके अनन्य उपासक माने जाते हैं। अतएव माताके शक्तिपीठ भी पूरे प्रदेशमें अनेक स्थानोंमें विराजमान हैं। उन सबका परिचय छोटे-से लेखमें सम्भव नहीं है। फिर भी कुछ प्रमुख पीठोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

बँगालके महानगर कलकत्तामें वैसे हजारभुजा काली सिंहवाहिनी, सर्वमङ्गला, तारासुन्दरी आदि अनेक शक्ति-स्थान हैं, फिर भी प्रमुख शक्तिपीठ वहाँ तीन ही हैं—१—आदिकाली, २—महाकाली और ३—दक्षिणेश्वरकाली।

आदिकाली—यह कलकत्ताका सबसे प्राचीन शक्तिस्थान है। टालीगंज बस और ट्राम्बके अड्डेसे लगभग एक मीलपर नगरसे प्रायः बाहर यह देवी-मन्दिर है। मुख्य मन्दिर नष्ट हो जानेके बाद यह पुनः बना है, अतएव यह शिखरदार नहीं है। मुख्य मन्दिरके दोनों ओर ऊँचे चबूतरोंपर एक ओर पाँच और दूसरी ओर छः मन्दिर हैं, जिनमें भगवान् शिव विराजते हैं। इस तरह इस शक्तिमन्दिरके साथ एकादश रुद्र-मन्दिर भी है। यही कलकत्ता-महानगरका प्रधान शक्तिपीठ माना जाता है।

कालीमन्दिर—हवड़ा-स्टेशनसे ५ मील दूर भागीरथीके आदिस्रोतपर कालीघाट नामक स्थान है। इसीके ऊपर सुप्रसिद्ध कालीमन्दिर है। कुछ लोग इस स्थानको ही प्रधान पीठ मानते हैं। मन्दिरमें त्रिनयना रक्ताम्बरा, मुण्डमालिनी तथा मुक्तकेशीके रूपमें माता विराजमान हैं। सारा बंग-(बंगाली) प्रदेश बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे भगवतीकी पूजा-उपासना करता है और अनेक साधकोंने यहाँसे सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। आश्विन मासकी दुर्गापूजा यहाँका भारत-प्रसिद्ध महोत्सव है।

दक्षिणेश्वर-काली—कलकत्तामें 'दक्षिणेश्वर' एक रेलवे-स्टेशन है। यह गङ्गा-किनारे स्थित है। यहाँ रानी रासमणिद्वारा बनवाया गया काली-मन्दिर है जो 'दक्षिणेश्वरकाली-मन्दिर' कहलाता है। मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मन्दिरके घेरेमें चबूतरेपर १२ शिव-मन्दिर हैं। परमहंस श्रीरामकृष्णदेवने यहीं महाकालीकी आराधनाकर सिद्धि प्राप्त की थी। मन्दिरसे लगा परमहंस-देवका कक्ष है, जिसमें उनका पलँग आदि स्मृतिचिह्न-के रूपमें सुरक्षित हैं। मन्दिरके बाहर परमहंसदेवकी पूर्वाश्रमकी धर्मपत्नी श्रीशारदा माता तथा रानी रासमणिकी समाधि हैं और वह वटवृक्ष भी है जिसके नीचे परमहंसदेव ध्यान किया करते थे।

मुक्त-त्रिवेणी—पूर्वी रेलवेके नवद्वीप-धाम स्टेशनसे ३१ मील और चकदहसे ५ मीलपर मुक्त-त्रिवेणी स्थान पड़ता है। जिस प्रकार प्रयागमें गङ्गा, यमुना और सरस्वती-का संगम है, उसी प्रकार यह स्थान इन्हीं तीनों देवनदियों-का विश्रामस्थल है। भागीरथी गङ्गा कलकत्ता होकर गङ्गा-सागरसे जा मिलती हैं। सरस्वती सप्तग्राम होती हुई संकटाइल स्थानमें पुनः गङ्गामें आ मिलती हैं और यमुना पूर्वकी ओर 'इच्छामती' नामसे बहती हैं। प्रयागकी त्रिवेणीको 'युक्त-त्रिवेणी' कहा जाता है तो यहाँकी त्रिवेणी-को 'मुक्तत्रिवेणी' कहते हैं जिसका पुराणोंमें बहुत माहात्म्य वर्णित है। यहाँ प्रयागकी तरह ७ छोटे-छोटे मन्दिरोंमें वेणीमाधवके विग्रह भी हैं।

किरीट-शक्तिपीठ—पूर्वी रेलवेके हवड़ा-बरहरवा लाइनमें अजीमगंजसे ४ मील लालबाग-कोर्ट-स्टेशन पड़ता है। वहाँसे ३ मील गङ्गा-किनारे बड़नगरके पास 'किरीट' नामक स्थान है जहाँका देवी-मन्दिर ५१ शक्तिपीठोंमेंसे एक है। वहाँ सतीका किरीट गिरा था।

उड़ीसा-प्रदेश

उड़ीसाके शक्तिपीठ

श्रीजगन्नाथ-मन्दिर—उड़ीसा प्रदेश भगवान् जगन्नाथ और उनके वैष्णव-भक्त चैतन्य महाप्रभुकी सुविख्यात लीलास्थली है। मूलतः यहाँ वैष्णवधर्मका ही सर्वत्र प्रचार-प्रसार है। फिर भी मातृशक्तिकी कभी उपेक्षा नहीं हुई है। अनेक स्थानोंपर भगवतीके पीठ हैं और भक्त उनकी सश्रद्धा आराधना करते रहते हैं।

इस क्षेत्रके प्रधान देवता जगन्नाथ स्वामीके समग्र विग्रहपर ध्यान दें तो जगन्नाथ और बलभद्रके साथ माता सुभद्राजीकी भी पूजा-उपासना अखण्ड चलती है, जो शिव, शक्ति, विष्णु-शक्तिकी अभेदोपासनाका जीता-जागता प्रतीक है।

पोड़ा माता आदि शक्तिपीठ—इसके अतिरिक्त शची माता-विष्णुप्रिया-मन्दिर, सिद्धेश्वरी माता, आगमेश्वरी, तुलजादेवीके पीठ उड़ीसा प्रदेशमें सुप्रसिद्ध हैं, जहाँ अनेकानेक साधक साधना करके अभीष्ट फल प्राप्त करते रहते हैं।

पोड़ा माता तो नवद्वीपकी अधीश्वरी मानी जाती हैं और उत्कलके अनेक शक्ति-उपासक माताकी पूजा-उपासना करते हैं।

सतीपीठ—नवद्वीप स्टेशनसे २४ कि० मी० कटया-स्टेशन होते हुए मोग्राम आना पड़ता है जो कटवासे ७ मील उत्तर है। वहाँ पैदल यात्रा करनेपर अङ्गुरीयक चण्डीका मन्दिर पड़ता है जो एक सिद्धपीठ है। कहा जाता है कि यहाँ सतीकी अङ्गुली गिरी थी।

श्रीकालीजी, कलकत्ता पृष्ठ—३९९
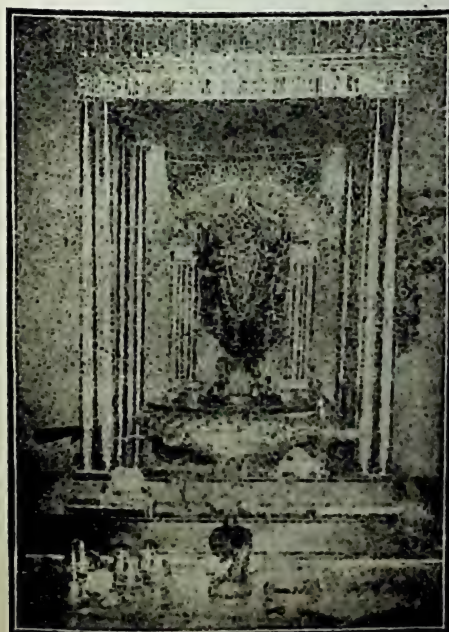
श्रीदाक्षिणेश्वरी काली, कलकत्ता (पृष्ठ ४००)

श्रीतारासुन्दरी देवी, कलकत्ता

श्रीकाली-मन्दिर, कालीघाट, (कलकत्ता) श्रीसर्वमङ्गलादेवी-मन्दिर, काशीपुर

श्रीआदिकाली–मन्दिर, कलकत्ता

श्रीसहस्रभुजाकाली-मन्दिर, शिवपुर
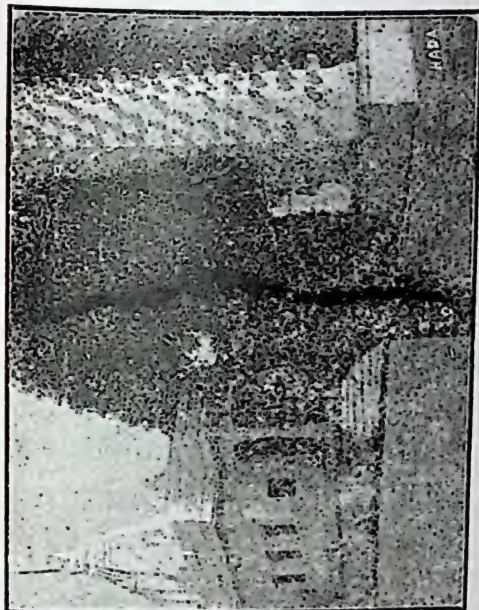
श्रीहरसिद्धि देवी, उज्जैन (पृ०-सं० ४०४)

श्रीकालिकाजी उज्जैन (पृ०-सं० ४०७)

श्रीदेवीजीका मन्दिर, महिदपुर (उज्जैन)
(पृष्ठ-सं० ४०६)

श्रीबगलामुखी देवी, दतिया (पृ०-सं० ४०७)
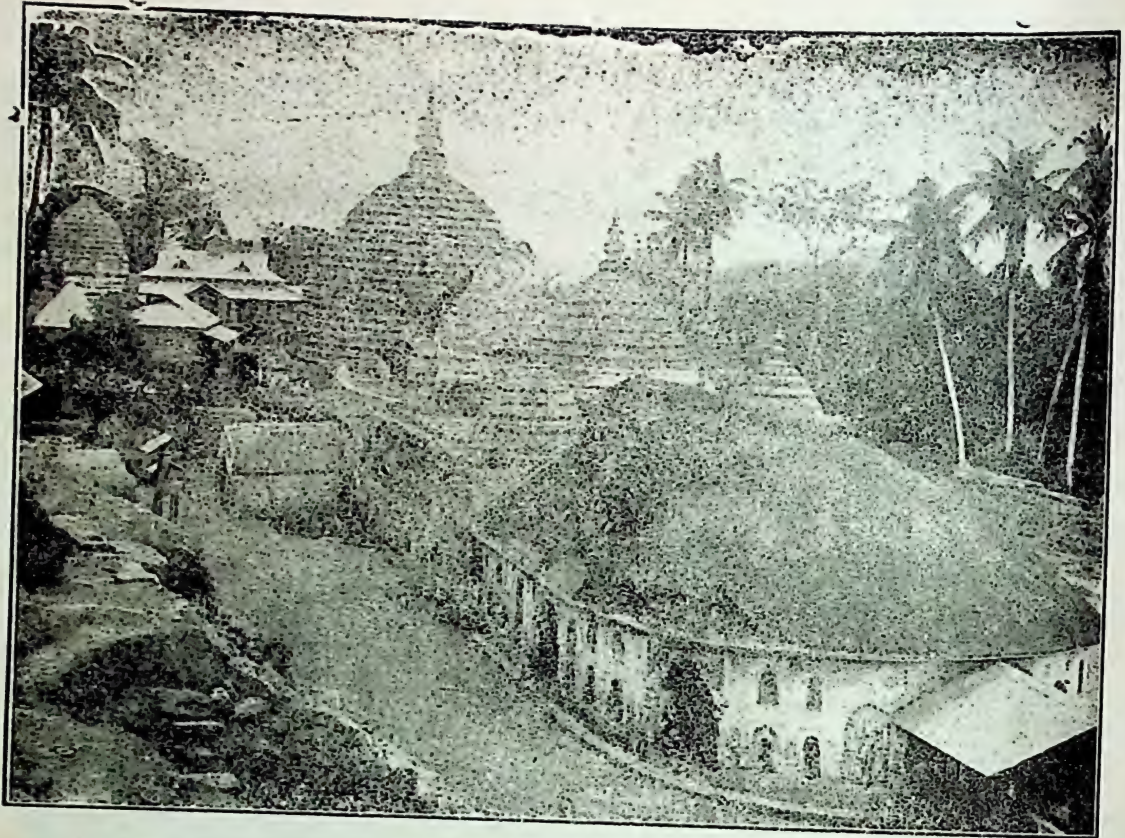
श्रीकामाख्यादेवी-मन्दिर, गौहाटी (पृ०-सं० ४०१)
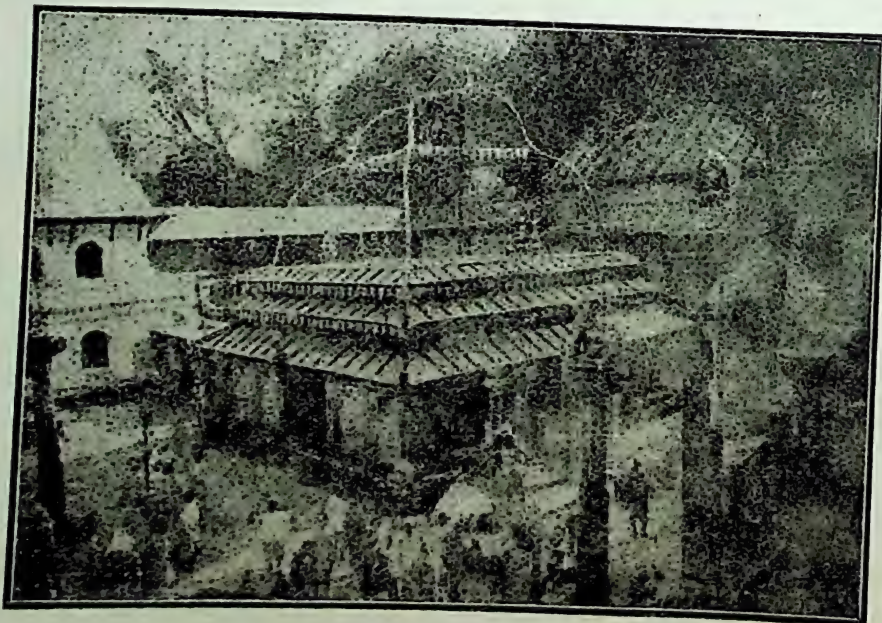
श्रीगुह्येश्वरी-मन्दिर, नेपाल (पृष्ठ-सं० ४३६)
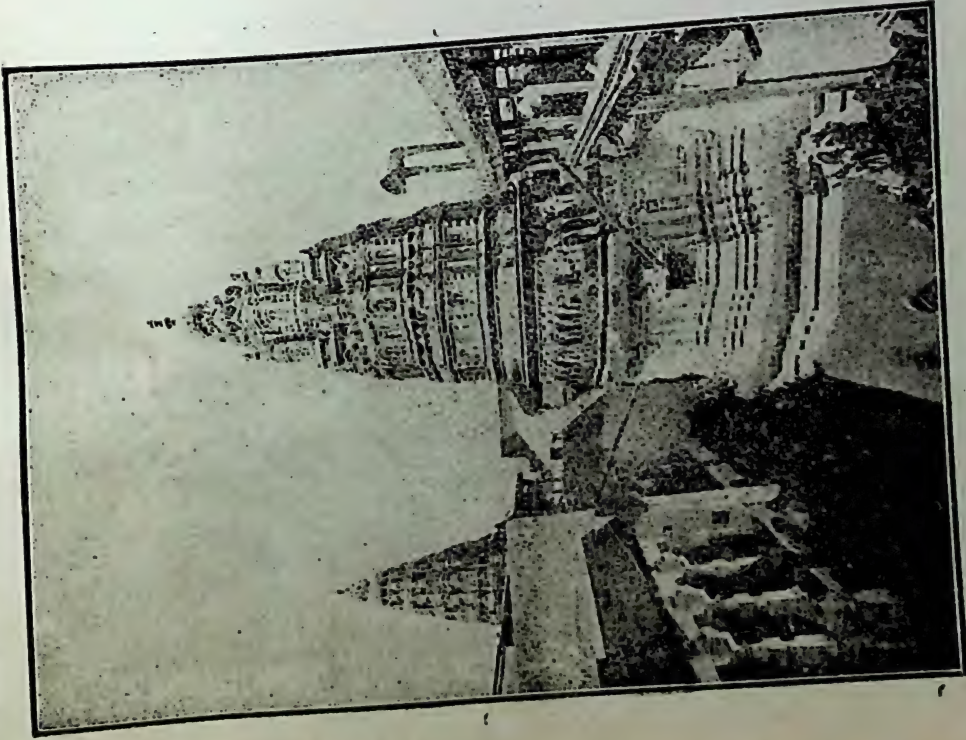
श्रीविठोबा-रुक्मिणी-मन्दिर, पंढरपुर (पृष्ठ-सं० ४२१)
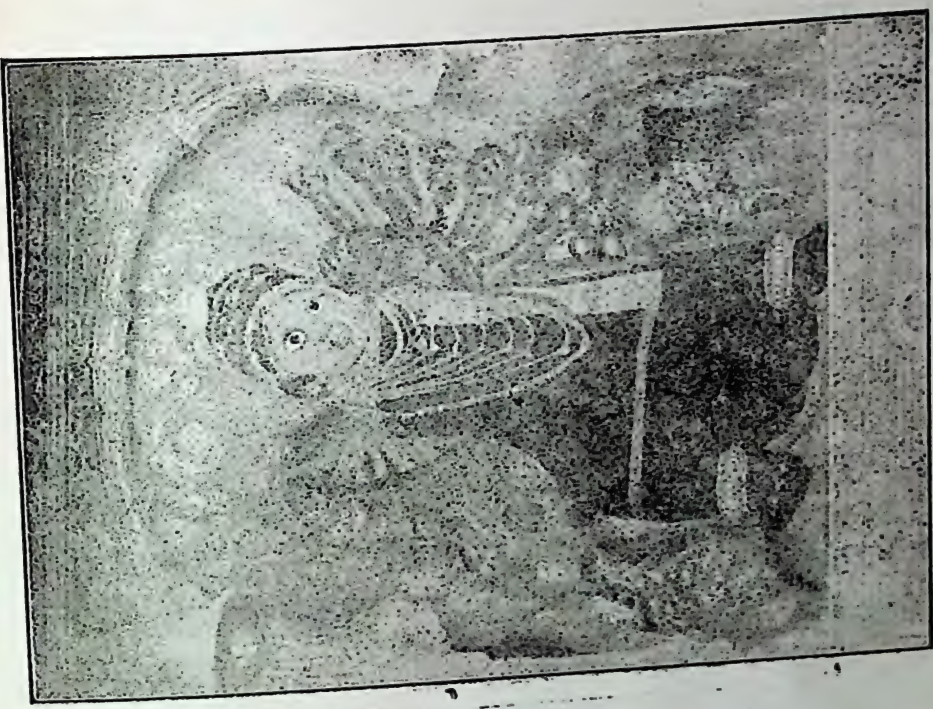
श्रीसप्तश्रृङ्गीदेवी, नासिक (पृष्ठ-सं० ४२८)
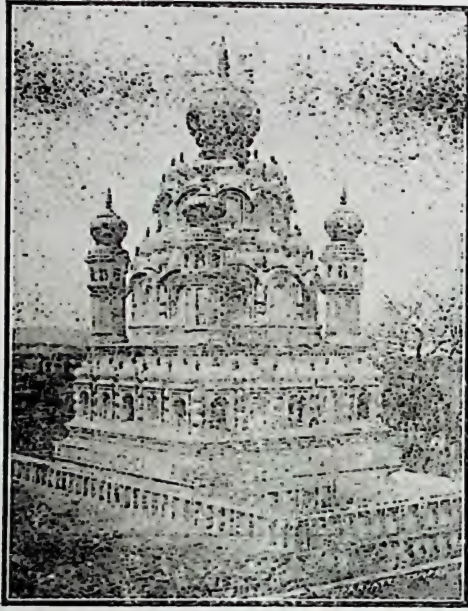
श्रीपार्वती-मन्दिर, पूना (पृष्ठ-सं० ४२०)

श्रीलयराईदेवी, शिरोग्राम (गोवा)
(पृष्ठ-सं० ४२१

श्रीचामुण्डा-मन्दिर, मैसूर (पृष्ठ-सं० ४३०)
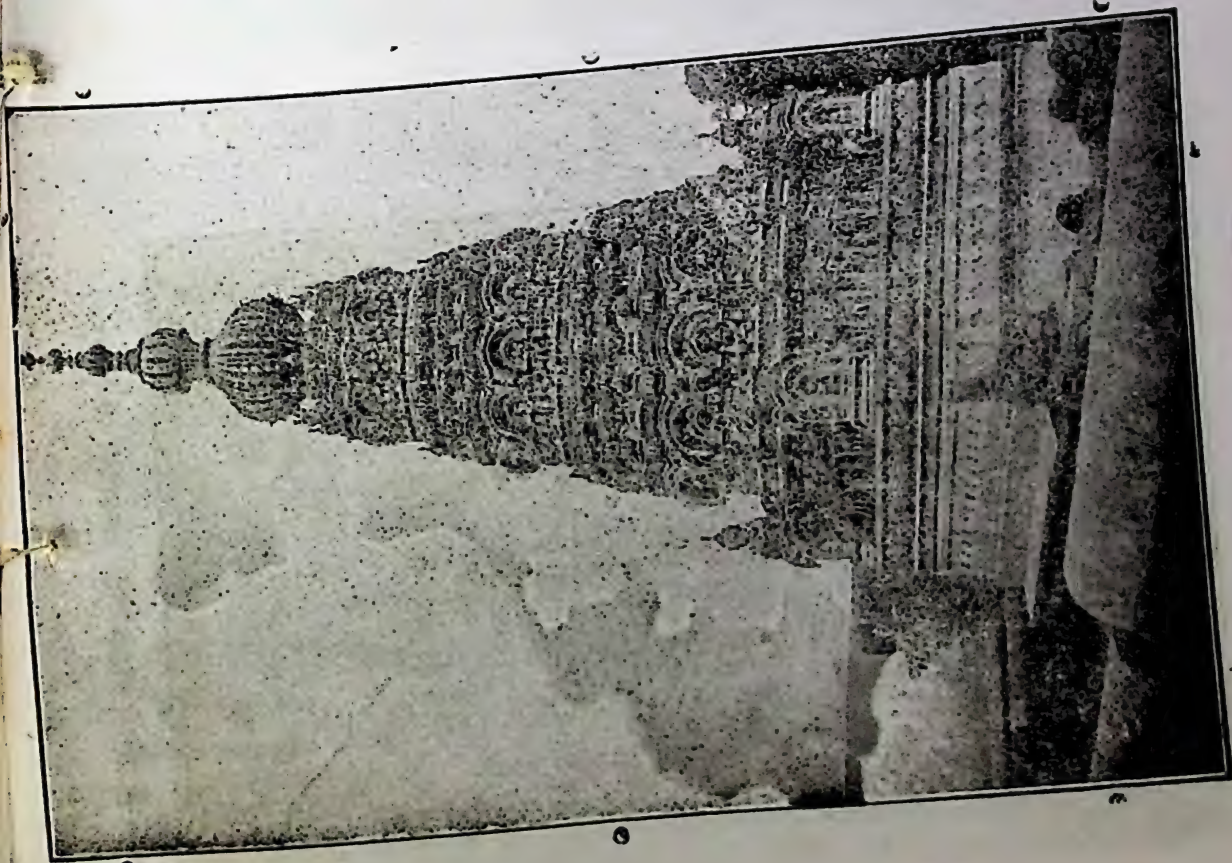
श्रीतुलजा भवानी-मन्दिर, तुलजापुर
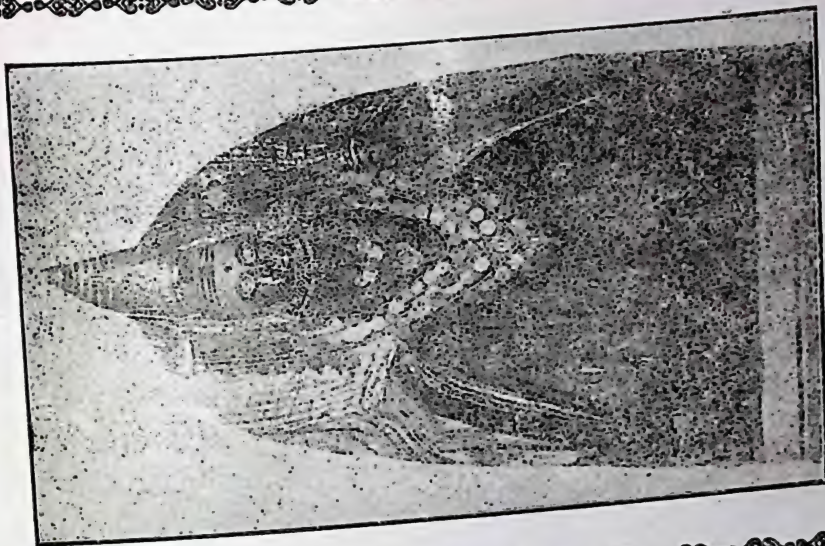
तुलजा भवानीजी, तुलजापुर (पृष्ठ ४२७)
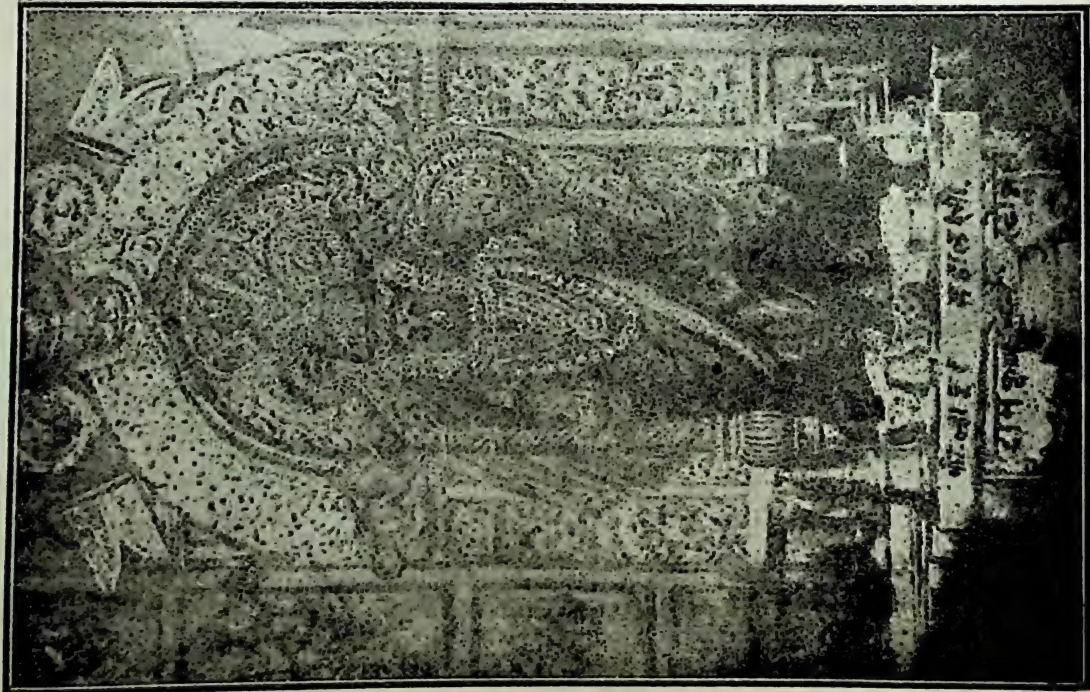
करवीर-निवासिनी श्रीमहालक्ष्मी, कोल्हापुर (पृष्ठ-सं० ४२५)

शिवाजीपर भवानीकी कृपा (पृष्ठ-सं० ४२७)

असम-प्रदेश

असम-प्रदेशके शक्तिपीठ

असम-प्रदेशमें अनेक शक्तिपीठ हैं । जैसे—१–सौभारपीठ, २–श्रीपीठ, ३–रत्नपीठ आदि । इन पीठोंका अपनी-अपनी जगहपर माहात्म्य तो है ही, अनेक श्रद्धालु भक्तजन इनकी उपासना भी करते हैं; पर, इन सभीमें कामाख्यापीठ सबसे प्रमुख है । वास्तविकता तो यह है कि एक कामाख्या-पीठने ही सारे असम-प्रदेशको शक्तिपीठोंमें उजागर कर दिया है ।

कामाख्याका पावन शक्तिपीठ

विशाल ब्रह्मपुत्र नदीके तटपर गुवाहाटीके कामगिरि पर्वतपर भगवती आद्याशक्ति कामाख्या देवीका पावन पीठ विराजमान है । चिन्मयी आद्याशक्तिका यह पीठ प्राकृतिक सुषमासे सुसज्जित हो कामगिरिको युगोंसे सुशोभित करता आ रहा है । पौराणिक मान्यताके अनुसार सतीके मृतदेहको महाविष्णुद्वारा सुदर्शनचक्रसे काट-काटकर जिन-जिन ५१ स्थानोंपर गिराया गया था, वहाँ-वहाँ एक-एक शक्तिपीठ बन गया । उन्हीं ५१ स्थानोंमें इसका प्रमुख स्थान है । यहाँ गुप्ताङ्ग गिरनेसे इसे 'योनिपीठ' कहा गया है—

'योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या यत्र देवता ।'

यहाँ भगवती कामाख्याकी पूजा-उपासना तन्त्रोक्त आगम-पद्धतिसे की जाती है । दूर-दूरसे आनेवाले यात्री आद्याशक्तिकी पूजा-अर्चा कर मनोवाञ्छा प्राप्त करते हैं ।

आजकल कामाख्या (कामगिरि) पर्वतपर नीचेसे लेकर ऊपरतक पत्थरका मार्ग बना हुआ है, जिसे 'नरकासुर-पथ' कहा जाता है । यह सीधा मार्ग है । वैसे अब जीप, मोटरद्वारा यात्रा योग्य घुमावदार सड़क भी बन गयी है ।

'नरकासुरपथ'के विषयमें पुराणोंमें एक कथा आती है—त्रेतायुगमें वराहपुत्र नरकको भगवान् नारायणद्वारा कामरूप-राज्यमें राजाका पद इस निर्देशके साथ प्रदान किया गया कि 'कामाख्या' आद्याशक्ति हैं, अतः इनके प्रति सदैव भक्तिभाव बनाये रखो ।' नरक भी श्रीनारायणके निर्देशका यथावत् पालन कर सुखपूर्वक राज्य करता रहा, किंतु बादमें बाणासुरके प्रभावमें आकर वह देवद्रोही 'असुर' बन गया । अब असुर नरकने कामाख्या-देवीके रूप-लावण्यपर मुग्ध हो उनके समक्ष विवाहका अत्यन्त अनुचित आत्मघाती प्रस्ताव रखा । देवीने तत्काल उत्तर दिया कि 'यदि रात्रिभरमें तुम इस धामका पथ, घाट और मन्दिरका भवन तैयार कर दो तो मैं सहमत हो सकती हूँ ।' नरकने देवशिल्पी विश्वकर्माको यह कार्य तत्काल पूर्ण करनेका आदेश दिया । जैसे ही निर्माण-कार्य पूरा होनेको हुआ वैसे ही देवीके चमत्कारसे रात्रि-समाप्ति होनेके पूर्व ही मुर्गेने प्रातःकाल होनेकी सूचक बाँग दे दी । अतएव विवाहकी शर्त ज्यों-की-त्यों पूरी न होनेसे वैसा न हो सका । नरकासुरद्वारा निर्मित वह नरक-पथ आज भी विद्यमान है ।

मुख्य मन्दिर, जहाँ महाशक्ति महामुद्रामें शोभायमान हैं, उसे 'कामदेवका मन्दिर' नामसे भी पुकारा जाता है । मन्दिरके सम्बन्धमें नरकासुरका नाम सुननेमें कहीं नहीं आता । कहा जाता है कि नरकासुरके अत्याचारोंसे माता कामाख्याके दर्शनमें बाधा पड़ने लगी तो महामुनि वसिष्ठने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया । परिणामस्वरूप यह कामाख्या पीठ लुप्त हो गया । किंतु ईसाकी १६ वीं शताब्दीमें राजा विश्वसिंहने भगवतीका स्वर्णमन्दिर निर्मित कराया और वही मन्दिर आज 'कामाख्यापीठ'के रूपमें विख्यात है ।

मन्दिरके सम्बन्धमें इतिहास यह बताता है कि कामरूपके छोटे-छोटे राज्योंको विलीनकर कविराज

विश्वसिंह यहाँके एकाधिपति बन गये, किंतु उन्हें इस प्रकार यहाँ एकछत्र साम्राज्य स्थापित करनेके लिये घमासान संग्राम करना पड़ा। संग्रामके बीच ही खोये हुए अपने साथियोंको खोजते हुए विश्वसिंह नीलाचलपर्वतपर पहुँचे और बीचके जंगलमें वटवृक्षके नीचे थककर विश्राम करने लगे। इसी बीच एक वृद्धाने आकर उन्हें बताया कि वटवृक्षके नीचेका टीला जाग्रत् देवताका स्थान है। विश्वसिंहने मनौती मानी—'यदि मेरे खोये हुए भाई और साथी मिल जायँ तथा मेरे राज्यमें पूर्ण शान्ति हो जाय तो मैं यहाँ स्वर्णमन्दिर बनवा दूँगा।' भगवतीने मनौती पूरी कर दी। राजा विश्वसिंहने बड़े भक्तिभावसे मन्दिरका निर्माण प्रारम्भ करवा दिया। मन्दिरके लिये वहाँ खुदाई करवानेपर कामदेवका मूल मन्दिर बाहर निकल आया, जो पुरातत्त्व-शास्त्रियोंके निर्णयानुसार मूल कामाख्यापीठ ठहराया गया।

कुछ दिनों बाद 'कालापहाड़' ने इस मन्दिरको ध्वस्त कर दिया था। फिर भी सौभाग्यकी बात है कि राजा विश्वसिंहके पुत्र नरनारायण (मल्लदेव) और उनके छोटे अनुज शुक्लध्वजने सन् १५६५ ई०में वर्तमान मन्दिरको बनवा दिया, जैसा इस मन्दिरमें लगे शिला-लेखसे स्पष्ट होता है।

लगभग एक शताब्दी बाद कामरूपके आहोम राजाओंने इस मन्दिरपर अधिकार कर लिया और नदिया-शान्तिपुरके शाक्त पण्डितोंको बुलाकर उन्हें इस मन्दिरकी व्यवस्था सौंप दी। वे कामाख्यागिरिपर बस गये और उन्हींके वंशज 'पर्वतीया गोसाईं' आजकल इस शक्तिपीठकी पूजा-उपासना करते हैं। नीचे मन्दिर-तक जानेके लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। आने-जानेका मार्ग अलग-अलग बना है। महापीठकी प्रचलित पूजा-व्यवस्था आहोम राजाओंकी देन है।

त्रिपुरा-प्रदेश

त्रिपुरा-प्रदेशका त्रिपुरसुन्दरी-पीठ

त्रिपुरसुन्दरीका* शक्ति-सम्प्रदायमें असाधारण महत्त्व सर्वविदित है। इसी नामपर विदित स्वयं त्रिपुरा राज्य है। त्रिपुरासे लगभग डेढ़ मील दूर पर्वतपर राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी देवीका भव्य मन्दिर है। कहा जाता है कि सतीकी मृतदेहके अङ्ग विष्णुके सुदर्शनचक्र-द्वारा खण्ड-खण्ड करनेपर विभिन्न स्थानोंपर गिरे थे, उनसे ५१ शक्तिपीठ बने। अङ्ग और आभूषणादिसे जो पीठ बने, उनमेंसे ही एक यह भी अन्यतम है।

मध्य-प्रदेश

मध्यप्रदेशके शक्तिपीठ

वर्तमान मध्यप्रदेशमें प्राचीन मध्यभारतके भी अनेक भागोंका समावेश हो गया है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो पूरे प्रदेशमें अनेक शक्तिपीठ हैं, लोग भगवतीकी साधना-उपासना कर अभीष्ट प्राप्त करते आ रहे हैं। यहाँ उनमेंसे कुछ प्रमुख पीठोंका परिचय दिया जा रहा है। इनमें भी दो पीठविशेष प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक है—मैहरका शारदा शक्तिपीठ और दूसरा है—उज्जैनका हरसिद्धि शक्तिपीठ।

* महाविद्या-सम्प्रदायमें त्रिपुरा नामकी कई देवियाँ हैं (श्रीविद्यार्णव भाग-२)। इनमें त्रिपुरा-भैरवी, त्रिपुरा एवं त्रिपुरसुन्दरी विशेष प्रसिद्ध और उल्लेखनीय हैं।

मैहरका शारदा-शक्तिपीठ

(श्रीप्रह्लादलाल गर्ग)

'जय साँचे दरबारकी ! जय शारदा मैयाकी !!'—का जयघोष एक साथ करते हुए हजारों दर्शनार्थी माता शारदाके दर्शनोंके लिये सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं तो आकाश गूँज उठता है और पर्वतमालाएँ झंकृत हो जाती हैं ।

माता शारदाका मन्दिर एक त्रिकूट पर्वतपर स्थित है, जिसकी ऊँचाई लगभग ७०० फुट होगी । चारों ओर विन्ध्यपर्वतकी श्रृङ्खलाएँ बहुत ही रमणीय और प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण हैं ।

कहा नहीं जा सकता कि माताका प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ ? वहाँ एक शिलालेख अवश्य है, पर उसकी भाषा पढ़ी नहीं जाती और वह विषय भी पुरातत्त्वसे सम्बन्धित है । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मैहर अभी कुछ दिनों पहलेतक एक छोटी-सी देशी रियासत थी और वहाँके नरेशगण मन्दिरकी पूजा आदिका संचालन करते रहे हैं । माता शारदाका स्थान घोर जंगलमें स्थित है । पहले वहाँ लोग दिनमें भी जानेसे डरते थे; क्योंकि जंगली जानवर—शेर, चीते, रीछ, हिरण आदिका बाहुल्य था और वे सदैव वहाँ विचरण करते हुए पाये जाते थे ।

महाराजा मैहरके पूर्वजोंने लगभग २५० वर्ष पूर्व माँके मन्दिरतक जानेके लिये सीढ़ियोंका निर्माण करवाया और पर्वतके नीचे एक बावली यात्रियोंके लिये स्नान तथा जलपानार्थ बनवा दी । समय बदलता गया और स्वर्गीय महाराजा बृजनाथसिंहने सन् १९४० ई० में एक समितिका गठन किया, जिसके अधीन माता शारदाके मन्दिरकी व्यवस्थाका कार्य सौंपा गया । यह व्यवस्था अबतक उसी संस्थाके अधीन रही है ।

पहले माताका मन्दिर मिट्टीके खंभों, बाँसकी बल्लियोंसे निर्मित, खपरैलकी छतके नीचे था । कहा जाता है—मैहर-नरेशने माँके मन्दिरके निर्माणका कई बार प्रयत्न किया, किंतु सदैव कोई-न-कोई विघ्न पड़ जाता और मन्दिरका निर्माण नहीं हो पाता था । फिर साधकोंके मार्गदर्शन और माँकी प्रेरणासे यह निश्चय किया गया कि माँके प्राचीन चबूतरे और मढ़ियाको यथावत् रखा जाय और निर्माणकार्य किया जाय । तदनुसार मन्दिर-व्यवस्था-समितिने सन् १९५१ ई० में मन्दिरका निर्माण-कार्य हाथमें लिया, जो दो-तीन वर्षोंमें निर्विघ्न सम्पन्न हो गया । अब बिजली भी आ गयी और पक्की सड़क भी बन गयी है । पार्श्वमें एक छोटी-सी नगरी बस गयी है तथा एक धर्मशालाका भी निर्माण हो चुका है ।

यही माता शारदा महोबा-नरेश आल्हाकी भी इष्टदेवी थीं । कहा जाता है कि महोबाके पतनके बाद उन्होंने माँकी घोर तपस्या की और वरदान पाया । आज भी मन्दिरके पश्चिममें 'आल्हाताल' और उनका अखाड़ा है । कहते हैं, आल्हा आज भी किसी-न-किसी रूपमें माँके दर्शनार्थ यहाँ आते रहते हैं । 'कल्याण' (जनवरी सन् १९३४ ई०) में छपे यहाँके एक चमत्कारमें बताया गया है कि जिस समय मढ़ियामें ताला आदि कुछ नहीं लगता था, उस समय मूर्तिपर बराबर ताजे सुन्दर फूलोंकी माला और जल देखा जाता था । मैहरके निवासी 'बेंगलौर' नामक एक अंग्रेज साहबने सन् १८७१ ई० की अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि 'वे एक दिन मन्दिरमें दर्शनार्थ गये तो माला मुरझायी हुई थी । पश्चात्, जब वे मन्दिरके चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यका अवलोकन करके पुनः लौटे तो मूर्तिपर ताजे फूलोंकी

माला तथा चन्दन आदि चर्चित पाया गया । उनके बहुत खोजनेपर भी वहाँ कोई पंडा या पुजारी नहीं मिला।' सारांश यह कि यहाँ सिद्ध संत-महात्माओं और नैष्ठिक भक्तोंकी उपस्थिति सदैव रहती है।

माताके मन्दिरके बगलमें भगवान् नरसिंहका मन्दिर है। अतः माताकी उपासना वैष्णवी है। अतएव पूर्वमें कभी यहाँ जो बकरेका बलिदान होता था, उसे सन् १९२२ ई० से तत्कालीन महाराजने सर्वदाके लिये बंद करवा दिया है। यहाँ मारण, उच्चाटन आदि कर्म भी कभी नहीं होते और न किसीको करने ही दिया जाता है। शुद्ध वैष्णव-विधिके अनुसार ही माताकी उपासना की जाती है। प्रतिवर्ष नवरात्रोंमें और वर्षमें भी अनेकों बार अनेकानेक भावुक भक्त यहाँ पहुँचकर माताका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश-का सीमावर्ती यह पीठ एक अत्यन्त जाग्रत शक्तिपीठ कहा जाता है।

हरसिद्धि देवी और अन्य शक्तिपीठ

(१)

(धर्मगुरु श्रीविश्वनाथप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, ज्योतिषाचार्य)

भूतभावन आशुतोष श्रीमहाकालेश्वरकी क्रीडा-स्थली मोक्षभूमि अवन्तिका (उज्जैन) पुण्यसलिला, पापनाशिनी क्षिप्राके उभय तटोंपर स्थित है। यह ऐतिहासिक नगरी शताब्दियोंसे धर्म, संस्कृति, कला तथा तान्त्रिक साधनाओं-की भूमि रही है। उज्जयिनीकी इस प्राचीन गरिमाको प्रमाणित करनेवाले अनेक धार्मिक स्थल, ऐतिहासिक स्मारक एवं पुरातत्त्वीय अवशेष अभी यहाँ विद्यमान हैं। ऐसे दर्शनीय स्थलोंमें हरसिद्धिका मन्दिर अपना प्रमुख स्थान रखता है।

हरसिद्धिका प्राचीन मन्दिर रुद्र सागरके तटपर था। यह सागर कमलपुष्पोंसे आच्छादित रहा करता था। इसके पूर्वी तटपर महाकालेश्वरका और पश्चिमी तटपर हरसिद्धि देवीका मन्दिर था। मुस्लिम आक्रमणोंके बादसे यह क्षेत्र अब एकदम वीरान-सा हो गया है। राणोजी शिंदेके सुयोग्य मन्त्री रामचन्द्र चन्द्रबाबा शेणवीने १८वीं सदीमें श्रीमहाकालेश्वर एवं अन्य मन्दिरोंका विधिवत् पुनर्निर्माण करवा दिया। आजका हरसिद्धि-मन्दिर उसी पुनर्निर्माण-का प्रतिफल है।

वर्तमान हरसिद्धि-मन्दिर एक विशाल प्राङ्गणमें स्थित है, यह प्राङ्गण चारों ओरसे घिरा है, जिसमें आने-जानेके लिये चारों दिशाओंमें द्वार हैं। मन्दिरका प्रवेशद्वार पूर्वकी ओर है। मन्दिरके ऊँचे चबूतरेपर सीढ़ियोंद्वारा जाया जाता है। अर्धमण्डपके बाद मुख्य मण्डप है, जिसके अन्तर्भागपर विभिन्न देवियोंकी आकर्षक एवं शाक्त-ग्रन्थोंमें वर्णित आकृतियाँ चित्रित हैं। सम्प्रति हरसिद्धि-मन्दिरके गर्भगृहमें यद्यपि देवियोंकी प्रतिमा उत्कीर्ण हैं, तथापि यहाँ मूलरूपसे हरसिद्धिकी कोई प्रतिमा नहीं थी। शिवपुराणके अनुसार यहाँ श्रीयन्त्रकी पूजा होती रही। गर्भगृहमें एक शिलापर श्रीयन्त्र उत्कीर्ण है। कालान्तरमें गर्भ-मन्दिरमें प्रतिष्ठित हरसिद्धिदेवीकी प्रतिमाकी पूजा अब आरम्भ हो गयी है, जो हो रही है। हरसिद्धिके अलावा यहाँ अन्नपूर्णा, कालिका, महालक्ष्मी, महासरस्वती एवं महामायाकी प्रतिमाएँ भी हैं।

यह भी कहा जाता है कि हरसिद्धि देवी उज्जैनके वीर नृपति विक्रमादित्यकी आराध्या थीं और वे प्रतिदिन माताका पूजन किया करते थे।

---

(२)

(डॉ० श्रीभगवतीलालजी राजपुरोहित)

स्कन्दपुराणका पूरा-का-पूरा अवन्तिखण्ड उज्जैनकी धार्मिक महत्ता स्पष्ट करता है। उसमें यहाँ २४ मातृकाओंके पीठ बताये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं—१–महामाया, २–काल-मातृका, ३–अम्बिका, ४–अम्बा, ५–शीतला, ६–अम्बालिका, ७–अष्टसिद्धिका, ८–ब्रह्माणी, ९–पार्वती, १०–योगिनी, ११–कौमारी, १२–भगवती, १३–कृत्तिका, १४–चर्परमातृका, १५–वटमातृका, १६–सरस्वती, १७–महालक्ष्मी, १८–महाकाली, १९–भद्रकाली, २०–चामुण्डा, २१–वाराही, २२–ब्रह्मचारिणी, २३–वैष्णवी और २४–विन्ध्यवासिनी।

उज्जैनके धार्मिक शक्तिपीठोंमें उमा, चण्डी, ईश्वरी, गौरी, हरसिद्धि, वरयक्षिणी, वीरभद्रा, ऐन्द्री, दुरितहारिणी, एकानंशा, महादुर्गा, तलमातृकाकी अपनी विशेषता है। वैसे यहाँ नवदुर्गाओंके भी पीठ हैं।

पौराणिक परम्परामें महाकालको 'महेश्वर' और कालिकाको 'महेश्वरी' कहा गया है। उज्जैनके महाकाल-वनमें महेश्वरीका उल्लेख पाया जाता है। कालिदासने अपने मेघदूतमें महाकालको 'चण्डीश्वर' और उनका ताण्डव देखनेवाली 'भवानी'की चर्चा की है। तथ्य भी यही है कि यवनोंके आक्रमणके परिणामस्वरूप महाकालकी शक्ति—देवी 'हरसिद्धि'का यह मन्दिर वर्तमान स्थानपर १८वीं सदीमें बना; जिससे महाकालका मन्दिर दूर है।

मत्स्यपुराणकी एक कथाके अनुसार रुद्रने अवन्तिकाके महाकाल-वनमें जब अन्धकासुरसे युद्ध किया था, तब उन्हें काली और महाकालीने सहयोग दिया था।

विन्ध्यवासिनी, हरसिद्धि आदि देवियोंकी पूजा-उपासनाके अतिरिक्त एक अन्य देवी 'गढ़कालिका'को भी यहाँके लोग बड़ी श्रद्धासे पूजते हैं, जो प्राचीन उज्जैन-क्षेत्रमें विराजती हैं। इसे यहाँ सिद्धपीठ माना जाता है। कहते हैं पहले राजप्रासाद और दुर्ग यहीं था, दुर्गकी प्रधानदेवी होनेसे ये 'गढ़कालिका' कहलाती हैं। परम्परासे सुना जाता है कि हर्षवर्धनके समय इस मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ था।

उपर्युक्त देवियोंके अतिरिक्त यहाँ देवीरूपमें एक 'नगरकोटकी रानी' भी पूजी जाती हैं। विद्वानोंकी मान्यता है कि यह वास्तवमें 'कोट्टवीदेवी' हैं। कोट्टवी वही देवी हैं जो शिव और कृष्णके युद्धके समय कृष्णको युद्धसे विरत करनेके लिये बाणासुरकी माता नग्न होकर सामने आकर खड़ी हो गयी थी। पहले इस कोट्टवी देवीकी पूजा दक्षिणमें प्रचलित थी, बादमें वहींसे उत्तर भारतमें भी चल पड़ी। जैन-साहित्यके अनुसार यह महिषासीन कोट्टक्रिया कहलाती हैं। कोशकार केशव 'कोट्टवी'को अम्बिकाका ही अन्यतम रूप मानते हैं। काशीमें भी 'कोटमाई' का मन्दिर है। अल्मोड़ा जिलेमें लोहाघाटसे १२ मीलपर कोटलगढ़ है, जिसे 'कोट्टवी देवीका गढ़' माना जाता है। उज्जैनकी 'नगरकोटकी रानी'की एक ओर 'कोट्टवी'के रूपमें पूजा की जाती है तो दूसरी ओर 'रानी' (कोट्टरानी)के रूपमें भी उपासना की जाती है। इन्हें गुजरातमें रणादेवी, रन्नादेवी या रावलदेवी कहते हैं। वैसे सूर्यकी 'राज्ञी' और 'निक्षुभा' दो पत्नियाँ बतायी गयी हैं।

महाकवि भासके 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण'के अनुसार उज्जैनमें एक यक्षी (यक्षिणी)की भी प्रतिमा थी जिसे वत्सराजकी पत्नी वासवदत्ता नित्य पूजने जाती थी। उसे 'अवन्ति-सुन्दरी' कहा जाता था।

दूसरी हरसिद्धि—रानगिर (सागर)के श्रीदेवेन्द्रकुमार पाठकके मतसे वहाँ विन्ध्यकी पर्वतश्रेणी (रानगिरि-

रावणागिरि) पर गौरीदाँत गुफामें भी हरसिद्धिका सिद्धपीठ है, जहाँके अनेक चमत्कार किंवदन्तियोंमें जनविश्रुत हैं ।

महिदपुरका चतुर्भुजा-पीठ

शहर महिदपुर उज्जैनसे ६० किलोमीटर दूर स्थित है । उज्जैनसे महिदपुर जानेके लिये बसें मिलती हैं । महिदपुर-किलेके सामने दक्षिणकी ओर एक ऊँचे टीलेपर देवीका एक प्राचीन मन्दिर है । पश्चिमकी ओर कुछ ही दूरीपर क्षिप्राजीका रमणीय घाट है । वहाँका प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुन्दर और मनोहर है । इस मन्दिरको किसने और कब बनवाया, इसका कुछ भी पता नहीं लगता ।

मन्दिरके भीतर श्रीदेवीजीकी श्यामवर्णा चतुर्भुजी मूर्ति है, जिनके हाथोंमें शङ्ख, गदा, ढाल और वर है । सिरके ऊपर जलाधारी-सहित भगवान् आशुतोषका एक छोटा-सा सुन्दर बाण (लिङ्ग) है, जिसपर शेष अपना फन फैलाये हुए हैं । प्रतिमा बड़ी ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है ।

मन्दिरकी पूजा-अर्चाके लिये राज्यकी ओरसे मासिक-रूपमें कुछ वृत्तिकी व्यवस्था है और कुछ माफीकी जमीन भी मिली हुई है । इस मन्दिरका जीर्णोद्धार विगत वर्ष जन-सहयोगद्वारा हुआ है ।—श्रीकिशोरीलाल गाँधी ।

महिषासुर-मर्दिनी-पीठ

मंदसौर जिलेका शामगढ़ नगर, कोटा-नागदा बड़ी रेलवे-लाइनपर स्थित है । यहाँ चार-पाँच सौ वर्ष पुराना एक किला है । इसी किलेपर पुराना गाँव बसा हुआ है । किलेकी दीवारें अब ध्वस्त हो चुकी हैं । इसी किलेकी चोटीपर महिषासुरमर्दिनी माताजीका प्रसिद्ध-मन्दिर है । मन्दिरका जीर्णोद्धार दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था, तबसे मन्दिर उसी अवस्थामें था, किंतु विगत चौबीस-पचीस वर्षों पूर्व पुनः मन्दिरका जीर्णोद्धार किया गया है । सम्पूर्ण मन्दिरमें काँच लगाये गये हैं । नवदुर्गा-मण्डल, शामगढ़ तथा अन्य श्रद्धालु भक्तोंने मिलकर मन्दिरका कायाकल्प कर दिया है । माता महिषासुरमर्दिनीकी मूर्ति तेजस्वी तथा भव्यरूपमें दर्शनीय है । मन्दिरसे लगे हुए दो शेरोंकी मूर्तियाँ भी मन्दिरकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा देती हैं ।

—श्रीमती सुमित्रादेवी व्यास ।

सप्तमातृकाएँ, ६४ योगिनियाँ और सीतावाटिका

पश्चिम-रेलवेकी अजमेर-खंडवा-लाइनपर खंडवासे सैंतीस मील पूर्व ओंकारेश्वररोड-स्टेशन पड़ता है । वहाँसे ओंकारेश्वरका स्थान सात मील है । ओंकारेश्वरसे (नर्मदाके ऊपरकी ओर) दो मीलपर यह सप्तमातृका पीठ पड़ता है । नर्मदाके दक्षिण तटपर स्थित इस शक्ति-पीठमें—१. वाराही, २. चामुण्डा, ३. ब्रह्माणी, ४. वैष्णवी, ५. इन्द्राणी, ६. कौमारी और ७. माहेश्वरी—इन सप्तमातृकाओंके मन्दिर हैं । इस स्थानको 'सातमाता' भी कहा जाता है और ओंकारेश्वर या मान्धता टापूकी तीन दिनोंकी यात्रामें भक्त-यात्री यहाँ नावसे आकर मातृकाओंके दर्शनकर यात्रा पूर्ण करते हैं ।

'सातमाता'से सात मील दूर नर्मदाके उत्तरी तटसे तीन मील दूर 'सीता-वाटिका' सुरम्य स्थान है । बताया जाता है कि माता सीताजीने यहाँ निवास किया था । यही वाल्मीकि-आश्रम भी बताया जाता है । इस पीठमें चौंसठ योगिनियों एवं बावन भैरवोंके श्रीविग्रह हैं । पासमें सीताकुण्ड, रामकुण्ड और लक्ष्मणकुण्ड भी हैं ।

इसके अतिरिक्त जबलपुरके प्रसिद्ध भेड़ाघाट (जलप्रपात) पर स्थित गौरीशंकर-मन्दिरमें भी चौंसठ योगिनियोंके स्थान हैं, जिनका तान्त्रिक दृष्टिसे विशेष महत्त्व माना जाता है ।

कनकवती कालिका, भगवती-पीठ

विन्ध्यपर्वतकी उत्तरतटीय श्रेणियोंके परिसरमें अवन्तिका, माहिष्मती, विदिशानगरी आदि स्थान अत्यन्त ऐतिहासिक स्थल माने जाते हैं। इन्हींके निकट पाण्डवगुफा (पाण्डवश्रेणी) भी है। उसीके निकट श्रीकनकवती (करेडी माता) का पीठ है, जिनका विग्रह अष्टभुज है। इस मन्दिरसे दस-बारह मील दूरीपर उज्जैनकी कालिका और देवास (पूर्व देशीराज्य) की भगवतीके भी पीठ हैं। तीनों पीठ मालवा-क्षेत्रीय जनताकी परम श्रद्धाके केन्द्र हैं। वे इन देवियोंका पौराणिक सम्बन्ध कौशिकी, कात्यायनी और चण्डिकासे जोड़ते हैं। इन तीनों पीठोंकी यात्राको यहाँ 'त्रिकोण-यात्रा' कहा जाता है।

दतियाका श्रीपीताम्बरापीठ

(डॉ० श्रीहरिमोहनलालजी श्रीवास्तव)

मध्यप्रदेशके होशंगाबाद जिलेके मुख्यालयमें भगवती बगलामुखीका मन्दिर—'दुर्गाकुटी'के नामसे विख्यात है। यहाँ दतिया मुख्यालयमें नगरके पूर्वीद्वारके निकट श्रीवनखण्डेश्वर महादेवके सिद्ध स्थानपर एक वेदान्ती योगीने अनाम रहकर ज्येष्ठ कृष्ण ५, संवत् १९९२ वि०को श्रीपीताम्बरापीठकी स्थापना करते हुए भगवती बगला-मुखीकी चतुर्भुजी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी थी। श्रीस्वामीजी महाराजकी साधनाके प्रभावसे आज यह स्थान भारत-वर्षके कुछ इने-गिने सिद्ध शक्तिपीठोंमें अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है।

श्रीशंकरजी, श्रीगणेशजी और श्रीहनुमान्‌जीकी प्राचीन प्रतिमाओंके साथ ही श्रीस्वामीजीने इस स्थानपर भगवती पीताम्बराके अतिरिक्त श्रीसरस्वती, श्रीधूमावती, श्रीमाई, परशुराम, बटुकनाथ, महाकाल-भैरव आदि कितने ही देवी-देवताओंकी स्थापना तथा पञ्चमहादेवकी प्रतिष्ठाद्वारा इस स्थानको एक तीर्थ-जैसा स्वरूप प्रदान किया है। विशाल आश्रममें एक यज्ञशाला है, साधका-वास है और एक पुस्तकालय है। आश्रम एक जलाशयके तटपर स्थित है, मनोरम और दर्शनीय है।

खण्डवाकी तुलजा भवानी

(श्रीप्रदीपकुमारजी भट्ट)

बम्बई-दिल्ली-रेलमार्गके मध्य खंडवा-जंक्शन पड़ता है। रेलवे-स्टेशनसे दक्षिण-पश्चिममें लगभग डेढ़ किलो-मीटरकी दूरीपर स्थित माता 'तुलजा भवानी'का मन्दिर है। इतिहास साक्षी है कि खंडवा (प्राचीन खाण्डव-वन)में भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके सहित वनवासके समय इस वनसे गुजरे थे। सीताजीको प्यास लगनेपर भगवान् श्रीरामने पर्जन्यास्त्रद्वारा 'जलधारा' निकालकर सीताजीकी प्यास बुझायी थी। यहाँसे कुछ दूरीपर भगवान् श्रीरामने नौ दिनोंतक भगवती 'तुलजा भवानी'की आराधना की थी तथा मातासे अस्त्र-शस्त्र एवं वरदान लेकर वे दक्षिणकी ओर (लङ्का-विजयहेतु) प्रस्थित हुए थे।

महाभारतकालमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ यहाँ अग्निदेवको अजीर्ण रोगके उपचारमें काष्ठोंसे तृप्त किया था और देवीकी शक्तिसे इन्द्रको वर्षा करनेसे रोका था। सन् १६५१ ई०के आस-पास छत्रपति शिवाजी यहाँ देवी-दर्शनके लिये उपस्थित हुए थे। शिवाजी महाराजकी आराध्यादेवी तुलजा भवानी ही थीं। यहाँ शारदीय-नवरात्र बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। मन्दिरमें श्रीगणेश, श्रीभैरव, चौंसठ योगिनी, अन्नपूर्णा एवं श्रीहनुमान्‌जीकी आकर्षक एवं भव्य मूर्तियाँ हैं। माता-की मूर्ति बड़ी सलोनी और आकर्षक है एवं ये साक्षात् सिद्धिदात्री हैं।

राजस्थान-प्रदेश

राजस्थानके कतिपय शक्तिपीठ

वीरधर्मा-वसुन्धरा—राजस्थानकी आराध्या पराम्बा शक्ति ही है। पूरे प्रदेशमें अनेक स्थानोंपर शक्तिके अनेक पीठ और मन्दिर हैं, जिनमेंसे कुछ प्रमुख शक्तिपीठोंका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

चित्तौड़की कालिका

राजस्थानके ऐतिहासिक दुर्ग चित्तौड़के भीतर भगवती कालिकाका एक प्राचीन मन्दिर है। इसे 'श्मशानकाली' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। कारण, इस दुर्गकी रक्षामें कितनी ही वीराङ्गनाओंने अग्निमें आत्माहुति दी और कितने रण-बाँकुरे वीरोंने केसरिया बाना पहनकर अपने प्राण रणाङ्गणमें उत्सर्ग किये। मन्दिरमें अखण्ड दीप-ज्योति जलती रहती है। यहाँके प्रत्येक स्तम्भपर अगणित मूर्तियाँ और बेल-बूटे बने हुए हैं। दुर्गमें 'तुलजाभवानी' और 'अन्नपूर्णा'के भी मन्दिर हैं। ध्यान रहे कि तुलजाभवानी छत्रपति शिवाजीकी भी आराध्यादेवी रही हैं और इस तरह यह स्थान मराठा और राजपूत वीरोंके एक अपूर्व औपासनिक-संगमका भी संकेत करता है।

बाँसवाड़ाका प्राचीन त्रिपुरा-मन्दिर

(श्रीकन्हैयालाल जैरादी)

भारतमें भगवतीके अनेक ऐसे सिद्धपीठ एवं मन्दिर हैं, जिनके सम्बन्धमें बहुत कम लोग जानते हैं। उन्हींमेंसे एक यह श्रीत्रिपुर-सुन्दरीका ऐतिहासिक मन्दिर भी है, जो बाँसवाड़ा(राजस्थान)से १८ कि०मी० दूर स्थित,—'तलवाड़ा' गाँवके पास 'महाल्य उमराई' गाँवके निकटस्थ जंगलोंमें स्थित है। श्रीत्रिपुर-सुन्दरीका यह स्थान कितना प्राचीन है, इस सम्बन्धमें कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। किंतु वर्तमानमें मन्दिरके उत्तरी भागमें सम्राट् कनिष्कके समयका एक शिव-लिङ्ग विद्यमान है। अतः लोगोंका विश्वास है कि यह स्थान कनिष्कके पूर्व-कालसे ही प्रतिष्ठित रहा होगा। कुछ विद्वान् तीसरी शताब्दीके पूर्वसे इस स्थानका अस्तित्व मानते हैं; क्योंकि पहले यहाँ 'गढपोली' नामक ऐतिहासिक नगर था। 'गढपोली'-का अर्थ है—दुर्गापुर। आजकल यहाँ 'उमराई' नामक गाँव है।

शिलालेखोंके अनुसार 'श्रीत्रिपुरसुन्दरी-मन्दिर'का जीर्णोद्धार लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व सं० ११५७ वि०में पांचाल जातिके पाताभाई चाँदाभाई लुहारने कराया था। उक्त मन्दिरके पास भागी (फटी) खान नामक स्थान है, जहाँ किसी समय लोहेकी खदान थी। पांचाल जातिके लोग इससे लोहा निकालते थे। यह बात सं० ११०२ वि०के आस-पासकी है।

किंवदन्ती है कि एक दिन माता भवानी भिखारिनके रूपमें भिक्षा माँगने खदानके द्वारपर पहुँचीं, किंतु पांचालोंने कोई ध्यान नहीं दिया, जिससे वे रुष्ट हो गयीं और सारी खदान टूटकर बैठ गयी। कितने ही लोग उसमें दबकर मर गये। यह फटी हुई खदान आज भी मन्दिरके पास दिखायी देती है। माताको प्रसन्न करनेके लिये पाताभाई चाँदाभाई पांचालने मन्दिर और तलवाड़ाका 'पातेला' तालाब बनवाया। पुनः उक्त मन्दिरका जीर्णोद्धार १६वीं शताब्दीमें कराया गया। सं० १९३० वि० में पांचाल-समाजद्वारा मन्दिरपर नया शिखर चढ़ाया गया। सं० १९९१ वि०में उक्त समाजने मन्दिरका पुनः जीर्णोद्धार करवाया।

मन्दिरको वर्तमान स्वरूप देनेका कार्य सन् १९७७ई०में सम्पन्न किया गया। वर्तमान समयमें श्रीत्रिपुरसुन्दरीका यह विशाल मुख्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके द्वारके किवाड़ आदि चाँदीके बने हैं। गर्भ-मन्दिरमें भगवतीकी काले पत्थरकी अष्टादश-भुजावाली भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। भक्तजन उन्हें तरताई माता, त्रिपुरसुन्दरी, महात्रिपुरसुन्दरी आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं। माँ भगवती सिंहवाहिनी हैं। १८ भुजाओंमें दिव्य आयुध हैं। सिंहकी पीठपर अष्टदल कमल है, जिसपर विराजमान भगवतीका दाहिना पैर मुड़ा हुआ है और बायाँ पैर श्रीयन्त्रपर आधृत है।

भगवतीकी प्रतिमाके पृष्ठ-भागमें, प्रभामण्डलमें आठ छोटी-छोटी देवीमूर्तियाँ हैं, जो अपने-अपने वाहनोंपर आसीन हैं। प्रत्येक देवीके हाथमें आयुध हैं। माँके पीछे, पीठपर ५२ भैरवों और ६४ योगिनियोंकी बहुत ही सुन्दर मूर्तियाँ अङ्कित हैं। भगवतीकी मूर्तिके दायीं और बाँयीं ओरके भागोंमें श्रीकृष्ण तथा अन्य देवियाँ और विशिष्ट पशु अङ्कित हैं और देव-दानव-संग्रामकी झाँकी दृष्टिगत होती है। माँ भगवतीकी प्रतिमा बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है।

पुरातन कालमें इस मन्दिरके पीछेके भागमें कदाचित् अनेक मन्दिर थे। कारण, सन् १९८२ई०में खुदाई करते समय उनमेंसे अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमेंसे भगवान् शिवकी एक बहुत ही सुन्दर मूर्ति प्रमुख है। शिवजीकी जंघापर पार्वती विराजमान हैं और एक ओर ऋद्धि-सिद्धिसहित गणेश तथा दूसरी ओर स्वामी कार्तिकेय हैं।

माँ त्रिपुराके उक्त मन्दिरमें प्रतिदिन उपासकों और दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है। नवरात्रोंमें यहाँका मेला दर्शनीय होता है। सम्पूर्ण बागड (बाँसवाड़ा और डूँगरपुरका क्षेत्र), पञ्चमहाल (गुजरात), मन्दसौर, रतलाम, छाबुआ और इन्दौर (मध्य-प्रदेश) तथा मेवाड़ (राजस्थान)के भक्त सहस्रोंकी संख्यामें इस देवी-मन्दिरमें आकर अपनी भक्ति-भावनाको सार्थक करते रहते हैं। आदिवासी लोग प्रत्येक रविवारको दर्शनार्थ आते हैं और अपने लोक-गीतोंद्वारा माँका स्तवन करते हैं।

मन्दिर घृतकी अखण्ड ज्योतिसे अहर्निश प्रकाशित रहता है। पांचाल जातिके लोग माँ त्रिपुराको अपनी 'कुलदेवी' मानते हैं। प्रत्येक आश्विन और चैत्रके नवरात्रोंमें तथा कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको यहाँ यज्ञका आयोजन होता है।

पृथ्वीराज और चंदबरदाईकी इष्टदेवी, कुलदेवी चामुण्डा

(श्रीयोगेश शर्मा‌जी)

राजस्थानमें राजपूतोंकी कुलदेवी, इष्टदेवी, विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न रूपोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे आमेरकी शिला-देवी, करौलीकी कैलादेवी, अजमेर (पुष्कर)के इक्यावन शक्तिपीठ, माता सावित्री, देवी और पापमोचनी आदि। इनके मेले बहुत प्रसिद्ध और चिरकालसे होते आ रहे हैं। राजस्थानका हृदय अजमेर (अजयमेरु) तो ऐतिहासिक तथा धार्मिक आस्थाका बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। शहरके चारों ओर सुन्दर अरावली पर्वतोंके शिखरोंमें प्राकृतिक सुषमा बिखरी पड़ी है। इन्हींके मध्य पश्चिमकी ओर शक्तिदेवी चामुण्डाका मन्दिर स्थित है। उत्तरमें नौसर माताका मन्दिर, दक्षिणमें गौरीकुण्डकी माता और पूर्वमें आमेरकी माता हैं। महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीयके वंशधरोंकी कुलदेवी तथा कवि चंदबरदाई चारण-भाटकी इष्टदेवी—महामाया चामुण्डादेवीका यह भव्य, सुन्दर मन्दिर संवत् १०८३वि०में बनाया गया। प्रसिद्ध है कि

समय पाकर पृथ्वीराज चौहान देवीके अमोघ आशीर्वादसे महान् तीरंदाज तथा पराक्रमी वीर बने ।

एक दन्तकथाके अनुसार देवी राजाकी भक्तिसे इतनी प्रसन्न हुईं कि एक दिन वे एक अति सुन्दर स्त्रीके रूपमें पृथ्वीराजके साथ-साथ चलने लगीं और बोलीं 'मैं तुम्हारे साथ महलोंमें चलूँगी ।' रातके समय परकोटेके बाहर आगे-आगे पृथ्वीराज चले और पीछे-पीछे वह सुन्दरी । जहाँ आज मन्दिर है, वहाँतक आकर स्त्री रुक गयी । पृथ्वीराज आगे निकल गये थे । वे उसे देखने पुनः वापस लौटे तो उन्होंने देखा कि वह स्त्री पत्थरमें परिवर्तित हो धीरे-धीरे जमीनमें धँसती जा रही है । पृथ्वीराजको समझनेमें देर न लगी कि यह परमाराध्या पराम्बा भगवती ही हैं । उन्होंने वहाँ मन्दिर बनानेका संकल्प लिया । पृथ्वीराजने मन्दिर बनवाकर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करवायी । तबसे आजतक मन्दिरमें ढाई फुटका केवल देवीका सिर ही शेष दीखता है ।

मन्दिरके बाहर एक निर्मल मधुर जलका कुण्ड भी है । मन्दिर एक हजार फुटकी ऊँचाईपर है । उसपर चढ़नेके लिये लगभग डेढ़-सौ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । इतनी ऊँचाईपर पानीकी अविरल धाराकी उपलब्धि यह देवीकी अनुपम कृपा-शक्ति ही मानी जाती है ।

वर्तमानमें जन-जनके सहयोगसे सी० आर० पी० के कर्मचारियोंद्वारा मन्दिरका पुनः नवनिर्माण टाइल्सोंके द्वारा हो रहा है और नयी सड़क भी बनायी जा रही है । बिजली भी पहुँच गयी है । प्रतिवर्ष श्रावणके शुक्ल-पक्षकी अष्टमीको यहाँ भारी मेला लगता है ।

अर्बुदादेवी

अर्बुदाचल (आबू) पर्यटकोंका एक प्रिय विहार-स्थल है । यहाँ अर्बुदादेवीका प्रसिद्ध मन्दिर है, जो शक्तिपीठोंमें एक है । यह मन्दिर नगरके वायव्यकोणमें एक ऊँची पहाड़ीपर स्थित है । वास्तवमें यह मन्दिर तो एक आवरण है, मुख्य देवीका स्थान मन्दिरसे संलग्न एक गुफामें है, जहाँ निरन्तर अखण्ड दीप जलता रहता है । इस दीपकके प्रकाशमें भगवतीके दर्शन होते हैं । यह स्थान दिल्लीसे बंबई जानेवाली छोटी लाइनके स्टेशन आबूरोडसे कुछ दूरीपर है । आबूरोडसे आबूपर्वत तक मोटरसे यात्रा करनी पड़ती है ।

साँभर-शक्तिपीठ—राजस्थानके साँभर स्थानपर आद्याशक्तिका प्रसिद्ध पीठ है । प्रदेशके भावुकजनोंके हृदयमें इनका अत्यन्त सम्माननीय स्थान है ।

कपालपीठ, दधिमथी-क्षेत्र

पुष्कर (अजमेर) तीर्थसे बत्तीस कोस दूरीपर यह कपालपीठ है, जहाँ भगवती दधिमथीका आविर्भाव हुआ । कहा जाता है कि त्रेतायुगमें अयोध्यापति मान्धाताने यहाँ एक सात्त्विक यज्ञ किया तो देवीने प्रकट हो उन्हें आशीर्वाद दिया । पुराणोंके अनुसार विकटासुरके वधार्थ इन भगवती नारायणीने अवतार ग्रहण किया और दधि-समुद्रका मन्थन कर असुरका वध किया, जो त्रेतायुगमें माघ-शुक्ला सप्तमीको मान्धाताके यज्ञकुण्डसे आविर्भूत हुई थी ।

दधिमथी देवीका मन्दिर अत्यन्त विशाल है, जिसमें चार बड़े-बड़े चौक हैं । मन्दिर कब बना, यह कहना कठिन है । फिर भी मन्दिरमें प्राप्त शिलालेखसे पता चलता है कि इसका निर्माण २८९ गुप्त संवत्‌में हुआ । आजसे लगभग १३०० वर्ष पूर्व मन्दिर-शिखरका निर्माण हुआ और संवत् १७३५ वि०के लगभग लोकप्रिय अधिपति कमलापतिके वंशजोंने यहाँ कुछ कमरे बनवाये। साथ ही संवत् १९०३ वि०में ब्रह्मचारी विष्णुदासने चार चौक भी बनवाये ।

इस क्षेत्रका 'कपालपीठ' नाम पड़नेमें कई लोककथाएँ प्रचलित हैं । इसी प्रकार देवीकी वर्तमान प्रतिमाके विषयमें भी रोचक किंवदन्ती प्रचलित है । तदनुसार

एक ग्वाला गायें चरा रहा था कि जमीन फटी और सिंह-गर्जनाके साथ भूमिसे देवीका कपाल बाहर आया। ग्वालोंके कोलाहलसे सम्पूर्ण प्रतिमा बाहर नहीं निकल पायी; मात्र कपाल बाहर निकलकर रह गया। ब्रह्मचारी विष्णुदासने इसपर सप्तधातुका कपाल चढ़वाया है। यह भगवती दाधीच ब्राह्मणोंकी परम उपास्या हैं।

करौलीका कैलादेवी-शक्तिपीठ

(श्रीनिरंजनदेवजी शर्मा)

सवाईमाधोपुर (राजस्थान) जनपदके करौली उपनगरके निकट पर्वतशृङ्खलाओंसे घिरे एक घोर जंगलमें त्रिकूट पर्वतपर जगज्जननी माता कैलादेवीका संगमरमरसे निर्मित सुप्रसिद्ध सिद्ध-शक्तिपीठ है। करौली उपनगरसे यह मन्दिर पचीस कि० मी० दूर कैलाग्रामके समीप है। इस दिव्य मन्दिरका निर्माण सन् १८०० ई०के लगभग करौलीनरेश महाराज गोपालसिंहके शासनकालमें हुआ तथा परवर्ती महाराज भँवरपालसिंह और गणेशपालसिंहने मन्दिरका व्यापक विकास किया एवं शक्तिपीठकी भूमिपर जलापूर्तिके लिये विशाल कूप भी बनवा दिया, जो 'दुर्गासागर' नामसे पुकारा जाता है।

मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पूर्व संगमरमरकी आठ सीढ़ियाँ नंगे पैर चढ़नी पड़ती हैं। सीढ़ियोंके दोनों चौकियोंपर वनकेसरी (सिंह) की दो भयानक प्रतिमाएँ देवीवाहनके रूपमें खड़ी हैं। सीढ़ियोंके बाद मार्ग कुछ चौड़ा है, जिसके दोनों ओर सुरम्य बरामदे हैं, जहाँ भक्तगण दीप जलाते रहते हैं। दाहिने हाथकी ओर मन्दिरमें सिंहारूढ़ अष्टभुजा भगवतीकी मूर्ति 'कैलादेवी'-के नामसे विराज रही हैं। मूर्ति देखनेमें अत्यन्त मनोहारिणी है। मन्दिरके सामने विस्तृत प्राङ्गणमें श्रीगणेशजी तथा श्रीभैरवजीकी मूर्तियाँ हैं, जिन्हें प्राकृत व्रजभाषामें 'लाँगुरिया' कहते हैं। भक्तगण इन्हींको लक्ष्य कर भाव-विभोर हो देवीके भजन और लोकगीत गाया करते हैं—

'कैला मैयाको लगो है दरबार लाँगुरिया।
चलै तो दर्शन करि आवें॥'

और—

'द्वो-द्वो जोगनिनके बीच अकेलो लाँगुरिया।'

चिरकालसे चली आ रही जनश्रुति तथा ऐतिहासिक तथ्योंके अनुसार बहुत समय पूर्व इस कैलाग्राममें, जहाँ कभी घोर जंगल था, श्रीकेदारगिरि नामक एक योगिराज यहाँ गहन गुफामें तपस्या किया करते थे। उनकी तपस्याका एक कारण यह भी था कि इस अञ्चलमें अनेक धर्मद्रोही दानव साधु-संतों एवं निरीह ग्रामीणोंका घोर उत्पीड़न किया करते थे। महात्मा उनकी रक्षा करना चाहते थे। उन्हें भी धर्मद्रोहियोंने महान् कष्ट दिये, पर वे अडिग रहे। अन्ततः तपस्यासे द्रवित हो भगवतीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और दानवोंका वध कर साधु-संतोंके रक्षार्थ इन्हें आश्वस्त किया। माता पहले छोटी बालिकाके रूपमें, पश्चात् दानव-वधके लिये तत्पर अपने उग्ररूपमें उनके समक्ष प्रकट हुई थीं। आज भी वहाँ दानवदह—कालीशिला-नदीके तटपर, जहाँ देवी तथा दानवका युद्ध हुआ था, जगदम्बाके दो चरणचिह्न तथा दानवके पैरका निशान अङ्कित हैं।

योगिराजने माताकी इस स्वयम्भू प्रतिमाको, जो भगवतीकी प्रेरणासे इन्हें बादमें उपलब्ध हुई थी, वैदिक विधिसे मन्दिरमें प्रतिष्ठित करवाया और वे ही भगवती 'कैलामाता'* कहलाने लगीं। कालान्तरमें वर्तमान

* भगवतीका यह पौराणिक नाम है। द्वापरमें भीमसेनकी स्तुतिपर प्रसन्न होकर मैंने कहा था कि कलिकालमें लोक-कल्याणार्थ मेरा प्रादुर्भाव होनेपर मुझे 'कैलेश्वरी'के नामसे जाना जायगा; क्योंकि तब मैं अपनी 'कला'-

कैलादेवी मन्दिरसे १० किलोमीटर दूर दक्षिणमें चम्बलनदीके उस पार बसे बाँसीखेरा गाँवमें खीची राजा मुकुन्ददासद्वारा (संवत् १२०७)में प्रतिष्ठापित और सेवित चामुण्डाकी प्राचीन प्रतिमा भी, जो समुचित सेवा-पूजाके अभावमें उपेक्षित थी, भगवतीकी प्रेरणासे तत्कालीन करौली-नरेश महाराज श्रीगोपालसिंहजीके द्वारा संवत् १७८० वि० में भगवती कैलादेवीके दाहिनी ओर प्रतिष्ठापित की गयी। ये दोनों ही मनोहर भव्य-प्रतिमाएँ अपने दिव्याकर्षण और तेजस्वितासे भक्तोंको आकृष्ट करती हैं। अब दोनों विग्रह ही संयुक्तरूपसे 'कैलादेवी'के नामसे जाने जाते हैं। प्रतिमाओंके समीप दो दीपक अखण्ड रूपसे जलते रहते हैं। इनमें एक शुद्ध देशी घृतका और दूसरा तिल्लीके तेलसे भरा जाता है। मन्दिरकी देखरेख तथा प्रबन्ध बहुत कालतक करौली राजवंश करता रहा, किंतु अब कुछ वर्षोंसे 'कैलादेवी-ट्रस्ट' की स्थापना हो जानेसे ट्रस्ट-द्वारा ही मन्दिरकी सम्पूर्ण व्यवस्था देखी जाती है। यहाँ चैत्रके नवरात्रमें विशाल मेला लगता है, जिसमें आस-पासके क्षेत्रों तथा भारतके दूरस्थ प्रदेशोंसे भी हजारों-हजारों भक्तगण और उपासक आकर माँका पूजन-अर्चन कर कृतकृत्य होते हैं।

शेखावाटीकी चतुर्भुजीदेवी

(श्रीकिशनलाल पंसारी)

राजस्थानके शेखावाटी अञ्चलके बीच स्वर्णिम आभायुक्त रेतीले टीलोंसे घिरा हुआ फतेहपुर-शेखावाटी शहर अपने अञ्चलमें विभिन्न अद्भुत अनुपम देव-स्थानोंको सँजोये हुए है। इस शहरकी स्थापना विक्रम संवत् १५०५में हुई। लगभग उसीके समकालीन यहाँ आदिशक्ति माँ दुर्गाका मन्दिर अवस्थित है, जिसे 'श्रीचतुर्भुजी माताजी'-मन्दिरके नामसे जाना जाता है। अग्रवाल महाजन-परिवार और उनके पुरोहित सारस्वत-परिवारकी पूजित होनेके कारण भगवतीके प्रेरणात्मक निर्देशके फल-स्वरूप इस मन्दिरकी स्थापना हुई। फलतः उनकी कुल-देवीके रूपमें पूजा-अर्चनाका प्रारम्भ हुआ।

इस मन्दिरमें माताके पाँच श्रीविग्रह चतुर्भुजा-स्वरूपमें विद्यमान हैं। भोग-प्रसादमें किसी प्रकारका तामसी भोग यहाँपर नहीं चढ़ाया जा सकता। माँकी सत्त्वगुणी उपासनाका यह सिद्ध स्थान है। शुद्ध घृतका अखण्ड दीप दर्शनार्थियोंपर माँकी अमित आभा बरसाता रहता है।

जीणमाता

(श्रीसुदर्शनकुमार शर्मा, कलावटिया)

राजस्थानके शेखावाटी-क्षेत्रान्तर्गत सीकर नगरसे लगभग १५ कि० मी० दक्षिणमें मनोरम पर्वत-श्रेणियोंके मध्य शक्तिस्वरूपा भगवती जीणमाताका भव्य मन्दिर है, यह जाग्रत् सिद्धपीठ है। किंवदन्ती है कि बादशाह औरंगजेब सेनासहित इस मन्दिरको ध्वस्त करने आया था, किंतु जगदम्बाका कुछ ऐसा विलक्षण चमत्कार हुआ कि

रूपमें अवतरित होऊँगी। अतः इनका नाम 'कैलेश्वरी' पड़ा। बादमें संक्षिप्तमें—कैलामाता या 'कैलाजी' भी कहा जाने लगा।

स्कन्दपुराणमें देवीके वचन हैं—

ततः कलियुगे प्राप्ते कैलो नाम भविष्यति। मम भक्तस्तस्य नाम्ना भाव्या कैलेश्वरीत्यहम्॥

सेनामें भगदड़ मच गयी और औरंगजेब हताश, निराश हो वापस लौट गया। तत्पश्चात् देवीकी सेवामें सवा मन तेल दिल्लीके मुगल-शासकोंकी ओरसे यहाँ प्रतिवर्ष आने लगा। चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें यहाँ श्रद्धालु भक्तोंकी बड़ी भीड़ होती है। प्रायः सभी समय दर्शनार्थी यात्री यहाँ आते रहते हैं। कई-कई श्रद्धालु भक्त नंगे पाँव जलती हुई सिगड़ी (अँगीठी) अपने सिरपर रखकर, भाव-विभोर हो, भजन-कीर्तन करते हुए दूरस्थ क्षेत्रोंसे आकर माँके दरबारमें पूजनार्थ पहुँचते हैं। नवरात्रोंमें यहाँ मेलेका विशेष आयोजन होता है।

दिल्ली-क्षेत्रके शक्तिपीठ

योगमाया-शक्तिपीठ

भारतकी प्राचीन और आधुनिक राजधानी दिल्लीमें दो स्थान शक्तिपीठके रूपमें विशेष मान्य हैं। एक कुतुबमीनारके पास योगमायाका मन्दिर, जिसमें कामाख्या देवी-स्थानकी भाँति आदि-प्रतीक प्रतिष्ठित है। दूसरा स्थान दिल्लीसे कुछ दूर ओखलाके निकट एक टीलेपर है। यहाँकी देवीके बड़े-बड़े पंखे चढ़ानेकी प्रथा प्रचलित है।

कालिकापीठ

दिल्लीसे शिमला जानेवाली रेलवेलाइनपर काल्का नामक जंक्शन है। यहाँ भगवती कालिकाजीका प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। दुर्गासप्तशतीमें कथा आती है कि शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंने हिमालयपर जाकर भगवतीकी स्तुति की। पार्वतीने प्रकट होकर देवताओंसे पूछा कि ये लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं? तत्क्षण उनके चिन्मय देहसे भगवती कौशिकी प्रकट होकर बोलीं कि वे उन्हीं (भगवती पार्वती) की ही स्तुति कर रहे हैं। कौशिकीके पृथक् होनेपर गौरी श्यामवर्णा हो गयी। यही श्यामवर्णा पार्वती कालिका नामसे हिमालयपर रह गयीं। मान्यता है कि इस मन्दिरमें उन्हीं श्रीकालिकाका निवास है।

हिमाचल-प्रदेश

हिमाचल-प्रदेशके गाँव-गाँवमें शक्तिपीठ

(मण्डी, कुल्लू, शिमला, सिरमौर आदिमें देवीका 'गूर')

(पं० श्रीदेवकीनन्दनजी शर्मा)

हिमाचल उत्तरी भारतका एक पहाड़ी प्रदेश है, जिसे देवभूमि कहना अनुचित न होगा। हिमाचलके अञ्चलमें ऐसा कोई भी गाँव न होगा, जिसमें दुर्गा-मन्दिर अथवा शिवमन्दिर न हो। नगरोंमें तो विभिन्न मन्दिर पाये ही जाते हैं। यहाँ शक्ति-उपासना तान्त्रिक मन्त्रों और यान्त्रिक पद्धतिद्वारा होती है। यहाँ उपासनाकी बहुत-सी विशेष परम्पराएँ चली आ रही हैं, जो अपना अलग स्थान रखती हैं। विशेषकर जिला मण्डी, कुल्लू, शिमला, सिरमौरमें प्रत्येक देवी-देवताका एक 'गूर' होता है, जिसमें शक्तिका विशेष आवेश आता है। आवेश आनेपर आविष्टके शरीरमें विशेष कम्पन-सा होता है। इस अवस्थामें देवी-शक्तिके द्वारा वह गुप्त-से-गुप्त तथा रहस्यमयी बातें बताने लगता है।

लोग कोई भी कार्य आरम्भ करनेसे पूर्व 'गूर' से प्रश्न पूछकर स्वीकृति मिलनेपर ही कार्य आरम्भ करते हैं। प्रायः देवी-देवताओंका एक रथ बनाया जाता है, जिसमें सोने-चाँदीका भी प्रयोग होता है। प्राण-प्रतिष्ठा करनेपर रथमें देवी शक्ति आ जाती है, जिसे दो व्यक्ति

कंधेपर उठाकर प्रश्न करते जाते हैं। प्रश्नके हल हो जानेपर रथ आगे बढ़ेगा, न होनेपर पीछे हटेगा। 'गूर' बननेवालेको शक्तिकी विशेष उपासना करनी पड़ती है तथा सात्त्विक जीवन बिताना पड़ता। यहाँतक कि वह चमड़ेके बूट अथवा चप्पल भी नहीं पहन सकता। कई दिनोंतक उपवास रखकर उपासना करनी पड़ती है। यदि वह कहीं नियमोंमें भूल कर बैठे तो उसे देवीका दण्ड भी भुगतना पड़ता है।

जो लोग आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखोंसे पीड़ित होते हैं, शक्तिपीठमें जाकर उपवास रखते हैं और मूर्तिका चरणामृत पीते हैं। जबतक उनके शारीरिक रोग अथवा शत्रुबाधा आदि दूर नहीं हो जाती तबतक शक्तिकी शरणमें पड़े रहकर अनन्य भजन करते रहते हैं। यह साधारण लोगोंकी शक्ति-उपासनाका क्रम है। शिक्षित लोग मन्दिरोंमें तथा घरोंमें श्रीदुर्गासप्तशतीका अनुष्ठान करते हैं। विशेषकर आश्विन तथा चैत्रके-नवरात्रोंमें यहाँ ऐसा कोई भी मन्दिर नहीं मिलेगा, जहाँ दुर्गा-अनुष्ठान न होता हो। मुख्य मन्दिरोंमें शतचण्डी और सहस्र-चण्डीका आयोजन भी होता है। वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ यहाँ तान्त्रिक-पद्धतिको विशेष महत्त्व दिया जाता है।

यहाँ ऐसे ज्ञानी भक्त भी विद्यमान हैं, भले ही उनकी संख्या अल्प हो, जो सब प्राणियोंमें आत्मस्वरूप ईश्वरको देखते हैं और परपीड़ाको अपनी पीड़ा समझते हैं। ऐसे साधक सात्त्विक भावसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा शक्ति-उपासना करते हैं। हर्षका विषय है कि यहाँ दिन-प्रतिदिन सात्त्विक-उपासनाका क्रम बढ़ता जा रहा है।

काँगड़ा-घाटीका शक्ति-त्रिकोण

जालन्धरसे ज्वालामुखी जाते हुए होशियारपुरसे ३० मीलपर चिन्तापूर्णी माताका स्थान है, जो सघन पर्वतीय प्रदेशमें है। काँगड़ा-घाटीमें जो शक्ति-त्रिकोण है, उसमें प्रत्येक सिरेपर क्रमशः चिन्तापूर्णी, ज्वालामुखी और काँगड़ाकी विद्येश्वरी विराजमान हैं। इन तीनों शक्तिपीठोंमें प्रतिवर्ष लाखों यात्री आते हैं।

ज्वालामुखी-शक्तिपीठ

पठानकोट-योगीन्द्रनगर-रेलमार्गपर स्थित ज्वालामुखी रोड स्टेशनसे १५ मील दूर कालीधर-पर्वतकी सुरम्य तलहटीमें ज्वालामुखी शक्तिपीठ है। दर्शनीय देवीके मन्दिरके अहातेमें छोटी नदीके पुलपरसे जाना पड़ता है। मन्दिरके भीतर मूर्तिके स्थानपर सात पर्वतीय दरारोंसे अनादिकालसे जल रही ज्वालाओंके दर्शन होते हैं। ज्योतियोंको दूध पिलाया जाता है तो उसमें बत्ती तैरने लगती है और कुछ देर-तक नाचती है। यह दृश्य हृदयको बरबस आकृष्ट कर लेता है और छिपी हुई श्रद्धा-भक्ति उमड़ पड़ती है। ज्योतियोंकी संख्या अधिक-से-अधिक तेरह और कम-से-कम तीन होती हैं।

विद्येश्वरी देवी

काँगड़ाकी सिद्धमाता विद्येश्वरीको 'नगरकोटकी देवी' भी कहते हैं। कहा जाता है कि यहाँ सतीकी मृतदेहका मुण्ड गिरा था। मूर्ति भी मुण्ड ही है, जिसपर स्वर्णमय छत्र झलक रहा है। भगवतीके सम्मुख चाँदीसे मढ़े स्थानोंमें प्रसिद्ध वाग्यन्त्र है। चिन्तापूर्णी और ज्वालामुखीके दर्शनार्थी प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें इन देवीका भी दर्शन अनिवार्यतः किया करते हैं।

जालन्धरपीठ—शक्तिपीठोंके वर्णनमें जालन्धरका भी नाम आता है, किंतु सम्प्रति जालन्धरनगरमें कोई प्रधान देवीपीठ नहीं मिलता। अनुमानतः प्राचीन जालन्धरसे त्रिगर्त प्रदेश (वर्तमान काँगड़ेकी घाटी) मानना उचित होगा, जिसमें उपर्युक्त त्रिकोणपीठकी तीन जाग्रत् देवियाँ भक्तोंके अभीष्ट-पूरणार्थ विराज रही हैं।

नयनादेवी-शक्तिपीठ

(श्रीकृष्णलाल वेंकट, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

हिमाचल-प्रदेशमें विश्वविख्यात भाखड़ा-नंगल बाँधसे दक्षिणकी ओर २० कि० मी० ऊँचे गिरिश्रृङ्गपर माता नयनादेवीका प्राचीनतम मन्दिर है। कहा जाता है कि इसका निर्माण द्वापरमें पाण्डवोंद्वारा किया गया था। मन्दिरके वर्तमान स्वरूपका निर्माण बिलासपुर (हि० प्र०)के भूतपूर्व नरेश वीरचन्दद्वारा आजसे लगभग १४००ई० पूर्व हुआ था और उन्होंने कैहलूर (कोहेनूर) राज्यकी स्थापना की थी। उसी दिव्य मन्दिरके मण्डपके भीतर भगवती जगदम्बा श्रीनयनादेवी विराज रही हैं। माताका यह विग्रह स्वयम्भू है।

हिमाचल-प्रदेशकी सरकारने मन्दिरके लिये एक ट्रस्ट एस० डी० एम०, बिलासपुरकी अध्यक्षतामें स्थापित किया है। मन्दिरमें पूजा-पाठ, भोग-लंगर, सफाई और शिक्षा—शक्ति-हाई-स्कूल और संस्कृत महाविद्यालय आदिके कार्योंको सुव्यवस्थित रूपमें चलाया जा रहा है। नवरात्रोंके अतिरिक्त भी प्रदेशके अनेक साधक और भावुक भक्त माताकी साधना और उपासना करने यहाँ आते हैं।

जम्मू-कश्मीर-प्रदेश

कश्मीर-प्रदेशके शक्तिपीठ

(पं० श्रीजानकीनाथजी कौल, 'कमल' एम्० ए०, बी० टी०, प्रभाकर)

नीलमतके अनुसार पर्वतराज हिमालयके उत्तर-पश्चिम भागमें लक्ष्मीका प्रदेश (कश्यपपीठ) कश्मीर प्रकृतिकी सुरम्यस्थली है। यह भारतवर्षमें ही नहीं, संसारभरमें अपनी रमणीयताके लिये विशेष प्रसिद्ध है। शक्ति-उपासनाके आधाररूपमें यह प्रदेश अति प्राचीनकालसे विशेष आदर पाता रहा है। रुद्रयामल-तन्त्रमें कहा है—**'शाधी मुखमिहोच्यते'** अर्थात् शक्ति-शिवके साक्षात्कारका यह प्रवेशद्वार है।

'नीलमत-पुराण' इसका स्थलपुराण है। तदनुसार यहाँ भगवती शारदा, भगवती राजराजेश्वरी लक्ष्मी (श्रीनगर) महारानी, भगवती शारिका, भगवती ज्वालाके रूपमें शक्ति-उपासना की जाती रही है। कहते हैं कि आद्य-शंकराचार्यको यहाँके 'शारदा-पीठ' (जो अब पाकिस्तानके आजाद कश्मीरमें है) से ही 'जगद्गुरु'की महान् उपाधि प्राप्त हुई थी। भारतके प्रसिद्ध ५१ शक्ति-महापीठोंमेंसे यहाँ श्रीनगरमें सतीके अङ्गभूषण तथा कण्ठप्रदेशकी पूजा होती है। शक्तिका नाम 'महामाया' है और 'भैरव' त्रिसन्ध्येश्वर है। कश्मीरके कतिपय अन्य शक्तिपीठोंका परिचय इस प्रकार है—

राजराजेश्वरी श्रीमहारानी

यह तीर्थस्थान श्रीनगरसे २८ कि०मी० दूर तुलमूल ग्राममें है। यहाँ षट्कोण तथा ओंकारके आकारका अमृतकुण्ड (चश्मा या नाग) है, जिसके मध्य महाराज्ञीका मूर्ति-विग्रह संगमरमरके सुन्दर मन्दिरमें स्थापित है। इस सुन्दर भूमि-भागमें चारों ओर सिन्धुनदीका नाला बहता है। भगवतीके ध्यानका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

या द्वादशार्कपरिमण्डितमूर्तिरेका
सिंहासनोपरिगता सुरगैर्वृता च।
देवीमतक्र्यगतिमीश्वरतां प्रपन्नां
तां नौमि भर्गवपुषीं परमार्थराज्ञीम्॥

चक्रेश्वरी श्रीशारिका

ये द्वारि-पर्वतके मध्य विराजमान हैं। इसे 'शारिका-शैल' भी कहते हैं। कहा जाता है कि भगवतीने सारिकाका रूप धारण कर अपनी चोंचसे कण-कण डालकर इसे बनाया। 'सारिका'से ही 'शारिका' बन गया। 'ध्यानरत्नमाला'में देवीका ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

बीजैः सप्तभिरुज्ज्वलाकृतिरसौ या सप्तसप्तिद्युतिः
सप्ताषप्रणताङ्घ्रिपङ्कजयुगा या सप्तलोकार्तिहृत्।
कश्मीरप्रवरेशमध्यनगरी प्रद्युम्नपीठे स्थिता
देवी सप्तकसंयुता भगवती श्रीशारिका पातु नः॥

द्वारि-पर्वतके स्थान-स्थानपर देवी-देवताओंके निर्देश हैं। यहाँ त्रिकोटि देवताओंका वास है। भक्तजन नित्यप्रति विशेषकर प्रातःकाल इस श्रेष्ठ पर्वतकी परिक्रमा करते हैं, जो लगभग चार किलो मीटर है।

ऊपर कहे दोनों तीर्थस्थानोंमें रुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत भवानी-नामसहस्रस्तवराज तथा कालिदासकृत 'पञ्चस्तवी' (जिसमें लघुस्तव, चर्चास्तव, घटस्तव, अम्बास्तव और सकलजननी-स्तव—ये पाँच स्तव हैं।)का पाठ अनिवार्य रूपसे किया जाता है। आद्यशंकराचार्यकृत 'सौन्दर्यलहरी'का भी यहाँ अधिक प्रचार रहा है। ये ग्रन्थ षट्चक्र-रहस्य और श्रीचक्र-विश्लेषणमें उत्तम माने जाते हैं, फिर भी यहाँके साधारण जनमें भवानीनामसहस्रशक्ति-उपासनाका विशेष माध्यम रहा है। इस स्तवराजका पाठ और जप प्राचीन कालसे होता चला आ रहा है। यह इसकी बहुसंख्यक प्राचीन प्राप्त हस्तलिपियोंसे ज्ञात होता है।

श्रीसाहिब कौल शक्ति-साधनाके विशेष आचार्य हुए हैं। जिन्होंने 'भवानीसहस्रनाम' पर 'देवीनामविलास' नामसे विशद व्याख्या लिखी है।

श्रीज्वालाजी

इनका विशाल मन्दिर श्रीनगरसे १८ किलोमीटर दूर खिव गाँवमें पर्वत-खण्डपर स्थित है। यहाँ आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीको एक बड़ा मेला लगता है। भक्तजन पर्वतपादमें स्थित जल-कुण्डमें स्नान-तर्पण और अर्चन-ध्यानकर पत्थर-निर्मित सीढ़ियोंसे ऊपर जाकर ज्वाला देवीजीका दर्शन-पूजन करते हैं।

कुलवागीश्वरी

श्रीनगरसे लगभग ६० कि० मी० दूर अनन्तनागके प्रान्तमें कुल-ग्रामके स्थानपर देवीके कुण्ड तथा मन्दिर हैं। 'नीलमतपुराण'के अनुसार और भी कई मन्दिर हैं, जो कश्मीरी-पण्डितजनोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। विशेष गृहस्थोंके साथ विशेष देवियाँ जुड़ी हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-से और शक्ति-स्थान कश्मीरमें विद्यमान हैं। उनका वर्णन स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जा सका है।

क्षीरभवानी योगमाया

कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरसे पंद्रह मील उत्तर 'गन्धर्व'-स्थान है। इसके पास ही क्षीरभवानी योगमायाका मन्दिर है। चारों ओर जल और बीचमें एक टापू है। इस स्थानकी शोभा अत्यन्त सुरम्य है। चिनारोंके वृक्षोंकी पङ्क्ति और मन्दिरकी पवित्रता तथा प्राकृतिक सुन्दरता भावुक धार्मिक पर्यटकोंकी दृष्टि सहज ही आकृष्ट कर लेती है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमीको यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। प्रायः वैदिक विधिसे यहाँ साधना करनेकी परम्परा है। क्षीरभवानीके मण्डपके चारों ओर कुण्ड-जलके रंग-परिवर्तनपर श्रद्धालु शुभाशुभका विचार करते हैं।

वैष्णवी देवी

वैष्णवीदेवी (वैष्णोदेवी)

शक्ति-उपासकोंकी सुपरिचित वैष्णवी देवीके जाग्रत् सिद्धपीठको कश्मीरके शक्तिपीठोंमें शिरोभूषण ही कहा जायगा, किंतु जहाँ ये भगवती विराजती हैं, वहाँ कोई मन्दिर नहीं है। कहा जाता है, देवीने त्रिशूलके प्रहारसे गुफा बना ली है। गुफामें लगभग ५० गज भीतर जानेपर महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीकी मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियोंके चरणोंसे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है। इसे 'बाणगङ्गा' कहते हैं। गुफाद्वारमें पहले पाँच गज लेटकर जाना पड़ता है। भारतके शक्ति-भक्त हजारोंकी संख्यामें भगवतीकी यात्रा करते रहते हैं।

यह स्थान जम्मूसे ४६ मील उत्तर-पश्चिमकी ओर एक अत्यन्त अन्धकारमय गुफामें है। नवरात्रमें यहाँकी यात्राका विशेष महत्त्व माना जाता है। पहले जम्मूसे ४५ कि० मी० मोटर-बससे कटरा नामक स्थानमें जाना पड़ता है। फिर वहाँसे कुली-एजेंसीद्वारा कुलीका प्रबन्ध करना पड़ता है। वहाँसे घड़ी, रबरके जूते आदि पर्वतीय यात्राके सामान लेकर चलना पड़ता है। तीन मील दूरीपर चरण-पादुका-स्थानमें माताके चरणचिह्न हैं। प्रथम आदिकुमारी-स्थानमें विश्राम होता है। यहाँ एक 'गर्भवास' नामक संकीर्ण गुहा है। इसमें प्रवेश करके यात्री बाहर निकलते हैं। आदिकुमारी-स्थानमें ही माताका आविर्भाव हुआ था, ऐसा कहा जाता है। आगेका मार्ग दुर्गम तथा संकीर्ण है। आगे बढ़नेपर हाथीमत्थाकी कठिन चढ़ाई मिलती है। चढ़ाई पूरी होनेपर लगभग ३ मील उतराई मिलती है। तब भगवती वैष्णवी देवीके स्थानपर पहुँचा जाता है। भावुक इतना कष्ट उठाकर भी माताके दर्शनार्थ उतावले रहते हैं।

गुजरात-प्रदेश

गुजरात-प्रदेशके शक्तिपीठ

अन्य प्रदेशोंकी भाँति गुजरात प्रदेश भी शक्ति-साधना और उपासनाका विख्यात केन्द्र है। प्रदेशमें भगवतीके अनेक प्राचीन मन्दिर इस बातके प्रमाण हैं कि गुजरात-प्रदेशके लोग भी देवी आद्याशक्तिकी पूजा और भक्तिमें किसीसे पीछे नहीं हैं। गुजराती समाजमें 'नारी'-जातिका स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। गुजरात-प्रदेशके अनेक शान्त और पवित्र स्थल देवीकी उपासनाके लिये असाधारण वरदान कहे जा सकते हैं। यहाँ तीन शक्तिपीठ प्रमुख हैं—१—अम्बिका, २—कालिका तथा ३—श्रीबाला बहुचरा। इनके अतिरिक्त गौणरूपसे कच्छमें आशापुरा, भुजके पास रुद्राणी, काठियावाड़में द्वारकाके निकट अभयमाता, हलवदके पास सुन्दरी, वढवाणमें बुटमाता, नर्मदातटपर अनुसूया, पेटलादके पास आशापुरी, घोघाके पास खोडियार माता आदि अन्य स्थान हैं। इनमेंसे कुछ प्रमुख स्थानोंका विवरण दिया जा रहा है—

आरासुरी अम्बिका (अम्बाजी)

मृत सती-देहको लिये घूमते हुए भगवान् शंकरके मोहको छिन्न-भिन्न करनेके उद्देश्यसे भगवान् विष्णुका चक्र गुप्तरीतिसे सतीदेहमें प्रविष्ट होकर उनके अङ्गोंको धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े कर गिराने लगा। जहाँ-जहाँ उनके अङ्ग गिरे, वे स्थान शक्तिपीठ हो गये। कहा जाता है कि गुजरातके अर्बुदारण्य-क्षेत्रमें पर्वत-शिखरपर सतीके हृदयका एक भाग गिरा था, आजतक

उसी अङ्गकी पूजा यहाँ अम्बा या अम्बिकादेवीके रूपमें होती है। यह शक्तिपीठ अत्यन्त रमणीय स्थानपर स्थित है। यहाँ माताजीका शृङ्गार प्रातः बालारूपमें, मध्याह्नमें युवतीरूपमें और सायं वृद्धाके रूपमें होता है। वास्तवमें यहाँ माताका कोई विग्रह नहीं है, 'बीसायन्त्र' मात्र है, जो शृङ्गारभेदसे तीन रूपोंमें भासता है।

दिल्लीसे अहमदाबाद रेलवे लाइनपर स्थित आबूरोड स्टेशनसे 'आरासुर' तक एक सड़क जाती है। वहाँ पर्वतपर अम्बिकाजीका मन्दिर है। पर्वतीय-पथ अत्यन्त रमणीय है। आरासुर-पर्वतके धवल होनेके कारण इन देवीको 'धोळागढ़वाळी' माताकी उपाधि प्राप्त है। यह स्थान गुजरातके लोगोंका अत्यन्त प्रिय स्थान है। दूर-दूरसे मुण्डन-संस्कार करानेके लिये लोग यहाँ आते हैं। मन्दिरमें दर्शनका कार्यक्रम प्रातः आठसे बारह बजेतक चलता है। सूर्यास्तके समय आरतीका दृश्य अत्यन्त मनोहर और श्रद्धोत्पादक होता है।

शरत्पूर्णिमाको 'गरबा' नृत्यसे गुजरातकी देवियाँ और कुमारियाँ माताजीका मधुर-स्तवन करती हैं तो उस दृश्यकी मोहकता वर्णनातीत हो जाती है। आरासुरी अम्बाजीके अनेक आख्यान इस क्षेत्रमें प्रचलित हैं। समय-समयपर वे अपने अधिकारी भक्तोंको अपने दिव्यरूपका दर्शन भी देती हैं।

गब्बर माता और अजाई माता

आबूरोड स्टेशनसे १४ मीलपर आरासुर-पर्वत पड़ता है, जहाँ अम्बाजीका स्थान है। माताके मन्दिरसे एक कोसपर छोटी-सी पहाड़ी है, जो 'गब्बर' (गह्वर) नामसे पुकारी जाती है। गब्बर चढ़नेपर एक मील दूरीपर गुफा मिलती है, जो 'माईका द्वार' कहलाता है। पर्वतके भीतर एक मन्दिरमें देवीका झूला है। भक्तोंको कभी-कभी झूलेकी ध्वनि सुनायी पड़ती है। शिखरपर तीन स्थान हैं— १—माताके खेलनेका स्थान—यहाँ पत्थरपर नन्हीं-नन्हीं उँगलियोंकी छाप दीखती है। २—मन्दिरके दक्षिण कुछ दूरपर मानसरोवर है। ३—मानसरोवरके दक्षिण श्रीअजाई माताका स्थान है, जो अम्बाजीकी बहन मानी जाती है।

अम्बाजीसे ईडरगढ़की ओर १२ मीलपर एक पहाड़ है, जो 'चामुण्डाकी टेकरी' कहा जाता है। यहाँ चामुण्डा-मन्दिरमें जानेका द्वार है। यह मन्दिर बहुत छोटा और प्राचीन है।

खेडब्रह्माका अम्बा-मन्दिर

अहमदाबाद-खेडब्रह्मा-रेलवे-लाइनपर खेड़ब्रह्मा-स्टेशन ईडरसे १५ मील दूरीपर है। यहाँ हिरण्याक्ष नदी बहती है और ब्रह्मदेवका स्थान है।

यहाँसे तीन मील दूरीपर अम्बाजी माताजीका भव्य मन्दिर है। मन्दिरमें चामुण्डा भगवतीका श्रीविग्रह है। महिषासुर-मर्दिनी और ब्रह्माणीजीके भी यहाँ भव्य मन्दिर हैं।

श्रीवरदायिनी माता

पूर्व बड़ौदाराज्यकी कलोल तहसीलके रूपाल गाँवसे थोड़ी दूरपर श्रीवरदायिनीका रमणीय स्थान है। कहा जाता है कि यह स्थान भगवान् राम और पाण्डवों-की कथासे सम्बद्ध है। माताकी उपासनासे श्रीरामचन्द्रजी लङ्का-विजय करके माता सीताको वापस ला सके। पाण्डवोंने भी अज्ञातवासके कालमें इन्हीं भगवतीकी आराधना की थी तथा माताने अर्जुनको ही बृहन्नला बननेके लिये वस्त्र दिये थे।

पावागढ़की श्रीमहाकालीजी

बड़ौदा नगरसे तीस मील दूर ईशानकोणमें पावागढ़ नामक एक पहाड़ी है। यहाँका महाकाली-शक्तिपीठ प्रख्यात है। 'चम्पानेर' नामक स्थानपर यह

शक्तिपीठ स्थित है । जनश्रुति है कि एक बार यहाँके शासकके एक वंशजने देवीका स्तवन कर रही स्त्रियोंको जब पापबुद्धिसे देखा, तबसे देवी कुपित होकर पर्वतमें समा गयीं । महात्माकी प्रार्थनापर कुछ अंशोंमें रुक गयीं । इसीलिये आज भी यहाँ केवल देवीका सिर ही दिखायी पड़ता है । पास ही विश्वामित्री नदी है । कहते हैं कि विश्वामित्रने कभी यहाँ तपस्या की थी ।

बाला बहुचराजी

चुनाळमें गायकवाड़ सरकारकी सीमामें बहुचराजीका प्रसिद्ध शक्तिपीठ है । अहमदाबादसे मेहसाँणा होते हुए इस स्थानपर पहुँचना पड़ता है । यात्री स्नानकर शुद्ध हो, देवीका दर्शन करते हैं । यह अत्यन्त प्राचीन स्थान है । यहाँ साक्षात् वेदमाता गायत्री प्रतिष्ठित हैं । श्रीकृष्णके जन्मसमय योगमाया-रूपसे प्रकट हुई देवीका यह स्थान माना जाता है । बहुत-से राक्षसोंको अपना भक्ष्य बनानेके कारण इन्हें 'बहुचरा' कहते हैं । इस स्थानसे संलग्न तालाबके बारेमें अनेक चामत्कारपूर्ण कथाएँ प्रचलित हैं ।

चैत्र, आश्विन और आषाढ़ी पूर्णिमाको यहाँ मेले लगते हैं । मूलतः यहाँ यन्त्ररूपा देवीकी उपासना होती है । गुजरातके गाँव-गाँवमें माता बहुचराकी महिमामयी प्रतिष्ठा है ।

गिरनारकी अम्बामाता

काठियावाड़-मण्डलका सुप्रसिद्ध अम्बामाताका मन्दिर पुराने जूनागढ़ देशीराज्यके गिरनार पर्वतपर है । पर्वतकी चढ़ाई बड़ी ऊँची है और प्रायः छः हजार सीढ़ियाँ पार करनेपर तीन शिखरोंकी यात्रा होती है। इन शिखरोंपर तीनों क्रमशः अम्बादेवी, योगाचार्य गोरक्षनाथ और भगवान् दत्तात्रेयके स्थान हैं । अम्बादेवीकी विशाल मूर्ति इस भयानक वन्यप्रदेशमें बड़ी उग्र प्रतीत होती है । इस जंगलमें अनेक सिंह भी हैं । इसी पर्वतपर एक गुफामें कालीजीकी मूर्ति भी है, जहाँ अनेक उपासक आते-जाते तथा साधना करते हैं ।

मोरवीका त्रिपुरसुन्दरी-पीठ

पौराणिक महाराजमयूरध्वजके नामपर वर्तमानमें प्रचलित 'मौरवी' नगरमें, नगरके बाहर पश्चिममें ग्राम-देवता त्रिपुराबाला बहुचराका मन्दिर था । मन्दिर अत्यन्त छोटा होनेसे पूजा-अर्चामें असुविधा देख उसी मन्दिरके समीप ही माताकी प्रेरणापर श्रीकामेश्वर शर्माकी पत्नी गोदावरीने माताका सुविशाल मन्दिर बनवाया और वहाँ सुन्दर श्रीचक्र स्थापित किया है । इस स्थापित यन्त्रराजके पृष्ठभागमें अम्बिका बहुचरा, कामेश्वरी आदिके चित्र हैं । मन्दिरमें चारों ओर दश महाविद्याओंके चित्र, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीके चित्र हैं । इस प्रदेशके साधक-भक्तोंके लिये यह महत्त्वपूर्ण उपासना-स्थली है, जहाँ नवरात्रादि महापर्वोंके अतिरिक्त वर्षभर उनकी साधना-उपासना चलती रहती है ।

बड़ौदाकी अम्बामाता (हरसिद्धि)

बड़ौदा नगरमें माण्डवीके निकट अम्बामाताकी सुन्दर प्रभावशालिनी मूर्ति है । कहा जाता है कि सम्राट् विक्रमादित्यकी इष्टदेवी यही अम्बामाता हरसिद्धि थीं और वीर बैताल उनके सहायक थे । महाराज विक्रमादित्यकी मृत्यु इसी माण्डवीके समीप हुई, इसलिये वीर बैताल उनकी ओर पीठ किये बैठे हैं । मन्दिर बहुत सुन्दर है । सिंहासनपर माताजी विराज रही हैं और दोनों ओर दो देवियाँ हैं ।

महाराष्ट्र-प्रदेश एवं गोवा

महाराष्ट्र-प्रदेश एवं गोवाके प्रमुख शक्तिपीठ

(डॉ० श्रीकेशव विष्णु मुळे)

महाराष्ट्रमें बारहवीं शतीतक शिव-शक्ति अर्थात् शंकर-पार्वतीकी ही उपासना सर्वाधिक प्रचलित थी। प्राचीन मन्दिर प्रायः शंकर-पार्वतीके ही मिलते हैं। संवत् १३३५वि०के लगभग और उसके बाद ज्ञानेश्वर महाराजके समयसे वैष्णवधर्मका स्रोत बड़े वेगसे प्रवाहित होने लगा तथा वैष्णवधर्मकी बाढ़-सी आ गयी। तत्कालीन सभी संत भागवत-धर्मानुयायी ही हुए और जनसामान्यमें भी भागवतधर्म ही प्रधान रहा। कालान्तरमें परमात्माके शक्ति-रूपकी उपासना भी प्रचलित हो गयी। महाराष्ट्रमें शक्तिका लोकप्रिय नाम 'भवानी' है। शक्तिसे पारमेश्वरी चिच्छक्ति ही गृहीत है, जिसके तीन रूप हैं—महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती। महाकाली क्षत्रियोंमें, महासरस्वती ब्राह्मणोंमें और महालक्ष्मी वैश्योंमें उपास्य होकर तीनों वर्ण शक्तिसम्पन्न और राष्ट्रकी सर्वाङ्गीण अभ्युदयमें सहायक बनें—इस अभिप्रायसे शक्ति-उपासना चल पड़ी।

यों तो महाराष्ट्रमें भगवतीके अनेक स्थान हैं, किंतु इनमें चार स्थान मुकुटमणि हैं—१—तुळजापुर, यहाँकी भगवती 'भवानी' कहलाती हैं। २—मातापुर (माहुरगढ), यहाँकी भगवती 'रेणुका', एकवीरा या यमाई नामसे विख्यात हैं। ३—कोल्हापुर, यहाँकी भगवती 'महालक्ष्मी' हैं, जिन्हें 'अम्बाई' कहते हैं। ४—सप्तशृङ्गी, जो नासिकमें सप्तशृङ्गी-पर्वतपर विराजती हैं। (चारों पीठोंका विस्तृत परिचय इस अङ्कमें आगे भी दिया गया है।)

इनके अतिरिक्त एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ 'अम्बा जोगाई' है। मुम्बादेवी, काळबादेवी, महालक्ष्मी-मन्दिर, पार्वती-शक्तिपीठ, भवानीपीठ और पण्ढरपुरके विठोबा-रखुमाई-ये भी सुप्रसिद्ध शक्तिपीठ हैं। पहले गोवा भी महाराष्ट्रकी परिसीमामें आता था। वहाँ भी अनेक शक्तिपीठ हैं, जिनमें शान्तादुर्गा और लयराई देवी प्रमुख हैं। संक्षेपमें इन सबका परिचय नीचे दिया जा रहा है।

मुम्बादेवी, कालबादेवी, महालक्ष्मी-पीठ

महाराष्ट्रकी राजधानी बम्बईमें मुम्बादेवी, कालबादेवी और महालक्ष्मी तीन प्रमुख शक्तिपीठ हैं। मुम्बादेवीके पूजनमें बलि सर्वथा वर्जित है। कालबादेवीकी मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है। दोनों महानगरके मध्यमें ही हैं। महालक्ष्मीका मन्दिर समुद्रतटपर बड़े ही सुहावने स्थानपर है। मुम्बादेवीके समीप एक विशाल सरोवर भी है। इनके अतिरिक्त 'बाबुलनाथ'के ऊँचे पर्वतीय मन्दिरमें जो प्रधान देवीमूर्ति है, उसका सौन्दर्य और गाम्भीर्य सचमुच अवर्णनीय है।

पार्वती और भवानीपीठ

पूना नगरका पार्वतीपीठ (मन्दिर) महाराष्ट्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह एक टेकरीपर बना हुआ है। ये पेशवा राजाओंकी उपास्या देवी रही हैं। कहा जाता है कि इसी पार्वती-मन्दिरसे पेशवाओंके शनिवारवाड़ा (पूना) तक और कुछ लोगोंके कथनानुसार दिल्लीतक सुरंग बनी थी, जो अब लुप्त है।

पूना जिलेके प्रतापगढ स्थानमें छत्रपति शिवाजीद्वारा सुपूजित भगवती भवानीका मन्दिर है। यह स्थान अनेक चमत्कारिक कथाओंका स्रोत रहा है। कहा जाता है कि भवानीने प्रसन्न होकर शिवाजीको खड्ग भेंट किया, तबसे उनका राज्यचिह्न 'खड्ग' और उद्घोष—'जय भवानी' हो गया।

श्रीयोगेश्वरी (आँबे जोगाई) पीठ

यह स्थान 'योगेश्वरी', 'जोगेश्वरी' और 'जोगाई' नामोंसे भी प्रसिद्ध है, जो मराठवाड़ाके 'बीड' जनपदमें आँबे-जोगाई नामक गाँवमें नदीतटपर स्थित है। दक्षिण-मध्य रेलवेके परली-बैजनाथ स्टेशनसे यह गाँव २६ कि० मी०की दूरीपर है।

कहा जाता है कि योगेश्वरी देवी कुमारिका हैं। इस संदर्भमें यहाँ एक कथा प्रचलित है—इनका विवाह परली वैजनाथके ज्योतिर्लिङ्ग श्रीवैजनाथसे होना निश्चित हुआ और बारात वरके घर जा रही थी। मुर्गेकी आवाज करनेकी वेलामें विवाह होना तय था। बारात रास्तेमें थी कि मुर्गेने बाँग दे दी और बारात वहीं ठहर गयी। भगवती योगेश्वरी भी वहीं रह गयीं। तबसे वे चिर-कुमारिका हो गयीं। यह कथा लोकमें प्रचलित है।

जयन्ती नदीके तटपर आँबे जोगाई-गाँवके मध्य भगवतीका बड़ा भव्य मन्दिर है। विशाल चहारदीवारीके चारों ओर चार महाद्वार हैं। मुख्य महाद्वारके सम्मुख 'सर्वतीर्थ' नामक जलाशय है। शारदीय-नवरात्र, मार्ग-शीर्ष शुक्ल सप्तमी और पूर्णिमाके अवसरोंपर विशेष आराधना-महोत्सव होते हैं। ये भगवती चित्पावन कोकणस्थ ब्राह्मणोंकी कुलदेवी मानी जाती हैं। यहाँ पहुँचनेके लिये परली वैजनाथ अथवा औरंगाबादतक रेलद्वारा जाकर पुनः राज्य-परिवहनकी बसोंद्वारा यात्रा करनी पड़ती है।

पाण्डुरंग (विठोबा) रखुमाईपीठ

पण्ढरपुरमें भगवान् पाण्डुरंग (विठोबा) और रखुमाईके मन्दिर प्रमुख शक्तिपीठके समान ही मान्य हैं। पाण्डुरंग श्रीकृष्णके अवतार हैं तो रखुमाई रुक्मिणी-जीकी। संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, एकनाथ आदि इसी पीठके भारतप्रसिद्ध उपासक, भक्त रहे हैं।

शान्तादुर्गा

गोमन्तक या गोवा-प्रदेशमें शान्तादुर्गा अत्यन्त सुप्रसिद्ध भगवतीके रूपमें पूजी जाती हैं। सम्प्रति यह भगवती गोवा-प्रदेशके कैवल्यपुर (कवले) स्थानमें विराज रही हैं। यह कवलेग्राम गोवा-प्रदेशके फोंडा महालमें है, वाफरके दुर्भाट नामक बन्दरगाहके निकट है। यहाँ जानेके लिये मडगाँव या पणजीसे भी मार्ग है।

उत्तर-पूर्व भारतसे लायी गयी भगवतीका यह विग्रह पहले गोवाके केंकोशी स्थानपर स्थापित किया गया था, किंतु जब गोमन्तकपर पुर्तगीजोंका साम्राज्य हुआ और उनके द्वारा हिंदूजातिका घोर क्षरण होने लगा, तब सन् १५६४ ई०में देवी-विग्रह यहाँ लाकर बसाया गया। आरम्भमें तो देवीका मन्दिर छोटा-सा था। क्रमशः देवस्थान उन्नत होता चला गया। मन्त्री श्रीनारोरामने सन् १७३९ ई० में मराठा सरकारसे इस देवस्थानके लिये कई जमीनें दानमें पायीं। इस समय इस भूसम्पदाके सिवा देवस्थानकी अन्य आय भी है। अनेक बहुमूल्य रत्न और अन्य द्रव्य भी देवस्थानके कोषमें सुरक्षित हैं। देवस्थान-ट्रस्टमें अनेक सुप्रसिद्ध धनी-मानी और ख्यातनामा व्यक्ति हैं।

आजकल भगवतीका जो सुन्दर मन्दिर है, वह कुछ वर्षों पूर्व ही निर्मित हुआ है। मन्दिरमें दोनों पार्श्वोंमें अग्रशालाएँ, ऊँचे-ऊँचे दीपस्तम्भ, सीढ़ी उतरकर नीचे सुन्दर सरोवर, नौबतखाना आदि स्थान प्रेक्षणीय हैं।

इस देवस्थानके विशेष उत्सवोंमें—रामनवमी, दुर्गानवरात्र, विजयादशमी, कोजागरी (शरत्-पूर्णिमा), वनभोजन, महाशिवरात्रि, नौकाक्रीडन, माघमासारम्भका जनोत्सव, सुप्रतिष्ठोत्सव और होली आदि प्रसिद्ध हैं।

लयराई देवी

श्रीलयराई देवीका स्थान भी गोवा-प्रदेशमें ही है, जो वहाँ अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष वैशाख-शुक्ला पञ्चमीको यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। हजारों यात्री

आते हैं। उस दिन (पञ्चमीकी रात्रिमें) गाँवके बाहर एक वटवृक्षके नीचे लकड़ियोंका ढेर जमाकर उसमें आग लगा दी जाती है। कई घंटे जलनेपर जब अङ्गारे हो जाते हैं, तब देवीका व्रत लिये हजारों लोग नंगे पाँव उनपर चलते हैं, पर उनके एक भी फफोला नहीं पड़ता। इस अद्भुत चमत्कारको देखनेके लिये ईसाई आदि भी आते हैं और यह दृश्य देख देवीके चमत्कारसे आश्चर्याभिभूत हो जाते हैं। अन्यान्य देवी-स्थानोंकी तरह यहाँ नवरात्रमें न पशुबलि दी जाती है और न मदिरा चढ़ायी जाती है। गाँवमें देवीके सम्मानमें कोई घोड़ेपर चढ़कर नहीं जाता। देवीकी स्तुतिमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

> यस्याः कृपापाङ्गतरङ्गभङ्गी
> सद्योऽनलः स्पर्शसुखं विधत्ते।
> सा वैष्णवी शक्तिरूप्रभावा
> वर्वर्ति लोके लयराम्बिकाख्या॥

जिनके कृपाकटाक्षकी तरङ्गमयीसे युक्त अग्नि तुरंत स्पर्शसुखका अनुभव करता है, वे उत्कृष्ट प्रभाववाली वैष्णवी शक्तिलोकमें लयाम्बिका नामसे वर्तमान हैं।

माहुरगढ़का रेणुका-शक्तिपीठ

(श्रीपृथ्वीराज भालेराव)

महाराष्ट्र-प्रदेशके विदर्भ-मराठवाड़ा सीमावर्ती नांदेड जनपदकी कमवट तहसीलमें देवमाता रेणुकाका 'माहुरगढ़' शक्तिपीठ है। माहुरगढ़ माहुर गाँवसे १.५ कि० मी० दूर है। यहाँ माता रेणुकाका केवल मुखभाग ही दीखता है। उसीका पूजन एवं आराधना किया जाता है। सती-कुण्डसे भगवान् परशुराम-जैसे पुत्रके प्रति भी वात्सल्यातिरेकसे अभिभूत माता भक्तजनोंको केवल मुख-रूपमें ही दर्शन देती हैं। महाराष्ट्रके अनेक परिवारोंकी ये कुलदेवी हैं और नवरात्रमें व्यापक रूपसे देवीकी उपासना बराबर होती आ रही है। महाराष्ट्र और कर्णाटकके प्रसिद्ध समर्थानुगृहीत महात्मा ब्रह्मलीन श्रीधरस्वामी महाराजकी भी ये कुलस्वामिनी रही हैं। भगवान् परशुरामकी जननी होनेसे इस स्थानको माहुरीपुर या 'मातापुर' भी कहा जाता है।

इस शक्तिपीठके साथ योगाचार्य भगवान् दत्तात्रेयका भी निकट सम्बन्ध पीठके गौरवमें चार चाँद लगा देता है। दत्तात्रेयकी दिनचर्यामें बताया गया है कि वे नित्यप्रति इसी माहुरीपुरमें भिक्षा-ग्रहण (भोजन) करते थे—

> माहुरीपुर भिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः।
> (दत्तवज्रकवचम्)

इस शक्तिपीठकी अधिष्ठात्री देवमाता रेणुकाके माहात्म्यको यहाँ १२ प्रमुख आधारोंमें प्रस्तुत कर माताकी उपासनापर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

(१) रेणुका माताके चरित्रका गम्भीरतासे मनन करनेपर स्पष्ट हो जाता है कि इनका मूल स्वरूप देवमाता 'अदिति'का ही है, जिनका वेदोंमें विपुल वर्णन मिलता है। इन्हें वेदोंमें 'अनर्वा' और 'दिव्या गौरवा' नामोंसे भी संबोधित किया गया है। ऋग्वेदके प्रसिद्ध उषा-सूक्तमें उषाको 'अदितिमुखा' कहा गया है। माता रेणुकाका मुख भी उषाके ही वर्णका अरुणाभ है।

(२) वेदोंमें प्रत्यक्षतः 'रेणुका' नाम उपलब्ध न होनेपर भी रेणुकापति महर्षि जमदग्निका असंख्य बार उल्लेख है। वे शिवावतार और मन्त्रद्रष्टा ब्रह्मर्षि रहे हैं। ऋग्वेद दशम-मण्डलके द्रष्टा भी वे ही बताये गये हैं। 'कूष्माण्ड-हवन'-विधि उन्होंने ही प्रचारित की और वे ही 'ससर्परी विद्या' एवं 'श्राद्धविधि'के रचयिता माने जाते हैं।

(३) महर्षि जमदग्निके आश्रम और ऋषिकुल उस समय समग्र भारतवर्षमें फैले हुए थे। इसी कारण उन-उन स्थलोंपर आज भी महर्षिकी पत्नी रेणुका माताके स्थान

मिलते हैं। फिर भी उनका मूलस्थान अर्थात् वे जहाँ सती हुई—'सतीस्थान' माहुर या 'मातापुर' है। महाराष्ट्रके लाखों चातुर्वर्णिक जनोंकी आज भी वे कुलस्वामिनी, कुलदेवताके रूपमें मान्य एवं उपास्य हैं।

(४) सर्वत्र रेणुकाके वर्णन अग्निज्वालापर अधिष्ठित, अग्निज्वालासे परिवेष्टित रूपमें पाये जाते हैं। इसलिये वे अग्निकी भी देवता सिद्ध होती हैं। जहाँ देवमाता अदिति तप्ताग्निके प्रलयाग्निपर आरूढ और अग्निके वलयसे अङ्कित रूपमें वर्णित हैं, वहीं चिदग्नि-सम्भवा रेणुका जमत्-अग्निके साथ विवाहसूत्रसे आबद्ध हुई। आगे चलकर सूर्य और उसके पीछे-पीछे स्वयं अग्निदेव उनके गर्भसे पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए। विवाहके समय दोनों पति-पत्नीने श्रौताग्नि और त्रेताग्निका व्रत ग्रहण किया और उसे अन्ततक चालू रखा। अन्तमें उसी अग्निकी चिताग्निमें लुप्त होकर पुनः वे अग्निसे ही प्रकट हुई और भक्तकल्याणार्थ शाश्वत रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं। कुल मिलाकर आठ प्रकारसे वे अग्नितत्त्वसे सम्बन्धित दीख पड़ती हैं।

(५) जो सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेवकी उत्पत्ति-कारण, स्थितिकर्ता विष्णुकी पालक और संहारकर्ता रुद्रका भी विलय करके स्वयं अवशिष्ट रहती हैं, वे ही भगवती अदिति-रेणुका मूलशक्ति, अनादिशक्ति और परब्रह्मकी महाशक्ति हैं।

(६) महाविष्णुके दशावतारोंमें ब्राह्मणकुलसम्भूत अवतार 'वामन' और 'परशुराम' हैं। '**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**।'—इस वचनके अनुसार मानव-समाजकी दृष्टिसे ये दो अवतार सर्वश्रेष्ठ दीखते हैं और इन दोनोंकी माता एक ही शक्ति 'अदिति' और 'रेणुका'के रूपमें मान्य हुई। परशुरामके कारण वे 'पुत्रवत्सला' माता पृथ्वीपर सदैवके लिये प्रतिष्ठित होकर भक्तवत्सला भी बन गयीं। सभी देवी-देवता अवतारकार्य समाप्त हो जानेपर निजधाम पधार जाते हैं, किंतु यही एकमात्र ऐसी देवता हैं, जो शास्त्रमर्यादाके पालनार्थ अन्तर्हित हो जानेपर भी माताकी ममताकी साक्षी देनेके लिये पुनः तत्काल प्रकट होकर विग्रहरूपमें सदैवके लिये प्रतिष्ठित हैं।

(७) वे स्वयं तो अनादिशक्तिस्वरूपिणी हैं, पति-देव साक्षात् परमशिव और पुत्र प्रत्यक्ष महाविष्णुके अवतार हैं—इस प्रकारका दिव्यातिदिव्य त्रिकोण, मात्र रेणुका-चरित्रमें पाया जाता है।

(८) आदिशक्ति सती हो रही हैं, प्रत्यक्ष महाविष्णु (परशुराम) उसे मन्त्राग्नि दे रहे हैं और सृष्टि-संचालक त्रिदेवोंके समन्वित तत्त्व-स्वरूप भगवान् दत्तात्रेय उस सती-कर्मका पौरोहित्य कर रहे हैं—ऐसा अद्भुत प्रसङ्ग श्रुति, स्मृति, पुराण आदि धर्मग्रन्थोंमें विरला ही मिलता है।

(९) मातृदेहमें वात्सल्यरसका वसतिस्थान एकमात्र 'पयोधर' होते हैं। दक्षदुहिता-सतीके मृत शरीरके सुदर्शनचक्रसे कटे भिन्न-भिन्न अवयव जहाँ-जहाँ गिरे, वे सभी पीठस्थल बन गये। प्रसिद्ध है कि माहुरक्षेत्रमें सतीके स्तनद्वय गिरे थे। शरीरमें आनखशिख प्राणचैतन्यके खेलते रहनेपर भी उसका केन्द्रबिन्दु जीवात्मा देहमें उरःस्थलमें ही बसता है। अतः सतीके अवयवोंसे बने सभी शक्तिपीठोंमें शक्तितत्त्व समानरूपसे विलसित होनेपर भी उन सबका मूलस्थान उरःस्थल माहुरीपुर या मातापुर ही सिद्ध होता है।

(१०) देवीभागवतमें वर्णित देवीलोक अनन्तकोटि भुवनोंके ऊपर सुधा-सिन्धुमें बसा हुआ है, जहाँ अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंकी जननी मूलशक्ति भुवनेश्वरी देवीका निवास है। इस दिव्यलोकको 'मणिद्वीप' या 'मणिपुर' कहा जाता है। अनादिशक्तिने जब पृथ्वीपर आविर्भूत होना तय किया, तब उस मणिपुर या 'महापुर'की प्रतिकृति भी भूलोकमें निर्मित हुई, जैसे दिव्यलोक साकेतकी

भूलोकीय-प्रतिकृति अयोध्या है या दिव्य कृष्णधाम गोलोककी भूलोकीय प्रतिकृति 'व्रज-मण्डल' है। यही 'महापुर' शब्द आगे चलकर प्राकृतभाषाके अपभ्रंशमें 'माहुर' बन गया।

(११) 'देवीगीता'के सातवें अध्यायके पहले ही श्लोकमें देवीने अपने मुखसे 'मातापुर'की श्रेष्ठताका वर्णन किया है। उसे 'द्वितीय स्थान' देनेमें गूढ़ संकेत यह है कि शुक्ल प्रतिपद्को चन्द्रमाकी वृद्धि-तिथि होनेपर भी उस दिन चन्द्रमा अदृश्य ही रहता है। वह प्रत्यक्ष दृश्यमान होता है द्वितीया तिथिको ही। अतः द्वितीय स्थानमें वर्णित मातापुर और वहाँकी अधिष्ठात्री देवी रेणुका प्रथमवत् पूज्य हैं। समर्थ स्वामी रामदासने भी 'द्वितीया' तिथिका यही रहस्य बताया है। इसीलिये वे नवरात्रोंमें भगवती रेणुकाकी आरतीमें कहते थे—

> द्वितीयेच्या दिवशी चौसठ योगिनी मिळुनी हो।
> सकळांमध्ये श्रेष्ठ परशुरामाची जननी हो॥

(१२) स्वामी समर्थरामदास कहते हैं कि 'चामुण्डा'-की गर्जना कर जिसकी स्तुति की जाती है, वह शक्ति—साक्षात् रेणुका ही है।

इस प्रकार हम रेणुकाको ललिताम्बा, राजराजेश्वरी, कामेश्वरी, श्रीविद्या, त्रिपुरसुन्दरीसे भी अभिन्न कह सकते हैं। इसी तरह देवीका जो सर्वश्रेष्ठ यन्त्र—श्रीयन्त्र है, वही रेणुकाका भी यन्त्र होनेसे श्रीविद्या और रेणुकामें कोई अन्तर नहीं है।

रेणुकाकी उपासना—अन्य देवी-देवताओंकी तरह रेणुका माताकी अर्चन, स्तवन, नाम-स्मरण-जप, होम, उत्सव आदिके माध्यमसे उपासना की जाती है। रेणुका-पूजनके समय 'श्रीसरस्वतीस्वरूपिणी जगदम्बा रेणुकादेवी-प्रीत्यर्थं'—ऐसा महाकाली-महालक्ष्मी सहित महासंकल्पका उच्चारण किया जाता है। इसलिये तीनों देवताओंके चरित्र जिस ग्रन्थमें वर्णित हैं, वह 'देवी-माहात्म्य' (सप्तशती) ग्रन्थ ही रेणुका माताकी प्रसन्नताका प्रमुख स्तोत्र है इसलिये सर्वत्र रेणुका-उपासक उसीका पाठ करते हैं। जिन घरोंमें, मठ-मन्दिरोंमें आराध्यरूपमें रेणुका देवीकी उपासना होती है, वहाँ सप्तशती-पाठका ही विशेष महत्त्व माना जाता है। पद्मपुराणान्तर्गत 'रेणुकासहस्रनाम'-स्तोत्र रेणुका-प्रीतिकारक है। अन्य भी प्राचीन-अर्वाचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें बहुत-से संस्कृत-प्राकृत स्तोत्र, माहात्म्य, आख्यान पाये जाते हैं। उनमें कुछ मन्त्ररूप मन्त्रगर्भ हैं तो कुछ सिद्धस्तोत्र हैं, जिनमें पूज्य श्रीधरस्वामीद्वारा निर्मित स्तोत्र भी उल्लेख्य मन्त्रोंमें रेणुकाका सर्वप्रिय मन्त्र 'नवार्णमन्त्र' है। सत्याम्बाव्रत रेणुकाके लिये विशेष प्रीतिकर है। इनके महानैवेद्यमें पायस (खीर) और पूर्णान्न (पूरण-पोळी) प्रमुख हैं।

शक्त्युपासना

> शक्त्युपासना से विरक्त जन रहता है अज्ञानी।
> लगता है वह रिक्त-सरोवर, सूख गया हो पानी॥
> शक्त्युपासना ही मनचाही सिद्धि दिया करती है।
> वही 'लोक-मंगला', सभी की आधि-व्याधि हरती है॥

—श्रीजगदीशचन्द्रजी शर्मा, एम० ए०, बी० एड्०

दक्षिण काशीकी देवी—करवीरस्थ महालक्ष्मी

'देवी-गीता'में कहा गया है—

'कोलापुरे महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ।'

अर्थात् 'कोलापुर' या 'कोल्हापुर' एक महान् पीठ है, जहाँ महालक्ष्मी सदैव विराजती हैं। विभिन्न पुराणों एवं आगम-ग्रन्थोंमें इस शक्तिपीठकी महिमा और प्रशंसा पायी जाती है। यहाँकी जगदम्बाको 'करवीरसुवासिनी' या 'कोलापुर-निवासिनी' कहा जाता है। महाराष्ट्रमें इन्हें 'अम्बाबाई' कहते हैं। महालक्ष्मीका यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धपीठ है। यहाँ पाँच नदियोंके संगमसे एक नदी बहती है, जिसे 'पञ्चगङ्गा' कहा जाता है। यह नदी आगे चलकर समुद्रगामिनी महानदी कृष्णासे जा मिली है। ऐसी पवित्र पञ्चगङ्गा सरिताके तीरपर जगन्माता महालक्ष्मीका नित्य-निवास है।

'त्रिपुरारहस्य', माहात्म्यखण्डके ४८वें अध्यायमें ७१ से ७५ श्लोकोंमें भारतके प्रमुख १२ देवीपीठोंका उल्लेख और उनका माहात्म्य वर्णित है, जिसमें 'करवीरे महालक्ष्मी' कहा गया है। देवीभागवत, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, मार्कण्डेयपुराण, महाभारत, हरिवंश आदि धर्मग्रन्थोंमें भी इस शक्तिपीठका गौरवपूर्ण उल्लेख है। 'करवीरमाहात्म्य'में इस सिद्धस्थानको प्रत्यक्ष 'दक्षिण काशी' कहा गया है। स्कन्दपुराणके 'काशीखण्ड' के अनुसार महर्षि अगस्त्य और उनकी पत्नी पतिव्रता लोपामुद्राके साथ काशीसे दक्षिण आये और यहीं बस गये, इसलिये इसे 'काशीसे किंचित् श्रेष्ठ' क्षेत्र कहा गया है। वाराणसीमें भगवान् शिव केवल ज्ञानदायक ही हैं, किंतु करवीरक्षेत्रमें ज्योतिरूप केदारेश्वर (ज्योतिबा) ज्ञानप्रद तो हैं ही, भोग-मोक्षप्रदायिनी महालक्ष्मी भी यहाँ निवास करती हैं। इस तरह भुक्ति-मुक्तिप्रद होनेसे इस स्थानका माहात्म्य काशीसे अधिक मानना पड़ता है—

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मन्त्रमूर्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
(महालक्ष्म्यष्टक-४)

इस स्तोत्रसे भी सिद्ध है कि यहाँकी देवी भुक्ति और मुक्ति दोनोंकी देनेवाली है। इसलिये इस क्षेत्रके माहात्म्यमें यह श्लोक पाया जाता है—

वाराणस्याधिकं क्षेत्रं करवीरपुरं महत् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां वाराणस्या यवाधिकम् ॥

अर्थात् वाराणसीकी अपेक्षा इस क्षेत्रका माहात्म्य यव (जौ)भर अधिक ही है; क्योंकि यहाँ भुक्ति और मुक्ति दोनों मिलते हैं।

देवीका श्रीविग्रह वज्रमिश्रित (हीरेसे मिश्रित) रत्न-शिलाका स्वयम्भू और चमकीला है। उसके मध्यस्थित पद्मरागमणि भी स्वयम्भू है, ऐसा विशेषज्ञोंका स्पष्ट मत है। प्रतिमा अत्यन्त पुरातन होनेसे इधर वह बहुत घिस गयी थी। इसलिये सन् १९५४ ई०में कल्पोक्त विधिसे मूर्तिमें वज्रलेप-अष्टबन्धादि संस्कार किये गये। उसके पश्चात् अब श्रीविग्रह सुस्पष्ट दिखायी पड़ता है।

देवीका ध्यान मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'देवीमाहात्म्य' (सप्तशती) के 'प्राधानिक-रहस्य'में जैसा वर्णित है, ठीक वैसा ही है। प्राधानिक रहस्योक्त वह ध्यान इस प्रकार है—

मातुलुङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि ॥

अर्थात् चतुर्भुजा जगन्माताके हाथोंमें मातुलुङ्ग, गदा ढाल और अमृतपात्र विराजित है। मस्तकपर नागवेष्टित, शिवलिङ्ग और योनि है। स्वयम्भू मूर्तिमें ही सिरपर किरीट उत्कीर्ण होकर शेषफणोंने उसपर छाया की है। साढ़े तीन फुट ऊँची यह प्रतिमा आकर्षक और अत्यन्त सुन्दर

है। इसका दर्शन करते ही भावुक भक्त-हृदय अत्यन्त उल्लसित हो उठता है। देवीके चरणोंके पास उनका वाहन 'सिंह' प्रतिष्ठित है।

'लक्ष्मी-विजय' तथा 'करवीरक्षेत्रमाहात्म्य' ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि अतिप्राचीन कालमें 'कोलासुर' नामक एक असीम सामर्थ्यवाला दैत्य भूमिके लिये भारभूत हो गया था। वह देवताओंद्वारा भी अजेय था तथा साधु-सज्जनोंको अत्यन्त कष्ट देता था। अन्ततः उससे संत्रस्त देवताओंने महाविष्णुकी शरण ली। उसे पहलेसे ही वर प्राप्त था कि स्त्रीशक्तिके अतिरिक्त कोई भी उसका वध नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् विष्णुने अपनी ही शक्ति स्त्रीरूपमें प्रकट कर दी और वही ये महालक्ष्मी हैं। सिंहारूढ हो महादेवी करवीर नगरमें आ पहुँचीं और वहाँ कोलासुर दानवके साथ उनका घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें देवीने इस दानवका संहार कर दिया और उसे परमगति प्रदान की।

मरनेके पूर्व असुर देवीकी शरणमें आया, इसलिये देवीने उससे वर माँगनेके लिये कहा। दानवने कहा—'इस क्षेत्रको मेरा नाम प्राप्त हो।' भगवतीने 'तथास्तु' कहा और उसके प्राण भगवतीमें लीन हो गये। देवता आनन्दमग्न हो उठे। बहुत बड़ा विजयोत्सव मनाया गया। देवताओंने देवीकी बार-बार स्तुति की। तभीसे वह देवी इसी स्थानपर प्रतिष्ठित हो गयी और 'करवीरक्षेत्र'को 'कोलापुर'की संज्ञा भी प्राप्त हुई। समर्थ स्वामी रामदासने भी महालक्ष्मीकी स्तुति करते समय उसे 'कोलासुर-विमर्दिनी' कहा है।

पद्मपुराणके करवीरमाहात्म्यमें भी इस स्थानके विषयमें लिखा है कि 'करवीर' नामक यह क्षेत्र १०८ कल्प प्राचीन है और इसकी 'महामातृक', संज्ञा है; क्योंकि यह आद्या मातृ-शक्तिका मुख्य पीठस्थान है।

काशीकी ही तरह यहाँ भी पञ्चगङ्गा, कालभैरव आदि पञ्चक्रोशीके स्थान हैं। अतएव इस क्षेत्रको 'दक्षिण काशी' कहा जाता है। यहाँ 'एकवीरा' (रेणुका) देवीका एक अत्यन्त जाग्रत् स्थान है। ये देवी भी अनेक परिवारोंकी कुलदेवताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इसके निकट भगवान् दत्तात्रेयका सिद्धस्थान है, जहाँ मध्याह्न स्नानके बाद योगिराज दत्तात्रेय नित्य जप-पूजा एवं देवीकी स्तुति करनेके लिये आते हैं—'कोल्हापुरजपादरः' (दत्तवज्रकवच) इस कारण इस स्थानका माहात्म्य और बढ़ जाता है।

अब महालक्ष्मीके प्रधान मन्दिरके प्राकारगत प्रमुख देवताओंके भी दर्शन करें। देवीके सामने मण्डपमें सिद्धि-विनायक हैं तो देवीके दोनों ओर महाकाली और महासरस्वतीके मन्दिर हैं। यहाँ आद्यशंकराचार्यद्वारा स्थापित विशाल भूपृष्ठ चक्रराज श्रीयन्त्र है। मन्दिरके ऊपरकी दो-मंजिलोंमें भी अनेक देवता हैं और देवीके शिरोभागपर (दूसरी मंजिलमें) शिव-मन्दिर है। देवी-मन्दिरके प्राङ्गणमें परिक्रमाके मार्गपर असंख्य देवी-देवता हैं।

महालक्ष्मीका यह मन्दिर अत्यन्त पुरातन, भव्य, सुविस्तृत और मनोहर शिल्पकलाका आदर्श बनकर खड़ा है। इसकी वास्तु-रचना चक्रराज (श्रीयन्त्र) या सर्वतोभद्रमण्डलपर अधिष्ठित है, ऐसा विशेषज्ञोंका मत है। यह पाँच शिखरों और तीन मण्डपोंसे सुशोभित है। गर्भगृह-मण्डप, मध्यमण्डप और गरुडमण्डप—ये मण्डपत्रय हैं। प्रमुख एवं विशाल मध्यमण्डपमें बड़े-बड़े, ऊँचे और स्वतन्त्र १६×१२८ स्तम्भ हैं। इसके अतिरिक्त मुख्य देवालयके बाहर सैकड़ों स्तम्भ वास्तुशिल्पसे उत्कीर्ण हैं। ये सभी स्तम्भ और सहस्रों मूर्तियाँ शिल्प तथा कलाकृतियोंसे सजी हुई हैं और भव्य एवं नयनाभिराम हैं। गर्भागारस्थित चाँदी और सोनेके सामान, आभूषण, जडित-जवाहर आदि देखनेपर आँखें चौंधिया जाती हैं, ऐसा वैभवसम्पन्न यह देवस्थान है।

उपासना—यहाँ महालक्ष्मीकी उपासना व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपोंमें होती है। पाद्यपूजा, षोडशोपचारपूजा और महापूजा-जैसे विविध प्रकारके अर्चन प्रतिदिन चलते रहते हैं। भोगमें मिष्टान्न, पूर्णान्न और खीर प्रमुख हैं। अभिषेकके समय श्रीसूक्तका अधिकाधिक पाठ किया जाता है। प्रातःकाल 'काकड-आरती'से लेकर मध्यरात्रिके शय्यारती (सेज-आरती) तक अखण्ड रूपमें पूजन-अर्चन, शहनाई, सनई, चौघडा, स्तोत्रपाठ, आरतियाँ, गायन-वादन, भजन-कीर्तन आदि कुछ-न-कुछ कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। नित्य उपासना भी अत्यन्त वैभवके साथ शास्त्रोक्त पद्धतिसे की जाती है।

नगरमें कोई भी विवाहादि मङ्गलकार्य होता है तो पहला निमन्त्रण-पत्र देवीके चरणोंमें समर्पित किया जाता है और मङ्गलकार्य सम्पन्न होनेपर प्रत्येक भावुक परिवार देवीका दर्शन, पूजन करता है।

ॐकार स्वरूप साढ़े तीन सगुण शक्ति-पीठ

(मातापुर, कोल्हापुर, तुलजापुर और सप्तशृङ्गी)

प्रणव या ॐकार परमात्माका साकार और प्रकट स्वरूप बताया गया है। उसमें सार्धत्रय (साढ़े तीन) मात्राएँ होती हैं। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए महाराष्ट्रमें शक्तिके साढ़े तीन (१+१+१+½=३½) शक्तिपीठ माने गये हैं। सब मिलकर जगदम्बिका ॐकारस्वरूप बन जाती हैं। क्रमशः ये पीठ निम्न-लिखित हैं : (१) मातापुर या माहुरगढ़ (२) तुलजापुर (३) कोल्हापुर और आधा पीठ सप्तशृङ्गी-गढ़। ये पीठ अकार, उकार, मकार और अर्धमात्राका प्रतिनिधित्व करते हैं। माहुरगढ़पर देवमाता रेणुका, कोल्हापुरमें महालक्ष्मी या अम्बाबाई और तुलजापुरमें तुलजाभवानी देवी हैं। सप्तशृङ्गीपर देवीका स्वतन्त्र स्थान न होकर उन्हें 'सप्तशृङ्गनिवासिनी' नामसे सम्बोधित किया जाता है। अर्थात् मूलदेवीके अदर्शनसे यह आधा पीठ है और उपर्युक्त तीन पीठ मिलकर ये साढ़े तीन मात्रावाले ॐकारका स्पष्ट प्रतिनिधित्व करते हैं।

रेणुका और महालक्ष्मी-पीठोंका विस्तृत विवरण इसी अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित है। शेष डेढ़ पीठोंका (तुलजापुरकी तुलजाभवानी और वणीकी सप्तशृङ्गीका) परिचय निम्नलिखित है।

तुलजाभवानी

तुलजाभवानीको महाराष्ट्र-राज्यकी 'कुलस्वामिनी' कहा जाता है। वैसे तो ये देवी महाराष्ट्रकी बहुसंख्यक जनताकी आराध्य देवता, इष्टदेवता और उपास्य देवताके रूपमें ही समादृत हैं। इसके अतिरिक्त यावनी सत्तासे साढ़े तीन सौ वर्ष-पूर्वसे महाराष्ट्रको उसकी भूली हुई अस्मिता जिन-जिन महापुरुषोंने प्रदान की और जनजागरण तथा वीरोचित अनेक युद्ध लड़कर महाराष्ट्र-को स्वातन्त्र्य प्राप्त कराया तथा वहाँ रामराज्यकी स्थापना की, उन गुरु-शिष्यरूप दो महामानवों अर्थात् समर्थ स्वामी रामदास और छत्रपति शिवाजी महाराजकी कुलस्वामिनी यही तुलजाभवानी माता रही हैं। इन्हींकी वरप्राप्तिसे इन श्रेष्ठ युगपुरुषोंने शतकोंतक गुलामीमें पच रहे और मृतप्राय महाराष्ट्र-प्रदेशको पुनः संजीवनी प्रदान की।

समर्थ रामदासने 'रामवरदायिनी'के नामसे इस देवीका अपने काव्यों एवं भवानीकी स्तुतियोंमें बार-बार स्मरण किया है। इस सम्बन्धमें एक पुरातन कथा प्रचलित है—सीतामाताको खोजते हुए श्रीराम और लक्ष्मण दण्डकारण्यसे चले जा रहे थे। रावण-सरीखे बलाढ्य और विश्वविजयीके हाथोंसे सीतामाताको छुडा लाना अत्यन्त दुर्घट कार्य था। उसी समय आकाशवाणी

हुई कि 'शक्तिकी उपासना कीजिये तो कार्य सिद्ध हो जायगा ।' श्रीरामने तत्काल वहीं व्रतस्थ हो देवीके प्रीत्यर्थ तप प्रारम्भ कर दिया । अन्ततः भवानी प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गयीं । उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको वर दिया । देवीके वर-प्रसादसे ही श्रीरामने त्रैलोक्यके लिये अजेय रावणका वध कर सीताको छुड़ाया । इसीलिये देवीका एक नाम 'रामवरदायिनी' पड़ा ।

इस सम्बन्धमें एक अन्य कथा भी है—सीताहरणके बाद श्रीराम पत्नी-विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो वनमें विचरने लगे । वह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो जगज्जननी पार्वतीने शंकरसे प्रश्न किया—'नाथ ! जिनके नाम-स्मरणमें आप निरन्तर अखण्ड रूपमें निमग्न रहते हैं, वे तो साधारण मानव-सा प्रिया-विरहमें जले जा रहे हैं । तब सदैव ऐसे व्यक्तिका नाम क्यों जपते रहते हैं ?' महादेवने स्मितहास्य करते हुए कहा—'देवि ! श्रीराम लीलामानुष-वेषधारी साक्षात् सगुण परब्रह्म ही हैं । इच्छा हो तो परीक्षा करके देख लो ।' फिर क्या था ? श्रीरामकी परीक्षा लेनेके लिये जगन्माता भवानीने सीताका रूप धारण किया और श्रीरामके समक्ष प्रकट हो गयीं । उन्हें देखते ही श्रीराम साष्टाङ्ग नमस्कार करते हुए बोले—'क्या माताजी आप पधारी हैं ? माँ ! आप यहाँ कैसे ?' माता पार्वती समझ गयीं कि श्रीरामने मुझे पहचान लिया है और उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म ही हैं । तब भवानीने श्रीरामके सामने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया और प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि 'शीघ्र ही आपको सीता और राज्यकी प्राप्ति हो जायगी ।' यही वर आगे चलकर सफल हुआ । इसीलिये भवानीका एक नाम 'राम-वरदायिनी' पड़ा । श्रीरामने माताको मराठीमें 'तू का' (माँ ! क्या तुम ही !) ऐसा कहा, इसलिये महाराष्ट्रीय लोग इसे 'तुकाई' नामसे जानने लगे।

पुराणान्तरमें इन देवीके 'त्वरिता, तुरजा, तुळजा'—ये तीन नाम भी पाये जाते हैं । त्वरित अर्थात् (शीघ्र) प्रसन्न होनेसे 'त्वरिता' और भक्तोंद्वारा एक ही पुकारपर दौड़ पड़नेवाली होनेसे' 'तुरजा' (तुर=त्वरित+जा=जानेवाली) नाम चल पड़े । अपभ्रंशमें 'तुरजा'का 'तुळजा' हो गया (र-लयोरभेदः) ।

उपासना—तुळजाभवानीकी उपासनामें 'भवानी-सहस्रनाम' और तुरजा-कवच'का पाठ अत्यन्त श्रेष्ठ माना जाता है । 'तुरजा-कवच'के ऋषि स्वयं श्रीरामचन्द्र ही हैं।

यह तुरजापुर क्षेत्र कोल्हापुर जिलेमें पड़ता है । वह पहाड़ी प्रदेशमें बसा हुआ है । प्रत्यक्ष देवस्थान खोहमें स्थित है । बहुत-सी सीढ़ियाँ उतरकर गोमुख-तीर्थ और कल्लोलनी-तीर्थ पार करनेपर छोटे-छोटे देवालय और मुख्य देवालयका महाद्वार और प्राकार मिलता है । देवालय पर्याप्त बड़ा है और उसके गर्भगृहमें महिषासुरमर्दिनीके रूपमें तुळजाभवानी विराजती हैं । उनका विग्रह काले पाषाणका है ।

यहाँ प्रातःकालसे मध्याह्नतक नित्य-निरन्तर पञ्चामृत-पूजन, भोग-पूजा आदि पूजनके विविध प्रकार चलते रहते हैं । उत्सवके दिनोंमें शिवाजी महाराजद्वारा अर्पित स्वर्णालंकार भगवतीको धारण कराये जाते हैं । देवीके सामने ही मण्डपके बीच भवानी-शंकरकी मूर्ति है और प्रदक्षिणा-मार्गमें बहुत-से देवालय हैं । लोगोंकी मान्यता है कि मन्दिरके पीछे पर्वतपर पार्वती-शंकर चौपड़ खेलने आया करते हैं । इसलिये भावुक जन उस पर्वतको भी प्रणाम किया करते हैं ।

सप्तशृङ्गी देवी

महाराष्ट्रके साढ़े तीन शक्तिपीठोंमें आधा शक्तिपीठ सप्तशृङ्गी देवीका है । सप्तशृङ्गी गिरिक्षेत्र नासिक जिलेमें एक अत्यन्त-उत्तुङ्ग पर्वतके रूपमें है । उसकी तलहटीमें 'वणी' नामका गाँव है । यहाँसे कई मील चढ़ाई चढ़ने-

पर एक समतल गाँव मिलता है। यहाँ अनेक तीर्थ-कुण्ड हैं। आगे साढ़े सात सौ खड़ी सीढ़ियाँ चढ़नेपर एक विशाल गुफामें देवीका भव्य विग्रह है। यही वह शक्तिपीठ है। सिन्दूरचर्चित पूर्णाकृति बहुत ऊँची (१२ फुटकी) है। इसका ध्यान अष्टादश भुजाओं-वाली देवीका है।

इस पर्वतका एक शिखर अत्युच्च है, वहाँ देवीका मूलस्थान है, किंतु अत्यन्त दुर्गम होनेसे वहाँ कोई नहीं जाता। चैत्रपूर्णिमाके उत्सवमें ध्वजा लगानेके लिये वर्षमें एक बार एक ही व्यक्ति इस मूलस्थानतक पहुँचता है। पुराणोंमें वर्णन पाया जाता है कि इसी शिखरपर मार्कण्डेय ऋषिने घोर तपस्या की थी और उनपर कृपा करनेके लिये यहाँ जगदम्बा प्रकट हुई थीं। महाराष्ट्रके असंख्य परिवारोंकी ये कुलदेवता हैं। ॐकार पर्वतपर चढ़ना यद्यपि कठिन है, फिर भी भावुक भक्तोंकी यहाँ सदैव भीड़ लगी रहती है। अर्चक दीवालमें सीढ़ी लगाकर जाते हैं। यहाँ सप्तशतीपाठका विशेष महत्त्व है।

देवमाता रेणुका 'महाकाली'-पीठ हैं; क्योंकि सप्तशतीके प्राधानिक रहस्यमें महाकालीके गिनाये गये दस नामोंमें 'एकवीरा' नाम आता है। रेणुकाका नाम और स्वरूप 'एकवीरा'का ही है, यह रेणुका-चरित्रसे स्पष्ट होता है। इस प्रकार मातापुर महाकालीका पीठ सिद्ध होता है। फिर कोल्हापुर महालक्ष्मीका पीठ है। तुलजापुरकी तुलजाभवानीसहित तीनों पीठ 'अकार' 'उकार, 'मकार'के प्रतीकरूप हुए तो महासरस्वतीका अर्धमाता पीठ जो विशुद्ध-संविदारूप है, सप्तशृङ्गीगढ़ समझा जाता है। माण्डूक्य-उपनिषद्के अनुसार साढ़े तीन मात्राओंवाले ॐकारके प्रतीकभूत इन पीठोंपर साधना करनेवालोंको भुक्ति और मुक्ति दोनों साथ-साथ हस्तगत हो जाती हैं।

बनशंकरी शक्तिपीठ

बीजापुर जिलेके बादामीके निकट चोल्यगुड्डा नामक गाँवकी सीमामें वनशंकरी देवीका शक्तिपीठ है। हुबली-सोलापुर-रेलमार्गमें बदामी स्टेशनसे ६ मील दूरीपर यह स्थान पड़ता है। स्टेशनसे देवालयतक वाहनोंकी सुविधा है। ये देवी शाकम्भरीकी अवतार मानी जाती हैं। मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। इसका जीर्णोद्धार शक संवत् ६०३में हुआ था। यहाँके पुजारी काण्व-शाखीय हैं। मन्दिरकी व्यवस्था-हेतु अनेक देशी राज्योंसे विविध सहायता प्राप्त है। ७०१ एकड़ माफीकी जमीन भी मन्दिरके स्वत्वकी है। यह एक आदर्श संस्थान है।

—संकलन—प्रो० गो० ना० बैबापुरकर

जगन्मातासे कृपा-याचना

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')

करो कृपा हमपर अब तो हे माता! जगत-प्रकाशिका।
तेरे ही अधीन चराचर, जय-जय त्रिभुवन-शासिका॥
तू ही व्यापक पूर्ण जगत्में, तुझसे बढ़कर कौन है?
परमानंद परम पद दाता पाप-ताप-त्रय-नाशिका॥
आदि शक्ति परमात्मरूपिणी सुयश जगत्में छाय रहा।
सुर-नर-मुनि कर रहे वंदना जन-उर-कमल-विकासिका॥
रूप अनूप अरूप कभी हो विविध रूपमें हो तुम ही।
कौन पार पावे महिमाका शरणागत-उल्लासिका॥
पूत कुपूत तुम्हारे ही हम तुम्हीं हमें अवलम्बन दो।
'दास' धन्य करि करुणा-सौरभ सुधि-समीर-सुवासिका॥

आन्ध्र-प्रदेश

आन्ध्रप्रदेशके शक्तिपीठ

दक्षिण भारत देवस्थानोंके लिये पूरे भारतमें सुप्रसिद्ध है। यहाँ शिव, विष्णु, गणेश, कार्तिकेय (सुब्रह्मण्यन्) आदि देवोंके उन-उन साम्प्रदायिकोंकी उपासनाके पीठोंके रूपोंमें अनेक पीठ एवं मन्दिर हैं। भगवती शक्तिके भी पीठोंकी कमी नहीं, जिनमें ५१ शक्तिपीठोंमेंसे भी यहाँ कई पीठ हैं। यहाँ हम दक्षिण भारतके अत्यन्त प्रमुख शक्तिपीठोंका ही परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। स्थान-संकोचवश शेष पीठोंके परिचयका मोह संवरणकर उन पीठोंके अधिदेवताओंको आदरपूर्वक नमस्कार करते हैं।

पद्मावती शक्तिपीठ

तिरुपति बालाजी (मद्रास) से ३ मीलपर 'तिरुचानूर' बस्ती है, जिसे 'मङ्गापट्टनम्' भी कहते हैं। यहाँ पद्मसरोवर नामक पुण्यतीर्थके निकट माता पद्मावतीका मन्दिर है, जो अत्यन्त विशाल है। ये देवी महालक्ष्मीका स्वरूप मानी जाती हैं।

कहा जाता है कि जब भगवान् वेङ्कटेश वेङ्कटाचलपर निवास करने लगे, तब उनकी नित्यप्रिया श्रीलक्ष्मीजी यहीं आकाशराजके घर कन्यारूपमें प्रकट हुईं। वे इसी पद्मसरोवरमें एक कमलपुष्पमें प्रकट हुई बतायी जाती हैं, जिन्हें आकाशराजने अपने घर ले जाकर पुत्रीवत् पाला। उनका विवाह श्रीबालाजी (वेङ्कटेश स्वामी)के साथ हुआ।

भद्रकालीपीठ वारंगल

मध्य रेलवेकी बड़ी-बेजवाडा लाईनपर काजीपेटसे छः मील दूर वारंगल-स्टेशन है, जो बड़ा नगर है। यहाँ भद्र-कालीका सबसे प्राचीन मन्दिर है, जो एक छोटे पर्वतपर स्थित है। यह स्थान नगरसे एक मील दूर पड़ता है। कहा जाता है कि यहाँ सम्राट् हर्षवर्धनने देवीकी अर्चना की थी। मन्दिर विशाल है, जिसमें नौ फुट ऊँची और नौ फुट चौड़ी अष्टभुजा भगवती भद्रकाली विराजती हैं। कदाचित् अष्टभुजाका ऐसा विग्रह अन्यत्र कहीं नहीं है। देवी असुरके ऊपर स्थित हैं और उनका वाम चरण लटक रहा है। ये देवी काकतीय राजवंशकी इष्टदेवी बतायी जाती हैं। प्राचीन मन्दिरका जीर्णोद्धार हो गया है। पासमें एक शिव-मन्दिर भी है।

कर्नाटक-प्रदेश

चामुण्डादेवी

मैसूर-स्टेशनसे राजभवन होते हुए लगभग साढ़े तीन मीलकी दूरीपर चामुण्डा-पर्वत पड़ता है, जिसपर भगवती चामुण्डाका जाग्रत् शक्तिपीठ है। पर्वतपर नीचेसे ऊपरतक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरतक जानेका मोटर-मार्ग भी है। कहा जाता है कि मैसूर ही महिषासुरकी राजधानी थी। यहाँ देवीने प्रकट होकर उसका वध किया था।

पर्वत-शिखरपर एक घेरेमें खुले स्थानपर महिषासुरकी ऊँची मूर्ति बनी है। उससे कुछ आगे चामुण्डादेवीका विशाल मन्दिर है। मन्दिरका गोपुर बहुत ऊँचा है। गोपुरके भीतर कई द्वार पार करके भीतर जानेपर देवीकी भव्य मूर्तिके दर्शन होते हैं। ये चामुण्डादेवी 'महिषमर्दिनी' कही जाती हैं। चामुण्डा-मन्दिरसे थोड़ी दूरपर एक प्राचीन शिव-मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके मध्यमें शिवलिङ्ग है। एक ओर पार्वतीजीका मन्दिर है तथा परिक्रमामें अन्य अनेक देवमूर्तियाँ हैं। यहाँ नन्दी-की विशाल मूर्ति मिलती है। एक ही पत्थरकी १६ फुटकी यह मूर्ति अपनी विशालता, सुन्दरता और कारीगरीकी दृष्टिसे बहुत प्रसिद्ध है।

चन्द्रलाम्बा और श्रीचक्राकार मन्दिर

(डॉ० श्रीभीमाशंकर देशपाण्डे, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, एल्-एल्० बी०)

कर्नाटक-प्रदेशमें माता चन्द्रलाम्बाका एक शक्तिपीठ है, जिनका मन्दिर श्रीचक्राकार है। यह स्थान घने जंगलमें होनेके कारण अभीतक सर्वसाधारणको अज्ञात था; किंतु अब मार्ग बन जानेसे यात्रियोंको ज्ञात हो गया है। इस स्थानका वर्णन मार्कण्डेयपुराण, पद्मपुराण आदिमें आता है। देवीके मन्दिरका श्रीचक्राकार होना इस पीठका अन्यतम वैशिष्ट्य है, जो देवी-दर्शनके साथ-साथ श्रीचक्र-दर्शनका भी पुण्य प्रदान करता है। मन्दिरमें देवीका एक विग्रह पादुकाओंके साथ है और श्रीयन्त्र भी स्थापित है।

गुलबर्गा जिलेमें स्थित इस स्थानका नाम 'बनगुंटी' है, जहाँ अरण्यमें चन्द्रलाम्बाका भव्य विग्रह और देवालय है। यहाँ पहुँचनेके लिये मद्रास-बम्बई-रेलमार्गके शाहाबाद स्टेशनसे ६ कि० मी० दूर दक्षिणमें जाना पड़ता है। यह 'वाडी' जंक्शनके पास 'नालवार' स्टेशनसे १४ मील दूर पड़ता है।

मन्दिर विशाल है और केवल बड़े-बड़े पत्थरोंसे बना है, जहाँ नौ-दस हजार लोग स्थित हो सकते हैं। मन्दिरके प्राकारमें महाकालिका स्थित हैं। मन्दिरके सम्मुख मार्कण्डेय ऋषि और हनुमान्‌जीके मन्दिर हैं। उत्तरवाहिनी भीमाके किनारे यह स्थान है। यह देवी 'चन्द्रलाम्बा', 'चन्दला परमेश्वरी' तथा 'भ्रामरी देवी' कहलाती हैं। आद्यशंकराचार्य, मुद्दुरंग, जगन्नाथ पण्डित, भास्कराचार्य आदिने इन देवीपर अनेक स्तोत्र रचे हैं। चैत्रमासमें यहाँ मेला लगता है। इसमें रथोत्सवका दिन 'देवी-पञ्चमी'के नामसे प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्र-प्रदेशके कुछ लोगोंकी ये कुलदेवता हैं।

अवधूत भगवान् दत्तात्रेयपर विशेष कृपा करनेके कारण ये देवी कृपावती भी कहलाती हैं।

इतिहास—चन्द्रलाम्बाके प्राकट्यका इतिहास विचित्र एवं अत्यन्त रोचक है। कहा जाता है कि रावणका वध करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या पधारे। भगवान्‌के राज्याभिषेककी तैयारी हुई। इस राज्याभिषेक-समारोहका निमन्त्रण सर्वत्र भेजा गया। अनेक प्रान्तोंसे लोग पधारे। वहाँका वातावरण अत्यन्त उत्साही था, किंतु एकाएक एक क्रोधायमान व्यक्तिके आ जानेसे वातावरण सहसा बदल गया। उसके नेत्रोंसे आग उगलती दीख पड़ती थी। वह समुद्रनाथ था। उसे निमन्त्रण भेजनेमें विस्मृति हुई थी। उसने क्रुद्ध होकर श्रीरामचन्द्रजीसे अनेक कटु शब्द कहे। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुनकर भी शान्त ही बने रहे, किंतु पार्श्वस्थिता भगवती श्रीसीतादेवीने उसे शाप देते हुए कहा—'मूढ! विकारवश होकर तुम ऐसा बक रहे हो। जाओ, अगले जन्ममें मैं स्वयं भ्रमररूप धारणकर तुम्हारा नाश करूँगी।'

कर्नाटक-प्रान्तके गुलबर्गा जिलेके चितापुर तालुकामें 'सन्नती' नामक ग्राम है। वहाँ भीमरथी बहती है। इस भीमा नदीके परिसरमें ही यह ग्राम है। अगले जन्ममें कर्मवश समुद्रनाथ यहाँका सेतुराजा बना।

सेतुराजाका जीवन और वृत्त भी यहाँ ध्यातव्य है। सेतुराजाका जन्म इन्दुलीलाके उदरसे हुआ। वह एक अप्सरा थी। इन्दुलीला जब सखियोंके साथ कन्दुक-क्रीडा कर रही थी तब वह कन्दुक इन्द्रसभामें जा गिरा। इन्द्र कन्दुकके विषयमें देवर्षि नारदसे पूछ-ताछ करते हुए भूतलपर आये। वहाँ इन्दुलीलाके लावण्यसे मोहित होकर

देवराजने उससे विवाह कर लिया। बादमें उन्हींसे सेतुराजाका जन्म हुआ।

सेतुराजाने भगवान् शंकरकी तपस्या कर उनसे वर पाया था कि उसका अन्त किसी मानवसे नहीं होगा। भगवान् शंकरजीने चेतावनी दी कि 'जैसा चाहते हो वैसा ही होगा, किंतु यदि गो-ब्राह्मण तथा स्त्रीको पीड़ा दोगे और संतोंका अपमान करोगे तो मेरा वर शक्तिहीन हो जायगा। सेतुराजा पहले धर्मात्मा था; पर बादमें लोगोंको पीड़ित करने लगा।

एक समयकी बात है, भीमानदीके किनारे पर्णकुटीमें नारायण मुनि नामक एक तपस्वी अनुष्ठान कर रहे थे। उधर मृगयाके निमित्त आये हुए सेतुराजाने नारायण मुनिकी कुटीमें उनकी धर्मपत्नी चन्द्रवदनाको अकेली देखा। उसके रूप-लावण्यसे मोहित होकर वह उन्हें राज-प्रासादमें उठा ले गया। उस समय चन्द्रवदना विशेष व्रतके कारण भगवान् शंकरकी आराधना करनेकी अनुज्ञा लेकर एक मण्डल (४० दिन) तक ध्यानमग्न थी।

अनुष्ठान समाप्त कर कुटीमें आनेपर नारायण मुनिको चन्द्रवदना न दिखायी दी, इससे वे अत्यन्त व्यथित हुए। अन्तर्ज्ञानसे उन्हें पता चल गया कि वह सेतुराजाके प्रासादमें ही है। इस संकटसे निवृत होनेके लिये वे हिंगुलादेवीका आश्रय लेने हिमालयकी ओर चले गये।

नारायण मुनिकी तपस्यासे हिंगुलादेवी प्रसन्न हुई तथा उन्होंने कहा—'तुम आगे चलना, मैं पीछे आती हूँ, मुड़कर मत देखना। यदि मुड़कर देखोगे तो उसी स्थानपर मैं रह जाऊँगी।' देवीके इस वचनको मुनि निभा न सके। चलते समय भीमा-कागिणा-सङ्गममें पानीके कारण देवीके पैरोंके घुँघुरूकी आवाज न आनेसे मुनि सशङ्क हुए। तब पीछे मुड़कर देखा तो देवी उसी स्थानपर स्थिर हो गयीं।

स्थिर होनेके पूर्व देवीने नारायण मुनिको एक श्रीफल दिया और सेतुराजाके प्रासादमें फोड़नेका आदेश दिया। नारायण मुनि उसे लेकर राजप्रासादमें आये और वहीं श्रीफल फोड़ा। श्रीफलको भङ्ग करते ही उसमेंसे पाँच भ्रमर निकले, जिनसे सहस्रावधि भ्रमर उत्पन्न हुए। भ्रमरोंने उड़-उड़कर सेतुराजाकी सारी सेनाका संहार कर दिया। स्वयं सेतुराजा भी भ्रमरोंकी पीड़ा सहन करनेमें असमर्थ हो गया। फलस्वरूप नगरके समीप भीमानदीमें उसने जल-समाधि ले ली।

इधर चन्द्रवदनाका एक मण्डलका ध्यान भी समाप्त होनेको आया। वह सोमेश्वर देवालयमें बैठी थी। उसने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'पूर्व-अवतारमें पृथ्वी फट गयी थी और मैं उसमें समा गयी, अब पुनः मुझे आश्रय दो। एकाएक सोमेश्वरकी मूर्ति फट गयी और उसमें चन्द्र-वदना पैठ गयी। आज भी इस सोमेश्वर लिङ्गके मध्य भग्न होनेका प्रतीक छिद्र दिखायी देता है।

नारायण मुनिको यह सब ज्ञात हुआ। अवतारकी पूर्ति हो गयी। भक्तजनोंको अभय मिल गया, वहाँ चन्द्रला-देवीकी पादुकाएँ स्थापित हुईं। सहस्रावधि भ्रमरोंका रूपान्तर केवल पाँच भ्रमरोंमें हुआ। पाँचों भ्रमर—पहलीमें दो और दूसरीमें तीन, इस क्रमसे दोनों पादुकाओंमें लुप्त हो गये। पर, आज भी इन पादुकाओंमें दो और तीन छिद्र दिखायी देते हैं। कहते हैं कि इस छिद्रमें डाले गये फूल तीन मील दूर स्थित नदीके जलमें निकलते दीखते हैं, ऐसी भक्तोंकी धारणा है।

जगदम्बिकाको नमस्कार

प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके। अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके ते नमो नमः॥
नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः। नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्वर्यै नमो नमः॥

(श्रीदेवीभागवत ७। २८। ३०-३१)

श्रीशान्तादुर्गा (कवल्यपुर), गोवा (पृष्ठ-सं० ४२१)
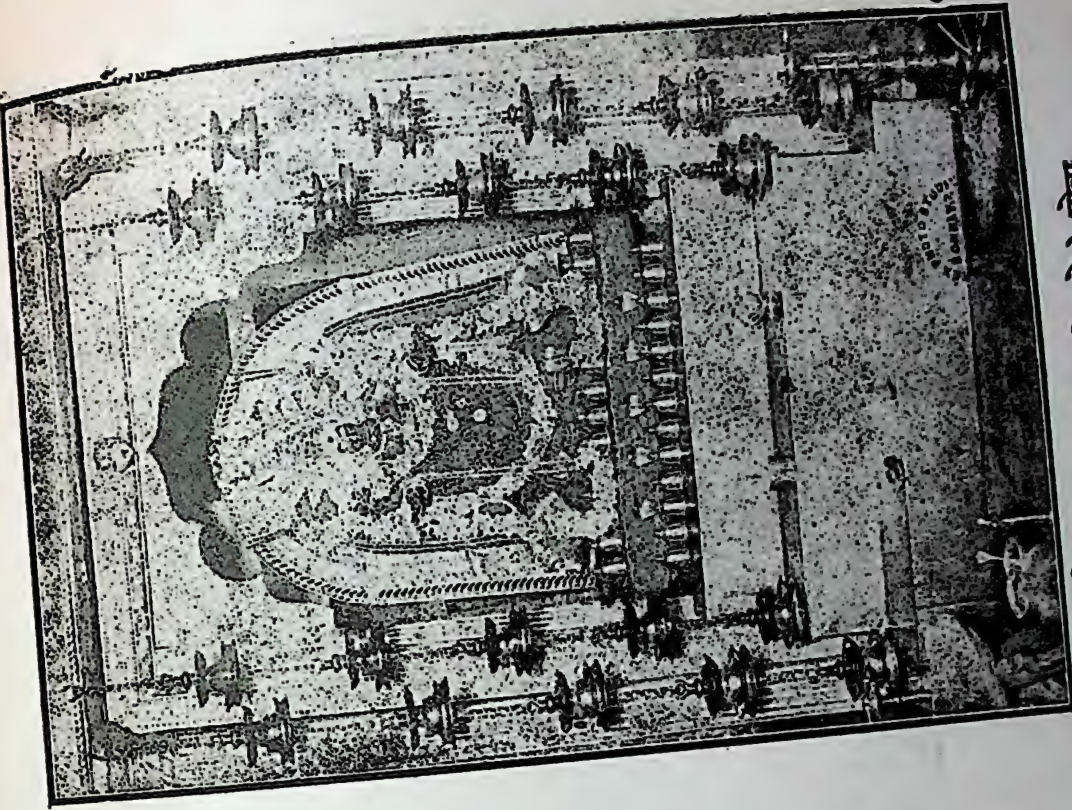
श्रीमहालक्ष्मी (बान्दिवडे), गोवा

श्रीमहालक्ष्मी-मन्दिर, बम्बई
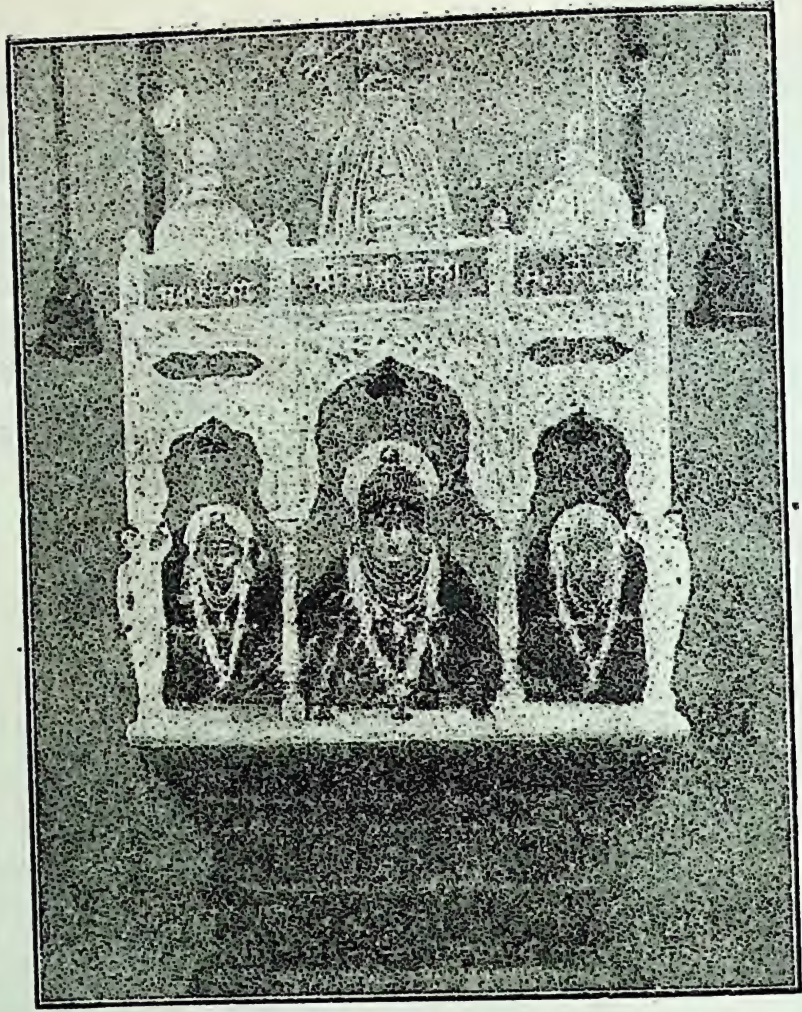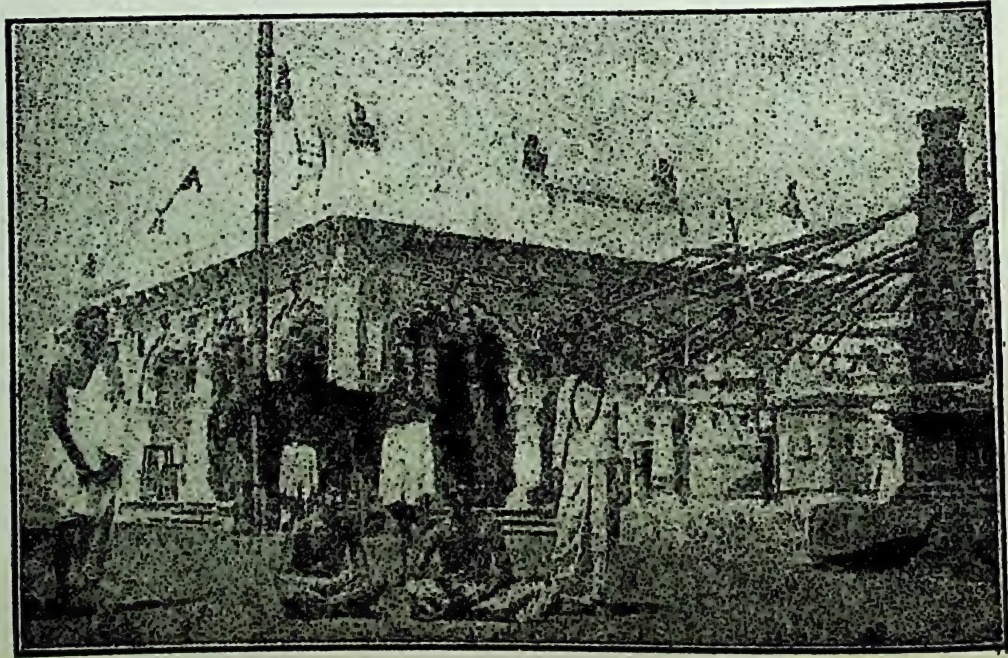
श्रीकालकादेवी, बम्बई

(पृष्ठ-सं० ४२०)

श्रीशारदाम्बा (संगमरमरकी प्रतिमा) शिवगङ्गा, (मैसूर)
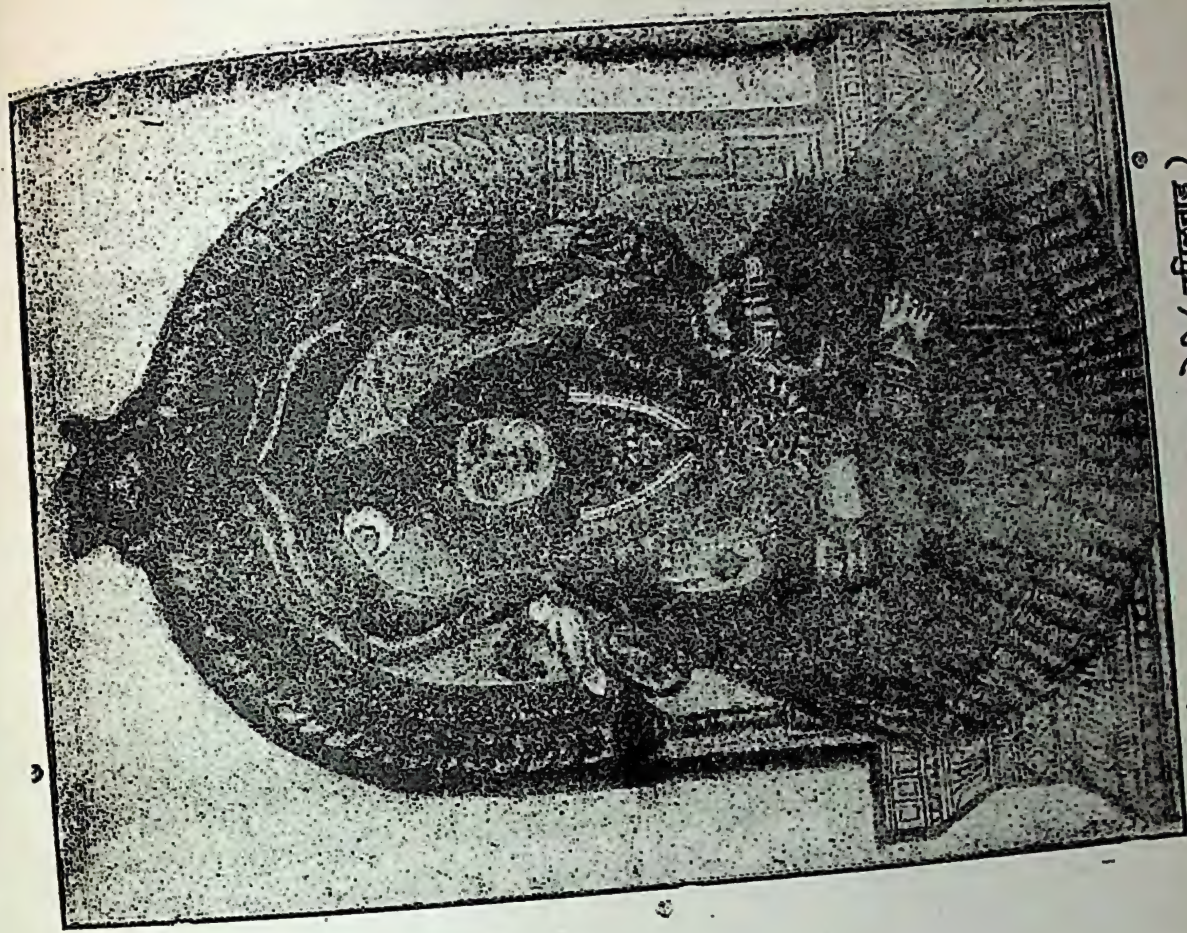
श्रीशारदाम्बा, शृङ्गेरी (तमिलनाडु)
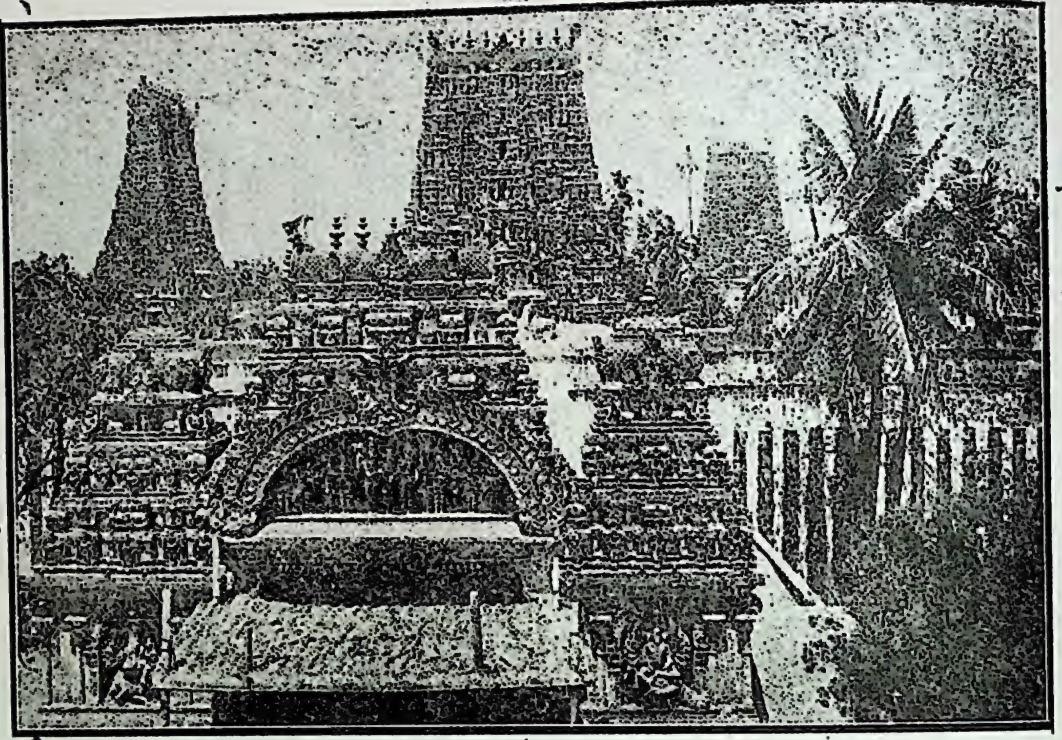
श्रीमीनाक्षी-मन्दिर, मदुरा (तमिलनाडु) (पृष्ठ-सं० ४३३)

काञ्चीकामकोटि-शक्तिपीठ (काञ्चीवरम्) (पृष्ठ-सं० ४३३)

महिषासुरमर्दिनी, महाबलीपुरम्
(तमिलनाडु)

तमिलनाडु-प्रदेश

तमिलनाडु-प्रदेशके शक्तिपीठ

भगवती कुडिकापीठ

मद्रास नगरमें मिन्ट स्ट्रीट (साहूकारपेठ) के अन्तर्गत भगवती कुडिकाका प्राचीन मन्दिर शक्तिपीठ माना जाता है। वहाँ कंडेपर पकाया हुआ मीठा चावल देवीका भोग लगाया जाता है। लोग देवीके सम्मुख कान पकड़कर नाचते हैं और विचित्र चेष्टाओंसे उनकी आराधना करते हैं।

काञ्ची (कामकोटि) शक्तिपीठ

मद्रास-प्रदेशके कांजीवरम् स्टेशनके पास ही 'शिवकाञ्ची' नामक एक बड़ा नगरभाग है, जो ५१ शक्तिपीठोंमें एक माना जाता है। कहा जाता है कि यहाँ सतीका कङ्काल या अस्थिपञ्जर गिरा था। सम्भवतः यहाँका कामाक्षी-मन्दिर ही यह शक्तिपीठ है।

काञ्चीके शिव भगवान् एकाम्रेश्वरके मन्दिरसे लगभग दो फर्लांगपर (स्टेशनकी ओर) कामाक्षी देवीका मन्दिर है। यह दक्षिण भारतमें सर्वप्रधान शक्तिपीठ माना जाता है। कामाक्षीदेवी आद्याशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी ही प्रतिमूर्ति हैं। इन्हें 'कामकोटि' भी कहते हैं।

कामाक्षी देवीका यह मन्दिर बहुत विशाल है। इसके मुख्य मन्दिरमें कामाक्षीदेवीकी सुंदर प्रतिमा है। इसी मन्दिरमें अन्नपूर्णा और शारदा माताके भी मन्दिर हैं। एक स्थानपर आद्यशंकराचार्यकी मूर्ति है। कामाक्षी-मन्दिरके निजद्वारपर कामकोटि-यन्त्रमें आद्यालक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, संतानलक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, वीर्यलक्ष्मी तथा विजयलक्ष्मीका न्यास किया हुआ है। कहा जाता है कि कामाक्षी देवीका मन्दिर श्रीमदाद्य-शंकराचार्यद्वारा निर्मित है।

मीनाक्षी- (मन्दिर) शक्तिपीठ मदुरा

मदुरै स्टेशनसे पूर्वदिशामें एक मीलकी दूरीपर मदुरा नगरके मध्य भगवती मीनाक्षीका विशाल शक्तिपीठ है। यह मन्दिर अपनी निर्माण-कला और भव्यताके लिये जगत्प्रसिद्ध है। मन्दिर लगभग २२ बीघा जमीनपर बना हुआ है। इसमें चारों ओर चार मुख्य गोपुर हैं। वैसे मन्दिरमें छोटे-बड़े सब मिलाकर २७ गोपुर हैं। सबसे अधिक ऊँचा गोपुर दक्षिणका है, जो सबसे सुन्दर है। पश्चिमके बड़े गोपुर ११ मंजिले-ऊँचे हैं।

सामान्यतः पूर्व दिशासे लोग मन्दिरमें जाते हैं, किंतु इस दिशाका गोपुर अशुभ माना गया है। कहते हैं कि इन्द्रको वृत्रासुरके वधसे जब ब्रह्महत्या लगी, तब वे इसी मार्गसे भीतर गये और यहाँके पवित्र सरोवरमें कमल-नालमें स्थित रहे। उस समय ब्रह्महत्या यहीं द्वारपर इन्द्रके मन्दिरसे निकलनेकी प्रतीक्षा करती खड़ी रही। इसीलिये यह गोपुर अपवित्र माना जाता है। गोपुरके पाससे एक अन्य प्रवेशद्वार बनाया गया है, जिससे लोग आते-जाते हैं।

गोपुरसे प्रवेश करनेपर पहले एक मण्डप मिलता है, जिसमें फल-फूलकी दूकानें रहती हैं। उसे 'नागरमण्डप' कहते हैं। उससे आगे 'अष्टशक्तिमण्डप' है। इसमें स्तम्भोंके स्थानपर आठ लक्ष्मियोंकी मूर्तियाँ छतका आधार लेकर बनी हैं। यहाँ द्वारके दाहिने सुब्रह्मण्यम् और बायें गणेशजीकी मूर्ति है। इससे आगे 'मीनाक्षीनायकम् मण्डप' है। इस मण्डपमें दूकानें रहती हैं। इस मण्डपके पीछे एक 'अँधेरा मण्डप' है, जिसमें भगवान् विष्णुके मोहिनी-रूप, शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा अनसूयाजीकी कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं।

अँधेरा मण्डपसे आगे 'स्वर्ण-पुष्करिणी' सरोवर है। कहा जाता है कि ब्रह्महत्या लगनेपर इन्द्र यहीं छिपे थे। तामिलमें इसे 'पोत्तामरै-कुलम्' कहते हैं। सरोवरके

चारों ओर मण्डप हैं । इन मण्डपोंमें तीन ओर भित्तियों-पर भगवान् शंकरकी ६४ लीलाओंके चित्र हैं । मन्दिरके सम्मुखके मण्डपके स्तम्भोंमें पाँच पाण्डवोंकी मूर्तियाँ (एक-एक स्तम्भमें एक-एक पाण्डवकी) और शेष ७ स्तम्भोंमें सिंहकी मूर्तियाँ हैं । सरोवरके पश्चिम भागका मण्डप 'किल्किकुण्डु-मण्डप' कहा जाता है। इसमें पिंजड़ोंमें कुछ पक्षी पाले गये हैं । यहाँ एक अद्भुत सिंहमूर्ति है । सिंहके मुखमें एक गोला बनाया गया है । सिंहके जबड़ेमें अङ्गुलि डालकर घुमानेसे वह गोला घूमता है । पत्थरमें इस प्रकार शिल्प-नैपुण्य देखकर चकित रह जाना पड़ता है ।

पाण्डवमूर्तियोंवाले मण्डपको 'पुरुषमृग-मण्डप' कहते हैं; क्योंकि उसमें एक मूर्ति ऐसी बनी है, जिसका आधा भाग पुरुषका और आधा मृगका है । इस मण्डपके सामने ही मीनाक्षी देवीके मन्दिरका द्वार है । द्वारके दक्षिण सुब्रह्मण्यम्-मन्दिर है, जिसमें स्वामी कार्तिकेय और उनकी दोनों पत्नियोंकी मूर्तियाँ हैं । द्वारपर दोनों ओर पीतलके द्वारपालोंकी मूर्तियाँ हैं ।

कई ड्योढ़ियाँ पारकर भीतर पहुँचनेपर श्रीमीनाक्षी देवीकी भव्य मूर्तिके दर्शन होते हैं । बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे देवीका श्यामविग्रह सदैव सुशोभित रहता है । मन्दिरके महामण्डपके दाहिनी ओर देवीका शयन-मन्दिर है । मीनाक्षी-मन्दिरका शिखर स्वर्णमण्डित है । मन्दिरके सम्मुख १२ स्वर्णमण्डित स्तम्भ हैं । मीनाक्षी-मन्दिरकी भीतरी परिक्रमामें अनेक देवमूर्तियाँ हैं । निजमन्दिरके परिक्रमामार्गमें ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और बलशक्तिकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं । परिक्रमामें सुब्रह्मण्यम्-मन्दिरके एक भागमें उसके निर्माता नरेश तिरुमल और उनकी दो रानियोंकी मूर्तियाँ हैं ।

सुन्दरेश्वर भगवान्—यहाँ जहाँ भी माता आद्या-शक्तिका पीठ होता है, वहाँ भगवान् शंकरका भी अस्तित्व अनिवार्यतः पाया जाता है । शिवसे शक्ति और शक्तिसे शिव मिलकर ही पूर्ण होते और विश्वका शिव (कल्याण) करते हैं । माता मीनाक्षीके साथ भी भगवान् शिवका स्थायी निवास है, जो 'सुन्दरेश्वरम्' नामसे प्रसिद्ध है । माताके मन्दिरसे निकलकर बीचमें विशालकाय गणेशजीका दर्शन कर सुन्दरेश्वर भगवान्के मन्दिरमें जाया जाता है । माताके मन्दिरकी ही तरह स्वर्णादि ऐश्वर्यसे मण्डित इस मन्दिरमें भगवान् सुन्दरेश्वरका विग्रह ताण्डव नृत्य करता हुआ प्रतिष्ठित है, जो चिदम्बरम्की नटराज मूर्तिसे बड़ा है । चिदम्बरम्में भगवान्का वामपाद ऊपर उठा हुआ है तो यहाँ भगवान्का दक्षिणपाद ऊर्ध्वगत है । ताण्डव नृत्य करते भगवान्का एक चरण ऊपर कानतक पहुँच गया है । ऊर्ध्वनृत्यकी अद्भुत कलापूर्ण यह मूर्ति विशाल कृष्ण-प्रस्तरकी है ।

रोचक इतिहास—कहा जाता है कि यहाँ पहले कदम्ब-वन था । कदम्बके एक वृक्षके नीचे भगवान् सुन्दरेश्वरम्का स्वयम्भू लिङ्ग था । देवगण उसकी पूजा कर जाते थे । श्रद्धालु पाण्ड्य-नरेश मलयध्वजको इसका पता लगा । उन्होंने उस लिङ्गके स्थानपर मन्दिर बनवानेका संकल्प किया । स्वप्नमें भगवान् शंकरने राजाके संकल्पकी प्रशंसा की और दिनमें एक सर्पके रूपमें स्वयं आकर नगरकी सीमाका भी निर्देश कर गये ।

पाण्ड्य-नरेशको कोई संतान न थी । राजा मलयध्वजने अपनी पत्नी काञ्चनमालाके साथ संतानप्राप्तिके लिये दीर्घकालतक तपस्या की । राजाकी तपस्या तथा आराधना-से प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और आश्वासन दिया कि उनके एक कन्या होगी ।

साक्षात् भगवती पार्वती ही अपने अंशसे राजा मलयध्वजके यहाँ कन्यारूपमें अवतीर्ण हुईं । उनके विशाल सुन्दर नेत्रोंके कारण माता-पिताने उनका नाम 'मीनाक्षी' रखा । राजा मलयध्वज कुछ काल बाद

कैलासवासी हो गये। राज्यका भार रानी काञ्चनमालाने सँभाला।

मीनाक्षीके युवती होनेपर साक्षात् सुन्दरेश्वरने उनसे विवाह करनेकी इच्छा व्यक्त की। रानी काञ्चनमालाने बड़े समारोहके साथ मीनाक्षीका विवाह सुन्दरेश्वर शिवके साथ कर दिया।

अतएव यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रमासमें मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर-विवाहका उत्सव धूमधामके साथ मनाया जाता है। वैसे भी मदुराको 'उत्सव-नगरी' कहा जाता है। बारहों मास इन दोनों देवी-देवताओंसे सम्बन्धित अनेक विशाल उत्सव होते रहते हैं। जिनमें भव्य, सुन्दर मनोमोहक दृश्य दीखते हैं।

कन्याकुमारी शक्तिपीठ

कन्याकुमारी एक अन्तरीप है। यह भारतकी अन्तिम दक्षिणी सीमा है। इसके एक ओर बंगालकी खाड़ी, दूसरी ओर अरब सागर तथा सम्मुख भारत महासागर है। कन्याकुमारीमें सूर्योदय और सूर्यास्तका दृश्य अत्यन्त भव्य होता है। बादल न होनेपर समुद्र-जलसे ऊपर उठते या समुद्र-जलसे पीछे जाते हुए सूर्यबिम्बका दर्शन अत्यधिक आकर्षक होता है। इसे देखनेके लिये प्रतिदिन सायं-प्रातः भीड़ लगी रहती है।

बंगालकी खाड़ीके समुद्रमें सावित्री, गायत्री, सरस्वती, कन्या, विनायक आदि तीर्थ हैं। देवीमन्दिरके दक्षिण मातृतीर्थ, पितृतीर्थ और भीमातीर्थ हैं। पश्चिममें थोड़ी दूर स्थाणु (शिव)-तीर्थ है। समुद्रतटके घाटपर स्नान कर ऊपर दाहिनी ओर श्रीगणेशजीका दर्शन करनेके बाद कुमारी भगवतीका दर्शन किया जाता है। मन्दिरमें द्वितीय प्राकारके भीतर इन्द्रकान्त विनायक हैं, जिनकी स्थापना देवराज इन्द्रद्वारा की हुई बतायी जाती है।

कई द्वारोंके भीतर जानेपर कुमारीदेवीके दर्शन होते हैं। देवीकी यह मूर्ति प्रभावोत्पादक तथा भव्य है। देवीके हाथमें जपमाला है। विशेष उत्सवोंपर देवीका हीरक आदि रत्नोंसे शृङ्गार किया जाता है। प्रतिदिन रात्रिमें भी देवीका विशेष शृङ्गार दर्शनीय होता है।

पौराणिक उपाख्यान—महाशक्ति कन्याकुमारीकी कथाके विषयमें पुराणोंमें बताया गया है कि बाणासुरने घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया और अमरत्वका वर माँगा। शंकरजीने कहा—'कुमारी कन्याके अतिरिक्त तुम सबसे अजेय रहोगे।' शिवजीसे वर प्राप्त कर घोर उत्पाती बने बाणासुरने देवताओंके लिये त्राहि-त्राहि मचा दी। तब भगवान् विष्णुके परामर्शसे एक महायज्ञका आयोजन किया गया। देवताओंके इस यज्ञके कुण्डसे चिद् (ज्ञानमय) अग्निसे माता दुर्गा अपने एक अंशसे कन्यारूपमें प्रकट हुई।

देवीने पतिरूपमें भगवान् शंकरको पानेके लिये दक्षिण समुद्रके तटपर कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। तपस्यासे प्रसन्न होकर आशुतोषने उनका पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लिया। देवताओंको चिन्ता हो गयी कि कुमारीका शंकरसे विवाह हो जायगा तो बाणासुरका वध न हो पायेगा। अतएव उन्होंने नारदजीको पकड़ा। विवाहार्थ आ रहे भगवान् शंकरको 'शुचीन्द्रम्' स्थानपर नारदने अनेक प्रपञ्चोंमें इतनी देरतक रोक लिया कि मुर्गे बाँग देने लगे और प्रातःकाल हो गया। विवाहमुहूर्त टल जानेसे भगवान् शंकर वहीं 'स्थाणु' (स्थिर) हो गये। अपना अभीष्ट पूर्ण न होनेसे देवी भी पुनः तपस्यामें जुट गयीं जो अभीतक कुमारी-रूपमें यहाँ तपस्या कर रही हैं।

देवताओंकी माया काम कर गयी और बाणासुरको भी अपना अन्त अपने ही हाथों करनेकी सूझी। अपने दूतों-द्वारा तपस्यामें लीन देवीके अद्भुत सौन्दर्यका वृत्तान्त सुनकर वह देवीके निकट आया और विवाहके लिये हठ पकड़ करके बैठ गया। फलतः देवी और बाणासुरके बीच घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा देवीके हाथों बाणासुरका वध हो गया और समस्त देवगण आश्वस्त हो गये।

विदेशोंमें स्थित शक्तिपीठ

नेपालका प्रसिद्ध शक्तिपीठ गुह्येश्वरी

हिंदू-राष्ट्र नेपाल धार्मिक जनताके लिये अत्यन्त श्रद्धास्पद है। स्वतन्त्र हिंदू-राष्ट्रके रूपमें वह हमारे लिये महान् गौरवकी वस्तु है। भिन्न राष्ट्र होते हुए भी भारतकी संस्कृति और सभ्यताकी दृष्टिसे दोनों राष्ट्र अभिन्न-से हैं। हमारे अनेक पूज्य देवी-देव, पीठस्थान, शक्तिस्थान उस राष्ट्रने अपने भीतर सँजोये रखे हैं। नेपाल-वासियोंकी तरह भारतीयोंके लिये भी पशुपतिनाथ श्रद्धा-भक्तिके विषय हैं।

नेपालमें पशुपतिनाथके मन्दिरसे थोड़ी दूरपर बागमती नदी पड़ती है। नदीके उस पार भगवती गुह्येश्वरीका सिद्ध शक्तिपीठ है। वहाँका मन्दिर विशाल और भव्य है। मन्दिरमें एक छिद्र है, जहाँसे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है। यही गुह्येश्वरी शक्ति-पीठ है। कहा जाता है कि यहाँ सतीके दोनों जानु गिरे थे और यह ५१ शक्तिपीठोंमें अन्यतम है।

विदेशोंमें नेपालके अतिरिक्त बंगलादेशमें बारीतल्ला, शिकारपुरमें 'सुगन्धा', बोगड़ा स्टेशनसे ३२ मील दूर भवानीपुरमें 'करतोया-तट' चटगाँवमें 'चट्टल' और खुलना जिलेमें 'यशोहर'—ये शक्तिपीठ हैं और पाकिस्तानके बलूचिस्तान प्रान्तमें हिंगला शक्तिपीठ है।

आग्नेय-तीर्थके हिंगलाज-शक्तिपीठ

आश्चर्यप्रद यात्रा-वृत्तान्त

(श्रीनारायणप्रसादजी साहू)

सतीके मृतदेहके विभिन्न अङ्ग गिरनेसे जो ५१ शक्तिपीठ विख्यात हुए, उनमें 'हिंगलाज' शिरोमणि आग्नेय शक्तिपीठ तीर्थ है। भगवतीकी कृपासे हमें इसकी यात्राका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ और भगवती हिंगला और भैरव भीमलोचनके दर्शन कर जो कृतकृत्यताका अनुभव हुआ, यहाँ उसका संक्षिप्त वर्णन 'कल्याण'के पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। 'तन्त्र-चूडामणि' और 'बृहन्नीलतन्त्र'में बताया गया है कि हिंगलाजमें सतीके अङ्गोंमें सर्वश्रेष्ठ अङ्ग 'ब्रह्मरन्ध्र' गिरा था और वहाँ शक्ति हिंगला और भैरव भीमलोचन पूजित होने लगे—

ब्रह्मरन्ध्रं हिंगुलायां भैरवो भीमलोचनः।
कोट्टरी सा महामाया त्रिगुणा या दिगम्बरी॥

भौगोलिक स्थिति—२५.३० अक्षांश और ६५.३१ देशान्तरके पूर्व-मध्य, सिन्धुनदीके मुहानेसे ८० मील और अरबसागरसे १२ मील दूर जहाँ मकरान पर्वतमाला और लस पृथक् होती हैं, वहीं गिरिमालाके छोरपर यह आग्नेय हिंगलाज तीर्थ है। यहाँके देशवासी मुसलमान हिंगला देवीको 'नानी' और यहाँकी तीर्थयात्राको 'नानीकी हज' कहते हैं। हिंगला-देवीकी पूजा हिंदुओंके अतिरिक्त बलूचिस्तानके मुसलमान भी करते हैं और लाल कपड़ा, अगरबत्ती, मोमबत्ती, इत्र-फुलेल तथा सिरनी चढ़ाते हैं।

'हिंगला' शब्द सुनते ही स्मरण हो आता है कि पौराणिक मान्यतानुसार पारद या पारा भगवान् शिवका वीर्य माना गया है, जिसे वैद्यगण 'हिंगुल' (हींग) नामक खनिज द्रव्यसे डमरूयन्त्र-द्वारा निकालते हैं। इसी प्रकार 'गन्धक' भी माता पार्वतीका 'रज' माना जाता है और वह भी खनिज ही है।

अस्तु ! एक दिन हम कुछ लोग इस आश्चर्यजनक तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। कराची (पाकिस्तान)से ६ मील दूर 'हाब' नदी पड़ती है और वहांसे 'हिंगलाज'की यात्रा प्रारम्भ होती है। हमें वहाँ हिंगलाज-यात्रा और देवीका दर्शन करानेवाले पुरोहित मिले जिन्हें 'छड़ीदार' कहते हैं। ये 'छड़ीदार' पुरोहित पर्वतके किसी झाड़की लकड़ीसे बनी त्रिशूलके आकारकी एक छड़ी रखते हैं। उसपर पताका लगायी जाती है और लाल-पीले गेरुए रंगोंके कपड़ोंसे उसे ढँक दिया जाता है। वही छड़ी यात्राभर उनके हाथमें रहती है।

'हाब' नदीके किनारे छड़ीदार उन पुरोहित (पंडा)ने छड़ीका पूजन करवाया और 'हिंगलाज माताकी जय !' बुलाकर हमलोगोंकी मरुस्थल-यात्राका श्रीगणेश कर दिया। पंडेने हमें एक-एक गेरुआ वस्त्र दिया और शपथ दिलवायी कि 'जबतक माता हिंगलाजके दर्शन कर यहाँ लौटेंगे, तबतक हमलोग संन्यासधर्मका पालन करेंगे और एक-दूसरेकी यथाशक्ति सहायता करेंगे। हृदयमें ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा आदिके भाव नहीं लायेंगे। साथ ही किसी भी हालतमें अपनी सुराहीका पानी किसी दूसरेको नहीं देंगे। भले ही वे गुरु-शिष्य हों, पति-पत्नी हों, पिता-पुत्र हों या माँ-बेटे हों। अपनी सुराहीका जल मात्र स्वयं ही पियेंगे। उन्होंने भय दिखलाया कि 'जो इसका उल्लङ्घन करेगा, उसकी मृत्यु सम्भव है।

छड़ीदारने 'हाब' नदीसे अपनी-अपनी सुराही भर लेनेका आदेश दिया और माता हिंगलाका जयकारा बोलकर यात्रा आरम्भ हो गयी। रेगिस्तानकी यात्रा आगकी नदीमें चलना होता है तथा जहाँ भी पानी और ठहरनेकी जगह मिले, वहीं पड़ाव डालना पड़ता है। कभी-कभी रातके सिवा दिनमें भी चलना पड़ता है, किंतु प्रायः मरुस्थलकी यात्रा रात्रिमें ही होती है।

इस यात्रामें हमलोग पहले 'गुरु-शिष्यके स्थान'पर पहुँचे। वहाँ रेतपर दो स्याह पत्थर गाड़े गये थे, जिनमेंसे एक था गुरु और दूसरा था शिष्य या चेला। छड़ीदारने बताया कि एक बार कोई गुरु और शिष्य हिंगलाजकी माताका दर्शन करके लौट रहे थे। रास्तेभर शिष्य गुरुको पानी पिलाता रहा। अन्तमें उसने गुरुके लिये अपनी पूरी सुराही खाली कर दी, किंतु जब शिष्यको प्यास लगी और वह प्याससे तड़पने लगा, तब गुरुने उसे अपनी सुराहीका एक बूँद भी जल नहीं दिया। शिष्य 'हाय पानी, हाय पानी !' करता मर गया। गुरुको शिष्यके मरनेका कोई खेद नहीं हुआ, उसे तो यही डर था कि कहीं हमारी सुराही खाली न हो जाय। भगवान्‌की लीला विचित्र है, ठीक उसी समय गुरुकी सुराही फट गयी और गुरुजी भी सदाके लिये शिष्य-जैसे मरुस्थलमें सो गये।

ज्ञातव्य रहे कि मरुस्थलमें जहाँ भी कहीं कुँआ मिलता है, वहाँ कुएँके पहरेदारको पानीके बदले रोटी देनी पड़ती है।

आग उगलता चन्द्रकूप

मरुभूमिकी यात्रा करते-करते हमलोग चन्द्रकूपकी तलहटीमें पहुँचे। छड़ीदारने बताया कि सिर-चपटी पहाड़ियोंके बीच जो ऊँचा पहाड़ धुआँ उगल रहा है, वही 'चन्द्रकूप-तीर्थ' है, जहाँ दिन निकलनेपर चढ़ा जाता है। वहाँ जाकर हर व्यक्तिको अपने प्रच्छन्न (गुप्त) पापोंका विवरण देना पड़ता है। जो शुद्ध हृदयसे चन्द्रकूप स्वामीके दरबारमें स्त्रीहत्या, भ्रूणहत्या आदि पापोंको स्वीकार कर लेता है और आगे वैसा न करनेका वचन देता है, उसे माता हिंगलाजके दर्शनके लिये चन्द्रकूप-दरबार आज्ञा दे देते हैं। जो अपने पापोंको छिपाये रखते हैं, उन्हें वे आज्ञा नहीं देते। उन्हें वहीं छोड़कर पाप प्रकट करनेवाले साथी आगे यात्राके लिये चल पड़ते हैं।

छड़ीदारने चन्द्रकूप बाबाको प्रणाम करके वहीं छड़ी गाड़ दी और हमलोगोंको बताया कि 'कल चन्द्रकूपके पहाड़पर चढ़ा जायगा।' उन्होंने यह भी बताया कि 'चन्द्रकूप एक सरोवर है, जिसमें पानी नहीं है। केवल दलदल-ही-दलदल है। सरोवरके अंदरसे धधकती आग मिट्टीको ऊपर उछालती है। निरन्तर इतने बड़े-बड़े बुलबुले उठते रहते हैं, कि अनाज भरनेवाले बड़े-बड़े टोकरे भी उनसे छोटे पड़ जायँ। चन्द्रकूपका कीचड़ आगसे इतना उबलता और खौलता है कि वह ऊपर उठकर फैल जाता है। यहाँ जो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दीखती हैं, सब-की-सब उसी दलदलसे बनी हैं। लाखों, करोड़ों वर्षोंसे चन्द्रकूप भगवान्की यही लीला चल रही है। वहाँ पहुँचकर आपलोग जो नारियल, गाँजा, चिलम लाये हैं, उनसे चन्द्रकूप स्वामीकी पूजा कराऊँगा।'

कुछ रुककर आवाज तेज करते हुए वे बोले—'ध्यान रखें कि स्त्री-हत्या और भ्रूणहत्या दोनोंमेंसे कोई एक भी पाप जिससे बन पड़ा हो, उसे चन्द्रकूप बाबाके सामने अपने गाँव, नाम, गोत्र, पिता-पितामह-प्रपितामहके नामोंका उच्चारण करते हुए चिल्ला-चिल्लाकर स्वीकार करना होगा। यदि किसीने अपना पाप छिपाया तो उसे आगे जानेको तो मिलेगा ही नहीं, इसके सिवा तत्काल उठते हुए विशाल बुलबुलोंका उठना भी बंद हो जायगा। जो स्वीकार करेगा, उसका तो नारियल आदि बाबा तुरंत स्वीकार कर लेंगे। पाप छिपानेवालेकी पूजा स्वीकार नहीं होगी। वह वहीं पड़ी रहेगी और उसे पहाड़से ढेला मारकर भगा दिया जायगा।'

छड़ीदारने आगे बताया कि आज रात्रिमें जागरण करना पड़ेगा। रात्रिमें बाबा चन्द्रकूपके लिये रोट बनाया जायगा और प्रातः वही रोट लेकर जाना पड़ेगा। भोग लगानेके बाद उसी रोटका प्रसाद सब पायेंगे, खायेंगे। पूजाके बाद दान-दक्षिणा भी चढ़ानी होगी।

छड़ीदारने तीन बार चन्द्रकूप बाबाका जयघोष किया और हमलोगोंने भी उसका अनुसरण किया। उन्हें गाँजेका भोग लगाया गया और सब छड़ीदारके साथ जल लेने गये। दूसरे साथी टटोल-टटोल कर अँधेरेमें रोट बनानेके लिये लकड़ियाँ इकट्ठा कर लाये।

छड़ीदारने नया कपड़ा निकाला और सबने उसके चारों कोने पकड़कर उसमें पाव-पाव आटा, घी, गुड़ और शक्कर छोड़ी। छड़ीदारने चादर ओढ़कर चादर पकड़नेवाले यात्रियोंकी पाँच परिक्रमाएँ कीं और आटा गूँथना चालू हुआ। चारों यात्री चादर तानकर पकड़े हुए थे। उसे जमीनसे स्पर्श नहीं होने देना था। लगभग १२ सेरका रोट बनाकर रातभर उसे लकड़ियोंसे ढँककर रख दिया गया। वह रातभर पकता रहा।

प्रातः लगभग डेढ़ घंटे बाद उस ढालू और फिसलन-भरे रास्तेको पारकर हमलोग चन्द्रकूपके शिखरपर पहुँचे तो वहाँका वातावरण देखकर आश्चर्यचकित रह गये। लगभग डेढ़-दो-सौ गजके गोल घेरेमें स्थित चन्द्रकूपमें दलदल खौल रहा था। विशाल बुलबुले उठ रहे थे। उसे अग्निकुण्ड कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। वहाँ आग नहीं दिखती थी। वह अंदरसे खौलता और भाप उगलता ज्वालामुखी ही था।

चन्द्रकूपके पास छड़ीदारने छड़ी गाड़ दी और अगरबत्ती जलाकर मन्त्रपाठ करके वह रोटका टुकड़ा चन्द्रकूपमें फेंक रहा था और चन्द्रकूप उसे निगलता जा रहा था। रोटके बाद नारियल और चिलममें गाँजा डालकर फेंका गया तो चन्द्रकूपने सबको आत्मसात् कर लिया।

छड़ीदारने एक-एक करके सबसे अपने-अपने पाप चिल्ला-चिल्लाकर स्वीकार करवा ये और चन्द्रकूपको भेंटें—नारियल आदि चढ़वाये। चन्द्रकूपने सबकी भेंटें स्वीकार कर लीं। हमलोग हर्षपूर्वक चन्द्रकूप बाबाकी जय बोलकर माता हिंगलाजके दर्शन-हेतु आगे बढ़े।

हिंगलाज-गुफा

चन्द्रकूपसे निकलकर पाँच दिनोंतक चलते-ठहरते हमलोग सूर्यास्तके समय एक छोटेसे गाँवमें पहुँचे। वहाँके मकान लकड़ीके बने थे।

छड़ीदारने बताया कि यह माईकी गुफातक पहुँचनेका अन्तिम पड़ाव है। कल सूर्योदयसे पूर्व ४-५ घंटेमें अघोर-नदी पहुँच जायँगे और बड़े सबेरे माईके दर्शन करेंगे। छड़ीदारके मार्गदर्शनके अनुसार हमलोगोंने पूजन-सामग्री, अगरबत्ती, घीसे चुपड़ी दीपबत्ती, कपूर, नारियल, पञ्चमेवा, सिन्दूर, मिश्री, लाल कपड़ा एवं जलपानका सामान भी अलगसे खरीदकर रख लिया। सब लोगोंके पासमें मणियोंकी एक-एक माला भी थी, जिसे कराँचीमें खरीदा गया था। उसे 'हिंगलाजका ठोंगरा' कहते हैं।

चार-पाँच घंटेतक रेतका समुद्र पार करनेके बाद 'अघोर-नदी'का बालुकामय तट आ गया। छड़ीदारने छड़ी गाड़ी और गाँजेका भोग लगाकर कहा कि नदीके उस पार जो पहाड़ है, वही माता हिंगलाजकी गुफा है। अघोर नदीमें पानी कम था। सभी लोग नहाये और गीले कपड़ोंसे नदी पार कर गये।

कपड़े निचोड़कर हम माता हिंगलाजके महलमें पहुँचे। छड़ीदारने बताया कि यह महल मनुष्योंने नहीं, यक्षोंने बनाया है। सचमुच वह अमानवीय शिल्प है। एक निराली रहस्यमयी नगरी! पहाड़ पिघलाकर वह महल बनाया गया था। संकीर्ण मार्ग दायें-बायें मुड़ते चल रहे थे। हवा नहीं, प्रकाश नहीं, रंग-बिरंगे पत्थर लटक रहे थे। पिघले हुए पत्थरोंकी चहारदीवारी एवं छत थी और नीचे भी रंगीन पत्थरोंका फर्श था।

एक ओर मोड़ आया तो फर्श गायब! फिर जमीन मिली, जिसपर हरी-हरी दूब उगी थी। एक ओर कलकल करता झरना बह रहा था। छड़ीदारने संकेत किया कि झरनेके उस पार जो गुफा है, वही 'हिंगलाज-गुफा' है। सबने हिंगलाज माताका जयघोष किया। गुफाका मुँह ५०—६० फुट ऊँचा था। असंख्य लाल-लाल कनेरके फूल मँहक रहे थे।

छड़ीदारने बताया कि 'यह वही स्थान है, जहाँ दक्षकन्या भगवती सतीने अपने पति शिवजीका अपमान न सहकर पिताके यज्ञकुण्डमें आत्माहुति डाली थी। शिवगण वीरभद्रने सतीकी मृत-देहको कुण्डसे बाहर निकाला तो शिव उस शवको कंधेपर लादे हुए इधर-उधर घूमने लगे। घूमते-घूमते यहाँ आये तो विष्णुके चक्रसे शवका छेदन होनेसे सतीका ब्रह्मरन्ध्र यहाँ गिरा और यह एक प्रमुख शक्तिपीठ बन गया। इसी प्रकार बने ५१ शक्तिपीठोंमें यह प्रमुखतम शक्तिपीठ है।'

छड़ीदारने यह भी बताया कि 'श्रीरामने रावणका वध करनेके बाद ब्रह्महत्यासे मुक्ति पानेके लिये यहाँ आकर तपस्या की थी और वे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हुए थे।'

छड़ीदारके सुझावके अनुसार निकटवर्ती जंगलमें स्थित एक पक्के घरमें हमलोग उस रात ठहरे। दूसरे दिन प्रातःकाल छड़ीदारने जगाया और हमलोगोंने स्नानकर कपड़े बदले। नंगे बदन पूजन-सामग्री लेकर हमलोग विशाल गुफा-द्वारपर खड़े हो गये।

गुफाका द्वार विशालकाय था और गुफाके अन्तिम भागमें एक बड़ी वेदीपर दीपक जल रहा था। चारों ओर अन्धकार था। छड़ीदार वेदीपर पूजन-सामग्री सजाने लगे। वेदीपर लाल कपड़ा बिछा था और अन्य सबने भोग-सामग्री एकत्र कर रखी थी। धूपबत्तियाँ, मोमबत्तियाँ जला दी गयीं और हमलोग वेदीसे सटकर खड़े हो गये।

वेदीके एक छोरपर एक द्वार था और दूसरी ओर दूसरा द्वार। छड़ीदारने दीपक दिखाते हुए बताया कि

सिर झुकाये रहें और घुटने टेककर सब लोग अंदर जायँ तथा दूसरे द्वारसे दर्शनकर निकल आयें।

मैं सिर झुकाकर और घुटने टेककर अंदर गया और दर्शन कर बोल उठा—'जय माँ आद्याशक्ति, ज्योतिर्मयी जगज्जननी! आपकी जय हो!' मेरे लिये यह अद्भुत, अपूर्व, अनिर्वचनीय अनुभव था। मालूम पड़ा कि जन्म-जन्मान्तरके पाप-तापका तत्काल क्षय हो गया, हृदयका अन्धकार मिट गया और हृदयदेशमें दिव्य प्रकाश भर गया।

माता हिंगलाजके दर्शन कर गुफासे बाहर आनेपर एक अघोरी बाबाने पर्वत-शिखरकी ओर संकेत करते हुए कहा—'देखो, एक विशाल शिलाखण्डके शिरोभागमें लटकती-सी दीखनेवाली शिलामें सूर्य और चन्द्र अङ्कित हैं। भगवान् रामने अपनी तपस्याके बाद अपनी उपस्थिति प्रमाणित करनेके लिये अपने हाथों ये सूर्य-चन्द्र अङ्कित किये थे।' हमलोगोंने स्पष्ट अङ्कित सूर्य-चन्द्र देखे। यह अमानुषकृति कल्पनातीत थी। कोई भी मानव पर्वत-शिखरपर इस प्रकारकी आकृति अंकित नहीं कर सकता।

इतनेमें छड़ीदारने आकर हमलोगोंको कुङ्कुमका टीका लगाकर नारियल-मिश्रीका भोग-प्रसाद दिया और वे हमें आकाश-गङ्गा दिखाने ले गये।

यहाँके लोगोंकी मान्यता है कि आसामकी कामाख्या, तमिलनाडुकी कन्याकुमारी, काञ्चीकी कामाक्षी, गुजरातकी अम्बादेवी, प्रयागकी ललिता, विन्ध्याचलकी अष्टभुजा, कांगड़ाकी ज्वालामुखी, वाराणसीकी विशालाक्षी, गयाकी मंगलादेवी, बंगालकी सुन्दरी, नेपालकी गुह्येश्वरी और मालवाकी कालिका—इन बारह रूपोंमें आद्याशक्ति माँ हिंगलादेवी सुशोभित हो रही हैं।

यात्रा-वृत्तान्तका उपसंहार करते हुए हम योगी अरविन्दके शब्दोंमें मातासे प्रार्थना करते हैं—

'माँ कालरूपिणी महाकाली, नरमुण्डमालाधारिणि! असुर-विनाशिनि, देवि! दिग्-दिगन्तभेदी हुंकार करके भारतके आन्तरिक और बाहरी शत्रुओंका संहार कर दें।

'माँ दुर्गे! हमारी देहमें आप योगबलसे प्रवेश करें। हम आपका यन्त्र और अशुभ-संहारक कृपाण बनें।

'जगद्धात्रि! अपनी अनन्त शक्तियोंके साथ भारतके दिगन्तोंपर अवतरित होकर असुर-आततायियों (आतंकवादियों)से इस देश और देशवासियोंकी रक्षा करें, रक्षा करें, रक्षा करें!' पाहि माम्!'

मैयासे

भरा अमित दोषोंसे हूँ मैं, श्रद्धा-भक्ति-भावना हीन।
साधनरहित कलुष-रत अविरत संतत चंचल चित्त मलीन॥
पर तू है मैया मेरी वात्सल्यमयी शुचि स्नेहाधीन।
हूँ कुपुत्र, पर पाकर तेरा स्नेह, रहूँगा कैसे दीन?

तू तो दयामयी, रखती है, मुझको नित अपनी ही गोद।
भूल इसे, मैं मूर्ख मानता हूँ भवके भोगोंमें मोद॥
इसी हेतु घेरे रह पाते पाप-ताप मुझको सविनोद।
मैया! यह आवरण हटा ले, बढ़े सर्वदा शुभ आमोद॥

—'श्रीभाईजी'

लोकदेवियाँ और उनकी उपासना

[विविध उपासनाओंकी पावनस्थली भारतभूमिमें जहाँ भावुक भक्त एवं साधक वैदिक-पौराणिक शक्तियोंकी उपासना शास्त्रोक्त विधिसे करते हैं, वहीं जनसाधारणद्वारा विभिन्न स्थानोंकी अपनी लोकपरम्पराके अनुसार भगवती शक्तिके प्रतीकरूपमें लोकदेवियोंका आराधन होता है और उन्हें अपने श्रद्धा-विश्वासके अनुसार अभीष्ट फलकी प्राप्ति भी होती है। पूरे भारतवर्षमें ऐसी अनेक लोक-देवियाँ प्रसिद्ध हैं और वहाँके भावुक भक्त लौकिक परम्पराओंके परिप्रेक्ष्यमें विविध प्रकारसे उनकी उपासना करते हैं। इन लोकोपासनाओंका उपलब्ध विवरण यहाँ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। —सम्पादक]

लोक-उपासनामें शक्तितत्त्व

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

लोक-उपासनामें मातृपूजाकी प्रधानता है; क्योंकि लोकधर्मकी परम्परा सभ्यताके उस अध्यायसे जुड़ती है, जिसमें मातृसत्ताकी प्रधानता है। लोक-जीवनमें हम देखते हैं कि पुत्रजन्मका अवसर हो या नामकरण, उपनयन, विवाह आदिका, प्रत्येक अवसरकी एक विशेष देवी होती है। लोक-उपासनामें मातृदेवीके दो रूप मिलते हैं—१–पौराणिक देवियाँ तथा २–लोकमाताएँ।

ज्वाला, गौरी, लक्ष्मी, राधा, सीता, सावित्री, ललिता, धरणी, कन्या, वागदेवी—ये पौराणिक देवियाँ हैं तथा चामुण्डा (चामड़), कंकाली, पथवारी, जालपा, लसही गुसाँइन, संतोषी, चराई, कैला, शीतला और बै माता—ये लोकमाताएँ हैं। लोकमाताओंका वर्गीकरण हम निम्नलिखित रूपमें कर सकते हैं—प्रकृति-मातृका, तिथि-मातृका, रोगमातृका, मनःशक्ति-मातृका, नाग-मातृका, सौभाग्य-मातृका, रक्षा-मातृका, संस्कार-मातृका, सती-मातृका तथा प्रेममातृका।

प्रकृति-मातृका-शक्ति

धरतीमैया, गङ्गामैया, यमुनामैया, गांजपरमेसुरी, मेघासिन, तुलसी, संजातारनी, गो (सुरभि) माता, नाग-माता-अहोई (अथवा स्याओ) माता—ये प्रकृति-मातृकाके अन्तर्गत हैं। विवाहके गीतोंमें गाया जाता है—

ए री मैया जा धरती पै द्वै बड़े, एक धरती एक मेह।
वा बरसै वा ऊपजै, दोऊ मिल जुर्यौ सनेह॥

धरती—ध्यानमें रखने योग्य बात है कि ऋग्वेदमें भी द्यावा-पृथिवीको माता-पिता कहा जाता है—'भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु' (पृथ्वीसूक्त)। जब महिलाएँ घूरा पूजती हैं, तब पहला पुष्प धरती माताको अर्पित करती हैं।

गङ्गा—लोकमानसने गङ्गामैयामें ही अपने समस्त दुःखोंका परिहार करनेकी दिव्य शक्तिका दर्शन किया है—'ए तिरबैनी मैया कर दै तू सब दुःख दूर, री मेरी गङ्गा मैया।' बाँझ स्त्री गङ्गासे पुत्र माँगती है—

राजे गङ्गा किनारे एक तिरिया जु ठाढ़ी अरज करै।
गङ्गा, एक लहर हमें देउ तौ जामें डूबि जायें रे॥
...राजे, लौटि उलटि घर जाउ ललन तिहारें होंय...।

इसीलिये गङ्गा-तटपर बालकोंका मुण्डन कराया जाता है और मृत्युसमयपर मुखमें गङ्गाजलकी बूँदें डाली जाती हैं।

यमुना—जन्मसंस्कारके अवसरपर यमुना-पूजा होती है तथा स्त्रियोंके यूथ-के-यूथ गाजे-बाजेके साथ गीत गाते यमुना-तटपर जाते हैं। व्रजमें 'जै जमना मैया की' यह अभिवादन-पद है। लोकमें प्रचलित कथाके अनुसार यमराजने यमुनाको वरदान दिया था कि जो यमद्वितीयाके दिन यमुना-स्नान करेगा, वह यमलोकको नहीं जायगा। यमुनास्नानके लिये जानेवाली स्त्रियाँ गीत गाती हैं—'जै जै जमना मैया जमराज तैने जीत लियौ।'

गाज—सावन-भादौंके महीनोंमें बादलोंकी गरज सुनकर गाज परमेसुरीका व्रत किया जाता है और सात सूतोंकी गाज बाँधी जाती है। जब गाज खोलते हैं, तब गाज परमेसुरीकी कहानी कही-सुनी जाती है कि गाजकी मानता करनेसे राजा बिजली गिरनेसे किस प्रकार बचा था।

मेघासिन—मेघासिन मेघोंकी रानी है। वर्षा न होनेपर किसानकी पत्नी मेघासिनके झबूका लगाती है—

रानी ऊँचौ तौ चौरौ चौखनौ दूध पखारूँगी पाँय,
मेघासिन रानी कित गयी जी।
रानी, हारीन छोड़ी हाथाहेली मैया छोड़ो बहिन,
रानी बैलन जूआ डारियौ नारिव त्यागे है पीड।
रानी गायन बछरा छोड़ियौ भैंसव सूखो है दूध,
राची भायकै इन धीर बँधाइयौ और बरसौ गहर गंभीर॥

तुलसी—कार्तिक मासमें तुलसी माताकी पूजा की जाती है। व्रजमें प्रायः प्रत्येक घरमें तुलसीका पौधा रहता है। स्त्रियाँ उसे जलसे सींचती हैं, दीपक जोड़तीं और गीत गाती हैं—

नमो नमो तुलसा महारानी, नमो नमो।
हरिकी पटरानी नमो नमो।

संजा मैया—संध्यामैया अलौकिक शक्तिसे सम्पन्न है। 'संजा तारनी और सब दुःख-निवारनी' है। दीपक जलाकर बड़ी-बूढ़ी कहती है—'संजा तरै, दीपक बरै।'

सुरई गैया—गोमाताके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें देवताओंका निवास है। बालकके जन्मके समय छठीके दिन मनः-कामनाके निमित्त सतियों, गोवर्धनपूजाके समय गोवर्द्धन आदि गोबरसे ही चीता (चित्रित) या धरा (स्थापित किया) जाता है। बगलाचौथ, ओघ द्वादशी या बछवारसके व्रतोंमें गाय और बछड़ेकी पूजा होती है। नवरात्रमें सुरहीका गीत गाया जाता है। व्रजमें अनेकों गो-तीर्थ लोकमान्य हैं। जैसे सुरभीकुण्ड, गोपालकुण्ड आदि।

अहोई—अहोई मैया या 'स्याओ मैया' नागमाता है, जो पुत्रकी रक्षा-कामनासे पूजी जाती है। एक लोक-कहानी है कि स्याओ मैया अपने कर्णाभरणमेंसे एक भक्त परिवारकी उस भाभीके उन छः पुत्रोंको निकाल कर आँगनमें जीवित कर देती है, जो सर्पदंशसे मर गये थे।

तिथिमातृका शक्ति—चौथ मैया—छठी

छठमैया, चौथ मैया तथा ओघ द्वादस परमेश्वरी तिथिमातृका हैं। करवा चौथकी रात्रिको चौथमैया बूढ़ी डोकरीके रूपमें आती है और व्रतखण्डित करनेवाली उस दुखियारीसे कहती है कि तेरी छोटी भाभीकी कनिष्ठिका अँगुलीमें अमृत है, वही तुझे सौभाग्य देगी। प्रसवके छठे दिन छठीमाता पूजी जाती है। लसही गुसाँइन भी छठीमाता है, जो बाँझरानीको पुत्र होनेका वरदान देती है।

रोगमातृका-शक्ति—शीतला

शीतला और मसानी रोगमातृका हैं। शीतलाको माता और सीयल भी कहा जाता है। शीतला-सप्तमी-अष्टमी शीतला माताके पूजन-दिवस और त्योहार हैं। बाल-बच्चों-की हारी-बीमारीमें माताके नामके पैसे उनपर उतारकर रखे जाते हैं और इनकी कृपासे आरोग्य होनेपर इनकी जात (विशेष पूजा) दी जाती है।

मनःशक्ति-मातृका

वैशाख मासके कृष्णपक्षके दिन स्त्रियाँ आसमैयाका व्रत करके एक कहानी कहती हैं कि चार डोकरी आपसमें झगड़ रही थीं—'तुम बड़ी नहीं, मैं बड़ी हूँ।' वे थीं भूख मैया, प्यास मैया, नींद मैया और चौथी आस मैया। वे चारों एक बहूसे निर्णय करवाती हैं तो बहू कहती है कि 'आशासे ही मनुष्य सौ बरस जी सकता है, इसलिये आसमैया बड़ी है।'

सौभाग्य-मातृका-शक्ति

गणगौर और गौरा सौभाग्यकी शक्ति हैं। चिकनी मिट्टीकी गोल मूर्ति बनाकर एक सकोरेमें स्थापित करके गौरीपूजा की जाती है। कन्या विवाहमें पहले गौरीपर सिंदूर चढ़ाकर फिर अपनी माँग भरती है। गणगौर-के व्रतकी कहानीमें गौरा-पार्वती महादेवजीसे सुहागकी छाँट लगानेका आग्रह करती है। गणगौरका व्रत स्त्रियाँ सौभाग्य-कामनासे ही करती हैं। गौरा-पार्वती करुणामयी हैं। जहाँ-कहीं वे किसीको दुःखी देखती हैं, दयार्द्र होकर भगवान् भोलानाथसे व्यथा दूर करनेकी हठ करती हैं। सोमवारकी कहानीमें साहूकारके मृत लड़के-को बहूकी आयुमेंसे आधी आयु दिलवाकर जीवित करवा देती हैं। वर्षगाँठके दिन सौभाग्यवती स्त्रीकी पूजा भी शक्तिपूजाका ही प्रतीक है।

रक्षा-मातृका-शक्ति

चामड़, पथवारी, कंकाली, बराई और कैला रक्षाकी शक्ति हैं। चामड़के साथ पवन जोगनी समेत चौंसठ योगिनी, छप्पन कलुआ, बामन भैरों तथा पौरीमें लाँगुर वीर है। वहाँ माधर बजता है तो पचास कोसतक सुनायी देता है। दानव, भूत-प्रेत तथा मुगल (जिन्न)—सभीको मैया वशमें कर लेती हैं। देवी-मैया सिंहपर सवार हैं। वे नन्दनवन, कजरीवन तथा मलयपर्वतपर रहती हैं। पथवारी पंथकी रक्षिका है।

> पथवारी मेरी पंथ की रानी भूलेने राह बताइयै।
> भूलेने राह बसेरेने बासौ मन चीतौ फल पाइयै।
> पथवारी चौं न पूजै सुहागिल जौ साहिब घर पाइयै।

संस्कार-मातृका-शक्ति—जालपा

विवाहके अवसरपर वरकी बहिन-भानजी माँय (षोडश-मातृका) की स्थापनाके रूपमें चावल तथा हल्दीके घोलसे चित्र अङ्कित करती हैं। विवाहके समय पूड़ी सेकनेके लिये जब कड़ाहीमें घी डाला जाता है, तब 'हरे हरे बाँसकी छबरिया' गायी जाती है। गृहाङ्गना घरसे माताको पूजने चली तो क्वारी कन्याका वेश धारण किये रास्तेमें 'माँ' मिल जाती है। गृहाङ्गनाएँ पूछती हैं—'अरी! तू क्या मालिनकी बेटी है?' तो क्वारी कन्या कहती है—

> ना हम मालिन बेटियाँ हो ना बनजारेकी धीय।
> हम तौ बेटी जलपदेकी हो जिन सिरजौ संसार॥'

अब तो गृहाङ्गना वर माँगने लगती है—

> जो तुम साँची जलपदे हो निधनिन को धन देउ।
> अँधरेन नैना देउ हो कोढ़ कलंक हर लेउ।
> चार भुवन नो खंड भवानी मेरे पूत अमर कर देउ।'

भाग्य-शक्ति-बैमाता

बैमाता भाग्य-मातृका है। गाया जाता है कि—

> 'पूत कौ जनम बहू को आमव, जो बैं देय तौ पाइये।'

प्रसवकी पीरके समय चलनीमें जौ भरकर गर्भिणी स्त्रीके आगे रख दिये जाते हैं। तब बैमाताकी मनौती करते हुए 'औंड़ा-कौंड़ा' (एक प्रकारका तन्त्र) किया जाता है।

छठीकी रातको छठीके सामने अनारकी कलम रख दी जाती है, जिससे वह भाग्य लिख सके। बच्चेके जन्मके पश्चात् बै माताके गीत गाये जाते हैं—

'तेरी बै ठाढ़ी दरबार हिरनी जौ चरै।'

जाहरवीरकी गाथामें जाहरको समुद्र-तटपर एक बुढ़िया मिलती है—

उज्जलि गात भांन की सी लोय सुफेद वस्त्र जाके धौरे केस।

जाहर उससे पूछते हैं—'डोकरी! क्या तेरी बहूने तुझे घरसे निकाल दिया है? इस बुढ़ापेमें तू जंगलमें बैठी क्या कर रही है? तुझे डर नहीं लगता?'

तब बुढ़िया कहती है—

मेरो नगर इन्दरपुर गाम बै माता है मेरौ नाम।
जूरी कौ बाँधूं संजोग करनी करै सो पावै भोग।
मो लेखनी ने असुर संहारे पाँचौ पंडहिं वारे जारे।
मो लेखनी ते बाहर कौन चार लाख चौरासी यौन।

धनकी शक्ति—लक्ष्मी

'धनकी देवी लक्ष्मी हैं। लक्ष्मी गरीब ब्राह्मणीकी बेटीकी सहेली हैं। दीपावलीकी रात्रिमें जब नगरमें सर्वत्र अँधेरा दीखता है, तब वे लकड़हारिनका द्वार खटखटाती हैं। लकड़हारिन कहती है कि 'मैं ऐसे किवाड़ नहीं खोलूँगी, मुझसे कौल-करार करे तो मैं खोलूँ।' लक्ष्मीजी कहती हैं—'तुझे मैं कभी नहीं छोड़ूँगी, तेरे घरसे कभी नहीं जाऊँगी। तू मुझे अंदर आने दे।'

सती-मातृका शक्ति

लोक-उपासनामें सतीत्व-व्रतके लिये प्राणोत्सर्ग करनेवाली महिलाओंकी स्मृतिमें मेले लगाये जाते हैं। 'सतीसता'की मूर्तियाँ अनेक स्थानोंपर बनी हुई हैं। मथुरामें सुलखन नामक स्थान 'सती-मन्दिर' ही है।

प्रेममातृका शक्ति—राधा, साँझी, गणगौर और झाँझी

आश्विन-कार्तिकके महीनोंमें झाँझीकी पूजा की जाती है। यह नरकासुरकी पुत्री और बभ्रुवाहनकी प्रेमिका थी। जब बभ्रुवाहनका सिर भगवान् श्रीकृष्णने काट दिया था, तब उसके वियोगमें इसने भी प्राण छोड़ दिये थे।

राजस्थानमें गणगौर-सम्बन्धी लोक-कथाओंके अनुसार 'गंगौर' उदयपुरके राणा वीरमदेवकी सुन्दरी पुत्री थी। बूँदीनरेशजी इसके मंगेतर थे। ईसरसिंह राजकन्याका अपहरण करके ले गये, परंतु चम्बल नदीमें दोनों व्यक्ति घोड़ेसहित डूब गये—

'रागाजी कौं ले डूबी गंगौर।'

साँझीकी पूजाका प्रचार उत्तरप्रदेश, मालवा, राजस्थान, महाराष्ट्र और पंजाबमें है। कनागतों (पितृपक्ष) में क्वारी कन्याएँ प्रतिदिन संध्याको घरसे बाहर द्वारके बगलमें दीवालपर गोबर और फूलोंकी साँझी बनाकर उसकी आरती-पूजा करती हैं। सोलह दिन सोलह प्रकारके अभिप्राय अङ्कित किये जाते हैं।

सूरदासजीके पदोंमें साँझीका उल्लेख भक्तिकालमें साँझीकी पूजाके प्रचलित होनेका संकेत है। चाचा हित वृन्दावनदासने इसे 'शिशुमार-चक्र' तथा 'यन्त्र' कहा है—

साँझी यन्त्र मोहि आवत है, कहै और तौ यह दुख पावै।
सोरह तिथि भर पूजे याकों, अचल सुहाग कंत मनभावै॥

होली और घरगुली

व्रजमें होली और घरगुलीकी पूजा भी प्रचलित है। होलिका हिरण्यकशिपुकी बहन थी। इसके पास ऐसी चादर थी जो आगमें नहीं जलती थी। प्रह्लादको गोदमें लेकर होलिका आगपर बैठ गयी थी, किंतु चादर तो प्रह्लादके ऊपर आ गिरी तथा होलिका जल गयी।

होलीसे पहलेकी द्वितीयाको आँगनमें बालकोंकी पट्टीके बराबर स्थान खोदकर सायंकाल उसे लीपकर आटे तथा रंग-बिरंगे गुलालकी टिकुलियोंसे सजाया जाता है। उन्हें गुड़ एवं अबीरसे पूजा जाता है।

कन्या

व्रजमें जहाँ 'गौरीपूजा'में सौभाग्यवती स्त्रीकी मान्यता की जाती है वहीं देवी-पूजामें कन्याको जिमाया जाता है।

वसुदेवजी श्रीकृष्णके वदले जिस बालिकाको यशोदाके यहाँसे ले आये थे और कंसने जिसे धरतीपर पटक दिया था, उसे व्रजमें 'योगमाया'के रूपमें पूजते हैं। भवानीके कन्यारूपके गीत गाये जाते हैं—

'कन्या रूप भवानी मैंने आज देखी।'

नौरता (नवरात्र)

चैत्र तथा आश्विन दोनों महीनोंके नवरात्रोंमें देवी-पूजा तथा व्रत लोक-प्रचलित है। घरमें नौरता स्थापित किया जाता है। व्रजके वायुमण्डलमें इन दिनों देवीके गीत गूँजते रहते हैं। भक्तको ही अपनी देवीमैयासे मिलनेका चाव नहीं है, मैया भी पर्वतपर चढ़कर देखती है—

मैया लेवु कसनि कस डारि जियरा मेरौ तोड़ सों लगौ।
परबत चढ़ि कै देखै भोरी माय जाती मेरो कहाँ विलमौ।

वैष्णोदेवी, ज्वालादेवी तथा कैलादेवीके स्थानपर लोग 'जात' देने जाते हैं। जातके समय गाये जानेवाले गीत बड़े मधुर तथा सात्त्विकभावसे ओत-प्रोत होते हैं।

मालवाके दशपुरकी लोकमाताएँ

(१)

(श्रीमती सुमित्रादेवी व्यास, बी०ए०, बी०टी० आई०)

मध्यप्रदेशके अन्य अञ्चलों—छत्तीसगढ़, बुंदेलखंड, बघेलखंड तथा नेमाड़की भाँति मालवाके दशपुर-अञ्चलमें भी जगह-जगह लोकदेवियोंके मन्दिर, थानक तथा शक्ति-पीठोंकी स्थापना की गयी है। इनमेंसे कतिपय प्रमुख लोकदेवियाँ हैं—१–भादवा माता, २–मोड़ी माता, ३–दूधाखेड़ी माता, ४–आँत्री माता, ५–विजासनी माता।

१–भादवा माता—नीमच-मनासा रोडपर नीमचसे १९ कि०मी० की दूरीपर स्थित भादवा-माताका यह प्रसिद्ध पीठ है। भादवा माताका माहात्म्य दूर-दूरतक फैला हुआ है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों भक्त दर्शनार्थी तथा श्रद्धालु देशके कोने-कोनेसे आते हैं। कहा जाता है कि संवत् १४५८में मारवाड़ राजस्थानसे एक ब्राह्मणपरिवार यहाँ आकर बस गया। उसीने इस क्षेत्रका विकास किया। इसके पूर्व यह स्थान मेवाड़-राज्यमें पड़ता था।

मुख्य भादवा माताके मन्दिरमें अन्धे, लूले, लँगड़े, लकवाग्रस्त तथा अन्य दुःसाध्य रोगोंसे पीड़ित मानव हजारोंकी संख्यामें यहाँ आते हैं। माताकी महती एवं असीम कृपासे लोग रोगोंसे छुटकारा पाते हैं। यहाँ एक बावड़ी है, जिसके पवित्र जलके सेवन तथा उसमें स्नान करनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं। माताजीके दर्शन एवं भभूत (भस्म) ग्रहण करने और बावड़ीके पानीसे स्नान करनेसे कई प्रकारकी बीमारियों—जैसे लकवा, सफेद दाग, कोढ़, शारीरिक दुर्बलता, पागलपन, नेत्र-ज्योतिमें कमी, अनेकों प्रकारके चर्मरोग आदिसे मुक्ति मिल जाती है।

मन्दिरमें बलि नहीं दी जाती। केवल मुर्गे और बकरेके कानमें मात्र एक छल्ला डाल दिया जाता है। यहाँ आश्विनमासके नवरात्रमें मेला लगता है। दशपुर (मन्दसौर) क्षेत्रका यह एक प्राचीनतम धार्मिक तथा ऐतिहासिक मेला है। नवरात्रके समय अष्टमीके दिन किये जानेवाले हवनका यहाँ विशेष महत्त्व है। भादवा माताके स्थलपर यात्रियोंके ठहरने-हेतु लगभग एक दर्जन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। 'खम्मा म्हारी माँ, खम्मा म्हारी जगराणी' कहते हुए लोग माताके द्वार पहुँचते हैं। इस अञ्चलमें नवरात्रके नवें दिन सभी पौराणिक और लौकिक देवियोंकी शोभा-यात्राएँ निकलती हैं, जो अत्यन्त दर्शनीय होती हैं।

२-मोड़ी माता--यह स्थान मंदसौर जिलेकी सीतामऊ तहसीलके उसी नामके नगरमें स्थित है। सीतामऊ कस्बेके पूर्वमें नगरके परकोटेके बाहर स्थित मोड़ी माता (मयूरवाहिनी)का मन्दिर इस क्षेत्रके प्राचीन मन्दिरोंमेंसे एक हैं। मन्दिरके चारों ओर परकोटा बना हुआ है। इसका निर्माण सीतामऊ राज्यके शासक राजा भवानीसिंह (१८६७-१८८५) के द्वारा करवाया गया था।

मोड़ी माताके मन्दिरके नामकरणके विषयमें लोगोंमें मतभेद हैं। कोई इसे मयूरवाहिनी, कोई मोड़ी माता तथा कुछ लोग इसे मोड़ ब्राह्मणोंकी कुलदेवीका मन्दिर कहते हैं।

सीतामऊ राज्यके शासक श्रीबहादुरसिंहजीके राज्य-काल (१८८५–१९००) की हिसाब-बहियोंमें इसका 'मयूरवाहिनीका मन्दिर' नामसे उल्लेख मिला है, किंतु दूसरी ओर इस मूर्तिकी नवरात्र तथा अन्य अवसरोंपर शक्तिके रूपमें पूजा-अर्चना होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह नाम मोड़ीको मोरड़ी मानकर उसे मयूरके रूपमें प्रयुक्त कर स्वीकार कर लिया गया है। कहा जाता है कि 'मोड़' ब्राह्मण यहाँ गुजरातसे आये। सीतामऊ आकर उन्होंने अपनी कुलदेवीकी स्थापना की। इनकी कुलदेवीका नाम है—'मोड़ेश्वरी'। आज भी गुजरातके मोड़ासा गाँवमें इसी नामसे देवी-मूर्तिकी पूजा होती है। यहाँ श्रावणी अमावस्यापर एक बड़ा मेला लगता है।

३-दूधाखेड़ी माता--यह स्थान गरोठसे भानपुरा जानेवाली सड़कसे डेढ़ कि०मी० दूर पूर्वमें स्थित है। गाँवके नामपर ही दूधाखेड़ी माता नाम पड़ा। वैसे देवीका नाम 'केसरबाई' है। यहाँ भी दूर-दूरसे रोगी, दुःखी भक्त-यात्रीगण आते हैं। मातासे अपने दुःख-दर्दकी बात करते हैं। दूधाखेड़ी माँ भी उनके दुःखोंको दूर करती हैं। यहाँ माताका बड़ा चमत्कार है। कहते हैं कि होलकर-वंशकी प्रसिद्ध रानी देवी श्रीअहल्याबाई होलकर एक बार यहाँ अपने बेटे मालेरावकी मनौती मनाने-हेतु पधारी थीं। नवरात्रमें यहाँ हवन-पूजन आदि द्वारा सात्त्विक उपासना सम्पन्न होती है। इन दिनों यहाँ दर्शनार्थियोंकी बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो जाती है।

४-आंत्रीमाताका मन्दिर—दशपुरके मनासा तहसील-में आंतरीमाताका मन्दिर अपनी विशिष्टताके लिये प्रसिद्ध है। यहाँ भी गाँवके नाम—आंतरीपर ही इस मन्दिरका नाम प्रसिद्ध हो गया है। यह विशाल मन्दिर पक्के सफेद पत्थरका बना है जिसमें दो देवियाँ प्रतिष्ठित हैं—एक हैं नाहरसिंगी (नृसिंह) तथा दूसरी महिषासुरमर्दिनी। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रमासकी पूर्णिमा तथा पौषमासकी अमावस्यापर मेला लगता है।

एक जनश्रुति तथा ऐतिहासिक कथनके आधारपर चारणोंकी वंशपरम्परामें एक कन्याका जन्म हुआ था, जो आगे चलकर एक लोकनायिका एवं वीराङ्गना भवानी चारणीके नामसे प्रसिद्ध हुई। डॉ० पूरन सहगलने अपनी शोध-पुस्तक—'चारणकी बेटी' में लिखा है—'कोई भी व्यक्ति आंत्रीकी माता (जिसे अब अंत्रली माताके नामसे भी जाना और पूजा जायगा)के मन्दिरमें तथा इसके आस-पास मांस-मदिराका उपयोग नहीं करेगा और बलि भी नहीं चढ़ायेगा।'

इसी प्रकार इस क्षेत्रमें वीर कन्याओं या विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न बालाओंके नामसे अनेक शक्तिपीठ हैं। देशनोक (राजस्थान)की करणी माता भी बीकानेर-राज्य एवं अनेक परिवारों और चारणोंकी कुलदेवी हैं, जो वस्तुतः एक चारण कन्या थीं। (देखिये—'भारतके प्राचीन राजवंश' तृतीय भाग, पृष्ठ ३१९।)

—पं० निखेरनाथ रेड

कहते हैं कि महामाया भादवा भी ऐसी ही एक वीर कन्या थीं, जो कालान्तरमें देवीके रूपमें पूज्या हुईं। 'चारणकी बेटी'में उल्लिखित भवानीका वह लीला-प्रसङ्ग आज भी सर्वत्र भिन्न-भिन्न प्रकारसे बखान किया जाता है एवं उस वीराङ्गनाके प्रति श्रद्धा व्यक्त की जाती है। आज भी उसे देवीका ही अवतार माना जाता है।

अतः स्पष्ट है कि आंतरी माताका मन्दिर उसी वीर बालाकी पावन स्मृति एवं उसके साहसिक कार्यो-का एक प्रकाश-स्तम्भ है, जो आनेवाली पीढ़ियोंको मार्गदर्शन देता रहेगा।

(२)

(श्रीरामप्रतापजी व्यास, एम्० ए०, एम्० एड्०, साहित्यरत्न)

मालवाकी काली माटीकी धरतीपर हजारों वर्षोंसे शक्तिकी उपासना होती आ रही है। पौराणिक देवियोंके अतिरिक्त लोकदेवियोंकी पूजा-उपासना और महोत्सवोंकी भी लम्बी परम्परा चली आ रही है। यहाँ मालवाकी कुछ लोकदेवियोंका परिचय इस प्रकार प्रस्तुत है—भैंसासुरी माता, खोखली माता, रोग्यादेवी, भूखी माता, छोटीमाता, शीतलामाता, केसरबाई, लालबाई, पंथवारी, देवलमाता, परीमाता, पाटीमाता, माखलीमाता, पायरीमाता, नालछामाता, दूधाखेड़ीमाता, हिंगलाजमाता, मोड्यामाता, अमावा माता, कंकाली माता, हतीमाता आदि।

इनमें लालबाई, केसरबाई तथा शीतलामाता चेचककी देवियाँ हैं। पाटीमाता पाटी नामक बुखार एवं खोखली माता खाँसीकी देवी हैं। परीमाता वह माता है जो स्वर्गसे उतरकर धरतीपर आती है तथा लोगोंके दुःख-दर्दोंको दूर करती है। हतीमाता पूर्वजोंकी देवी मानी गयी है। इसकी शुभ कार्योंके अवसरपर पूजा की जाती है। रोग्यादेवी छोटे बालकोंके रोगोंको दूर करती है। हिंगलाजमाता, यह मराठोंकी कुलदेवी है। यह मंदसौर जिलेमें भानपुरा तहसीलमें हिंगलाजगढ़ किलेमें विराजती है। महिषासुरमर्दिनी, श्रीदुर्गामाता, दूधाखेड़ीमाता, भादवा माता, आंत्रीमाता और मोड़ी माता आदि यहाँकी अन्य प्रसिद्ध उपास्य देवियाँ हैं। इन देवियोंके अलग-अलग मन्दिर और पीठ-स्थान बने हुए हैं। जहाँ भक्त लोग बड़ी श्रद्धासे पहुँचकर अपने कष्टोंके निवारण-हेतु माँसे आत्म-निवेदन करते हैं।

वैसे तो इन देवियोंके दरबारमें प्रतिदिन यात्रियोंका आना-जाना लगा रहता ही है, किंतु चैत्र तथा आश्विन मासके नवरात्रोंमें यहाँ लोगोंका मेला-सा-लग जाता है। इन दिनों प्रत्येक देवीके स्थलपर धूप-दीप-कर्पूर आदिके सहित पूजा-अर्चना, तन्त्र-मन्त्र-साधना आदि कार्य चलते रहते हैं। देवीके प्रधान पुजारी—'बोडला' अथवा 'भोपा'को नौ दिनोंतक उसी ठाम या थानकपर रहना पड़ता है। इस समय वे शुद्ध-पवित्र रहकर देवीकी पूजा-अर्चना करते-कराते हैं।

नवरात्रोंमें ग्रामोंकी लोकदेवियों—कंकाली, भैंसासुरी, शीतलामाता, दुर्गामाता, कालकादेवी आदिके स्थानोंपर विशेष धूम-धाम रहती है। उन दिनों भोपोंको भाव (शरीरमें देवताका वायुरूपमें प्रविष्ट होना) खेलते भी देखा गया है। वे एक हाथमें तलवार तथा दूसरेमें खप्पर लेकर उछलने लगते हैं। उस समय बजनेवाले ढोल आदि वाद्योंकी कर्णभेदी आवाज अच्छे-अच्छे धैर्यवान् लोगोंका साहस डिगानेमें समर्थ होती है। बीच-बीचमें लोग—'बोलो काली कंकाली की····जय, भैंसासुरी माँ राणीकी····जय, अपनी बाल-सुलभ मस्तीमें

प्रायः जोर-जोरसे उच्चारण करते हैं। यहाँके बालक भी निम्न प्रकारकी पङ्क्तियाँ बोलकर शक्ति माँके प्रति अपना आदरभाव व्यक्त करते हैं—

काली थी कंकाली थी। काला बनमें रहती थी॥
लाल पानी पीती थी। मर्दोंके छोगे लेती थी॥

नवरात्रके अन्तिम दिन एक धार्मिक शोभायात्रा समारोहके साथ निकलती है, जिसमें सम्पूर्ण ग्रामवासी सम्मिलित होते हैं। आगे-आगे देवियोंके प्रतिनिधि भोपे भाव खेलते हुए चलते हैं। उनके पीछे सारा जन-समूह होता है। ग्रामके प्रमुख मार्गसे होता हुआ यह जुलूस किसी नदी या अथाह तालाबके किनारे जाकर समाप्त हो जाता है।

मालवाकी इन लोक-देवियोंपर यहाँके जनमानसका अटूट विश्वास, असीम श्रद्धा एवं पूर्ण भक्तिभावना है। परम्परासे लोग जन्म-जन्मान्तरोंसे अपने कष्टोंका निवारण करने-हेतु इन्हीं देवी-पीठोंकी शरण लेते हैं तथा सच्चे मनसे अपनी प्रार्थना देवियोंके दरबारमें करते हैं। इन्हींको ये शक्तिका अवतार मानते हैं। इसीलिये इनकी उपासनामें तन-मन-धन न्यौछावर करते हैं।

झुँझुनूकी लोकप्रसिद्ध श्रीराणी सतीजी

(श्रीसत्यनारायणजी तुलस्यान)

कलिकालकी सतियोंमें श्रीराणी सतीजीका नाम अत्यन्त आदर और भक्तिसे लिया जाता है। उन्होंने जिस प्रकार आजीवन पातिव्रत्य-धर्मका पालन किया, वह एक अनुपम उदाहरण है। उज्ज्वल चरित्र, पातिव्रत्यधर्म एवं सतीत्वकी ऐसी गौरवपूर्ण परम्पराका जितना भी यशोगान किया जाय, थोड़ा है।

श्रीराणी सतीजीका नाम नारायणी बाई था। महम ग्राम(डोकवा)में अग्रवाल-कुलभूषण गोयलगोत्रीय श्रीधुडसामलजीके यहाँ इनका जन्म हुआ था। बाल्यकालसे ही इनकी रुचि धर्मशास्त्रोंके पठन-पाठन, भगवान्‌के पूजन, सत्सङ्ग और भक्तिकी ओर थी। सत्सङ्गके प्रभावसे इनके स्वभावमें बाल्यकालसे एक दृढ़ चारित्रिक निष्ठा आ गयी थी।

युवा होनेपर इनका विवाह अग्रवाल-वंशके प्रवर्तक महाराज अग्रसेनजीके वंशज बांसलगोत्रीय हिसारके दीवान श्रीजालीरामजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीतनधनदासजीके साथ हुआ था।

श्रीतनधनदासजी रणबाँकुरे, आन-बानके धनी और कुशल योद्धा थे। उनके पास एक बड़ी विलक्षण घोड़ी थी, जिसपर हिसारके नवाब-पुत्रका मन ललचा गया। जब किसी भी प्रकार वह घोड़ी तनधनदासजीने नवाब-पुत्रको नहीं दी, तब एक नीरव रात्रिके अन्तिम प्रहरमें जब समस्त हिसारवासी सोये हुए थे, वह तनधनदासजीकी हवेलीमें घोड़ी चुरानेके विचारसे, जहाँ घोड़ी खड़ी थी, जा पहुँचा। घोड़ीने अपरिचित व्यक्तिको देखकर हिनहिनाना प्रारम्भ किया तो तनधनदासजी जाग उठे और उन्होंने उस कालरात्रिमें उस अपरिचित आकृतिको ललकारा। उत्तर न पाकर तनधनदासजीने अपनी सांग उठाकर उस अपरिचित आकृतिकी ओर फेंकी जो सीधी नवाब-पुत्रको बिंध गयी और वह वहीं मृत्युका ग्रास बन गया।

नवाब-पुत्रको मृत देखकर आसन्नविपत्तिपर नीतिपूर्वक विचार कर तनधनदासजी अपने पिता जालीरामजी, अपनी माता और अपने कनिष्ठ भ्राता कमलरायको लेकर हिसारकी नवाबीसे दूर झुँझनू चले आये और वहीं रहने लगे।

कालान्तरमें जब तनधनदासजी गौना करवा कर अपनी विवाहिता धर्मपत्नी नारायणी बाईको लिवा लानेके
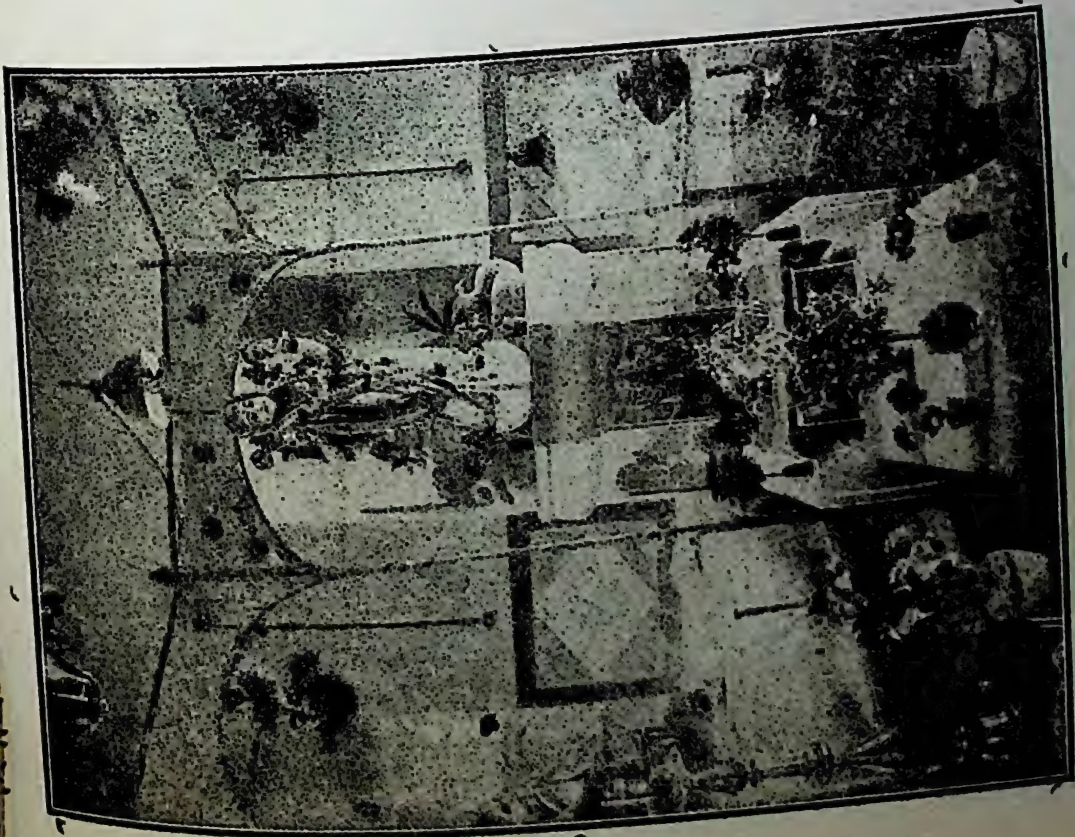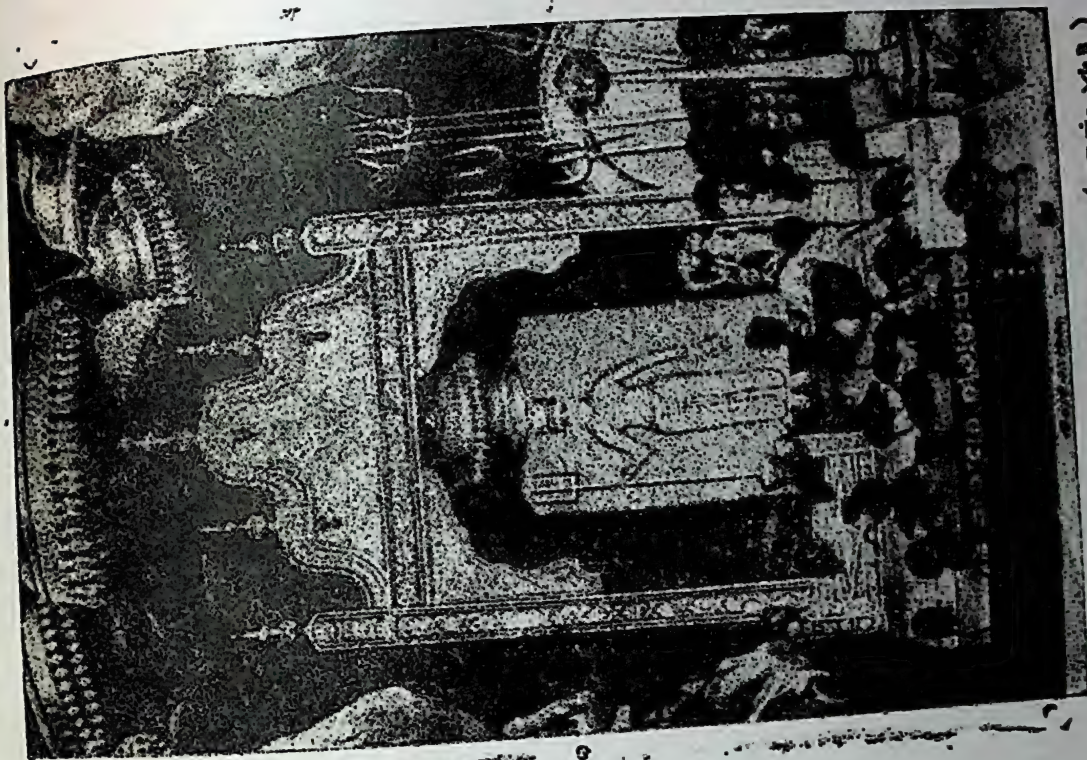
श्रीसरस्तीदेवी, बीकानेर (राजस्थान)

श्रीकरणीदेवी, देशनोक (राजस्थान) (पृष्ठ-सं० ४५१)
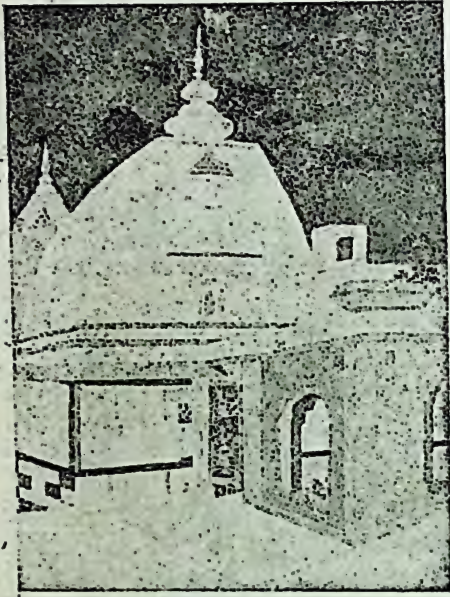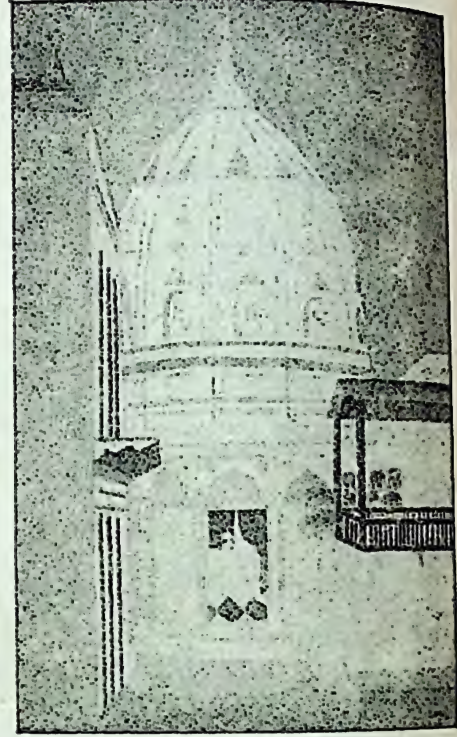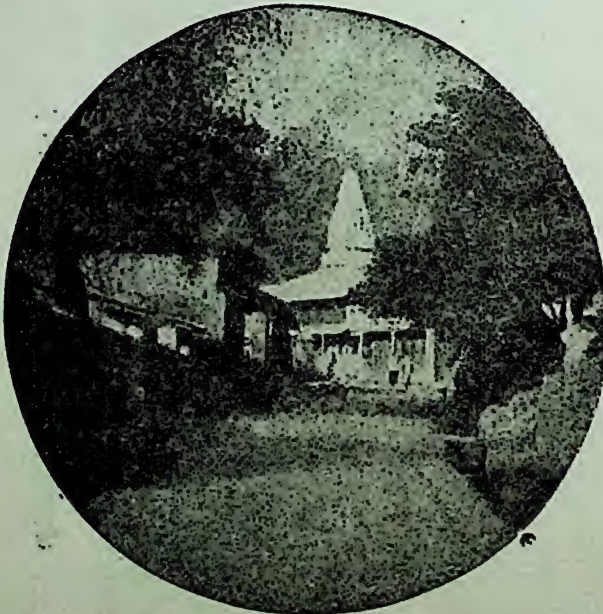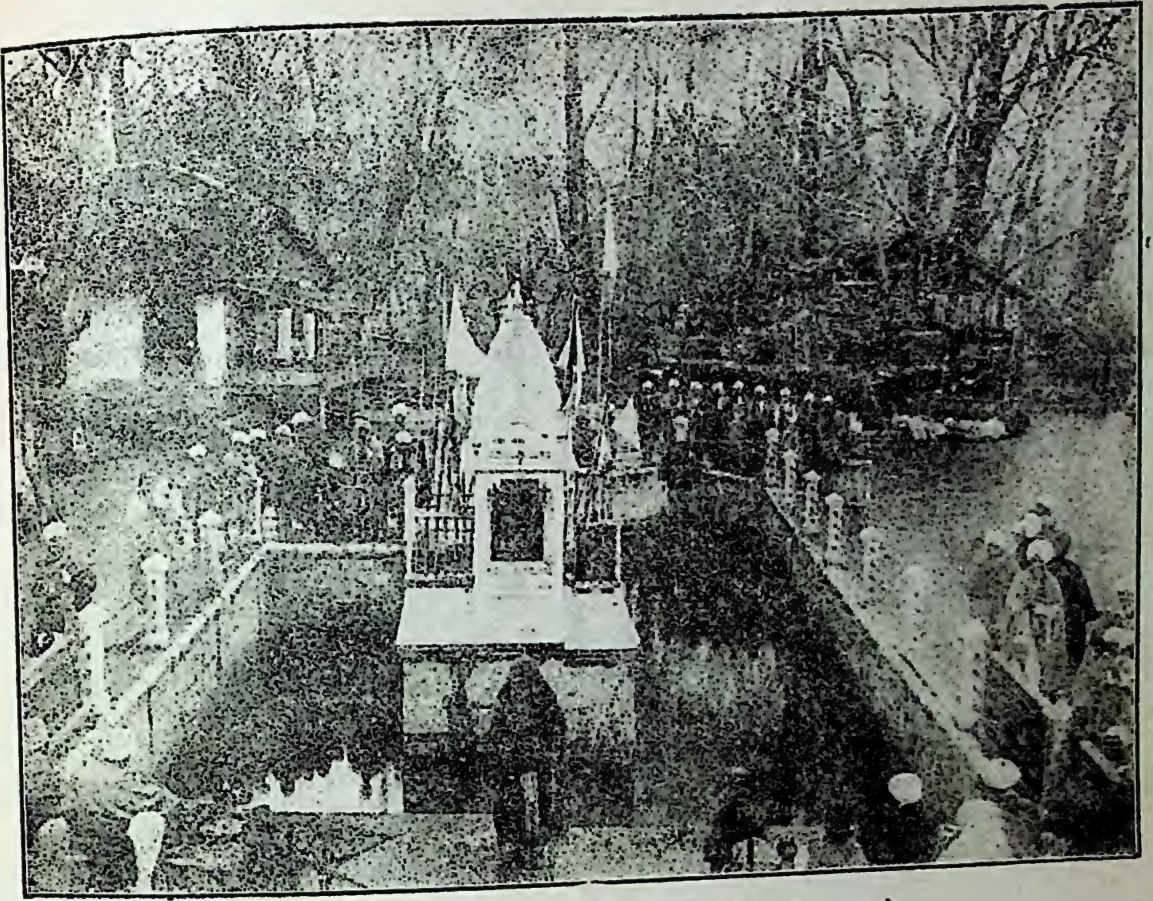
श्रीक्षीरभवानी-योगमाया-पीठ, कश्मीर (पृष्ठ-सं० ४१६)
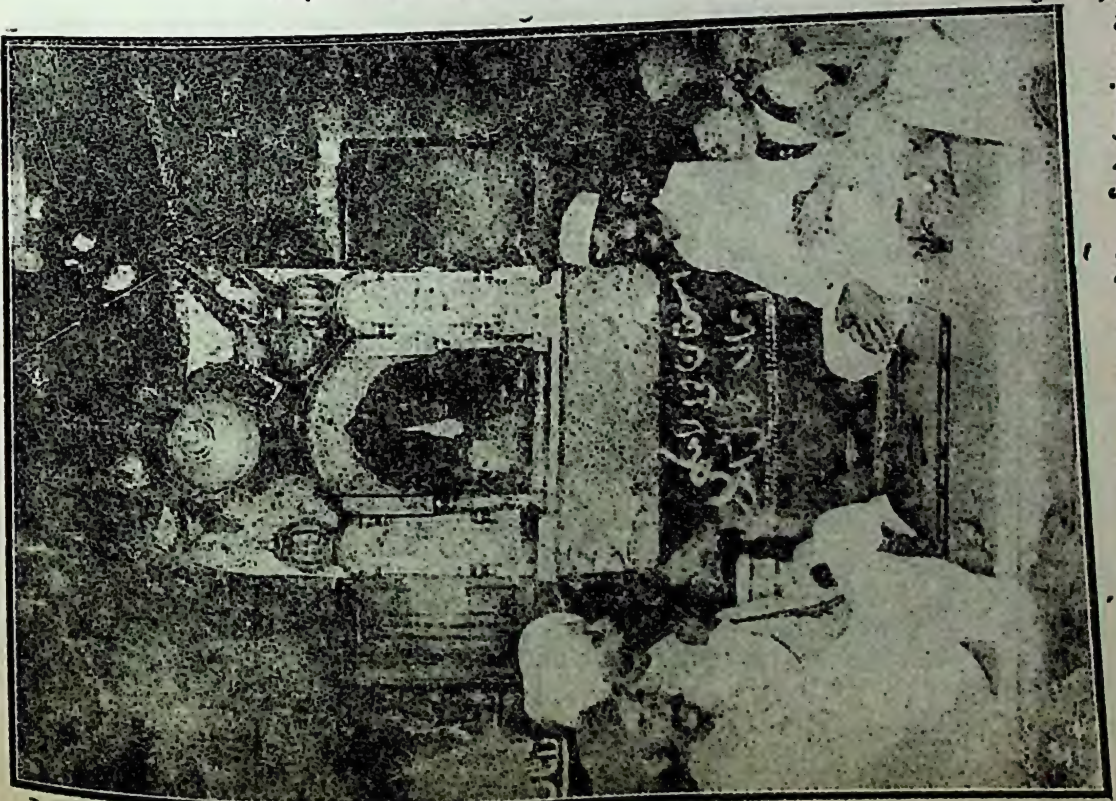
भगवती ज्वालामुखीका आदिस्थान (बीचमें ज्योति-दर्शन) (पृष्ठ-सं० ४१४)

श्रीअम्बिकादेवी, सूरत (पृष्ठ-सं० ४१७)

श्रीअम्बामाताजी, खेडब्रह्म, (गुजरात) (पृष्ठ-सं० ४१८)
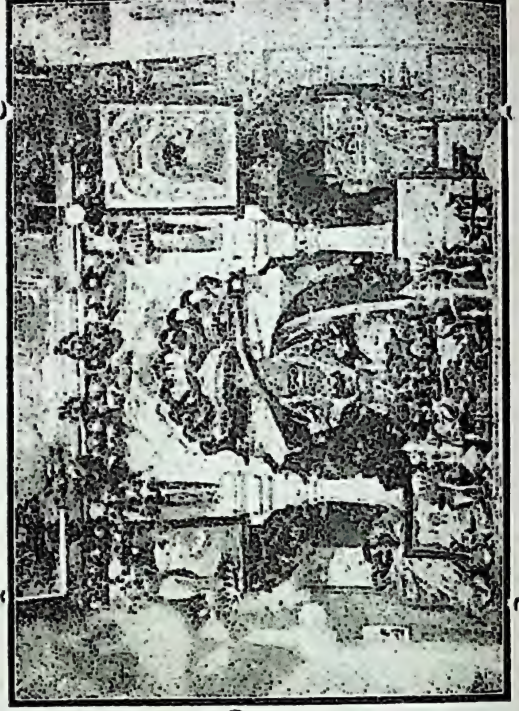
श्रीअम्बामाताजी, बड़ौदा (पृष्ठ-सं० ४१९)

लिये महाम पहुँचे तो यह समाचार हिसारके नवाबको मिल गया। अपनी सीमामें अपने वैरीको देख नवाबका हृदय प्रतिशोध और प्रतिहिंसाकी आगसे भड़क उठा। उसने अपने सेनापतिको सैनिकोंसहित तनधनदासजीसे बदला लेनेके लिये भेज दिया। सेनापतिने देवसरकी पहाड़ीके पीछे अपने सैनिकोंसहित पड़ाव डाल दिया।

गुरसहायमलजीने अपनी पुत्री और अपने जामाताको बहुतसे रत्न, आभूषण एवं वस्त्र-अलंकार आदि देकर विदा किया। तनधनदासजी अपनी घोड़ीपर सवार थे और नारायणी बाई रथपर आरूढ़ थीं। दोनोंने झुँझनूके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें जब वे देवसरकी पहाड़ीकी ओटमें पहुँचे, तब सेनापतिके सैनिकोंने उनपर आक्रमण कर दिया। वहाँ उस समय तनधनदासजीने डटकर युद्ध किया। सहसा वहाँ देवासुर-संग्राम-जैसा दृश्य उपस्थित हो गया। एक ओर आसुरी और पाशविक शक्तियाँ सेनापति और नवाबके सैनिकोंके रूपमें खड़ी थीं तो दूसरी ओर धर्मध्वज लिये रणबाँकुरा योद्धा तनधनदास और साक्षात् दुर्गाजीकी अंशावतार नारायणी बाई विद्यमान थीं।

जब किसी प्रकार नवाबके सैनिकोंने तनधनदासजीके अपराजेय शौर्यके सामने पार न पाया और वे रणक्षेत्रमें गाजर-मूलीकी तरह कटने लगे, तब सेनापतिने झाड़ीके पीछे छिपकर तनधनदासजीपर घात किया। तनधनदासजी पीछेकी ओरसे असावधान थे। फलतः वहीं उन्होंने धर्मकी बलिवेदीपर प्राणोंका उत्सर्ग कर अमरता प्राप्त की। तदनन्तर ज्यों ही सेनापतिने नारायणी बाईको एकाकी पाकर उसपर अपनी कुदृष्टि डालनी चाही, त्यों ही— नारायणी बाईने साक्षात् दुर्गाका रौद्र रूप धारण कर हुंकार किया और अपनी कंचुकीके भीतरसे कटार निकाल कर सेनापतिको मार डाला तथा महाकालीके खाली खप्परको दुराचारीके लहूसे भर दिया। नारायणी बाईके विकराल रूपके सामने सेनापतिके शेष सैनिक एक क्षण भी ठहर न सके और वे वहाँसे दुम दबाकर भाग खड़े हुए।

तदनन्तर नारायणी बाईने वहाँ चिता रचायी और उसपर अपने पतिदेवके पार्थिव शरीरको गोदीमें रखकर सती-धर्मका पालन किया। सती होनेके पूर्व उन्होंने सेवक राणाको अपना भस्म झुँझनू ले जानेका आदेश देते हुए वरदान दिया कि जब भी कोई मेरा स्मरण करेगा, मैं वहीं उसकी रक्षाके लिये (देवीरूपमें) उपस्थित हो जाऊँगी।

यह घटना विक्रम संवत् १६५२ के मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी मंगलवारकी है। यह समय धर्मपर घोर विपत्तिका था। जब यवनोंके अनाचारके कारण चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी और अपना सतीत्व अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये राजस्थानकी वीर ललनाएँ हँसते-हँसते 'जौहर' की ज्वालामें अपने प्राणोंको होम रही थीं, उसी गौरवमयी पवित्र सती-परम्परामें नारायणी बाईका आत्मोत्सर्ग धर्मकी बलिवेदीपर एक महान् बलिदान था।

नारायणी बाईने जीवन भर सती-साध्वी एवं पतिपरायणा रहकर अन्तिम समयमें भी वीरताके साथ धर्मध्वंसियोंका सामना किया एवं पतिके सङ्ग परलोक प्रस्थान किया। बिना शक्तिरूपा हुए यह सब सम्भव नहीं। यही कारण है कि महाकालने इस तेजस्विताकी प्रतिमूर्ति, देवीस्वरूपाका पद-वन्दन किया है। कोटि-कोटि मानवोंने उनकी देहरीकी धूलि श्रीसती माताका वरदान मानकर अपने मस्तकपर चन्दन-सदृश लगायी है और अगणित कुल-परिवारोंने उन्हें श्रीराणी सती दादीजी अर्थात् मातामहीके शीर्षस्थ पदपर सादर विराजमान किया है।

झुँझनूमें उनका पवित्र सतीधाम है। राजस्थानके शेखावाटी-अञ्चलमें अरावलि-गिरि-शृङ्गोंकी तलहटीमें

बसा मरुधराका यह एक अत्यन्त सुरम्य मनोरम स्थान है। श्रीराणी सतीजीका यहाँ एक विशाल मन्दिर है, जिसके प्रधान मण्डपमें श्रीराणी सतीजी भगवती दुर्गाजीकी अंशरूपा होकर त्रिशूलके श्रीविग्रहमें विराजमान हैं। श्रीविग्रहमें एक दिव्य तेजकी आभा सदैव परिलक्षित होती रहती है। साथमें बारह अन्य सतियोंके मण्डप हैं। श्रीराणी सतीजीके बाद उनके कुलमें बारह सतियाँ और हुई हैं। जिनके नाम हैं—सर्वश्री जीवनी सती, पूरणी सती, प्रयागी सती, जमना सती, टीली सती, बाली सती, मनावली सती, मनोहरी सती, महादेई सती, उर्मिला सती, गूजरी सती और सीता सती। ये मण्डप इन्हीं बारह सतियोंके हैं। उपर्युक्त सभी तेरह सतियोंकी प्रतिदिन नियमपूर्वक उन्हें जगदम्बाका अंशरूप मानकर बड़ी ही भक्ति एवं श्रद्धासहित पूजा एवं अर्चना होती है। रोली, चावल, मेंहदी आदिकी तेरह टिक्कियोंसे भक्तजन श्रीराणी सतीजी-समेत उपर्युक्त तेरह सतियोंका पूजन करते हैं। सती-पूजा मूलतः आदिशक्ति भवानीकी ही पूजा है। झुंझनूमें प्रतिवर्ष दो बार मन्दिर-क्षेत्रमें मेला लगता है—१—भाद्रपद कृष्ण अमावस्याको जिस तिथिको अन्तिम सती सीता सती हुई थीं और २—मार्गशीर्ष कृष्ण नवमीको जिस तिथिको श्रीराणी सतीजी सती हुई थीं। इस समय लाखोंसे अधिक भक्त मन्दिरमें दर्शनार्थ आते हैं। चैत्र और आश्विन महीनोंके नवरात्रोंमें मन्दिरमें विशेष धार्मिक आयोजन होता है। वैसे बाहरसे आनेवाले दर्शनार्थियोंका ताँता तो प्रतिदिन ही लगा रहता है।

तेरह मण्डपोंके समीप ही पितरोंके मण्डप हैं। तीन मण्डप ऐसे हैं, जहाँ पितरोंको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाती है। सती-चौकमें ही कमलधार है, जहाँ जालीमरायजी, कमलरायजी एवं अन्य दिवंगत पितरोंके पार्थिव शरीरोंके दाह-संस्कार हुए थे। मन्दिरमें चार चौक हैं, जिनमें सती-चौक मन्दिरका हृदयस्थल है। श्रीराणी सतीजीके मण्डपके गर्भगृहके तोरणद्वारपर नव-दुर्गाओं, अन्य मातृकाओं एवं देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ अङ्कित हैं। गर्भगृहके ऊपर संगमरमरका बड़े ही कलात्मक ढंगका राजस्थानी स्थापत्य-कलाकी विशिष्ट शैलीका शिखर वर्तमानमें निर्माणाधीन है। सामने विशाल सत्सङ्ग-भवन बना हुआ है, जिसमें सहस्रों भक्तजन एक साथ बैठकर श्रीसती दादीजीका कीर्तन, भजन, गान एवं आरती-गायनादि कर सकते हैं। दीवारोंपर श्रीराणी सतीजीकी जीवनी चित्रोंमें अङ्कित करनेकी योजना भी चल रही है। द्वादश-मण्डपोंके आगे बरामदेमें रामायणके चित्र बने हुए हैं।

द्वितीय चौकमें भगवान् शिव उमा, गणेश, कार्तिकेय एवं नन्दी-सहित विराजमान हैं। श्रीहनुमान्-मन्दिरमें श्री-रामजी एवं श्रीलक्ष्मणजी-सहित पवनपुत्र हनुमान्जीकी बलशाली मुद्रामें बड़ी ही भव्य प्रतिमा है, जो भक्तोंके लिये दर्शनीय है। मन्दिरके ऊपरी भागमें भगवती महालक्ष्मीजी, श्रीदुर्गाजी और भगवान् श्रीकृष्णकी विशाल मूर्तियाँ हैं।

मन्दिरके प्रथम चौकमें सैकड़ों कमरोंसे युक्त विशाल अतिथि-भवन है। मन्दिरमें अनेक द्वार हैं—प्रथम गजानन्दद्वार, द्वितीय सिंहद्वार, तृतीय व्रजद्वार, चतुर्थ सतीद्वार, पञ्चम आनन्दद्वार आदि। सिंहद्वार राजस्थानी स्थापत्यकलाकी अद्भुत कृति है। यहाँ रामनिवासबाग, मोती-बाग और बलदेव सागर हैं तथा भोजनालयकी सुन्दर व्यवस्था है। श्रीराणी-सती-बालिका-विद्यालयसे सहस्रों बालिकाओं-को विद्याध्ययनका लाभ मिलता है। कुल मिलाकर वहाँ भक्तिका एक पावन वातावरण प्राप्त होता है। समूचे देशमें एक सौ आठसे अधिक श्रीराणी सतीजीके मन्दिर हैं। जो कोई भी दुःखी, आर्त्त एक बार दादीजी श्रीराणी सतीजीके द्वारपर चला गया उसका मनोरथ परिपूर्ण हुआ है।

राजस्थानके घर-घरकी कुल-पूज्या-गणगौर

(श्रीपुरुषोत्तमदासजी मोदी)

हमारे देश भारतमें मातृशक्तिकी सर्वोपरि प्रतिष्ठा है। दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदि देवियोंकी पूजा-आराधना विभिन्न नामों और परम्पराओंसे देशके विभिन्न प्रदेशोंमें की जाती है। राजस्थान शौर्य, त्याग, तपस्या और बलिदानकी भूमि रही है। यहाँ मातृशक्तिकी महत्ता प्रमुख है। किसी समय स्त्रियाँ युद्ध-भूमिमें वीरगतिप्राप्त अपने पतिके शवोंके साथ अथवा उनके वीरगति-प्राप्त होनेपर सती हो जाती थीं। अपने सतीत्वकी रक्षा-हेतु प्राण त्याग देती थीं। यह लोक-परम्परा राजस्थानमें अनेक सतियोंके स्थानों, पूजा-स्थलों तथा मन्दिरोंके रूपमें देखी जा सकती है। विभिन्न समुदायोंकी अपनी-अपनी सतियाँ हैं, जिनकी उपासना परिवारमें विभिन्न तिथियों और माङ्गलिक अवसरोंपर की जाती है।

गणगौर, गण-गौरि अथवा गौरजा राजस्थानमें लोक-परम्परानुसार कुमारी कन्याओंकी आराध्या कुलदेवी हैं। प्रत्येक कन्या अपने लिये एक सुन्दर, सच्चरित्र और समृद्ध पतिकी कामना करती हैं। अतः सौभाग्या-काङ्क्षिणी कुमारी कन्याएँ मनोवाञ्छित पतिकी प्राप्तिहेतु गणेशजीसहित माँ पार्वतीकी गणगौरके रूपमें पूजा करती आ रही हैं।

राजस्थानमें प्रतिवर्ष होलिकादहनके दूसरे दिन—चैत्र मासके प्रथम दिनसे ही कुमारी कन्याएँ होलिकाकी भस्म (राख) लेकर उसके आठ पिण्ड और गोबरके आठ पिण्ड बनाती हैं तथा उन्हें मिट्टीके शुद्ध पात्रमें रखकर उनका जल, पुष्प, दूर्वा, रोली आदिसे पूजन करती हैं। आठवें दिन किशोरियाँ कुम्हारके घरसे मिट्टी लाकर गणगौर, ईसर, कानीराम, रोमा और मालनकी प्रतिमा बनाती हैं या कुम्हारसे बनवा लेती हैं। गौर (गौरी) पार्वतीकी प्रतिमूर्ति है और ईसर शंकरजीकी। कानीराममें शंकरजीके छोटे भाईकी परिकल्पना की गयी है, रोमा शंकरजीकी बहन हैं और मालन फूलवाली। इस प्रकार चैत्रकृष्ण प्रतिपदासे चैत्रशुक्ल तृतीयातक कुमारी कन्याएँ विधिवत् उनका पूजन करती हैं।

इन मृण्मय विग्रहोंका चैत्रशुक्ल तृतीयाके अन्तिम दिन कन्याओंके साथ समस्त सौभाग्यवती स्त्रियाँ भी गणगौरकी पूजा करती हैं। यह राजस्थानके घर-घरका एक पवित्र, सांस्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक और पारम्परिक पर्व है। उस दिन सायंकाल भारी शोभा-यात्राके साथ माताजी बावड़ी, नदी अथवा कुएँमें—जहाँ जो सुलभ हो, विसर्जित कर दी जाती हैं।

इस पर्वपर लड़कियाँ सिरपर छोटे-बड़े अनेक कोरे घड़े या लोटे-लुटिया लेकर कुएँ या जलाशयसे जल भरने निकलती हैं, प्रतिदिन बाग-बगीचोंमें जाकर पुष्प और दूब लाती हैं। रास्तोंमें, घरोंपर विभिन्न मङ्गल अवसरोंके गीत गणगौरके प्रति गाये जाते हैं। 'गणगौर'के त्योहारके इन गीतोंमें भगवती गौरीकी प्रार्थनाके साथ समयोचित वासन्तिक प्रेमानुरागकी छटा भी होती है। गीतोंमें गौरीके 'हिमाचल-कन्या' होनेका स्पष्ट वर्णन है। गौरीकी प्रार्थनाका राजस्थानकी प्राकृत भाषामें एक उदाहरण देखिये। प्रातः-पूजनके समय यह गीत गाया जाता है—

गौर ए गनगौर माता !, खोल किंवाड़ी।
बाहर ऊबी रौवां, पूजण वाळी॥
पूजो ए पूजावो बाई, क्या फल माँगो !
कान कँवर सौ बीरो माँगाँ, राईसी भोजाई॥
ऊँट चढ्यो बहणेई माँगा चुड़लावालो भहणा॥

स्नान करानेका गीत भी बड़ा सुहावना है—

ऐल खेल नन्दी जाय, यो पाणी कित जायसी।
आदौ जासी अलियाँ गलियाँ, आदो ईसरदास न्हासी॥

गणगौर-पूजाके विभिन्न अवसरोंके गीतोंकी प्रमुख पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं, जो कुमारी कन्याएँ परिवारके प्रति कोमल भावनाओंका संचार करती हैं—

ईसरदास ल्याया छ गनगौर।
प्याला पीती आव छ गनगौर।
मुजरा करता आव छ राठोर॥

और—

म्हारी गौर तीसाई औ राज घूँट्यारी मुकट करो।
म्हारी गौरां न पाणीड़ो प्याई औ राज, घांट्यरी मुकट करो॥
ईसरदास बीरा कौ काँगसियौ म्हे मोल लेस्यांओ राज।
काँगसियो बाई क सिर चढ्यो जी राज।

प्रत्येक स्त्रीकी कामना रहती है कि विवाहके समय उसका ईसरदास-सा भाई उसे चूनड़ी उढ़ाये—

चमकणा घाघरो, चमकण चीर, बोल बाई रोवां तेरा कुण कुण वीर।
बड़े से बड़ो मेरो ईसरदास वीर, बँस छोटो कानीराम वीर।
भाय मिला व मेरो ईसरदास बीर, चूनड़ी ऊढ़ा व मेरो कानीराम वीर।

गणगौरका मुख्य महोत्सव महाराजा उदयपुर-नरेश-द्वारा पिछौला-झीलपर आयोजित होता था। वह गाजे-बाजे, हाथी-घोड़े, ऊँटों और रथोंसहित बड़ी धूमधाम और भव्यताके साथ शोभायात्रा सम्पन्न होती थी। उदयपुर नगरके लोग सोल्लास पिछौला झीलपर एकत्र होते थे। तभी तो उदयपुरकी गणगौर विख्यात है। जैसे—

उदियापुर सु आई गनगौर।
आए उतरी ब्रह्मादासजी री पौल॥
ईसरदासजी औ माँडल्यो गनगौर।
कानीरामजी औ माँडल्यो गनगौर॥
रोवाँ की भाभी पूजल्यो गनगौर।
सुहागन रानी पूजल्यो गनगौर॥
थारो ईसर म्हारी गनगौर।
गौर मचा व रमझौल॥
सुहागन रानी पूजल्यो गनगौर॥

इसी प्रकार जयपुरका 'गणगौर'-पर्व भी बहुत प्रसिद्ध है। जयपुरसहित राजस्थानके पुराने सभी रजवाड़ोंमें आज भी यह उत्सव बड़ी धूमधामसे सविधि समारोहपूर्वक मनाया जाता है। इसीलिये 'गणगौर'-महोत्सवको बहुतसे लोग केवल राजस्थानका प्रमुख लौकिक त्योहार समझते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस उत्सवके मनानेका प्रकार लौकिकतासे शून्य नहीं है, किंतु इसके मूलमें शास्त्रीयताकी छाप लगी हुई है। निर्णयसिन्धुका वचन है—

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम्।
सम्पूज्य……दोलोत्सवं कुर्यात्…………॥

देवीपुराणमें भी लिखा है—

तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम्।
कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः॥
स्रग्गन्धधूपदीपैश्च नमनेन विशेषतः।
आन्दोलयेत् ततो वस्त्रं शिवोमातुष्टये सदा॥

इन शास्त्र-वचनोंका भाव यह है कि शिवसहित गौरीका पूजन चन्दन, केशर, अगरु, कुङ्कुम मणि, वस्त्र, पुष्पमाला, धूप, दीपसहित करके प्रणाम करे एवं उनका (गौरीजीका) वस्त्र थोड़ा हिलाना चाहिये। चैत्रशुक्ला तृतीया 'गणगौरी' पूजाका निर्दिष्ट दिन है। उसीमें सौभाग्य-तृतीयाका महत्त्व भी समाया हुआ है। उस दिन कुमारी कन्याओंके साथमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ भी सश्रद्ध पूजन-अर्चनसहित वन्दना करके सौभाग्य और मङ्गलके लिये शिवसहित माँ गौरीसे आशीर्वाद माँगती हैं।

जगदम्बा श्रीकरणीदेवी

(डॉ० श्रीमोहनदानजी चारण)

चारण-समाजके लोग शक्ति-उपासक हैं तथा बलूचिस्तानस्थित पौराणिक विख्यात शक्तिपीठ 'हिंगुलाज'-को अपना प्रधान पीठ मानते हैं। इनमें यह मान्यता है कि हिंगुलाज माता समय-समयपर हमारी जातिमें अवतार लेती हैं। इन शक्ति-अवतारोंमें आवड़ माता, राजल माता, सैणी माता, करणी माता, बिरवड़ी माता, खोड़ियार माता, गीगाई माता, चन्दू माता, देवल माता, मालणदे माता, सोनल माता, हाँसबाई माता आदिके नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इन देवी-अवतारोंने राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, दिल्लीके अनेक राजा-महाराजा और बादशाहोंतकको अपने परचे-प्रवाड़ों (वरदानों)से चमत्कृत एवं उपकृत किया है, अन्यायी, प्रजाशोषक नृपतियोंको आतङ्कित कर प्रजा-सेवक राजाओंको सिंहासनारूढ़ बनाया है तथा प्रजाजनोंकी रक्षा कर मातृत्वकी अनूठी पहचान स्थापित की है। उक्त देवी-अवतारोंके महत्त्वपूर्ण कृत्योंके प्रमाणमें आज भी यह दोहा प्रचलित है—

'आवड़ तूठी भाटियाँ, कामेही गौड़ांह।
श्री बिरवड़ सिसोदियाँ, करणी राठौड़ांह॥'

अर्थात् आवड़ माताने भाटी शाखा, कामेही माताने गौड़ शाखा, बिरवड़ी माताने सिसोदिया शाखा तथा करणी माताने राठौड़ शाखाके क्षत्रियोंकी सहायता कर उनके नये-नये राज्य स्थापित करवाये।

करणी माताने जोधपुर जिलेकी फलौदी तहसीलके अन्तर्गत सुवाप नामक ग्राममें चारण-समाजकी किनिया शाखाके मेहा नामक व्यक्तिके घर संवत् १४४४में अवतार लिया। आपकी मातुश्रीका नाम देवल बाई था। आपके जन्मसे पूर्व मेहाके छः लड़कियाँ ही थीं। जब इस बार भी लड़कीका ही जन्म हुआ, तब मेहाकी बहनने नवजात बालिकाके सिरपर यह कहकर ठोला (मुट्ठीनुमा हाथ) मारते हुए कहा कि 'लो फिर एक पत्थर आ गया।' आश्चर्य है कि मेहाकी बहनका हाथ मुट्ठीनुमा बँधा-का-बँधा ही रह गया, जिसे करणी माताने पुनः पाँच वर्षकी अवस्थामें अपना हाथ उसपर फेरकर ठीक किया। करणी माताने जन्मसे पूर्व स्वप्नमें माताको दशभुजा दुर्गाके रूपमें दर्शन दिया था और बचपनमें ही खेतसे लौटते समय रास्तेमें सर्प-दंशसे मृत पिताको जीवित कर दिया था।

वैसे तो करणी माताके असंख्य परचे-प्रवाड़े (वरदान) हैं। उनमेंसे कुछ नमूनेके तौरपर ये हैं—

यद्यपि आपका पाणिग्रहण-संस्कार साठीके निवासी देपाजी बीठूके साथ सम्पन्न हुआ था, फिर भी आपने पतिको सिंहवाहिनी दुर्गाका रूप दिखाकर स्पष्ट बता दिया कि मैं आपके सांसारिक कार्योंमें भागीदार नहीं बनूँगी, अतः सांसारिक धर्मके निर्वाह-हेतु आप मेरी सहोदरा गुलाब बाईसे विवाह कर लें।

करणी माताने अपने प्रभावसे राव रिड़मलके वंशजोंमेंसे राव जोधाद्वारा जोधपुर एवं राव बीकाद्वारा बीकानेर राज्योंकी स्थापना करवायी।

करणी माताने अपने अपमानके साथ गोधनकी रक्षामें बाधक राव कान्हाका सिंहरूप धारणकर वध कर दिया और जाँगलू प्रदेशमें ही अपने ससुरालके विपुल गोधन-हेतु चारे-पानीकी सुव्यवस्था देखकर स्थायी निवास कर लिया तथा वहाँ देशनोक नामक नगर बसाया, जहाँ आज भी करणी माताका भव्य मन्दिर भक्तजनोंके आकर्षणका केन्द्र एवं तीर्थस्थल-स्वरूप स्थित है।

करणी माताकी बहनकी कोखसे जन्मा पुत्र लक्ष्मण कोलायत (प्राचीन नाम कपिलायत) तालाबमें डूबनेसे मृत्युका ग्रास बन गया । आप धर्मराजके पाससे लक्ष्मणकी आत्माको पुनः लौटा लायीं और लक्ष्मणको अभयदान दिया । आत्माको पुनः ले जानेपर धर्मराजने टिप्पणी की कि एक-न-एक दिन तो आत्माको मेरे पास आना ही पड़ेगा । मातेश्वरीने व्यवस्था दी कि 'आजसे मेरा वंशज (अपने पतिके वंशके लोग) तुम्हारे पास नहीं आयेगा । प्रत्येक देयावतको मृत्युके पश्चात् चूहा बनाकर मैं अपने मन्दिरमें ही शरण दे दूँगी ।' परिणामस्वरूप देशनोकके मन्दिरमें हजारोंकी संख्यामें चूहे हर समय विद्यमान रहते हैं, जिन्हें भक्तजन श्रद्धा-वश 'करणी रा काबा' कहकर पुकारते हैं । देशनोकका मन्दिर विदेशोंमें चूहोंका मन्दिर (Rat's Temple) के रूपमें प्रसिद्ध है ।

जैसलमेर और बीकानेरकी सीमाके निर्धारणको लेकर जोरदार विवाद था । दोनों राज्योंके शासकोंने विवादको निपटाने-हेतु माँ करणीसे निवेदन किया तो आपने व्यवस्था दी कि निकट भविष्यमें मैं धिनेरु तलाई (छोटा तालाब) पर अपने पार्थिव शरीरका त्याग कर दूँगी । यह क्षेत्र गायोंके चरनेके लिये आरक्षित रहेगा और इस तलाईके इधर-उधरकी पर्याप्त जमीनको छोड़कर तुमलोग अपनी-अपनी सीमा निश्चित कर लो । यह निर्णय सर्वमान्य रहा ।

अपने आदेशानुसार मातेश्वरी विक्रमी संवत् १५९५ चैत्रशुक्ला नवमीको उक्त तलाईपर पधारीं और अपने सेवक सारंगिया विश्नोईको आज्ञा दी कि 'झारी (जलपात्र)का पानी मेरे सिरपर उड़ेल । उस समय झारीमें जल नाममात्रको था, पर देवीको तो चमत्कार दिखाना था । सिरपर मात्र दो बूँदें गिरी होंगी कि सूर्याभिमुख पद्मासन लगाये बैठी माँ करणीके पार्थिव शरीरसे एक अलौकिक ज्वाला फूट पड़ी और वह ज्योति परम ज्योतिमें लीन हो गयी । यह स्थान देशनोकसे लगभग पैंतीस मीलकी दूरीपर है ।

करणी माँने महाप्रयाणके पश्चात् भी भक्तजनोंकी अनेक बार रक्षा की है, कई वरदान दिये हैं । (इन पङ्क्तियोंका लेखक कई ऐसे वरदानोंका प्रत्यक्ष द्रष्टा एवं उपभोक्ता रहा है, जिनकी संख्या गिनाना मेरे वशमें नहीं ।) आपने बड़े-बड़े राज्योंकी स्थापना योजनाबद्ध ढंगसे करवाकर यह सिद्ध कर दिया कि अबला कही जानेवाली नारी सर्वाधिक शक्तिशालिनी है ।

दशरथ मेघवाल (जो करणी माँके गायोंका ग्वाला था) गायोंकी रक्षा करते काम आया था, उसकी मूर्ति माँ करणीके निर्देशानुसार देशनोकके करणी-मन्दिरमें स्थापित की गयी । माँ करणीके निमित्त की जानेवाली जोत (ज्योति)से उस ग्वाले (दशरथ मेघवाल)की मूर्तिकी भी पूजा अद्यावधि होती है । इस तरह माँ करणीने निम्न समझे जानेवाले लोगोंको भी अपनाया तथा उन्हें यथोचित सम्मान दिलवाया । मुल्तानकी कैदसे राव शेखाको छुड़ाकर लाते समय रास्तेमें मुसलमान पीरको राखी-बंध भाई बनाकर आपने सांस्कृतिक सौमनस्यका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया ।

आप अपने सम्पूर्ण जीवनमें सांसारिकतामें जल-कमलवत् रहीं । आपने समाजसेवा एवं यावज्जीवमात्रके कल्याणकारी सत्कृत्योंसे अपने करणी नामको सार्थक कर दिखाया ।

खोडियार माता

(वैद्य श्रीबलदेवप्रसादजी एच० पनारा)

चारण-कुलमें उत्पन्न मानवदेहधारी 'माई खोडियार देवी'की उपासनाका महत्त्व सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि प्रदेशोंके लोक-जीवनमें अत्यन्त लोकप्रिय है। सौराष्ट्र (गुजरात)के गाँवों एवं शहरोंमें इन देवीके अनेक मन्दिर हैं। देवीके भक्त भी ५-७ लाखसे कहीं अधिक हैं। केवल अहमदाबादमें ही देवीके ६०-७० छोटे-बड़े मन्दिर हैं। देवीकी भक्तिके प्रसारार्थ राजकोट नगरसे विगत नौ वर्षोंसे *'आई खोडियार ज्योति'* नामसे मासिक पत्रिका निकलती है। देवीके भक्त सभी वर्गोंमें पाये जाते हैं। ये देवी महाशक्ति एवं गङ्गा माताकी अंशावतार मानी जाती हैं। अतएव गङ्गाजीकी तरह इनका वाहन भी मगर है।

खोडियार देवीके दो रूप प्रचलित हैं—(१) मानवी-रूपमें, जो एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें वरद-मुद्रा धारण किये हैं। (२) यह वह देवीरूप है, जिनके चारों हाथोंमें—तलवार, कमल, त्रिशूल और खप्पर विराजित हैं। देवीके रक्ताम्बरा रूपकी झाँकी मिलती है। मानव-मूर्तिके ऊपरी देहमें ऊनका कम्बल, मध्य शरीरमें कञ्चुकी और अधोदेहमें धोती-सा वस्त्र धारण किये तथा स्वर्ण-रजतादि अलंकारोंसे अलंकृत हैं।

खोडियार माताका आविर्भाव सौराष्ट्रकी पुण्यशाली धरतीपर जामनगर जिलेके रंगपुर गाँवमें ईसवी सन् ७७९ की माघ शुक्ला अष्टमीको बताया जाता है। ये चारण-कुलके मामडदेवकी सातवीं कन्या थीं। मामडदेव चारणकी वल्लभीपुरके महाराज शिलादित्य (शीलभद्र)से गाढ़ी मैत्री थी। दरबारियोंने ईर्ष्यावश राजासे कहा कि 'ऐसे निःसंतानीसे मैत्री आपके लिये शुभ नहीं होगी।' फलतः राजाने मामडको दरबारमें आनेसे रोक दिया। इससे खिन्न हो मामडदेव घोर जंगलमें चला गया और वहाँ उसने घोर तपस्याद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न किया। शिवने उसे सात कन्याएँ होनेका वरदान दिया। शंकरकी कृपासे क्रमशः सात कन्याएँ हुईं। जिनमें खोडियार अन्तिम कन्या थी। कुछ लोगोंका कहना है कि एक साथ सातोंका जन्म हुआ। अन्तमें मामडको एक पुत्र भी हुआ, जिसका नाम मेरखिया था।

मित्रके घरका यह आश्चर्यप्रद शुभ संवाद सुनकर महाराज कन्याको देखने उसके घर पधारे। राजा साहब खोडियारके पालनेके पास पहुँचते हैं तो दिव्य कन्याने सोते-सोते ही अपने दोनों हाथ लम्बे कर दिये। मानो आशीर्वाद देनेके रूपमें राजाके सिरका स्पर्श कर उनका स्वागत किया हो। दिव्य कन्याकी इस दिव्यतापर महाराजके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

अपने जीवनकालमें खोडियार माताने अनेकानेक अद्भुत चमत्कारोंका परिचय देकर पूरे सौराष्ट्रको अपना भक्त बना लिया।

माताके मुख्य पीठ—खोडियार माताके सौराष्ट्रमें अनेक पीठ होते हुए भी प्रमुख पीठ भावनगरसे १६ कि० मी० दूर राजपरा गाँवके पास है। भावनगरके रेलमार्गमें 'खोडियार' एक स्टेशन भी है। रेलवे-स्टेशनसे २ मीलपर देवीका मन्दिर है, जहाँ यात्रा-सी लगी रहती है।

दूसरा पीठ बाँकानेर शहरसे १६ कि० मी० दूर 'माटेल' गाँवमें और तीसरा अमरेली जिलेके धारी नगरसे कुछ दूर 'गणधरा'-डैमपर है।

बस्तर-अञ्चलकी लोक-देवियाँ

(श्रीलाला जगदलपुरीजी)

मध्यप्रदेशके बस्तर-वनाञ्चलके ग्रामीण शक्तिपूजकोंकी आराध्या देवी दन्त्येश्वरी माईका स्थान एक सिद्ध पीठ माना जाता है। कहा जाता है कि यहाँ सतीका दन्त (दाँत) गिरा था, जिससे ये देवी दन्त्येश्वरी प्रकट हुईं। काकतीय वंशके अन्नमदेवने इन देवीको बस्तर जिलेके बारसूर स्थानसे दन्तेवाडामें लाकर पुनः प्रतिष्ठापित की। दुर्गाकी यह भव्य मूर्ति पहले बारसूरके पेदा अम्मा-मन्दिरमें प्रतिष्ठित थी। पीछे दन्तेवाडामें देवीकी स्थापना हो जानेसे ये 'दन्त्येश्वरी' नामसे प्रसिद्ध हो गयीं। आज यह मन्दिर पर्यटकों, दर्शनार्थियों एवं शक्तिपूजकोंका एक जाना-माना उपासना-केन्द्र बना हुआ है।

दन्त्येश्वरी नामसे यहाँ 'सप्तशती'में वर्णित 'रक्तदन्तिका' शब्दका भी कुछ प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। फाल्गुनशुक्ला षष्ठीसे चतुर्दशीतक यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। सम्प्रति मन्दिरकी व्यवस्था 'टेम्पुल इस्टेट' के अन्तर्गत जिलाधीश बस्तर और तहसीलदार दन्तेवाडाके अधीन है। मन्दिरका मुख्य पुजारी 'हल्बा' आदिवासी होता है। दर्शनार्थीको दर्शन-हेतु अनिवार्यतः धोती पहननी पड़ती है, जो यहाँ दर्शनार्थ पहनने भरके लिये सुलभ रहती है।

अद्भुत दशहरा मेला—बस्तरमें रावण-वधका दशहरा नहीं मनाया जाता, अपितु महिषासुरमर्दिनीका द्वादश दिवसीय आश्विन कृष्णा अमावस्यासे शुक्ला एकादशी तक दशहरा मनाया जाता है। बस्तर-दशहरा हरिजनों, आदिम प्रजातियों और पिछड़ी जातियोंको साथ लेकर मनाया जाता है, यही इसकी विशेषता है।

काछिन देवीकी गद्दी—इस दशहरेके प्रारम्भके दिन 'काछिन गादी' उत्सव होता है। इसके अन्तर्गत काछिन देवीको काँटेकी गद्दीपर बिठाया जाता है। बस्तरके हरिजनोंकी ये इष्टदेवी है। यह देवी एक कुमारी कन्यापर आरूढ़ होती हैं। इन्हें 'रणदेवी' भी कहते हैं। काछिन देवी वह शक्ति हैं, जो कण्टकोंपर विजय पानेका संदेश देती हैं। काछिन गादीके दूसरे दिन दन्त्येश्वरीमें नवरात्र प्रारम्भ होता है।

नवरात्रारम्भके ही नौ दिनोंतक जगदलपुरके पुराने टाउनहाल सीरासारमें एक गड्ढेमें जोगी हल्बा (आदिवासी) बैठकर नवरात्रकी निर्विघ्नताकी कामना करता रहता है। नवमीको मावली माता दन्त्येश्वरी मन्दिरसे पालकीमें सवार होकर जगदलपुरमें पहुँचकर विजयादशमी-उत्सव मनाती हैं। दशमी-एकादशीको रथयात्रा होती है।

यहाँ दन्त्येश्वरीके कई मन्दिर हैं। इस भूभागमें माणिकेश्वरी, मावली, कंकालन आदि अन्य लोक-देवियाँ भी हैं।

सर्वोपरि महाशक्ति

महाशक्ति ही सर्वोपरि है, ब्रह्मशक्तिके सहित ही आराध्य है। जैसे पुष्पसे गन्ध पृथक् नहीं की जा सकती, वह उसीमें सन्निहित है, उससे अभिन्न है, उसी तरह ब्रह्म और शक्ति कथनमात्रके लिये दो हैं, वस्तुतः वे परस्पर अभिन्न ही हैं। जैसे गन्ध ही चतुर्दिक्में व्याप्त होकर पुष्प-विशेषका परिचय देती है उसी तरह शक्ति ही ब्रह्मतत्त्वका बोध कराती है। —श्रीस्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज, अयोध्या

कुदरगढ़का देवीपीठ

(श्रीसमरबहादुरसिंह देव, एडवोकेट)

सरगुजा जिलेके कुदरगढ़ ग्राममें दो हजार फुट ऊँचे पहाड़पर 'कुदरगढ़ देवी'का पीठ है, जो आदिवासियोंकी शक्ति-उपासनाकी प्रमुख स्थली है। यह स्थान सूरजपुर तहसीलके ओडगी विकासखण्डमें पड़ता है, जो घने जंगल और पहाड़ोंसे घिरा है। धाममें पहुँचनेके लिये पहाड़ काटकर सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। यहाँ 'कपिलधारा' नामक एक जल-प्रपात भी है।

यहाँके पुजारीको 'बैंगा' कहते हैं, जो आदिवासी 'चैरवा' जातिका होता है। भगवतीका पूजन-अर्चन आदिवासी प्रक्रियासे बलिदानादिपूर्वक होता है। नवरात्रमें कुछ आदिवासी अपनी जीभ, गाल, बाहु, हथेली आदिमें ३-४ फुट लोहेकी मोटी और नुकीली सलाख (बाना) भोंकते हैं। चमत्कार यह है कि उससे रक्त नहीं निकलता और न भोंके हुए स्थानपर घाव ही होता है। यहाँ तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने आदिके अनेक प्रयोग होते रहते हैं। यहाँ शारदीय और वासन्ती—दोनों नवरात्रोंमें दूर-दूरके और ग्रामीण-क्षेत्रोंसे लोग देवीके दर्शनार्थ आते हैं।

आदिवासी जातियोंमें प्रचलित शक्तिपूजा

(श्रीकीर्तिकुमारजी त्रिपाठी)

विन्ध्यकी धरती तपोभूमिके रूपमें आदिकालसे विख्यात है। दण्डकारण्य, चित्रकूट, अगस्त्याश्रम, रेवातटको साक्षात् भगवान् राम, कृष्ण, परशुरामने तथा अनेक ऋषि-मुनियोंने पवित्र किया है। बाणभट्ट-जैसे प्रख्यात संस्कृत-गद्यकारकी काव्य-साधनाका क्षेत्र विन्ध्य-वसुन्धरा ही है। स्वर्णवती नदीपर कार्यान्वित की जानेवाली बाणसागर-योजना गद्यकार बाणभट्टकी* स्मृतिको साकार करती है। देवलोक-जैसे पवित्र स्थलपर आज भी विराट् जनसमूह मकर-संक्रान्तिके अवसरपर उमड़ पड़ता है। बाणभट्टकी कादम्बरीकी रसानुभूति आज भी जनमानसके हृदय-पटलपर अङ्कित है। स्वर्णवतीकी स्वर्णमयी लहरोंमें आज भी बाणभट्टकी कीर्ति चमकती हुई देखी जा सकती है। सिकताकण प्रातःकालीन अरुणिम किरणोंसे जब मिलते हैं, तब स्वर्णवती अपने नामको साकार करती है। इस सिकताकीर्ण अञ्चलमें शहडोल—शाही विरासतका प्रतीक है। बान्धवगढ़ एवं संजय-अभयारण्य-क्षेत्रोंमें आज भी प्राचीनतम वैभव सँजोया हुआ है। वन्य-प्राणियोंकी निवासस्थली, साल-वृक्षोंकी पताकाएँ, सिंह-गर्जना एवं आदिवासियोंका आमोदभरा जीवन इस क्षेत्रकी विशेषताएँ हैं।

जिला 'सीधी'को जिसका प्रारम्भिक नाम 'सिद्धि' था, आज अपभ्रंशसे शुद्ध करके सीधी कर दिया गया है। बीहड़ वन-क्षेत्रमें सालोंके वृक्ष आज भी इस बातको सूचित करते हैं कि यह क्षेत्र अपने अतीत किसी-न-किसी समयमें उच्चतम शिखरपर पहुँचा हुआ था। बीहड़ वनस्थली होनेके कारण साधनाकी तन्मयता और सिद्धि प्राप्त करनेके लिये यह क्षेत्र अत्यधिक उपयुक्त था। प्रशासनकी दृष्टिसे गोपद जनपद बनास, देवसर, सिंगरौली, मझौली, कुसुमी, चितरंगी एवं सुहावल सात तहसीलोंमें बँटा हुआ है तथा भू-रचनाकी दृष्टिसे कैमूर-पर्वत श्रेणी, सोन नदीकी घाटी, मडवास तथा मझौलीका पठार, देवसरकी पहाड़ियाँ और सिंगरौलीके मैदान हैं।

* सर्वमान्यसिद्धान्त यही है कि बाण शोणके पूर्व प्रीतिकूटके निवासी थे। यह आरा-पटनासे ३५ कि० मी० दक्षिण है।

सोन, बनास एवं महान इस क्षेत्रकी प्रमुख नदियाँ हैं। कुल क्षेत्रफलके आधेके लगभग ४३७९ वर्ग किलोमीटर वनक्षेत्र है । इन वनक्षेत्रोंमें सफेद शेर, चीतल, नीलगाय तथा बगदरा एवं कोरावलके जंगलोंमें कृष्णसार मृग पाये जाते हैं। यहाँ हिंदुओंमें कोल, गोड़, बैगा, पनिका, खेरवार, अगरिया, ब्यार आदिवासी जातियाँ घने जंगलोंमें निवास करती हैं।

इस तरह वन्य प्राणियोंकी तरह वन्य जीवन ही व्यतीत करते हुए ये वनवासी मदिराकी मस्तीमें दिन-रात झूमते हुए भी अपनी मान्यता और परम्पराके अनुसार कुलदेवी और देवताओंकी अपने ही ढंगसे पूजा करते हैं; करतार, भैंसासुर, बमउट, बवीर, कलुआ, करतार-जैसे देवताओंके साथ ही काली शारदा, कलकत्तेकी काली, विन्ध्यवासिनी-जैसी शक्तियों तथा अन्य देवी-देवताओंकी उपासना भी करते हैं; प्रतिवर्ष नवरात्रके समय व्रत, होम, पूजन करते हैं; चैत्र रामनवमीके समय जौ बोते हैं; प्रतिदिन भक्तलोग गीत तथा अपने लोकगीत गाते हैं; देवताओंके स्थानमें जाते हैं। जौका विशेष उत्सव मनाते हैं; सब लोग मिलकर काली और खप्पड़ खेलते हैं तथा अन्तिम दिन पासके तालाब या नदीमें पूजित प्रतिमाएँ विसर्जित कर देते हैं।

मथुरामें शक्ति-उपासनाकी परम्परा

(पं० श्रीहरिहरजी शास्त्री, चतुर्वेदी, तान्त्रिकरत्न)

भारतमें शक्ति-उपासनाकी परम्परा प्राचीन कालसे चली आ रही है। पुरातत्त्वके आधारपर इतिहासकारोंने इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मथुरा-मण्डलके सम्प्रदायोंके इतिहासका अध्ययन इस दृष्टिसे बड़े महत्त्वका है; क्योंकि कभी वैष्णव-भक्ति-आन्दोलनका केन्द्र होनेके कारण मथुराने सम्पूर्ण भारतवर्षको जो प्रकाश दिया, उसने विश्वके इतिहासकारोंकी दृष्टिको इस दिशामें बरबस आकृष्ट किया है। इसके अतिरिक्त मथुरा व्रजके चौरासी कोसकी प्रसिद्धि एक वैष्णव-तीर्थके रूपमें है। साथ ही दीर्घकालसे भूमिमें दबा हुआ पुरातात्त्विक वैभव जब इतिहासकारोंकी दृष्टिमें आया, तब यहाँके इतिहासमें यक्ष, नाग, लकुलीश, शैव, नाथ एवं शक्ति-उपासनाओंकी परम्पराका ज्ञान हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि मथुरा—व्रज-संस्कृति और साहित्यका पुनरुत्थान वैष्णव-आचार्योंने ही किया, अतः मथुरा अत्यन्त प्राचीन कालसे अपनी विशेषताके लिये सम्पूर्ण भारतवर्षमें विख्यात रहा है।

भगवान् श्रीकृष्णके कालमें यहाँ शक्तिकी उपासना प्रचलित थी। स्वयं श्रीकृष्ण और नन्दबाबाने अम्बिकावन (मथुराके वर्तमान महाविद्या-स्थान)में देवीकी अभ्यर्थना, उपासना की थी। श्रीमद्भागवतमें कथन है—

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम्॥
तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम्॥
(श्रीमद्भा० १० । ३४ । १-२)

श्रीषोडशी महाविद्याके आदि-उपासकोंमेंसे क्रोधभट्टारक दुर्वासाकी यह कभी तपःस्थली रही थी। यहाँ वेदव्यासने भी भुवनेश्वरीकी उपासना की थी। पौराणिक आख्यानोंके अनुसार अन्यान्य ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंने मथुरामें योगमाया, गायत्री, कुमुदा, चण्डिका, अम्बिका, विमला, भद्रकाली, एकानंशा, रोहिणी, रेवती, वसुमती, शीतला, सुरभी, गौरी, कल्याणी, चर्चिका, कात्यायनी, शाकम्भरी, हिरण्याक्षी, स्वाहा, स्वधा और सरस्वतीकी उपासना की थी।

भारतवर्षमें सरस्वतीकी प्राचीनतम प्रतिमा मथुरासे ही प्राप्त हुई। मथुरामें उत्खननसे प्राप्त प्राचीनतम मृण्मूर्ति मातृकादेवीकी है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार हेमन्तऋतुमें व्रजबालाओंने कात्यायनीकी उपासना की थी। इस महापुराणमें यादवोंद्वारा दुर्गा-उपासना तथा रुक्मिणीद्वारा शिवाम्बा-उपासनाकी कथाके साथ स्थान-स्थानपर **'योगमायामुपाश्रितः'** कहकर शक्ति-उपासनाकी ओर संकेत किया गया है। महाभारतके अनुसार अर्जुनने युधिष्ठिर आदिके साथ एकानंशाकी आराधना की थी। भीष्मपर्वके प्रसङ्गमें दुर्योधनकी सेनाको युद्ध-हेतु समुत्थित देखकर स्वयं श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था—

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय॥

मथुरामें दुर्गाके अनेक प्राचीन मन्दिर हैं। चण्डी, पातालेश्वरी (भूतेश्वर शिव-मन्दिरके समीप), महाविद्या, वगला, सिद्धेश्वरी, एकानंशा, पथवारी, मसानी, योगमाया, चामुण्डा एवं गायत्रीटीला (प्राचीन) शक्ति-उपासकोंकी साधना-भूमि हैं। देवीभागवतमें जहाँ भगवान् वेदव्यासने भारतवर्षके एक सौ आठ शक्ति-केन्द्रोंकी गणना की है, वहाँ मथुरामें देवपीठका होना स्वीकार किया है। 'तन्त्र-चूडामणि'के अनुसार इक्यावन महापीठोंमें मथुरामें मौलिशक्तिपीठ माना गया है। इस पीठका सम्बन्ध भगवतीके केशपाशसे है। देवीभागवतके अनुसार जब भगवान् शंकर सतीके शवको पीठपर रखकर ले जा रहे थे, तब यहाँ उनके केशपाशका पतन हुआ था। यह स्थान 'चामुण्डा' कहलाता है। कहते हैं, यह स्थान महर्षि शाण्डिल्यकी साधनाभूमि है। निकटमें उच्छिष्ट-गणपतिका मन्दिर है। तन्त्र-मतके उपासक चामुण्डाजीको दस महाविद्याओंमें 'छिन्नमस्ता'का स्वरूप बतलाते हैं। व्रजमें चामड़ और पथवारीकी पूजा बहुप्रचलित है। शीतलामाता, मँगनीमाताके मन्दिर और उनकी प्रचलित लोकपूजा-पद्धति लोकमें दीर्घकालीन शाक्त-उपासना-परम्पराके प्रमाण हैं। महाविद्याजीका वर्तमान मन्दिर महाराष्ट्री उपासकोंके द्वारा बनवाया हुआ है। परंतु यहाँ शक्ति-प्रतिमाकी स्थापना पाण्डवोंने की थी। इस स्थानका पुनरुद्धार श्रीशीलचन्द्रजी महाराजने कराया। महाविद्या-मन्दिरमें वगलामहाविद्या एवं एक अन्य प्राचीन प्रतिमाके बीचमें नीलतारा सरस्वती विराज रही हैं। इन महाविद्याओंके विग्रहका ध्यान यों हैं—

घण्टां शिरः शूलमसिं कराग्रैः
सम्बिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम्।
प्रमथ्नतीं पादतले पशुं तां
भजे मुदं नीलसरस्वतीशाम्॥

और यह वगलाकी मुद्रा है—

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन
पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥

लोकश्रुति है कि इसी स्थानपर नन्दबाबाने जगदम्बाका अर्चन किया था। इस स्थानपर शक्ति-उपासकोंका विशेष आकर्षण रहा है। महान् उपासक श्रीसाम्राज्य दीक्षित यहीं आकर रहे थे। यहाँ समयाचार-परम्पराके श्रीविद्याके मन्दिर थे, इनके ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त होते हैं। वाराहपुराणके अनुसार इसी क्षेत्रमें प्राचीनकालमें एकानंशा-मन्दिर था।

एकानंशां ततो देवीं यशोदां देवकीं तथा।
महाविद्येश्वरीं चार्च्य मुच्यते ब्रह्महत्यया॥

व्रजमें एकानंशाकी पूजाकी प्राचीन परम्परा है। मथुरा यादवोंका नगर था, एकानंशा यादवोंकी कुलदेवी थीं। पौराणिक साहित्यसे स्पष्ट हो जाता है कि एकानंशा श्रीकृष्णभगिनी महामाया अथवा योगमाया हैं, जो विन्ध्येश्वरी-रूपमें एवं यादवोंकी कुलदेवीरूपमें भारतमें उपास्य

रही हैं। मथुरा एवं आस-पासकी खुदाईमें एकानंशाकी अनेक प्रतिमाएँ मिली हैं।

जैनदेवी-चक्रेश्वरी, अम्बिका, बौद्धदेवी-उग्रनीलतारा, लक्ष्मी (विशेषकर गजलक्ष्मी), महिषासुर-मर्दिनी (चतुर्भुजा तथा षड्भुजा), वसुधारा, षष्ठी, सप्तमातृका आदिकी प्राचीन प्रतिमाएँ पुरातत्त्व-संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। सौंखकी खुदाईमें महिषासुरमर्दिनी (ई० पू० प्रथम शती) की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। ये मथुरामें शक्ति-उपासनाके पुरातात्त्विक प्रमाण हैं।

इतना ही नहीं, व्रजमें सुरभी, रोहिणी, रेवती, गौरी, यशोदा, चन्द्रभागा, ललिता एवं राधाकुण्ड आदिके व्यापक महत्त्वके साथ अड़ींगके पास मुखरगोपकी कुलदेवी मुखराई, गिरिराज शिलापर मनसादेवी, जतीपुरामें पार्वती-गणेश, केदारनाथ शिवके अतिरिक्त गौरीमाया, कामवनमें विमला, वसुमती, शीतला, मनसा, वृन्दा, पथवारी, और गोमती (कामेश्वर शिव) भी हैं। इससे 'शिव-कामेश्वराङ्कस्था' की ओर बरबस ध्यान आकृष्ट हो जाता है। बरसानेमें श्रीजीका मन्दिर, बरसानेके पास नौबारी-चौबारी देवी, साँचौली ग्राममें साँचौलीदेवी, संकेतमें यन्त्र-शिला एवं संकेतदेवी, सेईगाँवमें साँवरीदेवी (यहाँ नवरात्रमें भव्य महोत्सव होता है), लोहवनमें आनन्दी-वन्दीदेवी (गर्गाचार्यद्वारा पूजित होनेकी जनश्रुति है), गिरिधरपुरमें महिषमर्दिनी, मथुरामें कैला (गायत्री टीलेपर), गायत्री, मथुरादेवी एवं माथुर सामवेदियोंकी कुलदेवी चर्चिकापीठ, गोपालसुन्दरीके अतिरिक्त व्रजके आस-पासके क्षेत्रोंमें संख्यातीत शक्ति-मन्दिर हैं। गोरखनाथ-सम्प्रदायवर्ती कालभैरवके मन्दिर, तन्त्रोपासनानुकूल ध्यानोंके अनुसार गणपति-मन्दिर आदि भी शक्ति-उपासनाकी विविध विधियोंका व्रजमें अस्तित्व बतलाते हैं।

वृन्दावन शक्ति-उपासनाका धाम है। यह बात दूसरी है कि उस उपासनाका वैष्णवी-साधनाके भक्ति-मार्गके साथ इतना तादात्म्य है कि उसे बिना गहरेमें पैठे समझा नहीं जा सकता। यहाँ भगवती पराप्रकृति राधाके उपासकोंकी महती परम्परा है।

वैष्णव-सम्प्रदायोंपर यहाँकी शक्ति-साधनाका विशेष प्रभाव पड़ा है। 'गोपालसुन्दरी' वैष्णव और शक्ति उपासनाके सामञ्जस्यकी प्रतीक हैं। यहाँके लोकमानसमें शक्ति-उपासनाका मूल बहुत गहरा है। बैमाता (विधाताका देवीरूप)से प्रारम्भ होकर षष्ठी, मातृका आदिकी माता, कुमारी-पूजन, गौरी-पूजन, अहोई माँकी उपासना लोक-जीवनका अङ्ग है।

वर्तमानमें मथुरा और उसके आस-पास शक्ति-मन्दिरोंकी संख्याका बढ़ते रहना भी यहाँ शक्ति-उपासनाकी परम्पराका ही प्रतिफल है। कचहरी रोडपर कालीबाड़ी बड़ा सुन्दर स्थान है। यह बंगदेशीय उपासकोंद्वारा निर्मित है। भूतेश्वरके पास कंकाली-मन्दिर बहुत प्राचीन है। यमुना-पार 'राजराजेश्वरी मन्दिरम्' अपने ढंगका अनोखा मन्दिर है। भगवती राजराजेश्वरी श्रीविद्याका ऐसा श्रीविग्रह उत्तर भारतमें अन्यत्र नहीं है। 'बगला'के ध्यानपर विरचित प्रतिमाके साथ ही यहाँ अद्भुत श्रीयन्त्र है, जो संगीत-सम्राट् गणेशीलालजीका उपास्य है। मथुरामें दस महाविद्याओंकी प्रतिमाएँ भी विद्यमान थीं। चौबे गणेशी-लालजी ताराके उपासक थे। उनका उपास्य-विग्रह दशभुजी गणेश-मन्दिरके सामने गलीमें है। कैलासयन्त्र, चतुरस्रयन्त्र, मेरुपृष्ठयन्त्र मथुरामें अनेक उपासकोंके हृदयहार हैं। विश्राम-घाटपर यमुना-धर्मराज-मन्दिरमें अद्भुत कैलासयन्त्र है। गतश्रमटीलापर बौआजी महाराजके घरानेमें, रतनकुण्डमें बटुकनाथजी महाराजके घरानेमें प्राचीन श्रीयन्त्र हैं। इनकी उपासना समयाचार-क्रममें होती है। नया बाजारमें महालक्ष्मीका मन्दिर तो बहुत ही सुन्दर और दर्शनीय है।

भगवती षष्ठी

(डॉ० श्रीनीलकण्ठ पुरुषोत्तमजी जोशी)

हिंदूमात्रके घरमें शिशुकी उत्पत्तिके पाँचवें और छठे दिन सायंकाल जो विशेष पूजनका आयोजन किया जाता है, उसे बोल-चालकी भाषामें 'पाँचवीं' और 'छठी' की पूजा कहते हैं। इन दो पूजाओंके द्वारा कतिपय देवियोंका आराधन इस आशयसे किया जाता है कि नवजात शिशुका सब प्रकारसे संरक्षण और मङ्गल हो। प्रचलित पूजन-विधिमें जिनका प्रमुख रूपसे नामोच्चार होता है, वे हैं—षष्ठी, जीवन्तिका, जन्मका और भगवती आदि। इनके साथमें स्कन्द और विनायकका भी आवाहन किया जाता है। षष्ठी देवीको महाषष्ठी भी कहा गया है। 'पञ्चमी' एवं 'षष्ठी'के पूजनमें—कुछ परिवारोंमें मामाकी ओरसे आठवींका भी पूजन होता है—गृह्यसूत्रमें वर्णित जातकर्म-संस्कारमें इसका महत्त्व नहीं है। म० म० पाण्डुरङ्ग वामन काणेके मतानुसार 'देवीपुराण'के समयसे षष्ठी और अन्य मातृकाओंका पूजन चल रहा है, किंतु पुराणोंका समय अति प्राचीन होनेपर विद्वानोंमें विवादका विषय रहा है। तो भी इसमें संदेह नहीं कि साहित्य और कला दोनों क्षेत्रोंमें कम-से-कम दो हजार वर्षोंसे तो षष्ठी देवी और उनका पूजन सुप्रतिष्ठित है। प्रस्तुत लेखमें हम इसी दृष्टिसे षष्ठी देवीकी वाङ्मयी मूर्तिका उल्लेख और प्रतिमाओंकी चर्चा करेंगे।

वाल्मीकीय रामायणमें षष्ठी देवीका उल्लेख नहीं मिलता, पर महाभारतमें स्कन्द (कार्तिकेय)की पत्नीके रूपमें देवसेनाका वर्णन मिलता है। वहाँ देवसेनाका एक नाम षष्ठी भी बतलाया गया है। यही सूचना हमें ब्रह्मवैवर्तपुराण और देवीभागवतसे भी मिलती है। वहाँ प्रसङ्ग मनसा, षष्ठी और मङ्गलचण्डिकाके आख्यानोंका है। दोनों पुराणोंमें ये सभी अध्याय लगभग समान हैं। स्पष्टतः दोनोंने संकलनके समय इन अध्यायोंको किसी अन्य प्राचीन स्रोतसे समाविष्ट किया है। यहाँ षष्ठीके विषयमें कहा गया है कि देवसेना, जो विश्वमें षष्ठी नामसे विख्यात हुई, मातृकाओंकी प्रमुख बनी। वह ब्रह्माकी मानसपुत्री थी और उसे स्कन्दको पत्नीरूपमें दिया गया। यहींपर षष्ठी नामकी व्याख्या भी की गयी है। जैसे—प्रकृतिकी षष्ठांशरूपिणी होनेके कारण यह षष्ठी कहलाती है। स्पष्ट है कि इन पुराणोंमें, जो वायु, मत्स्य, विष्णु आदिके समान बहुत प्राचीन नहीं माने जाते, देवसेनाको षष्ठी समझने-वाली अथ च उसे स्कन्दपत्नी स्वीकार करनेवाली महाभारतके वनपर्वमें उल्लिखित परम्परा गूँज रही है। इन पुराणोंमें षष्ठीको 'बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी,' 'बालक प्रदान करनेवाली (बालदा)', उनकी 'धात्री', उनका संरक्षण करनेवाली और सदैव उनके पास रहनेवाली (सिद्धयोगिनी) माना गया है। यह भी उल्लिखित है कि षष्ठीका वर्ण श्वेतचम्पक-पुष्पके समान है तथा वह 'सुस्थिर-यौवना' रत्नाभूषणोंसे सुशोभित, 'कृपामयी' एवं 'भक्तानुग्रहकातरा' है। भगवती षष्ठीकी कृपासे ही राजा प्रियव्रतका मृतपुत्र जीवित हो गया था, तभीसे बालकके जन्मके बाद सूतिकागृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा आगे भी बालकके अन्नप्राशन एवं शुभकार्योंके समय षष्ठी-पूजनका विधान बतलाया गया है। पूजाका माध्यम शालग्रामशिला, वटवृक्षका मूल, घट या दीवालपर लिखी आकृति (पुत्तलिका) कुछ भी हो सकता है। 'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा'—इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप तथा राजा प्रियव्रतद्वारा की गयी स्तुतिका पाठ षष्ठी-पूजनके मुख्य अंश बतलाये गये हैं।

षष्ठीविषयक पुराणोंकी इस परम्पराके अतिरिक्त भारतीय वाङ्मयमें एक दूसरी आर्षपरम्पराके भी दर्शन

होते हैं। यह परम्परा आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें सुरक्षित है। आचार्य वृद्ध जीवकद्वारा निर्मित काश्यपसंहिताके चिकित्साध्यायमें तथा देवताकल्पमें षष्ठी या रेवतीका विस्तृत वर्णन मिलता है। काश्यपसंहिता, जो आज हमें खण्डितरूपमें ही उपलब्ध है, कुषाणकाल (ईसवी सन्‌की पहलीसे तीसरी शती) की कृति मानी जाती है। इसमें बतलाया गया है कि रेवतीने अपनी उग्र तपस्यासे स्कन्दको प्रसन्न कर लिया। स्कन्दने उसे अपनी बहन माना एवं तीन भाई (सम्भवतः गुह, कुमार और विशाख) तथा नन्दिकेश्वरके साथ छठाँ स्थान अथ च षष्ठी यह नामश्री प्रदान किया और अपने ही समान प्रभावशालिनी होनेका वर दिया। इसी प्रसङ्गमें

षष्ठीदेवीकी एक प्राप्त प्रतिमाका छाया चित्र

भाइयोंके मध्यमें षष्ठी देवीके पूजनकी बात भी बतलायी गयी है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि षष्ठीके छः मुख हैं और वे 'ललिता', 'वरदा' तथा कामरूपिणी हैं। उनकी तिथि षष्ठी है, अतएव लोकमें प्रतिपक्षकी षष्ठी (पक्षषष्ठी) को तथा प्रसवके छठे दिन (सूतिका षष्ठीको) इस देवीके पूजनका विधान है। यहाँ इनके कुछ नाम भी गिनाये गये हैं। जैसे—षष्ठी, वारुणी, ब्राह्मी, कुमारी, बहुपुत्रिका, शुष्का, यमिका, भरणी, मुखमण्डिका, माता, शीतवती, कण्डू, पूतना, निरुचिका, रोदनी, भूतमाता, लोकमाता, शरण्या और पुण्यकीर्ति। इसी ग्रन्थके रेवतीकल्पमें कुमार तथा विशाखके बीचमें षष्ठीके पूजनका विधान है। इसमें इनकी प्रतिमाएँ सोने, चाँदी या खस और दर्भकी भी बनानेकी बात है।

आयुर्वेदके अति प्राचीन विद्वान् आचार्य सुश्रुतने अपने ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके उत्तरतन्त्रमें रेवतीका बालग्रहोंके रूपमें उल्लेख किया है। कुल बालग्रह नौ हैं, जिनमें स्कन्द, स्कन्दापस्मार और नैगमेष—ये पुरुषविग्रह हैं और शेष छः अर्थात् रेवती, शकुनि, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना और मुखमण्डिका—स्त्रीविग्रह हैं। काश्यपसंहितामें गिनाये गये षष्ठीके नामोंमें—जिनका अभी हमने उल्लेख किया है—स्पष्टतः रेवती, शीतपूतना (शीतवती), पूतना और मुखमण्डिका समाविष्ट हैं। रेवतीकी एक सेविका सखीके रूपमें बहुपुत्रिकाका भी उल्लेख है। सुश्रुताचार्यने सभी बालग्रहोंका विस्तृत वर्णन किया है। रेवतीको—दूसरे शब्दोंमें षष्ठीको—श्यामा अर्थात् षोडशी, भाँति-भाँतिके वस्त्रों और अनुलेपनोंको धारण करनेवाली तथा चञ्चल कुण्डलोंको पहननेवाली कहा गया है।

प्राचीन ग्रन्थोंके वर्णनोंसे स्पष्ट होता है कि षष्ठी या रेवती शिशुओंके संरक्षण एवं संवर्धनसे सम्बन्धित प्रसिद्ध देवी थीं। स्कन्द या कार्तिकेयसे उनका निकट सम्बन्ध था। उन्हें ललिता, वरदा, कामरूपिणी एवं सुन्दर वस्त्र तथा कुण्डलादि आभूषणोंको धारण करनेवाली परिकल्पित किया गया है। प्रतिमाओंके निर्माणमें उन्हें 'आत्मभ्यगता' तथा कुमार और विशाखके बीचमें स्थित बनाया जाता था। प्रतिमा-निर्माणके द्रव्योंके रूपमें सोने, आदिका उल्लेख ऊपर कर दिया गया है।

वाग्भटके अष्टाङ्गहृदय (ईसाकी छठी शती) माधवकारका माधवनिदान (ईसाकी ७ वीं शती) आदिमें बालग्रहोंके उल्लेख तो हैं, उनकी संख्यामें कहीं वृद्धि भी हुई है, पर उनके प्रतिमा-विज्ञानके विषयमें ये तथा दूसरे भी मौन हैं। यही बात हमें साहित्यके अन्य क्षेत्रमें किंचित् भिन्नरूपसे दिखलायी पड़ती है । महाभारतके वनपर्वमें जिसमें निश्चितरूपसे प्राचीन सामग्री समाविष्ट है—स्कन्द और षष्ठी या देवसेनाका उल्लेख है, यद्यपि यहाँ उन्हें स्कन्दकी पत्नी बतलाया गया है । मत्स्यादि अति प्राचीन पुराण षष्ठीके विषयमें लगभग मौन हैं। अग्निपुराण बालग्रहोंका उल्लेख तो करता है, पर उनकी शान्तिके लिये चामुण्डाके ही पूजनका विधान करता है । बादके दो पुराण—ब्रह्मवैवर्त और देवीभागवत—समान अध्यायोंमें षष्ठीपूजनकी पुरानी परम्पराको नये रूपमें स्थापित करते हैं, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

अबतक हमने साहित्यिक परम्पराके आधारपर षष्ठी और उसके पूजनकी प्राचीनताको आँकनेका प्रयास किया है । अब यह भी देखना उचित होगा कि भारतीय कला-कृतियोंसे इस विषयपर क्या प्रकाश पड़ता है । इतना तो हम जान चुके हैं कि काश्यपसंहिताके अनुसार कुमार और विशाख–इन भाइयोंके बीचमें (भ्रातृमध्यगता) षष्ठी देवीकी सोने, चाँदी या दर्भ और खसकी प्रतिमाएँ पूजनार्थ बनती थीं । पुराणोंके अनुसार दीवालोंपर भी उसे लिखा जाता था तथा घट एवं शालग्राम आदि प्रतीकोंके द्वारा भी वह पूजी जाती थी । संक्षेपमें मूर्तिकलामें षष्ठीकी खोजके लिये प्राचीन भारतकी एवं कलाकृतियोंका आलोडन फलदायी हो सकता है ।

बुन्देलखण्डमें खंगार राजाओंद्वारा शक्ति-उपासनाका प्रसार

(श्रीमुरलीमनोहरसिंह राय खंगार)

प्रस्तुत विषय खंगार राजाओंसे सम्बन्धित होनेके कारण प्रथम उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। भारतवर्षके मध्यस्थित वह भूभाग, जिसे आजकल 'बुन्देलखण्ड' कहते हैं, पहले 'जैजाक भुक्ति' अथवा 'जुझौति'के नामसे प्रसिद्ध था । नवीं शताब्दीके आरम्भसे इसपर चन्देल-वंशका आधिपत्य रहा । सन् ११८२ई०-में दिल्ली-सम्राट् पृथ्वीराज चौहानने अन्तिम चन्देल राजा परिमालको पराजितकर चन्देल-सत्ताका अन्त कर दिया और इस विजित राज्यपर महाराजा खेतसिंहको शासक नियुक्त किया । इस तरह यह क्षेत्र सन् ११८२ ई०से खंगार-शासन-सत्ताके अधिकारमें आया और सन् १३४७ ई० तक (१६५ वर्षतक) उन्हींके अधिकारमें रहा ।

महाराजा खेतसिंह खंगार जूनागढ़के राजा सोमावंशीय जादौन क्षत्रिय थे । ये बड़े वीर, प्रशासन-कुशल, युद्ध-विद्या-विशारद और सफल विजेता थे। इन्होंने 'गढ़ कुण्डार'को अपनी राजधानी बनाया और वहाँ एक सुदृढ़ दुर्गका निर्माण कराया, जो आज भी वर्तमान है । उन्होंने अपने इस शासित क्षेत्रका नाम 'जुझौति' रखा । जुझौति—अर्थात् समरभूमिमें अपने आदर्शों, देश-धर्मकी स्वतन्त्रता तथा हिंदुत्वके रक्षार्थ बलिदान होनेवाले वीरोंकी भूमि । साथ ही खंग (खड्ग) तलवारको अपना राष्ट्रिय-चिह्न रखा । खंग (खडग)में ही उन्होंने देवीदुर्गाका रूप देखा और अपने लाल रंगके राष्ट्रिय ध्वजमें उन्हें राष्ट्रिय-चिह्नके रूपमें प्रतिष्ठित कर वह शक्तिध्वज अपने सभी दुर्गोंपर फहराया ।

बारहवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें भारतपर मुसलमानों-के जोरदार आक्रमण होने लगे थे । सन् ११९३ ई०में मुहम्मदगोरीने पृथ्वीराज चौहानको

परास्त कर दिल्लीपर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी और मुसलमान शासक एक-एक करके हिंदू-राज्योंपर अधिकार करते जा रहे थे। हिंदू राजाओंमें आपसमें फूट और वैर होनेके कारण वे मुसलमानोंका सामना नहीं कर पाते थे। हिंदुओंपर घोर अत्याचार होने लगे थे। मन्दिर ढहाये जाने लगे थे, मूर्तियाँ तोड़ी जाने लगी थीं, स्त्रियों और कन्याओंका अपहरण हो रहा था। तलवारकी नोकपर धर्म-परिवर्तन किया जा रहा था। हिंदूधर्म और राष्ट्र खतरेमें थे। ऐसे संकटाकीर्ण समयमें राष्ट्रको मुसलमानोंकी तलवारसे एवं हिंदूधर्मको इस्लामके प्रभावसे बचानेके लिये और अपनी मातृभूमि (जुझौति भूमि) पर विदेशी शासनको रोकनेके लिये महाराजा खेतसिंहने एक 'जुझारु' संगठनकी स्थापना की, जिसका नाम 'खंगार-सङ्घ' रखा।

जो योद्धा खंग (तलवार) की आराधना करे—उसे धारण करे, वही सच्चा 'खंगार'[1] है। इस तरह यह खंग (तलवार) धारण करनेवाले वीर योद्धाओंका एक संगठन बन गया। इस सङ्घमें सभी कुलीन क्षत्रियों और वीर एवं विद्वान् ब्राह्मणोंको दीक्षित किया गया। महाराज खेतसिंहने अपने राज्यको कई भागोंमें विभाजित कर उन भागोंके दुर्गोंपर इन्हीं सङ्घवालोंको 'दुर्गपाल' नियुक्त किया। इस प्रकार कालान्तरमें यह बहुत ही शक्तिशाली संगठन बन गया।

कालकादेवीकी स्थापना

खंगार-सङ्घकी स्थापनाके बाद महाराजा खेतसिंहने अपनी सैनिक-शक्तिपर ध्यान दिया। उन्होंने देखा कि राज्यकी जनता अपने राजाओं और सेनाओंको सक्रिय सहयोग नहीं दे रही है। जनताकी यह निश्चित धारणा हो गयी थी कि युद्ध करना सभीका काम नहीं है, उसका उत्तरदायित्व एकमात्र क्षत्रिय-जातिपर ही है। इसलिये युद्धमें केवल क्षत्रिय ही भाग लिया करते थे। शेष जनता युद्धमें भाग लेने और मरनेसे बहुत डरती थी। अतः इस भावनाका निराकरण करनेके लिये महाराजा खेतसिंहने घर-घरमें कालकादेवीकी स्थापना करायी और प्रत्येक गाँवमें कालकादेवीके मन्दिरोंका निर्माण कराया। कालकादेवी खंगार-राजवंशकी कुलदेवी हैं और इनकी स्थापना लोगोंको मृत्यु-भयसे रहित करनेके उद्देश्यसे तथा शौर्य और साहस बढ़ानेके लिये की गयी थी।

इस तरह हम देखते हैं कि महाराजा खेतसिंहद्वारा 'कालकादेवी'की स्थापनासे जुझौति (बुन्देलखण्ड) के निवासियोंमें शौर्य तथा निर्भयताकी ज्योति जली। लोग युद्धमें भाग लेने लगे और कालकादेवीकी शक्ति-देवीके नामपर पूजा-अर्चना करने लगे। कालकादेवीकी पूजा-विधिमें कई साहसिक पद्धतियाँ प्रचलित की गयीं।

शक्तिका प्रतीक लाल रंगका झंडा—कालकादेवी खंगारोंकी कुलदेवी थीं। उनके मठ-मन्दिरोंपर लाल रंगकी पताका आज भी पूजाके अवसरपर चढ़ायी जाती है। यह परम्परा आज भी बुन्देलखण्डमें प्रचलित है।

केवल सङ्घ बना देनेसे, किलोंपर दुर्गपालोंको नियुक्त करनेमात्रसे ही उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती, यह बात महाराजा खेतसिंह भलीभाँति जानते थे। उन्होंने सोचा—'अपने देश जुझौति (बुन्देलखण्ड) के रक्षार्थ निरन्तर सजग प्रजा, आत्मसमर्पण करनेवाले रण-बाँकुरे योद्धाओंकी आवश्यकता होगी।' अतः उन्होंने प्रजाको नये संस्कार दिये, जो निम्न लिखित हैं।

बीजा-सेन देवीकी स्थापना

बीजा=सैनिक, सेन=सेना=बीजासेन। सेनाको सैनिक प्रदान करनेवाली रणदेवी। यह खंगार राजवंशकी रणदेवी थीं। प्रत्येक गाँवमें बीजासेन देवीकी स्थापना

१. वास्तवमें 'खंगार' संस्कृतके 'खड्गारावक' शब्दका तद्भव शब्द है।

की गयी । बीजासेन देवीके मन्दिरसे ही युद्ध-संचालनका कार्य होता था । इसी मन्दिरमें अस्त्र-शस्त्रका भंडार, पताका, रण-तूर्य आदि युद्धकी सामग्री रखी जाती थी । यहीं घोड़ों और सैनिकोंकी सूचियाँ रखी जाती थीं । कितने सैनिक युद्धमें गये, माँग आनेपर किन-किन सैनिकोंको मोर्चेपर जाना होगा आदि समस्त निर्देश-तालिका यहींसे बनायी जाती थी । जनता यहाँसे दिये गये निर्देशोंको पूर्णरूपसे पालन करती थी । कुँआरी लड़कियाँ भी बीजासेन देवीकी उपासना करती थीं । विवाहके समय वधूको बीजासेन देवीका यन्त्र (तावीज) अवश्य पहनाया जाता था और आशा की जाती थी कि यह वधू माता बननेपर राष्ट्रको अच्छे सैनिक देगी ।

पूजाके समय प्राकृतभाषाका यह मन्त्र कहा जाता था—

चाह माई, चाह माई, चाह माई ।
बाबाजूके घर कोई नाहि, कोई नाहि ॥

अर्थात्—हे बीजासेन देवी ! मेरी प्रार्थना है, मेरी यह इच्छा है कि हमारे पुत्र इतने वीर योद्धा हों कि वे बाबाजू (दूसरे पक्ष) अर्थात् शत्रुपक्षके घरोंमें एक भी शत्रुको बचने न दें और सभीका संहार कर दें ।

उस समय विवाहका मन्तव्य भोग-विलासके लिये नहीं, अपितु अच्छी शूर-वीर संतान पैदा करनेके लिये था ।

गजानन-माताकी स्थापना

महाराजा खेतसिंहने अश्व-सेनाके साथ-साथ गज-सेनाको भी बहुत महत्त्व दिया और अपनी सेनामें हाथियोंके नौ रेजीमेंट बनाये तथा गजानन-माता (गाजन-माता) अर्थात् गणेशजीकी माता पार्वतीजीकी स्थापना करके उन्हें राष्ट्रिय देवीके रूपमें प्रतिष्ठित किया । गढ़-कुण्डारके प्राङ्गणमें तथा कुण्डनकी टोरियापर गजानन-माताके मन्दिरोंके भग्नावशेष एवं माताकी खण्डित मूर्तियाँ आज भी देखनेको मिलती हैं । इन मूर्तियोंमें पार्वतीजीको रणदेवीके रूपमें हाथी और सिंहके साथ दर्शाया गया है । वे खंगार राजाओंकी राष्ट्रिय देवी होनेके कारण राजलक्ष्मी अथवा महालक्ष्मी भी कहलायीं । महालक्ष्मीके नामसे आज भी जुझौति (बुन्देलखण्ड) के घर-घरमें स्त्रियाँ आश्विन मासकी कृष्ण अष्टमीको व्रत रखकर महालक्ष्मी और हाथीका पूजन करती हैं ।

मिट्टीके हाथीपर गजगौरी देवीको युद्धरत बनाया जाता है । उनके साथ मिट्टीके कुछ घोड़े रहते हैं और निम्नलिखित पद्यको गाते हुए उनका पूजन किया जाता है—

आ मौति धा मौति रानी,
सौ हर बोल की एक कहानी
पोला पल, पत्तन गाँव, मरग सैन राजा
ब्रह्मन बरुआ कहैं कहानी
सौ हर बोल की एक कहानी
आ मौति, धा मौति रानी
हाथी पुजिओ ॥

आ मौति—आ+मौत+इति=आकर मृत्युका वरण करके जीवन समाप्त करो ।

धा मौति—धा+मौत+इति=दौड़कर मृत्युका वरण करके जीवन समाप्त करो ।

पोला=नाजुक, **पल**=क्षण, समय; **पत्तन**=पतन होना, **मरग**=मर गये, **सैन**=सेना । और राजा **ब्रह्मन बरुआ**=चितामें आग लगानेवाला ब्राह्मण ।

अर्थात्—एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे कहती है कि जौहर-व्रत सम्पन्न करानेवाले ब्राह्मणने एक कहानी बतलायी है कि जब राजा और सेना सभीको मार डाला गया और गाँवका भी पतन हो गया तो स्त्रियोंका सतीत्व खतरेमें पड़ गया । ऐसी विषम परिस्थितिमें अपने सतीत्वकी रक्षाहेतु हे रानियो ! आओ, जौहरकी चितामें कूदकर मृत्युका वरण करके अपने जीवनको समाप्त कर दो । इसपर रानियोंने (दौड़कर शीघ्रतासे) मौतका वरण कर अपने जीवनको समाप्त कर दिया । ऐसी घटनाएँ एक बार नहीं,

सैकड़ों वार हो चुकी हैं। सैकड़ों जौहर होनेकी यही कहानी है।

इस पूजनमें महिलाएँ उन पूर्वहुतात्मा वीर रमणियोंके लिये तर्पण करती हैं, जो जौहर व्रतमें वलिदान हो गयी थीं और प्रतिज्ञा करती हैं कि यदि ऐसा समय आयेगा तो हम भी जौहर करेंगी।

गाँव-गाँवमें सतीमाताके स्तम्भोंका निर्माण

भारतमें मुसलमानोंके आक्रमणके समय स्त्रियोंकी दशा बहुत ही अधिक शोचनीय हो गयी थी। वे सर्वथा अरक्षित थीं; क्योंकि आक्रमणकारी मुसलमान अपने साथ स्त्रियोंको तो लाते नहीं थे, अपने विजित प्रदेशोंसे स्त्रियों और कन्याओंका बलात् अपहरण करके अपने 'हरमों'में रख लेते और अधिक संख्या हो जानेपर बेंच देते थे। साधारण स्त्रियोंकी तो वात ही क्या, बड़े-बड़े राजघरानों और प्रतिष्ठित परिवारकी महिलाओंका भी सतीत्व और मर्यादा खतरेमें थी। अतः पराजयकी स्थितिमें हिंदू महिलाएँ मुसलमानोंके हाथों न पड़ सकें, इसके बचावके लिये महाराजा खेतसिंह खंगारने अपनी मातृभूमि जुझौति (बुन्देलखण्ड)में 'जौहर-व्रत'को अनिवार्य घोषित कर दिया था।

इस जौहर-व्रतके लिये हर गाँवमें एक अथवा एकसे अधिक स्थान चुन लिये जाते थे। यह स्थान किसी देव-स्थान, शिव तथा देवीके मन्दिरके पास चुने जाते थे और फिर वहाँ लगभग सात-आठ फुट ऊँचा, दो फुट चौड़ा पत्थरका एक स्तम्भ गाड़ दिया जाता था। उसके निकट इस स्तम्भपर नर-नारीकी जोड़ी, हाथ, सूर्य, चन्द्रमा आदि अङ्कित रहते थे और पासमें एक बड़ा-सा गहरा कुण्ड बना दिया जाता था। जब कभी किसी गाँवपर मुसलमानोंका आक्रमण होता था और हिंदुओंके हारकी सम्भावना दिखायी देने लगती थी तथा बचावका कोई साधन नहीं दीखता था, तब उस कुण्डमें अत्यधिक लकड़ियाँ डालकर आग लगा दी जाती थी और उस जलती आगमें कूदकर स्त्रियाँ अपना शरीर भस्म कर देती थीं।

उनकी मृत्युके वाद उनकी संतति मुसलमानोंके हाथ न पड़ पायें इसलिये 'जौहर' करनेके पहले वे उन्हें अग्नि-कुण्डमें फेंक देती थीं और शिवपूजन या देवी-पूजन करके 'जय हर हर', 'जय हर हर' कहती हुई चिता-कुण्डमें कूद पड़ती थीं। इसके वाद पुरुषवर्ग भी नंगी तलवारोंको लेकर शत्रुओंपर टूट पड़ते थे और अन्तिम श्वासतक लड़ते-लड़ते अपने प्राण विसर्जित कर देते थे। यह थी—'जय हर हर' बलिदानी परम्परा, जो बादमें 'जय हर हर' से बिगड़ कर 'जौहर' कहलाने लगी।

जहाँ-जहाँ जौहर हुए, वहाँ-वहाँ अब भी सती-स्तम्भ और शिला-लेख पाये जाते हैं। सन् १३४७ ई०में मुहम्मद तुगलकद्वारा गढ़-कुण्डारपर आक्रमणके समय उसमें जो जौहर हुआ था, उसका उल्लेख उस किलेमें अब भी वहाँके शिलालेखस्तम्भपर सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त जिन-जिन गाँवोंमें जौहर हुए वहाँ भी सती-चीर या स्तम्भ पाये जाते हैं।

कन्याओंमें दुर्गादेवीके स्वरूपकी प्रतिष्ठापना

इसके पूर्व कन्याओंकी दशा बहुत ही दयनीय और शोचनीय थी। छोटे-बड़े रजवाड़ेतक कन्याओंका अपहरण करके उन्हें केवल भोग-विलासका साधन मात्र मानते थे; किंतु महाराजा खेतसिंहका कहना था कि बिना मातृशक्तिकी पूजाके कोई भी समाज सुदृढ़ नहीं हो सकता। अतः उन्होंने कन्याओंका उद्धार किया और उन्हें दुर्गादेवीके रूपमें देखनेका पवित्र संस्कार डाला। वे तभीसे देवी-तुल्य मानी जाने लगीं। कन्याओंको भोजन कराना, उनके पैर पूजना, उनके विवाह आदिमें आर्थिक सहायता देना पुण्य-कार्य माने जाते

लगे। यह संस्कार इसलिये डाला गया कि जिससे जन-जनके मानस-पटलपर कन्याओंको देखकर उनके प्रति बुरी भावनाएँ और कुविचार उत्पन्न न हों तथा उन्हें सदैव सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाय। कन्या चाहे किसी भी जाति या वर्गकी क्यों न हो, वह सदा सम्मानके योग्य है। अतएव तभीसे जुझौति-प्रदेशमें कन्याएँ पूज्या मानी जाने लगीं और समाजमें उनका आदर होने लगा।

खंगोरिया-संस्कारद्वारा मातृशक्तिकी रक्षा

वीर माताएँ ही वीर पुत्रोंको जन्म देती हैं—इस विचारने ही महाराजा खेतसिंहकी मातृशक्तिको वीर बनानेके लिये प्रेरित किया, जिससे उन्होंने 'खंगोरिया-संस्कार' चलाया तथा महिलाओं और कन्याओंको 'खंगोरिया' पहनानेकी प्रथा चलायी। 'खंगोरिया' एक आभूषण होता है, जो गलेमें पहना जाता है। यह सोने या चाँदीका ठोस बना होता है। इसपर दो खंग (तलवारें) अङ्कित रहती हैं। इसका अर्थ था कि खंगोरिया पहननेवाली महिला देवी दुर्गा है। उसके हृदयमें खंग (शक्ति) दुर्गाका वास है। जिसके हृदयमें दुर्गाका वास है, वह साधारण महिला नहीं हो सकती। वह साक्षात् देवी है—यह भावना जन-जनके मानस-पटलपर प्रविष्ट करा दी गयी थी। विवाहमें वधूको 'खंगोरिया' पहनाना अनिवार्य कर दिया गया था। इस प्रकार महाराज खेतसिंह खंगारने अपने शासन-क्षेत्र जुझौति (बुन्देलखण्ड)में सभी महिलाओं और कन्याओंको खंगोरिया धारण कराकर उन्हें दुर्गादेवीका स्वरूप दिया तथा समाजमें सम्मानित किया एवं पर्दा-प्रथाको समाप्त कर उन्हें पुरानी रुढ़ियोंसे मुक्ति दिलायी। खंग (तलवार) खंगार राजवंशका राष्ट्रिय-चिह्न होनेके कारण शासन खंगार-खंगोरिया धारण करनेवाली महिला या कन्याकी रक्षा और सम्मानका विशेष उत्तरदायित्व हो गया। इस तरह सारा महिला-समाज खंगार-संस्कारोंसे दीक्षित किया गया था।

रक्षिका माईकी स्थापना

महाराजा खेतसिंहने अपनी शासित भूमि जुझौतिके प्रत्येक गाँवकी सीमापर 'रक्षिका माई' की स्थापना करायी। ये भी गाँवोंमें शक्तिकी देवीके रूपमें पूजी जाने लगीं। इनकी पूजन-विधि यह है—जब बच्चे अपने पैरोंपर चलना सीख लेते हैं, तब माताएँ उन्हें गाँवकी सीमापर ले जाकर उनसे सीमापर स्थित—'रक्षिका माई'का पूजन कराती हैं, बच्चोंसे उनपर हाथ लगवाती हैं तथा 'रक्षिका माई'से वरदान माँगती हैं कि हे देवि! बच्चेको ऐसी शक्ति दे जिससे वह तुम्हारी रक्षा कर सके और साथमें उसके दीर्घजीवनकी कामना करती हैं। एक काला धागा बच्चेकी कमरमें बाँध दिया जाता है, जो इस बातका प्रतीक है कि यह बालक आजसे इस गाँवका सीमा-रक्षक हो गया। यह संस्कार ग्रामीण अञ्चलोंमें आजतक चला आ रहा है, जो 'रक्कस'-संस्कारके नामसे जाना जाता है। सभी जातिके लोग इस संस्कारको करते हैं।

इस संस्कारसे सभी जातिके बच्चे राष्ट्रिय-भावनासे जुड़ जाते हैं तथा अपना-अपना काम करते हुए प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र और धर्मपर संकट आनेपर सैनिक बनकर भाग लेता है। इसीलिये शक्तिदायिनी माता 'रक्षिका माई'की गाँवकी स्थापना सीमापर की गयी थी।

इस तरह महाराज खेतसिंहने महिलाओंको 'खंगोरिया'-संस्कारसे और पुरुषोंको 'रक्कस'-संस्कारसे दीक्षितकर धर्म और राष्ट्रकी रक्षाके लिये सम्पूर्ण हिंदू-समाजका एक सुदृढ़ व्यूह बना दिया था।

पंजाबमें शक्ति-उपासनाका लोकपर्वीय रूप

(डॉ० श्रीनवरत्न कपूर, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, पी० ई० एस०)

नवम्बर १९६६ से पहले पंजाबकी सीमा पश्चिम-उत्तरमें सुदूर हिमालयको स्पर्श करती थी। फलतः माता पार्वतीके जन्मस्थान हिमालयकी गोदमें स्थित सभी देवी-स्थल बृहत् पंजाबके ही भाग थे। तदनन्तर पंजाबकी सीमा भले ही सिकुड़ती चली गयी हो, किंतु उसमें देवीगढ़ (जिला पटियाला) एवं भवानीगढ़ (जिला संगरूर) कस्बोंके नाम आज भी पूर्ववत् सुरक्षित हैं। पंजाब तथा हरियाणाकी सम्मिलित राजधानी 'चण्डीगढ़' आज केन्द्रद्वारा शासित होकर भी पुराने भाइयोंके शक्ति-परीक्षणके प्रचण्ड उत्साहकी गाथा सुनाकर अपने 'नामानुरूप गुण' की उक्तिको चरितार्थ कर रहा है।

समूचे पंजाबके छोटे-बड़े नगरों, कस्बों और कुछ गाँवोंमें भी देवी-धाम विद्यमान हैं। पंजाबमें रात्रियोंका सुनसान वातावरण 'देवीके जगरातों' तथा 'माताकी भेंटों' से हर शनिवारको संगीतमयी ज्योतिसे आलोकित एवं निनादित रहता है। इतनेपर भी पंजाबने शक्ति-उपासनाको भित्ति-चित्रों, मूर्तिकला एवं अन्य विविध-रूपिणी आध्यात्मिक रुचियोंके माध्यमसे लोकपर्वोंका रूप देकर जनता-जनार्दनतक पहुँचानेका भरपूर प्रयास किया है।

लोक-उत्सव

१. साँझी—चैत्रमासके नवरात्रमें पंजाबकी महिलाएँ दुर्गा-कालिकाके मन्दिरोंमें 'जोत-बालने' (दीपदान)के लिये पहुँचती हैं। अपनी सुविधाके अनुसार अधिकांश स्त्रियाँ प्रातःकाल ही यह कार्य सम्पन्न करती हैं, किंतु घर-गृहस्थीमें फँसी औरतें दोपहर अथवा सायंकालमें पूरे नौ दिनोंतक दीपदान करके देवी-दर्शनका लाभ प्राप्त करती हैं। माता परा-शक्ति तो श्रद्धाकी भूखी हैं, वे श्रद्धालुजनकी भेंटकी तुच्छता-महत्तामें मीन-मेष नहीं करतीं—इसी विश्वासके साथ पारिवारिक व्यस्तताओंमें रत गृहिणियाँ देवी-मन्दिरोंमें घीमें भिगोयी हुई 'वर्तिका' (बत्तियाँ) अर्पित करके ही संतुष्ट हो जाती हैं। वे इस फेरमें नहीं पड़तीं कि 'वर्तिका' के लिये मिट्टी अथवा आटेका दीपक जुटानेमें असमर्थ होनेके कारण माता उनसे रुष्ट हो जायँगी।

पंजाबमें आश्विनमासके नवरात्रमें दीपदानकी प्रथा चैत्रके नवरात्रके समान ही निभायी जाती है, किंतु पितृपक्षके अन्तिम तीन दिनों (आश्विन कृष्णा त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्या) को बाजारोंके चौराहोंपर कुम्हार अपनी दुकानें सजाकर बैठ जाते हैं। 'साँझी' देवी, बिना किसी जाति-भेद अथवा लिङ्ग-भेदके सभीको स्नेह वितरण करनेवाली हैं। उन्हींके स्वागतमें यह अस्थायी बाजार लगता है, जिसमें रमणीय रूपवाली देवीके मुखड़े, हाथ और पैरोंकी बिक्री होती है। इसी सामग्रीको समुचित स्थानपर सजाकर 'गौराँदेवी' (गौरवर्ण) 'साँझी' की मूर्तिकी स्थापना शक्ति-उपासक-परिवारोंमें होती है। कुमारी कन्याएँ पितृपक्षमें ब्राह्मण-भोजनके लिये माँका हाथ बँटाती हैं, किंतु आश्विन कृष्णा अष्टमी (लक्ष्मी-पूजन) से अगले एक सप्ताहतक घरके कामकाजसे कुछ समय बचाकर चाँद, तारे, चिड़ियाँ आदि अपने हाथोंसे तैयार कर लेती हैं। चिकनी मिट्टीपर पुती रंग-बिरंगी सफेदी मानो प्रकृतिकी सामग्रीको सजीव रूप दे देती है, जिससे 'साँझीमैया' का दरबार सजाया जाता है।

'साँझी-स्थापना', (आश्विन कृष्णा अमावस्या) तथा 'साँझी-विसर्जन' (आश्विन शुक्ला नवमी)के दिन देवीमाताका

व्रत होता है । इस बीच प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल-के समय मुहल्लेभरके बालक एवं बालिकाएँ एक दूसरेके घर जाकर लोकगीतोंद्वारा 'साँझी-माता' की आरती उतारती हैं और आपसमें नैवेद्य-वितरण करती हैं ।[1]

२. अहोई—आश्विन मासके शुक्लपक्षमें श्रद्धालु परिवारोंमें पधारनेवाली सौम्यरूपा गौरवर्णा शक्ति-माता 'साँझी' बनकर आती हैं, किंतु नवरात्रके समापनके पूरे एक पखवाड़ेके बाद शक्ति-माता विकराल रूप धारण कर 'अहोई'के महोत्सवपर पुनः दर्शन देती हैं । हमारे लोक-चिन्तनने जहाँ शुक्लपक्षमें शक्तिके सुन्दर रूपको जोड़ा है, वहाँ कृष्णपक्षमें शक्तिके भयावह रूपको सम्बद्ध कर दिया है । यही कारण है कि 'अहोई'का पर्व आश्विन कृष्णा अष्टमीको मनाया जाता है ।

भले ही अब उत्तरप्रदेशीय संस्कृतिके प्रभावके कारण पंजाबमें 'अहोई' के थापे (भित्ति-चित्र) कई रंगोंसे बनने लगे हों, फिर भी 'अहोई'की लोककथा सुनाये जानेके बाद पंजाबी वयोवृद्ध निम्नलिखित जयकारा बोलकर इस लोकपर्वका सम्बन्ध शक्तिके भयानक रूपसे बाँध देता है । यथा—

'जय बोल माई कालिका ।
खेल भंडारे मालिका ।'

आज भी कुछ पंजाबी परिवारोंमें 'अहोई'का भित्ति-चित्र कोयले अथवा काली स्याहीसे अङ्कित किया जाता है, किंतु शक्तिकी प्रतीक 'अहोई' मातासे जुड़ी लोककथामें बाल-कल्याण एवं सर्वजन-हितकी भावनाएँ समाविष्ट रहती हैं ।[2]

३. लोहड़ी—अधिकांश विद्वान् 'सती-प्रथा'का सम्बन्ध राजस्थानकी राजपूत वीराङ्गनाओंकी 'जौहर'-परम्परा-से जोड़ते हैं । कुछ तो इसे खींचकर मोहनजोदड़ो एवं मिस्री—यूनानी सभ्यताओंतक ले जाते हैं, किंतु खेदकी बात है कि किसीने भी 'सती-प्रथा'का सम्बन्ध भगवान् शिवकी पहली पत्नी दक्ष-प्रजापतिकी पुत्री देवी सतीसे नहीं जोड़ा, परंतु पंजाबके जनमानसने सती-दहनकी गाथाको 'लोहड़ी'के लोकपर्वके रूपमें सुरक्षित रखा है ।

सौरवर्षके पौष मासके अन्तिम दिन सूर्य ढलते ही उत्तर-प्रदेशकी 'होली' के समान लकड़ियों-उपलोंका ढेर सुलगा कर पंजाबमें 'लोहड़ी' जलायी जाती है । दक्षद्वारा भगवान् शिवकी उपेक्षा किये जानेपर भोलेनाथकी पत्नी सतीने प्रायश्चित्तस्वरूप अपना शरीर अग्निको भेंट कर दिया था । तदनन्तर दक्ष प्रजापतिने अपनी भूल स्वीकार करके भगवान् आशुतोषकी पूजा-अर्चना की थी । इसी उपलक्ष्यमें आज भी पंजाबी माता-पिता अपनी बेटी और दामादको प्रसन्न करनेके लिये 'लोहड़ीका संधारा' भेजते हैं । दामाद, बेटी और पुत्रीके सास-ससुर रेवड़ी, तिलवे (तिलके लड्डू) और कपड़ोंकी तुच्छ भेंट प्राप्त करके समझ लेते हैं कि वधूपक्षवाले अभीतक उनके प्रति स्नेहधारा प्रवाहित करनेमें दत्तचित्त हैं । लोहड़ीका संधारा केवल हिंदू-परिवारोंमें ही नहीं, प्रत्युत सिक्ख-परिवारोंमें भी यथावत् प्रचलित है ।[3]

पंजाबमें प्राचीन कालमें पतिके साथ चितारूढ होनेवाली महिलाकी समाधि बनानेकी प्रथा थी । सम्पन्न लोग तो बड़े-बड़े घरौंदोंके रूपमें यह कार्य पूर्ण कर लेते थे, किंतु मध्यमश्रेणीके महानुभाव अथवा आर्थिक दृष्टिसे दुर्बल व्यक्ति तीन ईंटोंकी 'मढ़ी' बनवाकर काम चला लेते थे । आज भी श्रद्धालु जन इन पुरानी

१. विशेष अध्ययनके लिये देखिये—श्रीमती सरोजबाला कपूर एवं डॉ० नवरत्न कपूरकृत 'लोकपर्वीय बाल-किशोर-गीत' ।
२. विस्तृत अध्ययनके लिये देखिये—डॉ० नवरत्न कपूर-रचित 'पंजाबी-लोक-चिन्तन और पर्वोत्सव' ।
३. विस्तृत अध्ययनके लिये देखिये—डॉ० नवरत्न कपूरकृत 'लोहड़ी समन्वयात्मक लोकपर्व' ।

समाधियोंपर किसी-न-किसी समय कलईचूना पुतवा देते हैं।

दक्ष-पुत्री सती तो अगले जन्ममें पर्वतराजकी पुत्री पार्वतीके रूपमें जन्मी और उन्हें मनोवाञ्छित पतिदेव भगवान् शिव ही प्राप्त हुए। अतः शक्तिस्वरूपा सती एवं पार्वती चिरसौभाग्यवती मानी जाती हैं। यही कारण है कि वे सधवा स्त्रियाँ जो अपनी सासकी मृत्युके कारण *आश्विनकृष्णा चतुर्थीके दिन 'करवा चौथ' मनाकर अपना करवा 'सासू-माता'को भेंट करनेसे वञ्चित रह जाती हैं, वे अपने करवे तथा पोंजा (मठरी आदि पूजा-सामग्री) 'सती'की समाधिपर चढ़ा आती हैं। इस सामग्रीके साथ रोलीके छींटे और मौलीकी तारें 'सती' के चिर-सुहागवती होनेकी सूचना देते हैं।

पंजाबमें 'सती-साध्वी' शब्द सच्चरित नारीके लिये भी रूढ हो चुका है। पंजाबका जैन-समाज भी इस शब्दको अपनाकर जैन-साध्वियोंके लिये 'सतीजी'का प्रयोग करने लगा है।

४. शीतला—वर्षमें भिन्न-भिन्न अवसरोंपर शीतलाके मेले भी पंजाबमें लगते हैं। शीतलाके पुजारी निम्नवर्गीय होते हैं और शीतलाके पूजा-स्थलको 'माड़ी' (मण्डप) कहा जाता है। पंजाबकी उच्चकुलीन स्त्रियाँ 'शीतला'को भी शक्तिका रूप मानकर गुलगुले, पूरियाँ, चने आदि भेंट करके अपनी उदारताका परिचय देती हैं।

हिमाचलप्रदेशकी प्रमुख लोक-देवियाँ

(डॉ० श्रीविद्याचन्दजी ठाकुर एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

सात भगिनी-देवियाँ

हिमाचलप्रदेशके चम्बा जनपदमें व्यापक रूपमें शक्ति-उपासना होती आ रही है। प्रमाणस्वरूप यहाँ भारी संख्यामें शक्ति-पीठ विद्यमान हैं, जहाँ इस प्रदेशकी बहुसंख्यक जनता इन देवियोंकी अत्यन्त निष्ठासे उपासना करती है। ये प्रायः लोकदेवियाँ हैं, जिनका सम्बन्ध पौराणिक शक्तियोंसे लगाया जाता है। इनमें सात प्रमुख लोकदेवियाँ हैं—१—आद्याशक्ति, २—लिखणा, ३—चौण्डी, ४—बैरावाली, ५—मिन्धल, ६—जालपा और ७—प्रौलीवाली। आद्याशक्ति या आद्याशक्तिका पीठ चम्बा शहरसे दक्षिण ५० मील दूर है। अष्टधातु-निर्मित महिषासुर-मर्दिनीके रूपमें लिखणाका पीठ भरमौर स्थानपर है। चौण्डी या चण्डिकादेवीका पीठ चम्बा नगरके दक्षिण-पूर्व एक पहाड़ीपर है। बैरावालीका पीठ चम्बाकी 'चुराह' तहसीलमें है। कोठीमें मिन्धलदेवी 'मिन्धल' ग्राममें है। जालपा देवीका पीठ 'मैहला'में 'हिडिम्बा' मन्दिरमें ही हिडिम्बादेवीके साथ ही प्रतिष्ठित है। प्रौलीवालीका पीठ 'मेढी' ग्राममें है।

मान्यता है कि ये सातों देवियाँ आपसमें बहनें थीं। प्रथम ये सभी छतडालीमें ही आविर्भूत हुईं और फिर प्रत्येकने अपने-अपने उपर्युक्त अलग-अलग स्थानोंपर पीठ बना लिये। इनमें प्रत्येककी उन-उन स्थानोंपर आविर्भूत होनेकी बड़ी रोचक कथाएँ बतायी जाती हैं। उनमें मुख्यता यह है कि सातों जहाँ आविर्भूत हुईं, उस सम्बन्धमें बताया जाता है कि पासके मेढी गाँवके चरवाहे पहले सघनरूपमें स्थित इस स्थानपर गायें चराने लाते थे। कुछ समयके बाद शामको घर आनेपर गायें बहुत कम दूध देने लगीं। इसकी जाँचके लिये कुछ लोग जंगलमें गये और रहस्यका पता लगानेके लिये वहाँ छिपकर बैठ गये। उन्हें दिखायी पड़ा कि सभी गायें एक स्थानपर एकत्र हुईं और उनके

* मास-गणना शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेपर कार्तिक-कृष्णपक्ष आश्विन-कृष्णपक्ष हो जाता है।

थनोंसे दूधकी धाराएँ बहने लगीं । कुछ देर बाद गायें बिखरने लगीं । पता लगानेवालोंने उस स्थानकी खुदाई की तो उन्हें सात पिण्डियाँ मिलीं । ये ही वे सात बहनें देवियाँ हैं । छतराड़ी, भरमौर आदि पीठोंमें देवियोंके भव्य कलापूर्ण मन्दिर हैं, जो सातवीं शताब्दीके मेरुवर्मके समयके बताये जाते हैं । लिखणा-मन्दिरकी काष्ठकला उल्लेख्य है । देवीकोठीका मन्दिर पहाड़ी शैलीके भित्ति-चित्रों और काष्ठकलाके लिये प्रसिद्ध है । चामुण्डा-मन्दिरकी लकड़ीकी शिल्पकला भी अत्यन्त दर्शनीय है ।

भलेई या भद्रकाली

चम्बानगरसे ३६ कि० मी० उत्तर-पश्चिममें एक अत्यन्त रमणीय पहाड़ी है, जहाँ भलेई या भद्रकालीका मन्दिर है । वर्तमान मन्दिरसे २ कि० मी० दूर 'भ्रम्मण' गाँवमें एक बावलीके पास इस देवीका मूल निवास था । देवीने चम्बानरेशको स्वप्नमें आदेश दिया कि 'मैं बावलीके पीछेकी दीवालके बीच हूँ । मेरी प्रतिमाके नीचे धनसे भरी तीन बटलोइयाँ हैं । मुझे यहाँसे निकालकर एक बटलोईसे मेरा मन्दिर बनवाओ, दूसरीसे यज्ञ करो और तीसरी अपने उपयोगमें लो ।' तदनुसार देवी और बटलोइयोंको पालकीमें रखकर चम्बा लाया जाने लगा तो वर्तमान मन्दिरके स्थानपर पालकी भारी होकर वहीं रुक गयी और वहीं मन्दिर बनाया गया ।

बाड़ी भगवती

चम्बानगरके उत्तर ३ कि० मी० दूर 'बाड़ी देहरा' नामक स्थानपर सुरम्य काव्रू (वन्य जेतून) की वाटिका है और उसीके बीचोबीच बाड़ी भगवतीका मन्दिर है । कहा जाता है कि पासके सुंगल गाँवसे एक ब्राह्मण रात्रिके चौथे पहरमें साल नदीको पारकर बाड़ी-क्षेत्रमें कामके लिये आता था । एक दिन नदीमें नहाते समय उसके पैर एकदम अकड़ गये । अन्ततः उसे देवीकी प्रेरणा हुई कि पानीमें हाथ डालकर मेरी पिण्डी निकालो और यहाँ स्थापित करो तो तुम्हारा रोग मिट जायगा । ब्राह्मणने पिण्डीको निकालकर बाड़ी भगवतीकी प्रतिष्ठापना कर दी ।

यहाँ उपर्युक्त देवियोंके उत्सवोंके बड़े-बड़े मेले, देवी-जागरा (जागरण) आदि प्रायः वर्षभर हुआ करते हैं, जिनमें चैत्र-नवरात्रमें दिन-रात हवन-पाठ, वैशाखकी १४-१५ तिथियों, ज्येष्ठ-आषाढ़ मासकी अन्तिम रात्रि, ३, ८ और ९ तिथियों, भाद्रपद कृष्ण नवमीसे अमावस्यातक, पुनः भाद्रपद शुक्ल दशमी और पूर्णिमाके उत्सव विशेष उल्लेख्य हैं ।

जय दे, जगदानन्दे !

यह जगत् सुर और असुरोंका संग्राम-क्षेत्र है । असुर-शक्तिको पराभूत करके माँ सुर-शक्तिको जय और आनन्द प्रदान करती हैं । पराजित होनेपर कोई आनन्दित नहीं होता, जय प्राप्त होनेपर ही आनन्दका अनुभव होता है । अतएव केवल माँ जगत्की एकमात्र आनन्दकारिणी हैं । माँ ही आनन्दस्वरूपा हैं । जगत्में जो कुछ आनन्द है, वह माँ है । इसीलिये जगत् माँका पूजन करता है । यह जय माँ किसको देती है ? कौन माँका कृपापात्र है ? किसी स्थानविशेषमें स्थित जीव ही क्या माँका कृपापात्र है ? नहीं, कोई कहीं भी रहे, यथार्थभावसे माँके शरणागत होनेसे ही वह माँका कृपा-भाजन बन सकता है, क्योंकि माँ सर्वगता हैं । माँ जय-स्वरूपा तथा सर्वशक्तिमती हैं । विरुद्ध-शक्ति चाहे कितनी प्रबल क्यों न हो, माँकी जय अवश्यम्भावी है ।

—स्वामी भार्गव श्रीशिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी

सिख-धर्मग्रन्थोंमें मातृशक्तिका गौरव

(ज्ञानी श्रीसंतसिंह प्रीतम, एम्०ए०)

सिख-सम्प्रदायके दो मूल ग्रन्थ हैं—एक 'आदि-ग्रन्थसाहिब' जिसका सम्पादन गुरु अर्जुनदेवजीने किया। इसमें गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर तथा भारतके अन्य संत और भक्तोंकी वाणियाँ हैं। दूसरा 'दशम ग्रन्थ' है, जिसके रचयिता संत-सिपाही गुरु गोविन्दसिंहजी हैं। गुरु गोविन्दसिंहजी एक सच्चे कर्मयोगी थे। माता-सम्बन्धी विचार उनके दशम ग्रन्थमें अधिक हैं। आदि-ग्रन्थकी जय-वाणीमें गुरु नानकदेवजी माँसे ही सृष्टिका होना लिखते हैं।

एक माई जुगति वियाई तिनि चेले परवाण।
इक संसारी इक भण्डारी इक लाए दीवाण॥

अर्थात् 'एक ही माता जब युक्तिसे ब्रह्मद्वारा प्रसूत हुई, तब उससे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीकी उत्पत्ति हुई।'

गुरु अर्जुनदेवजी ब्रह्मको पिता और माता शब्दद्वारा सम्बोधित करते हैं—

तुम मात पिता हम बारिक तेरे तुमरी कृपा में सूख घनेरे।

गुरु गोविन्दसिंहजीने दशम-ग्रन्थमें अपना जीवन-चरित्र स्वयं लिखा है। आप अपने पिछले जन्मकी कथा लिखते हुए कहते हैं कि पिछले जन्ममें मैंने ब्रह्म (परब्रह्म परमात्मा) तथा माता कालीकी उपासना की थी। आप महाकाल, अकाल, अकाल पुरुष आदि नामोंसे ब्रह्मको पुकारते थे तथा ब्रह्म और शक्तिमें अभेद मानते थे। उन्होंने दशम-ग्रन्थमें माताकी स्तुति बड़े सुन्दर शब्दोंमें की है जैसे—

होई कृपा तुमरी हम पै, तु सभै सवाने गुन हीं धरिहौं।
जीय धार विचार तब बरबुध, महा अगिन गुणकों हरिहौं॥
बिन चण्ड कृपा तुमरी कबहूँ, मुख ते नहीं अच्छर हौं करहौं।
तुमरो करे नाम किधें तुलहा, जिस बाक समुंद बिखै तरहौं॥

और—

संकट हरन, सभ सिद्ध की करन,
चण्ड तारन तरन, शरण लोचन विशाल है
आदिजाके आहि, बहै अन्त को न पारावार
शरण उबारण, करण प्रतिपाल है॥
असुर संघारन, अनिक दुख नासन,
सु पतित उधारन छुडाये जम जाल है।
देवी वर लायक, सु बुध हूँ की दायक,
सु देहि बर पायक बनावै ग्रंथ हाल है॥

इस पदमें गुरु गोविन्दसिंहजीने दशम-ग्रन्थकी रचनाके समय मातृ-कृपाके लिये प्रार्थना की है। गुरु गोविन्दसिंहजी दशम-ग्रन्थमें सृष्टिकी रचना लिखते समय माता अथात् भवानीका आविर्भाव इस प्रकार लिखते हैं। आप माताको निम्नतर ईश्वर नहीं मानते थे, अपितु ब्रह्मसे अभिन्न मानते थे। जैसे—

प्रथम काल सब जगको ताता,
ताते तेज भयो विख्याता।
सोई भवानी नाम कहाई,
जिन एह सगली सृष्टि बनाई॥

उनके विचारसे प्रभुकी ज्योति, जो सृष्टिके आदिमें संसारकी उत्पत्तिका कारण बनी, माता ही हुई। छक्के पातशाही १० में आप लिखते हैं—

अटल छत्र धरनी तुही आदि देव,
सकल मुनि जना तोहि जिस दिन सरेव।
तुही काल आकाल की जोति छाजै,
सदा जय सदा जय सदा जय विराजै।
यही दास माँगै कृपा सिंधु कीजै,
स्वयम् ब्रह्मकी भक्ति सर्वत्र दीजै॥

ब्रह्मकी भक्ति प्रदान करनेवाली माता ही है। माता-से ही भक्तिकी याचना की गयी है। आप माताको जगत्-जननी, अन्नदैनी, ब्रह्माण्ड-सरूपी आदि विशेषणोंसे स्मरण करते हैं—

तुही जगत जननी अनन्ती अकाल,
तुही अन्नदैनी सभनको सम्भाल ।
तुही खण्ड ब्राह्माण्ड भूमं स्वरूपी,
तुही विष्णु, शिव, ब्रह्म, इन्द्रा अनूपी ॥

माताके खेल तथा शक्तिकी महिमा 'दशम-ग्रन्थ'में गुरुजीकी कवितामें दर्शनीय है—

तुही सब जगत को अपावै छुपावै,
बहुड़ आपे छिनक में बनावै खपावै ।
जुगो जुग सकल खेल तुम्हीं रचायो,
तुमन खेलका भेद किनहूँ न पायो ।
तुमन कुदरती खेल कीनो अपारा,
तुमन तेज सो कोट रवि शशि उजारा ।
तुही अम्बके शक्ति कुदरति भवानी
तुमन कुदरती जोति घट घट समानी ॥

गुरु गोविन्दसिंहजीने 'दशम-ग्रन्थ'में चण्डी-चरित्र-को तीन बार लिखा है—दो बार ब्रजभाषामें, एक बार पंजाबीमें । उसके अन्तमें माहात्म्य लिखते हैं—

जे जे तुमरे ध्यान को नित उठि ध्यैहैं संत ।
अंत लहैंगे मुक्ति फुल, पावहिंगे भगवंत ॥
संत सहाई सदा जग मांई,
जह तह साधन होई सहाई ।
दुर्गा-पाठ बनाया सभै पौड़ायाँ
फेर न जूनी आया जिन इह गाइया ॥

भगवतीने गुरु गोविन्दसिंहजीको अपने हाथसे तलवार दी, इसलिये उसे प्रत्येक सिख 'करद' कहते हैं—

अंतर ध्यान भई जग माई
तब लंकुडीप गिरा भलाई ।
मम बाना कछनी इहु लीजै
अपने सरब पंथ में दीजै ॥

गुरुजीने सिखोंको आज्ञा दी कि पूजाके धनको ग्रहण न करना; क्योंकि यह विष-तुल्य है । एक बार सिख-सेवकोंने गुरु गोविन्दसिंहजीकी शिकायत उनकी मातासे की कि 'जो दान आता है वह सब गुरुजी ब्राह्मणों या दीनोंको दे देते हैं ।' माताजीने गुरुजीको बुलाया और पूछा—'पुत्र ! क्या बात है ?' उस समय गुरु गोविन्दसिंहजीने जो वचन कहे, वे स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हैं—

ज्यों जननी निज तनुजको निरख जहर नहीं देत ।
त्यों पूजाके धान को मेरो सिख न लेत ॥

'जिस प्रकार माँ अपने पुत्रको देखकर भी विष नहीं देती, उसी प्रकार पूजाके धानको मेरे सिखोंको नहीं लेना चाहिये; क्योंकि यह विषके समान सिखधर्मको विनाशके कगारपर ले जायगा ।' आज सिख-सम्प्रदायके लिये यह शब्द एक चेतावनी है । गुरुद्वारोंके धनका सदुपयोग होना चाहिये। सिखको कर्मयोगी बनकर स्वयं कमाना चाहिये ।

सिख-सम्प्रदाय हिंदूधर्मकी रक्षाके लिये बनाया गया था । आज स्थिति चिन्तनीय हो रही है ! यह समय विचारपूर्वक चेतने और सँभलनेका है ।

महामाया

महामायारूपे परमविशदे शक्ति ! अमले !
रमारम्ये शान्ते सरलहृदये देवि ! कमले !
जगन्मूले आद्ये कविविबुधवन्द्ये श्रुतिनुते !
बिना तेरी दाया कब अमरता लोग लहते !!

—लोचनप्रसाद पाण्डेय

गुरु गोविन्दसिंहके साहित्यमें शक्ति-उपासना

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

गुरु गोविन्दसिंहकी शक्ति-उपासनाविषयक तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं, जो 'दशम-ग्रन्थ'में संगृहीत हैं—१. चण्डी-चरित्र उक्ति-विलास, २. चण्डी-चरित्र (व्रजभाषा), ३. दी वार (पंजाबी)। प्रथम रचना सात अध्यायों और २३३ छन्दोंमें हैं, जो दुर्गासप्तशतीसे सम्बद्ध है। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें 'इति श्रीमार्कण्डेय-पुराणे श्रीचण्डीचरित्रे उक्ति-विलासे'रूपी पुष्पिका पायी जाती है। दूसरी रचना आठ अध्यायों तथा २६२ श्लोकोंकी है, जिसमें देवीके युद्धों एवं बल-पराक्रमका विशद वर्णन है। तीसरी रचना 'दी वार' या 'वार' श्रीभगवतीजी (दी) पंजाबी में ५५ छन्द हैं, जिसमें शक्ति-उपासनाका पूरा वर्णन है।

गुरु गोविन्दसिंह लोकाचारसमर्थित शक्तिके उपासक थे। इसीलिये भगवती माँके भयंकर विकराल रूपकी उपासनामें गुरु गोविन्दसिंहको अधिक संतोष मिला। वे शक्तिका स्वरूप-निरूपण करते हुए पुराणोंका उल्लेख करते हैं—

पवित्री पुनीतां पुराणी परेयं
प्रभ्मी पूरणी पारब्रह्मी अजेयं
अरूपं अनूपं अनामं अणमं
अमीयं अजीतं महाधर्म धामं ॥
(चण्डी-चरित्र २५१)

अन्यत्र स्वरूप-वर्णन करते हुए उनकी बानी है—

नमो चापणी चरमणी खड्ग बाणं
गदा पाजिनी चक्रणी चित्रमाणं
नमो सूलनी सैहथी पाणिमाता
नमो गिआन बिगिआन की ज्ञानदाता ॥

कहीं-कहीं गुरुने माँके अनिर्वचनीय सौन्दर्यका बड़ा ही मनोरम कवित्वपूर्ण वर्णन किया है—

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने,
अलि फिरत दीवाने बन डोले जित-तित हूँ
कीर औ कपोत बिम्ब को किला कलापी
बन फूटे कूटे फिरे मन चैन हूँ न कित ही ॥
दारम चरक गयो पेख दसननिपांति
रन्ध ही की कांति जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुन-सागर उजागर सुनागर है
लीनी मन मेरो हरि नैन को रचित ही ॥
(चण्डी-चरित्र, उक्तिविलास छन्द ८९)

देवीकी सम्पूर्ण महिमामयता उनकी रचनाओंमें व्याप्त है। वे सर्वशक्तिमयी देवीके सर्वकर्तृत्व और कृपामय स्वभावका सुन्दर भक्तिमय वर्णन करते हैं—

तारन लोक उधारन भूमहि दैत संघारन चंड तू ही है।
कारण ईस-कला कमला हरि अद्रिसुता गह देखो उही है ॥
ताप सता ममता कविता कवि के मन माहि सदाइ गुही है।
कीनो है कंचन लोह जगतमें पारस-मूरति जाहि छुही है ॥
(वही छन्द ४)

गुरु गोविन्दसिंह सच्चे वीरकी भाँति देवीसे यही प्रार्थना करते हैं कि वे सत्कर्म करें, निर्भय होकर शत्रुओंसे लोहा लें, विजय प्राप्त करें और आयु शेष होनेपर रण-भूमिमें ही वीरगति प्राप्त करें। उनके 'सबद' हैं—

देहि सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरिसों जब जाइ लरौं निसचै करि अपनी जीत करौं ॥
अरु सीख हो अपने ही मनकौं इह लालच हरिगुन ही उचरौं।
जब आव की अउध निदान बनै अति ही रनमें तब जूझि मरौं ॥

सिक्ख-पंथके दसवें गुरु महावीर गोविन्दसिंह कर्म और चेतनासे वास्तविक शक्तिके उपासक थे। उनकी वाणी और करनीमें सदा-सर्वदा शक्ति-स्वरूपा भगवतीकी चेतनाका दर्शन किया जा सकता है। प्रस्तुत उद्धरण भी इसके प्रमाण हैं।

षट्चक्र और कुण्डलिनी-शक्ति

(स्व० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्०ए०)

जिस प्रकार भूमण्डलका आधार मेरुपर्वत है, उसी प्रकार मनुष्य-शरीरका आधार मेरुदण्ड अथवा रीढ़की हड्डी है। मेरुदण्ड तैंतीस अस्थि-खण्डोंके जुटनेसे बना है। सम्भव है, इस तैंतीसकी संख्याका सम्बन्ध तैंतीस कोटि देवताओं अथवा प्रजापति, इन्द्र, अष्ट वसु, द्वादश आदित्य और एकादश रुद्रसे हो। भीतरसे यह खोखला रहता है। इसका नीचेका भाग नुकीला और छोटा है। इस नुकीले स्थानके आस-पासका भाग 'नाडी-कन्द' कहलाता है और इसीमें महाशक्ति कुण्डलिनीका निवास है।

स्वस्थ एवं पूर्ण मानव-शरीरमें बहत्तर हजार नाडियोंकी स्थिति है, इनमेंसे चौदह मुख्य हैं। इनमें भी इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना तीन प्रधान हैं। इडा मेरुदण्डके बाहर बायीं ओरसे और पिंगला दाहिनी ओरसे लिपटी हुई हैं। सुषुम्ना नाडी मेरुदण्डके भीतर कन्दभागसे प्रारम्भ होकर कपालमें स्थित सहस्रदल कमलतक जाती है। जिस प्रकार कदलीस्तम्भमें एकके बाद दूसरी परत होती है, उसी प्रकार इस सुषुम्नानाडीके भीतर क्रमशः वज्रा, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाडी हैं। योगक्रियाओं-द्वारा जाग्रत् कुण्डलिनीशक्ति इसी ब्रह्मनाडीके द्वारा कपालमें स्थित ब्रह्मरन्ध्रतक (जिस स्थानपर खोपड़ीकी विभिन्न हड्डियाँ एक स्थानपर मिलती हैं और जिसके ऊपर शिखा रखी जाती है) जाकर पुनः लौट आती है।

मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें पिरोये हुए छः कमलोंकी कल्पना की गयी है, ये ही षट्चक्र हैं। प्रत्येक कमलके भिन्न संख्यामें दल हैं और प्रत्येकके रंग भी भिन्न हैं। ये छः चक्र शरीरके जिन अवयवोंके सामने मेरुदण्डके भीतर स्थित हैं, उन्हीं अवयवोंके नामसे पुकारे जाते हैं। इनके अन्य नाम भी हैं। अब इन चक्रोंका विवरण देखिये।

(१) मूलाधारचक्र—इस चक्रकी स्थिति रीढ़की हड्डीके सबसे नीचेके भागमें 'कन्द' प्रदेशसे लगे गुदा और लिङ्गके मध्यभागमें है। इस चक्रका जो कमल है वह रक्तवर्ण है और उसमें चार दल हैं। इन दलोंपर वँ, शँ, षँ और सँ अक्षरोंकी स्थिति मानी गयी है। इसका यन्त्र पृथ्वीतत्त्वका द्योतक और चतुष्कोण है। यन्त्रका रंग पीत है, बीज 'लँ' है और बीजका वाहन ऐरावत हस्ती है। यन्त्रके देव और शक्ति ब्रह्मा और डाकिनी हैं। इस यन्त्रके मध्यमें स्वयम्भू लिङ्ग है, जिसके चारों ओर सर्पाकार साढ़े तीन फेरेमें लिपटी हुई अपनी पूँछको अपने मुखमें दबाये हुए सुप्त कुण्डलिनी-शक्ति

विराजमान है। प्राणायामद्वारा जाग्रत् होकर यह शक्ति विद्युल्लतारूपमें मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें प्रविष्ट होकर ऊपरको चलती है।

(२) **स्वाधिष्ठानचक्र**--इस चक्रकी स्थिति लिङ्ग-स्थानके सामने है। इसका कमल सिन्दूर वर्णवाले छः दलोंका है। दलोंपर वँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ की स्थिति मानी गयी है। इस चक्रका यन्त्र जलतत्त्वका द्योतक और अर्धचन्द्राकार है। इस यन्त्रका रंग चन्द्रवत् शुभ्र है। बीज 'वँ' है और बीजका वाहन मकर है। यन्त्रके देव तथा देवशक्ति विष्णु और राकिनी हैं।

(३) **मणिपूरचक्र**--यह चक्र नाभिप्रदेशके सामने मेरुदण्डके भीतर स्थित है। इसका कमल नीलवर्णवाले दस दलोंका है और इन दलोंपर डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ अक्षरोंकी स्थिति मानी गयी है। इस चक्रका यन्त्र त्रिकोण है और वह अग्नितत्त्वका द्योतक है। इसके तीनों पार्श्वोंमें द्वारके समान तीन 'स्वस्तिक' स्थित हैं। यन्त्रका रंग बालरवि-सदृश है, बीज 'रँ' है और बीजका वाहन मेष है। यन्त्रके देव और शक्ति वृद्ध रुद्र तथा लाकिनी हैं।

(४) **अनाहतचक्र**--यह चक्र हृदय-प्रदेशके सामने स्थित है और अरुण वर्णके द्वादश दलोंसे युक्त कमलका बना है। दलोंपर कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ, ठँ अक्षर स्थित हैं। चक्रका यन्त्र धूम्रवर्ण, षट्कोण तथा वायुतत्त्वका सूचक है। यन्त्रका बीज 'यँ' है और बीजका वाहन मृग है। यन्त्रके देव तथा देवशक्ति ईशान रुद्र और काकिनी हैं। इस चक्रके मध्य शक्तित्रिकोण है, जिसमें विद्युत्-तुल्य प्रकाश व्याप्त है। इस त्रिकोणसे सम्बद्ध 'बाण' नामक स्वर्णकान्तिवाला शिवलिङ्ग है, जिसके ऊपर एक छिद्र है। इस छिद्रसे लगा हुआ अष्टदलवाला 'हृत्पुण्डरीक' नामक कमल है। इसी हृत्पुण्डरीकमें उपास्य देवका ध्यान किया जाता है।

(५) **विशुद्धिचक्र**--इस चक्रकी स्थिति कण्ठ-प्रदेशमें है। इसका कमल धूम्र वर्णवाले सोलह दलोंका है और इन दलोंपर 'अँ'से 'अः'तक सोलह स्वरोंकी स्थिति है। चक्रका यन्त्र पूर्ण चन्द्राकार है और पूर्ण चन्द्रकी प्रभासे देदीप्यमान है। यह यन्त्र शून्य अथवा आकाशतत्त्वका द्योतक है। यन्त्रका बीज 'हँ' है और बीजका वाहन हस्ती है। यन्त्रके देव और देवशक्ति पञ्चवक्त्र सदाशिव तथा शाकिनी हैं।

(६) **आज्ञाचक्र**--यह चक्र भ्रूमध्यके सामने मेरु-दण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें स्थित है। इसका कमल श्वेत वर्णके दो दलोंवाला है। इन दलोंपर 'हँ,' 'क्षँ' अक्षरोंकी स्थिति मानी गयी है। चक्रका यन्त्र विद्युत्प्रभायुक्त 'इतर' नामक अर्द्धनारीश्वरका लिङ्ग है। यह यन्त्र महत्-तत्त्वका स्थान है। यन्त्रका बीज प्रणव (ॐ) है। बीजका वाहन नाद है और इसके ऊपर बिन्दु भी स्थित है। यन्त्रके देव उपर्युक्त इतर लिङ्ग हैं और शक्ति हाकिनी हैं।

इन छः चक्रोंके बाद मेरुदण्डके ऊपरी सिरेपर सहस्रदलवाला सहस्रारचक्र है, जहाँ परम शिव विराजमान रहते हैं। इसके हजार दलोंपर बीस-बीस बार प्रत्येक स्वर तथा व्यञ्जन स्थित माने गये हैं। परम शिवसे कुण्डलिनी-शक्तिका संयोग लययोगका ध्येय है। यह विषय अत्यन्त गहन है, पर संक्षिप्त सारांश यह है कि नश्वर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, बुद्धितत्त्वोंको क्रमशः एक दूसरेमें लीन करके अन्तमें अमर—अद्वैतरूपका अनुभव करना मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिये। यही उद्देश्य पञ्चोपचार-पूजाका है। ये पाँचों उपचार पाँचों तत्त्वोंके स्थानापन्न हैं। यथा—गन्ध (पृथ्वी), नैवेद्य (जल), दीप (अग्नि), धूप (वायु) और पुष्प (आकाश)। इनका समर्पण पाँचों तत्त्वोंके लयके तुल्य है। इसके

अतिरिक्त पृथ्वीसे लेकर आकाशतक क्रमशः एक-दूसरेसे सूक्ष्मतर तत्त्व हैं।

प्रत्येक चक्रके सम्बन्धमें दल, तत्त्व, यन्त्र, बीज, वाहन आदिके विषयमें जो बातें कही गयी हैं, वे साधारण पाठकोंको असम्भव-सी मालूम होती होंगी। अतः इस विषयमें कुछ विचार अप्रासङ्गिक न होंगे।

पद्मोंके दल--अंग्रेजीमें चक्रोंको Plexus अथवा 'नाडीपुञ्ज' कहते हैं। वुडरफ आदि पाश्चात्योंके अनुसार यह वर्णन कुछ-कुछ ठीक भी है; क्योंकि ये छः चक्र मेरुदण्डके उन भागोंमें स्थित हैं, जहाँसे विशेष संख्याके गुच्छोंमें नाडियाँ निकलती हैं। ये ही नाडियोंके गुच्छे समताके लिये 'कमलदल' कहे गये हैं। चक्रोंके चित्रोंमें दलोंके अग्रभागसे निकली हुई नाडियाँ दिखलायी गयी हैं।

दलोंके वर्ण--उपर्युक्त नाडीपुञ्ज किसी रंगसे रँगे नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि रुधिरके लाल रंगपर भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके प्रतिबिम्ब पड़नेसे रुधिरके रंगमें जिन-जिन स्थानोंमें जो विकृतियाँ प्रतीत होती हैं, वही उस नाडीपुञ्जका रंग कहा गया है। जैसे--रुधिरमें मिट्टी मिला दीजिये तो हल्का या मटियाला पीला रंग हो जायगा, जल मिला दीजिये तो गुलाबी रंग हो जायगा। रुधिरको आगपर गरम कीजिये तो नीले रंगका हो जायगा। शुद्ध वायुमें रुधिर गहरा लाल प्रतीत होगा। रुधिरको घने आकाशमें देखिये तो धूमिल दीख पड़ेगा। नाडीपुञ्जोंपर कोई भी अक्षर लिखे नहीं हैं, फिर भी बोलनेके समय वायुके धक्केसे जिस दलसे जो अक्षर उत्पन्न होता है, वही उस दलका अक्षर माना गया है।

चक्रोंके यन्त्र--चक्रोंके यन्त्र क्रमशः चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, गोलाकार, लिङ्गाकार तथा पूर्णचन्द्राकार हैं। इसका अर्थ यह है कि इस शरीरकी भिन्न-भिन्न नाडियाँ वायुके धक्कोंके कारण भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके स्थानमें एक विशेष रूपकी आकृति ग्रहण करती हैं। उदाहरणार्थ, जलती हुई अग्निको देखिये तो वह ठीक त्रिकोणाकृति दीख पड़ेगी। त्रिकोणका मुख ऊपरको उठती हुई लपटोंमें दीखेगा। इस विषयमें जिज्ञासु पाठकोंको श्रीरामप्रसादकृत Nature's Finer Forces नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

यन्त्रोंके तत्त्व--इन तत्त्वोंका तात्पर्य यह है कि भोजनके उपरान्त शरीरके इन-इन स्थानोंमें ये-ये तत्त्व तैयार होते हैं और इनसे पुष्ट होकर शरीर अपने कार्योंमें प्रवृत्त होता है।

तत्त्वोंके बीज--जिस प्रकार किसी यन्त्रमें (तथा इंजिनमें) स्थान-स्थानपर विशेष प्रकारके शब्द होते हैं उसी प्रकार वायुके संचारसे शरीरस्थ तत्त्वविशेषोंके स्थानमें विशेष-विशेष शब्द होते हैं। जैसे--पृथ्वी-तत्त्वके स्थानपर जहाँ मल निकलता है, वहाँ वायु लँ लँ लँ लँ करता हुआ प्रतीत होता है। मूत्राशयके स्थानपर जल-तत्त्वके बहनेके कारण वायु वँ वँ वँ वँ शब्द करता है। अन्नादि-पाचनके समय नाभिके अग्नितत्त्वसे वायु रँ रँ रँ रँ करता हुआ चलता है, आदि।

बीजोंके वाहन--इनसे यह अभिप्राय है कि इन-इन स्थानोंपर वायुकी गति इन-इन पशुओंकी तरह होती है जैसे--पृथिवीतत्त्वके बोझके कारण वायुकी गति हाथीकी तरह मन्द हो जाती है। जलतत्त्वके बहनेवाला होनेके कारण वायु मकरकी तरह डुबकता चलता है। जिस प्रकार बटलोईमें भोजन पकते समय वायु वेगसे चलता है, उसी प्रकार जठराग्निके कारण वायु जिस वेगसे चलता है, वह मेढ़ेकी चालकी तरह है। हृदयके वायु-तत्त्वमें शरीरस्थ वायु हिरनकी तरह छलाँग मारकर भागता है, आदि।

चक्रोंके देव-देवी--यह विषय ध्यानयोग तथा उपासना-भेदसे सम्बद्ध है। जो देव-देवी ऊपर कहे गये हैं, वे

प्रचलित 'षट्चक्र-निरूपण' नामक ग्रन्थके आधारपर हैं। इनके अतिरिक्त अन्य तथा प्राचीनतर पुस्तकोंमें इन चक्रोंके अन्य देवी-देवता वर्णित हैं। जैसे—बाला-पद्धतिके अनुसार देवता ये हैं—

गणेश्वरो विधिर्विष्णुः शिवो जीवो गुरुस्तथा।
षडेते हंसतामेत्य मूलाधारादिषु स्थिताः॥

और इनकी शक्तियाँ ये हैं—

शक्तिः सिद्धिर्गणेशस्य ब्रह्मणश्च सरस्वती।
लक्ष्मीर्नारायणस्यापि पार्वती च पिनाकिनः॥
अविद्या चैव जीवस्य गुरोर्ज्ञानं परापरम्।
मोक्षबीजात्मिका विद्या शक्तिश्च परमात्मनः॥

कुण्डलिनीयोग केवल सुयोग्य गुरुके निरीक्षणमें ही सीखना और अभ्यास करना चाहिये। केवल पुस्तकोंके आधारपर इस विषयमें पड़ना बड़े भयंकर परिणामवाला हो सकता है। इसमें जीवनकी बाजी लग जाती है और लेशमात्र भी भूलसे कच्चे साधक पागल होते अथवा मृत्युको प्राप्त होते देखे गये हैं। अतः इस योगको साधारण खेल अथवा परीक्षाकी वस्तु न गिनना चाहिये और न इन चक्रोंके विषयमें वर्णित सिद्धियोंके फेरमें पड़ना चाहिये। जो भी साधना की जाय, वह निष्काम होनी चाहिये। ऐसा करनेसे विघ्नोंकी तथा भयकी सम्भावना कम रहती है।

षट्चक्रोंके विषयमें अनेक उपनिषदोंमें विशद वर्णन पाये जाते हैं। जैसे—हंसोपनिषद्, योगचूडामणि-उपनिषद्, त्रिशिखब्राह्मण-उपनिषद्, ध्यानबिन्दु-उपनिषद्, योगशिखोपनिषद् तथा योगकुण्डल्युपनिषद्। इनके अतिरिक्त अन्य कई उपनिषदोंमें, देवीभागवत, लिङ्गपुराण, अग्निपुराण तथा स्वामी शंकराचार्यकृत सौन्दर्यलहरीकी व्याख्याओंमें भी इनपर विस्तृत प्रकाश उपलब्ध होता है। दो-तीन सौ वर्ष पुराना पूर्णानन्दका लिखा हुआ 'षट्चक्रनिरूपण' नामक ग्रन्थ आजकल इस विषयमें विशेषरूपसे प्रचलित है। अंग्रेजीमें कलकत्ता-हाईकोर्टके भूतपूर्व जज सर जॉन वुडरफद्वारा लिखित Serpent Power इस विषयमें एक बड़ा ही अपूर्व तथा सुन्दर ग्रन्थ है।

'माँ'का प्रेमाकर्षण

'माँ'-शब्दमें कितना प्रेमामृत भरा हुआ है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पुत्र जब अपनी माँको 'माँ,' 'माँ!' कहकर पुकारता है, तब माताका हृदय प्रेमसे भर आता है। ऐसे ही भक्तजन जब 'माँ', माँ' कहकर अपने उपास्य देवको पुकारते हैं, तब उनके हृदयमें एक दिव्य आनन्दकी धारा बहने लगती है। इसे सभी प्रत्यक्ष उपलब्ध कर सकते हैं। एक भक्तने कहा है—'माता! मैं तुझे माँ-माँ कहकर इतना पुकारता हूँ, परंतु तू अभीतक सामने नहीं आती। इसका क्या कारण है? 'माँ'-शब्द मेरे हृदयको बहुत प्रिय है और मेरी माताको भी अत्यधिक प्रिय था। जब मैं 'माँ' कहकर उसे पुकारता था, तब वह गद्गद हो जाती थी। माता! मालूम होता है, तुझे भी 'माँ'-शब्द अत्यन्त प्रिय है, इसीसे तू यह सोचती होगी कि इस बच्चेके पास यदि मैं प्रकट हो जाऊँगी तो सम्भवतः यह 'माँ' की पुकार लगाना बंद कर देगा। सम्भवतः इसी आशङ्कासे और 'माँ'की आवाज सुननेके लोभसे ही तू नहीं आती।' ये सब माताके पुजारीके भाव हैं। परमहंस स्वामी रामकृष्ण जब 'माँ'-'माँ' कहकर पुकारते थे, तब वे शरीरकी सुध भूलकर भावविह्वल हो जाते थे।

—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया

कुण्डलिनी-जागरणकी विधि

(स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी)

वेद-वर्णित जगद्व्यापिनी आद्याशक्ति ही ब्रह्मशक्ति है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमय दृश्य-प्रपञ्च उसी ब्रह्मशक्तिका विलास है।

शास्त्रोंमें इसे देवी, महादेवी, शिवा, प्रकृति, भद्रा, रुद्रा, नित्या, गौरी, धात्री तथा शक्ति आदि अनेक नामोंसे वर्णित किया गया है। शास्त्रोंमें इन प्राणशक्तियोंके केन्द्रीभूत शक्तिको 'देवी'-कुण्डलिनी कहा गया है। पर्वत, अरण्य, समुद्र आदि धारण करनेवाली धरित्रीका आधार जैसे अनन्त नाग हैं, उसी प्रकार शरीरस्थ समस्त गति और क्रिया-शक्तिका आधार कुण्डिलिनी-शक्ति है। समस्त शक्ति एक स्थलमें कुण्डली बनाकर सर्पवत् बैठी रहती है, इसलिये इसका नाम कुण्डलिनी-शक्ति है। यह शक्ति मातृगर्भस्थ संतानमें जाग्रत् रहनेपर भी संतानके भूमिष्ठ होते ही निद्रित-सी हो जाती है। मुमुक्षु साधक आत्मकल्याणके निमित्त इस कुण्डलिनी-शक्तिको सुषुम्ना नाडीके द्वारा ऊर्ध्वगतिवाली करके क्रमसे षट्चक्र-भेदनद्वारा सहस्रारमें ले जानेके लिये प्रयत्नशील रहता है। जब वह इस प्रकार करनेमें समर्थ होता है, तब उसका दिव्य नेत्र खुल जाता है और दिव्य ज्ञानशक्तिके बलसे वह अपने स्वरूपको देखकर कृतकृत्य हो जाता है—जन्म-मृत्युके कष्टसे मुक्त हो जाता है।

कुण्डलिनी-शक्तिका स्थान—मनुष्यमात्रके मेरुदण्डके उभय पार्श्वमें इडा, पिङ्गला नामक दो नाडियाँ हैं। इन दोनों नाडियोंके मध्यमें अतिसूक्ष्म एक दूसरी नाडी है, जिसका नाम सुषुम्ना है। इसके नीचेके भागमें चतुर्दल त्रिकोणाकार एक कमल है, इस कमलपर कुण्डलिनी-शक्ति सर्पाकार कुण्डली बनाकर स्थित है। यथा—

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा॥
संवेष्ट्य सकलां नाडीं सार्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्ना विवरे स्थिता॥

गुदा और लिङ्गके बीचमें निम्नाभिमुख एक योनि-मण्डल है, जिसे कन्द-स्थान भी कहा जाता है। उसी स्थानमें कुण्डलिनी-शक्ति समस्त नाडियोंको वेष्टित करती हुई, साढ़े तीन फेरा भरकर, अपनी पूँछ मुखमें लिये सुषुम्नाके छिद्रको बंद कर सर्पके सदृश अवस्थान करती है।

सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अहिवत् सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञका॥

सर्प-तुल्या यह कुण्डलिनी-शक्ति पूर्ववर्णित स्थानमें निद्रित रहती है, परंतु अपनी दीप्तिसे स्वयं दीप्तिमती है। वह सर्पके समान सन्धिस्थानमें वाग्बीजके रूपमें स्थित है।

ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्भया स्वर्णभास्वरा।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका॥

इस कुण्डलिनी-शक्तिको व्यापक परमात्माकी शक्ति जानना चाहिये। यह भयरहित तथा सुवर्णके तुल्य दीप्तिमती है तथा सत्त्व, रज और तमोगुणोंकी प्रसूति है। 'हठयोगप्रदीपिका'में कहा है—

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्॥

कन्दके ऊपरी भागमें कुण्डलिनी-शक्ति शयन कर रही है। जो योगी इसका उत्थापन करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। जो कुण्डलिनी-शक्तिको जगानेकी युक्ति जानता है, वही योगको यथार्थ जानता है। अतः जो पुरुष प्राणको दशमद्वार (सहस्रार)में ले

जाना चाहता है, उसे उचित है कि वह गुरुकी संनिधिमें एकाग्रचित्त होकर युक्तिसे उस शक्तिको जाग्रत् करे।

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥
(शिवसंहिता)

'गुरुके प्रसादसे जब निद्रिता कुण्डलिनी-शक्ति जग जाती है, तब मूलाधार आदि षट्चक्रमें स्थित पद्म तथा ग्रन्थियोंका भेदन हो जाता है। इसलिये सर्वप्रकारके प्रयत्नसे ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें स्थित उस निद्रिता परमेश्वरीशक्ति कुण्डलिनीको प्रबोधित करनेके लिये प्राणायाम, मुद्रा आदिका अभ्यास करना चाहिये।'

बन्धत्रययुक्त प्राणायाम, मुद्राओं तथा भावनाओंद्वारा धीरे-धीरे कुण्डलिनीशक्ति जाग्रत् होती है। इस शक्तिको जाग्रत् करनेके लिये शास्त्रोक्त उपायोंके रहते हुए भी परिपक्व अनुभवी उपदेष्टाकी विशेष आवश्यकता है; क्योंकि शास्त्रीय उपाय-समूहोंकी विधि तथा अधिकार-परत्वेन उपयोगिताका विचार उपयुक्त अनुभवी गुरु ही कर सकता है। इसलिये मुमुक्षु साधकोंको चाहिये कि अनुभवी सद्गुरुसे इस शक्तिके जागरणकी कुंजी प्राप्त करें। केवल ग्रन्थोंपर निर्भर न करें, अन्यथा अनर्थकी सम्भावना है।

अब मैं एक अनुभवसिद्ध प्रणालीका साधकोंके हितार्थ संक्षेपसे वर्णन करता हूँ—

(१) साधकको सबसे पहले नेती, धोती, बस्ति आदि क्रियाओंद्वारा घट (देह)-शुद्धि करनी चाहिये। (२) पश्चात् अष्ट प्रकारके प्राणायामकी शिक्षा लेनी चाहिये। यद्यपि षट्चक्रभेदनमें सभी प्रकारके प्राणायामोंकी आवश्यकता नहीं है, तथापि योगियोंके लिये सभी प्रकारके प्राणायामकी शिक्षा उपयोगी है और इससे अभ्यासकी पटुता भी होती है। (३) प्राणायामोंके पीछे मुद्राएँ अर्थात् महामुद्रा, महावेध, महाबन्ध, विपरीतकरणी, तारण, परिधानयुक्ति-चालन, शक्तिचालनी आदि आवश्यक मुद्राएँ भी सीखनी चाहिये। स्मरण रहे, इन सब प्राणायामोंको तथा मुद्राओंको सदा बन्धत्रयके सहित ही करना चाहिये, अन्यथा विषमय फल होनेकी सम्भावना है। (४) राजयोगकी विधिके अनुसार षट्चक्रोंमें भावनाएँ करनी पड़ती हैं।

प्रतिदिनका साधनाक्रम

प्रातः ५ बजेसे ९ बजेतकका कार्यक्रम—

प्रातः ४ बजे शय्या त्यागकर देहशुद्धि कर लें। पश्चात् (१) दोनों प्रकारका—भस्त्रिका प्राणायाम ५ से २५ प्राणायामतक। (२) उभय प्रकारकी—शक्तिचालनी मुद्रा प्रत्येक ५ से १० तक। (३) ताड़नमुद्रा—४ प्राणायाममें १०१ तक। (४) परिधानयुक्तिचालन—४ प्राणायाममें १०१ तक। (५) शेष समयमें षट्चक्रभेदनकी मानसिक क्रियाएँ या संयम (जो आगे बतलाया जायगा)।

सायं ४ बजेसे ९ बजेतकका कार्यक्रम—

(१) महामुद्रा—प्रत्येक पैरपर ५ से २५ तक।
(२) महाबन्ध—प्रत्येक पैरपर ५ से २५ तक।
(३) महावेध—उभय प्रकारका ५ से १० तक।
(४) विपरीतकरणी मुद्रा—५ से १० तक।
(५) शेष समयमें षट्चक्रभेदनकी क्रियाएँ।
(राजयोग)

षट्चक्रोंमें संयमकी विधि

गुदामें जो मूलाधारचक्र स्थित है, वह एक चतुर्दल कमलके सदृश है। उस कमलमें चार पँखुड़ियाँ हैं, उनमें व, श, ष, स—ये चार बीजाक्षर हैं। इसमें पृथ्वी-तत्त्व तथा गणपति देवता हैं, ऐसी भावना करनी
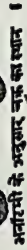
आज्ञाचक्र
(अर्थात्)
द्विदलपद्म
MEDULLA

१ सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रह्मनाड़ी

मनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान

अर्धचंद्र
हाकिनी
इतरलिङ्ग
ॐ कार प्रणव
गांधारी

नाम - आज्ञाचक्र	वर्णों के अक्षर - ह, क्ष	देव - लिङ्ग	ध्यानफल
स्थान - भ्रूमध्य	नामतत्व - महत्तत्व	देवशक्ति - हाकिनी	वाक्य सिद्धि प्राप्त होती है ।
दल - द्विदल	तत्वबीज - ॐ	यंत्र - लिङ्गाकार	अंग्रेजीनाम उन नाड़ियों के समूह का जो इन चक्रों से सम्बन्ध रखती है -
वर्ण - श्वेत	बीजका वाहन - नाद	लोक - तपः	MEDULLA.

विशुद्धाख्यचक्र
(अर्थात्)
षोडशदल पद्म
CAROTID PLEXUS

१ सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रह्मनाड़ी

अनॉटमी के अनुसार चक्र का स्थान

नाम - विशुद्धाख्यचक्र	दलों के अक्षर - अ से अः तक	देव - पंचवक्त्र	ध्यान फल
स्थान - कण्ठ	नामतत्व - आकाश	देवशक्ति - शाकिनी	शब्दब्रह्मवेत्ता सर्वज्ञ ज्ञानवान् शान्तचित्त त्रिलोकदर्शी सर्व हितकारी आरोग्य चिरंजीवी और तेजस्वी होता है । अंग्रेजी नाम उन नाड़ियों के समूह का जो इन चक्र से संबंध रखती है —
दल - षोडश	तत्वबीज - हं	यंत्र - शून्यचक्र (गोलाकार)	Carotid Plexus
वर्ण - धूम्र	बीजका वाहन - हस्ती	ज्ञानेन्द्रिय - कर्ण	
लोक - जनः	गुण - शब्द	कर्मेन्द्रिय - वाक्	

शून्यचक्र

सहस्रदलपद्म

BRAIN

विसर्ग परमशिव

पूर्णचंद्र

नामचक्र - शून्य
स्थान - मस्तक
दल - सहस्र
दलोंकेअक्षर - अँ से क्षँ तक
लोक - सत्यः

नामतत्व - तत्वातीत
तत्वबीज - : विसर्ग
बीजकावाहन - विन्दु
देव - परब्रम्ह
देवशक्ति - महाशक्ति
यंत्र - पूर्णचन्द्र निराकार
ध्यानफल - अमर, मुक्त, उत्पत्ति पालन में समर्थ, आकाशगामी और समाधियुक्त होता है।

षट्चक्रमूर्तिः

सहस्रदलपद्म — शून्यचक्र ८
द्विदलपद्म — आज्ञाख्यचक्र ६
षोडशदलपद्म — विशुद्धख्यचक्र ५
द्वादशदलपद्म — अनाहतचक्र ४
दशदलपद्म — मणिपूरकचक्र ३
षट्दलपद्म — स्वाधिष्ठानचक्र
चतुर्दलपद्म — आधारचक्र
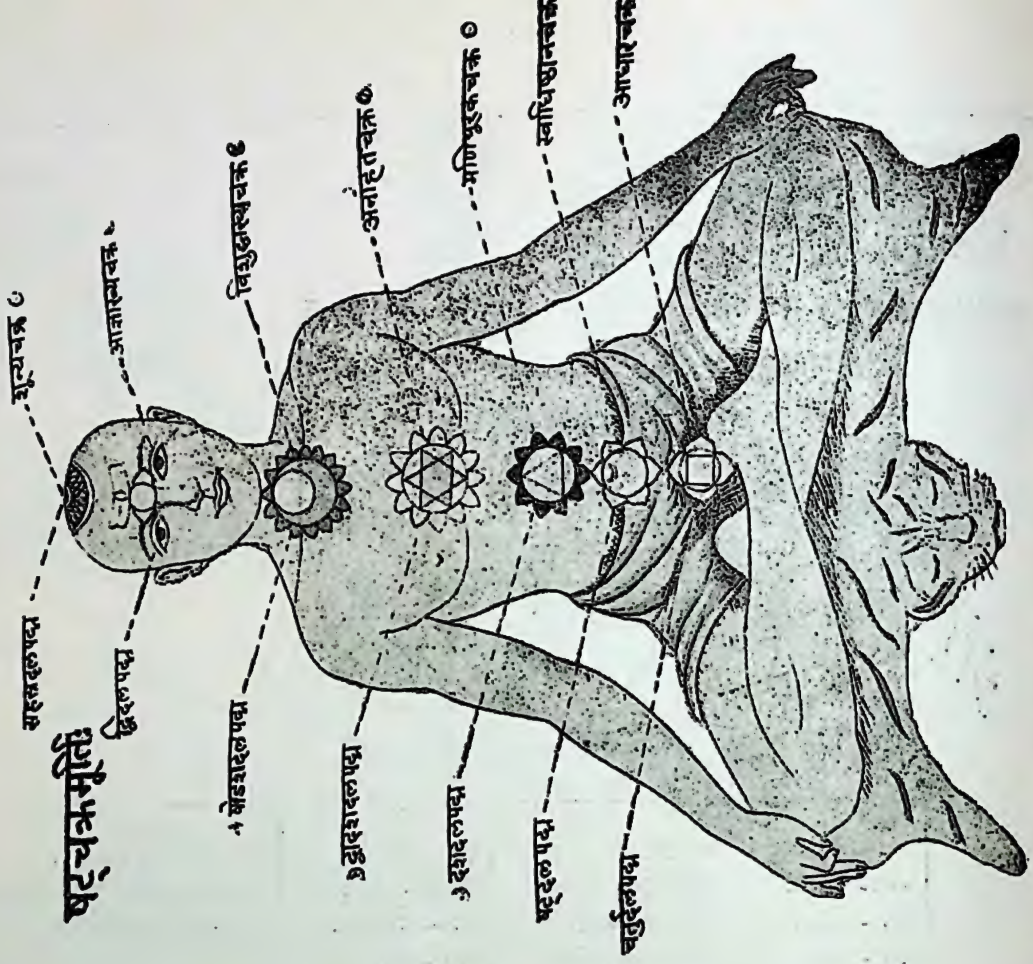
सिद्धासनम्

चाहिये । पश्चात् श्रद्धासहित गणेशजीकी मानसिक पूजा, जप तथा कुण्डलिनी-शक्तिके जागरणके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये । इसके पश्चात् मूलाधारचक्रके ऊपरी भागमें अर्थात् गुदा और लिङ्गके मध्यदेशमें स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्रका चिन्तन करना होगा । यह चक्र छः पँखुड़ियोंवाला है । इन पँखुड़ियोंमें ब से ल तक छः बीजाक्षर हैं । इनमें जल तत्त्व है और ब्रह्माजी देवता हैं । पूर्वोक्त प्रकारसे यहाँ भी ब्रह्माजीकी मानसिक पूजा आदि करके नाभिकमलमें तीसरे मणिपूरचक्रका चिन्तन करना होगा । इस चक्रमें दस पँखुड़ियोंवाला कमल है । उसमें ड से फ तक दस वर्ण बीजाक्षर हैं । इनमें अग्नितत्त्व तथा विष्णु-भगवान् देवता हैं । यहाँ भी नियमित पूजा, जप तथा स्तुति आदि करके हृदयमें अनाहत चक्रका चिन्तन करना होगा । इस चक्रका कमल बारह पँखुड़ियोंवाला है । इसमें क से ठ तक बारह वर्ण बीजाक्षर हैं । इनमें वायुतत्त्व और रुद्र देवता हैं । समाहितचित्त होकर इनका भी पूजन, जप आदि करना होगा । इसके आगे कण्ठदेशमें विशुद्ध नामक चक्र है । यह सोलह पँखुड़ियोंवाला कमल है और समस्त स्वर-वर्ण इसके बीजाक्षर हैं । इनमें आकाशतत्त्व तथा चन्द्रमा देवता हैं । पूर्वोक्त रीतिसे इनकी भी पूजा आदि करनी होगी । पश्चात् भ्रुकुटिमें (दोनों भ्रूके मध्यदेशमें) स्थित द्विदल आज्ञाचक्रकी भावना करनी होगी । हं, सः, —ये दो अक्षर यहाँके बीजाक्षर हैं और इनके सदाशिव देवता हैं । यहाँपर सर्वदा 'सोऽहं' मन्त्रका जप होता है । पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र या मूर्धस्थानमें सहस्रार (सहस्रदल कमल) की भावना करनी होगी । यह स्थान तत्त्वातीत है । निर्गुण, निराकार, शुद्ध, चेतन परमात्मा यहाँ प्रकाश-स्वरूपमें स्थित है । इसमें अपने स्वरूपको लय कर देना होगा ।

इस प्रकार प्रतिदिन निरन्तर आदरके साथ नियमित क्रिया तथा चिन्तन करना होगा । इस क्रियामें पहले-पहल शरीरसे बहुत ही स्वेद निकलेगा । पश्चात् कुछ दिनोंके पीछे शरीरमें बिजली-जैसी चमक मालूम होगी और कुछ दिनोंके पश्चात् चींटीके चलनेके समान प्राण-शक्तिके चलनेका अनुभव होगा । तत्पश्चात् धीरे-धीरे मूलाधारचक्रका भेदन और कुण्डलिनी-शक्तिके ऊर्ध्वगमन-का अनुभव होगा । प्रतिदिन अभ्यासके अन्तमें थोड़े समयके लिये निम्न प्रकारसे मानसिक भावना करें—

(१) मैं पूर्ण आरोग्यस्वरूप हूँ । (२) मैं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हूँ । (३) मैं पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ । (४) मैं सर्वोन्नतिका मूल हूँ । (५) मैं काल, कर्म तथा मायासे मुक्त हूँ । (६) मैं अजर, अमर, अविनाशी, निर्लेप, निर्विकार, व्यापक तथा शान्तस्वरूप हूँ ।

इस प्रकार साधना करते हुए साधक कुछ महीनोंके भीतर कुण्डलिनी-शक्तिका जागरण कर सकता है । इतना स्मरण रहे कि कुण्डलिनी-शक्तिके जाग्रत् होनेसे ही साधक अपनेको कृतकृत्य न समझे, अपितु प्राणवायुको सहस्रारमें अधिक देरतक धारण करनेके लिये अभ्यास अवश्य चालू रखे । इससे धीरे-धीरे समाधि-दशाकी प्राप्ति होगी ।

साधनके बीचमें कभी-कभी प्राणवायुके सुषुम्नामें चढ़ जानेपर कटिदेश, वक्षःस्थल तथा कण्ठदेशमें एक प्रकारका बन्धन-जैसा मालूम पड़ता है । इससे साधकको घबरानेकी आवश्यकता नहीं है । प्राणवायुकी निम्न गतिके साथ ही वह बन्धन भी जाता रहेगा । हाँ, यदि कभी-कभी क्रियाद्वारा पेशाब आदि रुक जाय, तो पलासके पत्ते पीसकर कन्दस्थानमें उसका लेप करना चाहिये । इससे पेशाब आदि खुल जायगा ।

महात्रिपुरसुन्दरी-स्वरूप ॐकारकी शक्ति-साधना

(डॉ० श्रीरुद्रदेवजी त्रिपाठी साहित्य-सांख्ययोगदर्शनाचार्य, एम्० ए० (संस्कृत-हिन्दी), पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

मणिपूरविहितवसतेः स्तनयित्नोः सदाशिवाङ्के लसिता।
सौदामिनी स्थिरा सा त्रिपुरा भातु चिदम्बरे नः ॥

ओंकारकी निष्पत्तिका मूल 'अजपा-गायत्री'

मन्त्रशास्त्रोंमें विवरण प्राप्त होता है कि सहस्रारकी कर्णिकाके अन्तर्गत द्वादशदल कमलके मध्य मणिपीठमें 'ह-स' अक्षर ही श्वास-प्रश्वासके मूलमें व्याप्त हैं और इन्हींके आधारपर 'हं सः' स्वरूप गुरुके दोनों चरणोंकी भावना की जाती है। 'गुरुपादुका-पञ्चक' में कहा गया है—

ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखात्रयं
तद्विलासपरिबृंहणास्पदम् ।
विश्वघस्मरमहोच्चिदोत्कटं
व्यामृशामि युगमादिहंसयोः ॥

'हंस'-मन्त्रका श्वास-प्रश्वासमें अवसरण होकर बिना किसी श्रमके जब जप होता है, तब यह 'अजपा-गायत्री'के नामसे ज्ञात होता है तथा आरोहावरोहात्मक क्रमसे जप होनेपर यह मन्त्र 'हंसः' 'सोऽहम्' रूपमें मान्य होता है।

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसोऽतिपरमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥

'शक्तिसंगम-तन्त्र'ने विशेषरूपसे स्पष्ट करते हुए यही कहा है—

हकारस्य सकारस्य लोपे कामकला भवेत्।

इस प्रकार वर्णद्वयत्याग अर्थात् हकार-सकारके लोपसे ओ + अम्= ॐ हो गया तथा बिन्दु और विसर्ग कामकलात्मक त्रिकोण बन गया। यह बात निम्नलिखित वचनसे स्पष्ट है—

मुखं बिन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम्।
सोऽहमित्यत्र देवेशि प्रणवः परिनिष्ठितः ॥

श्वास-प्रश्वासकी क्रियामें 'हंसः' मन्त्र विपरीतगतिक होकर 'सोहम्' बन जाता है। इसीके मध्य अकार प्रश्लेष माननेसे 'सोऽहम्' रूप ध्वन्यात्मक उत्पत्ति होती हैं और इसके 'अनाहत-चक्र' पर संघर्षसे वायुमय प्रणवकी अनाहत ध्वनि होकर उसकी ऊर्ध्वगति होनेसे आज्ञा-चक्रपर स्थिति हो जाती है। इस कथनसे भी 'प्रणव' श्रीविद्याका बीज और कामकलारूप है। इसी सुन्दरी-श्रीविद्यारूप बिन्दुसे नादरूप पृथक् बिन्दु बना, जो 'कामेश्वर' अथवा 'परमशिव' कहलाया।

प्रणवके सम्बन्धमें आगमिक दृष्टि

'महाकाल-संहिता' के दक्षिणखण्डानुसार भगवतीके दिव्य मानसिक आत्मरमण-आनन्दसे बिन्दुका उद्भव हुआ, जो श्रीविद्यारूपिणी है और वही कला-सप्तकसे युक्त होकर प्रणवरूप बना। यथा—

एतस्मिन्नेव काले तु स्वबिम्बं पश्यति शिवा।
तद्बिम्बं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम् ॥
विपरीतरतौ देवि बिन्दुरेकोऽभवत् पुरा।
श्रीमहासुन्दरीरूपं बिभ्रती परमाः कलाः ॥
प्रणवः सुन्दरीरूपः कलासप्तकसंयुतः ॥

प्रणवकी इन सात कलाओंके विषयमें तन्त्रोंका भी वचन है—

आदौ परा विनिर्दिष्टा ततश्चैव परात्परा।
तदतीता तृतीया स्याच्चित्परा च चतुर्थिका ॥
तत्परा पञ्चमी ज्ञेया तदतीता रसाभिधा।
सर्वातीता सप्तमी स्यादेवं सप्तविधा कला ॥

इसके अनुसार—१—परा, २—परात्परा, ३—परातीता, ४—चित्परा, ५—चित्परात्परा, ६—चिदतीता और ७—सर्वातीता—ये सात कलाएँ ओंकारमें निविष्ट हैं। ये कलाएँ इन नामोंसे अभिहित होकर ही सुन्दरी-कलाके पञ्चकृत्यकारी शिव तथा बिन्दु-नादरूप शिव-शक्तिके बोधक कहे गये हैं। १—ब्रह्मा, २—विष्णु, ३—रुद्र, ४—ईश्वर तथा ५—सदाशिव—ये पञ्च महाप्रेत

हैं, जो प्रणवमें निविष्ट हैं। भगवतीके महासिंहासनके ब्रह्मा आदि चार पाद हैं और आच्छादन भगवान् कामेश हैं, जहाँ सुन्दरी-कला विराजमान है।[1]

यही कारण है कि 'श्रीचक्र' की षोडशावरण-पूजा करनेवाले साधक बिन्दुचक्रमें त्रिबिन्दुरूप महावैन्दव-चक्रकी भावना करके उसमें ऊर्ध्वभागस्थ बिन्दुको प्रणवरूप मानते हुए उसकी अर्चना करते हैं। वहाँ वेदत्रयस्वरूपिणी महानिर्वाणसुन्दरीकी अङ्गदेवता वेदाधिष्ठात्री शक्तियोंकी पूजाके पश्चात् प्रणवके पाँच अङ्गोंमें—१—ऊर्ध्वशुण्ड, २—अधःशुण्ड, ३—मध्यशुण्ड, एवं ४—चन्द्रकलामें विद्या-अविद्यादि तथा ५—बिन्दुमें सृष्ट्यादि सुन्दरीपञ्चककी पूजा होती है। मध्यबिन्दुमें स्थित अङ्गुष्ठरूप पुरुषके शुक्लादि सप्त चरण, षडन्वयादि सप्त शाम्भव तथा कूटत्रयकी अर्चना विहित है।

ओंकारका स्वरूप-विस्तार

प्रणवके इस महत्त्वपूर्ण चिन्तनकी दिशामें तन्त्र-शास्त्रोंका योगदान अत्यन्त विशाल है। भिन्न-भिन्न तन्त्रों-आगमोंमें स्वेष्टदेवताकृतका स्वरूप ओंकारमय ही दिखलाया गया है। आद्यशंकराचार्यने **'श्रीयतिदण्डैश्वर्य-विधान'** नामक महाग्रन्थमें प्रणव या ओंकारको यतिके दण्डकी प्रतिकृति सिद्ध करते हुए संन्यासियोंके लिये उसे साक्षात् अद्वैतब्रह्मका बोधक तो बतलाया ही है, साथ ही यतिदण्डको 'श्रीचक्र'का रूप प्रतिपादित करनेकी धारामें ओंकारकी कुल २५६ मात्राओं तथा उनकी शक्तियोंका भी सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया है।

भगवान् श्रीरामने भी 'रामगीता'में हनुमान्‌जीको ओंकारकी इन्हीं २५६ मात्राओंका उपदेश दिया है, किंतु वहाँ उक्त मात्राओंकी शक्तियोंका उल्लेख नहीं है, जिसे आद्यशंकराचार्यने दिखलाकर 'शाक्त-सम्प्रदाय'के उपासकोंके लिये ब्रह्मविद्याका द्वार खोल दिया है।

'श्रीत्रिपुरोपनिषद्' के (पृष्ठ ५ में) भाष्यकार श्रीरामानन्द यतिने अपने भाष्यमें श्रीविद्याको ही ब्रह्मविद्या प्रतिपादित किया है। इस दृष्टिसे भी इन २५६ मात्राओं एवं उनकी शक्तियोंका विवेचन अत्यन्त उपादेय है। इससे ओंकारके स्वरूप-विस्तारको समझनेमें पूर्ण सहायता प्राप्त होगी।

प्रणवकी तान्त्रिक महिमा एवं वर्णत्रय

यद्यपि **'प्रणवश्च स्मृतः साक्षादद्वैतब्रह्मबोधकः'** कहकर प्रणवको अद्वैतब्रह्मका बोधक कहा गया है, तथापि इसे मन्त्रशास्त्रमें व्याप्त तत्त्व, मन्त्र, दैवतविग्रह, सर्वाम्नायमूलक तथा मोक्षका बोधक व्यक्त करते हुए आद्यशंकराचार्यने सर्वप्रथम कहा है—

सर्वतत्त्वमयः सर्वमन्त्रदैवतविग्रहः।
सर्वाम्नायात्मकश्चायं प्रणवः परिपठ्यते।
शब्दब्रह्मात्मना सोऽयं महानिर्वाणबोधकः॥

यही कारण है कि प्रत्येक साधना-पथके पथिकको प्रणवमें स्थित मात्राओं और मन्त्रोंको अवश्य जानना चाहिये। प्रणवकी संरचना 'अ+उ+म्'—इन तीनों वर्णोंसे हुई है, जिससे सर्वसामान्यजन परिचित हैं। प्रणवका लेखन ऊर्ध्वशुण्ड, मध्यशुण्ड और अधःशुण्डके रूपमें चन्द्रकला एवं बिन्दुके योगसे पूर्ण होता है। ये तीन शुण्डरूप प्रमुख भाग ही सोम, सूर्य और अग्निरूपी तीन मात्राएँ ॐ में विराजमान हैं। यथा—

सोमसूर्याग्निरूपास्तु तिस्रो मात्राः प्रतिष्ठिताः।
प्रणवे स्थूलरूपेण याभिर्विश्वं व्यवस्थितम्॥

वैसे तान्त्रिक ग्रन्थोंमें सोमकी एक सौ छत्तीस, सूर्यकी एक सौ सोलह और अग्निकी एक सौ आठ मात्राएँ बतलायी गयी हैं। ये सब मिलकर तीन सौ साठ होती हैं तथा इन्हींसे एक वर्षके दिवसोंका बोध होता है।

---

१. ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। एते पञ्च महाप्रेताः प्रणवं च समाश्रिताः॥
ब्रह्मादयश्चतुष्पादाः कशिपुस्तु सदाशिवः। आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरी कला॥ (शक्तिसंगमतन्त्र-१)

अतः प्रणवके अ+उ+म्—ये तीन वर्ण क्रमशः सोम, सूर्य और अग्निके प्रतीक होनेके साथ ही हमारी वर्ष-गणनाके भी द्योतक हैं।

उपर्युक्त तीन मात्राओंके सूक्ष्म-चिन्तनसे पञ्चमात्रात्मक ओंकारका बोध कराते हुए कहा गया है—

अ उ मा नादबिन्दू च मात्राः पञ्च यथाक्रमः।

अर्थात् ॐ में 'अ, उ, म्, नाद और बिन्दु—ये पाँच मात्राएँ क्रमशः विद्यमान हैं। 'ईशानशिवगुरुदेव-पद्धति' के द्वितीय पटलके प्रणवाधिकारमें 'ॐ'के अ-उ-म्-बिन्दु-नादरूप पञ्चभेदात्मक स्वरूपकी पचास कलाओंका निर्देश किया गया है। यथा—

अकारकी दस कलाएँ—१–सृष्टि, २–ऋद्धि, ३–स्मृति, ४–मेधा, ५–कान्ति, ६–लक्ष्मी, ७–धृति, ८–स्थिरा, ९–स्थिति और १०–सिद्धि।

उकारकी दस कलाएँ—१–जरा, २–पालिनी, ३–शान्ति, ४–ऐश्वरी, ५–रति, ६–कामिका, ७–वरदा, ८–ह्लादिनी, ९–प्रीति और १०–दीर्घा।

मकारकी दस कलाएँ—१–तीक्ष्णा, २–रौद्रा, ३–माया, ४–निद्रा, ५–तन्द्री, ६–क्षुधा, ७–क्रोधिनी, ८–क्रिया, ९–उत्कारिका, १०–मृत्यु।

बिन्दुकी चार कलाएँ—१–पीता, २–श्वेता, ३–अरुणा और ४–गौरी।

नादकी सोलह कलाएँ—१–निवृत्ति, २–प्रतिष्ठा, ३–विद्या, ४–शान्ति, ५–रन्धिका, ६–दीपिका, ७–रेचिका, ८–मोचिका, ९–सूक्ष्मा, १०–असूक्ष्मा, ११–अमृता, १२–ज्ञानामृता, १३–आप्यायनी, १४–व्यापिनी, १५–व्योमरूपा तथा १६–अनन्ता।

ये कलाएँ क्रमशः ऋग्वेदमें ब्रह्म-सृष्टि-हेतु, यजुर्वेदमें विष्णु-स्थितिहेतु, सामवेदमें—रुद्र-संहारहेतु, अथर्ववेदमें-ईश्वरात्मिका सर्वकामप्रद एवं सदाशिवात्मिका भुक्तिमुक्तिप्रद बतलायी गयी हैं। (क्रमशः)

शक्तिकी सर्वव्यापकता

'शक्ति ही सब कुछ है। शक्तिके बिना हम न सोच सकते हैं, न बोल सकते हैं, न हिल-डुल सकते हैं, न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न स्पर्श कर सकते हैं, न स्वाद ले सकते हैं, न जान सकते हैं और न समझ ही सकते हैं। हम शक्तिके बिना न तो खड़े हो सकते हैं और न चल-फिर सकते हैं। फल, अन्न, शाक, भाजी, चावल, दाल, चीनी आदि सब शक्तिसे ही उत्पन्न होते हैं। इन्द्रिय और प्राण भी शक्तिके ही परिणाम हैं। विद्युत्-शक्ति, आकर्षण-शक्ति तथा चिन्तन-शक्ति आदि सभी 'शक्तिके व्यक्त रूप हैं।'

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

शक्ति-उपासनामें दीक्षा-विधि

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

वेदोंमें यज्ञादि कर्मों एवं यज्ञोपवीतादि संस्कारोंके लिये द्वादशाङ्ग-दीक्षा निरूपित है। पुराणों एवं आगमोंके अनुसार बिना दीक्षाके सभी कार्य, विशेषकर मन्त्र-जपादि निष्फल कहे गये हैं।[1] दीक्षासे अपार लाभ है और उसकी महिमा भी अद्भुत है। एक-दो उदाहरण देखें। 'शारदातिलक'के रचयिता श्रीलक्ष्मण देशिकेन्द्र[2] आचार्य भगवान् शंकरपादसे दीक्षित उनके निष्ठावान् दृढव्रती शिष्य थे—'शांकराचार्यशिष्याश्च चतुर्दश दृढव्रताः।' '......सुन्दरो विष्णुशर्मा च लक्ष्मणो मल्लिकार्जुनः।' (श्रीविद्यार्णव १।१।६०, ६२)। ये शक्तिके सिद्ध उपासक एवं निग्रहानुग्रहसमर्थ थे। ये वृद्धावस्थामें निष्काम वीतराग होकर पृथ्वीपर घूमते-घामते हम्पीके पास प्रौढदेवकी राजधानी (विजयनगर) पहुँचे। राजाने उन्हें अपने दरबारमें आश्रय देकर उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा की। एक बार द्वीपान्तरसे आये व्यापारियोंने राजाको अनेक प्रकारके रत्न, वस्त्रादि उपहारमें दिये। राजाने उनमेंसे अनेक वस्त्रालंकार लक्ष्मणभट्टको दे दिये। उन्होंने घर आकर उन्हें कुण्डमें या स्थण्डिलपर विधिवत् अग्निस्थापनाद्वारा आराध्या देवीको अर्पण कर दिया। राजाको अनुचरोंसे यह बात ज्ञात हुई तो उसने कोशमें लेखाके मूल्यादि-अङ्कनपूर्वक पुनर्दानका बहाना बनाकर उनसे वस्त्रादि वापस माँगे। लक्ष्मणजीने देवीसे वस्त्रादि माँगकर उन्हें वापस कर दिये और वे यह कहकर अपने घर महाबलेश्वरको चल दिये कि राजाको संतानका मुँह देखनेका अवसर नहीं मिलेगा। कुछ दिन बाद दैवी प्रकोपसे यवन-युद्धमें राजाका देहान्त हो गया। रानीने तान्त्रिकोंकी खोज कराना आरम्भ किया।

इधर माधवाचार्यजीने श्रीप्रगल्भाचार्यसे वैधी दीक्षा लेकर धनलाभके लिये श्रीयन्त्रके ११ अनुष्ठान किये परंतु कुछ फल न देख आसन, माला, पुस्तक जला दिये और जब यन्त्र डालने लगे, तभी एक स्त्रीने आकर कहा—'इधर पीछे देखो, क्या है?' ऐसा कहकर वह चली गयी। माधवने देखा—अग्निमें ११ पत्थर गिरकर क्रमशः फूट गये। जब माधव उस स्त्रीको ढूँढ़ने लगे, तब आकाशवाणी हुई कि 'मैं तो ठीक समयपर आयी थी, पर तुम्हारे गुरु-अपराधसे इस जन्ममें देव-दर्शन सम्भव नहीं।' गुरुने पुनः-पुनः प्रार्थना करनेपर संन्यास-दीक्षा-पूर्वक उनका नाम 'विद्यारण्य' रख एक अनुष्ठान करवाकर उन्हें देवीका दर्शन कराया। इधर शीघ्र ही प्रौढदेवकी रानीने रेवणसिद्धके निर्देशसे उन्हें ही (श्रीविद्यारण्यको) बुलाया और १२ अरब द्रव्य देकर अपने निराश्रित राज्यको सँभालनेके लिये कहा। वे लिखते हैं—

ततस्त्वद्राज्यभारे तु ग्राहितोऽसि प्रजार्थितः।
अर्ककोटिसहस्रेण द्रव्येण महदद्भुतम्॥
(श्रीविद्यार्णव १।१९१)

विद्यारण्यने ही श्रीचक्रपर श्रीविद्यानगर (विजयनगर) बसाया और प्रौढदेवके पुत्र अम्बदेवको राज्यारूढ कराया तथा स्वयं पूर्ण निष्काम होकर श्रृङ्गेरी-पीठके शंकराचार्य बने और तैत्तिरीयारण्यकभाष्य, नृसिंहोत्तरतापनी पञ्चदशी, विवरणप्रमेयसंग्रह, पराशरमाधव, काल-माधव, जीवन्मुक्ति-विवेक, श्रीविद्यार्णव, उपनिषद्भाष्य,

१. कल्पे दृष्ट्वा तु यो मन्त्रं स्वेच्छया जपते नरः। न तस्य जायते सिद्धिः कल्पकोटिशतैरपि॥

२. इनके द्वारा रचित शारदातिलकके ध्यानादि श्लोक सभी शाक्त, शैव, वैष्णवादि सम्प्रदायोंमें ध्यान-पूजादिमें प्रयुक्त होते हैं तथा इन्हींकी दीक्षाविधि श्रीविद्यार्णव, तन्त्रसार, मन्त्रमहोदधिमें निर्दिष्ट है।

वेदभाष्य आदि ढाई सौके लगभग ग्रन्थ लिखे-लिखवाये[1]। इसी प्रकार शुद्धरूपसे इसी सम्प्रदायमें दीक्षा-गृहीत श्रीधर-स्वामी, वेदभाष्यकर्ता महीधर, भास्करराय आदिने भी मन्त्रमहोदधि, वरिवस्या-रहस्य, सेतुबन्ध आदिकी रचना की। वस्तुतः दीक्षासूत्रसे लेकर भूशुद्धि, भूतशुद्धि, द्विधामात्रिका न्यास, महाषोढा-न्यास, महायागतककी उपासनाओंका एकमात्र तात्पर्य योगपट्ट, दिव्यबोध और आत्म-शुद्धिद्वारा परमात्मप्राप्ति ही है। इनमेंसे एक-एककी अपार महिमा है, फिर भी दीक्षा सबकी मूल वस्तु है। इन सबपर यहाँ थोड़ा विचार किया जा रहा है। इससे पाठकोंको आवश्यक जानकारी प्राप्त हो जायगी।

दीक्षा और उसके भेद—योगिनीहृदय, दीक्षारत्न, दीक्षा-कल्पद्रुम, दीक्षाकौमुदी, दीक्षादर्श एवं सभी शैव, शाक्त, वैष्णव, पाञ्चरात्रादि आगमोंके अनुसार दिव्यज्ञान प्रदान कर जीवको तत्काल शिवभाव प्राप्त करानेके कारण 'दीक्षा' शब्दकी सार्थकता है—

दीयते दिव्यसद्भावं क्षीयन्ते कर्मवासनाः।[2]
अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
विज्ञानफलदा सैव द्वितीया लयकारिणी।
तृतीया मुक्तिदा चैव तस्माद् दीक्षेति गीयते॥
(ब्रह्माण्डपुरा० ५।८, नारद० ९०, शारदा० ति० ४।२।

विद्या-बोध-मूल दीक्षाको मुक्तिका सरलतम मार्ग कहा गया है और तप, तीर्थ, यज्ञ, दान, योग या अन्य भी मार्गोंसे इसे श्रेष्ठ बताया गया है। दीक्षाके दो मुख्य भेद हैं—१—निरावरण, २—सावरण। परम-दिव्य दीक्षामें निरावरण नामक साक्षात् श्रीभगवान् ही स्वप्नादिमें सिद्ध, आचार्यादिके विग्रहरूपमें दीक्षाद्वारा शक्तिसंचार करते हैं, जिससे शीघ्र ही जीवन्मुक्तावस्था सिद्ध हो जाती है—'निरधिकरणो वा शिवस्यानुग्राह्यविषयः।' जीवके आशयमें आणव, मायीय और कार्म मल होते हैं। दीक्षासे ये सब नष्ट हो जाते हैं और शिवका साक्षात्कार होता है।

सावरण दीक्षाके क्रियावती, निर्वाण, वर्णात्मिका, कलावती, वेध, आणवी (तत्त्वसंग्रह-टीका) आदि ग्यारह और शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायभेदसे भी अनेक भेद हैं। स्पर्शदीक्षा, दृग्दीक्षा आदि भी कई भेद हैं। कलावतीमें पदतलसे घुटनेतक निवृत्तिकला, घुटनोंसे नाभितक प्रतिष्ठाकला, कण्ठतक विद्याकला, कण्ठसे ललाटतक शान्तिकला, वहाँसे फिर ब्रह्मरन्ध्रतक शान्त्यतीता कलातक शिष्यशरीरमें ध्यानका विधान है। इस प्रकार निवृत्तिसे लेकर क्रम-क्रमसे शान्त्यतीतातक लाकर उसे परमात्मामें जोड़कर पुनः परमात्मासे निवृत्तकर शुद्ध-संस्कार करनेके पश्चात् शिष्य-देहमें उन्हें लौटा लेना यह (कला) 'कलावती' दीक्षा है।

शिवहस्तसे स्पर्शकर गायत्री आदि मन्त्रोंका उपदेश 'स्पर्श-दीक्षा' है। भगवान्‌से सम्बद्ध होकर उनसे प्राप्त शिष्यको मन्त्र देना 'वाग्दीक्षा' है। आँख मीचकर परमात्म-ध्यान-समाधिसे निवृत्त दिव्यनेत्रद्वारा शिष्यको दीक्षित करना 'दृग्दीक्षा' है। स्पर्श, दृग् और वाग्दीक्षा केवल विरक्तोंके लिये हैं (श्रीविद्यार्णव, उल्लास १३, पृष्ठ ३३६)। पद्मपादाचार्यकृत प्रपञ्चसारके व्याख्यानुसार मन्त्र-ध्यानादिसे आणवी, शक्तिपातद्वारा शिष्यदेहमें देवता-भावना शाक्तदीक्षा तथा सामने पहुँचते ही प्रभावित कर

१. वाणीविलाससिंडिकेटसे प्रकाशित सम्पूर्ण 'गुरुवंश-काव्य' तथा 'गुरुपरम्पराचरितम्'में विद्यारण्यकी ही जीवनी है। उसके लेखक काशीलक्ष्मण शास्त्री आदि विद्यारण्यको सायण-माधवके गुरु विद्यातीर्थके भाई, नैष्ठिक ब्रह्मचारी संन्यासी मानते हैं। सीवेल, कृष्णस्वामी आदिने विजयनगरपर बहुत लिखा है। 'श्रीविद्यार्णव'से भी पर्याप्त प्रकाश मिलता है।

२. (क) 'दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयः।' इति पाठान्तरम्। 'दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि।'

(ख) किंतु पद्मपादाचार्य (५।२), का 'दा' एवं 'क्षी'—इन दो धातुओंसे 'दीक्षा'को उत्पन्न मानते हैं। 'दीक्ष' धातु स्वतन्त्र तो है ही, जो धातुपा० १।१०६ संख्यापर पठित है।

दीक्षित करना शाम्भवी—ये तीन मुख्य दीक्षाएँ हैं (६ । १३–३०) । इनके भी शाक्तके दृग्, स्पर्श, मानसिक, वाचिक आदि कई भेद हैं । क्रियावती चौथी है । क्रियावती दीक्षासे क्रमशः शुद्ध शास्त्रश्रवण, ज्ञान-विज्ञानका उदय और मोक्ष मिलता है । (मालिनीविजय-तन्त्र ४ । ४३) । क्रियावती दीक्षामें समय-विचार, मन्त्रमैत्री-विचार आदि भी होता है । दीक्षाके लिये सूर्यग्रहणका समय श्रेष्ठ कहा गया है ।

संक्षिप्त दीक्षा-विधि—भूशोधन, कुण्डमण्डप-निर्माण, द्वारपूजा, मण्डपप्रवेश, मधुपर्कादिसे गुरुवरण, ऋत्विजवरण, भूतशुद्धि, हंसन्यास, प्राणायाम, दिग्बन्ध, वह्नियाग, कलशस्थापन, उसमें देवताका आवाहन-पूजन, कुण्डपूजन, अग्निजनन, षडध्वशोधन, शिष्यदेहमें आत्म-चैतन्ययोजन, पूर्णाहुति-हवन, मण्डलानयन, वाद्यपूर्वक गायत्र्यादि मन्त्रकथन—ये सभी मन्त्रोंकी दीक्षाके संक्षिप्त विधान हैं । इन विधानोंको सम्पन्न करनेके पश्चात् पुनः गुरुके महत्त्वको समझकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये ।

दीक्षितके कर्तव्य—'प्रयोगसार' आदिमें गुरु-शिष्य मन्त्रलक्षण-विचारके अतिरिक्त दीक्षितके कर्तव्य भी विस्तार-पूर्वक निर्दिष्ट हैं । तदनुसार साधकको शुद्धभावसे रहना चाहिये । उसे देवस्थान, गुरुस्थान, श्मशानादिमें लघुशङ्का, शौच, शयन नहीं करना चाहिये । गुरु, देवताके नामके पूर्व 'श्री' अवश्य कहना चाहिये । कन्या, रजस्वला, वृद्धा, विरूपा स्त्रीकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये । वह परस्त्री, एवं परधनपर आँख न डाले । गुरु, देवता, अग्नि, सद्ग्रन्थ, अन्नकोशादिकी ओर पैर न फैलाये, उन्हें न लाँघे । उसे लशुन, गाजर, प्याज, खली, अमड़ा, गाजर, बासी, उच्छिष्ट पदार्थ आदि नहीं खाना चाहिये । रातमें दही-भात भी न खाये । उसे आलस्य, अभिमान, कलह, असूया और आत्मप्रतिष्ठासे दूर रहना चाहिये तथा दुष्टोंकी गोष्ठीमें नहीं जाना चाहिये । इन आचारोंके पालनसे दीक्षित व्यक्ति अभीष्टगति प्राप्त करता है ।

इस प्रकार दीक्षा लेकर साधना करनेसे योग-वासिष्ठादिके अनुसार जगन्माताकी विशेष कृपा होनेके कारण साधकको पूर्ण ज्ञानसिद्धि या पूर्ण आत्मशुद्धिके प्राप्त होनेके पूर्व ही देवीका प्राकट्य हो जाता है । यदि वे पूर्ण कृपा कर दें तो सम्यक् मायाशान्ति, सम्यक् शास्त्रजनक, त्रिकालज्ञान, विशुद्धबोधकी प्राप्तिपूर्वक आत्मोपलब्धि होती है—

यदैषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति तदा महिम्नि स्वे महीयते ॥

वैशारदी मति स्वच्छबोधलक्षणा बुद्धि है । यही समस्त गीता-गायत्री, उपनिषद्-वेदान्त आदि मन्त्रों, शास्त्रोंके भावों तथा पाठ-जपानुष्ठानादिके द्वारा साध्य है । इसीसे चितिशक्ति या स्वरूपप्रतिष्ठा प्राप्त होती है । योगदर्शन (४ । ३४), योगवासिष्ठ, भागवत (१ । ३), मुण्डकमें इसका विस्तार है । यहीं समस्त हृदयग्रन्थिभेद, कर्मान्त संशयोंका अन्त, सदा-सर्वत्र एकाकार परमात्म-दर्शन, पूर्णशान्तिप्राप्ति एवं कृतकृत्यता होती है । 'मन्त्रमहोदधि'के अन्तमें भी यह विस्तारसे प्रतिपादित है ।
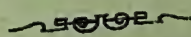
१–श्रीविद्यार्णव, (श्वास १२, पृ० २९१) के अनुसार सर्वप्रथम पुण्याहवाचन, स्वस्त्ययन करके वेदघोष एवं पञ्च-वाद्यसहित गुरुगृह जाकर, गुरुपादुकाको प्रणाम कर वरणसामग्रीसे गुरुवरण करना चाहिये और 'मैं अमुक शैव, शाक्त वासुदेव, नारायण, गायत्र्यादि, मन्त्रग्रहणार्थ आपका गुरुरूपमें वरण करता हूँ' कहकर मण्डपप्रवेश आदि कार्य वैसे ही करने चाहिये । वैसे श्रीविद्यारण्यद्वारा लिखित मन्त्रोंमें उन्हें ही गुरु मानकर बिना भी दीक्षाके सिद्धिकी बात है ।

२–कला, तत्त्व (शिव, विष्णु, प्रभृति), भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ६ षडध्व हैं ।

श्रीजगदादिशक्ति-स्तोत्रम्

(आचार्य पं० श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

(१)

देवीं नमामि शिरसा जगदादिशक्तिं
कात्यायनीं भगवतीं सुखदां च दुर्गाम् ।
यां हन्ति राक्षसगणान् युधि भद्रकाली
सा पातु मां भगवती गिरिजा कराली ॥

(२)

माहेश्वरी त्वमसि वैष्णवि नारसिंही
ब्राह्मी त्वमेव ललिता सुरसुन्दरी त्वम् ।
वाराहि षोडशि करालि शुभे त्वमैन्द्री
कौमारि भैरवि जये सततं नमस्ते ॥

(३)

शैले वने वसति यो वनराजसिंह
आरुह्य तं भ्रमति दुर्गमपर्वतेषु ।
ग्रामेषु या च नगरेषु च मन्दिरेषु
सा पातु मां भगवती जगदादिशक्तिः ॥

(४)

या क्वापि लोकजननी प्रथिता भवानी
या सर्वमङ्गलयुता च शुभा मृडानी ।
तां चण्डिकां हतखलामधुना स्मरामि
तां कालिकां भगवतीं शिरसा नमामि ॥

(५)

ज्वालामुखी त्वमसि भानुमुखी प्रभा त्व-
मुल्कामुखी रविमुखी वडवामुखी त्वम् ।
कण्ठे निजे धरति या रिपुमुण्डमालां
सा पातु मां भगवती जगदादिशक्तिः ॥

(६)

अष्टादशापि च भुजाः प्रभवन्ति यस्याः
या पूज्यते दशभुजा क्वचनाष्टहस्ता ।
या दैत्यशुम्भमहिषासुरमर्दिनी च
तां चण्डिकां भगवतीं प्रणमामि दुर्गाम् ॥

(७)

मातङ्गिनी त्वमसि भूतभयंकरी त्वं
श्रीकालिकासि रिपुहा जगदम्बिकासि ।
वैरोचनी त्वमसि कालजया तमिस्रा
त्वं डाकिनी यमनिशासि नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥

(८)

भीमाकृते त्रिपुरसुन्दरि राक्षसाग्ने
ताराकृते त्रिपुरभैरवि कालवह्ने ।
घोराकृते त्रिगुणदे त्रिपुरारिवन्द्ये
धूमाकृते भुवनजीवनदे नमस्ते ॥

(९)

काल्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै
देव्यै नमोऽस्तु हरिणाधिपवाहनायै ।
तेजःप्रभाकिरणभूषितमस्तकायै
तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदादिशक्त्यै ॥

(१०)

योत्पत्तिपालनकरी जगतीजनानां
गन्धर्वकिन्नरसुरार्चितपादपद्मा ।
शर्वप्रिया प्रियशिवा शिवदा शिवानी
सा पातु मां भगवती गिरिजा भवानी ॥

(११)

या शांकरी भगवती वृषवाहनस्था
तां मोक्षदां शिवकरीं हृदये भजामि ।
शङ्खत्रिशूलहलचक्रगदाऽऽयुधा या
सा पातु मां भगवती जगदादिशक्तिः ॥

नव दुर्गा

प्रथमं शैलपुत्रीति द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीय चन्द्रघण्टेति कृष्माण्डेति चतुर्थकम्।
पचमं स्कन्दमातेति दुर्गा देव्यो हयवन्तु नः ।

कात्यायनी कालरात्री महागौरी महेश्वरी।

नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः

(स्व० आचार्य श्रीमधुसूदनजी शास्त्री)

चैत्रशुक्ल प्रतिपद्से वैक्रमीय संवत्सरका आरम्भ और आश्विन शुक्ल प्रतिपद्से उसी संवत्सरका मध्यवर्ष होता है । इस समय क्रमशः वसन्त और शरदृतु होती है । इसी चैत्रशुक्ल और आश्विनशुक्लकी प्रतिपद्से नवमीपर्यन्त क्रमशः नवगौरी और नवदुर्गाके नवरात्रोंमें भारतकी समस्त आस्तिक जनता अशुभके नाश एवं शुभकी प्राप्तिके लिये भगवती पराशक्ति नवगौरी और नवदुर्गाओंके नवरात्र-महोत्सवको घटस्थापना, पूजन, पाठ, हवन, व्रतादिके द्वारा सम्पन्न करती है । 'नव' शब्दका अर्थ है नवीन और नौ संख्या भी । अतएव नवीन वर्षके आरम्भमें नवगौरी और नवदुर्गाओंकी आराधना सर्वथा उचित ही है । दोनों नवरात्रोंमें साधक पराशक्तिकी पूर्ण निष्ठाके साथ उपासना किया करते हैं ।

पराशक्तिका महारहस्य स्वयं सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्माजी अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

मृदा विना कुलालश्च घटं कर्तुं यथाक्षमः ।
स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ।
शक्त्या विना तथाहं च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः ॥

अर्थात् 'जैसे मिट्टीके बिना कुम्हार घड़ा नहीं बना सकता और स्वर्णकार सोनेके बिना गहना गढ़नेमें अशक्त होता है, वैसे ही मैं भी शक्तिके बिना सृष्टिकी रचना करनेमें अशक्त हूँ ।'

सृष्टिके पालक भगवान् विष्णु भी कहते हैं—

शक्तिं विना बुद्धिमन्तो न जगद्रक्षितुं क्षमाः ।
क्षमाः शक्त्यालयास्तद्वदहं शक्तियुतः क्षमः ॥

'जैसे प्रशस्त बुद्धिवाले व्यक्ति भी शक्तिके बिना जगत्की रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते, जो शक्तिशाली हैं, वे ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, मैं भी वैसे ही शक्तिसम्पन्न होकर ही जगत्की रक्षा कर पाता हूँ ।'

संहर्ता भगवान् शिवजीका भी साक्ष्य सुन लें—

शक्तिं विना महेशानि सदाहं स्यां शवोऽथवा ।
शक्तियुक्तो यदा देवि शिवोऽहं सर्वकामदः ॥

'महेशानि ! शक्तिके बिना मैं शव हूँ, किंतु जब मैं शक्तियुक्त हो जाता हूँ, तब सब कामनाओंको देनेवाला 'शिव' बन जाता हूँ और सब कुछ कर सकता हूँ ।'

यह शक्ति दुर्गा है । 'दुर्गा दुर्गतिनाशिनी'—'दुर्गा' शब्दका अर्थ ही है 'जो दुर्गतिका नाश करे' क्योंकि यही पराशक्ति पराम्बा दुर्गा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी शक्ति है ।

नवीन वर्षकी नौ रात्रियोंमें जिनका व्रत करते हैं, नित्य नवीन भावोंवाली उन नव दुर्गाओंका यहाँ संक्षेपमें परिचय दिया जा रहा है ।

प्रथमं शैलपुत्रीति—पहली दुर्गा शैलपुत्री हैं । ये पर्वतोंके राजा हिमवान्‌की पुत्री तथा नौ दुर्गाओंमें प्रथम दुर्गा हैं । ये पूर्वजन्ममें दक्ष प्रजापतिकी कन्या सती भवानी—अर्थात् भगवान् शिवकी पत्नी थीं । जब दक्षने यज्ञ किया, तब उसने शिवजीको यज्ञमें नहीं बुलाया । सती अत्याग्रहपूर्वक वहाँ पहुँचीं तो दक्षने शिवका अपमान भी किया । पतिके अपमानको सहन न कर सतीने अपने माता एवं पिताकी उपेक्षा कर योगाग्निद्वारा अपने शरीरको जलाकर भस्म कर दिया । फिर जन्मान्तरमें पर्वतोंके राजा हिमवान्‌की पुत्री 'पार्वती—हैमवती' बनकर पुनः शिवकी अर्धाङ्गिनी बनीं ।

प्रसिद्ध औपनिषद कथानुसार जब इन्हीं भगवती हैमवतीने इन्द्रादि देवोंका वृत्रवधजन्य अभिमान खण्डित कर दिया, तब वे लज्जित हो गये । उन्होंने हाथ

जोड़कर उनकी स्तुति की और स्पष्ट कहा कि 'वस्तुतः आप ही शक्ति हैं, आपसे ही शक्ति प्राप्त कर हम सब—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी शक्तिशाली हैं। आपकी जय हो, जय हो।'

द्वितीयं ब्रह्मचारिणी—दूसरी दुर्गा-शक्ति ब्रह्मचारिणी हैं। ब्रह्म अर्थात् तपकी चारिणी=आचरण करनेवाली हैं। यहाँ 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ 'तप' है। **'वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म'**—इस कोष-वचनके अनुसार वेद, तत्त्व एवं तप 'ब्रह्म' शब्दके अर्थ हैं। ये देवी ज्योतिर्मयी भव्यमूर्ति हैं। इनके दाहिने हाथमें जपकी माला और वायें हाथमें कमण्डलु है तथा ये आनन्दसे परिपूर्ण हैं। इनके विषयमें यह कथानक प्रसिद्ध है कि ये पूर्वजन्ममें हिमवान्‌की पुत्री पार्वती हैमवती थीं। एक बार अपनी सखियोंके साथ क्रीडामें रत थीं। उस समय इधर-उधर घूमते हुए नारदजी वहाँ पहुँचे और इनकी हस्तरेखाओंको देखकर बोले—'तुम्हारा तो विवाह उसी नंग-धड़ंग भोलेबाबासे होगा जिनके साथ पूर्वजन्ममें भी तुम दक्षकी कन्या सतीके रूपमें थीं, किंतु इसके लिये तुम्हें तपस्या करनी पड़ेगी।' नारदजीके चले जानेके बाद पार्वतीने अपनी माता मेनकासे कहा कि **'बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी।'** यदि मैं विवाह करूँगी तो भोलेबाबा शम्भुसे ही करूँगी, अन्यथा कुमारी ही रहूँगी।' इतना कहकर वे (पार्वती) तप करने लगीं। इसीलिये इनका तपश्चारिणी **'ब्रह्मचारिणी'** यह नाम प्रसिद्ध हो गया। इतना ही नहीं, जब ये तप करनेमें लीन हो गयीं, तब मेनकाने इनको 'पुत्रि! तप मत करो—'उ मा तप' ऐसा कहा तबसे इनका नाम 'उमा' भी प्रसिद्ध हो गया।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति—तीसरी शक्तिका नाम चन्द्रघण्टा है। इनके मस्तकमें घण्टाके आकारका अर्धचन्द्र है। ये लावण्यमयी दिव्यमूर्ति हैं। सुवर्णके सदृश इनके शरीरका रंग है। इनके तीन नेत्र और दस हाथ हैं; जिनमें दस प्रकारके खड्ग आदि शस्त्र और बाण आदि अस्त्र हैं। ये सिंहपर आरूढ हैं तथा लड़नेके लिये युद्धमें जानेको उन्मुख हैं। ये वीररसकी अपूर्व मूर्ति हैं। इनके चण्ड—भयंकर घण्टेकी ध्वनिसे सभी दुष्ट दैत्य-दानव एवं राक्षस त्रस्त हो उठते हैं।

कूष्माण्डेति चतुर्थकम्—चौथी दुर्गाका नाम कूष्माण्डा है। ईषत् हँसनेसे अण्डको अर्थात् ब्रह्माण्डको जो पैदा करती हैं, वे शक्ति कूष्माण्डा हैं। ये सूर्यमण्डलके भीतर निवास करती हैं। सूर्यके समान इनके तेजकी झलक दसों दिशाओंमें व्याप्त है। इनकी आठ भुजाएँ हैं। सात भुजाओंमें सात प्रकारके अस्त्र चमक रहे हैं तथा दाहिनी भुजामें जपमाला है। सिंहपर आसीन होकर ये देदीप्यमान हैं। कुम्हड़ेकी बलि इन्हें अतीव प्रिय है। अतएव इस शक्तिका 'कूष्माण्डा' यह नाम विश्वमें प्रसिद्ध हो गया—ऐसी व्याख्या रुद्रयामल एवं कुब्जिकागम-तन्त्रमें उपोद्बलित है।

पञ्चमं स्कन्दमातेति—पाँचवीं दुर्गाका नाम स्कन्दमाता है। शैलपुत्रीने ब्रह्मचारिणी बनकर तपस्या करनेके बाद भगवान् शिवसे विवाह किया। तदनन्तर स्कन्द उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। उनकी माता होनेसे ये 'स्कन्दमाता' कहलाती हैं। ये स्कन्द देवताओंकी सेनाका संचालन करनेसे सेनापति हैं। ये स्कन्दमाता अग्निमण्डलकी देवता हैं, स्कन्द इनकी गोदमें बैठे हैं। इनकी तीन आँखें और चार भुजाएँ हैं। ये शुभ्रवर्णा हैं तथा पद्मके आसनपर विराजमान हैं।

षष्ठं कात्यायनीति च—कात्यायनी यह छठी दुर्गा-शक्तिका नाम है। 'कत' का पुत्र 'कात्य' है। इस कात्यके गोत्रमें पैदा होनेवाले ऋषि कात्यायन हुए। इसी नामके कात्यायन आचार्य हुए हैं, जिन्होंने पाणिनिकी अष्टाध्यायीकी पूर्ति करनेके लिये 'वार्तिक' बनाये

हैं। इन्हींको 'वररुचि'* भी कहते हैं। इन कात्यायन ऋषिने इस धारणासे भगवती पराम्बाकी तपस्या की कि 'आप' मेरी पुत्री हो जायँ। भगवती ऋषिकी भावनाकी पूर्णताके लिये उनके यहाँ ये पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुईं। इससे इनका नाम 'कात्यायनी' पड़ा। वृन्दावनकी गोपियोंने श्रीकृष्णको पति-रूपमें पानेके लिये मार्गशीर्षके महीने-में कालिन्दी—यमुना नदीके तटपर 'कात्यायनी'की पूजा की थी। इससे सिद्ध है कि यह व्रजमण्डलकी अधीश्वरी देवी हैं। इनका स्वर्णमय दिव्य स्वरूप है। इनके तीन नेत्र तथा आठ भुजाएँ हैं। इन आठ भुजाओंमें आठ प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं। इनका वाहन सिंह है।

सप्तमं कालरात्रीति—सातवीं दुर्गा-शक्तिका नाम 'कालरात्रि' है। इनके शरीरका रंग अन्धकारकी तरह गहरा काला है। इनके सिरके केश बिखरे हुए हैं। इनके गलेमें विद्युत्-सदृश चमकीली माला है। इनके तीन नेत्र हैं जो ब्रह्माण्डकी तरह गोल हैं। इन तीनों नेत्रोंसे विद्युत्की ज्योति चमकती रहती है। नासिकासे श्वास-प्रश्वास छोड़नेपर हजारों अग्निकी ज्वालाएँ निकलती रहती हैं। ये गदहेकी सवारी करती हैं। ऊपर उठे हुए दाहिने हाथमें चमकती तलवार है। उसके नीचेवाले हाथमें वरमुद्रा है, जिससे भक्तोंको अभीष्ट वर देती हैं। बाँयें हाथमें जलती हुई मसाल है और उसके नीचेवाले बाँयें हाथमें अभय-मुद्रा है, जिससे अपने सेवकोंको अभयदान करती और अपने भक्तोंको सब प्रकारके कष्टोंसे मुक्त करती हैं। अतएव शुभ करनेसे यह 'शुभंकरी' भी हैं।

महागौरीति चाष्टमम्—आठवीं दुर्गा-शक्तिका नाम 'महागौरी' है। इनका वर्ण शङ्ख, इन्दु एवं कुन्दके सदृश गौर है। इनकी अवस्था आठ वर्षकी है—'**अष्टवर्षा भवेद् गौरी**।' इनके वस्त्र एवं आभूषण सभी श्वेत, स्वच्छ हैं। इनके तीन नेत्र हैं। ये वृषभवाहिनी और चार भुजाओंवाली हैं। ऊपरवाले वामहस्तमें अभय-मुद्रा और नीचेके बाँयें हाथमें त्रिशूल है। ऊपरके दक्षिण हस्तमें डमरू वाद्य और नीचेवाले दक्षिण हस्तमें वरमुद्रा है। ये सुवासिनी, शान्तमूर्ति और शान्त-मुद्रा हैं।

'नारद-पाञ्चरात्र'में लिखा है कि '**व्रियेऽहं वरदं शम्भुं नान्यं देवं महेश्वरात्**।' इस प्रतिज्ञाके अनुसार शम्भुकी प्राप्तिके लिये हिमालयमें तपस्या करते समय गौरीका शरीर धूल-मिट्टीसे ढँककर मलिन हो गया था। जब शिवजीने गङ्गाजलसे मलकर उसे धोया, तब महागौरी-का शरीर विद्युत्के सदृश कान्तिमान् हो गया—अत्यन्त गौर हो गया। इसीसे ये विश्वमें 'महागौरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं।

नवमं सिद्धिदात्री च—नवीं दुर्गा-शक्ति 'सिद्धि-दात्री' हैं। मार्कण्डेयपुराणमें अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व—ये आठ सिद्धियाँ बतलायी गयी हैं। इन सबको देनेवाली ये महा-शक्ति हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण-जन्मखण्डमें १—अणिमा, २—लघिमा, ३—प्राप्ति, ४—प्राकाम्य, ५—महिमा, ६—ईशित्व, वशित्व, ७—सर्वकामावसायिता, ८—सर्वज्ञत्व, ९—दूरश्रवण, १०—परकायप्रवेशन, ११—वाक्सिद्धि, १२—कल्पवृक्षत्व, १३—सृष्टि, १४—संहारकरण-सामर्थ्य, १५—अमरत्व, १६—सर्वन्यायकत्व, १७—भावना, १८—सिद्धि 'सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः' इन अठारह सिद्धियों-

* पाणिनिके वार्तिककार वररुचि कात्यायन पश्चाद्वर्ती हैं। 'कात्यायनी गायत्री' वेदोंमें तथा 'कात्यायनि नमोऽस्तु ते' 'कात्यायनि महाभागे' आदि प्रयोग 'मार्कण्डेय,' भागवतादि पुराणोंमें बहुत प्राचीन हैं। अतः ये कात्यायन वररुचिसे भिन्न एवं अति प्राचीन हैं। इनका धर्मशास्त्र प्रसिद्ध है। —सम्पादक

का उल्लेख है । इन सबको ये देती हैं । देवीपुराणमें कहा गया है कि भगवान् शिवने इनकी आराधना करके सब सिद्धियाँ पायीं और इनकी कृपासे उनका आधा अङ्ग देवीका हो गया, जिससे उनका नाम जगत्‌में 'अर्द्धनारीश्वर' प्रसिद्ध हो गया । ये देवी सिंहवाहिनी तथा चतुर्भुजा और सर्वदा प्रसन्नवदना हैं । दुर्गाके इस स्वरूपकी देव, ऋषि-मुनि, सिद्ध, योगी साधक और भक्त—सभी सर्वश्रेयकी प्राप्तिके लिये आराधना-उपासना करते हैं ।

दुर्गा-सप्तशतीका भावपूर्ण पाठ

(श्रीकृष्णारामजी दुबे)

यहाँ दुर्गा-सप्तशतीकी एक क्रमसंगत भावपूर्ण पाठ-आवृत्तिका निरूपण प्रस्तुत है । दुर्गा-सप्तशतीमें कर्म, भक्ति और ज्ञानके गूढ़ साधन-रहस्य निहित हैं, जो साधकके लिये एक-एक दल करके खुलते रहते हैं । दुर्गा-सप्तशतीका जिह्वापर होना तो आशीर्वादमय है ही, उसका हृदयमें उतरना अधिक मङ्गलमय है । यदि जिह्वासे पाठ चलता हो और तत्काल संलक्ष्य भाव हृदयमें न बैठता हो तो भी उसे निष्फल नहीं समझना चाहिये । हाँ, उसके साथ हृदयका योग होना चाहिये । जिस प्रकार संगीतमें तारके साथ स्वर सहसा न मिलनेपर निराश न होकर स्वर मिलाते-मिलाते किसी क्षण वह मिल जाता है, उसी प्रकार पाठके साथ यदि हृदयका योग हो तो जिह्वासे पाठ चलते-चलते किसी क्षण संलक्ष्य-भाव हृदयमें उतर ही जायगा । आवश्यकता इस बातकी है कि जिह्वासे पाठकर 'इति' न लगा दिया जाय, समाप्तिका अभिमान उत्पन्न न हो जाय । अध्याय समाप्त करनेपर 'इति' या 'समाप्त' शब्दका उच्चारण न करनेका विधान भी है ही । प्रमाद करके 'अनर्थशः' (अर्थकी जानकारीकी अवहेलना कर) पाठ नहीं करना चाहिये । पाठके माहात्म्यमें कहा है—'ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्' । मानव मननसे आगे बढ़ता है ।

हमें पहली पाठ-आवृत्तिमें ही सप्तशतीके कवच और प्रथम चरित्रमें, अर्गला और मध्यम चरित्रमें तथा कीलक और उत्तर चरित्रमें जो समन्वय दिखायी देता है, वह यहाँ निवेदित है । देवी-कवच और दुर्गा-सप्तशतीके प्रथम चरित्रकी देवता क्रमशः चामुण्डा और महाकाली हैं तथा दोनोंके ऋषि ब्रह्मा हैं । अर्गला और मध्यम चरित्र—दोनोंकी देवता महालक्ष्मी हैं और ऋषि विष्णु हैं । कीलक और उत्तर चरित्र—दोनोंकी देवता महासरस्वती हैं और ऋषि क्रमशः शिव तथा रुद्र हैं । इस प्रकारका सामञ्जस्य संकेतपूर्ण है । इस कथनका आशय यह नहीं है कि कवचका सम्बन्ध मात्र प्रथम चरित्रसे ही है, अन्य चरित्रोंसे नहीं या अर्गलाका सम्बन्ध मध्यम चरित्रसे ही है, या कीलकका सम्बन्ध उत्तर चरित्रसे ही है । इस कथनका अभिप्राय यह है कि जो क्रमागत विकास कवच-अर्गला-कीलकके पूर्वापर-प्रक्रममें दिखायी पड़ता है, वही प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र, उत्तर चरित्रके पूर्वापर-प्रक्रममें दिखायी देता है, जिसके अनुभवसे एक भावपूर्ण पाठ-आवृत्ति सम्पन्न होती है ।

प्रथम चरित्रमें स्वभावज राग-द्वेषसम्बद्ध मधु-कैटभ नामक असुरोंको देवीका भान ही नहीं होता । यह अज्ञान और आवरणकी अवस्था है । देवी रजोगुणप्रधान सृष्टिके रचयिता, कृतित्वके देवके लिये उनके सत्त्वावलम्बी दृष्टिकोणके निमित्त विष्णुके नेत्रसे प्रत्यक्ष होती हैं । अब देवी-कवच देखें । तदनुरूप ही देवी-कवचमें देवी सब ओरसे अपने रूपोंद्वारा भक्तकी दृष्टिमें सब अङ्गोंमें आरोपित दिखायी देकर आत्मानुसंधानका मार्ग

पुष्ट करती हैं। यह अभानापादक आवरणके दूर होने एवं अपरोक्ष ज्ञानके प्राप्त होनेमें उपयोगी है। जिससे देवीकी अद्वितीयता है, उस ब्रह्मके स्वरूपका लक्ष्य कराने-वाले ओंकारके उच्चारणपूर्वक तत्त्वशुद्धिके प्रक्रममें 'ऐं' पद-संलग्न आत्मतत्त्व-शोधनके सोपानका इससे प्रवर्तन होता है।

मध्यम चरित्रमें महिषासुर देवीकी केवल सत्तासे अवगत होता है—'आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः' (दुर्गा० २। ३६)। यहाँ केवल आमना-सामना और संघर्षमें असुरकी पराजयका वर्णन है। असुर अपने एकके बाद एक अनेक रूप बनाता है और अन्ततः मारा जाता है। इसी प्रसङ्गमें अर्गला देखें। तदनुरूप अर्गलामें आत्मतत्त्व और अनात्मवस्तुके विवेचनसे आत्मतत्त्वकी विजयकी उपलब्धि वर्णित है। यह साधकके लिये अपने स्वरूपमें एकके बाद एक रूप धारणकर आनेवाले सुख-दुःखादिके भानके बार-बार निराकरणमें उपयोगी है। इस प्रकार यह शोकनाशमें सहायक है। इससे तत्त्वशुद्धिके प्रक्रममें 'ह्रीं' पद-संलग्न विद्यातत्त्व-शोधनका सोपान दृढ़ होता है।

उत्तर चरित्रमें शुम्भ-निशुम्भ नामक असुर देवीकी सत्तासे ही नहीं, अपितु उनकी सौन्दर्य-उत्कृष्टतासे भी अवगत हैं, किंतु अपने अभिमानके कारण देवीको ही हड़पने, आत्मसात् करनेका उपक्रम करते हैं। उन असुरोंका पराभव होता है। उनके पराभवसे अन्ततः हर्षका मार्ग प्रशस्त होता है। तदनुकूल ही कीलक पूर्ण हर्षकी प्राप्तिके लिये सेतु-सा दिखायी देता है। यह देवीके प्रति सर्वस्व समर्पण कर 'यज्ञशिष्टाशिनः' होकर पूर्णकाम होनेका भाव पोषित करता है। 'ददाति प्रतिगृह्णाति'—यह निष्कीलन अथवा शापोद्धारका मुख्य प्रकार है ही, साथ ही यह पूर्ण समर्पणका भाव भी पुष्ट करता है। भक्त जो कुछ उपभोग करता दिखायी देता है, वह प्रसाद या यज्ञशिष्टके सिवा कुछ नहीं रहता। यहाँतक कि वह जो कुछ करता है, उसका सारा आचार-व्यवहार देवीके भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति व्यवहृत होनेके कारण बिना किसी प्रयत्नके ही देवीकी आराधनाके सिवा कुछ नहीं रहता। इससे तत्त्वशुद्धिके प्रक्रममें 'क्लीं' पद-संलग्न शिवतत्त्व-शोधनका सोपान दृढ़ होता है।

कवचमें महाकाली महामाया विष्णु-योगनिद्रारूप-वाली देवीकी प्रसन्नताकी याचना है, जो सब ओरसे आत्मजागर्ति (आत्मतत्त्वकी जागृति) उत्पन्न कर समस्त परवशता मिटाती हुई चराचर जगत्को अपने भक्तके नियन्त्रणमें कर देती हैं। कवच-पाठमें साधक अपनेमें, अपने सब अङ्गोंमें देवीके विविध रूपोंका आरोपण करता है, जैसे शिखामें उद्योतिनी देवीका, मस्तकमें उमाका। देवीके भक्तके लिये प्रेत कोई स्वतन्त्र अन्य वस्तु नहीं, अपितु चामुण्डाका वाहक है, भैंसा वाराहीका, हाथी ऐन्द्रीदेवीका आदि। भक्तके लिये देवी सभी स्थानोंमें स्थित होकर रक्षा करती हैं, प्रत्येक दिशामें उसकी रक्षा करती हुई स्थित होती हैं। सहज श्वासमें असुर-संहार करनेवाली देवी 'अघटन-घटनापटीयसी माया', 'निमित्तमात्रं भव' की मर्यादा दिखलाती हुई नाना आयुध धारण करती दिखायी देती हैं तथा भक्तको अभय कर देती हैं, दैत्योंका नाश करती हैं और देवोंका हित करती हैं। देवीकी रणरंगधीरा निष्ठुरता-सम्पृक्त कृपा-मूर्ति आत्मदर्शन करनेवाले एवं यथोचित बरतनेवाले साधकको हिंसादृष्टिसे मुक्त रखती है।

अर्गलामें महालक्ष्मीरूपकी प्रसन्नताकी याचना है, वे देहादि चिच्छाया और साक्षीके संघातको विवेचित कर परमार्थ-अवस्था और व्यवहार-अवस्थाके संव्यवहारमें मोह-विजय तथा ज्ञानप्राप्तिरूप कुशलता प्रदान करती हैं।

आगे कीलकमें महासरस्वतीकी प्रसन्नतासे सर्वज्ञता एवं पूर्णावबोध हर्षकी प्राप्ति होती है।

थोड़ा विस्तारसे देखें । पहले अध्यायमें प्रथम चरित्रके उपोद्घातमें यह जिज्ञासा उपस्थापित की गयी है कि यह जानते हुए भी कि अमुक वस्तु मेरी नहीं है, उसके सम्बन्धमें जो मोह होता है, वह क्या है ? जब शरीर ही अपना बनाया नहीं है, अपना नहीं है, तब उसके सम्बन्धकी कोई भी वस्तु अपनी कैसे ? उसमें ममता, ममताजनित आकर्षण और चिन्ता कैसी ? वस्तुतः मायास्थित जीव अपने कर्मोंसे निबद्ध है । मोहमें पड़ा हुआ वह जिसे करना भी नहीं चाहता, उसे विवश होकर करता है; किंतु अनासक्त होकर स्वयं जब महामायाकी शरणमें जाता है, तब वे ही उसके लिये उद्धार प्रदान करनेवाली बन जाती हैं ।

देहादियुक्त चिच्छायाका अपनेको और साक्षीको व्यामिश्र करके मूढ़तासे समूचे संघातमें 'अहं' शब्द जोड़ बैठना जीवका मुख्य अहंकार है । जीव-सृष्टिके हृदयमें तो विष्णु-भगवान् सदा शयन करते हैं । जगत् एकार्णवमय है, उसमें शेषकी शय्यापर विष्णु शयन करते हैं । उनकी आँखोंमें योगनिद्रा स्थित है । ऐसे योगनिद्रा-संयुक्त विष्णुके श्रवण-पुटसे मोहजन्य राग-द्वेष-सम्बद्ध मधु-कैटभ उत्पन्न होते हैं । वे सृष्टिके अभिमानी देव (विष्णुको आधार बनाकर स्थित कृतित्वरूप ब्रह्मा) को निगल जाना चाहते हैं । योगनिद्रासंयुक्त विष्णु और योगनिद्रा-अस्पृष्ट विष्णुका विवेचन किये बिना संकट उत्पन्न होता है । जब ब्रह्मा महामाया योगनिद्राकी प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, तब वह विष्णुकी आँखोंसे हटकर पृथक् खड़ी होकर वरदायिनी बनती हैं । विष्णु, जिसके अधिश्रयसे लीला चलती है, जगकर मधु-कैटभके छल-बलको मातकर उनका नाश कर देते हैं । सम्पूर्ण जगत्को जलमय देखकर विष्णुके प्रति मधु-कैटभके वचन— 'आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता' (जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो, वहाँ हम दोनोंका वध करो) अध्यात्मके दुर्गम संकीर्ण पथ 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया । दुर्गं पथः'— की ओर संकेत करते हैं । यह अनासक्तिपूर्वक महामायाकी शरण होनेपर होता है ।

प्रथम चरित्रमें देवी विष्णुके नेत्र, हृदय आदिसे निकलती हैं । मध्यम चरित्रमें देवोंके शरीरसे प्रकट होती हैं । देव समवेत होते हैं, उनका तेज एकत्र होकर देवीके रूपमें परिणत हो जाता है । सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तिका समुदाय ही आद्यादेवीका स्वरूप है । उन्होंने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है । शरणागत होनेपर वे ही प्रसन्न होकर वरदायिनी, विजयिनी होती हैं । मानव-हृदयमें देवासुर-संग्राम होता है । अपनी असमर्थता दूर करनेके लिये सारी दैवी सम्पद् देवीकी शरणमें समवेत—संगठित होती है, तब इष्ट-सिद्धिमें सफलता मिलती है । देवी तो सदा दया करती ही रहती हैं । वरका औचित्य यह है कि वरप्राप्तिकी अभिलाषाके बहाने ही देवीका स्मरण होता रहता है—यही वास्तवमें आनन्दप्रद है ।

उत्तर चरित्रमें एकमात्र सत्त्वगुणकी प्रधानताके आश्रित हो पार्वतीके शरीरसे प्रकट हुई देवीके सरस्वती-रूपका वर्णन है, जो भक्तको सर्वज्ञता प्रदान करता है ।

कवच-अर्गला-कीलक और उसी प्रकार प्रथम-मध्यम-उत्तर चरित्र स्पष्ट ही भ्रमज, सहज और कर्मज तादात्म्यकी निवृत्तिमें सहायक हैं । आत्मानुसंधान-आत्मज्ञानसे जड़ प्रपञ्चकी प्रतीति और देह, अन्तःकरण आदिमें अहं-बुद्धिका ह्रास होता है, भ्रमज तादात्म्य नष्ट होता है; परंतु यह ध्यातव्य है कि ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) केवल भ्रमकी निवृत्ति करता है, प्रपञ्चकी नहीं । ज्ञान होनेपर भी चिच्छाया और अन्तःकरणके तादात्म्यका वास रहता है, किंतु अवश्य ही यह ज्ञानकृत बाध है, जैसा कि मध्यम चरित्रमें दिखायी देता है । मध्यम चरित्रमें कामकी भाँति असुर स्वयं एकके बाद एक रूप धारणकर त्रास देता है और प्रत्येक बार देवी उसका छेदन करती हैं । मूढ़

तबतक गरजता जाता है, जबतक देवी मधु पीती हैं। उत्तर चरित्रमें देवी अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे जिन अनेक रूपोंमें उपस्थित हुई थीं, उन सब रूपों (विभूतियों)को समेटती हुई अकेली खड़ी दिखायी पड़ती हैं। अन्ततः कर्मज तादात्म्य ज्ञानीके शरीर-लोपके अनन्तर (**शरीरविमोक्षणात् परम्**) अथवा भोगके उपरान्त निवृत्त होता है। जन्मका हेतुभूत प्रारब्ध, जैसा कि भरत, वामदेव आदिका सुना जाता है, इस प्रकार समाहित होता है।

कीलकमें '**ददाति प्रतिगृह्णाति**' शब्द ऐसी ही स्थितिकी ओर संकेत करते हैं। आद्य शंकराचार्य अपने '**षट्पदी-स्तोत्रम्**' में कहते हैं कि 'हे नाथ! आपमें भेद न होनेपर भी, मैं आपका ही हूँ, आप मेरे नहीं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, तरंगका समुद्र कहीं नहीं होता—

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

आद्य शंकराचार्य शुद्ध मायामें कोई उपालम्भ नहीं देखते, अपितु '**देव्यपराधक्षमापन-स्तोत्रम्**' में कहते हैं—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

मोक्षकी इच्छा और संसारके वैभवकी अभिलाषा दोनोंमें न फँसनेका साधन याचनाको दिखाते हुए कहते हैं—

अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥

भगवान् भी कर्मोंमें बरतते ही हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
(गीता ३। २२)

'हे पार्थ! तीनों लोकोंमें मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है, अर्थात् मुझे कुछ भी करना नहीं है; क्योंकि मुझे कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है, फिर भी मैं कर्मोंमें बरतता ही हूँ'।'

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्गा-सप्तशतीके भावपूर्ण पाठसे किस प्रकार आत्मज्ञानकी पटुताका आविर्भाव होता है। जिस प्रकार दुर्गा-सप्तशती-उद्घाटित प्रक्रमत्रय (अथवा प्रस्थानत्रय) से निष्कामकर्म-निरत व्यक्तिके लिये देवी-आश्रयता, आसक्ति-त्याग-युक्त कर्म-कुशलताके क्रमसे आत्मशुद्धि-अभिमुखता प्राप्त होती है, उसी प्रकार भक्तके लिये सुरथ-समाधि-वार्तादिसे असंसक्ति, द्वन्द्व-जय-जन्य पदार्थाभाविनी अनुभूति तथा कर्मोंमें देवी-आराधना-सौन्दर्यके सिवा कुछ न देखना, तुरीया गतिं सुलभ होती है।

सर्वशक्तिमतीकी सर्वसत्ता

'सर्वशक्तिमती 'माँ'', जो सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है, अपनी इच्छासे उत्पन्न व्यक्त सत्तामें अपनी क्रीड़ा-कुतूहल-वृत्तिको रिझाती है, जिससे आनन्दकी अजस्र धारा सतत प्रवाहित होती रहती है। उस अनन्त संगीतके ताल, लय और मूर्च्छनाकी सृष्टि 'माँ' के पद-संचारणकी एक छोटी-सी-छोटी गतिमें भी हो रही है। सर्वत्र उसीका गौरव, उसीका प्रकाश, उसीका तेज, उसीकी शक्ति, उसीकी महत्ता—नहीं-नहीं, वही वह सर्वेसर्वा है।

विश्वकी विविध विभिन्नता और संकुलतामें 'माँ' की परम एकता और एकरसताकी समरस सत्ताका सर्वोपरि रहस्य है।

— स्वामी रामदास

दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये !

(स्व० पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी, एम्० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यशास्त्री, व्याकरण-शास्त्राचार्य)

यह विवर्तित विश्व प्रतिक्षण गतिमान है, अतएव विनाशशील है। इसकी आधारभूता शक्ति सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी है, जो शास्त्रोंमें ब्रह्मरूपिणी नामसे वर्णित है। कहना न होगा कि वह ब्रह्मरूपा शक्ति प्रत्येक पदार्थमें परिव्याप्त है—जड़ पदार्थोंमें 'सत्'-रूपसे, चेतनमें सत्, चित्, आनन्द-त्रितय रूपमें। जब सच्चिदानन्द नाम-रूपकी उपाधि धारण कर प्रकाशमान होता है, तब सगुण-शक्तिस्वरूप सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, सृष्टिके पालनकर्ता विष्णु और सृष्टिके संहर्ता शिवके रूपमें बोधित होता है। ब्रह्माणी, वैष्णवी और शैवी या रुद्राणी उन्हीं देवोंके स्त्रीप्रत्ययान्त पर्याय हैं। मार्कण्डेयपुराणमें ब्रह्माजी देवीसे यही कहते हैं—

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।

तात्पर्य यह कि वही ब्रह्मशक्ति अथवा सर्वोपरि महाशक्ति ब्रह्म सबका जनक, पालक (संचालक) एवं नाशक है। उसीका 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्य' रूप भगवती दुर्गाका स्वरूप है, जिसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्॥
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः

अर्थात् सिद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जय' नामवाली दुर्गा देवीका ध्यान करें। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रु-समुदायको भय देनेवाली हैं, उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण किये हुए रहती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कंधेपर आरूढ हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।

जब-जब लोकमें दानवी-बाधा (अव्यवस्था) उपस्थित हो जाती है तथा अनीति, अनाचार, दुराचार फैल जाता है, तब-तब वे अचिन्त्य चैतन्यशक्ति (सच्चिदात्मिका) अवतार लेकर नाम-रूपकी उपाधि धारण कर लोक-शत्रुओंका (समाजविरोधी तत्त्वोंका) नाश करती हैं—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
(दु० स० ११ । ५४-५५)

वस्तुतः विश्व-व्यवस्थिति भगवतीका मुख्य प्रयोजन प्रतीत होता है। जब विश्व-व्यवस्था बिगड़ने लगती है, समाज उच्छृङ्खल होने लगता है, तब वह शक्ति किसी नाम-रूपका अवष्टम्भ लेकर प्रादुर्भूत होती है और निग्रहानुग्रहके प्रयोगोंसे लोकधर्म (सामाजिक व्यवस्था) की संस्थापना करती है। यह शक्तिज्योति सर्वातिशायिनी है, इससे बढ़कर और कुछ नहीं है। 'अथर्वशीर्ष' अथवा दुर्गोपनिषद्की श्रुति कहती है कि वह शक्ति-'दुर्गा' है—

यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।

तत्त्वतः देवीको समझनेके लिये श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ और मनन विशेष उपयोगी है। उसमें कहा गया है कि ये परमात्माकी शक्ति हैं। ये विश्वमोहिनी हैं, ये ही आधिदैविक रूपमें पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण भी धारण करती हैं। ये ही महाविद्या हैं।

(इन्हें) जो ऐसा जानता है, वह शोक एवं सांसारिक दुःख (जन्म-मृत्यु)को पार कर जाता है—

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुश-धनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति।

विश्व-संचालिका-शक्ति दुर्गादेवीके नौ स्वरूप अथवा मूर्तियाँ हैं, जिन्हें 'नवदुर्गा'* कहते हैं। नवरात्रोंमें महा-महिम दुर्गाके इन्हीं रूपोंकी प्रतिदिन आराधना-उपासना की जाती है। व्रती (साधक, भक्त)के लिये नौ दिनोंतक देवीके (क्रमशः एक-एक रूपका प्राधान्य मानकर) इन स्वरूपोंका ध्यान, पूजन, अर्चन करना श्रेयस्कर होता है।

नवरात्र-व्रत तथा उपासना

श्रीदुर्गाकी उपासनाके दो अवसर पुनीत माने गये हैं—शारदीय नवरात्र और वासन्तिक नवरात्र। शारदीय नवरात्र शक्ति-उपासनाके लिये अधिक उपयुक्त माना गया है। यह आश्विन-शुक्ला प्रतिपद्से नवमीतक नौ रात्रियोंका होता है।

यह नवरात्र-व्रत सार्ववर्णिक (सभी वर्णोंके लिये) है। नवरात्र-व्रत पूरे न हो सकें तो शक्तिके अनुसार सप्तरात्र, पञ्चरात्र, त्रिरात्र, युग्मरात्र अथवा एकरात्र व्रत ही करना चाहिये। प्रतिपद्से सप्तमी-पर्यन्त अनुष्ठान करनेसे सप्तरात्र-व्रत पूरा होता है। पञ्चमीको एक भुक्त, षष्ठीको नक्त-व्रत, सप्तमीको अयाचित, अष्टमीको उपवास और नवमीको पारण करनेसे पञ्चरात्र-व्रत पूर्ण होता है। सप्तमी, अष्टमी और नवमीको एक भुक्त रहनेसे त्रिरात्र-व्रत पूरा होता है। प्रारम्भके दिन और अन्तिम दिन व्रत रहनेसे, 'युग्मरात्र-व्रत' और आरम्भ या समाप्तिके दिन केवल एक दिन व्रत रहनेसे एकरात्र-व्रत पूर्ण होता है। शक्तिके अनुसार इनमेंसे एक व्रत तो सबको अवश्य ही करना चाहिये। इस व्रतसे मनुष्यकी निश्चित अभीष्ट-सिद्धि होती है। प्रसिद्धि है—'**कलौ चण्डि-विनायकौ**' कलियुगमें देवी और गणेश प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं।

'दुर्गोत्सव-भक्ति-तरङ्गिणी' और 'देवीभागवत'के अनुसार देवीके अनेक अनुष्ठान होते हैं। दुर्गाष्टमीको महाष्टमी कहते हैं। महाष्टमीके दिन प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवतीकी पूजा, वस्त्र, शस्त्र, छत्र, चामर और राजचिह्नोंके साथ करनी चाहिये। भद्रा होनेपर सायंकाल पूजन एवं अर्धरात्रिमें (कूष्माण्डादिसे) बलि प्रदान करनेका विधान है। नवरात्र-व्रतीके लिये अष्टमीको उपवास रहने और यथाशक्ति देवीके पूजनका विधान है—

उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या तु पूजनम्।

दुर्गादेवी एक ओर अनुग्रह-विधायिनी हैं तो दूसरी ओर दुष्टनिग्रह-कारिणी। हमें उन्हें देवताओंके इन स्तुतिवचनोंमें सर्वस्वरूपा, सर्वेशा, सर्वशक्तिशालिनी कहते हुए प्रणाम कर भयोंसे त्राणकी प्रार्थना करनी चाहिये—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥
(दु० स० ११। २४)

भगवती दुर्गा अम्बारूपा हैं, परम्बा हैं। वे शरणापन्न जीवपर विशेषरूपसे सदा दयार्द्र रहती हैं; अतः स्व-कल्याणार्थ तथा सर्वश्रेयःप्राप्त्यर्थ हम सबको उनकी शरण लेनी चाहिये—'**दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये।**'

* प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च। सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिताः॥
(वराही तन्त्रोक्त देवीकवच)

भाव और आचार

तन्त्रशास्त्रमें 'भाव' और 'आचार'की पद-पदपर चर्चा आती है। भाव तीन और आचार सात बताये गये हैं तथा तीनों भावोंमें ही सातों आचार प्रविष्ट कर दिये गये हैं। यहाँ इनपर संक्षेपमें प्रकाश डाला जा रहा है।

भाव

स्वरूप और भेद—'भाव' शब्दकी व्याख्या अत्यन्त दुरूह है; क्योंकि वह मनका धर्म है—**'भावस्तु मनसो धर्मः'** मनके धर्मोंको शब्द कैसे पकड़ पायेंगे ? भाव तो मनमें उत्पन्न होता और वहीं विलीन हो जाता है—**'मनस्युत्पद्यते भावो मनस्येव प्रलीयते।'** जिस तरह गुड़की मिठासको जीभ ही जान सकती है, उसी तरह भावको मन ही जान सकता है। फिर भी दृष्टान्तद्वारा उसके स्वरूपको कुछ प्रकट किया जा सकता है।

भावोंका महत्त्व सुस्पष्ट है। साधारणतः लोग समझते हैं कि वैदिक अथवा तान्त्रिक क्रियाओंके अनुष्ठानसे कोई फल नहीं मिलता, किंतु फल क्यों नहीं मिलता, यह नहीं सोच पाते। 'रुद्रयामलतन्त्र'में लिखा है—

भावेन लभते सर्वं भावेन देवदर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भावावलम्बनम्॥

'भावसे सब कुछ प्राप्त होता है। भावसे देवताका दर्शन हो जाता है। भावसे परम ज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसलिये भावका अवलम्बन लेना चाहिये।'

'भावचूडामणि' भी कहता है—

बहुजापात् तथा होमात् कायक्लेशादिविस्तरैः।
न भावेन विना देवो यन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः॥

'कितना ही अधिक जप, होम तथा कायक्लेश आदि किये जायँ, परंतु भावके बिना देवता, यन्त्र और मन्त्र आदि फलप्रद नहीं होते।'

ये भाव तन्त्रमें तीन प्रकारके हैं—(१) दिव्य, (२) वीर और (३) पशु।

*

दिव्य-भाव—'कुब्जिका-तन्त्र'में कहा गया है कि दिव्य-भावमें स्थित साधक विश्वके जीव और देवतामें भेद नहीं मानता। वह स्त्री-जातिको महाशक्तिकी और पुरुषमात्रको शिवकी मूर्ति समझता है तथा स्वयंको देवतात्मक मानता है। वह नित्य स्नान-संध्या करता और यथाशक्ति कुछ दान देता है। उसकी वेद-शास्त्र, गुरु-देवता और मन्त्रमें दृढ़ आस्था होती है। वह शत्रु-मित्रको समभावसे देखता है तथा देव-निन्दकोंसे वार्तातक नहीं करता। स्त्रीके चरण देख उसमें उसे गुरुभावना उद्रिक्त होती है। भावकी पूर्णताके लिये जो निर्मल चित्तसे अनासक्त हो सब कार्य करते हैं, वे जीवन्मुक्त, आत्मज्ञ व्यक्ति ही दिव्य-भावापन्न होते हैं। यह भाव एक प्रकारसे विशुद्ध सत्त्वसम्पन्नता ही है।

यह दिव्य-भाव वेदपाठजन्य अधम, आगम-पाठजन्य मध्यम और साधनसम्भूत विवेकजन्य उत्तम बताया गया है। इस भावका हेतु है वीर-भाव; क्योंकि वीर-भावकी परिपूर्णता होनेपर ही इस भावमें पहुँचा जा सकता है।

वीर-भाव—जो सब प्रकारके हिंसाकार्योंसे रहित हैं, सर्वथा सब जीवोंके हितमें रत रहते हैं, जिन्होंने कामादि षडरिपुओंपर विजय पा ली है, जो जितेन्द्रिय होकर सुख-दुःखमें समभाव होते हैं, वे वीर-भाववाले साधक कहलाते हैं। इनके भीतर समभावसे 'सभाव वीर' और 'विभाव वीर' दो भेद हैं। यहाँ भी पशु-भाव पार किये बिना वीर-भावमें नहीं पहुँचा जा सकता। इसलिये पशु-भावको वीर-भावका हेतु कहा गया है।

पशु-भाव—पशु-भावके साधकको अहिंसापरायण और निरामिषभोजी होना चाहिये। ऋतुकालके अतिरिक्त

वह पत्नीका स्पर्श नहीं कर सकता। ये ही सब पशु-भावके प्रधान लक्षण हैं। 'कुब्जिका-तन्त्र', 'महानिर्वाण-तन्त्र' आदिमें पशु-भावका विस्तृत विवरण है। पशु-भावके भी 'सभाव पशु' और 'विभाव पशु' दो भेद होते हैं। इनमें भी वीरवत् तर-तमभाव होता है।

आचार

'विश्वसार'-तन्त्रके २४वें पटलमें उपर्युक्त त्रिविध भावोंके अन्तर्गत सात प्रकारके आचारोंका निरूपण किया गया है। ये आचार हैं—(१) वेदाचार, (२) वैष्णवाचार, (३) शैवाचार, (४) दक्षिणाचार (जो पशु-भावके अन्तर्गत है)। (५) वामाचार, (६) सिद्धान्ताचार (जो वीर-भावके अन्तर्गत है) और (७) कौलाचार (जो दिव्य-भावके अन्तर्गत है)।

१-वेदाचार—वेदाचारका लक्षण वेदोंसे ही ज्ञेय है। संक्षेपमें साधकको ब्राह्ममुहूर्तमें बिस्तरसे उठकर अपने गुरुदेवके नामके अन्तमें 'आनन्दनाथ' शब्दका उच्चारण करते हुए उन्हें प्रणाम करना चाहिये। उसे सहस्रार-पद्ममें गुरुका ध्यानकर पञ्चोपचारसे पूजा करनी चाहिये। वाग्भवबीज (ऐं) का जप करते हुए परमकला कुण्डलिनी-शक्तिका ध्यान एवं मूलमन्त्रका जप करनेके बाद बाहर जाकर मल-मूत्र-त्याग आदि समस्त नित्यकर्म करना उचित है। रात्रिमें, संध्या समय या तीसरे पहर देवपूजा, ऋतुकालके अतिरिक्त पत्नी-सहवास आदि वेदाचारीके लिये निषिद्ध कर्म हैं। जितने वेदविहित कर्म हैं, वे सभी वेदाचारीकी कर्तव्यकोटिमें आते हैं।

वेदाचारका उद्देश्य साधककी बाह्यशुद्धि है। वह आचार और व्यवहारमें सब प्रकारसे अपनेको शुद्ध एवं निर्मल रखनेका प्रयत्न करता है जो बादमें उसका स्वभाव बन जाता है।

२-वैष्णवाचार—वेदाचारका पालन करते-करते जब बहिःशुद्धि स्वभावगत हो जाती है, तब साधक वैष्णवाचारमें प्रवृत्त होता है। वेदाचारमें जितने कर्तव्य विहित हैं, इसमें भी वे सब करने पड़ते हैं। उनके अतिरिक्त श्रीविष्णुदेवकी पूजा और समस्त जगत्‌के विष्णुमय होनेकी भावना करनी पड़ती है। मैथुन या तत्सम्बन्धी वार्ता, हिंसा, निन्दा, कुटिलता, मांस-भोजन, रातमें मालाजप और पूजाकार्य वैष्णवाचारी साधकके लिये निषिद्ध हैं। वैष्णवाचार भक्तिकी अवस्था है, जिससे चित्तकी शुद्धि होती है।

३-शैवाचार—वैष्णवाचारके पश्चात् शैवाचार आता है। वेदाचारमें विहित सभी कर्म करनेके अतिरिक्त शैवाचारीको सर्वदा सब कर्मोंमें महेश्वर-भावना करनी पड़ती है। पशुको मारना निषिद्ध है। शैवाचारीको गुरूपदिष्ट विषयपर विचार करनेका अधिकार प्राप्त होता है। इस अवस्थामें वह अपने कर्तव्यके विषयमें गुरुसे पूछ सकता है और गुरुदेव भी उसके अधिकारानुरूप दुर्बोध विषयकी व्याख्या कर उसे समझा देते हैं। इसीलिये यह ज्ञानार्जनकी अवस्था है।

४-दक्षिणाचार—शैवाचारके पश्चात् दक्षिणाचार आता है। वेदाचारके अनुसार भगवतीकी पूजा रात्रिमें तद्गतचित्त होकर मन्त्रजप करना, चौराहे, श्मशान, एकान्त स्थान, शिवालय अथवा बिल्वमूल प्रभृति स्थानमें शङ्खमालासे जप करना—इन सबको दक्षिणाचार कहते हैं। दक्षिणामूर्ति नामक ऋषिद्वारा सर्वप्रथम आचरित होनेसे इसका 'दक्षिणाचार' नाम पड़ा। 'दक्षिण' का अर्थ है अनुकूल। अनुकूल आचार 'दक्षिणाचार' कहलाता है। इस अवस्थामें प्रथम अन्तःशुद्धि और बहिः-शुद्धि तथा शास्त्रानुशीलनद्वारा अर्जित ज्ञानको बद्धमूल करनेकी साधना है।

५-वामाचार—पिछले चारों आचारोंका आचरण कर वीर-भावको प्राप्त साधक वामाचारमें प्रवृत्त होता है। दिनमें ब्रह्मचर्य, रात्रिमें वेदानुमोदित पञ्चतत्त्वोंद्वारा देवीकी

आराधना एवं चक्रानुष्ठान करते हुए मन्त्रजप करना वामाचार है, जो अत्यन्त गोपनीय होता है।

दक्षिणाचारतक साधक जिस भावमें चलता आ रहा है, उसीका प्रतिकूल भाव वामाचार है। दक्षिणाचारकी चरम अवस्थामें मनुष्यके मनमें निर्वेदका बीज अङ्कुरित होता है और वैसा होनेसे ही आध्यात्मिक उन्नतिके लिये क्रमशः आवेग बढ़ जाता है। साधक अबतक संसारमें रहकर ही काम करता था, किंतु अब उसकी चेष्टा संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये होती है। इसी कारण वह वामाचार या प्रतिकूलाचारका अवलम्बन कर लेता है।

६–सिद्धान्ताचार—वामाचारका आचरण कर साधक सिद्धान्ताचारमें प्रवृत्त होता है। इस आचारमें सर्वदा रुद्राक्ष, अस्थिमाला आदि धारण और भैरव-वेशका अवलम्बन करना पड़ता है। इसी अवस्थामें साधकको ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है; क्योंकि इस अवस्थामें उसने दोनों दिशाएँ देख लीं—दक्षिण भी और वाम भी। उस समय वह कुलज्ञान या ब्रह्मज्ञानके संनिकट पहुँच जाता है; क्योंकि मन स्थिर हो जानेसे मनोभावके लयका अवसर आ जाता है।

७–कौलाचार—सिद्धान्ताचारमें सिद्धकाम होनेपर ही साधक कुलाचारमें प्रवृत्त होता है। इस अवस्थामें साधकको पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस समय उसके अन्तर्मनमें पङ्क और चन्दन, पुत्र और शत्रु या कञ्चन और तृणमें कोई भेदज्ञान नहीं रहता। सभी वस्तुओंमें समदृष्टि हो जाती है।

त्रिपुरा-रहस्यके आविर्भावकी कथा

पराम्बा त्रिपुराके रहस्यके आदिवक्ता 'सर्वेषाम्' गुरु देवाधिदेव महादेव ही हैं। उन्होंने यह विद्या महाविष्णुको दी और महाविष्णुने ब्रह्मदेवको। भूमण्डलपर महाविष्णुके अवतार भगवान् दत्तात्रेयने अपने शिष्य परशुरामको यह विद्या प्रदान की। परशुरामने अपने शिष्य सुमेधाको, जिनका दूसरा नाम 'हारितायन' था, दी। गुरुके आदेशसे हारितायन इस विद्याको ग्रन्थरूपमें निबद्ध करनेके लिये 'हालास्य' नामक नगरमें पहुँचे और वहाँ पराम्बा मीनाक्षीकी उपासना करने लगे।

ब्रह्मासे यह वृत्तान्त सुनकर देवर्षि नारद सुमेधा (हारितायन) के निकट गये। सुमेधाने निर्विण्ण (खिन्न) होकर देवर्षिको बताया कि गुरुद्वारा प्रोक्त सारा रहस्य मन्दमति होनेके कारण मुझे सर्वथा विस्मृत हो गया है। नारदने तत्काल ब्रह्मदेवका आह्वान किया और उनके प्रकट होनेपर उनसे सुमेधाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। ब्रह्मदेवने बताया—'पूर्वजन्ममें यह सरस्वतीके तटपर सुमन्तुका पुत्र अलर्क था। अलर्क जब पाँच वर्षका था तब दुर्गाके उपासक अपने पिताद्वारा अपनी माताको 'अयि' कहकर पुकारते हुए सुनकर बालक होनेसे 'ऐ ऐ' इस प्रकार बिन्दुरहित उस वाग्बीजको अखण्डरूपसे रटता रहा। एक बार वह भीषण ज्वरसे आक्रान्त हुआ और उसीमें उसके प्राण निकल गये। परम कारुणिक माता ललिता कुमारी बालाम्बाके रूपमें उसके उसी प्रकारके अज्ञानपूर्वक जपसे प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'बाला'का अनुग्रह होनेपर भी अज्ञानवश बिन्दुरहित वाग्भव बीजके जपके वैगुण्यसे इसकी पूर्वधारणा-शक्ति जाती रहेगी। अब मेरे आशीर्वादसे इसे पुनः सब स्मरण हो जायगा और यह 'त्रिपुरा-रहस्य' का कर्ता बन जायगा। प्रतिदिनके क्रमसे ३६ दिनोंमें यह माहात्म्य, ज्ञान और चर्या—तीन खण्डोंमें (१४४ अध्यायोंमें) 'त्रिपुरा-रहस्य' नामक ग्रन्थकी रचना कर देगा। आज वही 'त्रिपुरा-रहस्य' हमें वरदानरूपमें प्राप्त है।

पराशक्तिके परम उपासक

[भूमण्डलपर पराम्बा आद्याशक्तिकी उपासनाकी अवतारणा करानेवाली दिव्य विभूतियोंसे प्रारम्भकर देव, ऋषि, मुनि, आचार्य, सिद्ध, योगी, महात्मा, अधिकारी विद्वान् एवं मनीषीवर्गमें जो प्रमुखतम महापुरुष हो गये हैं, उनका हम यहाँ पराशक्तिके परम उपासकके रूपमें स्थान-संकोचवश संक्षिप्त रूपसे पुण्यस्मरण कर रहे हैं। अतः जो विभूतियाँ इस विनम्र प्रयासमें छूट गयी हों, उन सबके प्रति श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए हम उनसे क्षमायाचना करते हैं—सम्पादक]

परमाचार्य भगवान् शिव

'ईशानः सर्वविद्यानाम्' आदि श्रुतियोंके अनुसार भगवान् शिव सभी विद्याओंके आदिवक्ता हैं। किंतु **'आगतं शिववक्त्रेभ्यः गतं च गिरिजाश्रुतौ। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥'** इस वचनके अनुसार भी भगवान् शिव ही आगमशास्त्रके आदिवक्ता हैं; जैसा कि कहा गया है **'आदिवक्ता स्वयं साक्षाच्छूलपाणिरिति स्थितिः।'** 'दक्षिणामूर्ति' एवं 'कामराज'के नामसे भी इन्हींका निर्देश किया जाता है। ज्ञानार्णव, कुलार्णव आदि प्राचीन तन्त्र, जिनमें किसी कर्ताका उल्लेख नहीं है, या साक्षात् शिवप्रोक्त हैं। इन ग्रन्थोंकी पुष्पिकाओंमें उन्हें स्पष्टतः **'ईश्वरप्रोक्तम्'** कहा गया है। देवराज इन्द्रने केवल शिवको ही ईश्वर एवं महेश्वर-पद-वाच्य कहा है—**'महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।'** कुलार्णव, ज्ञानार्णव आदि तन्त्रोंपर बीसों भाष्य एवं व्याख्याएँ हैं। इन्हींके आधारपर आगे श्रीविद्यार्णव और पुरश्चर्यार्णव लिखे गये। रुद्रयामल भी शक्ति-उपासनाका सर्वोत्तम ग्रन्थ है जो देवीको शिवद्वारा प्रोक्त तथा बृहत्तर पूर्वार्ध, उत्तरार्ध दो भागोंमें विभक्त है। कहा गया है कि रुद्रयामलोक्त स्तुति-पाठमात्रसे कुण्डलिनीका जागरण हो जाता है। कुमारी-कवच, कुमारी-पटल, पद्धति, शतनामस्तोत्र एवं सहस्रनामद्वारा कुण्डलिनीको शीघ्रतर जगाया जा सकता है। यह सब भगवान् शिवकी ही कृपाका फल है।

हयग्रीव और महर्षि अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य तीन वर्षोंतक त्रिपुरा पराम्बाके परमाचार्य विष्णु-अवतार हयग्रीवके चरण पकड़े खड़े रहे, फिर भी हयग्रीवने उन्हें श्रीविद्याके पञ्चाङ्गका उपदेश नहीं किया। सारा विश्व कौतूहलसे देखता रहा। अन्तमें देवी स्वयं प्रकट हो गयीं और उन्होंने हयग्रीवको महर्षि अगस्त्यके प्रति ललिता-त्रिशती-पञ्चाङ्गका उपदेश देनेका आदेश दिया। हयग्रीवने महर्षि अगस्त्यकी अटल श्रद्धाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें ललितोपासनाकी पूरी विधि बतायी, विशेषकर

ललिता-त्रिशतीकी महत्ता बतलायी। इसपर आचार्य शंकर-द्वारा विरचित श्रेष्ठ भाष्य है इसमें अनेक वैदिक उद्धरणों, ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों आदिके वचनोंद्वारा त्रिपुराम्बाकी ब्रह्मरूपता प्रतिपादित है। यह अत्यन्त गूढ, किंतु सर्वोत्कृष्ट वस्तुरत्न है। इसीलिये इस हयग्रीवने अगस्त्य-जैसे सत्पात्रके लिये भी तीन वर्षोंतक इस विद्याको प्रकट नहीं किया। वैसे दक्षिण भारतमें हयग्रीवके अनेक मन्दिर, उनसे सम्बद्ध अनेक संस्थाएँ, हयवदनविजय आदि वाङ्मय प्रचलित हैं। श्रीरामानुजसम्प्रदायमें इनकी उपासना विशेषरूपसे पायी जाती है। पाञ्चरात्र आगमोंमें भी एक हयग्रीव-तन्त्र है।

परमाचार्य दत्तात्रेय और उनके शिष्य परशुराम

श्रीविद्याके परमाचार्य भगवान् दत्तात्रेयका चरित्र अत्यन्त अटपटा है जो हम-जैसे साधारणजनके लिये तो क्या, बड़े-बड़े योगिजनके लिये भी अगम्य है **'योगिनामप्यगम्यः'**।

परमसाध्वी पतिव्रता अनसूयाके पातिव्रतकी परीक्षा लेनेके लिये अपनी पत्नियोंका स्त्री-हठ पूरा करनेके निमित्त त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) उनके आश्रममें अतिथि बनकर तब पहुँचे, जब उनके पति महर्षि अत्रि तपोऽनुष्ठानार्थ नदी-तटपर गये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सतीसे विवस्त्र होकर भिक्षा परोसनेका हठ पकड़ा। सतीकी सूझ अद्भुत थी। उन्होंने भीतर जाकर पतिदेवका चरणोदक पिया और उसे अतिथियोंपर छिड़क कर उन्हें तीन दुधमुँहे बालक बना दिया। फिर गोदमें लेकर वे उन्हें स्तन्यपानकी भिक्षा कराने लगी। अन्ततः त्रिदेवोंकी पत्नियोंद्वारा सतीसे बार-बार क्षमा माँगने और उन्हें 'पतिव्रता-शिरोमणि' कहकर सम्बोधित करनेके बाद ही उनके पति उन्हें पुनः पूर्वरूपमें प्राप्त हुए, इन त्रिदेवोंके संमिश्र अंशोंसे सती अनुसूयाको पुत्रलाभका सुख प्रदान करनेके लिये 'दत्तात्रेय' अवतार बन गये, जो आजतक अखण्ड चला आ रहा है। उनके आविर्भावकी तिथिके रूपमें मार्गशीर्ष पूर्णिमा अमर हो गयी।

योगाचार्य भगवान् दत्तात्रेय स्मरण करते ही प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाते हैं। वे मूलतः चतुर्थाश्रमी अवधूत-श्रेणीके संन्यासीका रूप धारण किये रहते हैं, किंतु समय-समयपर जैसी परिस्थिति उपस्थित होती है, उसके अनुरूप अपनी योग-सामर्थ्यसे रूप धारण कर लेते हैं। कार्तवीर्य सहस्रार्जुन, प्रह्लाद, यदु, हैहय-जैसे सैकड़ों-हजारों अनुगृहीतोंने उनसे योग एवं भोग-मोक्षकी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, जैसा कि भागवतकार कहते हैं—

> **यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा**
> **योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः।**
> (श्रीमद्भा० २ । ७)

इनके अवधूत होनेका इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है कि ये प्रातःस्नान वाराणसीमें करते हैं, कोल्हापुर पहुँचकर जप-ध्यानकी विधि पूरी करते हैं, माहुरगढ़ या मातापुरमें भिक्षा ग्रहण करते हैं और शयन करते हैं सह्यादि पर्वतपर। 'त्रिपुरा-रहस्य'के अनुसार इनका एक आश्रम गन्धमादन पर्वत (हिमालय)पर भी है। इनकी चरणपादुकाएँ वाराणसी, आबूपर्वत आदि कई स्थानोंपर हैं। दत्तात्रेयका बीजमन्त्र 'द्रां' है। त्रिपुरा-रहस्य (माहात्म्य-ज्ञानकाण्ड), दत्तोपनिषद्, वज्रकवच, पद्म-पुराण भूमिखण्ड (अ० ८३), मार्कण्डेयपुराण (१७-३८ तथा २२ अ०), भागवत (७ और ११ स्कन्ध), तथा महाभारत (सभापर्व ३८, अनुशा० १३८, १५-५६) में इनका चरित्र वर्णित है।

भगवान् दत्तात्रेयको इतनी अद्भुत सामर्थ्य प्राप्त होनेका मूलस्रोत उनके द्वारा श्रीविद्याकी असाधारण सिद्धि-प्राप्ति ही कही जायगी। वे श्रीविद्याके परमाचार्य हैं। शास्त्रोंमें बताया गया है कि श्रीविद्याके उपासकोंको यहीं भुक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ होती हैं—

श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

परशुराम—जगतीका परम सौभाग्य है कि परशुराम-जैसा अवतारी वत्स इन्हीं दत्त-कामधेनुको प्राप्त हो गया जिससे संसारको श्रीविद्याका दुग्धामृत सुलभ हो पाया। इसकी कथा भी बड़ी रोचक है।

पिता जमदग्निके हत्यारे सहस्रार्जुनकी पूरी क्षत्रिय जातिके साथ इक्कीस बार युद्ध कर परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय बना डाला और उनके रक्तसे तर्पणकर मृत पिताका श्राद्ध किया। तत्पश्चात् वे इस कृत्यसे अत्यन्त निर्विण्ण हो जीती हुई सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानकर चित्त-शान्तिके लिये गन्धमादन पर्वतकी ओर चले गये।

वहाँ उनके अलर्कके माध्यमसे संवर्त (हारितायन)से भेंट हुई और संवर्तके माध्यमसे वे दत्त गुरुके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ अवधूत संन्यासी दत्तप्रभु अपने वास्तविक स्वरूपका गोपन कर दिव्य पर्यङ्कपर लेटे हुए थे। परम सुन्दरी वार-वनिता उनके पैर दबा रही थी और बीच-बीचमें पासमें रखे स्वर्णकलशसे माणिक्य चषकको भर-भरकर दिव्य सुरा पान करनेके लिये उन्हें दे रही थी। द्वारपर बड़ा ही सुहावना सारमेय (कुत्ता) रखवाली कर रहा था।

परशुरामको देखते ही दत्तप्रभुने उनसे पूछा—'तुम-जैसे महान् तपस्वी एवं कृतकृत्य पुरुषको मुझ-जैसे परम पतितके पास आनेका क्या कारण है? तुम्हें कौन-सी कमी है? हम तो संन्यासी होते हुए भी रसना और उपस्थ-जैसी सर्वजयी इन्द्रियोंद्वारा जीते जाकर इस स्थितिमें पहुँचे हुए हैं। कोई भी सज्जन हम-जैसे पतितकी हवासे भी दूर भागता है। तब तुम किस उद्देश्यसे यहाँ आये हो?'

परशुरामका हृदय तपस्या और निर्वेदसे निष्कल्मष हो गया था। वे प्रभुकी अटपटी लीला समझ गये और उनके चरण पकड़कर कहने लगे—'आप मुझे भरमायें नहीं, संवर्तने सब कुछ बता दिया है। आपका मार्ग सत् हो या असत्, आप ही मेरे गुरु हैं। मैं शुद्ध चित्तसे आपकी शरणमें आया हूँ। मुझ अशरणके अशान्त चित्तको शान्त करनेकी कृपा कीजिये।'

परीक्षामें सोना सोलह आना खरा उतरनेसे दत्तगुरु प्रमुदित हो उठे और बोले—'तुमने ठीक समझा वत्स! तुमने जिस शान्तिकी अपेक्षा दिखलायी है, वह शान्ति मात्र ज्ञानयोगसे ही प्राप्त होगी। सभी प्राणियोंकी आत्मा साक्षात् परशिव ही है। सबके हृदयमें सदैव भासित रहता हुआ भी वह मोहवश अभात-सा प्रतीत होता है; किंतु विषयीजनोंको यह ज्ञान पराशक्ति त्रिपुराम्बाकी कृपाके बिना सम्भव नहीं।'

इस प्रकार उपक्रम करके भगवान् दत्तात्रेयने परशुरामके उत्तरोत्तर प्रश्नोंके समाधानके रूपमें अपने इस सुयोग्य शिष्यको पराम्बा त्रिपुराके समग्र रहस्यका उपदेश ('त्रिपुरा-रहस्यम्' के रूपमें) किया। परशुराम-ने भी तदनुसार साधना-उपासना करके पराविद्या त्रिपुराम्बाका प्रसाद पाकर जीवनकी कृतार्थता प्राप्त कर ली। 'त्रिपुरा-रहस्य' के माहात्म्यखण्डमें इसका विस्तृत विवरण द्रष्टव्य है।

—गो० न० बै०

हादि-विद्याकी ऋषिका भगवती लोपामुद्रा

महर्षि अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्रा श्रीविद्याके हादि-सम्प्रदायकी प्रवर्तिका हैं। त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड, अध्याय ५३ में लोपामुद्राको श्रीविद्याका अवतार बतलाया गया है। ये पतिव्रताओंमें श्रेष्ठतमा हैं। स्वयं भगवती त्रिपुरा (श्रीविद्या)ने ही महर्षि अगस्त्यसे कहा था कि 'तुम्हारी पत्नी इस राजकन्या (विदर्भनरेश राजसिंहकी पुत्री) लोपामुद्राने अपने पिताके घरपर ही परा श्रीविद्याकी भक्ति प्राप्त कर ली थी।' फिर भगवतीने दर्शन देकर जब लोपामुद्रासे वर माँगनेको कहा तब उसने त्रिपुराकी भक्ति ही माँगी। फलतः आगे चलकर वे श्रीविद्याकी 'ऋषिका' बन गयीं और उनके नामसे अपरा विद्या 'हादि' सम्प्रदायके रूपमें चल पड़ी। यों इन्द्र, चन्द्र, मनु, कुबेरादि द्वारा श्रीविद्याका प्रचार-प्रसार किया गया और वे भी इस विद्याके ऋषि माने जाते हैं, फिर भी वर्तमानमें बहुप्रचलित कामराजोपासक श्रीविद्याके कादि-सम्प्रदायके बाद महासती लोपामुद्राका हादि-सम्प्रदाय ही श्रीविद्याके उपासना-क्षेत्रमें आजतक प्रचलित है। यथा—

यत्ते प्रिया सती लोपामुद्राख्या राजकन्यका।
पुरा सा पितृगेहस्था प्राप भक्तिं परापदे।
तद्धेतुं ते प्रवक्ष्यामि न तज्जानाति कश्चन॥
त्रिपुरामुख्यशक्तिस्तु भगमालिनिकाभिधा।
तत्सेवनपरो राजा सर्वदा सर्वभावतः॥
बाल्यादियं शुद्धचित्ता पितृसेवापरायणा।
पितुर्दृष्ट्वोपासनायाः क्रमं देव्या यथाक्रमम्॥
राज्यकर्मकरे तस्मिंस्तां समाराधयत्यसौ।
एवं चिराराधनेन भक्त्या भावनयापि च॥
तुतोष सा भगवती वरेण समछन्दयत्।
वव्रे चासौ सर्वजगत्पूज्यायाः पादसेवनम्॥
प्रसन्ना सापि सद्विद्यां त्रैपुरीं समलक्षयत्।
लक्षिता चापि तां विद्यां वाक्समुद्रपरिप्लुताम्॥
समुद्धरद् रत्नमिव ततस्तस्य प्रसादनात्।
विद्यार्षित्वं सम्प्राप्ता तन्नाम्ना सा स्फुटं गता॥
(त्रिपुरारहस्य)

इस प्रकार महामाया आदिशक्तिके उपासकोंमें भगवान् दत्तात्रेयके बाद प्रथम पतिव्रता साध्वी लोपामुद्राका नाम बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ लिया जाता है।

वसिष्ठपत्नी अरुन्धतीकी तरह ही भगवती लोपामुद्रा भी महर्षि अगस्त्यकी पतिव्रता पत्नी थीं। देवीकी प्रेरणासे विदर्भराजकी राजपुत्रीके रूपमें जन्म लेकर भी अगस्त्यको पुत्र प्रदान कर उनके पितरोंको मुक्त करनेके लिये ऋषिद्वारा पत्नीरूपमें माँग करनेपर देवीने पिताको सहर्ष स्वयंको उन्हें समर्पित कर देनेकी अनुमति दे दी। राजकुलमें पालित-पोषित लोपामुद्राने अगस्त्य-पत्नी बनते ही हँसते-हँसते तपस्विनीका बाना पहन लिया और उनके साथ तप और गार्हस्थ्यमें समरस हो गयीं। अन्ततः ऋषिको भी कहना पड़ा कि **'तुष्टोऽहमस्मि कल्याणि तव वृत्तेन शोभने।'** अगस्त्यके आश्रमपर वनवासके संदर्भमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जगन्माता जानकीके साथ पधारे तो ऋषिदम्पतिने उनका स्वागत-सत्कार किया। अगस्त्य-आश्रममें पधारे बृहस्पतिने भी लोपामुद्राके पातिव्रतकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

प्रायः सिंहराशिका २२वाँ अंश बीतनेपर जब अगस्त्य (तारा) का उदय होता है, तब उस समय राज्य, सम्पदा आदिके स्थायित्वके लिये अगस्त्य-लोपामुद्राके पूजन एवं अर्घ्यदानका विधान है। अर्घ्यदानके मन्त्र हैं—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥
राजपुत्रि नमस्तुभ्यं ऋषिपत्नि नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं महादेवि शुभानने॥

ऋग्वेदने प्रथम मण्डलके १७९वें सूक्तमें अगस्त्यका स्मरण किया है। उस सूक्तके ऋषि लोपामुद्रा और देवता अगस्त्य हैं।

विश्वविजयी कामदेव

श्रीविद्याके पचीस आचार्योंमें देवी रति और उनके पति कामदेव——ये दोनों ही परिगणित हैं। कामदेव ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे लेकर देव-मुनि, सिद्ध-गन्धर्व, दानव-मानव सभीपर विजय प्राप्त करते आये हैं। यद्यपि उनका धनुष पुष्पमय है, प्रत्यञ्चा भ्रमरोंकी है और बाण अशोक, नवमल्लिका, आम्रमञ्जरी, रक्तकमल तथा नीलकमल आदि हैं और रथ है—मलय-पवनका। सेना-सहायक कोई नहीं। वे अकेले श्रीविद्या-महामन्त्रके प्रभावसे सृष्टिके आदिसे अबतक सर्वत्र विजय प्राप्त करते आ रहे हैं (सौन्दर्यलहरी ६)। इतना ही नहीं, ये कामदेव भगवान् मदन श्रीप्रस्तारचक्रके अधिष्ठाता स्वामीके रूपमें भी प्रतिष्ठित हैं।

जब भगवान् शंकरने एक बार कामदेवको दग्धकर पराजित कर दिया था, तब भी वे पराम्बाके बलसे निराश नहीं हुए और विजयके लिये सदा सचेष्ट, तत्पर बने रहे। पार्वतीने तपोबलसे शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया था। एक बार भूलसे कभी शिवके मुखसे 'गोत्र-स्खलन'के परिणाम-स्वरूप 'गङ्गा'का नाम उच्चरित हो गया तो संकुचित हो प्रभु माताके चरणोंकी ओर सिर झुकाये हुए थे कि तभी पार्वतीने चरणकमलसे उनपर कोमल आघात किया। उस समय उनके श्रीचरणके आभूषणोंके किङ्किणि-जालसे जो ध्वनि हुई, कामदेव उसमें प्रविष्ट होकर खिलखिलाकर अपार हास्य करने लगे। इस प्रकार कामदेवने सदाशिव-को पुनः परास्त करनेका अद्भुत अवसर पा लिया। यहाँ भी परा भगवतीके मन्त्रका प्रभाव ही अप्रत्यक्षरूपमें लक्षित है। कामके विजयी होनेके ऐसे अनेक उदाहरण पुराणों तथा मानसादिमें सुस्पष्ट हैं।

महर्षि दुर्वासा

महर्षि दुर्वासा हादिविद्याके आदि आचार्य कहे गये हैं। प्रमाणस्वरूप 'सौन्दर्यलहरी'की—'**शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकरणः**' इस श्लोककी लक्ष्मीधरा, अरुणामोदिनी, डिण्डिम भाष्य एवं कैवल्याश्रम-कृत सौभाग्यवर्धनी व्याख्याएँ देखी जा सकती हैं। इन्हें त्रयोदशाक्षरी हादिविद्याका आचार्य कहा गया है। ये श्रीविद्या आदि शाक्तसाहित्यमें सर्वत्र 'क्रोधभट्टारक' नामसे प्रसिद्ध हैं—'**तथा च क्रोधभट्टारकः, इति क्रोधभट्टारकः' उक्तं च क्रोधभट्टारकेण**' आदिसे इनका संकेत हुआ है और इनके कथनोंसे विषय-की सम्पुष्टि की गयी है। श्रीचक्रकी विस्तृततम व्याख्या-स्वरूप '**ललितास्तवरत्नम्**' अपरनाम '**आर्याद्विशती**'* इन्हींकी रचना है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित '**त्रिपुरसुन्दरीमहिम्नःस्तवः**', '**अर्चना**', '**त्रिशिका**', '**देवी-महिम्नःस्तव**' आदि स्तोत्र भी सुप्रसिद्ध हैं। इन्होंने पाण्डव-माता कुन्तीको श्रीविद्याके एक अङ्ग '**देवाकर्षिणी**' या '**देवहूति**' विद्याका उसके भविष्यका आकलन कर उपदेश किया था, जिसके फलस्वरूप धर्मराज, इन्द्र,

* इसमें कुल २१३ श्लोक हैं। इसमें बहिरावरण, प्राकारादिमें दण्डिनी, मन्त्रिणी, मातङ्गी आदिकी श्रेष्ठतम स्तुतियाँ हैं—'तापिच्छमेचकाभां तालीदलघटितकर्णताटङ्काम्।'···'कोकनदशोकचरणां कोकिलनि क्वाणकोमलालापाम्······ संगीतमातृकां वन्दे (३५)। तदनन्तर अष्टदिक्पाल, १६ आवरण, इसके बाद विष्णु-शिवादिकी स्थितिके बाद, शक्तियोंके भीतर १५–८५ तक ललिताका वर्णन है। १९८ से २०८ तक कवच भी है। २०६ में कहा है—'श्रीविद्या च यशो मे— पवनमयि पावकमयि क्षोणिमयि गगनमयि कृपीटमयि। रविमयि शशिमयि दिङ्मयि समयमयि प्राणमयि शिवे पाहि।' वस्तुतः इस स्तवरत्नके सभी पद्य इसकी सभी पङ्क्तियाँ एक-से-एक रम्य हैं। भास्कररायने इन्हें ललितासहस्रनाम-भाष्यादिमें उद्धृत किया है।

वायु तथा सूर्य आदि देवोंसे उन्हें युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, कर्ण तथा कुन्तीसे सुशिक्षित माद्रीको नकुल, सहदेव प्राप्त हुए।

क्रोधभट्टारक दुर्वासा गर्भसे ही सिद्ध थे। जब ये सात मासके गर्भमें थे, तब कार्तवीर्यद्वारा इनके पिता महर्षि अत्रिके किंचित् अपमानित किये जानेपर ये तत्काल गर्भसे बाहर कूद पड़े और कार्तवीर्यको भस्म करनेपर तुल गये। इसीलिये ये रुद्रांशसे उत्पन्न 'दुर्वासा' नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भगवान् कृष्णको भी करारी चुनौती दी—**दुर्वाससं वासयेत् को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे। रोषणं सर्वभूतानां सूक्ष्मेणाप्यकृते कृते।** (महाभा० अनु० १५६। १६)। ये महान् तपस्वी थे। दुर्वासा मुनिने तपमें विलम्ब होनेपर धर्मराज, इन्द्र और काशीपुरीमें शिवको भी नहीं छोड़ा। उनके क्रोधको देखकर शिवलिङ्ग अट्टहास कर उठा जो काशीमें प्रहसितेश्वर, दुर्वासेश्वर, अट्टहासेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं।

महर्षि कौशिक

गायत्रीके ऋषि विश्वामित्र प्रसिद्ध ही हैं। श्रीविद्याको सभीने 'गुप्तगायत्री' या 'द्वितीया गायत्री' कहा है। इसीलिये श्रीविद्याका इतना महत्त्व हैं। कौशिकके नामसे नक्षत्रकल्प, वैतानसूत्र, कौशिकसूत्र (संहिताविधि) आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प—ये पाँच महान् तन्त्रग्रन्थ और ७२ परिशिष्ट प्रसिद्ध हैं, जिनमें देवी-उपासनासे शत्रुराष्ट्रोंको पराजित कर, शरणापन्न होनेपर शान्तिकल्पद्वारा ईति-भीति तथा अद्भुत शान्तिद्वारा स्व-पर-राष्ट्रके मङ्गलका भी विधान मिलता है।

अथर्ववेदके सभी गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्रोंमें प्रायः देवीकी उपासनाका विधान है और **'देव्याः महानीराजनम्'** द्वारा साम्राज्यवृद्धिका भी विधान है। समस्त मन्त्रात्मक धनुर्वेद, चतुरङ्गिणी सेनाका संचालन तथा शकुनशास्त्रका भी इन्होंने साङ्गोपाङ्ग प्रतिपादन किया है।

महर्षि वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ भी १२ और २५ संख्यावाले दोनों विभागोंके शक्ति-उपासकोंमें अन्यतम हैं। इनकी पत्नी अरुन्धती स्वयं एक महाशक्ति मानी गयीं हैं और एकमात्र ये ही देवी सप्तर्षि-मण्डलमें अपने पति वसिष्ठके साथ नक्षत्र-रूपमें देखी जाती हैं और उनसे वे कभी भी वियुक्त नहीं रहतीं। यही कारण है कि नवविवाहिता वधूको वर संस्कारान्तमें अरुन्धती-दर्शन कराता है। कालिका-पुराणके अधिकांश भागमें अरुन्धतीकी कई जन्मोंकी कथा तथा महर्षि वसिष्ठकी प्राप्ति और ऋषि-दम्पतिकी तपस्याके फलस्वरूप भगवती कामाख्याके आविर्भावका वर्णन है। ये परम गोभक्त भी रहे हैं।

अष्टादश-पुराणकार भगवान् व्यासदेव

कालिपुत्र भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासदेवकी शक्ति-उपासना सर्वोपरि है। चारों वेदोंके व्यसन (व्याख्या, विस्तार, विभाजन)में 'रात्रिसूक्त', 'देवीसूक्त', समस्त अथर्ववेद, देव्यथर्वशीर्ष आदि-उपनिषदें, कालिकापुराण, मार्कण्डेय-पुराण, देवीभागवत, महाभागवत, देवीपुराण, स्कन्दपुराणका कुमारिकाखण्ड आदि असंख्य ग्रन्थ, आगम, स्तोत्र उनकी प्रतिभासे ही प्रसूत हैं। रघुनन्दन आदिके निबन्ध देवीपुराण-के उद्धरणोंसे भरे हैं। देवीमाहात्म्य उन्हींकी स्वतःप्रसूत साधनाकी देन है, जो सैकड़ों अन्य स्थलोंपर उद्धृत हैं। इसपर पचासों संस्कृत टीकाएँ, प्रयोग और हजारों अनुवाद हैं, जिनका भारतमें पूरे विश्वमें ही नहीं कन्याकुमारीसे काश्मीर, तथा अमरसे कच्छ तक घर-घरमें पाठ होता है।

पराशक्ति-साधनासिद्ध योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ पराम्बा महाशक्तिपर अनुग्रह-स्वरूप भगवान् शिवद्वारा क्षीरसागरमें नौकापर विराजमान होकर उपदिष्ट द्वैताद्वैतविलक्षण नाथयोग-ज्ञानामृतके आदिश्रोता हैं। उनकी अकुल (शिव)-कुल (कुण्डलिनी-स्वरूपिणी पराशक्ति)की साधनाकी सिद्धियोग और तान्त्रिक कुलाचार—कौलज्ञानके सामरस्यकी आधार-शिला है। शिवसंहिता (१। ९५) में साक्षात् शिवका वचन है—'एकमात्र पूर्ण सत्तापूरितानन्द ही सर्वत्र व्याप्त है।' इस साधनाके परिप्रेक्ष्यमें नाथयोग-समर्पित इस सत्तापूरितानन्दमें निर्गुण ब्रह्म, अद्भुत निजाशक्ति—पराम्बा महामाया और शिव—पूर्ण अखण्ड अलख निरञ्जनकी अभिन्नता प्रतिपादित है। यही नाथयोगसाधनामें स्वसंवेद्यतत्त्व-साक्षात्कार है, जिसके आदिप्रवर्तक योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ हैं। नाथस्वरूपको इसी जगदानन्द-परिपूर्ण स्वरूपमें नमस्कार किया गया है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः॥

(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

मत्स्येन्द्रनाथकी कुलकुण्डलिनी-स्वरूपिणी पराशक्ति-साधना अथवा योगिनीकौल-मतपरक कौलाचार-साधनाके परिप्रेक्ष्यमें यह अविस्मरणीय है कि वे नाथयोगी सदा परम गुरुके रूपमें पूज्य हैं। उन्होंने रससाधनाको संस्कारित तथा नाथयोगमें इसका सामरस्य स्थापित करनेके लिये शक्तिपीठ कामरूपके कदलीदेशकी महारानी मंगला एवं कमलाके रमणी-राज्यमें स्त्री-सौन्दर्य और आकर्षणपर विजयके द्वारा संकल्प सत्यापित किया। उन्होंने कौलज्ञानपर विचार तो अवश्य किया, पर वे कौलाचारपरायण नहीं, नाथयोगी थे—यह उनके दिव्य योगचरितकी असाधारण महत्ता है। यह निर्विवाद है कि बिना शिव और शक्तिकी कृपामयी साधनाके सिद्ध स्वान्तःस्थ अलख निरञ्जनका साक्षात्कार नहीं कर सकते। इसीलिये समाश्रय नाथयोगमें शिवशक्तिक सामरस्य स्पष्ट परिलक्षित है। चिदानन्दायितस्वरूप मत्स्येन्द्रनाथ साक्षात् शिवस्वरूप हैं। शिवने उन्हें अपना आत्मज अखिलतत्त्वविज्ञानी सिद्धनाथ कहा है—

सुतो ममाय किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः।

(नारदपुराण, उत्तर० ६९। २७)

वे नाथसम्प्रदायके आदिगुरु तथा कौलाचारके सिद्ध पुरुषके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उन्होंने हिमालयकी उपत्यका तथा कामरूपमें यथाक्रम योगाभ्यास और योगिनीकौलमत-के अनुसार पराशक्ति परमेश्वरीकी साधना की तथा कौलाचारसे प्रभावित तान्त्रिक वातावरणमें गोरखनाथजी-की सहायतासे कौलाचारको संशोधित कर उसे नाथयोगमें अन्तर्मुक्त कर लोकमानसको सद्बोध प्रदान किया। उनकी पराशक्ति-साधनाकी यही विलक्षणता है। उनकी कौलयोगिनीमतकी निष्ठाके रूपमें ललिताम्बाकी साधना सर्वविदित है। यही ललिताम्बा कुलकुण्डलिनी पराशक्ति हैं। 'नित्याह्निकतिलकम्'से ज्ञात होता है कि वे बंगदेशके वारणा, चन्द्रद्वीप अथवा सुन्दरवनके निवासी थे। उनका चर्यानाम गौड़ीशदेव, पूजानाम पिप्पलीशदेव और गुप्तनाम भैरवानन्दनाथ था। उनके कीर्तिनाम वीरानन्द-नाथ, इन्द्रानन्ददेव और मत्स्येन्द्रनाथ थे। शक्तिका नाम ललिताभैरवी अम्बा पापू था। वे कौल नहीं, नाथयोगी थे। उनकी योगसाधना शक्तिसाधना ही है। नाथयोगके

उपदेष्टा आदिनाथ शिव आद्याशक्तिसे ही प्राणवान् हैं। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथने तान्त्रिक शक्तिसाधनापद्धति—कुलसाधनाका निर्मल यौगिकीकरण कर योगिनीकौलमतका प्रवर्तन कर सहस्रारके अकुल शिवसे मूलाधारचक्र—पृथ्वीतत्त्वमें लयित कुलकुण्डलिनीको जागृतिपूर्वक एकात्म किया। वे हठयोगके परमाचार्य थे। गोरखनाथजीने हठयोग—प्राण और अपानके संयोगसे अलख निरञ्जन शिव और पराम्बा जगदीश्वरीकी आराधनाका सत्य इस प्रकार निरूपित किया कि मन ही शक्ति, जीव और शिव है, इसके उन्मनीकरणमें शक्ति अपने परास्वरूपमें अभिव्यक्त होकर शिवको प्राणित करती है।

मत्स्येन्द्रनाथने कौलज्ञानसे नाथयोगज्ञानामृतका समन्वय कर योगिनीकौलमतपरक पराम्बाशक्तिकी साधनाको श्रेयस्कर सिद्ध किया। उनके 'कौलज्ञाननिर्णय' नामक ग्रन्थमें जिस शक्ति-साधनाकी चर्चा है, वह शक्तिपीठ कामरूपकी योगिनियोंके घरमें स्वतः विद्यमान थी। मत्स्येन्द्रनाथने कामरूपमें कौलज्ञान अवतरित किया। कौलज्ञाननिर्णयकी पुष्पिकामें उन्हें कौलज्ञानका अवतारक कहा गया है। कहा जाता है कि कार्तिकेयने कुलागम-शास्त्रको समुद्रमें फेंक दिया था। साक्षात् भैरव शिवने मत्स्येन्द्रनाथके रूपमें उस शास्त्रका भक्षण करनेवाले मत्स्यका उदर विदीर्ण कर उसका उद्धार किया था। आशय यह है कि उन्होंने वामाचार साधकोंद्वारा कुलागम-शास्त्र—कौलज्ञानको लाञ्छित होनेसे बचाकर शक्ति-साधनाके रूपमें उसे नाथयोगका अङ्ग स्वीकार किया।

नाथयोग-साधनाके अनुरूप ही मत्स्येन्द्रनाथने अपने 'कौलज्ञाननिर्णय' ग्रन्थमें शक्तिका स्वरूप विवेचित करते हुए कहा है कि ज्ञान स्वप्रकाश है। भिन्न-भिन्न रूपके प्रकाशनार्थ दीपकी आवश्यकता होती है, पर दीप स्वप्रकाश है। ज्ञान स्वतः प्रकाशित होता है। ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञानरूप त्रिपुटीकृत जगत्के समस्त पदार्थ ज्ञानरूप धर्मके एक होनेके कारण सजातीय हैं, कुल हैं। यह कुलज्ञान ही कौलज्ञान है। कुलकुण्डलिनीका जागकर सहस्रारमें शिवसे मिलना ही कौलज्ञान और नाथयोग-साधनाका परम तात्पर्य है। शिवकी सिसृक्षा—सृष्टि करनेकी इच्छा ही शक्ति है। जिस प्रकार वृक्षके बिना छाया और आगके बिना धूमकी स्थिति नहीं है, उसी तरह शक्तिके बिना शिवकी स्थिति नहीं है।

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
(कौलज्ञाननिर्णय १७। ९)

पराशक्ति-साधनाके स्तरपर मत्स्येन्द्रनाथने कहा है कि जगत् जीवसे सृष्ट है, जीव समस्त तत्त्वोंका नायक है। यही शिव है, मन है, जगत्‌में व्याप्त है। शिवस्वरूप जीव अपने-आपको भुक्ति-मुक्ति प्रदान करता है—

आत्मानमात्मना ज्ञात्वा भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
(कौलज्ञाननिर्णय १७। ३७)

योगिनीकौलमत-साधनाकी विज्ञप्ति है कि सहस्रारमें परम शिव हैं, हृदयपद्ममें जीवात्मा है और मूलाधार-कमलमें कुलशक्ति है। जीवात्मा शिवसे चैतन्य और कुण्डलिनीसे शक्ति पाता है। योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथने कदलीदेशकी भोगप्रवृत्तिमयी साधनासे उपरति प्राप्तकर नाथयोगके अनुरूप शिव-शक्ति-सामरस्यका पक्ष लेकर अपनी शक्ति-साधना कृतार्थ की।
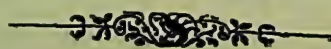
महायोगी गुरु गोरखनाथ

गुरु गोरखनाथका जीवन-चरित्र स्कन्दपुराणान्तर्गत भक्तिविलासके ५१-५२ अध्यायोंमें साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। वे योगविद्याके मर्मज्ञ और आचार्य थे। योगिराज गोरखनाथ 'शिवावतार' कहे जाते हैं। वे अपनी योगसिद्ध देहमें अमर हैं। उनका प्राकट्य एवं योगमय चरित दिव्य हैं। उनके जन्म, जन्मस्थान, माता-पिता, गोत्र आदिके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ, जनश्रुतियाँ तथा अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं, पर सबके मूलमें विशेष बात यह है कि उनकी उत्पत्ति किसी गर्भसे नहीं हुई थी, अपितु वे अयोनिज शिवगोरक्षके रूपमें स्वयं अवतरित हुए थे।

शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ यद्यपि शिवस्वरूप थे, तथापि उन्होंने लोकदृष्टिमें श्रद्धापूर्वक श्रीमत्स्येन्द्रनाथसे योगदीक्षा ग्रहण कर नाथयोगका विस्तार किया। आप हठयोगके प्रणेता और आचार्य हैं। आपकी जीवनचर्या कठोर साधना, अप्रतिम संयम और तपस्याके तेजसे दीप्तिमान थी। मात्र नाथसम्प्रदायमें ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत एवं अनेक देश-देशान्तरोंमें भी आपकी ख्याति व्याप्त थी।

श्रीगोरक्षनाथ परम ज्ञानी और परम सिद्धयोगी थे। अपनी अद्भुत योगसाधनाके बलपर आपने परमब्रह्म, परमज्योतिका साक्षात्कार किया और स्वयं तद्रूप (शिवरूप) हो गये थे। लोकमें आपकी सिद्धियोंके विषयमें अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। आपने अनेक राजा-महाराजाओंको योग-दीक्षा देकर इस दुःखमय भवसागरसे उबारकर परमपदका भागी बना दिया था। आप संस्कृत-विद्याके प्रौढ़ विद्वान् और आचार्य थे। 'सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति', 'विवेक-मार्तण्ड', 'गोरक्ष-संहिता', 'दत्तगोरक्ष-गोष्ठी' आदि अनेक ग्रन्थ और योगशास्त्र आपकी ज्ञान-गुणगरिमाकी महिमाका विस्तार कर रहे हैं। आप श्रीविद्याके परमाचार्य तथा आद्याशक्ति भगवती पराम्बाके परमप्रिय भक्त एवं अनुगत कृपापात्र थे। भगवतीके कृपाप्रसादसे अनेक दुर्लभ सिद्धियाँ आपके हस्तगत थीं। १३वीं शती ई०के भारतके मूर्धन्य एवं सुप्रसिद्ध विद्वान् विद्यारण्य स्वामीने अपने 'श्रीविद्यार्णव' ग्रन्थमें गोरखनाथकी मानवौघके मध्य सिद्ध गुरुओंमें गणना की है। १८वीं शतीके प्रारम्भमें श्रीविद्याके सुप्रसिद्ध अधिकारी विद्वान् भास्करराय भारतीने भी 'सेतुबन्ध' आदि अनेक ग्रन्थोंमें गुरु गोरखनाथकी चर्चा की है।

नाथ-सम्प्रदायके अनेक योगियोंके मतानुसार ऐसी लोककथा प्रसिद्ध है कि एक बार महायोगी गोरखनाथ उत्तराखण्ड हिमालयके अनेक तीर्थों और रमणीय स्थानोंमें भ्रमण करते हुए काँगड़ामें वर्तमान ज्वालादेवीके स्थान-पर पहुँचे। वहाँ उनके स्वागतार्थ ज्वालामुखी पर्वतमें ज्वालदेवी प्रकट हो गयीं और उन्होंने गोरखनाथजीसे अपने स्थानपर आतिथ्य ग्रहण करनेका अनुरोध किया। वे उन्हें अपने हाथसे भिक्षा कराना चाहती थीं। तब गोरखनाथजीने बड़ी प्रसन्नता और विनम्रतासे कहा—'माँ! आप करुणामयी हैं, कृपानिधि हैं, अन्नपूर्णा हैं। सभी प्राणी आपके अनुग्रह और प्रसादसे तृप्त होते हैं। आपकी इच्छा न होते हुए भी इस स्थानपर अज्ञानी लोग तामसिक पदार्थ आपको (बलिरूपमें) समर्पित करते हैं, फिर भी आप उन्हें क्षमा कर देती हैं—यह आपकी परमोदारता और परम कृपालुता है। माँ! क्षमा करें, यहाँ मेरे लिये आहार-ग्रहण करना सम्भव नहीं दीखता।' देवी बोलीं—'गोरखनाथ! मैं तुम्हारी रुचिके अनुसार वही सात्त्विक पदार्थ जो तुम चाहते हो, स्वयं अपने हाथसे बनाकर खिलाऊँगी। तुम्हें मेरा निमन्त्रण स्वीकार करना होगा।' गोरखनाथजीने माँका निमन्त्रण स्वीकार कर कहा कि 'मैं खिचड़ीके लिये चावलकी भिक्षा माँगने जा रहा हूँ।' उन्होंने अपनी झोलीमेंसे एक चुटकी—कुछ कणमात्र भभूत निकालकर

उसे खौलते हुए जलपर डाल दिया। जल तुरंत ठण्डा हो गया। वह जल आज भी ठण्डा ही है, पर उबलता प्रतीत होता है। ज्वालादेवीकी आज्ञा लेकर गोरखनाथजीने चावलके भिक्षार्थ प्रस्थान किया। वे भ्रमण करते हुए इरावती (राप्ती) नदीके तटपर गोरखपुर पहुँच गये और यहीं एकान्त रमणीय स्थानपर तपमें प्रवृत्त हो गये। उधर ज्वालादेवीके स्थानपर उनकी डिब्बीका जल आज भी उबल रहा है।

ज्वालादेवीद्वारा प्रसन्नतापूर्वक गोरखनाथजीसे आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करनेकी हार्दिक सत्प्रेरणा और गोरखनाथजी द्वारा सात्त्विक प्रसाद-ग्रहणकी अभिरुचिका वृत्तान्त गोरखनाथजीकी असाधारण योगसिद्धिका गौरवमय सांस्कृतिक इतिहास है, जिसमें ज्वालादेवीके स्थान (शक्ति-प्राकट्य-स्थल) और गोरखनाथजीकी पुण्य तपःस्थली गोरखपुरका शाश्वत अखण्ड सम्बन्ध सुरक्षित है।

—श्या० सु० श्रो० 'अशान्त'

श्रीमदाद्य शंकराचार्य

भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य जहाँ अद्वैतवेदान्त-दर्शनके आचार्य माने जाते हैं, वहीं वे महामाया आद्या-शक्ति त्रिपुराम्बाके भी उत्कृष्ट कोटिके उपासक रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके विभिन्न पीठोंमें चन्द्रमौलीश्वर भगवान् शंकरके साथ पराम्बा-त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाका उपक्रम आज भी अविच्छिन्न रूपमें चलते रहना है। बौद्धोंद्वारा प्राचीन आगम-तन्त्रशास्त्रको अस्त-व्यस्त और नष्ट कर देनेपर उसको पुनः सुप्रतिष्ठित करनेके लिये आचार्य शंकरने दक्षिणमार्गी श्रीविद्या-उपासनाका सम्प्रदाय प्रवर्तित किया और आजकी श्रीविद्योपासना उन्हींकी परम्परागत शिष्य-परम्परासे संरक्षित और सम्पोषित होती चली आ रही है। 'श्रीविद्यार्णव'के रचयिता श्रीविद्यारण्य यति उन्हींकी परम्पराके हैं। श्रीशंकराचार्यका तन्त्रशास्त्रका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रपञ्चसार' है, जिसमें उन्होंने शक्तिके अनेक रूपोंपर अद्भुत प्रकाश डाला है। आचार्यश्रीने 'सौन्दर्यलहरी'द्वारा पराम्बाके प्रति अपनी जो अनन्य भक्ति व्यक्त की है और श्रीविद्योपासनासम्बन्धी जो अनेक रहस्य प्रकट किये हैं, वह उनका श्रेष्ठतम शक्ति-उपासक होना सुस्पष्ट कर देता है।

भगवत्पादने सन् ७८८ ई० में मलाबारके कालडी गाँवमें नम्बूदरी ब्राह्मण-वंशमें जन्म ग्रहण किया और आठवें वर्षमें चारों वेदोंके विद्वान् तथा बारहवें वर्षमें सर्वशास्त्रोंमें पारङ्गत होकर सोलहवें वर्षमें ब्रह्मसूत्रपर शांकरभाष्य लिखा एवं बत्तीसवें वर्ष (८२०ई०) में गुहा-प्रवेश किया। पराम्बा श्रीविद्याके उपासकोंके लिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। सचमुच ही आचार्य-चरण-द्वारा उपासकोंको दक्षिणमार्गीय श्रीविद्या-सम्प्रदायका प्रदान बहुत बड़ा उत्स है।

श्रीपद्मपादाचार्य

भगवत्पाद शंकराचार्यके चार शिष्य थे, जिनमें पद्मपादाचार्य प्रमुख शिष्य और आचार्यके अद्वैतमतको पुष्ट करनेवाले माने जाते हैं। इनके ब्रह्मसूत्र चतुःसूत्री पर 'पञ्चपादिका' अद्वैत-सिद्धान्तके प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन्होंने आचार्यश्रीकी तन्त्रधाराको भी अजस्र रूपमें प्रवाहित करनेकी दिशामें बहुत बड़ा कार्य किया है। आचार्यश्रीके 'प्रपञ्चसार'पर इनकी विशद व्याख्याने आचार्यके अन्तरमें निहित शक्ति-गौरवकी भावनाको भली-भाँति उजागर कर दिखाया है। अतः इन्हें भी पराम्बाका प्रमुख उपासक माना जाता है।

श्रीप्रगल्भाचार्य

शिवतत्त्व-रत्नाकरके अनुसार श्रीप्रगल्भाचार्यने श्रीयन्त्र युक्त चन्द्रमौलीश्वर शिवलिङ्ग देकर माधवाचार्यको अनुष्ठान करनेका आदेश देते हुए कहा कि इससे देवी तुम्हारे सामने प्रकट होकर वर देगी। किंतु अनुष्ठानोंके पश्चात् भी कुछ अभीष्ट न दीखनेसे माधवाचार्यके लिये पुस्तकादिको अग्निमें डालकर जब श्रीयन्त्र भी अग्निको समर्पित करने, उद्यत हुए, तब देवीने सामान्य स्त्रीके रूपमें प्रकट होकर पूछा कि 'यह आप क्या कर रहे हैं?' उन्होंने अपनी निराशाकी बात कह सुनायी। देवीने कहा—'पीछे तो देखो।' जबतक वे पीछेकी ओर देखते हैं, तबतक वह अग्नि उधर ही चली आयी और आकाशसे ग्यारह बड़े पत्थर सशब्द अग्निमें गिरकर फटते गये। माधव चकित होकर उस स्त्रीको ढूँढ़ने लगे, पर देवी अन्तर्हित हो चुकी थीं। उनके अत्यन्त व्यग्र होनेपर आकाशवाणी हुई कि 'गुरुद्रोहके कारण अब तुम्हें इस जन्ममें किसी देवताका दर्शन न होगा।' रोते-कलपते माधव प्रगल्भाचार्यके पास पहुँचे और क्षमा माँगी। प्रगल्भाचार्यने कृपापूर्वक क्षमा कर उन्हें एक अनुष्ठानद्वारा पुनः देवीका दर्शन कराया। जन्म-परिवर्तनके स्थानपर उन्हें संन्यास-दीक्षा दे दी और उनका नाम 'विद्यारण्य' रखा। विद्यारण्यको श्रीविद्याका समग्र विधान बताकर ग्रन्थ लिखनेका आदेश दिया। ग्रन्थ पूरा होनेपर महामाया भगवतीने प्रकट हो विद्यारण्यको दर्शन दिया। इसका सारा श्रेय श्रीप्रगल्भाचार्यको ही है। स्वामी विद्यारण्यने इनके प्रति अपारी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए ग्रन्थके प्रत्येक श्वासक पुष्पिकामें ही उनका नाम दिया है।

आचार्य श्रीलक्ष्मण देशिकेन्द्र और राघवभट्ट

आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्रका नाम भगवत्पाद आद्य-शंकराचार्यके गृहस्थ शिष्योंमें अग्रणीके रूपमें लिया जाता है। इन्होंने अपने जीवनमें अद्भुत चमत्कारपूर्ण कार्य किये थे। देवी इनके सामने प्रत्यक्ष होती रहती थीं। ये दक्षिणापथ महाबलेश्वरके पासके निवासी थे।

इनकी रचना 'शारदातिलक' शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य आदि सनातनधर्मकी सभी शाखाओंमें समानरूपसे समादृत है। यह २५ पटलोंमें उपनिबद्ध है। भगवती सरस्वतीकी कृपासे ये प्रथम श्रेणीके सिद्धहस्त कवि थे। इसका एक उदाहरण देखिये—

> **अन्तःस्मितोल्लसितमिन्दुकलावतंस-**
> **मिन्दीवरोदरसहोदरनेत्रशोभि ।**
> **हेतुस्त्रिलोकविभवस्य नवेन्दुमौले-**
> **रन्तःपुरं दिशतु मङ्गलमादराद् वः ॥**

भाव यह है कि नवचन्द्रशेखर भगवान् सदाशिवके अन्तःपुरकी अधिष्ठात्री भगवती भुवनेश्वरी आप हम सब लोगोंके लिये सादर सुमङ्गल प्रदान करें। भगवान्का वह अन्तःपुर सदैव स्मितसे उल्लसित है और उनके मुकुटपर अर्धचन्द्रकी कला विराज रही है तथा नेत्र नीलकमलके समान शोभासे सम्पन्न हैं। व्याख्याकार राघवभट्टके अनुसार इस श्लोकमें भुवनेश्वरी-बीज 'ह्रीं'कारकी व्याख्या है।

इस बहुचर्चित ग्रन्थपर अनेक टीकाएँ हैं, जिनमें दो तो विशेष उल्लेखनीय हैं—१—राघवभट्टकी 'पदार्थादर्श' और २—माधवभट्टकी 'गूढार्थ-दीपिका'। प्रस्तुत ग्रन्थमें 'स्फोट'द्वारा विश्वकी उत्पत्ति बतलायी गयी है और यज्ञादि समस्त कर्मकाण्डसहित देव-मन्दिर-निर्माण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, भुवनेश्वरी, सरस्वती, त्वरिता, पद्मावती, अन्नपूर्णा, दुर्गा, वनदुर्गा, भैरवी, बाला, त्रिपुरभैरवी, राजमातङ्गिनी, वज्रप्रस्तारिणी, नित्या, अश्वारूढा आदि सभी शक्तियोंके साथ-साथ गणपति, कार्तिकेय, दक्षिणामूर्ति शिवके चिन्तामणि आदि मन्त्र, गायत्रीसहित नृसिंह, हयग्रीव, समग्र राम, विष्णु, सौर-परिकर, दशावतारोंमें हयग्रीवादि तथा

पुरुषोत्तम-प्रकरण नामक विशिष्ट प्रकरणसहित गोपालके षडक्षरादि त्रयस्त्रिंशत्-अक्षरान्त १० मन्त्रोंका विधान है। अन्तमें त्र्यम्बक, मृत्युञ्जय, वरुणके साथ योग एवं वेदान्तके प्रकरणके साथ ब्रह्मस्वरूपका विस्तारसे प्रतिपादन है। कुण्डलिनी-जागरण, उसके स्थान-सहित पूर्णस्वरूप एवं फलका भी निर्देश है। निःसंकोच कहा जा सकता है कि इसके परवर्ती सभी ग्रन्थोंका यही शारदातिलक उपजीव्य है।

इतिहासकी दृष्टिसे लक्ष्मण देशिकेन्द्रको विजयनगरके राजा प्रौढदेवने उनकी विद्वत्ता, साधना एवं तपस्यासे आकृष्ट हो अपना सभापण्डित बनाया था; किंतु राजाके कुछ अशिष्ट व्यवहारोंसे असंतुष्ट होकर, राजाको शाप देकर ये उसके राज्यसे चले गये। फलस्वरूप वह राज्य निर्वंश हो गया। किसी प्रकार श्रीविद्यारण्य यतिने उसे बचाकर पुनः उस राज्यका संवर्धन कर दिया। श्रीविद्यारण्य श्रीदेशिकेन्द्रके अनन्य भक्त थे।

राघवभट्ट—'शारदातिलक'के प्रथम टीकाकार राघवभट्ट नासिक-निवासी श्रीपृथ्वीधरके पुत्र थे। बादमें ये वाराणसी चले आये। ये सभी शास्त्रोंके ज्ञाता थे तथा संगीत और तन्त्र-शास्त्रमें तो ये अत्यन्त निपुण थे। इन्होंने भास्कराचार्यकी लीलावती '(ज्योतिषग्रन्थ)' तथा अभिज्ञानशाकुन्तलकी श्रेष्ठ व्याख्याएँ भी लिखी हैं। इनकी व्याख्याओंमें अपार ज्ञान भरा है। इनकी टीका न होती तो 'लीलावती' तथा 'शारदा-तिलक'के रहस्य समझमें ही न आते। वस्तुतः उनकी टीका स्वयं विशाल 'सर्वतन्त्र-सार' है। मुद्राभेद, अष्टचन्दन-भेद, उपचार-ज्ञानादिके लिये यह ज्ञानप्रकाशिका दिव्य कुञ्जिका है। इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है।

श्रीअभिनव गुप्त

शक्ति-उपासकोंमें अभिनव गुप्तका नाम अत्यन्त आदरके साथ लिया जाता है। इस दिशामें इन्होंने ग्रन्थ-रचनाद्वारा जो वाङ्मयी उपासना की है, वह बेजोड़ है। अभिनव गुप्तमें दार्शनिकता, साहित्यिकता और तान्त्रिकताकी त्रिवेणीका अद्भुत संगम दीख पड़ता है। सन् ९९३ से १०१५ और अधिकाधिक १०२०ई० तक इन्होंने दर्शन, साहित्य और तन्त्रशास्त्रपर भी ग्रन्थ लिखे हैं। काश्मीरी शैव-सिद्धान्त (प्रत्यभिज्ञाशास्त्र)की गुरु-परम्परामें वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पल और लक्ष्मण गुप्तके पश्चात् अभिनव गुप्तका ही नाम लिया जाता है। इस दर्शनधारामें 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' तथा 'परमार्थसार' इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। नाट्यशास्त्रपर 'अभिनव-भारती'-व्याख्या, 'ध्वन्यालोक' ग्रन्थपर 'लोचन'-व्याख्या और रस-सिद्धान्तोंमें सर्वाधिक समादृत 'अभिव्यक्तिवाद'की उद्भावना इनकी साहित्यिकताको सुस्पष्ट कर देती है। 'तन्त्रालोक'-जैसा विशालकाय ग्रन्थ, तन्त्रसार, तन्त्र-वटधानिका, मालिनीविजयतन्त्र-वार्तिक, क्रमस्तोत्र, भैरवी-स्तोत्र, देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, अनुभवनिवेदन, देवीस्तोत्र-विवरण, तन्त्रोच्चय आदि ग्रन्थ इनकी तान्त्रिकताको उजागर करते हैं। इस तरह शक्ति-उपासकोंकी श्रेणीमें ये उच्च स्थानपर आसीन होते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे और इतने शाक्तग्रन्थोंके लेखक, उच्चकोटिके शक्ति-उपासक कम ही होंगे।

अभिनव गुप्तके कश्मीर-निवासी होनेकी बात बहुप्रचलित है। श्रीचित्रावशास्त्री अपने 'मध्ययुगीन चरित्रकोश'में इन्हें आसाम-निवासी ब्राह्मण बतलाते हैं। 'परात्रिंशिका-विवरण' (२८०)के अनुसार इनका जन्म अन्तर्वेद (दोआब)में हुआ और बादमें ये कश्मीर-निवासी हो गये। अभिनव गुप्तके दादा वराह गुप्त और पिता नरसिंह गुप्त (चुखुलक) थे। इनके एक छोटे भाई मनोहर गुप्त नामके थे। अभिनव गुप्तके १२ गुरु (विभिन्न शास्त्रोंके अनुसार) बताये जाते हैं। 'तन्त्रालोक' (आह्निक १० श्लोक २८७) के आधारपर टीकाकार, जयरथ सुमतिनाथ इनके परम गुरु बताये गये हैं।

श्रीविद्यारण्य मुनि

शक्ति-उपासकोंमें श्रीविद्यारण्य मुनिका विशिष्ट स्थान है। 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' जैसा विशालकाय और महत्त्वपूर्ण तन्त्रग्रन्थ ही इनके महान् शक्ति-उपासक होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आप भगवत्पाद आद्य शंकराचार्यद्वारा प्रवर्तित दक्षिणमार्गीय श्रीविद्योपासना-सम्प्रदायके विस्तारक तथा शृङ्गेरी-मठके परवर्ती पारम्परीण शंकराचार्य माने जाते हैं।

विद्वद्वर्गमें श्रीविद्यारण्य वैयाकरण, सर्वदर्शन-पारङ्गत, तन्त्रज्ञ और स्मृति-संग्रहकर्ताके रूपमें विख्यात हैं। आपने व्याकरणमें 'माधवीय-धातुवृत्ति', अद्वैत वेदान्तमें 'पञ्चदशी,' 'विवरण-प्रमेय-संग्रह,' 'बृहदारण्यक-वार्तिकसार', 'अनुभूति-प्रकाश', 'अपरोक्षानुभूति', 'जीवन्मुक्तिविवेक', ऐतरेय, तैत्तिरीय ब्राह्मण-भाष्य,-नृसिंहोत्तरतापनी भाष्य, सर्वदर्शनसंग्रह, मीमांसामें—'जैमिनीय-न्याय-माला-विस्तर', धर्मशास्त्रमें 'पराशर-माधव', 'कालमाधव' आदि विभिन्न प्रासंगिक शास्त्रोंके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचे हैं।

श्रीविद्यारण्यका जन्म सन् १२९६ ई०में हुआ था और निर्वाण सन् १३८६ ई० में। इस प्रकार इन्होंने ९० वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त की थी। कुछ विद्वानोंके अनुसार इनका पूर्वाश्रमका नाम 'माधवाचार्य' था। सन्१३३१में इन्होंने जब चतुर्थाश्रम ग्रहण किया, तब इनका नाम 'विद्यारण्य' हो गया। माधवाचार्यके पिताका नाम मायण और माताका नाम श्रीमती था। इनके दो भाई थे। एक वेद-भाष्यकार 'सायणाचार्य' और दूसरे भोगनाथ। कहा जाता है कि माधवाचार्य चिरकालतक विजयनगरके महाराज बुक्कारायके मन्त्री रहे और बादमें उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। आपका गार्हस्थ्य राजनीति और ग्रन्थ-भण्डारणकी वृद्धिमें बीता। आपने कुछ वर्ष जयन्तीपुरमें राज्याश्रय लिया, उसी संदर्भमें ऐसा भी बताया जाता है कि आपने कोंकण प्रदेश-पर भी अधिकार पा लिया था। संन्यास ग्रहण करनेके बाद आप शृङ्गेरीपीठके अध्यक्ष बने। बुक्करायने जब आपसे वेदभाष्य लिखनेका अनुरोध किया, तब आपने उनसे कहा कि 'मेरा भाई सायणाचार्य यह कार्य करेगा।' चारों वेदोंपर सायणाचार्यके भाष्य संसारको सुलभ हैं।

श्रीविद्यारण्य मुनिके कई गुरुओंका उल्लेख पाया जाता है। पहले गुरु श्रीविद्यातीर्थ थे। उनके देहावसानके बाद श्रीभारतीतीर्थ गुरु हुए और संन्यास-दीक्षाके गुरु थे श्रीशंकरानन्द। 'जैमिनीय-न्यायमालाविस्तर'-में वे लिखते हैं—'भारतीतीर्थयतीन्द्रचतुराननात्' और 'विवरण-प्रमेयसंग्रह'के प्रारम्भमें लिखते हैं—'शंकरानन्दपदे हृदब्जे।' प्रगल्भाचार्य इनके तन्त्र-विद्याके गुरु थे। यह बात उन्होंने श्रीविद्यार्णवके प्रथम श्वासमें तथा सभी श्वासोंकी पुष्पिकामें सर्वत्र बेहिचक, किंतु अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिखी है। 'शिवतत्त्वरत्नाकर'के अनुसार रेवण-सिद्ध भी इनके गुरुओंमेंसे एक थे। वे शैव होते हुए भी विष्णु, सूर्य, गणपति आदि सबके भक्त थे। देवीके तो परमोपासक थे ही।

'मध्यकालीन चरित्रकोश'में श्रीचित्रावशास्त्री कई तर्क और ऐतिहासिक साक्ष्य देकर मानते हैं कि श्रीविद्यारण्य और माधवाचार्य एक नहीं थे। गुरुवंशकाव्य, गुरु-परम्पराचरित, विद्यारण्यकाल-ज्ञानके अनुसार भी ये विद्यातीर्थके ही छोटे भाई माने जाते हैं। श्रीविद्यार्णवमें भी इन्होंने सायण आदिका उल्लेख नहीं किया है। ये सायणके गुरुके रूपमें तो सर्वत्र प्रसिद्ध रहे ही हैं। अतः दोनोंके घनिष्ठ सम्बन्धमें कोई विवाद नहीं है।

आचार्य महीधर

आचार्य महीधर अहिच्छत्र (रामनगर-बरेली) के निवासी वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पितामह महान् राम-भक्त थे। मन्त्रसाधनाके सिद्ध ज्ञानी होकर ये काशी आये। इनका समय १६ वीं शती है। जब इन्हें संसार असार लगा तब ये काशी अस्सीघाटके दक्षिण जगन्नाथ-मठमें दिव्य साधनाद्वारा नृसिंहकी आराधना करने लगे। वहाँ इन्हें परमदिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर उन्होंने मन्त्रमहोदधि, नृसिंह-पटल, यजुःभाष्य आदि पचासों ग्रन्थ लिखे। आप श्रीविद्याके परम भक्त थे। श्रीविद्यापर आपका सर्वोत्तम ग्रन्थ-'मन्त्रमहोदधि' है। वे स्वयं लिखते हैं—

अहिच्छत्रद्विजाच्छत्रवत्सगोत्रसमुद्भवः ।

× × ×

महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन् ॥
निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।
सेवमानो नरहरिं तत्र ग्रन्थमिमं व्यधात् ॥

(मन्त्रमहोदधि २५ । १२१-२२)

वे लक्ष्मी-नृसिंहके भी परम उपासक थे।

नृसिंह उत्तङ्कतमुद्रजा मां समुद्धराद्वीपगृहे निषण्णः ॥

(म० म० २५ । १२९)

'श्रीधरस्वामीके दिव्य ज्ञानमें भी यही उपासना हेतु थी—'श्रीधरः सफलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः।' 'तं नृसिंहमहं भजे।' इत्यादि (भागवतभावप्रकाशिका० १२ । ३ टीका, उपोद्घात)।*

वेदभाष्यकार श्रीमहीधर शुद्ध निष्काम भक्त थे। निष्कामताके सम्बन्धमें वे आचार्य शंकरके 'प्रपञ्चसार'का अनुसरण करते हुए लिखते हैं कि वेद या तन्त्रोक्त मन्त्र सकाम उपासकके शत्रु बन जाते हैं। अतः उनका उपयोग मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि सकाम कर्मोंमें भूलकर भी नहीं करना चाहिये—

शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः ।
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रो न तस्मात् तत्परो भवेत् ॥

(मन्त्रमहोदधि २५ । ७३)

'मैंने षटकर्मोपासना-विषयक साधनका निर्देश प्राणियोंको मोक्षकी ओर अग्रसर करनेके लिये किया है (म० म० २५। ७४)। सकाम उपासकोंको निर्दिष्ट एक फलमात्र ही मिलता है, पर निष्काम साधककी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। देवता निष्कामियोंके पूर्ण वशीभूत हो जाते हैं, अतः निष्काम-भावसे ही आगमोक्त मार्गोंसे देवोपासना करनी चाहिये—

काम्यकर्मप्रसक्तानां तावन्मात्रं भवेत्फलम् ।
निष्कामं भजतां देवमखिलाभीष्टसिद्धयः ॥

(मन्त्रमहोदधि ७५ । ७६)

प्रायः ऐसी ही बातें उन्होंने 'अद्भुतविवेक', 'नृसिंह-पटल', 'कात्यायनगृह्यसूत्र', 'शुक्लयजुःभाष्य', 'षडङ्ग-रुद्रभाष्य', 'पुरुषसूक्तटीका', 'मातृकानिघण्टु' आदिमें लिखी हैं। श्रीविद्यापर इनके ग्रन्थमें प्रायः ६० पृष्ठ हैं और सारी सामग्री शुद्ध एवं असंदिग्ध रूपसे संनिविष्ट है।

इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि श्रीविद्योपासकका† निष्कामकर्मयोगी होना परमावश्यक है। ऐसा साधक शनैः-शनैः समस्त प्रपञ्चोपशमपूर्वक शान्त, शुद्ध-बुद्ध, अद्वय, निर्मल, स्वप्रकाश एवं शिवरूप होकर कृत-कृत्य हो जाता है।

---

* आचार्य शंकरका नृसिंह पूर्वतापनीभाष्य इसीका सूचक है। इसे देखनेपर यही आपकी सर्वोत्तमकृति प्रतीत होती है, जो साक्षात् भगवान् नृ-हरिकी कृपाके बिना सम्भव नहीं है।

† श्रीविद्यार्णवमें इनका मन्त्रमहोदधि, विद्यारण्यजीका श्रीविद्यार्णव तथा कृष्णानन्दजी आगमवागीशका बृहत्-तन्त्रसार अवश्य अनुसंधेय है। ये सभी क्षेत्रोंमें सर्वत्र अप्रतिमतत्त्वका अमृतमयी मधुर शैलीमें प्रतिपादन करते हैं।

*

निगम-आगममें शक्ति-सम्बन्धी साहित्य

(श्रीगोविन्दनरहरि वैजापुरकर, एम्० ए०, न्याय-वेदान्त-साहित्याचार्य)

वेद-संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदाङ्ग, सूत्र, आगम, तन्त्र, निबन्धग्रन्थ और पुराणोंपर विहंगम दृष्टि डालनेपर स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय वाङ्मयमें शक्तिसम्बन्धी साहित्य इतनी विपुल मात्रामें भरा पड़ा है कि उसका एक छोटे-से निबन्धमें कभी संकलन नहीं किया जा सकता। फिर भी संक्षेपमें उस साहित्यका नाम-निर्देश और कहीं-कहीं आवश्यक विवरणके साथ इस विषयपर प्रकाश डालनेका नम्र प्रयास किया जा रहा है।

वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक

जहाँतक संहितात्मक वेदका प्रश्न है, उसमें ऋग्वेदमें अदिति, सरस्वती, शची, उषा, सूर्यदेवी, वाणी और लक्ष्मीके रूपमें शक्तिके गौरवकी गाथा पर्याप्त पायी जाती हैं। कहीं वह माता, कहीं कुमारी तो कहीं पत्नीरूपमें चित्रित की गयी है। ऋक्संहिताके १० वें मण्डलका १२५वाँ सूक्त 'देवीसूक्त' है, जिसमें अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाक्ने शक्तिभावापन्न होकर कतिपय ऋचाओंका दर्शन किया है, जिसे 'वाक्सूक्त' भी कहा जाता है। इसी प्रकार ऋक्संहिताके खिल-भागका २५ वाँ सूक्त 'रात्रिसूक्त' कहा जाता है, जिसमें प्रधानतया रात्रिरूपमें देवीका ही स्तवन है। ऋक्संहिताके ही खिलभाग (अष्टक ४, अध्याय ४, वर्ग ३४)में 'श्रीसूक्त' नामक एक अन्य सूक्त १५ ऋचाओंका है, जिसमें महालक्ष्मीकी स्तुति-प्रार्थना है।

यजुर्वेदमें सूर्यपत्नी नववधू-रूपमें नये-नये जड-जगत् और चर-जीवोंकी जननीके रूपमें वर्णित है। सामवेदमें भगवती परा देवताके रूपमें, प्राणके अध्यक्ष चेतनकी लयभूमिके रूपमें अभिहित की गयी है। फिर अथर्ववेदमें तो उसके एक भाग 'सौभाग्यकाण्ड'में सुषमा, सुन्दरी, अम्बिका आदि रूपोंमें इसी शक्तिकी महिमा गायी गयी है। इस तरह संहिता तथा वेदभागमें शक्तिवाद भलीभाँति चर्चित है।

वेदके ही अपर भाग ब्राह्मण, आरण्यकमें ब्रह्म-चैतन्यकी वह शुद्ध शक्ति, गायत्री, सावित्री, सरस्वती आदिके रूपोंमें बहुधा वर्णित है।

यहाँ यह विशेषरूपसे ज्ञातव्य है कि उपनिषदोंमें ब्रह्मकी आद्याशक्तिको तीन भागोंमें बाँटा गया है। ऋग्वेदकी शाखाकी ऐतरेय उपनिषद्में कहा गया है कि उस परमात्माने संकल्प किया, दृष्टि खोली—'स ऐक्षत।' यह भीतरकी 'इच्छाशक्ति'का केन्द्रियभाव कहलाता है, जिसे परवर्ती तन्त्रशास्त्रोंमें 'परबिन्दु' कहा गया है। उसके बाद ब्रह्मने (परमात्माने) कामको वेग दिया और बहुत गहरा निरीक्षण किया—'सोऽकामयत। तपोऽकुरुत।' इस आदि-इच्छाके बाद ज्ञानरूप वेगसे ब्रह्म तपद्वारा एकीकरणको प्राप्त होकर घनीभूत हुआ —'तपसा अचीयत' और उसमेंसे प्राणतत्त्व अभिव्यक्त हुआ। ब्रह्मतत्त्वकी परबिन्दु-अवस्थामें जो आद्य क्षोभ होकर प्राणतत्त्वका उदय हुआ, उसे तन्त्रशास्त्रमें 'अपरबिन्दु' कहते हैं। यही ब्रह्मकी 'ज्ञानशक्ति' है। तदनन्तर पंद्रह कलाओंद्वारा भुवनोंको रचकर भोग्य, भोगसाधन, भोगभूमि आदि ब्रह्म वस्तुके आद्य संकल्पको सृष्टिमें सफल बनानेवाली ब्रह्मकी तीसरी शक्ति 'क्रियाशक्ति' कहलाती है। औपनिषद ईक्षण, तप और सर्जन ही वेदान्तकी भाषामें 'ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्ति' कहलायी तथा ये ही तन्त्रशास्त्रमें 'बिन्दु, बीज और नाद' कहलाये। तन्त्रमें क्रियाशक्तिको 'नाद' कहा गया है और जिस द्रव्यमें उस नादकी लहरी जाग्रत् होती है उसे 'बीज' कहते हैं। इन तीनों शक्तियोंको तन्त्रमें परब्रह्म या परशिवकी स्वाभाविक

शक्ति माना गया है तथा शक्तिके स्फुरणवाले ब्रह्म-चैतन्यको 'शिव' कहते हैं। ब्रह्म वस्तुके परबिन्दु, अपरबिन्दु और उसके तीन विभागोंको समझनेके लिये एक प्रतीक ▽ की रचना की गयी और उसे 'त्रिपुर-धाम' कहा गया।

यहाँ मध्यबिन्दु परबिन्दुका सूचक है और तीनों कोणोंके सिरे अपरबिन्दुके बिन्दु (चिदंश), बीज (अचिदंश) और नाद (चिदचिदंश)के सूचक हैं। इस सम्पूर्ण आकृतिकी अधिष्ठात्री देवताको 'त्रिपुरा' कहते हैं। इस मूल प्रतीकका सर्वांश विवरण या प्रस्तार 'श्रीचक्र' है और उसे समझानेवाली विद्या 'श्रीविद्या' कहलाती है।

उपनिषत्-साहित्य

ब्रह्मचैतन्यके स्वभावधर्म अर्थात् शक्तितत्त्वके प्रतिपादक चौदह उपनिषदें हैं। इनके नाम ये हैं—१—त्रिपुरा, २—त्रिपुरातापिनी, ३—देवी, ४—बह्वृच, ५—भावना, ६—सरस्वती-हृदय, ७—सीता, ८—सौभाग्यलक्ष्मी, ९—काली, १०—तारा, ११—अद्वैत-भावना, १२—अरुणा, १३—कौल और १४—श्रीविद्या-तारक, जिनमें अन्तिम अप्रकाशित होनेपर भी गायकवाड पुस्तकालयकी सूचीमें १८३७ संख्यापर अङ्कित है।

उपर्युक्त उपनिषदोंमें काली, कौल और श्रीविद्यातारक नामक तीन उपनिषदें वेदके शाखा-साहित्यमें नहीं मिलतीं, अतएव ये तन्त्रशास्त्रकी परवर्ती ही कही जा सकती हैं। अधिकांशतः शेष उपनिषदें मन्त्र या ब्राह्मण-समूहमें उपलब्ध होती हैं। इसलिये निश्चय ही ये वेद-साहित्य कही जायँगी। संक्षेपमें इन उपनिषदोंके विवेचनीय विषयोंपर प्रकाश डालना भी अप्रासङ्गिक न होगा।

१—त्रिपुरा—इसे 'त्रिपुरामहोपनिषद्' भी कहते हैं। इसमें १६ मन्त्र हैं, जो ऋचारूप हैं। शाकल-संहिता और कौषीतकी ब्राह्मणके साथ सम्बद्ध रखने-वाले आरण्यकमें बह्वृच ब्राह्मणोंके पाठमें ये मन्त्र आते हैं। साथ ही शांखायन कल्पसूत्रके साथ इन मन्त्रोंका विनियोग समझा जाता है, अतः निश्चय ही ये श्रौत-साहित्यके मन्त्र हैं। इस उपनिषद्पर अप्पय्य दीक्षित, भास्करराय और रामानन्दके भाष्य हैं।

२—त्रिपुरातापिनी—इसमें मूल श्रीविद्याकी पञ्चदशाक्षरी-का उद्धार है। देवीकी स्थूल पूजन-पद्धति और सूक्ष्म-पूजन-पद्धति दी गयी है। तीन देवीमन्त्रोंका उद्धार है। गायत्री-मन्त्रका शक्तिवादमें तात्पर्य दिखाया गया है और अन्तमें निर्गुण ब्रह्मविद्याका भी प्रतिपादन है। इसपर अप्पय्य दीक्षित और भास्करराय आदिके भाष्य हैं। यह त्रिपदा गायत्रीमें निबद्ध है।

३—देव्युपनिषद्—इसमें वाक्सूक्त और श्रीसूक्तके मन्त्र हैं, साथ ही श्रीविद्याकी पञ्चदशी भी है। यह उपनिषद् अथर्ववेदके 'सौभाग्यकाण्ड'की मानी जाती है। यही 'देव्यथर्वशीर्षोपनिषद्' कहलाती है।

४—बह्वृच—इस उपनिषद्में शाक्तसम्प्रदायकी कादि और हादि विद्याका उद्धार है और ललितारूपसे परब्रह्मका चिन्तन है। शक्तिके मूल पञ्चदशाक्षरी मन्त्रमें जिस मतमें 'क' वर्ण आया है, उसे 'कादि' मत और जिसमें 'ह' वर्ण आया है, उसे 'हादि' मत कहते हैं।

५—'भावनोपनिषद्—यह उपनिषद् देवीके पर-स्वरूपका भान कराती है। इसमें श्रीविद्याकी अध्यात्म-प्रतिष्ठा है। इसपर अप्पय्य दीक्षित और भास्कररायके भाष्य हैं। 'शाक्त-अद्वैतवाद'की भित्ति इसी उपनिषद्पर आधारित है।

६—सरस्वती-हृदय—इसमें ऋग्वेद-संहिताके सरस्वती-सम्बन्धी सारभूत मन्त्र हैं और उनका तान्त्रिक विनियोग बताया गया है।

७—सीतोपनिषद्—यह उपनिषद् वैष्णवागमके बादकी और रामभक्तिकी व्यापकताके पश्चात्की मालूम पड़ती है। संहिता-ब्राह्मणमें इसका उल्लेख नहीं मिलता

८–सौभाग्य-लक्ष्मी'—यह श्रीसूक्त है, जो ऋग्वेदके चौथे अष्टकके चौथे अध्यायके ३४वें वर्गमें आता है और इसीके 'खिल' या 'परिशिष्ट' सूक्तोंमें है। यहाँ इसका तान्त्रिक विनियोग बताया गया है और नवचक्रमें देवीकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये, यह समझाया गया है।

९–१३–काली, तारा, अद्वैतभावना, कौल, श्रीविद्यातारक—ये उपनिषदें प्राचीन नहीं हैं, किंतु वाममार्गके प्रचारके बादकी मालूम होती हैं। इनमें तारा तो बौद्धोंमें ही विशेष प्रचलित है।

१४–अरुणोपनिषद—यह उपनिषद् तैत्तिरीय आरण्यकके अन्तर्गत है। यह एक सौ अठारह 'उपनिषत्-समुच्चय' की अरुणोपनिषद्से भिन्न है। उस अरुणा नामक शाक्त-उपनिषद्की टीका, लक्ष्मीधरकी जो सौन्दर्य-लहरीपर व्याख्या है, उसके अन्तर्गत हुई है।

उपर्युक्त १४ उपनिषदोंके अतिरिक्त २० अन्य उपनिषदें भी भगवती पराशक्तिकी उपासनापरक हैं, जिनके नाम हैं—१–गुह्यकाली, २–कालिका, ३–काली-मेधादीक्षिता, ४–सावित्री, ५–गायत्री, ६–गायत्री-रहस्य, ७–राधा, ८–राधिकातापनीय, ९–राधोपनिषद्, १०–तुलसी, ११–अन्नपूर्णा, १२–श्रीचक्र, १३–सुमुखी, १४–षोढा, १५–हंसषोढा, १६–गुह्यषोढा, १७–श्यामा, १८–राजश्यामलारहस्य, १९–वनदुर्गा और २०–सरस्वतीरहस्य। इनमें संख्या १२ से १७–तककी उपनिषदें अथर्ववेदके 'सौभाग्यकाण्ड'की बतायी जाती हैं।

वेदाङ्ग-साहित्य

वेदोंके छः अङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष)में व्याकरण मुख माना गया है—'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।' इस व्याकरण-आगममें वाक्को चैतन्यकी शक्ति माना गया है। ऋग्वेद (२। ३। २२। ५) में कहा है कि 'इस वाग् देवीके चार पाद हैं, जिसे बुद्धिमान् जानते हैं। इनमें तीन पाद तो गुहामें गुप्त हैं, केवल चौथे पादको ही मनुष्य जानते हैं।' मन्त्रशास्त्रानुसार ये चार पाद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं, जिनमें आरम्भके तीनों पाद क्रमशः बुद्धि, मन और प्राणकी गुफामें गुप्त हैं, केवल वैखरी वाणी मनुष्यकी समझवाला पाद है। 'वैयाकरण सिद्धान्तमञ्जूषा'में कहा गया है कि परमेश्वरकी सर्जनेच्छासे मायावृत्ति प्रकट हुई और उसमेंसे तीन गुणोंवाला अव्यक्त बिन्दु प्रकट हुआ। यह बिन्दुरूप अव्यक्त ही शक्तितत्त्व है। इस बिन्दुका जडांश 'बीज', 'चैतन्यांश' (अपर) 'बिन्दु' और मिश्रांश 'नाद' है।

सूत्र-साहित्य

वेदकी श्रौत, गृह्य और धर्मशाखाओंपर जो सूत्र-ग्रन्थ हैं, उन्हें 'कल्पसूत्र' कहते हैं। शक्तिसम्बद्ध अथर्ववेदके सौभाग्यकाण्डपर व्यापक सूत्र-साहित्य है, जिनमें 'परशुराम-कल्पसूत्र' प्रमुख है। यह ग्रन्थ बहुत छोटा है, पर उसीपर शाक्तोंके आचार-विचारकी रचना हुई है। इसमें निम्नलिखित दस विषय हैं—१–दीक्षा-खण्ड, २–गणेशपद्धति, ३–ललिताक्रम, ४–पंद्रह नित्या और प्रधान देवताका लयाङ्ग-पूजन, ५–श्रीचक्र-पूजन-पद्धति, ६–काम्य प्रयोग, ७–निष्काम प्रयोग, ८–सम्पूर्ण मन्त्रोंकी सामान्य पद्धति, ९–समयाचार-संग्रह और १०–कौलाचार-संग्रह। भास्कररायके शिष्य श्रीउमानन्दनाथने सूत्रपर 'नित्योत्सव' नामक निबन्ध और रामेश्वरने 'वृत्ति' लिखी है।

इसके अतिरिक्त अगस्त्य मुनिके शक्तिसूत्र, नागरनन्दके शक्तिसूत्र, प्रत्यभिज्ञाशक्तिसूत्र, अङ्गिरा ऋषिके देवीमीमांसा-दर्शन-सूत्र और गौडपादाचार्यके श्रीविद्यारत्नसूत्र भी सूत्र-साहित्यमें विशेष उल्लेख्य हैं।

आगम-तन्त्र-साहित्य

कहा जाता है कि आगम-साहित्यका आविर्भाव बुद्ध-निर्वाणके बाद कई सदियोंतक हुआ और प्रत्येक देवतावादके विषयका आगम-साहित्य है। जैसे—शैवागम,

सात्वत-आगम आदि । इसी प्रकार एक शाक्तागम भी है । इसके विचार और क्रियाकी पद्धति जिसमें सविस्तर वर्णित हो उसे 'तन्त्र' कहा गया है ।

यह तन्त्र-साहित्य विपुल था, जिनमें बहुत-से इस्लामी शासनकालमें नष्ट हो गये । इनमें मुख्य ६४ तन्त्र माने गये हैं । वामकेश्वरतन्त्र तथा भास्करराय (१७२४) के मतानुसार इन तन्त्रोंके नाम नीचे दिये जाते हैं । 'कुलचूडामणितन्त्र' और 'सौन्दर्यलहरी'के टीकाकार लक्ष्मीधर (ई० स० १२६८-१३७९) के मतानुसार जहाँ नामभेद है, उसे कोष्ठकके अन्तर्गत लिख दिया गया है—

१—महामाया (मायोत्तर—कुलचूडामणि) । २—शम्बर (महासारस्वत—कु० चू०) । ३—योगिनी जालशम्बर । ४—तत्त्वशम्बर (लक्ष्मीधरके अनुसार २, ३, ४ एक तन्त्र हैं, शम्बर वामजुष्ट और वामदेव पृथक् तन्त्र माने गये हैं) । ५—१२—भैरवाष्टक—असिताङ्ग, चरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपालि, भीषण, संहार । १३—२०—बहुरूपाष्टक—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, शिवदूती । २१—२८—यामलाष्टक—ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, ग्रहयामल । २९—महोच्छुष्य (तन्त्रज्ञान-कु० चू०, चन्द्रज्ञान-नित्याषोडशिका—लक्ष्मीधर) । ३०—वातुल (वासुकी—कु० चू०, मालिनी-समुद्रयानविद्या—लक्ष्मीधर)। ३१—वातुलोत्तर (महासम्मोहन—कु० चू०, महासम्मोहन, वाममार्गका—लक्ष्मी०) । ३२—हृद्भेद (कापालिक मतका) । ३३—तन्त्रभेद (अभिचार-विरुद्ध प्रयोगका महासूक्ष्म कु० चू०) । ३४—गुह्यतन्त्र (अभिचार-विरुद्ध प्रयोगोंका) । ३५—कामिक (कामशास्त्रका) । ३६—कलावाद (कलापक या कलापद—कु०चू०) । ३७—कलासार (वर्णोत्कर्ष विद्या) । ३८—कुब्जिकामत (आयुर्वेदविषयक) । ३९—तन्त्रोत्तर (वाहन—कु०चू०) । ४०—वीणातन्त्र (यक्षिणी प्रयोगका) । ४१—त्रोडल । ४२—त्रोडलोत्तर (४१—४२ गुटिका, अञ्जन और पादुका-सिद्धि प्रयोगार्थ) । ४३—पञ्चामृत (पञ्चभूतोंके देहस्थ पुट अजरामर करने विषयक) । ४४—सूर्यभेद । ४५—भूतोड्डामर (४४, ४५—मारण-प्रयोग) । ४६—कुलसार । ४७—कुलोड्डीश । ४८—कुलचूडामणि (मातृभेद—कु०चू०) । ४९-५०—महाकाली-मत (मातृभेद—कु०चू०) । ५१—महालक्ष्मी-मत (अरुणेश-लक्ष्मीधर) । ५२—सिद्धयोगेश्वरी-मत (मोहिनीश-लक्ष्मीधर) । ५३—कुरूपिकामत (विकुण्ठेश्वर-लक्ष्मी०) । ५४—देवरूपिकामत (देवीमत—लक्ष्मी०) । ५५—सर्ववीरमत । ५६—विमलामत (५०—५६ सात कापालिक-मतीय) । ५७—आम्नाय—पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय । ५८—निरुत्तर । ५९—वैशेषिक । ६०—ज्ञानार्णव । ६१—वीरावलि (जैनतन्त्र) (शिवात्मक— कु०चू०) । ६२—अरुणेश । ६३—मोहिनीश और ६४—विशुद्धेश्वर । प्रतीत होता है कि इन चौसठ तन्त्रोंमें अनेक व्यावहारिक एवं पारमार्थिक विद्याओंका समावेश हुआ है । लक्ष्मीधरके मतानुसार तान्त्रिकोंके सामयिक, कौल और मिश्र तीन भेद हैं ।

निबन्ध और पौराणिक साहित्य

श्रौत, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, उपनिषद् ब्रह्म, आदि साहित्यके अन्तर्गत शक्तिवादके मूल वाङ्मयपर सर्वश्री सायणाचार्य, अप्पय्य दीक्षित, भास्करराय और कौलाचार्य सदानन्दके भाष्य हैं । अप्पय्य दीक्षितकी 'आनन्द-लहरी'पर गम्भीर 'शाक्तवादबोधिका' टीका है । भास्कररायके श्रीसूक्त, कौल उपनिषद्, त्रैपुर महोपनिषद्, ललिता-सहस्रनाम, सप्तशती, योगिनीहृदयतन्त्रपर भाष्य-टीकाएँ हैं । उनका 'वरिवस्यारहस्य' अभूतपूर्व है । निबन्ध-ग्रन्थोंमें लक्ष्मण देशिकेन्द्रका 'शब्ददार्शनिक', श्रीविद्यारत्न-

मुनिके श्रीविद्यारत्नाकर, त्रिपुरारहस्य, वेदभाष्यकार महीधर-का मन्त्रमहोदधि आदि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं।

रहस्यस्तोत्रोंमें लघुपञ्चस्तवी, सुभगोदय, सौन्दर्यलहरी, आनन्दलहरी, त्रिपुरामहिम्नःस्तोत्र, ललितात्रिशती, आर्या-पञ्चाशत आदि उल्लेख्य हैं।

पौराणिक साहित्यमें देवीभागवत, ललितासहस्रनाम (ब्रह्माण्डपुराण), देवी-माहात्म्य (सप्तशती-मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत), कालिकापुराण, कूर्मपुराण आदि गिनाये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त प्रयोग-पद्धतियाँ भी अनेक हैं।

काश्मीरियोंके उत्तराम्नायविषयक निम्नलिखित ग्रन्थ—संवित्सिद्धि, अजडप्रमातृसिद्धि, तन्त्रालोक, तन्त्रसार, तन्त्रसुधा, तन्त्रधनिका, परात्रिंशिका, प्रत्यभिज्ञासूत्र-वृत्ति, विमर्शिनी हृदयसहित, महार्थमञ्जरी, मालिनी-विजय, कामकलाविलास, स्पन्द-कारिका, स्पन्दसन्दोह आदि शाक्तवादको स्पष्ट करते हैं।

आगम-शाक्त-साहित्य

[संक्षिप्त विवरणात्मक सूची]

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[इस विशेषाङ्कके पूर्व-पृष्ठोंमें वेदसे आरम्भ करके निबन्ध-साहित्यतक समग्र भारतीय वाङ्मयमें शक्ति-सम्बन्धी कतिपय ग्रन्थोंसे वर्गीकृत संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है, जो प्रायः आजकल उपलब्ध हैं। यहाँ कुछ अन्य आगम-सम्बन्धी ग्रन्थोंका परिचय पाठकोंके लाभार्थ दिया जा रहा है। —सम्पादक]

सरस्वतीके सुयोग्य पुजारियोंने भारतीय वाङ्मयके ग्रन्थोंके शक्ति-वाङ्मयकी सूचियाँ तैयार की हैं, जो देश-विदेशके पुस्तकालयोंमें सुरक्षित हैं। इनमें बहुत-से ग्रन्थोंका प्रकाशन नहीं हुआ है, वे हस्तलिखितरूपमें ही पड़े हैं। म० म० पद्मभूषण स्व० पूज्य गोपीनाथजी कविराजने 'तान्त्रिक साहित्य' नामसे ग्रन्थोंकी एक विवरणात्मक सूची तैयार की थी, जो उत्तरप्रदेश-सरकारकी 'हिंदी-समिति' द्वारा प्रकाशित है। इसमें तन्त्रका कौन-सा ग्रन्थ किस पुस्तकालयमें किस क्रमसंख्यासे उपलब्ध हो सकता है, इन सभी बातोंका उल्लेख है। उस ग्रन्थसे चुनकर शक्तिसम्बन्धी प्रमुख साहित्यका अति संक्षिप्त विवरण जिज्ञासुओंके लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है।

अक्षोभ्य-संहिता—इस ग्रन्थका एक भाग 'तारासहस्र-नाम'से उपलब्ध है (न्यू० कैट० कैट० १। २)।

अगस्त्यसूत्र—इसे 'शक्तिसूत्र' या 'शाक्तसूत्र' भी कहते हैं। इसका पहला सूत्र है—'अथातः शक्तिजिज्ञासा'।

अजपा-गायत्री—श्वास-प्रश्वासकी क्रिया-प्रक्रियासे 'हंसः' अजपा-मन्त्रका निरन्तर उच्चारण होता रहता है। संकल्प आदि विधियोंसे यह जपका रूप धारण कर लेता है, जिससे जीवनका एक श्वास भी व्यर्थ नहीं जाता। इसमें इसीका प्रतिपादन है। इस विषयकी अन्य भी बहुत-सी पुस्तकें हैं (न्यू कैट० कैट० १। ६३, मद्रास राज०पु० सूची (म०द०) ५८५२ से ५८६० तक; कलकत्ता सं० का० सूची (क० का०) २, (सं० सं० वि० वि० सूची २५१४८ और २६१६१; न्यू० कैट० कैट० १। ६३-६४)।

अथर्वतत्त्वनिरूपण—इसमें कुमारी-पूजाका विधान है, जिससे सर्वसिद्धियाँ एवं सर्वविभूतियोंकी प्राप्ति बतलायी गयी है (ए० सो० नं० ६१३५)।

अन्नदाकल्प—इसमें अन्नपूर्णाकी उपासना बतायी गयी है। १७ पटलोंके इस ग्रन्थमें अन्नदाकी प्रशंसा, मन्त्र-ग्रहण-विधि, मन्त्रोद्धार, पुरश्चरण, स्नानादि-विधि, आचमनसे पीठन्यासतक, मानसपूजा, विशेषार्घ्य-संस्कार, पीठपूजा, कलशका जलमें पूरण आदि विषय हैं।

(राजेन्द्रलाल सं० पु० विवरण ४५६; पु० सूचीमें १८ पटल, ५०० श्लोक)। इसी प्रकार अन्नपूर्णापर भी इनके पञ्चाङ्ग, स्तोत्रादि सैकड़ों ग्रन्थ निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार अम्बा, अम्बिका आदिपर भी सैकड़ों ग्रन्थ हैं।

अपराजिताकल्प–८४ श्लोकोंका यह ग्रन्थ अथर्वण-रहस्यके अन्तर्गत है। 'अपराजिता-प्रयोग', 'अपराजिता-विद्या' आदि भी इस विषयके ग्रन्थ हैं (सं० सं० वि०वि० २४४१८, २६१२५, २४०६३)।

अभिधान-रत्नावली–इस ग्रन्थमें दस हजार दो सौ श्लोकोंके १४ रत्न (अध्याय) हैं, जिनमें शक्तिकी उत्कृष्टता, मन्त्र, कुण्ड, मण्डप, वास्तुयाग, दीक्षा, पूजा, न्यास, पुरश्चरणादि विषय निरूपित हैं।

आगम-पुराण (गोपीप्रेमामृतम्)–इसमें भगवद्भक्तोंमें गोपियोंकी सर्वातिशायिता वर्णित है (न्यू० कैट० कैट० २। १३, सं० पुस्तकोंपर म० म० हरप्रसाद शास्त्री विवरण, नो० सं० ३। ४१)।

आगम-संग्रह (एकजटाकल्प)–सोलह पटलों एवं ४९६१ श्लोकोंके इस सम्पूर्ण ग्रन्थमें तारा, उग्रतारा, एकजटा आदिके एकरूप होनेपर भी नामभेदसे भेद-निरूपण किया गया है (रा० ला० मि० २२४७)।

आम्नाय–इसमें पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय, दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ, ऊर्ध्वौघ, परौघ, कामराजौघ, लोपामुद्रीय आदि विविध विद्याएँ वर्णित हैं (ए० सो० बं० ६२८५)।

ईशान-संहिता–इसमें भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी और सरस्वतीके मन्त्रों आदिका २१५ श्लोकोंमें निरूपण है (ए० सो० बं० ५९१३)।

उग्रचण्डीतन्त्र–यह तन्त्र कालिकापुराणमें उक्त है (न्यू० कैट० कैट० २। ८३)।

उत्तर कामाख्यातन्त्र–इसमें सतीके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे प्रतिष्ठित पीठोंमें शक्ति और भैरवोंके नामोंका २१५ श्लोकोंमें निरूपण है (रा० ला० मि० ५७५, न्यू० कैट० कैट० २। ३००)।

उमाकात्यायनीतन्त्र–यह ग्रन्थ ७८ पटलों और ५८२ श्लोकोंमें है। इसमें कात्यायनी महादुर्गा और जगद्धात्रीके आविर्भाव तथा पूजा आदिका विवरण है (नो० सं० २। ३१)।

कादिमत या कादितन्त्र–इसमें सोलह शक्तियोंके मन्त्र, मन्त्रोद्धार, पूजास्वरूप आदिका ३६ पटलोंमें वर्णन है। प्रत्येक पटलमें १०० श्लोक हैं। इसमें ललिता, नित्या, कामेश्वरी नित्या आदि १६ नित्याओंकी नैमित्तिक और काम्य पूजा प्रतिपादित है (इंडिया आफिस पुस्तक लन्दन, सूची २५३८)।

कामरूप-यात्रापद्धति–दस पटलों और १७८० श्लोकोंके इस ग्रन्थमें 'कामरूप' शब्दकी व्युत्पत्ति, कामाख्याकी पाँच देवी-मूर्तियोंकी पूजाका माहात्म्य आदि वर्णित हैं (रा० ला० मि० ४०६)।

कालीकुलामृततन्त्र–पंद्रह पटलों एवं ११५० श्लोकोंके इस ग्रन्थमें मुख्यरूपसे कालीकी उपासना एवं पूजा प्रतिपादित है (ए० सो० बं० ६०१९)।

कालीतत्त्वसुधासिन्धु–बत्तीस तरंगों और १३९७२ श्लोकोंके इस ग्रन्थमें कालीकी पूजापर विभिन्न तन्त्रोंसे संकलन है (रा० ला० मि० २९५६)।

कालीपुराण–यह ग्रन्थ कालिकापुराणसे अक्षरशः मिलता है, किंतु पुष्पिकामें उल्लेख है—

'इति श्रीरुद्रयामलतन्त्रे महाकालसंहितायाः श्रीकालीपुराणं समाप्तम्।'

कालीपूजापद्धति–यह रुद्रयामलान्तर्गत है। इसमें कालीकी पूजाविधि है (जम्मू-कश्मीर महा० निजी पु० सूची क० का० २४०)।

कालीविलासतन्त्र–इसमें ९२५ श्लोकोंद्वारा 'तन्त्र'-का निर्वचन और शूद्रके लिये 'प्रणव-स्वाहा'के प्रयोगका

निषेध कर उनके अनुरूप मन्त्रादिका निरूपण है (रा० ला० मि० २९६३, क० का० १२)।

कुण्डलिनी-होम-प्रकरण–इसमें शक्तिकी अर्चनामें विशेष होम प्रतिपादित है। पृथिवीरूप अन्य तत्त्वसे स्थूलदेहका संशोधन कर एकरस पर सुधामें होम करने तथा धर्मादिसे दीप्त आत्मरूप अग्निमें मनरूपी स्रुवासे इन्द्रिय-वृत्तियोंका हवन बताया गया है (म० द० ८५८३४)।

कुब्जिका-पूजापद्धति–यह ग्रन्थ २५०० श्लोकोंका है, जिसमें शिव और शक्तिके बहुत-से स्तोत्र हैं। चौंसठ योगिनियोंके नाम और पूजाके प्रकार हैं (नेपाल दर० पु० सूची (ने० द०) १ । १३५ । (१)।

कुमारी-पूजन–इसमें श्लोक-सं० २४ है (रघुनाथ म० जम्मू-सूची (र० मं०) ११७३, कैट० कैट० २ । २२)।

कुमारी-पूजाविधि–इसमें श्लोक-सं० २३ है (सं० सं०वि० २६५०९)।

कुलसंहिता(नवरात्रादि कुलसंहिता)–इसमें सात सौ अड़सठ श्लोकोंमें कालतन्त्र, यामल, भूतडामर, कुब्जिकातन्त्रराज, खेचरीसाधन, कालीमन्त्र आदि वर्णित हैं (नो० सं० १ । ७३)।

कुलोड्डीश (महातन्त्र)–नौ सौ पचीस श्लोकोंके इस ग्रन्थमें पाँच शक्तियोंकी श्रेष्ठता बतलायी गयी है—१–कामेश्वरी, २–व्रजेश्वरी, ३–भगमाला, ४–त्रिपुरसुन्दरी और ५–परब्रह्मस्वरूपिणी (ए० सो० बं० ५८४५)

कौमारी-पूजा––इसमें सप्तमातृकाओंमें अन्यतम कौमारी देवीकी पूजा-पद्धतिका प्रतिपादन है (ने० द० १ । १३२० (ब) ।

गायत्रीकल्प––यह ब्रह्मा-नारद-संवादरूपमें है। इसमें गायत्रीके ध्यान, वर्ण, रूप,देवता, छन्द, आवाहन, विसर्जन, माहात्म्य आदिका वर्णन है (रा० ला० मि० ११३)। गायत्रीके सम्बन्धमें गायत्री-कवच, गायत्री-जप-पद्धति, गायत्री-तन्त्र, गायत्री-दशविधान, गायत्री-पञ्चाङ्ग, गायत्री-पञ्जर, गायत्री-पटल, गायत्री-पद्धति, गायत्रीके तीन सहस्रनाम, गायत्रीपुरश्चरण-चन्द्रिका, गायत्री-पुरश्चरण-पद्धति आदि ग्रन्थ भी परम उपादेय हैं।

गुह्यकाली-पूजा––इसमें गुह्यकालीकी पूजाका विवरण है। इसी तरह गुह्यकालीसे सम्बन्ध रखनेवाली गुह्यका-तन्त्र, गुह्यकाली-सहस्रनाम, गुह्यकाल्ययुताक्षरमाला-तन्त्र आदि पुस्तकें हैं।

चण्डी-पुराण––यह मार्कण्डेयमुनिद्वारा विरचित है। इसमें दक्षका शाप, सतीका देहत्याग, पीठोंका (जहाँ सतीके विभिन्न अङ्ग गिरे थे) माहात्म्य, मधु-कैटभवध, दुन्दुभिवध, नमुचि और त्रिपुरका वध, महिषासुर-वध, सुन्दोपसुन्द-वध तथा मुर-वध आदि विषय हैं। इस सम्बन्धमें चण्डिकाक्रम, चण्डिका-नवाक्षरीमन्त्र-प्रकाशिका, चण्डिका-पूजा, चण्डिकार्चनक्रम, चण्डिकार्चन-चन्द्रिका, चण्डिकार्चन-दीपिका, चण्डिका-शतक, चण्डिकास्तोत्र, चण्डिका-हृदय, चण्डीटीका, चण्डी-नवार्णपटल, चण्डी-पद्धति आदि ग्रन्थ भी सैकड़ों पुस्तकें हैं।

चतुःषष्टियोगिनी-पूजन––इसकी श्लोक-सं० ६० है (अ०ब० ८१७७)। इस सम्बन्धकी एक पुस्तक और है—'चतुःषष्टियोगिनीनाम'।

चामुण्डापटल–इसकी श्लोक-सं० ६३ है। यह वाराही-तन्त्रसे संगृहीत है (अ०ब० ११७४७ (क))। चामुण्डा-सम्बन्धी कुछ अन्य पुस्तकें भी हैं—चामुण्डातन्त्र, चामुण्डा-पद्धति, चामुण्डाप्रयोग, चामुण्डायन्त्र-पूजनविधि आदि।

चिदमृततन्त्र––इसमें चण्डीका विधान है (कैट० कैट० ३ । ४०)। चिच्छक्ति-सम्बन्धी अन्य पुस्तकें हैं—चिच्चन्द्रिका, चिच्छक्ति-संस्तुति, चित्कलामहामन्त्र, चित्तिकातत्त्व, चिदम्बर, चिद्गगनचन्द्रिका आदि।

छिन्नमस्ता-कल्प–इसकी श्लोक-सं० ५०० है (अ० ब० १६९२)। छिन्नमस्ता देवी दशमहाविद्याओंमें अन्यतम हैं। इनके सम्बन्धकी अन्य पुस्तकें भी हैं—छिन्नमस्ता-पञ्चक, छिन्नमस्तापञ्चाङ्ग, छिन्नमस्तापटल, छिन्नमस्ता-

पद्धति, छिन्नमस्तापारिजात, छिन्नमस्ता-पूजा-विधान, छिन्नमस्ता-रहस्य आदि ।

ज्वालापटल—इसमें ज्वालामुखी देवीकी पूजापद्धति प्रतिपादित है। इनके सम्बन्धमें अन्य पुस्तकें भी हैं— ज्वालाकवच, ज्वाला-तन्त्र, ज्वाला-पद्धति, ज्वालामुखी-पञ्चाङ्ग, ज्वालावली-तन्त्र, ज्वालासहस्रनाम आदि ।

तन्त्र—इसमें त्रिपुरसुन्दरीके मन्त्र, सहस्रनाम तथा रहस्य वर्णित हैं। इसकी श्लोक-संख्या २००० है (अ० ब० १२ । ८०)।

तन्त्रराज (कादिमत)—४०४० श्लोकोंके इस ग्रन्थमें स्वप्नावती-माहात्म्य, मधुमतीका सिद्धिप्रकार, ककारादिका फल, अनन्तसुन्दरीका माहात्म्य आदि प्रतिपादित हैं (रा० ला० मि० ३३८२) ।

तारा-तन्त्र—(१) इसमें उग्रताराके महामन्त्रका माहात्म्य, विविध पूजा आदिका वर्णन है (नो० सं० १ । १४६)।

(२) इसमें तारादेवीकी पूजाविधि है (बी० कै० १३५५) । साथ ही तारादेवी-सम्बन्धी—तारा-पञ्चाङ्ग, तारा-पटल, ताराकल्पलता, ताराकल्पलता-पद्धति, ताराक्षोभ्यसंवाद, तारातत्त्व, तारा-पद्धति, तारापूजन-वल्लरी, तारापूजनपद्धति, तारापूजाप्रयोग, तारापूजारसायन, ताराप्रकरण, ताराप्रदीप, ताराभक्तितरंगिनी, ताराभक्ति-सुधार्णव, तारारहस्य, तारार्चन आदि सैकड़ों पुस्तकें हैं ।

त्रिपुरसुन्दरी-तन्त्र—निगम-अंशमें त्रिपुरतापिनी उपनिषद्का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। आगमोंमें इनके सम्बन्धके अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें कुछ ये हैं— त्रिपुर-सुन्दरीतन्त्र, त्रिपुरभैरवीपञ्चाङ्ग, त्रिपुरभैरवीपूजन, त्रिपुर-सुन्दरी-पद्धति, त्रिपुरसुन्दरी-तत्त्वविद्या-मन्त्रगर्भसहस्र-नाम, त्रिपुर-सुन्दरीत्रैलोक्यमोहन-कवच आदि ।

दक्षिणकालिका-स्वरूपस्तोत्र—यह वीरतन्त्रके श्यामा-कल्पान्तर्गत है। दक्षिणकालिकासम्बन्धी अन्य पुस्तकें हैं— दक्षिणकालिकाकल्प, दक्षिणकालिकाकवच, दक्षिण-कालिका-दीपदानविधि, दक्षिणकालिका-दीपपटल, दक्षिण-कालिका-पूजा-पद्धति आदि ।

दीक्षापद्धति—इसमें त्रिपुरसुन्दरीकी तान्त्रिक उपासनामें अधिकार-प्राप्तिके लिये दी जानेवाली दीक्षाका साङ्गोपाङ्ग वर्णन है (बी० कै० १२६३) ।

दुर्गाप्रदीप—तीन हजार श्लोकोंके इस ग्रन्थमें दुर्गोपासना-सम्बन्धी विपुल सामग्री है (अ० ब० १०६७४)। दुर्गासे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य पुस्तकें— दुर्गाकवच, दुर्गाक्रियाभेद-विधान, दुर्गादकारादि-सहस्र-नामस्तोत्र, दुर्गाद्विनामस्तोत्र, दुर्गादीपराज, दुर्गापञ्चाङ्ग आदि अन्य सैकड़ों हैं, जिनका उल्लेख शक्य नहीं। इसी प्रकार देवीपर भी देवीपुराण, देवीभागवत आदि सैकड़ों साहित्य एवं स्तोत्रादि ग्रन्थ हैं ।

धूमावती-पटल—इसमें दशमहाविद्यामें अन्यतम महाविद्या धूमावती-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्री है (कैट०, कैट०१ । २७२)। धूमावतीदेवी-सम्बन्धी अन्य पुस्तकें— धूमावती-दीपदान-पूजा, धूमावती-पञ्चाङ्ग, धूमावती-पूजाप्रयोग आदि पचीसों महत्त्वकी हैं ।

इसी प्रकार नारसिंहीपर भी सैकड़ों ग्रन्थ हैं ।

परमेश्वरी-मततन्त्र—इसमें नौ करोड़ श्लोक बतलाये जाते हैं। यह तन्त्र कई पटलोंमें विस्तृत है (ने० द० २पे० ११५)।

पिच्छिलातन्त्र—इस ग्रन्थके दो खण्ड हैं। पूर्व-खण्डमें २१ और उत्तरखण्डमें २४ पटल हैं। इसमें मुख्यतया कालीपूजाकी विधि है (ए० सो० बं० ५९९१)।

पीताम्बरापद्धति—इसमें पीताम्बरादेवीके मन्त्र, जप, ध्यान, पूजा, होम आदिका वर्णन है (बी० कै० १३०३) । इसके अन्य ग्रन्थ पीताम्बरापूजापद्धति और पीताम्बरा-सपर्या हैं ।

प्रोड्डीयागम—'फेत्कारीय' या 'फेरवीय' इसके नामान्तर हैं । इसमें दक्षिणकालिका, उग्रतारा त्रिपुरा,

दशमहाविद्याओंकी उत्पत्ति, पूजा आदिका वर्णन है (नो० सं० १ । २४४)।

बालात्रिपुरापञ्चाङ्ग—इसकी श्लोक-सं० ११५४ है। इसमें त्रिपुरसुन्दरीके कवच आदि पाँच अङ्गोंका संनिवेश है। इसपर बालाजप, बालातन्त्र, बालात्रिपुरसुन्दरीकवच आदि अन्य ग्रन्थ हैं।

भुवनेश्वरीरहस्य—इसमें २६ पटल हैं। इनमें विस्तारसे भुवनेश्वरीकी पूजाका प्रतिपादन है (ए० सो० बं० ५८८३)। इसपर भुवनेश्वरीपद्धति, भुवनेश्वरीपूजा, भुवनेश्वरीप्रयोग, भुवनेश्वरी-वरिवस्यारहस्य आदि अन्य ग्रन्थ हैं।

मन्त्र-महोदधि—इसमें २५ पटल हैं।

राधातन्त्र—(ए० बं० ६७०२)। अन्य ग्रन्थ—राधासहस्रनाम, राधिका-सहस्रनाम, राधाकृष्णपञ्चाङ्ग, राधाकृष्णाष्टोत्तर-शतनाम आदि भी हैं।

रासगीता—इसकी श्लोक-सं० १२७ है। इसमें रासोत्सवके अवसरपर युगलस्वरूप राधा तथा कृष्णकी स्तुति की गयी है (रा० लं० मि० २११२)। रासोल्लासतन्त्र आदि अन्य ग्रन्थ भी हैं।

लक्ष्मीतन्त्र—इसमें ५० अध्याय हैं। यह नारद-पाञ्चरात्रके अन्तर्गत है (इ० आ० २५३३)। इसके अन्य ग्रन्थ—लक्ष्मीकुलतन्त्र, लक्ष्मीकौलार्णव, लक्ष्मीचरित्र, लक्ष्मी-पटल, लक्ष्मीयन्त्र, लक्ष्मीसंहिता आदि हैं।

ललितोपाख्यान—यह ब्रह्माण्डपुराणसे संगृहीत है (रा० पु० ७०५४)। त्रिपुरादेवी ही ललितादेवी हैं। इनके सम्बन्धमें कुछ अन्य ग्रन्थ हैं—ललिताकामेश्वरी-प्रयोग, ललिताक्रमदीपिका, ललितातन्त्र, ललितातिलक, ललितापरिशिष्ट आदि।

वनदुर्गाकल्प—निगम-अंशमें वनदुर्गोपनिषद्का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मार्कण्डेयपुराणमें वनदुर्गाकी पूजाकी विधिका प्रतिपादन हुआ है। उपर्युक्त ग्रन्थमें वनदुर्गाके रूप, अङ्ग आदिका प्रतिपादन हुआ है। इसकी श्लोक-संख्या ११०० है और पटल १५ हैं।

वरिवस्यारहस्य—यह भास्कररायद्वारा रचित है। उन्होंने इसकी व्याख्या भी स्वयं लिखी है। इसमें त्रिपुरसुन्दरीकी पूजाकी विधि है।

वाराहीतन्त्र—इसमें वाराही, महाकाली आदि देवियोंके ध्यान आदि हैं (ने० द० २ । ३१५)। इसके अन्य ग्रन्थ—वाराही-कल्प, वाराही-क्रम, वाराही-विधान, वाराही-संहिता, वाराही-सहस्रनाम आदि हैं।

श्रीविद्यार्णव—इसपर स्वतन्त्र लेख इसी अङ्कमें अगले पृष्ठ ५२४ पर देखें।

शक्ति-संगमतन्त्र—इसमें महाकालीके अंशसे जगत्की उत्पत्ति, परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी-शक्तिका निरूपण, दुर्गा आदि नामोंका माहात्म्य, त्रिशक्तिके सौ नाम आदि विस्तृत विषय हैं। इसके अन्य ग्रन्थ—शक्तिचक्रतन्त्र, शक्तिन्यास, शक्तिपूजन, शक्तिभैरवतन्त्र, शक्तियामल, शक्ति-रत्नाकर, शक्तिरहस्य, शक्तिसंगमतन्त्र, शक्तिसंगम-तन्त्रराज, शक्तिसिद्धान्तमञ्जरी, शक्तिसूत्र आदि हैं।

शाक्तानन्दतरंगिनी—इसमें १८ उल्लास हैं तथा श्लोक-संख्या २८३८ हैं। इसके अन्य ग्रन्थ—शाक्ताभिषेक, शाक्तक्रम, शाक्तामोद, शाक्तामोदतरंगिनी आदि हैं।

शारदातिलक—इसमें २५ पटल हैं। परवर्ती सभी तान्त्रिक निबन्ध इसी ग्रन्थका आधार लेते हैं।

श्रीविद्यार्णव-तन्त्र

(आचार्य डॉ० श्रीसत्यव्रतजी शर्मा)

आगमोंमें परमसत्ताका निर्देश पुरुषरूपमें हुआ है और उसे शिव कहा गया है। तन्त्र उस परमसत्ताके पुरुष एवं स्त्री दोनों स्वरूपोंको स्वीकार करता है। स्त्रीरूपकी महत्तापर बल देनेवाले तन्त्र शाक्ततन्त्र कहलाते हैं और उन्होंने परमसत्ताको महात्रिपुरसुन्दरीके नामसे अभिहित किया है। उपासनाकी दृष्टिसे इस संदर्भमें उल्लेख्य है कि केनोपनिषद्में भगवती उमाका प्राकट्य इस बातका प्रबल संकेत है कि उस परमसत्ताके दोनों रूपोंकी उपासना सनातन कालसे होती चली आ रही है।

श्रीविद्यार्णवग्रन्थ पूर्वार्ध-उत्तरार्ध दो मुख्य भागोंमें एवं ३६ श्वासों (प्रकरणों)में विभक्त है। यह महात्रिपुरसुन्दरीके स्वरूप और उनकी उपासनाका वर्णन करनेवाले मधुमती एवं मालिनी नामक दो मतोंमें विभक्त है। मधुमती-मतको कादिमत और मालिनी-मतको कालीमत कहते हैं। तन्त्रराज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव और योगिनीहृदय कादिमतके तन्त्र-ग्रन्थ हैं और दूसरे तन्त्रग्रन्थोंमें कालीमतकी चर्चा की गयी है—

'स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥'

(केनोपनिषद्, तृतीय खण्ड)

'श्रीविद्यार्णव' श्रीविद्या तथा अन्य मन्त्र-विद्याओंका अर्णव (समुद्र) है। इस महाग्रन्थमें महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाका विशिष्ट वर्णन किया गया है और अन्य देवियोंकी चर्चा सामान्यरूपसे की गयी है। श्रीविद्यार्णव महात्रिपुरसुन्दरीके पचीस स्वरूप-भेदोंको उपस्थित करनेवाला एक महासमुद्र है। ये विभिन्न भेद महात्रिपुरसुन्दरीके जिन विशिष्ट उपासकोंके सम्मुख स्वयं प्रकट हुए थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—

मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामराज, अगस्त्य, नन्दी, सूर्य, विष्णु, कुमार, शिव, दुर्वासा, शक्र, उन्मनी, वरुण, धर्मराज, अनल, नागराज, वायु, बुध, ईशान, रति, नारायण, ब्रह्मा और बृहस्पति।

श्रीविद्यार्णवमें कामराजद्वारा दृष्ट सुन्दरी-भेद ही बारंबार उल्लिखित है, जो पञ्चदशाक्षरीके नामसे विख्यात है। इसके तीन विभिन्न भाग वाग्भवकूट, कामराजकूट और शक्तिकूटके नामसे विख्यात हैं, जो ब्रह्मा तथा सरस्वती, विष्णु तथा लक्ष्मी और रुद्र तथा रुद्राणीके वाचक हैं। इसमें उपलब्ध नौ वर्ण (ल, स, ह, ई, ए, र, क, ँ, ः) समष्टिरूपसे मेरु कहे जाते हैं। ये नौ वर्ण महात्रिपुरसुन्दरीके यन्त्रमें चतुष्कोणोंके द्वारा पृथ्वी, षोडशकमलदलोंके द्वारा विभिन्न ग्रह, अष्टदलोंके द्वारा आकाश, चतुर्दशकोणोंके द्वारा ब्रह्माण्ड, चतुर्दशारके द्वारा संरक्षण-शक्ति, अन्तर्दशारके द्वारा परमप्रकाश, अष्टकोणके द्वारा इच्छासिद्धिदायक शक्ति, त्रिकोणके द्वारा सृष्टिकर्त्री और केन्द्रके द्वारा शिवका निरूपण करते हैं।

श्रीविद्यार्णव ग्रन्थके पूर्वार्धमें महात्रिपुरसुन्दरीके स्थूल, सूक्ष्म और परारूपका तथा उत्तरार्धमें हिंदूधर्मके विभिन्न देवी-देवताओंका वर्णन है।

इस ग्रन्थमें श्रीविद्यारण्यने अपनी गुरुपरम्पराका पूर्ण विवरण दिया है। इन विवरणोंमें दो सरणियाँ हैं। पहली सरणि कपिलसे प्रारम्भ होकर शंकराचार्यपर समाप्त होती है। इसमें एकहत्तर गुरुओंके नाम दिये गये हैं। दूसरी सरणि शंकराचार्यसे प्रारम्भ होती है, जिसमें श्रीविद्यारण्यने उनके संन्यासी और गृहस्थ शिष्योंके चौदह तथा उपशिष्योंके नाम दिये हैं, जो इस प्रकार गिनाये हैं—

(क)

(संन्यासी)

- १—शंकराचार्य
- २—पद्मपाद
  - मंडळ, परिपावक, निर्वाण,
  - गीर्वन, चिदानन्द,
  - शिवोत्तम
- ३—बोध
  - केरळीय
  - शिष्य
- ४—गीर्वाण
  - विद्वद्गीर्वाण
  - विबुधेन्द्र
  - सुधीन्द्र
  - मन्त्रगीर्वाण
- ५—आनन्दतीर्थ

(ख)

(गृहस्थ)

- ६—सुन्दर
- ७—विष्णुशर्मा
  - प्रगल्भाचार्य
  - विद्यारण्य
- ८—लक्ष्मण
- ९—मल्लिकार्जुन
  - विन्ध्यक्षेत्रके शिष्य
- १०—त्रिविक्रम
  - पुरीके शिष्य
- ११—श्रीधर
  - गोडदेश, मिथिला और बंगालके शिष्य
- १२—कपर्दी
  - वाराणसी और अयोध्याके शिष्य
- १३—केशव
- १४—दामोदर
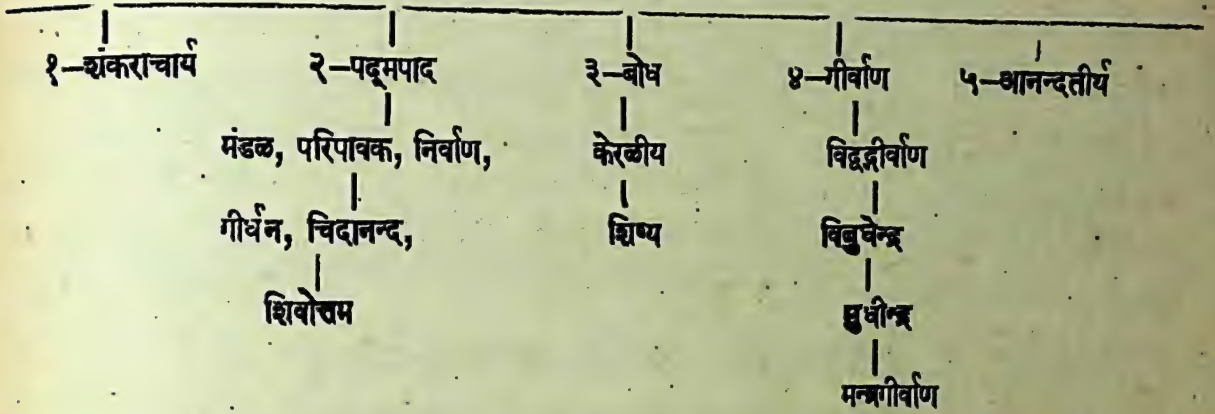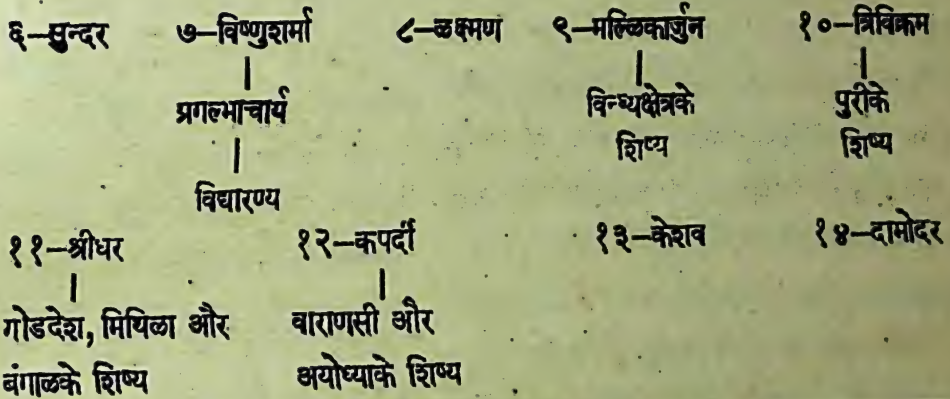
श्रीविद्यार्णवके श्वास १–१३में गुरु-शिष्य-लक्षण एवं दीक्षाक्रम, १६–१८में कालीमत, २०–३०में नित्याचार, त्वरिता, लक्ष्मी आदि और २७–३२में वैष्णव, शैव, गणपति, हनुमन्मत्र आदि निरूपित हैं।

उपर्युक्त वर्णनसे यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि आज पूरे भारतमें आद्यशंकराचार्यद्वारा प्रवर्तित श्रीविद्या-सम्प्रदाय ही विद्यमान है और इसके अतिरिक्त किसी अन्य सम्प्रदायकी अवस्थिति नहीं है। श्रीविद्यारण्यने इस ग्रन्थमें स्वयं कहा है—

सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशंकराद् बहिः

शक्तिपूजाके विविध प्रकार

दुर्गा-सप्तशती-पाठ और शतचण्डी-विधान

(श्रीरामचन्द्र गोविन्द वैजापुरकर, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

'कलौ चण्डीविनायकौ'—इस शास्त्रवचनानुसार कलियुगमें भगवती चण्डिका दुर्गादेवीकी आराधना सद्यः-सिद्धिकरी बतायी गयी है। भगवतीकी यह उपासना उसके मूलमन्त्र (नवार्ण-मन्त्र)के जप तथा देवीकी वाङ्मयी मूर्ति 'सप्तशती' या 'देवी-माहात्म्य'के पाठ-हवनादिद्वारा करनेपर शीघ्र और निश्चित रूपमें सिद्धि-प्रद होती है। यह देवी-माहात्म्य मार्कण्डेय-महापुराणका वह अंश है, जिसे सुमेधा नामक मुनिने दयापरवश होकर राजा सुरथ और समाधि वैश्यको सुनाया था।

वस्तुतः ७०० श्लोकोंका यह देवी-माहात्म्य अत्यन्त सिद्धग्रन्थ है। ये साधारण श्लोक नहीं, अपितु मन्त्र हैं, जिनकी विधिपूर्वक साधना करनेपर भगवती साधकके सभी ऐहलौकिक और पारलौकिक अभीष्ट पूर्ण कर देती हैं।

जिज्ञासा होगी कि यह साधना कैसे की जाय? उत्तर यही है कि प्रस्तुत साधनाका प्रकार जानिये, जो छोटा-से-छोटा भी है और बड़ा-से-बड़ा भी। जिसकी जैसी शक्ति हो, वह किसी प्रकारकी कृपणता न करते हुए कोई भी प्रकार अपनाकर साधना करे तो निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है।

लघु सप्तशती-पाठ

यदि पूरे ७०० श्लोकोंका पाठ करनेकी शक्ति या समय न हो तो इसी देवी-माहात्म्यके मात्र मध्यम चरित्रका पाठ करनेपर भी वही फल मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थमें तीन चरित्र हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तर। प्रथम अध्याय-को 'प्रथम चरित्र', द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्यायोंको 'मध्यम चरित्र' तथा पञ्चमसे त्रयोदशतकके अध्यायोंको 'उत्तर चरित्र' कहा गया है। साधककी अशक्तदशामें तीनोंमेंसे मध्यम चरित्रके ही पाठका विधान है।

इस मध्यम चरित्र (२, ३, ४ अध्यायों)में कुल १५५ मन्त्र हैं, जिनमें पूरे अनुष्टुप् आदि छन्दोंके १४४ श्लोक हैं, २ आधे (अनुष्टुप्) श्लोक और ९ मात्र 'उवाच' (इतना मात्र) हैं। इस लघु पाठ-विधिमें भी सम्प्रदायानुसार आदि-अन्तमें यथाशक्ति १०, २८ या १०८ बार मूलमन्त्र (नवार्ण-मन्त्र)का जप अवश्य करणीय है।

यहाँ यह भी ध्यान रखनेकी बात है कि यह सप्तशती-अनुष्ठान सकाम भी होता है और निष्काम भी। देवी-माहात्म्यके ही एक उपासक राजा सुरथने राज्य-प्राप्तिके

लिये इसका अनुष्ठान किया, जब कि दूसरे उपासक समाधि वैश्यने ज्ञान-प्राप्तिके लिये किया। भगवतीने भी अन्तमें राजाको राज्य-प्राप्तिका और वैश्यको ज्ञान-प्राप्तिका वर दिया ही है। फिर भी निष्काम भावसे 'भगवती-प्रीत्यर्थ' संकल्पके साथ किया गया यह अनुष्ठान सर्वोत्कृष्ट है, किंतु जो सकाम भावसे इसका अनुष्ठान करते हैं, उनका वह अनुष्ठान भी 'अप्रशस्त' नहीं कहा जा सकता। कारण, इस प्रकार सकाम अनुष्ठान करते-करते एक समय ऐसा अवश्य आयेगा जब साधकको ये सारी कामनाएँ तुच्छ जान पड़ेंगी और फिर वह निष्काम अनुष्ठान कर आत्मज्ञान प्राप्त कर सकेगा। अन्ततः शास्त्रकारोंने सकाम अनुष्ठानका विधान 'सितावेष्टित-कटुकौषधवत्' (चीनीसे लिपटी कड़वी ओषधिकी तरह) ही माना है। यथासम्भव साधकके लिये भगवत्-प्राप्ति, भगवद्दर्शन और भगवत्-प्रीति-जैसी ऊँची कामनाओंसे ही अनुष्ठानोंका सम्पादन करना श्रेयस्कर होता है।

सम्पुटरहित मूल पाठ

सप्तशतीका केवल नित्यका मूल पाठ करना हो तो प्रथमतः आचमन-प्राणायाम करके संकल्पपूर्वक भगवतीके श्रीविग्रहका (अथवा उनकी वाङ्मयी मूर्ति देवीरहस्यका) यथालब्ध उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर निम्नलिखित संकल्प करके पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।

संकल्प—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयेऽपरार्धे विष्णुपदे श्रीश्वेत-वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे......क्षेत्रे......विक्रमशके बौद्धावतारे......संवत्सरे श्रीसूर्ये......अयने......ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे......मासे......पक्षे......तिथौ......वासरे......नक्षत्रे......राशिस्थिते चन्द्रे......राशिस्थिते श्रीसूर्ये......राशिस्थिते देवगुरौ, शेषेषु ग्रहेषु यथा यथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुण-विशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ......गोत्रः......शर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं श्रीमहाकालीमहालक्ष्मी-महासरस्वतीत्रिगुणात्मिकापराम्बाश्रीदुर्गादेवी-प्रीत्यर्थम् (यदि सकाम अनुष्ठान करना हो तो) मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च श्रीदुर्गादेवीप्रीतिद्वारा सर्वपापक्षयपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनधान्यपुत्रपौत्राद्य-नवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपरा-जयाद्यभीष्टसिद्ध्यर्थं 'मार्कण्डेय उवाच' इत्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनुः' इत्यन्तं दुर्गासप्तशतीपाठम् (सम्पुट पाठ करना हो तो)(अमुक......मन्त्रेण प्रतिमन्त्र-सम्पुटितम्), तदादौ कवचार्गलाकीलकम्, आद्यन्तयो-र्नवार्णमन्त्रजपपुरस्सरं क्रमेण रात्रिसूक्तदेवीसूक्त-पठनम्, अन्ते च रहस्यत्रयपठनं करिष्ये।

अर्थात् प्रथम जहाँ अनुष्ठान करना हो, उस क्षेत्रका नाम, फिर संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्रके नाम तथा चन्द्र, सूर्य और गुरुकी वर्तमान राशिके उच्चारणके साथ साधक कर्ता श्रीमहाकाली-महा-लक्ष्मी-महासरस्वतीस्वरूपिणी दुर्गादेवीके प्रीत्यर्थ सप्तशती-पाठका संकल्प करे। (यदि सकाम अनुष्ठान करना हो तो संकल्पके 'मम......' से 'सिद्ध्यर्थम्' तकका अंश संकल्पमें जोड़ दे। स्वयं न करके ब्राह्मणद्वारा कराना हो तो 'करिष्ये' की जगह 'कारयिष्यामि' कहना चाहिये।

इस सप्तशती-पाठका आरम्भ 'मार्कण्डेय उवाच' इस मन्त्रसे और अन्त 'सावर्णिर्भविता मनुः' इस मन्त्रसे होता है और संकल्पमें इसका भी उल्लेख करना पड़ता है। साथ ही पाठके पूर्व इस ग्रन्थके साथ जुड़े कवच, अर्गला और कीलक—इन तीन स्तोत्रोंका पाठ, फिर पाठके आदि-अन्तमें भगवतीके 'नवार्ण' नामक मूल-मन्त्रका (न्यूनतम १०८ बार) जप, फिर पाठके प्रारम्भमें 'देवीमाहात्म्यागत 'रात्रिसूक्त' (अ० १ श्लोक ७० के उत्तरार्धसे श्लोक ८७ तक) भागका पाठ

दूसरी बारके जपके बाद ग्रन्थोक्त (अध्याय ५ श्लोक ९ से ८२ तक) 'देवीसूक्त'का पाठ करके इसी ग्रन्थके साथ जुड़े 'रहस्यत्रय' नामक तीन स्तोत्रोंका पाठ करना चाहिये। संकल्पमें इसका भी उल्लेख किया जाता है।

ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त 'रात्रिसूक्त' और 'देवीसूक्त' नामक दो सूक्त वेदोंमें भी पठित हैं और त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) इन वैदिक ग्रन्थोक्त सूक्तोंका पाठ कर सकते हैं।

इस प्रकार पाठ समाप्त होनेपर पाठमें न्यूनाधिक्य-दोषके परिहारार्थ भगवतीसे निम्नलिखित श्लोकसे क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये—

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

—पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रसे जल छोड़ते हुए भगवतीको पाठ-समर्पण करना चाहिये—

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि॥

यह सप्तशतीके साधारण दैनिक पाठका विधान है, जिसे प्रत्येक सप्तशती-पाठकर्ताके लिये अनिवार्यतः करणीय होता है। पाठकर्ता ब्राह्मण हो या स्वयं यजमान, उपर्युक्त इतनी विधि करनेपर ही उसका सप्तशती-पाठ साङ्ग पूर्ण माना जाता है। पाठके समय अखण्ड दीप रखना प्रशस्त है।

शतचण्डी-विधान

सप्तशती-पाठके नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि अनेक विधान हैं। इन सभीमें पाठकी साङ्गताके लिये पाठका दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन तथा उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन अत्यावश्यक होता है। नवरात्र आदिमें जो नौ दिनोंतक नवचण्डी-पाठ किये जाते हैं, उनमें प्रायः पाठके दशांश हवन, तर्पण और मार्जनादिके लिये एक पाठ अधिक करके साङ्गता कर ली जाती है, जो साम्प्रदायिक मान्यता है, किंतु कामनाविशेषसे पृथक् नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि अनुष्ठान करने हों तो इन हवनादि अङ्गोंका विकल्प न होकर मूलरूपमें उन्हें करनेपर ही साङ्गता होती है। अतएव पाठकोंकी सुविधाके लिये यहाँ संक्षेपमें शतचण्डी-विधान दिया जा रहा है, जो तन्त्रशास्त्रके सर्वमान्य ग्रन्थ 'मन्त्र-महोदधि'से संकलित है।

किसी शिवालय या दुर्गा-मन्दिरके निकट एक सुन्दर मण्डप बनाया जाय, जिसमें दरवाजा और वेदी भी बनी हो। उसके चारों ओर तोरण (बंदनवारें) लगायें और ध्वजारोपण भी करें। मण्डपके बीच पश्चिमकी ओर या मध्यमें हवनकुण्डका निर्माण करे।

तदनन्तर यजमान स्नान, नित्यक्रियादिसे निवृत्त होकर पाठ-हवनके लिये दस ब्राह्मणोंका वरण करे। ये ब्राह्मण जितेन्द्रिय, सदाचारी, कुलीन, सत्यवादी, शास्त्रवित्, नम्रता और दयासे सम्पन्न तथा दुर्गासप्तशती-का पाठ करनेमें सक्षम होने चाहिये। उन्हें विधिपूर्वक पाद्य, अर्घ्य, आचमन देकर मधुपर्क निवेदन करना चाहिये और सुवर्ण, वस्त्रादिका दान करते हुए जपके लिये माला और आसन देने तथा हविष्यान्न अर्पण करनेका विधान है। इन विचारशील ब्राह्मणोंको हविष्यान्न-भोजन और भूमिपर शयन करना तथा मन्त्रार्थ-चिन्तनमें ध्यान लगाते हुए मार्कण्डेय-पुराणोक्त चण्डिकास्तवका दस-दस बार पाठ करना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ब्राह्मणको नवार्ण-मन्त्रका दस हजार जप करनेका विधान है। यहाँ कुछ सज्जन दस हजार जप जपार्थ नियुक्त जापकके लिये विहित बताते हैं तो कुछ लोग प्रत्येक ब्राह्मणके लिये एक-एक हजार ही नवार्ण-मन्त्र-जपका विधान करते हैं, जो सम्प्रदायानुसार ग्राह्य है

यह जप सम्पुट-पाठसे पृथक् करना उचित है। प्रत्येक मन्त्रके आदि-अन्तमें किसी बीज या अन्य मन्त्र-का उच्चारण करके किया जानेवाला पाठ 'सम्पुट पाठ' कहलाता है। शक्ति-साम्प्रदायिकोंका मत है कि शतचण्डीका प्रारम्भ ऐसे समयसे करना चाहिये कि कुल सौ पाठ अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी या पूर्णिमा तिथियोंमें पूरा हो जाय।

इस अनुष्ठानमें यजमानको चाहिये कि वह नौ कुमारिकाओंका पूजन करे, जो दो वर्षसे लेकर दस वर्षतककी आयुकी हों। वे कुमारिकाएँ हीनाङ्गी, अधिकाङ्गी, कुष्ठी और फोड़ोंवाली, अन्धी, कानी, कुरूपा, केकरी (ऐंचातानी), कुबड़ी, अधिक रोमोंवाली, दासीसे उत्पन्न, रोगिणी और दुष्टा नहीं होनी चाहिये। कुमारिका-पूजनमें ऐसी कन्याएँ अग्राह्य मानी गयी हैं।

सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये ब्राह्मण-कन्याका, यशके लिये क्षत्रिय-कन्याका, धनके लिये वैश्य-कन्याका और पुत्रके लिये शूद्र-कन्याका पूजन करनेका विधान है। शास्त्रोंमें इन नौ कुमारिकाओंके पृथक्-पृथक् नाम भी दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—दो वर्षकी कन्या 'कुमारी', तीन वर्षकी 'त्रिमूर्ति', चार वर्षकी 'कल्याणी', पाँच वर्षकी 'रोहिणी', छः वर्षकी 'कालिका', सात वर्षकी 'चण्डिका', आठ वर्षकी 'शाम्भवी', नौ वर्षकी 'दुर्गा' और दस वर्षकी 'सुभद्रा' कहलाती हैं।

भगवान् शंकरद्वारा कथित निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर इन नौ कुमारिकाओंका आवाहन करना चाहिये—

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम्॥

तदनन्तर शंकरप्रोक्त निम्नलिखित एक-एक मन्त्र बोलकर एक-एक कुमारिकाका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भक्ष्य-भोज्य एवं वस्त्रालङ्कारादिसे पूजन करना चाहिये।

१. कुमारी-मन्त्र—

जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते॥

२. त्रिमूर्ति-मन्त्र—

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम्।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥

३. कल्याणी-मन्त्र—

कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम्॥

४. रोहिणी-मन्त्र—

अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम्।
अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥

५. कालिका-मन्त्र—

कामाचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम्॥

६. चण्डिका-मन्त्र—

चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जिनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥

७. शाम्भवी-मन्त्र—

सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥

८. दुर्गा-मन्त्र—

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥

९. सुभद्रा-मन्त्र—

सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम्।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥

कुमारी-पूजनके पश्चात् वेदीपर सुन्दर सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसपर विधिपूर्वक कलशस्थापन करना चाहिये तथा उसपर भगवती पार्वती-दुर्गाकी प्रतिमा रखकर उनका आवाहन करना चाहिये। उनके समक्ष नाना उपचारोंद्वारा कन्याओं, ब्राह्मणों तथा नवार्णमन्त्रद्वारा आवरण-देवताओंका पूजन करनेका विधान है। तत्पश्चात् सप्तशती-यन्त्रकी स्थापना करके मन्त्रस्थ देवताओंका, पीठका तथा पीठस्थ देवताओंका पूजन

करना चाहिये। तदनन्तर प्रधान देवता भगवती दुर्गाका षोडशोपचार पूजन विहित है।[1]

इसी प्रकार चार दिनोंतक पूजनादि-क्रम चलाते रहना चाहिये। इसमें भी प्रत्येक ब्राह्मण प्रथम दिन सप्तशती-स्तोत्रका एक पाठ, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन और चौथे दिन चार पाठ करे। इस प्रकार पाठ-वृद्धि-क्रमसे चार दिनोंमें पाठोंकी शत (सौ) संख्या पूर्ण हो जाती है। यथा—दस ब्राह्मणोंद्वारा प्रथम दिन एक-एक पाठ—१० + द्वितीय दिन दो-दो पाठ—२० + तृतीय दिन तीन-तीन पाठ—३० + चतुर्थ दिन चार-चार पाठ—४०=१०० पाठ। पाँचवें दिन पाठका दशांश हवन करना चाहिये, जैसा कि कहा गया है—**'एवं चतुर्दिनं कृत्वा पञ्चमे होममाचरेत्।'**

पाठाङ्ग-दशांश हवनादिका विधान

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि नियत संख्याके पाठ पूरे हो जानेके पश्चात् पाठ-संख्याका दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन और उसका दशांश ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, जो नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डीमें समान है।

हवनादिका विस्तृत प्रयोग मिलता है। जिसमें आचमन, प्राणायाम, संकल्प, गणेश-अम्बिका-पूजन, स्वस्ति-पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, वसोर्धारा-पूजन, आयुष्य-मन्त्रजप, आचार्यवरणादि पूर्वाङ्ग-कर्म, तदनन्तर दशांश प्रधान हवन और नाममन्त्रोंसे आवरणदेवताओंके लिये हवन तथा पूर्णाहुति, ब्राह्मणोंद्वारा यजमानका कलशाभिषेक एवं सुवर्ण-दक्षिणा आदि कृत्य बताये गये हैं। ये सारे क्रिया-कलाप वेदज्ञ याज्ञिकोंके माध्यमसे यथासाङ्ग सम्पन्न हो सकते हैं और होने चाहिये। अतएव उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

यह भी ज्ञातव्य है कि हवनके समय सप्तशतीके प्रत्येक मन्त्रके साथ 'स्वाहा' कहकर हवन करना चाहिये, किंतु तर्पण-मार्जनके समय मन्त्रके साथ **'दुर्गां तर्पयामि' 'दुर्गां मार्जयामि'** कहना चाहिये।

इस प्रकार शतचण्डी-विधानका संक्षिप्त प्रकार ऊपर बताया गया है। आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न व्यक्तिको अपनी सामर्थ्यके अनुसार किसी प्रकारका वित्तशाठ्य (कृपणता) न करते हुए अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहिये। जो निष्काम भावसे मात्र जगदम्बाके प्रीत्यर्थ शतचण्डी-पाठ करना चाहें अथवा वास्तवमें जिनमें इतना विपुल धनव्यय करनेकी शक्ति ही न हो, वे भावुक सज्जन १०० पाठ करके दशांश हवनादिके लिये (१० बार हवन, १ बार तर्पण, १ बार मार्जन और १ ब्राह्मण-संतर्पणके लिये), १३ पाठ करें तो भी भगवती उनसे संतुष्ट होती हैं।

पृथ्वी मातासे प्रार्थना

प्रातःकाल निद्रा-त्यागके बाद भूमिपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वी मातासे यह प्रार्थना करनी चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

'पृथ्वीदेवि! आप समुद्ररूपी वस्त्र धारण करनेवाली और पर्वतरूपी स्तनमण्डलसे सुशोभित होनेवाली भगवान् विष्णुकी पत्नी हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे चरणस्पर्शको क्षमा करें।'

१—ज्ञातव्य है कि ऊपर बताये गये सर्वतोभद्रमण्डलमें भी अनेक देवताओंका आवाहन-पूजन किया जाता है। सप्तशती-यन्त्रमें भी अनेक देवताओंका आवाहन-पूजन होता है। इसी प्रकार पीठस्थ देवोंका भी आवाहन-पूजन होता है। यह सारा विषय उस विषयके विज्ञ वैदिक विद्वान्की सहायतासे करना चाहिये। यहाँ उनका संकेतमात्र किया गया है।

दुर्गासप्तशती-पाठके कतिपय सिद्ध सम्पुट मन्त्र

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्यमें 'श्लोक', 'अर्ध श्लोक' और 'उवाच' आदि मिलाकर ७०० मन्त्र हैं। यह माहात्म्य 'दुर्गासप्तशती'के नामसे प्रसिद्ध है। दुर्गासप्तशती अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाली है। जो पुरुष जिस भाव और जिस कामनासे श्रद्धा एवं विधिके साथ दुर्गासप्तशती-का पारायण करता है, उसे उसी भावना और कामनाके अनुसार निश्चय ही फल-सिद्धि होती है। इस बातका अनुभव अगणित पुरुषोंको प्रत्यक्ष हो चुका है। यहाँ हम कुछ ऐसे चुने हुए मन्त्रोंका उल्लेख करते हैं, जिनका सम्पुट देकर विधिवत् पारायण करनेसे विभिन्न पुरुषार्थोंकी व्यक्तिगत और सामूहिकरूपसे सिद्धि होती है। इनमें अधिकांश दुर्गासप्तशतीके ही मन्त्र हैं और कुछ बाहरके भी हैं—

(१) विश्वके अशुभ तथा भयका विनाश करनेके लिये—

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥
(४। ४)

(२) विश्वव्यापी विपत्तियोंके नाशके लिये—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥
(११। ३)

(३) विश्वके पाप-ताप-निवारणके लिये—

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥
(११। ३४)

(४) विश्वकी रक्षाके लिये—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥
(४। ५)

(५) विश्वके अभ्युदयके लिये—

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥
(११। ३३)

(६) सामूहिक कल्याणके लिये—

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः॥
(४। ३)

(७) मोक्ष-प्राप्तिके लिये—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥
(११। ५)

(८) स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये—

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥
(११। ७)

(९) स्वर्ग और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये—

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(११। ८)

(१०) पापनाश तथा भक्तिकी प्राप्तिके लिये—

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥
(अर्गलास्तो० ९)

(११) पाप-नाशके लिये (बालरोग-नाशार्थ)—

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥
(११ । २७)

(१२) भुक्ति-मुक्तिकी प्राप्तिके लिये—

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥
(अर्गलास्तो० १४)

(१३) सर्वविध अभ्युदयके लिये—

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥
(४ । १५)

(१४) समस्त विद्याओंकी और समस्त स्त्रियोंमें मातृभावकी प्राप्तिके लिये—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥
(११ । ६)

(१५) विपत्ति-नाश और शुभकी प्राप्तिके लिये—

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥
(५ । ८१ उत्त०)

(१६) विपत्ति-नाशके लिये—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(११ । १२)

(१७) सब प्रकारके कल्याणके लिये—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(११ । १०)

(१८) शक्ति-प्राप्तिके लिये—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(११ । ११)

(१९) प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये—

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥
(११ । ३५)

(२०) रक्षा पानेके लिये—

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥
(४ । २४)

(२१) बाधामुक्त होकर धन-पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये—

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥
(१२ । १३)

(२२) विविध उपद्रवोंसे बचनेके लिये—

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥
(११ । ३२)

(२३) महामारी-नाशके लिये—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥
(अर्गलास्तो० १)

(२४) रोग-नाशके लिये—

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥
(११ । २९)

(२५) भय-नाशके लिये—

(क) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥
(११ । २४)

(ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥
(११।२५)

(ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥
(११।२६)

(२६) बाधा-शान्तिके लिये—

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥
(११।३९)

(२७) आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये—

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥
(अर्गलास्तो० १२)

(२८) दारिद्र्यदुःखादि-नाशके लिये—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥
(४।१७)

(२९) समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
(५।९)

(३०) समस्त बाधाओंके निवारणके लिये—

सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा।
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्॥
(१२।२८, २९)

(३१) सुलक्षणा पत्नीकी प्राप्तिके लिये—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥
(अर्गलास्तो० २४)

(३२) स्वप्नमें सिद्धि-असिद्धि जाननेके लिये—

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय॥
(पौरा०)

कात्यायनी-तन्त्रमें दुर्गासप्तशतीके ७०० मन्त्रों (श्लोकों)के अतिरिक्त जहाँ 'जातवेदसे सुनवाम सोम०'—स्तोत्र, 'त्र्यम्बकं यजामहे०' (यजुर्वेद) 'कां सोस्मितां हिरण्यप्रकारां०' (ऋग्वेद, श्रीसूक्त)', 'अनृणा अस्मिन्०' (अथर्ववेद)के मन्त्रोंके भी सम्पुट क्रमशः समस्त कामनासिद्धि, अपमृत्यु-निवारण, लक्ष्मीप्राप्ति, ऋण-परिहारकी कामनामें विहित हैं, वहीं अतिशीघ्र सिद्धिके लिये सप्तशतीके प्रत्येक मन्त्रके आदि-अन्तमें ओंकारका तीन बार लोम-विलोमयुक्त सौ पाठोंका विधान पाया जाता है।

अनुग्रह-याचना

(रचयिता—डॉ० श्रीश्यामबिहारीजी मिश्र, एम्०एस्-सी०, पी-एच्०डी०)

आदिशक्ति अम्बे! इस जगका सारा शोक बिदारें।
दया करें सबपर अनुदिन ही, सबकी दशा सँवारें॥
मानवके मनमें स्थित जो काम, शोक, भय भारी।
परम कृपा करि उन्हें मिटा दें, जननी देव-दुलारी॥
मंगलदायिनि माता! सबपर मंगल वर्षा कर दें।
दोष-अमंगल इस धरतीका सकल शीघ्र ही हर लें॥
ममताकी शुभ मूर्ति विश्व-आराध्या रमा भवानी।
कृपादृष्टि कर दें इस जगपर, हो उपकार शिवानी॥
पापनाशिनी! सिंहवाहिनी! अघ समूल हर लीजै।
सर्वव्याधि हर इस वसुधाकी सुख-ही-सुख भर दीजै॥

स्तोत्र-पाठ

भीष्मपर्वका सर्वसिद्धिप्रद दुर्गास्तोत्र

(सुश्रीबिन्दुशर्मा, एम्० ए०)

भारतमें विभिन्न देवी-देवताओंसे सम्बन्धित स्तोत्रोंकी एक लम्बी परम्परा है। देवगण स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर अपने भक्तोंका अभीष्ट सिद्ध करते हैं। उन्हें चारों पुरुषार्थ प्रदान करते हैं। भक्तोंद्वारा की गयी स्तुतियाँ उनकी विशिष्ट भावदशाकी प्रतीक और अहंविहीन निर्वैयक्तिक चेतनाकी संवाहक होती हैं। स्तुतिके समय भक्त जब अपने शुद्ध चैतन्यमें प्रतिष्ठित होता है और विशिष्ट शक्तिसे आवेष्टित हो शक्ति-विशेषका दर्शन करने लगता है, तब उस विशिष्ट शक्तिके स्वरूप एवं उसकी क्रिया-शक्तिसे सम्बन्धित शब्द-परम्परा अनायास फूट पड़ती है। उस समय भक्तिभावाविष्ट वह भक्त उस शक्ति-विशेषका साक्षी भर होता है और भाव-जगत्के बह्वर्थक तथा बहु-आयामी स्पन्दन उसके कण्ठसे शब्दायमान होकर स्वतः प्रवाहित होने लगता है। किसी भक्तकी भावापन्न-दशाकी शब्दावलीको ही 'स्तोत्र' कहते हैं।

इन्हीं सभी स्तोत्रोंके बीच महाभारतके भीष्मपर्वमें हीरक-मणिकी तरह जगमगाता अर्जुन-प्रोक्त एक छोटा-सा दुर्गास्तोत्र प्राप्त होता है। महायुद्धके लिये सन्नद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णके साथ रथारूढ अर्जुन जब कुरुक्षेत्रके मैदानमें पहुँचे, तब भगवान्ने उनसे दुर्गाकी स्तुति करनेको कहा। उस महासंगरकी वेलामें अर्जुनको भगवती दुर्गाकी स्तुतिके लिये प्रेरित करनेकी घटना इस दुर्गास्तोत्रके अत्यन्त मूल्यवान् होनेकी ओर संकेत करती है। इस स्तोत्रकी फलश्रुतिमें कहा गया है कि जो व्यक्ति प्रभातकालमें समाहित-चित्त होकर इस दुर्गास्तोत्रका पाठ करेगा, वह सर्वथा भयमुक्त हो जायगा और उसे युद्ध तथा विभिन्न विवादोंमें विजयश्री प्राप्त होगी। वह बन्धनमुक्त हो जायगा और लक्ष्मी तथा आरोग्यसे सम्पन्न होकर सौ वर्षतककी आयु प्राप्त करेगा। यह सर्वसिद्धिप्रद स्तोत्र अविकलरूपमें नीचे प्रस्तुत है—

नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि॥

(अर्जुनने कहा—) मन्दराचलपर निवास करने-वाली सिद्धोंकी सेनानेत्री आर्ये! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो, तुम्हें प्रणाम है। दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण तुम चण्डी कहलाती हो, भक्तोंको संकटसे तारनेके कारण तुम तारिणी हो, तुम्हारे शरीरका दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते॥

अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥
महिषासृक्प्रिये नित्यं चण्डे कौशिकि वासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥

महाभागे ! तुम्हीं (सौम्य और सुन्दर रूपवाली) पूजनीया कात्यायनी हो और तुम्हीं विकराल रूपधारिणी कराली हो । तुम्हीं विजया और जयाके नामसे विख्यात हो । मोरपंखकी तुम्हारी ध्वजा है । नाना प्रकारके आभूषण तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं । तुम भयंकर त्रिशूल, खड्ग और खेटक आदि आयुधोंको धारण करती हो । नन्दगोपके वंशमें तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; परंतु गुण और प्रभावमें सर्वश्रेष्ठ हो । महिषासुरका रक्त बहाकर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी । तुम कुशिकगोत्रमें अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो । तुम पीताम्बर धारण करती हो । जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्रवाकके समान उद्दीप्त हो उठता है । युद्ध तुम्हें बहुत ही प्रिय है । मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।

उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥

उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी आदि नाम धारण करनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।

वेदश्रुतिमहापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं संनिहितालये ॥

तुम वेदोंकी श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है, वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं । तुम्हीं जातवेदा अग्निकी शक्ति हो । जम्बू, कँटीदार वृक्ष और चैत्यवृक्षोंमें तुम्हारा नित्य निवास है ।

त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥

तुम समस्त विद्याओंमें ब्रह्मविद्या और देहधारियोंकी महानिद्रा हो । भगवति ! तुम कार्तिकेयकी माता हो, दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो ।

स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥

स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता तथा वेदान्त—ये सभी तुम्हारे ही नाम हैं ।

स्तुतासि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥

महादेवि ! मैंने विशुद्ध हृदयसे तुम्हारा स्तवन किया है, अतः तुम्हारी कृपासे इस रणाङ्गणमें मेरी सदा ही जय हो ।

कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥

माँ ! तुम घोर जंगलोंमें, भयपूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भक्तोंके घरोंमें तथा पातालमें भी नित्य निवास करती हो और युद्धमें दानवोंको पराजित कर देती हो ।

त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।
संध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥

तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो ।

तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां संख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥

तुम्हीं तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमाको बढ़ानेवाली दीप्ति भी हो । तुम्हीं ऐश्वर्यवानोंकी विभूति हो । युद्धभूमिमें सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन प्राप्त करते हैं ।

श्रीराजराजेश्वर्यष्टक

अम्बा शाम्भवि चन्द्रमौलिरबलापर्णा उमा पार्वती
काली हैमवती शिवा त्रिनयना कात्यायनी भैरवी।
सावित्री नवयौवना शुभकरी साम्राज्यलक्ष्मीप्रदा
चिद्रूपी परदेवता भगवती श्रीराजराजेश्वरी॥

अम्बा मोहिनि देवता त्रिभुवनी आनन्दसंदायिनी
वीणापल्लवपाणिवेणुमुरलीगानप्रिया लोलिनी।
कल्याणी उडुराजबिम्बवदना धूम्राक्षसंहारिणी
चिद्रूपी० ॥

अम्बा नूपुररत्नकङ्कणधरी केयूरहारावली
जातीचम्पकवैजयन्तिलहरी ग्रैवेयवैराजताम्।
वीणावेणुविनोदमण्डितकरा वीरासने संस्थिता।
चिद्रूपी० ॥

अम्बा रौद्रिणि भद्रकालि बगला ज्वालामुखी वैष्णवी
ब्रह्माणी त्रिपुरान्तकी सुरनुता देदीप्यमानोज्ज्वला।
चामुण्डा श्रितरक्षपोषजननी दाक्षायणी वल्लवी।
चिद्रूपी० ॥

अम्बा शूलधनुःकुशाङ्कुशधरी अर्धेन्दुबिम्बाधरी
वाराही मधुकैटभप्रशमनी वाणीरमासेविते।
मल्लाद्यासुरमूकदैत्यमथनी माहेश्वरी चाम्बिका।
चिद्रूपी० ॥

अम्बा सृष्टिविनाशपालनकरी आर्या विसंशोभिता
गायत्री प्रणवाक्षरामृतरसपूर्णानुसंधीकृता।
ओंकारी विनतासुतार्चितपदा उद्दण्डदैत्यापहा।
चिद्रूपी० ॥

अम्बा शाश्वत आगमादिविनुता आर्या महादेवता
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्तजननी या वै जगन्मोहिनी।
या पञ्चप्रणवादिरेफजननी या चित्कला मानिनी।
चिद्रूपी०॥

अम्बा पालितभक्तराजमनिशमम्बाष्टकं यः पठे-
दम्बालोककटाक्षवीक्षललिता ऐश्वर्यमव्याहता।
अम्बापावनमन्त्रराजपठनादन्तीशमोक्षप्रदा।
चिद्रूपी० ॥

॥ इति श्रीराजराजेश्वर्यष्टक समाप्त ॥

दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

एक समयकी बात है, ब्रह्मा आदि देवताओंने पुष्प आदि विविध उपचारोंसे महेश्वरी दुर्गाका पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारे पूजनसे संतुष्ट हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो, मैं तुम्हें दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करूँगी।' दुर्गाका यह वचन सुनकर देवता बोले—'देवि! हमारे शत्रु महिषासुरको, जो तीनों लोकोंके लिये कण्टक था, आपने मार डाला, इससे सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ एवं निर्भय हो गया, आपकी ही कृपासे हमें पुनः अपने-अपने पदकी प्राप्ति हुई है। आप भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, हम आपकी शरणमें आये हैं। अतः अब हमारे मनमें कुछ भी पानेकी अभिलाषा शेष नहीं है। हमें सब कुछ मिल गया, तथापि आपकी आज्ञा है, इसलिये हम जगत्की रक्षाके लिये आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। महेश्वरि! कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे आप शीघ्र प्रसन्न होकर संकटमें पड़े हुए जीवकी रक्षा करती हैं। देवेश्वरि! यह बात सर्वथा गोपनीय हो तो भी हमें अवश्य बतानेकी कृपा करें।'

देवताओंके इस प्रकार विनम्र प्रार्थना करनेपर दयामयी दुर्गादेवीने कहा—'देवगण! सुनो, यह रहस्य अत्यन्त गोपनीय और दुर्लभ है। मेरे बत्तीस नामोंकी माला सब प्रकारकी आपत्तिका विनाश करनेवाली है। तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरी कोई स्तुति नहीं है, यह रहस्यरूप है। इसे बतलाती हूँ, सुनो—

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी॥

दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः॥

१–दुर्गा, २–दुर्गार्तिशमनी, ३–दुर्गापद्विनिवारिणी, ४–दुर्गमच्छेदिनी, ५–दुर्गसाधिनी, ६–दुर्गनाशिनी, ७–दुर्गतोद्धारिणी, ८–दुर्गनिहन्त्री, ९–दुर्गमापहा, १०–दुर्गमज्ञानदा,११–दुर्गदैत्यलोकदवानला,१२–दुर्गमा, १३–दुर्गमालोका, १४–दुर्गमात्मस्वरूपिणी, १५–दुर्गमार्गप्रदा, १६–दुर्गमविद्या, १७–दुर्गमाश्रिता, १८–दुर्गमज्ञानसंस्थाना, १९–दुर्गमध्यानभासिनी, २०–दुर्गमोहा, २१–दुर्गमगा, २२–दुर्गमार्थस्वरूपिणी, २३–दुर्गमासुरसंहन्त्री, २४–दुर्गमायुधधारिणी, २५–दुर्गमाङ्गी, २६–दुर्गमता, २७–दुर्गम्या, २८–दुर्गमेश्वरी, २९–दुर्गभीमा, ३०–दुर्गभामा, ३१–दुर्गभा, ३२–दुर्गदारिणी—जो मनुष्य मुझ दुर्गाकी इस नाममालाका पाठ करेगा वह निःसंदेह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जायगा।

कोई शत्रुओंसे पीड़ित हो अथवा दुर्भेद्य बन्धनमें पड़ा हो, वह इन बत्तीस नामोंके पाठमात्रसे संकटसे छुटकारा पा जाता है। इसमें तनिक भी संदेहके लिये स्थान नहीं है। यदि राजा क्रोधमें भरकर वधके लिये अथवा और किसी कठोर दण्डके लिये आज्ञा दे दे या युद्धमें शत्रुओंद्वारा मनुष्य घिर जाय अथवा वनमें व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंके चंगुलमें फँस जाय, तो इन बत्तीस नामोंका एक सौ आठ बार पाठमात्र करनेसे वह सम्पूर्ण भयोंसे मुक्त हो जाता है। विपत्तिके समय इसके समान भयनाशक उपाय दूसरा नहीं है। देवगण! इस नाममालाका पाठ करनेवाले मनुष्योंकी कभी कोई हानि नहीं होती। अभक्त, नास्तिक और शठ मनुष्यको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो भारी विपत्तिमें पड़नेपर भी इस नामावलिका हजार, दस हजार अथवा लाख बार पाठ स्वयं करता या ब्राह्मणोंसे कराता है, वह सब प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त हो जाता है। सिद्ध अग्निमें मधुमिश्रित सफेद तिलोंसे इन नामोंद्वारा लाख बार हवन करे तो मनुष्य सब विपत्तियोंसे छूट जाता है। इस नाममालाका पुरश्चरण तीस हजारका है। पुरश्चरणपूर्वक पाठ करनेसे मनुष्य इसके द्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर सकता है। मेरी सुन्दर मिट्टीकी अष्टभुजा-मूर्ति बनावे, आठों भुजाओंमें क्रमशः गदा, खड्ग, त्रिशूल, बाण, धनुष, कमल, खेट (ढाल) और मुद्गर धारण करावे। मूर्तिके मस्तकमें चन्द्रमाका चिह्न हो, उसके तीन नेत्र हों, उसे लाल वस्त्र पहनाया गया हो, वह सिंहके कंधेपर सवार हो और शूलसे महिषासुरका वध कर रही हो, इस प्रकारकी प्रतिमा बनाकर नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करे। मेरे उक्त नामोंसे लाल कनेरके फूल चढ़ाते हुए सौ बार पूजा करे और मन्त्र-जप करते हुए पूएसे हवन करे। भाँति-भाँतिके उत्तम पदार्थ भोग लगावे। इस प्रकार करनेसे मनुष्य असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर लेता है। जो मानव प्रतिदिन मेरा भजन करता है, वह कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता। देवताओंसे ऐसा कहकर जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। दुर्गाजीके इस उपाख्यानको जो सुनते हैं, उनपर कोई विपत्ति नहीं आती।

महिषासुरमर्दिनी श्रीसंकटाकी स्तुति

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते
गिरिवरविन्ध्यशिरोऽधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते ।
भगवति हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १ ॥
सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शंकरतोषिणि कल्मषमोषिणि घोषरते ।
दनुजनिरोषिणि दुर्मदशोषिणि दुर्मुनिरोषिणि सिन्धुसुते । जय जय० ॥ २ ॥
अयि जगदम्ब कदम्बवनप्रियवासिनि तोषिणि हासरते
शिखरिशिरोमणितुङ्गहिमालयशृङ्गनिजालयमध्यगते ।
मधुमधुरे मधुकैटभभञ्जिनि महिषविदारिणि रासरते । जय जय० ॥ ३ ॥
अयि निजहुंकृतिमात्रनिराकृतधूम्रविलोचनधूम्रशते
समरविशोषितशोषितशोणितबीजसमुद्भवबीजलते ।
कटितटपीतदुकूलविचित्रमयूखतिरस्कृतचण्डरुचे । जय जय० ॥ ४ ॥
विजितसहस्रकरैकसहस्रकरैकसहस्रकरैकनुते
कृतसुरतारकसंगरतारकसंगततारकसूनुनते ।
सुरथसमाधिसमानसमाधिसमानसमाधिसुजाप्यरते । जय जय० ॥ ५ ॥
पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे
अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत् ।
तव पदमेव परं पदमस्त्विति शीलयतो मम किं न शिवे । जय जय० ॥ ६ ॥
कनकलसत्कलशीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवं
भजति स किं न शचीकुचकुम्भतटीपरिरम्भसुखानुभवम् ।
तव चरणं शरणं करवाणि सुवाणि पथं मम देहि शिवम् । जय जय० ॥ ७ ॥
तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं कलयन्ननुकूलयते
किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखीसुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते ।
मम तु मतं शिवमानधने भवती कृपया किमु न क्रियते । जय जय० ॥ ८ ॥
अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे
अयि जगतो महतो जननीति यथासि तथानुमतासि रमे ।
यदुचितमत्र भवत्युररां कुरु शाम्भवि देवि दयां कुरु मे । जय जय० ॥ ९ ॥
स्तुतिमिमां स्तिमितः सुसमाधिना नियमतो यमतोऽनुदिनं पठेत् ।
परमया रमया स निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत् ॥ १० ॥

जगदम्बा श्रीउमा

विरञ्चिनारायणवन्दनीयो मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः।
कृपाकटाक्षेण निरीक्षणानि ह्यपेक्षते सावतु नो भवानी॥

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥

माँ ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र। अहो ! मुझे स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है। न आवाहनका पता है न ध्यानका। स्तोत्र और कथाकी भी जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएँ जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता है; परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारे पीछे चलना, जो कि क्लेशोंको—समस्त दुःख-विपत्तियोंको हर लेनेवाला है।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणमयी माता ! मैं पूजाकी विधि नहीं जानता, मेरे पास धनका भी अभाव है, मैं स्वभावसे भी आलसी हूँ तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजाका सम्पादन हो भी नहीं सकता, इन सब कारणोंसे तुम्हारे चरणोंकी सेवामें जो त्रुटि हो गयी है इसे क्षमा करना; क्योंकि कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती।

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥

माँ ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र तो बहुत-से हैं, किंतु उन सबमें मैं ही अत्यन्त चपल तुम्हारा बालक हूँ; मेरे-जैसा चञ्चल कोई विरला ही होगा। शिवे ! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती।

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥

जगदम्ब ! मातः ! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा कभी नहीं की, देवि ! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ-जैसे अधमपर जो तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि संसारमें कुपुत्र पैदा हो सकता है; किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती।

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥

गणेशजीको जन्म देनेवाली माता पार्वती ! [अन्य देवताओंकी आराधना करते समय] मुझे नाना प्रकारकी सेवाओंमें व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिये पचासी वर्षसे अधिक अवस्था बीत जानेपर मैंने देवताओंको छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती; अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलम्बरहित होकर किसकी शरणमें जाऊँगा।

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥

माता अपर्णा ! तुम्हारे मन्त्रका एक अक्षर भी कानमें पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाकके समान मधुर वाणीका उच्चारण करनेवाला उत्तम वक्ता हो जाता है, दीन मनुष्य भी करोड़ों स्वर्णमुद्राओंसे सम्पन्न हो चिरकालतक निर्भय विहार करता रहता है। जब मन्त्रके एक अक्षरके श्रवणका ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जपमें लगे रहते हैं, उनके जपसे प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा ? इसे कौन मनुष्य जान सकता है।

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
　भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥७॥

भवानी ! जो अपने अङ्गोंमें चिताकी राख—भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगम्बरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तकपर जटा और कण्ठमें नागराज वासुकिको हारके रूपमें धारण करते हैं तथा जिनके हाथमें कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है ? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणिग्रहणकी परिपाटीका फल है; तुम्हारे साथ विवाह होनेसे ही उनका महत्त्व बढ़ गया ।

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
　न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
　मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥

मुखमें चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली माँ ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी अभिलाषा भी नहीं है, न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकाङ्क्षा; अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते ।

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
　किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
　धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥९॥

माँ श्यामा ! नाना प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी । सदा कठोर भावका चिन्तन करनेवाली मेरी वाणीने कौन-सा अपराध नहीं किया है । फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथपर जो किञ्चित् कृपादृष्टि रखती हो, माँ ! यह तुम्हारे ही योग्य है । तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्रको भी आश्रय दे सकती है ।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
　करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
　क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥

माता दुर्गे ! करुणासिन्धु महेश्वरी ! मैं विपत्तिमें फँसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ, [पहले कभी नहीं करता रहा] इसे मेरी शठता न मान लेना; क्योंकि भूख-प्याससे पीड़ित बालक माताका ही स्मरण करते हैं ।

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
　परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परापरं
　न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥

जगदम्ब ! मुझपर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है । पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती ।

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

महादेवि ! मेरे समान कोई पातकी नहीं और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है; ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो ।

इति श्रीशंकराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

शुभाशंसा

लोकविख्यातकल्याणपत्रिकाया महत्तमः ।
शक्तेरुपासनाङ्कश्च जयताच्छाश्वतीः समाः ॥

"लोकविश्रुत 'कल्याण' पत्रिकाका श्रेष्ठतम 'शक्ति-उपासना'-अङ्क शाश्वत वर्षोंतक जययुक्त हो ।"

—रवीन्द्रनाथ गुरु